पुरातन-जैनवाक्य-सूची

प्रथम विभाग

अर्थात्

दिगम्बरजैन-प्राकृत-पद्याऽनुक्रमणी

संयोजक और सम्पादक

जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

अधिष्ठाता 'वीर-सेवा-मन्दिर'

[डा० कालीदास नाग एम० ए०, डी० लिट० के Foreword (प्राक्कथन) और डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये एम० ए०, डी० लिट० के Introduction (भूमिका) से युक्त]

—:o:—

सहायक सम्पादक

पं० दरबारीलाल जैन कोठिया, न्यायाचार्य

पं० परमानन्द जैन शास्त्री

प्रकाशक

वीर-सेवा-मन्दिर

सरसावा जि० सहारनपुर

प्रथम संस्करण

वीरनिर्वाण-संवत् २४७६

विक्रम संवत् २००७

सन् १९५०

मूल्य १५) रु

प्रकाशक
वीर-सेवा-मन्दिर
सरसावा, जि० सहारनपुर

, सहारनपुर—
मूल ग्रन्थ परिशिष्टों-सहित पृष्ठ १ से ३२४, Introduction और प्रस्तावना पृष्ठ १ से १२८ तक।

२ रॉयल प्रिंटिंग प्रेस, सहारनपुर—
प्रस्तावना पृष्ठ १२९ से १६८ तक।

३ रामा प्रिंटिंग प्रेस, देहली—
प्रस्तावना पृष्ठ १६९, प्रस्तावनाका संशोधन तथा प्रस्तावनाकी नामसूची पृ० १७० से १७९ और टाइटिल आदि प्रारंभके १६ पृष्ठ।

VIR - SEWA - MANDIR - GRANTHMALA G. No. 5

PURATANA - JAINVAKYA - SUCHI

PART I

OR

DIGAMBAR JAIN PRAKRITA-PADYANUKRAMANI

(An alphabetical index of Verses from Digambar Jain works in Prakrita)

Compiled and Edited

BY

JUGAL KISHORE MUKHTAR 'YUGVIR'
ADHISHTHATA VIR-SEWA-MANDIR

WITH

A Foreword by Dr. Kalidas Nag, M. A., D. Litt.
and an Introduction by Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

Assistant Editors

Pandit Darbarilal Jain Kothia, Nyayacharya
Pandit Parmanand Jain, Shastri,

Publishers

VIR-SEWA-MANDIR

SARSAWA, *District* SAHARANPUR (U. P.)

FIRST EDITION 1950 Price Rs. 15/-/-

ग्रन्थानुक्रम

प्रकाशकीय वक्तव्य

इस 'पुरातन-जैन-वाक्य-सूची' को प्रेसकी हवा खाते-खाते छह वर्षसे ऊपर समय बीत गया। सन् १९४३ में जब यह ग्रंथ श्रीवास्तव-प्रेसमें छपनेको दिया गया तब इसके ३-४ महीनेमें ही छपकर प्रकाशित होजानेकी आशा की गई थी और तदनुसार 'अनेकान्त' मासिक-में सूचना भी करदी गई थी, परन्तु प्रेसने अपने वचनों एवं आश्वासनोंके विरुद्ध कुछ ही समय बाद इतना मन्दगतिसे काम किया और कभी-कभी सप्ताहोंतक छपाईका काम बन्द भी कर दिया कि उससे प्रस्तावनादि लिखनेका जो उत्साह था वह सब मन्द पड़ गया। और इसलिये कोई एक वर्ष बाद जब ग्रंथके छपनेकी सूचना 'अनेकान्त' में निकाली गई तब यह लिखना पड़ा कि ग्रंथकी प्रस्तावना और कुछ परिशिष्टोंका छपना आदि कार्य अभी बाकी है। उस समय यह सोचा गया था कि अवशिष्ट कार्य प्रायः दो महीनेमें पूरा होकर ग्रंथ अब जल्दी ही प्रकाशमें आजाएगा और इसीसे ग्रंथका मूल्य निर्धारित करके उसके ग्राहक बननेकी भी प्रेरणा करदी गई थी, जिसके फलस्वरूप कितने ही ग्राहकोंके नाम दर्जरजिस्टर हुए और कुछसे मूल्य भी प्राप्त होगया।

इधर परिशिष्टोंका निर्माण होकर छपनेका कुछ कार्य प्रारम्भ हुआ और उधर सरकारकी तरफसे कागजके कंट्रोल आदिका आर्डर जारी होकर ग्रन्थोंके छपनेपर खासा प्रतिबन्ध लगा दिया गया। उस समय अपना कितना ही कागज़ ग्रंथोंकी छपाईके लिए देहलीके एक प्रेसमें रक्खा हुआ था, जब सरकारकी ओरसे यह स्पष्ट होगया कि जिन ग्रंथोंके आर्डर प्रेसोंको पहलेसे दिये हुए हैं उनपर उक्त कंट्रोल आर्डर लागू नहीं होगा—वे कागज़के उपयोग-सम्बन्धी कोटेका कोई खयाल न रखते हुए भी अवधिके भीतर छपाये जा सकेंगे, तब यही मुनासिब और पहला काम समझा गया कि उस कागज़पर अपने उन ग्रंथोंको छपालिया जाय जिनके लिये वह कागज़ रिजर्व रक्खा हुआ है। तदनुसार इधरका काम छोड़ देहली जाकर उन ग्रन्थोंमें जो कार्य शेष था उसे यथासाध्य प्रस्तावनादि के साथ पूरा करते हुए उनका छपाना प्रारम्भ किया गया, जिसमें १॥ सालके करीब समय निकल गया। इसी बीचमें वीर-शासन-जयन्ती-सम्बन्धी राजगृह तथा कलकत्तेके महोत्सव भी हो गये, जिनमें भी शक्तिका कितना ही व्यय करना पड़ा है।

इसके सिवाय 'अनेकान्त' पत्रको बराबर चालू रक्खा गया है और उसमें समयकी आवश्यकता तथा उपयोगिताको ध्यानमें रखते हुए कितने ही महत्वके आवश्यक लेखोंको समय-पर लिखने तथा लिखानेमें प्रवृत्त होना पड़ा है। दूसरे, स्वास्थ्यने भी ठीक साथ नहीं दिया, वह अनेक बार गड़बड़में ही चलता रहा है और कभी-कभी तो किसी दुःस्वप्नादिके कारण ऐसा भी महसूस होने लगा था कि शायद जीवन अब जल्दी ही समाप्त होजाय और इससे तदनुरूप कुछ चिन्ताओंने भी आ घेरा था। तीसरे, स्याद्वादमहाविद्यालय काशीके प्रधान अध्यापक पं० श्री कैलाशचन्दजी शास्त्रीकी तथा और भी कुछ विद्वानोंकी ऐसी इच्छा जान पड़ी कि यदि प्रस्तावनामें इन प्राकृत ग्रंथों और इनके रचयिताओंका कुछ परिचय मुख्तार सा० की (मेरी)

लेखनीसे लिखा जाय तो वह साहित्य और इतिहासकी एक खास चीज होगी; परन्तु उसके लिखने योग्य चित्तकी स्थिरता और निराकुलतामें बराबर बाधा पड़ती रही, संस्थाके प्रबन्धादिक-की चिन्ताएँ भी सताती रहीं और मोहवश लिखनेके उस विचारको छोड़ा भी नहीं जा सका।

इस तरह अथवा इन्हीं सब कारणोंके वश प्रस्तावनाका मेरे द्वारा लिखा जाना बराबर टलता रहा, फलतः ग्रन्थका प्रकाशन भी टलता रहा और इससे ग्रन्थावलोकनके लिये उत्सुक विद्वानोंकी इच्छामें बराबर व्याघात पडता रहा* और उन लोगोंको तो बहुत ही बुरा मालूम हुआ जिन्होंने ग्रंथके शीघ्र प्रकाशित होनेकी सूचना पाकर मूल्य पेशगी भेज दिया था। उनमेंसे कुछके धैर्यका तो बांध ही टूट गया और उन्होंने सख्त ताकीदी पत्र लिखे, उलहने तथा आरोपोंके रूपमें अपना रोष व्यक्त किया और दो-एक ने अपना मूल्य भी वापिस भेज देनेके लिये बाध्य किया जो अन्तको उन्हें वापिस भेज दिया गया। ग्राहकोंके इस रोष पर मुझे जरा भी क्षोभ नहीं हुआ, क्योंकि मैं इसमें उनका कोई दोष नहीं देखता था—आखिर धैर्यकी भी कोई सीमा होती है; फिर भी मैं उनकी तत्काल इच्छापूर्ति करनेमें असमर्थ था—अपनी परिस्थितियोंके कारण मजबूर था। हाँ, एक दो बार मैंने यह जरूर चाहा है कि अपनी संस्थाके विद्वानोंमेंसे कोई विद्वान इस प्रस्तावनाको जैसे तैसे लिख दे, जिससे ग्रंथ जल्दी प्रकाशित होकर झगड़ा मिटे, परन्तु किसीने भी अपने को उसके लिये प्रस्तुत नहीं किया—मुझे ही उसको लिखनेकी बराबर प्रेरणा की जाती रही। डाक्टर ए० एन० उपाध्येने अपनी अंग्रेजी भूमिका (Introduction) तो मई सन् १९४५ में ही लिख कर भेज दी थी।

आखिर अक्तूबर सन् १९४६ के अन्तमें प्रस्तावनाका लिखना प्रारम्भ हुआ। उसके प्रथम तीन प्रकरण और अन्तका पाँचवाँ प्रकरणतो ७ नवम्बर सन् १९४६ को ही लिखकर समाप्त हो गये थे; परन्तु 'ग्रन्थ और ग्रन्थकार' नामक चौथा महाप्रकरण कुछ और बादमें—संभवतः सन् १९४७ के शुरूमें—लिखा जाना प्रारम्भ हुआ और उसे समय, स्वास्थ्य, शक्ति और परिस्थिति आदिकी जैसी कुछ अनुकूलता मिली उसके अनुसार वह बराबर लिखा जाता रहा है। जब प्रस्तावनाका अधिकाँश भाग लिखा जा चुका तब उसे शुरू जनवरी सन् १९४८ को प्रेसमें दिया गया और छापकर देनेके लिये अधिकसे अधिक तीन महीनेका वादा लिया गया; परन्तु प्रेसने अपनी उसी वेढंगी चालसे चलकर प्रस्तावनाके १३२ पेजोंके छापनेमें ही पूरा साल गाल दिया। और आगेको अपनी कुछ परिस्थितियोंके वश छापनेसे साफ जवाब दे दिया। तब प्रस्तावनाके शेष ३७ पेजोंको रायल प्रिंटिंग प्रेस सहारनपुरमें छपाया गया। इसके बाद दूसरी अनेक परिस्थितियोंके वश अवशिष्ट छपाईका काम फिर कुछ समयके लिये टल गया और वह अन्तको देहलीके रामा प्रिंटिंग प्रेस द्वारा पूरा किया गया है।

इस प्रकार यह इस ग्रन्थके अतिविलम्ब अथवा आशातीत विलम्बसे प्रकाशित होने-की कहानी है, जिसका प्रधान जिम्मेदार इन पंक्तियों का लेखक ही है—वह प्रस्तावनाको जल्दी लिखकर नहीं दे सका और न अन्यत्र किसी ऐसे प्रेसका प्रबन्ध ही कर सका है जो शीघ्र छापकर दे सके, और यह एक ऐसा अपराध है जिसके लिये वह अपनेको क्षमा-याचनाका

* डाक्टर ए० एन० उपाध्येजी एम० ए० कोल्हापुर, पं० नाथूरामजी प्रेमी बम्बई और पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य बनारसने तो ग्रन्थके छपे फार्मोंको मँगाकर समयपर अपनी तत्कालीन इच्छा तथा आवश्यकताकी पूर्ति करली थी।

अधिकारी भी नहीं समझता। मेरी इस शिथिलता, अयोग्यता, अव्यवस्था अथवा परिस्थितियोंकी विवशताके कारण अनेक पाठक सज्जनोंको जो प्रतीक्षाजन्य कष्ट उठाना पड़ा है उसका मुझे भारी खेद है! अस्तु; प्रस्तावनाके पीछे जो भारी परिश्रम हुआ है, जो अनुसन्धान-कार्य किया गया है और उसके कितने ही लेखों—खासकर 'सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन', गोम्मटसार और नेमिचन्द्र,' 'तिलोयपण्णत्ती और यतिवृषभ' जैसे निबन्धों-द्वारा जो नई नई विशिष्ट खोजें प्रस्तुत की गई हैं उन सबको देखकर संभव है कि आकुलित हृदय पाठकोंको सान्त्वना मिले और वे अपने उस प्रतीक्षाजन्य कष्ट को भूल जायँ। यदि ऐसा हुआ तो यही मेरे लिये सन्तोषका कारण होगा।

यह ग्रन्थ क्योंकर बना और इसकी क्या उपयोगिता है, इस बातको प्रस्तावनामें भले प्रकार व्यक्त किया गया है। यहाँ पर मैं सिर्फ इतना ही बतलादेना चाहता हूँ कि इस ग्रंथके निर्माण और प्रकाशनका प्रधान लक्ष्य रिसर्च स्कॉलरों—शोध-खोसके विद्वानोंको उनके कार्यमें सहायता पहुँचाना रहा है। ऐसे विद्वान कम हैं, इसलिये ग्रंथकी कुल ३०० प्रतियाँ ही छपाई गई हैं, कागजकी महँगाई और उसकी यथेष्ठ प्राप्तिका न होना भी प्रतियोंके कम छपानेमें एक कारण रहा है। ग्रन्थकी प्रस्तावनाको जो रूप प्राप्त हुआ है यदि पहलेसे वह रूप देना इष्ट होता तो ग्रन्थकी प्रतियां हजार भी छपाई जातीं तो वे अधिक न पड़ती, क्योंकि प्रस्तावना अब सभी साहित्य तथा इतिहासके प्रेमियोंकी रुचिका विषय बन गई है। परन्तु जो हुआ सो हो गया, उसकी चिन्ता अब व्यर्थ है। हाँ, प्रतियोंकी इस कमीके कारण ग्रन्थका जो भी मूल्य रक्खा गया है वह लागतसे बहुत कम है। पहले इस सजिल्द ग्रन्थका मूल्य १२) रु० रक्खा गया था और यह घोषणा की गई थी कि जो ग्राहक महाशय मूल्यके १२) रु० पेशगी भेज देंगे उन्हें उतनेमें ही ग्रन्थ घर बैठे पहुँचा दिया जायगा—पोष्टेज खर्च देना नहीं पड़ेगा। परन्तु इधर प्रस्तावना धारणासे अधिक बढ़ गई और उधर प्रस्तावनादिकी छपाईका चार्ज प्रायः दुगुना देना पड़ा। साथ ही कागजकी जो कमी पड़ी उसे अधिक दामोंमें कागज खरीदकर पूरा किया गया। इसलिये ग्रन्थका मूल्य अब तैयारी पर लागतसे कम १५) रु० रक्खा गया है, फिर भी जिन ग्राहकोंसे १२) रु० मूल्य पेशगी आचुका है उन्हें उसी मूल्यमें अपना पोष्टेज लगाकर ग्रंथ भेजा जायगा। शेषको पोष्टेजके अलावा १५) रु० में ही दिया जायगा और उनमें उन ग्राहकोंको प्रधानता दी जायगी जिनके नाम पहलेसे ग्राहकश्रेणीमें दर्ज हो चुके हैं।

अन्तमें मैं संस्थाकी ओरसे डा० ए० एन० उपाध्ये एम० ए० का उनके Introduction के लिये और डा० कालीदास नाग एम० ए० का उनके Foreword के लिये भारी आभार व्यक्त करता हुआ विराम लेता हूं।

जुगलकिशोर मुख़्तार
अधिष्ठाता 'वीरसेवामन्दिर'

धन्यवाद

इस ग्रन्थके निर्माण-कार्य और प्रकाशनमें श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजी जैन डालमियानगर (बिहार) और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमाराणीजी जैनका आर्थिक सहयोग रहा है। अतः इस सत्सहयोगके लिये आप दोनोंको हार्दिक धन्यवाद समर्पित है।

जुगलकिशोर मुख्तार

वाक्य-सूचीके आधारभूत मूल ग्रन्थ

——:0:——

ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थकार-नाम	प्रस्तावना-पृष्ठ (परिचयार्थ)
अंगपण्णत्ती (अंगप्रज्ञप्ति)	शुभचन्द्र (विजयकीर्त्ति-शिष्य)	११२
आइ(य)रियभत्ती (आचार्यभक्ति)	कुन्कुन्दाचार्य	१६
आयणाणतिलय(आयज्ञानतिलक)	भट्टवोसरि	१०१
आराहणासार (आराधनासार)	देवसेन	६१
आसवतिभंगी (आस्रवत्रिभंगी)	श्रुतमुनि	१११
कत्तिकेयअणुपेक्खा (कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा)	स्वामी कार्तिकेय (कुमार)	२२
कम्मपयडी (कर्मप्रकृति)	नेमिचन्द्र	६४
कल्लाणालोयणा (कल्याणालोचना)	ब्रह्मअजित	११२
कसायपाहुड (कषायप्राभत)	गुणधराचार्य	१६
गोम्मटसार-कम्मकंड (गोम्मट-कर्मकांड)	नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती	६८
गोम्मटसार-जीवकंड (गोम्मट-जीवकांड)	,, ,,	६८
चारित्तपाहुड (चारित्रप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१४
चारित्तभत्ती (चारित्रभक्ति)	,, ,,	१६
छक्खंडागम (षट्खंडागम)	पुष्पदन्त, भूतबलि	२०
छेदपिंड	इन्द्रनन्दियोगीन्द्र	१०५
छेदसत्थ (छेदशास्त्र)	×	१०६
जंबूदीवपण्णत्ती (जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति)	पद्मनन्दी	६४
जोगसार (योगसार)	योगीन्दुदेव	५८
जोगिभत्ती (योगिभक्ति)	कुन्दकुन्दाचार्य	१६
ढाढसीगाहा (ढाढसीगाथा)	×	१०४
णयचक्क(नयचक्र)	देवसेन	६१
णंदी(नन्दि)संघ-पट्टावली	×	११५
णाणसार (ज्ञानसार)	पद्मसिंहमुनि	६८
णियप्पाट्ठय (निजात्माष्टक)	योगीन्द्रदेव	५८
णियमसार (नियमसार)	कुन्दकुन्दाचार्य	१३
णिव्वाणभत्ती (निर्वाणभक्ति)	,,	१६
तच्चसार (तत्त्वसार)	देवसेन	६१
तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)	यतिवृषभाचार्य	२७
तिलोयसार (त्रिलोकसार)	नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती	६२
थोस्सामि थुदि (तीर्थङ्कर-स्तुति)	×	१७

ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थकार-नाम	प्रस्तावना-पृष्ठ (परिचयार्थ)
दव्वसहावपयास णयचक्क (द्रव्यस्वभावप्रकाश नयचक्र)	माइल्लधवल	६२
दव्वसंगह (द्रव्यसंग्रह)	नेमिचन्द्र	९२
दंसणपाहुड (दर्शनप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१३
दंसणसार (दर्शनसार)	देवसेन	५९
धम्मरसायण (धर्मरसायन)	पद्मनन्दिमुनि	६७
परमप्पयास (परमात्मप्रकाश)	योगीन्दुदेव	५७
परमागमसार	श्रुतमुनि	११२
पवयणसार (प्रवचनसार)	कुन्दकुन्दाचार्य	१२
पंचगुरुभत्ती (पञ्चगुरुभक्ति)	,,	१७
पंचत्थिपाहुड (पंचास्तिकाय)	,,	१२
पंचसंगह (पञ्चसंग्रह)	(अज्ञात पुरातनाचार्य)	६४
पाहुडदोहा (प्राभृतदोहा)	मुनिरामसिंह	११६
बारसअनुपेक्खा (द्वादशानुपेक्षा)	कुन्दकुन्दाचार्य	१३
बोधपाहुड (बोधप्राभृत)	,,	१४
भगवदी आराहणा (भगवती आराधना)	शिवार्य	२०
भावतिभंगी (भावत्रिभंगी)	श्रुतमुनि	११०
भावपाहुड (भावप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१४
भावसंगह (भावसंग्रह)	देवसेन	६१
मूलाचार	वट्टकेराचार्य	१८
मोक्खपाहुड (मोक्षप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१४
रयणसार (रत्नसार)	,,	१५
रिट्ठसमुच्चय (रिष्टसमुच्चय)	दुर्गदेव	६८
लद्धिसार (लब्धिसार)	नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती	६१
लिंगपाहुड (लिंगप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१५
वसुणंदि-सावयायार (वसुनन्दिश्रावकाचार)	वसुनन्दिसैद्धान्तिक	६६
समयपाहुड (समयसार)	कुन्दकुन्दाचार्य	१२
सम्मइसुत्त (सन्मतिसूत्र)	सिद्धसेनाचार्य	११९
सावयधम्मदोहा (श्रावकधर्मदोहा)	×	११६
सिद्धभत्ती (सिद्धभक्ति)	कुन्दकुन्दाचार्य	१६
सिद्धंतसार (सिद्धान्तसार)	जिनेन्द्राचार्य	११३
सीलपाहुड (शीलप्राभृत)	कुन्दकुन्दाचार्य	१५
सुत्तपाहुड (सूत्रप्राभृत)	,,	१४
सुदखंध (श्रुतस्कन्ध)	ब्रह्म-हेमचन्द्र	१०३
सुदभत्ती (श्रुतभक्ति)	कुन्दकुन्दाचार्य	१६
सुप्पहदोहा (सुप्रभदोहा)	सुप्रभाचार्य	११७

तृतीय परिशिष्टके आधारभूत टीकादि ग्रन्थ

ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थकार-नाम	ग्रन्थ-भाषा
अनगारधर्मामृत-टीका	पं० आशाधर	संस्कृत
आचारसार	वीरनन्दी	,,
आराधनासार-टीका	रत्नकीर्त्ति	,,
आलापपद्धति	देवसेन	,,
इष्टोपदेश-टीका	पं. आशाधर	,,
क्षपणासार-भाषाटीका	पं. टोडरमल्ल	हिन्दी
गोम्मटसार-कर्मकाण्ड-टीका (जीवतत्त्वप्रदीपिका)	नेमिचन्द्र (द्वितीय)	संस्कृत
गोम्मटसार-जीवकाण्ड-टीका (जीवतत्त्वप्रदीपिका)	नेमिचन्द्र (द्वितीय)	,,
गोमटसार-जीवकाण्ड-टीका (मन्दप्रबोधिका)	अभयचन्द्र	,,
चारित्रप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	,,
चारित्रसार	चामुण्डराय	,,
जम्बूस्वामिचरित	पं० राजमल्ल	संस्कृत
जयधवला (कषायप्राभृत-टीका)	वीरसेन, जिनसेन	संस्कृत-प्राकृत
तत्त्वार्थ-वार्त्तिक-भाष्य	अकलङ्कदेव	,,
तत्त्वार्थ-वृत्ति (श्रुतसागरी)	श्रुतसागर	,,
तत्त्वार्थ-वृत्ति-टिप्पण	प्रभाचन्द्र	,,
तत्त्वार्थ-श्लोकवार्त्तिक-भाष्य	विद्यानन्द	,,
दर्शनप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	,,
द्रव्यसंग्रह-टीका	ब्रह्मदेव	,,
द्रव्यस्वभावनयचक्र-टीका	(अज्ञात)	,,
धवला (षट्खण्डागम-टीका)	वीरसेनस्वामी	संस्कृत-प्राकृत
नियमसार-टीका (तात्पर्यवृत्ति)	पद्मप्रभ (मलधारी)	संस्कृत
न्यायकुमुदचन्द्र (लघीयस्त्रय-टीका)	प्रभाचन्द्र	,,
परमात्मप्रकाश-टीका	ब्रह्मदेव	,,
पंचाध्यायी	पं० राजमल्ल	,,
पंचास्तिकाय-तत्त्वप्रदीपिका-वृत्ति	अमृतचन्द्र	,,
पंचास्तिकाय-तात्पर्यवृत्ति	जयसेन	,,
प्रमेयकमलमार्त्तण्ड (परीक्षामुख-टीका)	प्रभाचन्द्र	,,

ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थकार नाम	ग्रन्थ-भाषा
प्रवचनसार-तत्त्वप्रदीपिका-वृत्ति	अमृतचन्द्र	संस्कृत
प्रवचनसार-तात्पर्यवृत्ति	जयसेन	,,
प्रायश्चित्त-चूलिका	श्रीनन्दिगुरु	,,
बोधप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	,,
भावप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	,,
मूलाराधना-दर्पण	पं० आशाधर	,,
मैथिलीकल्याण (नाटक)	हस्तिमल्ल	,,
मोक्षप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	,,
लब्धिसार-टीका	नेमिचन्द्र (द्वितीय)	,,
लाटीसंहिता	पं० राजमल्ल	,,
लोकविभाग	सिंहसूर	संस्कृत
विक्रान्त-कौरव (नाटक)	हस्तिमल्ल	,,
विजयोदया (भ० आराधना-टीका)	अपराजितसूरि	,,
समाधितन्त्र-टीका	प्रभाचन्द्र	,,
सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थवृत्ति)	पूज्यपाद	,,
सागारधर्मामृत-टीका	पं० आशाधर	,,
सिद्धान्तसार-टीका	ज्ञानभूषण	,,
सिद्धिविनिश्चय-टीका	अनन्तवीर्य	,,
सूत्रप्राभृत-टीका	श्रुतसागर	संस्कृत

ग्रन्थ-संकेत-सूची

——:o:——

संकेत	संकेतित ग्रन्थनाम	उपयुक्त ग्रन्थप्रति
अणि.	अणिओगद्दार (अनियोगद्वार)	षट्खण्डागम-सम्बन्धी
अन.टी.	अनगारधर्मामृत-टीका	माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला,
अंगप.	अंगपण्णत्ती(अंगप्रज्ञप्ति)	माणिकचन्द दि. जैन ग्रन्थमाला
आचार.सा.	आचारसार	सिद्धान्तसारादि-संग्रह, मा.ग्रन्थमाला
आ. प.	आराप्रति-पत्र	आरा जैनसिद्धान्तभवनकी लिखितप्रति
आ. भ.	आयरियभत्ती(आचार्यभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
आय.ति.	आयणाणतिलय(आयज्ञानतिलक)	हस्तलिखित, वीरसेवामन्दिर, सरसावा
आरा. टी.	आराधनासार-टीका	मणिकचन्द दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
आरा.सा.	आराधणासार	माणिकचन्द दि.जैनग्रन्थमाला, बम्बई
आलाप.	आलापपद्धति	सन्मतिसुमनमाला ओराण (गुजरात)
आस.ति.	आसवतिभंगी (आस्रवत्रिभंगी)	भावसंग्रहादि, माणिकचन्द ग्रन्थमाला
इष्टो.टी.	इष्टोपदेश-टीका	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
कत्ति.अणु.	कत्तिकेयअणुपेक्खा (स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा)	जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय, बम्बई
कम्मप.	कम्मपयडी (कर्मप्रकृति)	हस्तलिखित, वीरसेवामन्दिर, सरसावा
कल्लाण.	कल्लाणालोयणा (कल्याणलोचना)	सिद्धान्तसारादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
कसाय. / कषायपा.	कसायपाहुड (कषायप्राभृत)	हस्तलिखित, जैनसिद्धान्तभवन, आरा
गो. क.	गोम्मटसार-कर्मकांड	रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बई
गो.क.जी.	गोम्मटसार-कर्मकांड-जीवतत्वप्रदीपिका टीका	जैनसिध्दान्तप्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता
गो.जी.	गोम्मटसारजीवकांड	रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बई
गो.जी.जी.	गोम्मटसारजीवकांड-जीवतत्त्वप्रदीपिका	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी, कलकत्ता
गो.जी.म.	गोम्मटसारजीवकांड-मंदप्रबोधिका	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता

संकेत	संकेतित ग्रन्थनाम	उपयुक्त ग्रन्थप्रति
चरित्त.खं. चारित्तपा. चारि.पा.	चारित्तपाहुड (चारित्रप्राभृत)	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
चारित्तपा.टी.	चारित्तपाहुड-टीका	" " "
चारि.भ.	चारित्तभत्ती (चारित्रभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
चारित्रसा.	चारित्रसार	माणिकचन्द्र दि०जैनग्रन्थमाला, बम्बई
चूलि.	चूलिका	जयधवला-चूलिका, हस्तलि०आरा-प्रति
छेदपिं.	छेदपिंड	प्रायश्चित्तसंग्रह,माणिकचन्द्रजैन ग्रन्थमाला
छेदस.	छेदसत्थ(छेदशास्त्र)	" " " "
जयध.	जयधवला	हस्तलिखित, जैनसिद्धान्तभवन, आरा
जंबू.च.	जम्बूस्वामिचरित्र	माणिकचन्द्र दि०जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
जंबू. जंबू.प.	जंबूदीवपण्णत्ती(जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति)	हस्तलि०, पं० परमानन्द, वीरसेवामन्दिर
जोगसा.	जोगसार (योगसार)	रायचन्द्रजैन शास्त्रमाला, बम्बई
जोगिभ.	जोगिभत्ती (योगिभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
ढाढसी.	ढाढसीगाहा (गाथा)	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा. ग्रन्थमाला
णयच.	णयचक्क (नयचक्र)	माणिकचन्द्र दि.जैनग्रन्थमाला, बम्बई
णंदी.पट्टा.	णंदी (नन्दि) संघपट्टावली	जैनसिद्धान्तभास्कर, वर्ष१ किरण ३-४
णाणसा.	णाणसार (ज्ञानसार)	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
णियप्पा.	णियप्पाट्ठय (निजात्माष्टक)	सिद्धान्तसारादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
णियम. णियमसा.	णियमसार (नियमसार)	जैनग्रन्थरत्नाकरकर्यालय, हीराबाग, बम्बई
णियम.ता.वृ.	णियमसार-तात्पर्य-वृत्ति	" " "
णिव्वा.भ.	णिव्वाणभत्ती(निर्वाणभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
तच्चसा.	तच्चसार (तत्त्वसार)	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला
तत्त्वार्थवृ.टि.	तत्त्वार्थवृत्ति-टिप्पण	हस्तलिखित, वीरसेवामंदिर, सरसावा
तत्त्वार्थवा.	तत्त्वार्थवार्तिक	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता
तत्त्वार्थश्लो.	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक	गाँधी नाथारंगजैनग्रन्थमाला, बम्बई
तत्त्वा.वृ.श्रु.	तत्त्वार्थवृत्ति-श्रुतसागरी	हस्तलिखित, वीरसेवामंदिर, सरसावा
तित्थयर.	तित्थयरथुदी (तीर्थंकरस्तुति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
तिलो.प.	तिलोयपण्णत्ती(त्रिलोकप्रज्ञप्ति)	हस्तलिखित, मोती कटरा, आगरा
तिलो.सा.	तिलोयसार (त्रिलोकसार)	माणिकचन्द्र दि०जैनग्रन्थमाला, बम्बई

संकेत	संकेतित ग्रन्थनाम	उपयुक्तग्रन्थप्रति
थोस्सा.	थोस्सामि (स्तुति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
दव्वस.टी.	दव्वसहावणयचक्क-टीका	माणिकचन्द्र-ग्रन्थमाला, बम्बई
दव्वस.णय.	दव्वसहावणयचक्क	माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई
दव्वसं.	दव्वसंगह (द्रव्यसंग्रह)	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
दव्वसं.टी.	दव्वसंगह-टीका	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
दंसणपा.	दंसणपाहुड (दर्शनप्राभृत)	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. ग्रन्थमाला
दंसणपा.टी.	दंसणपाहुड-टीका	,, ,, ,,
दंसणसा.	दंसणसार (दर्शनसार)	जैनग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई
धम्मर.	धम्मरसायण(धर्मरसायन)	सिद्धान्तसारादिसंग्रह, मा० ग्रन्थमाला.
धवला.	धवला-टीका	हस्तलिखित, जैनसिद्धान्तभवन, आरा
न्यायकु.	न्यायकुमुदचन्द्र	माणिकचन्द्र दि०जैनग्रन्थमाला, बम्बई
पच्छिमखं.	पच्छिमखंध(पश्चिमस्कन्ध)	जयधवलन्तर्गत, हस्तलिखित, आराप्रति
परम.टी.	परमप्पयास-टीका	रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बई
प.प. / परम.प.	परमप्पयास(परमात्मप्रकाश)	रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बई
पवयण.तत्त्व.	पवयणसार-तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
पवयण.ता.वृ.	पवयणसार-तात्पर्यवृत्ति	,, ,, ,,
पवयणसा.	पवयणसार (प्रवचनसार)	,, ,, ,,
प्रमेयक.	प्रमेयकमलमार्त्तण्ड	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
पंचगु. भ.	पंचगुरुभत्ती (भक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
पंचत्थि.	पंचत्थिपाहुड (पंचास्तिकाय)	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
पंचत्थि.त.वृ.	पंचत्थिपाहुड-तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति	,, ,, ,,
पंचत्थि.ता.वृ.	पंचत्थिपाहुड-तात्पर्यवृत्ति	,, ,, ,,
पंचसं.	पंचसंगह (पंचसंग्रह)	हस्तलि., पं. परमानन्द शास्त्री,वीरसेवामंदिर
पंचाध्या.	पंचाध्यायी	पं. मक्खनलाल-कृत-भाषा टीका-सहित
पा. दो. / पाहु. दो.	पाहुडदोहा	अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रंथमाला, कारंजा
प्रा. चू.	प्रायश्चित्तचूलिका	प्रायश्चित्तसंग्रह, मा० दि. जैनग्रन्थमाला
बा. अणु.	बारसअणुपेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा० दि. जैनग्रन्थमाला
बोधपा.	बोधपाहुड (बोधप्राभृत)	,, ,, ,,
बोधपा.टी.	बोधपाहुड-टीका	,, ,, ,,
भ. आरा.	भगवदी आराह(ध)णा	श्रीदेवेन्द्रकीर्ति-दि. जैनग्रन्थमाला, कारंजा
भावति.	भावतिभंगी (भावत्रिभंगी)	भावसंग्रहादि. मा. दि. जैनग्रन्थमाला

भावपा.	भावपाहुड (भावप्राभृत)	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. दि. जैन ग्रन्थमाला
भावपा.टी.	भावपाहुड-टीका	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. दि. जैनग्रन्थमाला
भावसं.	भावसंगह (भावसंग्रह)	भावसंग्रहादि, मा. दि. जैन ग्रन्थमाला
मु. पृ.	मुद्रित पृष्ठ	× × ×
मूला.	मूलाचार	मुनि अनन्तकीर्ति दि. जैनग्रन्थमाला. बम्बई
मूला. द.	मूलाराधना-दर्पण	श्रीदेवेन्द्रकीर्ति दि० जैनग्रन्थमाला, कारंजा
मैथिली.	मैथिली-कल्याण-नाटक	माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
मोक्खपा.	मोक्खपाहुड (मोक्षप्राभृत)	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. दि. जैन ग्रन्थमाला
मोक्खपा.टी.	मोक्खपाहुडटीका	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. दि. जैन ग्रन्थमाला
रयण. / रयणसा.	रयणसार (रत्नसार	षट्प्राभृतादिसंग्रह, मा. दि. जैन ग्रन्थमाला
रिट्ठस.	रिट्ठसमुच्चय (रिष्टसमुच्चय)	हस्तलिखित, वीरसेवामंदिर, सरसावा
लद्धि. टी.	लद्धि (लब्धि) सारटीका	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था, कलकत्ता
लद्धि. सा.	लद्धिसार (लब्धिसार)	रायचन्द्र-जैनशास्त्रमाला, बम्बई
लाटी सं.	लाटी संहिता	माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
लिंगपा.	लिंगपाहुड (लिंगप्राभृत)	षट् प्राभृतादिसंग्रह, मा. दि. जैन ग्रन्थमाला
लो. वि.	लोकविभाग	हस्तलिखित, वीरसेवामंदिर, सरसावा
वसु. सा.	वसुनंदिसावयायार (श्रावकाचार)	जैन सिद्धान्त-प्रचारक-मण्डली, देवबन्द
वि. कौ.	विक्रान्तकौरव	माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
विजयो.	विजयोदया (भ. आराधना-टीका)	देवेन्द्रकीर्ति-दि. जैन ग्रन्थमाला, कारंजा
समय.	समयपाहुड (समयसार)	रायचन्द्र-जैनग्रन्थमाला, बम्बई
सम्मइ.	सम्मइसुत्त (सन्मतिसूत्र)	गुजरात-पुरातत्त्व-मन्दिर-ग्रन्थावली,
समाधि.टी.	समाधितंत्र-टीका	वीरसेवामंदिर-ग्रन्थमाला, सरसावा
स. सि.	सर्वार्थसिद्धि	सखारामनेमिचन्द्र जैनग्रन्थमाला, सोलापुर
सा. टी.	सागारधर्मामृत-टीका	माणिकचन्द्र दि. जैनग्रन्थमाला, बम्बई
सावयदो.	सावयधम्मदोहा	अम्बादास चवरे दि. जैनग्रंथमाला. कारंजा
सिद्धभ.	सिद्धभत्ती (सिद्धभक्ति)	दशभक्त्यादिसंग्रह, सोलापुर
सिद्धंतटी.	सिद्धंत(सिद्धांत)सार-टीका	सिद्धान्तसारादिसंग्रह, मा. ग्रन्थमाला
सिद्धंत. / सिद्धंत सा.	सिद्धंतसार (सिद्धान्तसार)	सिद्धान्तसारादि संग्रह. ,, ,,
सिद्धिवि.टी.	सिद्धिविनिश्चय-टीका	हस्तलिखित, वीरसेवामंदिर, सरसावा
सीलपा.	सीलपाहुड (शीलप्राभृत)	षट् प्राभृतादिसंग्रह, मा. ग्रंथमाला
सुत्तपा.	सुत्तपाहुड (सूत्रप्राभृत)	षट् प्राभृतादि संग्रह, ,, ,,
सुत्तपा.टी.	सुत्तपाहुड-टीका	षट् प्राभृतादि संग्रह, ,, ,,
सुदखं.	सुदखंध (श्रुतस्कन्ध)	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, मा. ग्रन्थमाला
सुदभ.	सुदभत्ती (श्रुतभक्ति)	दशभक्त्यादि संग्रह, सोलापुर
सुदभ.टी.	सुदभत्ति(श्रुतभक्ति) टीका	,, ,, ,,
सुप्प. दो.	सुप्पभाइरिय(सुप्रभाचार्य)दोहा	हस्तलिखित, वीरसेवामंदिर, सरसावा

पुरातन-जैनवाक्य-सूची

की

प्रस्तावना

प्राक्कथन (FOREWORD) और भूमिका

(INTRODUCTION) आदिसे युक्त ।

FOREWORD

[*By* **Dr. Kalidas Nag, M.A. (Cal.) D. Litt. (Paris), Calcutta University, Former General Secretary, Royal Asiatic Society of Bengal.**]

Shri Jugal Kishore Mukhtar is not merely a scholar, but an institution. Sacrificing a profitable legal career, he decided to dedicate his life to the cause of study and research into the history, literature and philosophy of Jainism. Out of his humble savings and personal property, he created the *Vir Sewa Mandir Trust* of Rs. 51,000/- which is now valued over Rs. 100,000/-. But, much more than any financial aid to the cause, was his life-long contribution to the unfolding of the cultural heritage of Jainism, which is as important to the Jains as to the Indians in general. A devoted soul, that he is, he wrote on **Swami Samantabhadra, Grantha-Parikshas, Jina-Pujadhikara-Mimansa, Jainacharyon-ka-Shasanabheda, Vivaha-Samuddeshya, Vivaha-Kshetra-Prakasha, Upasana-Tattva, Siddhi-Sopan** etc., as well as some spiritual poems in Hindi. He is an accomplished scholar in *Sanskrit, Prakrit* and other languages of Hinduism and Buddhism. His knowledge of Jain *Prakrit* and *Apabhransh*, both in published texts and unpublished manuscripts, is almost unrivalled. In fact he is a "living encyclopaedea" of Jain culture.

Through his intensive research and careful analysis, he has made several dark corners of Jain history and culture clear to us today. As early as 1934, I had the pleasure of reading a historical essay on **"Bhagwan Mahavir aur unka Samaya"**. He was the first to point out the precise date of the first Sermon of **Lord Mahavir** at Rajagriha ; and according to his calculation, that event was solemnly celebrated in 1944 at Rajagriha and at Calcutta where the first All India Jain Congress was convened on the occasion of the 2500th anniversary of the Sermon. His researches were brought to bear on the solution of many complicated problems relating to the works of eminent Jain Acharyas like **Kundakunda, Uma-Swami, Samantabhadra, Siddha-Sena, Yativrishabha, Patrakesari, Akalanka, Vidyananda, Prabhachandra, Rajamalla, Nemichandra,** and others.

From the Vir Sewa Mandir many big monographs have been published, while his own articles, notes etc., would be over 1000. He visited the Arrah Jain Siddhant Bhawan and many other important Jain Bhandara-Libraries, giving us valuable information through the Jain periodicals, like *the Jain Gazette, the Jain Hiteshi* and the *Anekant* with which he is intimately connected.

The crowning glory of his scholarly career will be the publication of a comprehensive lexicon of Jain technical terms named **Jain-Lakshanavali** in which he has thoroughly analysed over 200 Digambar and another 200 Swetambar "*classics*", and arranged the terms alphabetically; so that it would be a most convenient reference book for all scholars.

The present prakrit Dictionary **Puratana Jain-Vakya-Suchi** based on 64 standard works of the Digambar Jains in *Prakrit* and *Apabhransh*, is now presented to the public, the Hindi Introduction of which is full of his valuable researches in Jain History, Literature and Philosophy. So I recommend the **Puratana Jain-Vakya-Suchi** and other works mentioned above to the scholars and libraries of India and to the Indological Departments of the big foreign Universities, interested in Indian religion and philosophy.

The gratitude of the nation, specially of the Jains in India, is offered herewith to the illustrious scholar **Jugal Kishoreji,** whom we wish many more years of creative activities in the propagation of '*Ahimsa*', the only sovereign remedy of our world malady. In a recent note published by him in his *Anekant*, he has strongly supported the plan of establishing the **Ahimsa Mandir** in the capital of Free India. May that dream be realized soon in this crisis of human history and civilisation.

Post Graduate Dept.
CALCUTTA UNIVERSITY,
17 February 1950

KALIDAS NAG

INTRODUCTION

The contribution of Jaina authors, both monks and lay-men, to the heritage of Indian literature and to the wealth of intellectual life in ancient India, are varied and valuable. All along the Jainas have been a peace-loving community, and naturally they nurtured tastes and tendencies favourable for developing arts and literature, the concrete expressions of which are seen in their magnificent temples and monumental literary compositions.

According to Jainism, greater prestige is attached to the ascetic institution; and the ascetics form an integral part of the Jaina social organisation which is made up of monks, nuns, lay-men and lay-women. Monks and nuns have no worldly ties and responsibilities; they persue their aim of liberation or *mukti* through spiritual means; they not only practise religion but also preach the same to all those who want to follow the path of religion. Lay-men and lay-women are expected to carry out their worldly duties successfully without violating the ideaology of religion; and it is a part of their religious duty to maintain the monks and nuns without any special invitation to them. Thus the formation of the social structure is well conceived and properly sustained.

The members of the ascetic institution, naturally and necessarily, devoted major portion of their time to the study of Jaina scriptures and composition of fresh treatises for the benefit of suffering humanity. Thus generations of Jaina monks have enriched, according to their training, temperament and taste, various branches of Indian literature. The munificence of the wealthy section of the community and the royal patronage have uniformly encouraged both monks and lay-men in their literary pursuits in different parts of India, at least for the last two thousand years or so. The importance of scriptural knowledge in attaining liberation and the emphasis laid on *sastra-dana* have enkindled an inborn zeal in the Jaina community for the preservation and composition of literary works, both religious and secular, the latter too, very often, serving some religious purpose directly or indirectly. The richness and variety of Jaina contributions to Indian literature can be partly seen from works like the Jaina Granthavali (Bombay 1909) and the Jinaratnakosa Vol. I, (Poona 1944). The latter is an alphabetical register of Jaina works (mainly Sanskrit and Prakrit) and authors; and, thanks to the indefatiguable labours of Prof. H. D. Velankar, it is sure to prove a land-mark in the progress of the study of Jaina literature.

The study of Jaina literature has a special importance in reconstructing the history of Indian literature. Chronology is the back-bone of literary history; and in this respect, Indian literature, generally speaking, lacks in definite datas of authors and their works. The Jaina author is almost always an exception to the rule. If he is a monk, he specifies his ascetic congregation and mentions his predecessors and teachers; if he is a lay-man, he would give some personal detail and refer to his patron and teacher; and in most cases the date and place of composition are mentioned. I may note here one such case, by way of illustration, so kindly supplied to me by Acharya Jinavijayaji, Bombay. According to a verse from an old and broken palm-leaf Ms. of the Visesavasyaka-bhasya in the Jaisalmer Bhandara, Jinabhadra Ksmasramana composed [the word is broken] that work in the temple of Jina at Valabhi when the great

king Siladitya was ruling on Wednesday, Svati Naksatra, Caitra Paurnima, the current Saka year being 531. Such and other chronological details, which are lately coming to light, will require us to state with reservations the famous remark of Whitney that all dates given in Indian literary history are pins set up to be bowled down again. Further, the zeal of Sastradana has so much permeated the hearts of pious Jainas that they took special interest in getting the Mss. of books prepared and distributed among the worthy. A typical case I may note here, and it gives a great lesson to us who never issue, even today, an edition of more than one thousand copies of any Jaina scripture A pious lady, Attimabbe by name, fearing that the Kannada Santipurana of Ponna (c. 933 A. D.) would be lost altogether had a thousand copies of it made and distributed. This zeal of preservation and propagation of literature has assumed a concrete form in the establishment of Sruta-bhandaras: those at Pattan Jaisalmer, Moodbidri, Karanja, Jaipur etc. can be looked upon as a part of our national wealth. As distinguished from the *prasastis* of authors, we get those of pious donors of Mss. at the end of many of them; and they are full of historical details which are useful not only for reconstructing the history of Jaina society in particular but also of Indian society in general.

The early literature, of Jainism is in Prakrit But the Jaina authors never attached a slavish sanctity to any particular language. Preaching of religious principles in an instructive and entertaining form was their chief aim; and language, just a means to this noble end. According to localities and the spirit of the age the Jaina authors adopted various languages and wrote their works in them. The result has been unique; they enriched various branches of literature in Prakrits, Sanskrit, Apabhramsa Old-Rajasthani, Old-Hindi, Old-Gujarati, Tamil, Kannada etc. In every language their achievements are worthy of special attention. The credit of inaugurating an Augustan age in Apabhramsa, Tamil and Kannada unquestinably goes to Jaina authors; and it is impossible to reconstruct the evolution of Rajasthani, Gujarati and Hindi by ignoring the rich philological material found in Jaina works, the Mss. of which bearing different dates, are available in plenty. Their achievements are equally great in Sanskrit literature; and their value is being lately assessed by research scholars. The Jaina works in different languages often show mutual relation; and their comparative study is likely to give chronological clues and socio-historical facts.

When we take up the original and authoritative treatises dealing with Indian literature, as a whole, in different languages, we find that full justice is not done to Jaina works coomensurate with their merits and magnitude. There, are some notable exceptions like A History of Indian Literature, Vol. II, (Calcutta 1933) by M. Winternitz, Karnataka Kavicharite, Vols. I-III (Bangalore 1924 etc.), etc. The reasons of this neglect are many. We should neither blame nor attribute motives to the historian of literative, because his chief aim is to collect systematically the results of upto-date researches carried on in the literature of which he is writing a connected account. The orthodoxy of Jainas did not open the Ms. libraries to early European scholars who led the front of research in Indian literature; the Jaina works were perhaps the last to fall in their hands; the Prakrits and Dravidian languages attracted few scholars; naturally the work that was done by them was limited; and the Jaina literature

presented peculier difficulties owing to the variety of languages and scripts in which it was preserved. The contents of Jaina works had their technicalities which demanded patient study. There have been very few scholars who could claim first-hand acquaintance with the entire range of Jaina literature. Thus sufficient researches, with proper perspective, have not been carried in Jaina literature, so that proper place might be assigned to Jaina works in the scheme of Indian literature. After extensive researches are carried on, the future historians of Indian literature will have to take their results into account, if they want to make their treatises thorough and authoritative.

The first requisite of literary research is to bring out critical editions of various works, based on a sufficient number of Mss. plenty of which are available in different scripts and from various localities. Many Jaina texts are printed quite neatly; they supply the needs of a pious reader who is concerned more with contents, and that too in a spirit of devotion and faith, than with any thing else; but for the purpose of scientific studies they are as good as printed Mss., perhaps less authentic than a good Ms. Critical editions, if not already accompanied by, must be followed by critical studies of Individual works discussing their textual problems, language and contents and topics arising from them, authorship, date, their indebtedness to earlier works, their influence on subsequent literature, higher values represented by them, etc. The aspects of study depend on the nature of individual works. When such monographs are written with critical thoroughness and scientific precision. the task of the historian becomes easy when he begins to take a survey of literature. Such monographic studies are a stepping stone to higher criticism in literature. So far as Jaina literature is concerned, there is an immense scope and fruitful field for critical editions and studies; but it is a deplorable fact that there is a paucity of earnest, trained workers of scholarly outlook, mainly devoted to Jains literature.

Excepting a few cases, the research that has been carried on in Jaina literature is sporadic, and the results mostly accidental If accident is to be eliminated, or at least the degree of it to be lowered, the research scholar must have a full control over the known material with which he has to deal. In order to exercise this control, various facilities and instruments of research must be at his beck and call. An upto-date library of published works and journals is a need the value of which cannot be exaggerated. Among the important instruments may be included Descriptive Catalogues of Mss., Bibliographies of various types, Indices of verses, words and proper names etc., by themselves they may appear quite prosaic, but without their aid no research can progress.

Every historian of literature must have a clear conception of the relative chronology of the literature which he is handling. Wrong chronology leads to perverted results. Relative chronology can be ascrteained from various facts: references to earlier and by later authors and works; refutations of earlier views of established authorship; the nature of language and contents; quotations from earlier works; etc. It is customary with our authors that they often quote verses of earlier authors either to confirm their own views or to refute those of others. At times the names of authors and works too are mentioned. If such quotations are genuine and their sources can be traced

they are useful aids in settling the relatives ages of different authors. It is by tracing these quotations we are often able to put broad but definite limits to the periods of many of our authors. A scholar cannot be expected to commit the verses of all the known works to memory and thus be able to spot and trace the quotations: at times his memory may come to his resque, but that is an accident. He must be helped by indices of verses. If he once collects the quotations and arranges them alphabetically, such indices will give him great help in tracing their sources, they will not only save his time but also increase the speed of his work and guarantee a security to his results.

Pt. Jugalkishore Mukhtar is wellknown to students of Indian literature. For the last few decades he has devoted all his time and energies to researches in Jaina literature; and the results of his studies have an abiding value. His monograph on Samantabhadra is a model essay containing valuable information; the Anekanta edited by him occupies a prominent place among the Hindi journals devoted to research; and the Virasevamandira founded by him inspires such universal and humanitarian principles that any nation would be proud of it. His austere habits, intellectual acumen, earnest outlook on life, uncurbed zeal for weighing the evidence and arriving at the Truth and steady perseverence have made him a great research scholar, an ornament for the intellectual society. It is but natural that, in course of his studies, he would realize the importance and feel the need of various instruments of research like the present work for which students of Indian literature in general and cf Jaina literature in particular will feel much obliged to him.

The present volume, Puratana-Jaina-vakya-suci, Part I, or Digambara Jaina Prakrta-padyanukramanika is as its name indicates, an alphabetical Index of verses from Digambara Jaina works in Prakrit. This part includes verses from some three scores of works, in Prakrit and Apabhramsa, composed or compiled by authoritative authors who flourished during the last two thousand years. The works of Sivarya, Vattakera, Kundakunda and Jadivasaha etc. form the Pro-Canon ot the Jainas, and they occupy an important position in Jaina literature. Most of them can be assigned to the early centuries of Christian era, and the matter contained therein might be even of still earlier age. Verses from them are often quoted, and such an Index was an urgent desideratum. A compilation like this has a very little human interest and readable matter; but it has to be remembered that its utility is very great, end it has cost patient and careful labour of months together, it not years. The editors and publishers have so much obliged the researchers in Jaina literature that words are perhaps inadequate to express their sense of gratitude.

In conclusion, I heartily thank my revered friend Pt. Jugalkishoreji for giving me thus opportunity to associate myself with this useful publication which, no doubt, would be used as an instrument of research of superlative importance by all those scholars who are working *in the fields of Prakrit and* Jaina literature.

Kolhapur,
25th May 1945

A. N. UPADHYE.

प्रस्तावना

१. ग्रन्थकी योजना और उसकी उपयोगिता

साहित्यिक और ऐतिहासिक अनुसन्धान अथवा शोध-खोज-विषयक कार्योंके लिये जिन सूचियों या टेबिल्स (Tables) की पहले जरूरत पड़ती है उनमें ग्रन्थोंकी अकारादिक्रमसे वाक्य-सूचियाँ—पद्यानुक्रमणियाँ (श्लोकाऽनुक्रमणिकाएँ)—अपना प्रधान स्थान रखती हैं। इनके विना ऐसे रिसर्च-स्कॉलरका काम प्रगति ही नहीं कर सकता। इसीसे अक्सर रिसर्च-स्कॉलरोंको ये सूचियाँ अपनी अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं अपने हाथसे तय्यार करनी होती हैं और ऐसा करनेमें शक्ति तथा समयका बहुत कुछ व्यय करना पड़ता है; क्योंकि हस्तलिखित ग्रन्थोंमें तो ये सूचियाँ होती ही नहीं और मुद्रित ग्रंथोंमें भी इनका प्रायः अभाव रहा है—कुछ कुछ ऐसे ग्रन्थोंके साथ ही वे हालमें लग पाई हैं जिनके सम्पादन तथा प्रकाशनके साथ ऐसे रिसर्चस्कॉलरोंका यथेष्ट सम्पर्क रहा है जो इन सूचियोंकी उपयोगिताको भले प्रकार महसूस करते हैं। चुनाँचे जैनसाहित्य और इतिहासके क्षेत्रमें जब मैंने क़दम रक्खा तो मुझे पद-पदपर इन सूचियोंका अभाव खटकने लगा—किसी ग्रन्थमें उद्धृत, सम्मिलित अथवा 'उक्तं च' आदि रूपसे प्रयुक्त अनेक पद्योंके मूलस्रोतकी खोजमें कभी कभी मेरे घंटे ही नहीं, किन्तु दिन तथा सप्ताह तक समाप्त हो जाते थे और बड़ी परेशानी उठानी पड़ती थी, अतः अपने उपयोगके लिये मैंने जीवनमें पचासों संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोंकी ऐसी वाक्य-सूचियाँ स्वयं तय्यार कीं तथा कराई हैं। और जब मुझे निर्णयसागरादि-द्वारा प्रकाशित किसी किसी ग्रन्थके साथ ऐसी पद्यानुक्रमणी लगी हुई मिलती थी तो उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी। कितने ही ग्रन्थोंमें मैंने स्वयं प्रेरणा करके पद्यसूचियाँ लगवाई हैं। अनगारधर्मामृत ग्रन्थ मेरे पास बाइंडिंग होकर आगया था, जब मैंने देखा कि उसमें मूलग्रंथकी तथा टीकामें आए हुए 'उक्तं च' आदि वाक्योंकी कोई भी अनुक्रमणी नहीं लगी है तब इस त्रुटिकी ओर सुहृद्वर पं० नाथूरामजीका ध्यान आकर्षित किया गया, उन्होंने मेरी बातको मान लिया और ग्रंथके बाइंडिगको रुकवाकर पद्यानुक्रमणिकाओंको तय्यार कराया तथा छपवाकर उन्हें ग्रंथके साथ लगाया। इन वाक्यसूचियोंके तैयार करने-करानेमें जहाँ परिश्रम और द्रव्य खर्च होता है वहाँ इन्हें छपाकर साथमें लगानेसे ग्रंथकी लागत भी बढ़ जाती है, इसीसे ये अक्सर उपेक्षाका विषय बन जाती हैं और यही वजह है कि आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, यशस्तिलकचम्पू और श्लोकवार्तिक जैसे बड़े बड़े ग्रंथ विना पद्यसूचियोंके ही प्रकाशित हो गए हैं, जो ठीक नहीं हुआ। इन ग्रंथोंके सैंकड़ों-हजारों पद्य दूसरे ग्रंथोंमें पाए जाते हैं और ऐसे ग्रंथोंमें भी पाये जाते हैं जिन्हें पूर्वाचार्योंके नामपर निर्मित किया गया है और जिनका कितना ही पता मुझे ग्रंथपरीक्षाओं[1] के समय लगा है। यदि ये ग्रन्थ पद्यानुक्रमणियोंको साथमें लिये हुए होते तो इनसे अनुसंधानकार्यमें बड़ी सहायता मिलती। अस्तु।

---

१ ये ग्रन्थपरीक्षाएँ चार भागोंमें प्रकाशित होचुकी हैं, जिनमें क्रमशः (१) उमास्वामि-श्रावकाचार, कुन्दकुन्द-श्रावकाचार, जिनसेन-त्रिवर्णाचार; (२) भद्रबाहु-संहिता; (३) सोमसेन-त्रिवर्णाचार, धर्मपरीक्षा (श्वेताम्बरी) अकलंक-प्रतिष्ठापाठ, पूज्यपाद-उपासकाचार; और (३) सूर्यप्रकाश नामक ग्रन्थोंकी परीक्षाएँ हैं। उमास्वामि-श्रावकाचार-परीक्षाका अलग संस्करण भी परीक्षा-लेखोंके इतिहास-सहित प्रकाशित हो गया है।

कुछ वर्ष हुए जब मैंने धवल और जयधवल नामक सिद्धान्त-ग्रंथोंपरसे उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये एक हजार पेजके करीब नोट्स लिये थे। इन नोटोंमें 'उक्तं च' आदि रूपसे आए हुए सैंकड़ों पद्य ऐसे संगृहीत हैं जिनके स्थलादिका उक्त सिद्धान्त-ग्रंथोंमें कोई पता नहीं है और इसलिये 'धवलादिश्रुतपरिचय' नामसे इन ग्रंथोंका परिचय निकालने का विचार करते हुए मेरे हृदयमें यह बात उत्पन्न हुई कि इन 'उक्तं च' आदि रूपसे उद्धृत वाक्योंके विषयमें, जो नोटके समयसे ही मेरी जिज्ञासाका विषय बने हुए हैं, यह खोज होनी चाहिये कि वे किस किस ग्रंथ अथवा आचार्यके वाक्य हैं। दोनों ग्रंथोंमें कुछ वाक्य 'तिलोय-पण्णत्ती' के स्पष्ट नामोल्लेखके साथ भी उद्धृत हैं और इससे यह ख़याल पैदा हुआ कि इस महान् ग्रंथके और भी वाक्य बिना नामके ही इन ग्रंथोंमें उद्धृत होने चाहियें, जिनका पता लगाया जावे। पता लगानेके लिये इससे अच्छा दूसरा कोई साधन नहीं था कि 'तिलोय-पण्णत्ती' के वाक्योंकी पहले अकारादि क्रमसे अनुक्रमणिका तैयार कराई जाय; क्योंकि वह आठ हजार श्लोक-जितना एक बड़ा ग्रंथ है, उसकी हस्तलिखित प्रतियोंपरसे किसी वाक्य-विशेषका पता लगाना आसान काम नहीं है। तदनुसार बनारसके स्याद्वादमहाविद्यालयसे तिलोयपण्णत्तीकी प्रति मँगाई गई और उसके गाथा-वाक्योंको कार्डोंपर नोट करनेके लिये पं० ताराचन्दजी न्यायतीर्थकी योजना की गई। परन्तु बनारसकी यह प्रति बेहद अशुद्ध थी और इसलिये इसपरसे एक कामचलाऊ पद्यानुक्रमणिकाको ठीक करनेमें मुझे बहुत ही परिश्रम उठाना पड़ा है। दूसरी प्रति देहली धर्मपुराके नये मन्दिरसे बा० पन्नालालजीकी मार्फत और तीसरी प्रति बा० कपूरचन्दजीकी मार्फत आगराके मोतीकटराके मन्दिरसे मँगाई गई। ये दोनों प्रतियाँ उत्तरोत्तर बहुत कुछ शुद्ध रहीं और इस तरह तिलोयपण्णत्तीकी एक अनुक्रमणिका जैसे तैसे ठीक होगई और उससे धवलादिके कितने ही पद्योंका नया पता भी चला है। इसके बाद और भी कुछ ग्रंथोंकी नई अनुक्रमणिकाएँ वीरसेवामन्दिरमें तैयार कराई गई हैं। और ये सब सूचियाँ अनुसन्धानकार्योंमें अपने बहुत काम आती रही हैं।

अपने पासकी इन सब पद्यानुक्रम-सूचियोंका पता पाकर कितने ही दूसरे विद्वान भी इनसे यथावश्यकता लाभ उठाते रहे हैं—अपने कुछ पद्योंको भेजकर यह मालूम करते रहे हैं कि क्या उनमेंसे किसी पद्यका इन अनुक्रमसूचियोंसे यह पता चलता है कि वह अमुक ग्रंथका पद्य है अथवा अमुक ग्रंथमें भी पाया जाता है। इन विद्वानोंमें प्रोफेसर ए० एन० उपाध्येजी एम० ए० कोल्हापुर, प्रो० हीरालालजी एम० ए० अमरावती, पं० नाथूरामजी प्रेमी बम्बई, और पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं। कुछ विद्वानोंने तो इन वाक्यसूचियोंमेंसे कईकी स्वयं कापियां भी की हैं तथा कराई हैं।

पुरातनवाक्यसूचियोंकी उपयोगिता और विद्वानोंके लिये उनकी जरूरतको अनुभव करते हुए यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन्हें प्राकृत और संस्कृतके दो विभागोंमें विभाजित करके यथाक्रम वीरसेवामन्दिरसे ही प्रकाशित कर देना चाहिये, जिससे सभी विद्वान इनसे यथेष्ट लाभ उठा सकें। तदनुसार पहले प्राकृत-विभागको निकालनेका विचार स्थिर हुआ। इस विभागमें यदि अलग अलग ग्रंथक्रमसे ही प्रस्तुत संग्रह कर दिया जाता तो यह कभीका प्रकाशित होजाता; क्योंकि उस समय जो सूचियाँ तैयार थीं उन्हें ही ग्रंथक्रम डालकर प्रेसमें दे दिया जाता। परन्तु साथमें यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि जिन ग्रंथोंके वाक्योंका संग्रह करना है उनका ग्रंथवार अनुक्रम न रखकर सबके वाक्योंका अकारादि-क्रमसे एक ही जनरल अनुक्रम तैयार किया जाय, जिससे विद्वानोंकी शक्ति और समयका यथेष्ट संरक्षण हो सके; क्योंकि अक्सर ऐसा देखनेमें आया है कि किसी भी एक वाक्यके अनुसंधानके लिये पचासों ग्रंथोंकी वाक्यसूचियोंको निकालकर टटोलने अथवा उनके पन्ने पलटनेमें बहुत कुछ समय तथा शक्तिका व्यय हो जाता है और कभी कभी तो चित्त अकुला जाता है; जनरल अनुक्रममें

ऐसा नहीं होता—उसमें क्रमप्राप्त एक ही स्थानपर दृष्टि डालनेसे उस वाक्यके अस्तित्वका शीघ्र पता चल जाता है। चुनाँचे इस विषयमें डा० ए० एन० उपाध्येजीसे परामर्श किया गया तो उनकी भी यही राय हुई कि सब ग्रंथोंके वाक्योंका एक ही जनरल अनुक्रम रक्खा जाय, इससे वर्तमान तथा भविष्यकालीन सभी विद्वानोंकी शक्ति एवं समयकी बहुत बड़ी बचत होगी और अनुसंधान-कार्यको प्रगति मिलेगी। अन्तको यह निश्चय हो गया कि सब वाक्योंका (अकारादि क्रमसे) एक ही जनरल अनुक्रम रक्खा जाय। इस निश्चयके अनुसार प्रस्तुत कार्यके लिये अपने पासकी पद्यानुक्रमसूचियोंका अब केवल इतना ही उपयोग रह गया कि उनपरसे कार्डों पर अक्षरक्रमानुसार वाक्य लिख लिये जाएँ। साथ ही प्रत्येक वाक्यके साथ ग्रंथका नाम जोड़नेकी बात बढ़ गई। और इस तरह वाक्यसूचीका नये सिरेसे निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ तथा प्रकाशनकार्य एक लम्बे समयके लिये टल गया।

सूचीके इस नव-निर्माणकार्यमें वीरसेवामन्दिरके अनेक विद्वानोंने भाग लिया है—जो जो विद्वान नये आते रहे उनकी अक्सर योजना कार्डोंपर वाक्योंके लिखनेमें होती रही। कार्डोंपर अनुक्रम देने अथवा अनुक्रमको जाँचनेका काम प्रायः मुझे ही स्वयं करना होता था, फिर अनुक्रमवार साफ कापी की जाती थी। इस बीचमें कुछ नये प्राप्त पुरातनग्रंथों के वाक्य भी सूचीमें यथास्थान शामिल होते रहे हैं। कार्डीकरण और कार्डोंपरसे अनुक्रमवार कापीका अधिकांश कार्य पं० ताराचन्दजी दर्शनशास्त्री, पं० शंकरलालजी न्यायतीर्थ तथा पं० परमानन्दजी शास्त्रीने किया है। और इस काममें कितना ही समय निकल गया है।

साफ कापीके पूरा होजानेपर जब ग्रंथको प्रेसमें देनेके लिये उसकी जाँचका समय आया तो यह मालूम हुआ कि ग्रंथमें कितने ही वाक्य सूची करनेसे छूट गये हैं और बहुतसे वाक्य अशुद्धरूपमें संगृहीत हुए हैं, जिनमेंसे कितने ही मुद्रित प्रतियोंमें अशुद्ध छपे हैं और बहुतसे हस्तलिखित प्रतियोंमें अशुद्ध पाये जाते हैं। अतः ग्रन्थोंको आदिसे अन्त तक वाक्यसूचीके साथ मिलाकर छूटे हुए वाक्योंकी पूर्ति की गई और जो वाक्य अशुद्ध जान पड़े उन्हें ग्रंथके पूर्वापर सम्बन्ध, प्राचीन ग्रन्थोंपरसे विषयके अनुसंधान, विषयकी संगति तथा कोष-व्याकरणादिकी सहायताके आधारपर शुद्ध करनेका भरसक प्रयत्न किया गया, जिससे यह ग्रंथ अधिकसे अधिक प्रामाणिक रूपमें जनताके सामने आए और अपने लक्ष्य तथा उद्देश्यको ठीक तौरपर पूरा करनेमें समर्थ हो सके। इतनेपर भी जहाँ कहीं कुछ सन्देह रहा है वहाँ ब्रेकटमें प्रश्नाङ्क (?) दे दिया गया है। जाँचके इस कार्यने भी, जिसमें पद्योंके क्रम-परिवर्तनको भी अवसर मिला, काफी समय ले लिया और इसमें भारी परिश्रम उठाना पड़ा है। इस कार्यमें न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया और पं० परमानन्दजी शास्त्रीका मेरे साथ खास सहयोग रहा है। साथ ही, मूलपरसे संशोधनमें पं० दीपचन्दजी पांड्या केकड़ी (अजमेर) ने भी कुछ भाग लिया है।

यहाँ प्रसंगानुसार मैं दस पाँच मुद्रित और हस्तलिखित ग्रंथोंकी अशुद्धियोंके कुछ ऐसे नमूने दे देना चाहता था जिन्हें इस वाक्यसूचीमें शुद्ध करके रक्खा गया है, जिससे पाठकोंको सूचीके जाँचकार्यकी महत्ता, संशोधनकी सूक्ष्मता (बारीकी) और ग्रंथको यथाशक्ति अधिकसे अधिक प्रामाणिकरूपमें प्रस्तुत करनेके लिये किये गए परिश्रमकी गुरुताका कुछ आभास मिल जाता; परन्तु इससे एक तो प्रस्तावनाका कलेवर अनावश्यकरूपमें बढ़ जाता; दूसरे, जिन प्रकाशकोंके ग्रंथोंकी त्रुटियोंको दिखलाया जाता उन्हें वह कुछ बुरा लगता—उनकी कृतियोंकी आलोचना करना अपनी प्रस्तावनाका विषय नहीं है; तीसरे, जो अध्ययनशील अनुभवी विद्वान् हैं वे मुद्रित-अमुद्रित ग्रंथोंकी कितनी ही त्रुटियोंको पहलेसे जान रहे हैं और जिन्हें नहीं जान रहे हैं उन्हें वे इस ग्रंथपरसे तुलना करके सहजमें ही जान लेंगे, यही सब सोचकर यहाँपर उक्त इच्छाका संवरण किया जाता है।

हाँ एक बातकी सूचना कर देनी यहाँ आवश्यक है और वह यह कि जिन वाक्योंके कुछ अक्षरोंको गोल ब्रेकट ( ) के भीतर रक्खा गया है वे या तो दूसरी ग्रंथप्रतिमें उपलब्ध होनेवाले पाठान्तरके सूचक हैं अथवा अशुद्ध पाठके स्थानमें अपनी ओरसे कल्पित करके रक्खे गये हैं—पाठान्तरके सूचक प्रायः उन्हें ही समझना चाहिये जिनके पूर्वमें पाठ प्रायः शुद्ध हैं। और जिन अक्षरोंको बड़ी ब्रेकट [ ] में दिया गया है वे वाक्योंके त्रुटित अंश हैं, जिन्हें ग्रंथ-संगतिके अनुसार अपनी ओरसे पूरा करके रक्खा गया है।

जाँच और संशोधनका यह गहनकार्य बहुत कुछ सावधानीसे किया जानेपर भी कुछ वाक्य सूचीसे छूट गये और कुछ प्रेसकी असावधानी तथा दृष्टिदोषके कारण संशोधित होनेसे रह गये और इस तरह अशुद्ध छप गये। जो वाक्य अशुद्ध छप गये उनके लिये एक 'शुद्धिपत्र' ग्रंथके अन्तमें लगा दिया गया है और जो वाक्य छूट गये उनकी पूर्ति परिशिष्ट नं० १ द्वारा की गई है। इस परिशिष्टमें अधिकांश वाक्य पंचसंग्रह और जंबूदीवपण्णत्तीके हैं, जो बादको आमेर (जयपुर) की प्राचीन प्रतियोंपरसे उपलब्ध हुए हैं और जिनके स्थानकी सूचना वाक्यसूचीमें प्रकाशित जिस जिस वाक्यके बाद वे उपलब्ध हुए हैं उनके आगे ब्रेकटमें क, ख आदि अक्षर जोड़कर की गई है। और इससे दो बातें फलित होती हैं—(१) एक तो यह कि इन ग्रंथोंके अध्यायादि क्रमसे जो वाक्य-नम्बर सूचीमें मुद्रित हुए हैं वे सर्वथा अपरिवर्तनीय नहीं हैं, उनमें छूटे हुए वाक्योंको शामिल करके प्रत्येक अध्यायादिके पद्य-नम्बरोंका जो एक क्रम तैयार होवे उसके अनुसार उसमें परिवर्तन हो सकता है। (२) दूसरी यह कि अन्य ग्रंथोंकी प्राचीन प्रतियोंमें भी कुछ ऐसे वाक्योंका उपलब्ध होना संभव है जो वाक्यसूचीमें दर्ज न हो सके हों, और यह तभी हो सकता है जबकि उन उन ग्रंथोंकी प्राचीन प्रतियोंको खोजकर उन परसे जाँचका तुलनात्मक कार्य किया जाय। सच पूछा जाय तो जब तक प्रतियोंकी पूरी खोज होकर उनपरसे ग्रंथोंके अच्छे प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं होते तब तक साधारण प्रकाशनों और हस्तलिखित प्रतियोंपरसे इन वाक्यसूचियोंके तैयार करनेमें तथा उनमें वाक्योंको नम्बरित (क्रमाङ्कोंसे अङ्कित) करनेमें कुछ न कुछ असुविधा बनी ही रहेगी—उन्हें सर्वथा निरापद नहीं कहा जा सकता। और न प्रक्षिप्त अथवा उद्धृत कहे जाने वाले वाक्योंके सम्बन्धमें कोई समुचित निर्णय ही दिया जा सकता है। परन्तु जब तक वह शुभ अवसर प्राप्त न हो तब तक वर्तमानमें यथोपलब्ध साधनोंपरसे तैयार की गई ऐसी सूचियोंकी उपयोगिताका मूल्य कुछ कम नहीं हो जाता; बल्कि वास्तवमें देखा जाय तो ये ही वे सूचियाँ होंगी जो अधिकांशमें अपने समय की जरूरतको पूरा करती हुईं भविष्यमें अधिक विश्वसनीय सूचियोंके तैयार करनेमें सहायक और प्रेरक बनेंगी।

२. ग्रन्थका कुछ विशेष परिचय

इस वाक्य-सूचीमें जगह-जगहपर बहुतसे वाक्य पाठकोंको एक ही रूप लिये हुए समान नजर आएँगे और उसपरसे उनके हृदयोंमें ऐसी आशङ्काका उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि जब ये वाक्य एक ही ग्रंथके विभिन्न स्थलों अथवा विभिन्न ग्रंथोंमें समानरूपसे विद्यमान हैं तो इन्हें बार बार लिखनेकी क्या जरूरत थी? एक ही बार लिखकर उसके आगे उन ग्रंथोंके नामादिकका संकेत कर देना चाहिये था जिनमें वे समान रूपसे पाये जाते हैं; परन्तु बात ऐसी नहीं है, एक जगह स्थित वे सब वाक्य परस्परमें पूर्णतः समान नहीं हैं—उनमें वे ही वाक्य प्रायः समान हैं जिनके आगे शब्द तथा अर्थकी दृष्टिसे समानताद्योतक चिन्ह लगाया गया है, शेष सब वाक्योंमेंसे कोई एक चरणमें कोई दो चरणोंमें और कोई तीन चरणोंमें भिन्न है तथा कुछ वाक्य ऐसे भी हैं जिनमें मात्र एक दो शब्दोंके परिवर्तनसे ही सारे वाक्यका अर्थ बदल गया है और इसलिये वे शब्दशः बहुत कुछ समान होनेपर भी समानताकी

कोटिसे निकल गये हैं। हाँ, दो चार वाक्य ऐसे भी हैं जो अक्षरशः समान हैं, परन्तु उनके कुछ अक्षरोंको एक साथ अलग अलग रखनेपर उनके अर्थमें अन्तर पड़ जाता है; जैसे समयसारकी 'जो सो दु गोहभावो' नामकी गाथा नं० २४० अक्षरदृष्टिसे उसीकी गाथा नं० २४५ के बिल्कुल समकक्ष है; परन्तु पिछली गाथामें 'दु' को 'गोहभावो' के साथ और 'तस्स' को 'रयबंधो' के साथ मिलाकर रखनेपर पहली गाथासे भिन्न अर्थ हो जाता है। ऐसे अक्षरोंकी पूर्णतः समानताके कारण वाक्योंपर समानताके ही चिन्ह डले हैं। समानता-द्योतक *, ×, +, †, ‡ इस प्रकारके चिन्ह पृष्ठ ४९ से प्रारम्भ किये गये हैं। इसके पहले उनकी कल्पना उत्पन्न ज़रूर हुई थी, परन्तु परिश्रमके भयसे स्थिर नहीं हो पाई थी; बादको उपयोगियाकी दृष्टिने जोर पकड़ा और उक्त कल्पनाको चरितार्थ करना ही स्थिर हुआ। समानता-द्योतक इन चिन्होंके लगानेमें यद्यपि बहुत कुछ तुलनात्मक परिश्रम उठाना पड़ा है परन्तु इससे ग्रंथकी उपयोगिता भी बढ़ गई है, हर एक पाठक सहज हीमें यह मालूम कर सकता है कि जिन वाक्योंपर ये चिन्ह नहीं लगे हैं वे सब प्रारम्भमें समान दीखनेपर भी अपने पूर्णरूपमें समान नहीं हैं, और जो चिन्होंपरसे समान जाने जाते हैं वे भिन्न ग्रंथोंके वाक्य होनेपर उनमेंसे एकके वाक्यको दूसरे ग्रन्थकारने अपनाया है अथवा वह बादको दूसरे ग्रंथमें किसी तरहपर प्रक्षिप्त हुआ है। और इसका विशेष निर्णय उन्हें ग्रंथोंके स्थलोंपरसे उनकी विशेष स्थितिको देखने तथा जाँचनेसे हो सकेगा। एक दो जगह प्रेसकी असावधानी-से चिन्ह छूट गये हैं—जैसे 'संकाइदोसरहियं' नामके वाक्योंपर, जो समान हैं, और एक दो स्थानोंपर वे आगे पीछे भी लग गये हैं, जैसे पृष्ठ ५२ के प्रथम कालममें 'एक्कं च ठिदिविसेसं' नामके जो तीन वाक्य हैं उनमें ऊपरके कसायपाहुड वाले दोनों वाक्योंपर समानताका चिन्ह ‡ लग गया है जब कि वह नीचेके दो वाक्योंपर लगना चाहिये था, जिनमें दूसरा 'लद्धिसार' का वाक्य नं० ४०१ है और वह कसायपाहुडपरसे अपनाया गया है। ऐसी एक दो चिन्होंकी गलती ग्रंथपरसे सहज ही मालूम की जा सकती है। अस्तु; जिन शुरूके ४८ पृष्ठोंपर ऐसे चिन्ह नहीं लग सके हैं उनपर विज्ञ पाठक स्वयं तुलना करके अपने अपने उपयोगके लिये वैसे वैसे चिन्ह लगा सकते हैं।

इस पुरातन जैनवाक्यसूचीमें ६३ मूलग्रंथोंके पद्यवाक्योंकी अकारादिक्रमसे सूची है, जिनमें परमप्पयास (परमात्मप्रकाश), जोगसार, पाहुडदोहा, सावयधम्मदोहा और सुप्पह-दोहा ये पाँच ग्रंथ अपभ्रंश भाषाके और शेष सब प्राकृत भाषाके ग्रंथ हैं। अपभ्रंश भी प्राकृतका ही एक रूप है, इसीसे वाक्यसूचीका दूसरा नाम 'प्राकृतपद्यानुक्रमणी' दिया गया है। इन मूलग्रंथोंकी अनुक्रमसूची संस्कृत नाम तथा ग्रंथकारोंके नाम-सहित साथमें लगा दी गई है। हाँ, षट्खण्डागममें भी, जो कि प्रायः गद्यसूत्रोंमें है, कुछ गाथासूत्र पाये जाते हैं। जिन गाथासूत्रोंको अभी तक स्पष्ट किया जा सका है उनकी एक अनुक्रमसूची भी परिशिष्ट नं० २ के रूपमें दे दी गई है। और इस तरह मूलग्रथ ६४ हो जाते हैं। इनके अलावा ४८ टीकादि ग्रंथोंपरसे भी ऐसे प्राकृत वाक्योंकी सूची की गई है जो उनमें 'उक्तं च' आदि रूपसे विना नाम-धामके उद्धृत हैं और जो सूचीके आधारभूत उक्त मूलग्रंथोंके वाक्य नहीं हैं। इन वाक्योंमें कुछ ऐसे वाक्योंको भी शामिल किया गया है जो यद्यपि उक्त ६३ मूल-ग्रंथोंमेंसे किसी न किसी ग्रंथकी वाक्य-सूचीमें पृ० १ से ३०८ तक आ चुके हैं परन्तु वे उस ग्रंथसे पहलेकी बनी हुई टीकाओंमें 'उक्तं च' आदि रूपसे उद्धृत भी पाये जाते हैं और जिससे यह जाना जाता है कि ये वाक्य संभवतः और भी अधिक प्राचीन हैं और वाक्य-सूचीके जिस ग्रंथमें वे उपलब्ध होते हैं उसमें यदि प्रक्षिप्त नहीं हैं—जैसे कि गोम्मटसारमें उपलब्ध होनेवाले धवलादिकके उद्धृत वाक्य—तो वे किसी अज्ञात प्राचीन ग्रंथ अथवा ग्रंथोंपरसे लिये जाकर उस ग्रंथका अंग बनाये गए हैं। और इसलिये वे ग्रंथ अन्वेषणीय

हैं। ये टीकादि-ग्रंथोपलब्ध वाक्य परिशिष्ट नं० ३ में दिये गये हैं। और इन टीकादि-ग्रंथों की भी एक अलग सूची साथमें दे दी गई है। इनके अतिरिक्त धवला और जयधवला टीकाओंके मंगलादि-पद्योंकी एक अनुक्रमसूची भी परिशिष्ट नं० ४ के रूपमें दे दी गई है।

यह वाक्यसूची सब मिलाकर २५३५२ पद्य-वाक्योंकी अनुक्रमणी है—उनके प्रथम चरणादिके रूपमें आद्याक्षरोंकी सूचिका है—जिनमेंसे २४६०८ वाक्योंके आधारभूत ग्रंथों और उनके कर्ताओंका पता तो मालूम है, परन्तु शेष ७४४ वाक्य ऐसे हैं जिनके मूलग्रंथों तथा उनके कर्ताओंका पता अज्ञात है और ये ही वे वाक्य हैं जो टीकादि-ग्रंथोंमें उद्धृत मिलते हैं और जिनके मूलस्रोतकी खोज होनी चाहिये। इस सूचीमें कुछ ऐसे वाक्य दर्ज होनेसे रह गये हैं जो मूलग्रंथोंमें 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत पाये जाते हैं—जैसे कार्तिकेया-नुप्रेक्षामें गाथा नं० ४०३ के बाद पाया जाने वाला 'जो णवि जादि वियारं' नामका वाक्य—और इसका हमें खेद है।

इस ग्रंथमें जिन वाक्योंकी सूची दी गई है उनमेंसे प्रत्येक वाक्यके सामने भिन्न टाइपमें उसके ग्रंथका नाम संक्षिप्त अथवा संकेतितरूपमें दे दिया गया है—जैसे गोम्मटसार-जीवकाण्डको गो० जी०, गोम्मटसार-कर्मकाण्डको गो० क०, गोम्मटसार-जीवकाण्डकी जीव-तत्त्वप्रबोधिनी टीकाको गो० जी० जी०, मन्दप्रबोधिनी टीकाको गो० जी० म०, भगवती आराधना ग्रंथको भ० आरा०, तिलोयपण्णत्तीको तिलो० प०, और तिलोयसारको तिलो० सा० संकेतके द्वारा सूचित किया गया है। किसी किसी ग्रंथके लिये दो संकेतोंका भी प्रयोग हुआ है जैसे कसायपांहुडके लिये कसाय० तथा कसायपा०, णियमसारके लिये णियम० तथा णियमसा०। साथ ही, ग्रंथनामके अनन्तर वाक्यके स्थलका निर्देश अंकों द्वारा किया गया है। जिन अङ्कोंके मध्यमें डैश (—) है उनमें डैशका पूर्ववर्ती अङ्क ग्रंथके अध्याय, अधिकार, परिच्छेद, पर्वादिकी क्रमसंख्याका सूचक है और उत्तरवर्ती अङ्क उस अध्यायादिमें उस वाक्यके क्रमिक नम्बरको सूचित करता है। और जिन अङ्कोंके मध्यमें डैश नहीं हैं वे उस ग्रंथमें उस वाक्यकी क्रमसंख्याके ही सूचक हैं। ऐसे अङ्कोंके अन-न्तर जहाँ कसायपाहुड जैसे ग्रंथके वाक्योंका उल्लेख करते हुए ब्रेकटमें भी कुछ अंक दिये हैं वे उस ग्रंथके दूसरे क्रमके सूचक हैं, जो भाष्यगाथाओंको अलग करके मूल १८० गाथाओंका क्रम है। और जहाँ अङ्कोंके बाद ब्रेकटमें कवर्गका कोई अक्षर दिया है उसे उस अङ्क नं० के अनन्तर बादको पाया जानेवाला वर्गक्रमाङ्क स्थानीय पद्यवाक्य समझना चाहिये। कोई कोई वाक्य किसी एक ही ग्रंथप्रतिमें पाया गया है—दूसरीमें नहीं, उसका सूचक चिन्ह भी साथमें दे दिया गया है; जैसे तिलोयपण्णत्तीकी आगरा-प्रतिका सूचक चिन्ह A, बनारस-प्रतिका सूचक B, सहारनपुर-प्रतिका सूचक S और देहली-प्रतिका सूचक 'दे०' चिन्ह लगाया गया है। ग्रंथ नामादिविषयक इन सब संकेतोंकी एक विस्तृत संकेत-सूची भी साथमें लगादी गई है, जिससे किसी भी वाक्य-सम्बन्धी ग्रंथ अथवा विशिष्ट ग्रंथ-प्रतिको सहजमें ही मालूम किया जा सके। इस सूचीमें ग्रंथनामके सामने उस मुद्रित या हस्तलिखित ग्रंथप्रतिको भी सूचित कर दिया गया है जो आम तौरपर उस ग्रंथकी वाक्य-सूचीके कार्यमें उपयुक्त हुई है।

३. प्राकृतमें वर्णविकार

प्राकृत भाषामें वर्णविकार खूब चलता है—एक एक वर्ण (अक्षर) अनेक वर्णों (अक्षरों) के लिये काम आता अथवा उनके स्थानपर प्रयुक्त होता है और इसी तरह एक के लिये अनेक वर्ण भी काममें लाये जाते अथवा उसके स्थानपर प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण

के तौरपर 'अ' अक्षर क, ग, च, ज, त, द, प, और य जैसे अक्षरोंके लिये भी प्रयुक्त होता है; जैसे 'लोअं' में क, ग, च, प, य के लिये, 'जुअल' में ग के लिये, 'लोअण' में च के लिये, 'मणुअ' में ज के लिये, 'भणिअं' में त, द के लिये, 'आमाअ' में द के लिये, 'दीअ' में प, व के लिये, 'दाअ' में य के लिये और 'सुअएण' में व के लिय प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह 'क' अक्षरके लिये अ, ग, य आदि अक्षरोंका प्रयोग देखनेमें आता है; जैसे 'लोअ' में अ का, लोग' में गका और 'लोय' में य का प्रयोग हुआ है, ये तीनों शब्द लोकार्थक हैं और लोगागास तथा लोयायास जैसे शब्दोंमें इनका यथेच्छ प्रयोग पाया जाता है। कितने ही शब्द ऐसे हैं जो अर्थ और वजनकी दृष्टिसे समान हैं और उनका भी यथेच्छ प्रयोग पाया जाता है; जैसे इइ=इदि, एए=एदे और इक्कं=एक्कं=एगं=एयं। यह सब वर्णविकार कुछ तो प्राकृत भाषाके नियमोंका ऋणी है और कुछ विकल्पसे सम्बन्ध रखता है, जिसमें इच्छानुसार चाहे जिस विकल्प अथवा शब्द-रूपका प्रयोग किया जा सकता हैं। इस वर्णविकारके कारण पद्यवाक्योंके क्रममें कितना ही अन्तर पड़ जाना संभव है। लेखकोंकी कृपासे, जो कि प्रायः भाषा-विज्ञ नहीं होते, उस अन्तरको और भी गुंजाइश मिलती है। इसीसे एक ही ग्रंथकी अनेक प्रतियोंमें एक ही शब्दका अलग अलग रूपसे भी प्रयोग देखनेमें आता है; जैसे लोगागास और लोयायास का।

अनुक्रमणिकाके अवसरपर इस अंतरसे कभी कभी बड़ी अड़चन पैदा हुई है—किस किस पाठान्तरको दिया जावे और कैसे क्रम रक्खा जावे? आखिर, बहुमान्य पाठोंको ही अपनाया गया है और कहीं कहीं उदाहरणके रूपमें पाठान्तरोंको भी दिखला दिया गया है। ''थप्रतियोंकी ऐसी स्थितिको देखकर, मैं चाहता था कि इस ग्रंथमें वर्ण-विकार-विषयक एक विस्तृत सूची (Table) उदाहरण-सहित ऐसी लगाई जावे जिससे यह मालूम हो सके कि अकारादि एक-एक वर्ण दूसरे किस किस वर्णके लिये प्रयोगमें आता है और उसकी सहायतासे अपने किसी वाक्यका पता लगाने वालेको उसके खोजनेमें सुविधा मिल सके और वह वर्ण-विकारके नियमोंसे अवगत होकर इस वाक्य-सूचीमें थोड़ेसे अन्य प्रकारके पाठ तथा अन्य क्रमको लिये हुए होनेपर भी अपने उस वाक्यकी खोज लगा सके और साधारणसे रूपान्तर तथा पाठभेदके कारण यह न समझ बैठे कि वह वाक्य इस वाक्य-सूचीमें आए हुए किसी भी ग्रंथका नहीं है। परन्तु एक तो यह काम बहु-परिश्रम-साध्य था, इसीसे यथेष्ट अवकाश न मिलनेके कारण बराबर टलता रहा; दूसरे प्राकृत-भाषाके विशेषज्ञ सुहृद्वर डा० ए० एन० उपाध्येजी कोल्हापुरकी यह राय हुई कि इस सूचीसे उन विद्वानोंको तो कोई विशेष लाभ पहुँचेगा नहीं जो प्राकृतभाषाके पंडित हैं—वे तो इस प्रकारकी सूचीके विना भी अपना काम निकाल लेंगे और प्रस्तुत ग्रंथमें अपने इष्टवाक्यके अस्तित्व-अनस्तित्वको सहजमें ही मालूम कर सकेंगे—और जो प्राकृतभाषाके पंडित नहीं हैं वे ऐसी सूचीसे भी ठीक काम नहीं ले सकेंगे, और इसलिये उनके वास्ते इतना परिश्रम उठानेकी जरूरत नहीं। तदनुसार ही उस सूचीके विचारको यहाँ छोड़ा गया है और उसके संबंधमें ये थोड़ी-सी सूचनाएँ कर देना ही उचित समझा गया है। इस वर्ण-विकारके कारण कुछ वाक्य समान होनेपर भी वाक्यसूचीमें भिन्न स्थानोंपर मुद्रित हुए हैं— जैसे भावसंग्रहका 'ठिदिकरणगुणपउत्तो' वाक्य जो मुद्रित प्रतिमें इसी रूपसे पाया जाता है, वर्णक्रमके कारण पृष्ठ १३० पर मुद्रित हुआ है और वसुनन्दिश्रावकाचारका 'ठिदियरणगुणपउत्तो' वाक्य पृष्ठ १३१ पर अतरसे छपा है—और इसीसे ऐसे वाक्योंपर समानताके चिन्ह नहीं दिये जा सके हैं।

४. ग्रन्थ और ग्रन्थकार

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य और उनके ग्रन्थ —

अब मैं अपने पाठकोंको उन मूलग्रंथों और ग्रंथकारोंका संक्षेपमें कुछ परिचय करा देना चाहता हूँ जिनके पद्य-वाक्योंका इस ग्रंथमें अकारादिक्रमसे एकत्र संग्रह किया गया है। सब से अधिक ग्रंथ (२२ या २३) श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके हैं, जो ८४ पाहुड ग्रंथोंके कर्ता प्रसिद्ध हैं और जिनके विदेह-क्षेत्रमें श्रीसीमंधर-स्वामीके समवसरणमें जाकर साक्षात् तीर्थंकरमुख तथा गणधरदेवसे बोध प्राप्त करनेकी कथा भी सुप्रसिद्ध है[1] और जिनका समय विक्रमकी प्रायः प्रथम शताब्दी माना जाता है। अतः उन्हींके ग्रंथोंसे इस परिचयका प्रारंभ किया जाता है।

यहाँ पर मैं इन ग्रन्थकार-महोदयके सम्बन्धमें इतना और बतला देना चाहता हूँ कि इनका पहला—संभवतः दीक्षाकालीन नाम पद्मनन्दी था[2]; परन्तु ये कोण्डकुन्दाचार्य अथवा कुन्दकुन्दाचार्यके नामसे ही अधिक प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं, जिसका कारण 'कोण्डकुन्दपुर' के अधिवासी होना बतलाया जाता है। इसी नामसे इनकी वंशपरम्परा चली है अथवा 'कुन्दकुन्दान्वय' स्थापित हुआ है, जो अनेक शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त होकर दूर दूर तक फैला है। मर्कराके ताम्रपत्रमें, जो शक संवत् ३८८ में उत्कीर्ण हुआ है, इसी कोण्डकुन्दान्वयकी परम्परामें होनेवाले छह पुरातन आचार्योंका गुरु-शिष्यके क्रमसे उल्लेख है[3]। ये मूलसंघके प्रधान आचार्य थे, पूतात्मा थे, सत्संयम एवं तपश्चरणके प्रभावसे इन्हें चारण-ऋद्धिकी प्राप्ति हुई थी और उसके बलपर ये पृथ्वीसे प्रायः चार अंगुल ऊपर अन्तरिक्षमें चला करते थे। इन्होंने भरतक्षेत्रमें श्रुतकी—जैन आगमकी—प्रतिष्ठा की है—उसकी मान्यता एवं प्रभावको स्वयंके आचरणादि-द्वारा (खुद आमिल बनकर) ऊँचा उठाया तथा सर्वत्र व्याप्त किया है अथवा यों कहिये कि आगमके अनुसार चलनेको खास महत्व दिया है, ऐसा श्रवणबेल्गोलके शिलालेखों आदिसे जाना जाता है[4]। ये बहुत ही प्रामाणिक एवं प्रतिष्ठित आचार्य हुए हैं। संभवतः इनकी उक्त श्रुत-प्रतिष्ठाके कारण ही शास्त्रसभाकी आदिमें जो मङ्गलाचरण 'मंगलं भगवान् वीरो' इत्यादि किया जाता है उसमें 'मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो' इस रूपसे इनके नामका खास उल्लेख है।

---

१ देवसेनाचार्यने भी, अपने दर्शनसार (वि० सं० ६६०) की निम्न गाथामें, कुन्दकुन्द (पद्मनन्दि) के सीमंधर-स्वामीसे दिव्यज्ञान प्राप्त करनेकी बात लिखी है:—

> जइ पउमणंदि-णाहो सीमंधरसामि-दिव्वणाणेण ।
> ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥ ४३ ॥

२ तस्यान्वये भूविदिते बभूव यः पद्मनन्दि-प्रथमाभिधानः ।
श्रीकौण्डकुन्दादिमुनीश्वराख्यस्सत्संयमादुद्गत-चारणर्द्धिः ॥
—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० ४०

३ देखो, कुर्ग-इन्स्क्रिपशन्स (E. C. I.)

३ वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः कुन्दप्रभा-प्रणयि-कीर्ति-विभूषिताशः ।
यश्चारु-चारण-कराम्बुज-चञ्चरीकश्चक्रे-श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम् ॥—श्र० शि० ५४

रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्तर्बाह्येऽपि संव्यंजयितुं यतीशः ।
रजः पदं भूमितलं विहाय चचार मन्ये चतुरंगुलं सः ॥—श्र० शि० १०५

१ प्रवचनसार, २ समयसार, ३ पंचास्तिकाय—ये तीनों ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रंथोंमें प्रधान स्थान रखते हैं, बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं और अखिल जैनसमाजमें समान-आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। पहलेका विषय ज्ञान, ज्ञेय और चारित्ररूप तत्व-त्रयके विभागसे तीन अधिकारोंमें विभक्त है, दूसरेका विषय शुद्ध आत्मतत्त्व है और तीसरेका विषय कालद्रव्यसे भिन्न जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश नामके पाँच द्रव्योंका सविशेष-रूपसे वर्णन है। प्रत्येक ग्रंथ अपने-अपने विषयमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक है। हरएक का यथेष्ट परिचय उस-उस ग्रंथको स्वयं देखनेसे ही सम्बन्ध रखता है।

इनपर अमृतचन्द्राचार्य और जयसेनाचार्यकी खास संस्कृत टीकाएँ हैं, तथा बाल-चन्द्रदेवकी कन्नड टीकाएँ भी हैं, और भी दूसरी कुछ टीकाएँ प्रभाचन्द्रादिकी संस्कृत तथा हिन्दी आदिकी उपलब्ध हैं। अमृतचंद्राचार्यकी टीकानुसार प्रवचनसारमें २७५, समयसारमें ४१५ और पंचास्तिकायमें १७३ गाथाएँ हैं; जब कि जयसेनाचार्यकी टीकाके पाठानुसार इन ग्रंथोंमें गाथाओंकी संख्या क्रमशः ३११, ४३९ १८१ है। इन बढ़ी हुई गाथाओंकी सूचना सूचीमें टीकाकारके नामके संकेत (ज०) द्वारा की गई है। संक्षेपमें, जैनधर्मका मर्म अथवा उसके तत्त्वज्ञानको समझनेके लिये ये तीनों ग्रंथ बहुत ही उपयोगी हैं।

४. नियमसार—कुन्दकुन्दका यह ग्रंथ भी महत्त्वपूर्ण है और अध्यात्म-विषयको लिये हुए है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको नियम—नियमसे किया जानेवाला कार्य—एवं मोक्षोपाय बतलाया है और मोक्षके उपायभूत सम्यग्दर्शनादिका स्वरूप कथन करते हुए उनके अनुष्ठानका तथा उनके विपरीत मिथ्यादर्शनादिके त्यागका विधान किया है और इसीको (जीवनका) सार निर्दिष्ट किया है। इस ग्रंथपर एकमात्र संस्कृत टीका पद्मप्रभ-मलधारिदेवकी उपलब्ध है और उसके अनुसार ग्रंथकी गाथा-संख्या १८७ है। टीकामें मूलको द्वादश श्रुतस्कन्धरूप जो १२ अधिकारोंमें विभक्त किया है वह विभाग मूलकृत नहीं है—मूल परसे उसकी उपलब्धि नहीं होती, मूलके समझनेमें उससे कोई मदद भी नहीं मिलती और न मूलकारका वैसा कोई अभिप्राय ही जाना जाता है। उसकी सारी जिम्मेदारी टीकाकारपर है। इस टीकाने मूलको उल्टा कठिन कर दिया है। टीकामें बहुधा मूलका आश्रय छोड़कर अपना ही राग अलापा गया है—मूलका स्पष्टीकरण जैसा चाहिये था वैसा नहीं किया। टीकाके बहुतसे वाक्यों और पद्योंका सम्बन्ध परस्परमें नहीं मिलता। टीकाकारका आशय अपनी गद्य-पद्यात्मक काव्य-शक्तिको प्रकट करनेका अधिक रहा है—उसके काव्योंका मूलके साथ मेल बहुत कम है। अध्यात्म-कथन होनेपर भी जगह जगहपर स्त्रीका अनावश्यक स्मरण किया गया है और अलंकाररूपमें उसके लिये उत्कंठा व्यक्त की गई है, मानो सुख स्त्रीमें ही है। इस ग्रंथका टीका-सहित हिन्दी अनुवाद ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने किया है और वह प्रकाशित भी होचुका है।

५. बारस-अणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)—इसमें १ अध्रुव (अनित्य), २ अशरण, ३ एकत्व, ४ अन्यत्व, ५ संसार, ६ लोक, ७ अशुचित्व, ८ आस्रव, ९ संवर, १० निर्जरा, ११ धर्म, १२ बोधिदुर्लभ नामकी बारह भावनाओंका ९१ गाथाओंमें वर्णन है। इस ग्रंथकी 'सव्वे वि पोग्गला खलु' इत्यादि पांच गाथाएँ (नं० २५ से २९) श्रीपूज्यपादाचार्य-द्वारा, जो कि विक्रमकी छठी शताब्दीके विद्वान् हैं, सर्वार्थसिद्धिके द्वितीय अध्यायान्तर्गत दशवें सूत्रकी टीकामें 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत की गई हैं।

३. दंसणपाहुड—इसमें सम्यग्दर्शनके माहात्म्यादिका वर्णन ३६ गाथाओंमें है और उससे यह जाना जाता है कि सम्यग्दर्शनको ज्ञान और चारित्रपर प्रधानता प्राप्त है। वह धर्मका मूल है और इसलिये जो सम्यग्दर्शनसे—जीवादि तत्त्वोंके यथार्थ श्रद्धानसे—भ्रष्ट है उसको सिद्धि अथवा मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

७. चारित्तपाहुड—इस ग्रंथकी गाथासंख्या ४४ और उसका विषय सम्यक् चारित्र है। सम्यक्चारित्रको सम्यक्त्वचरण और संयमचरण ऐसे दो भेदोंमें विभक्त करके उनका अलग अलग स्वरूप दिया है और संयमचरणके सागार अनगार ऐसे दो भेद करके उनके द्वारा क्रमशः श्रावकधर्म तथा यतिधर्मका अतिसंक्षेपमें प्रायः सूचनात्मक निर्देश किया है।

८. सुत्तपाहुड—यह ग्रंथ २७ गाथात्मक है। इसमें सूत्रार्थकी मार्गणाका उपदेश है—आगमका महत्व ख्यापित करते हुए उसके अनुसार चलनेकी शिक्षा दी गई है। और साथ ही सूत्र (आगम) की कुछ बातोंका स्पष्टताके साथ निर्देश किया गया है, जिनके संबंध में उस समय कुछ विप्रतिपत्ति या ग़लतफहमी फैली हुई थी अथवा प्रचारमें आरही थी।

९. बोधपाहुड—इस पाहुडका शरीर ६२ गाथाओंसे निर्मित है। इनमें १ आयतन, २ चैत्यगृह, ३ जिनप्रतिमा, ४ दर्शन, ५ जिनबिम्ब, ६ जिनमुद्रा, ७ आत्मज्ञान, ८ देव, ९ तीर्थ, १० अर्हन्त, ११ प्रव्रज्या इन ग्यारह बातोंका क्रमशः आगमानुसार बोध दिया गया है। इस ग्रंथकी ६१ वीं गाथामें[१] कुन्दकुन्दने अपनेको भद्रबाहुका शिष्य प्रकट किया है जो संभवतः भद्रबाहु द्वितीय जान पड़ते हैं; क्योंकि भद्रबाहु श्रुतकेवलीके समयमें जिनकथित श्रुतमें ऐसा कोई विकार उपस्थित नहीं हुआ था जिसे उक्त गाथामें 'सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं' इन शब्दोंद्वारा सूचित किया गया है—वह अविच्छिन्न चला आया था। परन्तु दूसरे भद्रबाहुके समयमें वह स्थिति नहीं रही थी—कितना ही श्रुतज्ञान लुप्त हो चुका था और जो अवशिष्ट था वह अनेक भाषा-सूत्रोंमें परिवर्तित हो गया था। इससे ६१ वीं गाथाके भद्रबाहु भद्रबाहुद्वितीय ही जान पड़ते हैं। ६२ वीं गाथामें उसी नामसे प्रसिद्ध होने वाले प्रथम भद्रबाहुका जो कि बारह अंग और चौदह पूर्वके ज्ञाता श्रुतकेवली थे, अन्त्य मंगलके रूपमें जयघोष किया गया और उन्हें साफ तौरपर 'गमकगुरु' लिखा है। इस तरह अन्तकी दोनों गाथाओंमें दो अलग अलग भद्रबाहुओंका उल्लेख होना अधिक युक्तियुक्त और बुद्धिगम्य जान पड़ता है।

१०. भावपाहुड—१६३ गाथाओंका यह ग्रंथ बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें भावकी—चित्तशुद्धिकी—महत्ताको अनेक प्रकारसे सर्वोपरि ख्यापित किया गया है। बिना भावके बाह्यपरिग्रहका त्याग करके नग्न दिगम्बर साधु तक होने और वनमें जा बैठनेको भी व्यर्थ ठहराया है। परिणामशुद्धिके बिना संसार-परिभ्रमण नहीं रुकता और न बिना भावके कोई पुरुषार्थ ही सधता है, भावके बिना सब कुछ निःसार है इत्यादि अनेक बहुमूल्य शिक्षाओं एवं मर्मकी बातोंसे यह ग्रंथ परिपूर्ण है। इसकी कितनी ही गाथाओंका अनुसरण गुणभद्राचार्यने अपने आत्मानुशासन ग्रंथमें किया है।

११. मोक्खपाहुड—यह मोक्ष-प्राभृत भी बड़ा ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है और इसकी गाथा-संख्या १०६ है। इसमें आत्माके बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद करके उनके स्वरूपको समझाया है और मुक्ति अथवा परमात्मपद कैसे प्राप्त हो सकता है इसका अनेक प्रकारसे निर्देश किया है। इस ग्रंथके कितने ही वाक्योंका अनुसरण पूज्यपाद आचार्यने अपने 'समाधितंत्र' ग्रंथमें किया है।

इन दंसणपाहुडसे मोक्खपाहुड तकके छह प्राभृत ग्रंथोंपर श्रुतसागर सूरिकी टीका भी उपलब्ध है, जो कि माणिकचन्द-ग्रंथमालाके षट्प्राभृतादिसंग्रहमें मूलग्रंथोंके साथ प्रकाशित हो चुकी है।

---

१ सद्दवियारो हूओ भासा-सुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥ ६१ ॥

१२. लिंगपाहुड—यह द्वाविंशति(२२)-गाथात्मक ग्रंथ है। इसमें श्रमणलिङ्गको लक्ष्यमें लेकर उन आचरणोंका उल्लेख किया गया है जो इस लिङ्गधारी जैनसाधुके लिये निषिद्ध हैं और साथ ही उन निषिद्ध आचरणोंका फल भी नरकवासादि बतलाया गया है तथा उन निषिद्धाचारमें प्रवृत्ति करनेवाले लिङ्गभावसे शून्य साधुओंको श्रमण नहीं माना है—तिर्यञ्चयोनि बतलाया है।

१३. सीलपाहुड—यह ४० गाथाओंका ग्रंथ है। इसमें शीलका—विषयोंसे विरागका—महत्व ख्यापित किया है और उसे मोक्ष-सोपान बतलाया है। साथ ही जीवदया, इन्द्रियदमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और तपको शीलका परिवार घोषित किया है।

१४. रयणसार—इस ग्रंथका विषय गृहस्थों तथा मुनियोंके रत्नत्रय-धर्म-सम्बन्धी कुछ विशेष कर्त्तव्योंका उपदेश अथवा उनकी उचित-अनुचित प्रवृत्तियोंका कुछ निर्देश है। परन्तु यह ग्रंथ अभी बहुत कुछ संदिग्ध स्थितिमें स्थित है—जिस रूपमें अपनेको प्राप्त हुआ है उसपरसे न तो इसकी ठीक पद्य-संख्या ही निर्धारित की जा सकती है और न इसके पूर्णतः मूलरूपका ही कोइ पता चलता है। माणिकचन्द-ग्रंथमालाके षट्प्राभृतादि-संग्रहमें इस ग्रंथकी पद्यसंख्या १६७ दी है। साथ ही फुटनोट्समें सम्पादकने जिन दो प्रतियों (क-ख) का तुलनात्मक उल्लेख किया है उसपरसे दोनो प्रतियोंमें पद्योंकी संख्या बहुत कुछ विभिन्न (हीनाधिक) पाई जाती है और उनका कितना ही क्रमभेद भी उपलब्ध है—सम्पादनमें जो पद्य जिस प्रतिमें पाये गये उन सबको ही विना जाँचके यथेच्छ क्रमके साथ ले लिया गया है। देहलीके पंचायती मन्दिरकी प्रतिपरसे जब मैंने इस मा० ग्र० संस्करणकी तुलना की तो मालूम हुआ कि उसमें इस ग्रंथकी १२ गाथाएँ नं० ८, ३४, ३७, ४६, ५५, ५६, ६३, ६६, ६७, ११३, १२५, १२६ नहीं हैं और इसलिये उसमें ग्रंथकी पद्यसंख्या १५५ है। साथ ही उसमें इस ग्रंथकी गाथा नं० १७, १८ को आगे-पीछे; ५२ व ५३, ६१ व ६६ को क्रमशः १६३ के बाद, ५४ को १६४ के बाद, ६० को १६५ के पश्चात् १०१ व १०२ को आगे-पीछे; ११० व १११ को १६२ के अनन्तर, १२१ को ११६ के पूर्व और १२२ को १५४ के बाद दिया है। पं० कलापा भरमापा निटवेने इस ग्रंथको सन् १६०७ में मराठी अनुवादके साथ मुद्रित कराया था उसमें भी यद्यपि पद्य-संख्या १५५ है, और क्रमभेद भी देहली-प्रति-जैसा है, परन्तु उक्त १२ गाथाओंमेंसे ६३वीं गाथाका अभाव नहीं है—वह मौजूद है; किन्तु मा० ग्र० संस्करणकी ३५ वीं गाथा नहीं है, जो कि देहलीकी उक्त प्रतिमें उपलब्ध है। इस तरह ग्रंथ-प्रतियोंमें पद्य-संख्या और उनके क्रमका बहुत बड़ा भेद पाया जाता है।

इसके सिवाय, कुछ अपभ्रंश भाषाके पद्य भी इन प्रतियोंमें उपलब्ध होते हैं, एक दोहा भी गाथाओंके मध्यमें आ घुसा है, विचारोंकी पुनरावृत्तिके साथ कुछ बेतरतीबी भी देखी जाती है, गण-गच्छादिके उल्लेख भी मिलते हैं और ये सब बातें कुन्दकुन्दके ग्रंथोंकी प्रकृतिके साथ संगत मालूम नहीं होतीं—मेल नहीं खातीं। और इसलिये विद्वद्वर प्रोफेसर ए० एन० उपाध्येने (प्रवचनसारकी अंग्रेजी प्रस्तावनामें) इस ग्रंथपर अपना जो यह विचार व्यक्त किया है वह ठीक ही है कि—'रयणसार ग्रंथ गाथाविभेद, विचारपुनरावृत्ति, अपभ्रंश पद्योंकी उपलब्धि, गण-गच्छादि-उल्लेख और बेतरतीबी आदिको लिये हुए जिस स्थितिमें उपलब्ध है उसपरसे वह पूरा ग्रंथ कुन्दकुन्दका नहीं कहा जा सकता—कुछ अतिरिक्त गाथाओंकी मिलावटने उसके मूलमें गड़बड़ उपस्थित कर दी है। और इसलिये जब तक कुछ दूसरे प्रमाण उपलब्ध न हो जाएँ तब तक यह बात विचाराधीन ही रहेगी कि कुन्दकुन्द इस समग्र रयणसार ग्रंथके कर्ता हैं।' इस ग्रंथपर संस्कृतकी कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

१५. सिद्धभक्ति—यह १२ गाथाओंका एक स्तुतिपरक ग्रंथ है, जिसमें सिद्धोंकी, उनके गुणों, भेदों, सुख, स्थान, आकृति और सिद्धिके मार्ग तथा क्रमका उल्लेख करते हुए, अति-भक्तिभावके साथ वन्दना की गई है। इसपर प्रभाचन्द्राचार्यकी एक संस्कृत टीका है, जिसके अन्तमें लिखा है कि—"संस्कृताः सर्वा भक्तयः पादपूज्यस्वामिकृताः प्राकृतास्तु कुन्दकुन्दाचार्यकृताः" अर्थात् संस्कृतकी सब भक्तियाँ पूज्यपाद स्वामीकी बनाई हुई हैं और प्राकृतकी सब भक्तियाँ कुन्दकुन्दाचार्यकृत हैं। दोनों प्रकार की भक्तियोंपर प्रभाचन्द्राचार्यकी टीकाएँ हैं। इस भक्तिपाठके साथमें कहीं कहीं कुछ दूसरी पर उसी विषयकी, गाथाएँ भी मिलती हैं, जिनपर प्रभाचन्द्रकी टीका नहीं है और जो प्रायः प्रक्षिप्त जान पड़ती हैं; क्योंकि उनमेंसे कितनी ही दूसरे ग्रंथोंकी अंगभूत हैं। शोलापुरसे 'दशभक्ति' नामका जो संग्रह प्रकाशित हुआ है उसमें ऐसी ८ गाथाओं का शुरूमें एक संस्कृतपद्य-सहित अलग क्रम दिया है। इस क्रमकी 'गमणागमणविमुक्के' और 'तवसिद्धे णयसिद्धे' जैसी गाथाओंको, जो दूसरे ग्रंथोंमें नहीं पाई गईं, इस वाक्य-सूचीमें उस दूसरे क्रमके साथ ही ले लिया गया है। परन्तु 'सिद्धा णट्ठट्ठमला' और 'जयमंगलभूदाणं' इन क्रमशः ५, ७ नंबरकी दो गाथाओंका उल्लेख छूट गया है, जिन्हें यथास्थान बढ़ा लेना चाहिये।

१६. श्रुतभक्ति—यह भक्तिपाठ एकादश-गाथात्मक है। इसमें जैनश्रुतके आचाराङ्गादि द्वादश अंगोंका भेद-प्रभेद-सहित उल्लेख करके उन्हें नमस्कार किया गया है। साथ ही, १४ पूर्वोंमेंसे प्रत्येककी वस्तुसंख्या और प्रत्येक वस्तुके प्राभृतों (पाहुडों) की संख्या भी दी है।

१७. चारित्रभक्ति—इस भक्तिपाठकी पद्यसंख्या १० है और वे अनुष्टुभ् छन्दमें हैं। इसमें श्रीवर्द्धमान-प्रणीत सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंयम (सूक्ष्मसाम्पराय) और यथाख्यात नामके पांच-चारित्रों, अहिंसादि २८ मूलगुणों तथा दश-धर्मों, त्रिगुप्तियों, सकलशीलों, परीषहोंके जय और उत्तरगुणोंका उल्लेख करके उनकी सिद्धि और सिद्धि-फल मुक्तिसुखकी भावना की है।

१८. योगि(अनगार)भक्ति—यह भक्तिपाठ २३ गाथाओंको अङ्गरूपमें लिये हुए है। इसमें उत्तम अनगारों—योगियोंकी अनेक अवस्थाओं, ऋद्धियों, सिद्धियों तथा गुणोंके उल्लेखपूर्वक उन्हें बड़ी भक्तिभावके साथ नमस्कार किया है, योगियोंके विशेषणरूप गुणोंके कुछ समूह परिसंख्यानात्मक पारिभाषिक शब्दोंमें दोकी संख्यामें लेकर चौदह तक दिये हैं; जैसे 'दोदोसविप्पमुक्क' तिदंडविरद, तिसल्लपरिसुद्ध, तिण्णियगारवरहिअ, तियरणसुद्ध, चउदसगंथपरिसुद्ध, चउदसपुव्वपगब्भ और चउदसमलविवज्जिद'। इस भक्तिपाठके द्वारा जैनसाधुओंके आदर्श-जीवन एवं चर्याका अच्छा स्पृहणीय सुन्दर स्वरूप सामने आजाता है, कुछ ऐतिहासिक वार्तोंका भी पता चलता है, और इससे यह भक्तिपाठ बड़ा ही महत्वपूर्ण जान पड़ता है।

१९. आचार्यभक्ति—इसमें १० गाथाएँ हैं और उनमें उत्तम-आचार्योंके गुणोंका उल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है। आचार्य परमेष्ठी किन किन खास गुणोंसे विशिष्ट होने चाहियें, यह इस भक्तिपाठपरसे भले प्रकार जाना जाता है।

२०. निर्वाणभक्ति—इसकी गाथासंख्या २७ है। इसमें प्रधानतया निर्वाणको प्राप्त हुए तीर्थंकरों तथा दूसरे पूतात्म-पुरुषोंके नामोंका, उन स्थानोंके नाम-सहित स्मरण तथा वन्दन किया गया है जहाँसे उन्होंने निर्वाण-पदकी प्राप्ति की है। साथ ही, जिन स्थानोंके साथ ऐसे व्यक्ति-विशेषोंकी कोई दूसरी स्मृति खास तौरपर जुड़ी हुई है ऐसे अतिशय क्षेत्रों

का भी उल्लेख किया गया है और उनकी तथा निर्वाणभूमियोंकी भी वन्दना की गई है। इस भक्तिपाठपरसे कितनी ही ऐतिहासिक तथा पौराणिक बातों एवं अनुश्रुतियोंकी जानकारी होती है, और इस दृष्टिसे यह पाठ अपना खास महत्त्व रखता है।

२१. पंचगुरु(परमेष्ठि)भक्ति—इसकी पद्यसंख्या ७(६) है। इसके प्रारम्भिक पाँच पद्योंमें क्रमशः अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ऐसे पाँच गुरुवों–परमेष्ठियोंका स्तोत्र है, छठे पद्यमें स्तोत्रका फल दिया है और ये छहों पद्य स्रग्विणी छंदमें हैं। अन्तका ७ वाँ पद्य गाथा है, जिसमें अर्हदादि पंच परमेष्ठियोंके नाम देकर और उन्हें पंचनमस्कार (णमोकारमंत्र) के अंगभूत बतलाकर उनसे भवभवमें सुखकी प्रार्थना की गई है। यह गाथा प्रक्षिप्त जान पड़ती है। इस भक्तिपर प्रभाचन्द्रकी संस्कृत टीका नहीं है।

२२. 'थोस्सामि थुदि—(तीर्थंकरभक्ति)—यह 'थोस्सामि' पदसे प्रारंभ होनेवाली अष्टगाथात्मक स्तुति है, जिसे 'तित्थयरभत्ति' (तीर्थंकरभक्ति) भी कहते हैं। इसमें वृषभादि-वर्द्धमान-पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी, उनके नामोल्लेख-पूर्वक, वन्दना की गई है और तीर्थंकरोंके लिये जिन, जिनवर, जिनवरेन्द्र, नरप्रवर, केवली, अनन्तजिन, लोकमहित, धर्मतीर्थंकर, विधूत-रज-मल, लोकोद्योतकर, अर्हन्त, प्रहीन-जर-मरण, लोकोत्तम, सिद्ध, चन्द्र-निर्मलतर, आदित्याधिकप्रभ और सागरमिव गम्भीर जैसे विशेषणोंका प्रयोग किया गया है। और अन्तमें उनसे आरोग्यज्ञान-लाभ (निरावरण अथवा मोहविहीन ज्ञानप्राप्ति), समाधि (धर्म्य-शुक्लध्यानरूप चारित्र), बोधि (सम्यग्दर्शन) और सिद्धि (स्वात्मोपलब्धि) की प्रार्थना की गई है। यह भक्तिपाठ प्रथम पद्यको छोड़ कर शेष सात पद्योंके रूपमें थोड़ेसे परिवर्तनों अथवा पाठ-भेदोंके साथ, श्वेताम्बर समाजमें भी प्रचलित है और इसे 'लोगस्स सूत्र' कहते हैं। इस सूत्रमें 'लोगस्स' नामके प्रथम पद्यका छांदसिक रूप शेष पद्योंसे भिन्न है—शेष छहों पद्य जब गाथारूपमें पाये जाते हैं तब यह अनुष्टुभ्-जैसे छंदमें उपलब्ध होता है, और यह भेद ऐसे छोटे ग्रंथमें बहुत ही खटकता है—खासकर उस हालतमें जबकि दिगम्बर सम्प्रदायमें यह अपने गाथारूपमें ही पाया जाता है। यहाँ पाठभेदोंकी दृष्टिसे दोनों सम्प्रदायोंके दो पद्योंको तुलनाके रूपमें रक्खा जाता है:—

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं-तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो॥ २॥

—दिगम्बरपाठ

लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे।
अरहंते कित्तइस्सं चउवीसं पि केवली॥ १॥

—श्वेताम्बरपाठ

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं॥ ७॥

—दिगम्बरपाठ

कित्तिय वंदिय महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्ग-बोहिलाहं समाहिवरमुत्तमं दिंतु॥ ६॥

—श्वेताम्बरपाठ*

---

* दोनों पद्योंका श्वेताम्बरपाठ पं० सुखलालजी-द्वारा सम्पादित 'पंचप्रतिक्रमण' ग्रन्थसे लिया गया है।

इन दोनों नमूनोंपरसे पाठक इस स्तुतिकी साम्प्रदायिक स्थिति और मूलमें एकताका अच्छा अनुभव कर सकते हैं। हो सकता है कि यह स्तुतिपाठ और भी अधिक प्राचीन—सम्प्रदाय-भेदसे भी बहुत पहलेका हो और दोनों सम्प्रदायोंने इसे थोड़े थोड़ेसे परिवर्तनके साथ अपनाया हो; अस्तु।

कुन्दकुन्दके ये सब ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

२३. मूलाचार और वट्टकेर—'मूलाचार' जैन साधुओंके आचार-विषयका एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रंथ है। वर्तमानमें दिगम्बर-सम्प्रदायका 'आचाराङ्ग' सूत्र समझा जाता है। धवला टीकामें आचाराङ्गके नामसे उसका नमूना प्रस्तुत करते हुए कुछ गाथाएँ उद्धृत हैं, वे भी इस ग्रंथमें पाई जाती हैं; जब कि श्वेताम्बरोंके आचाराङ्गमें वे उपलब्ध नहीं हैं। इससे भी इस ग्रंथको आचाराङ्गकी ख्याति प्राप्त है। इसपर 'आचारवृत्ति' नामकी एक टीका आचार्य वसुनन्दीकी उपलब्ध है, जिसमें इस ग्रंथको आचाराङ्गका द्वादश अधिकारोंमें उपसंहार (सारोद्धार) बतलाया है, और उसके तथा भाषाटीकाके अनुसार इस ग्रंथकी पद्यसंख्या १२४३ है। वसुनन्दी आचार्यने अपनी टीकामें इस ग्रंथके कर्ताको वट्टकेराचार्य, वट्टकेर्याचार्य तथा वट्टेरकाचार्यके रूपमें उल्लेखित किया है—पहला रूप टीकाके प्रारम्भिक प्रस्तावना-वाक्यमें, दूसरा ६ वें १० वें, ११ वें अधिकारोंके सन्धिवाक्योंमें और तीसरा ७ वें अधिकारके सन्धि-वाक्यमें पाया जाता है[1]। परन्तु इस नामके किसी भी आचार्यका उल्लेख अन्यत्र गुर्वावलियों, पट्टावलियों, शिलालेखों तथा ग्रंथप्रशस्तियों आदि में कहीं भी देखनेमें नहीं आता; और इसलिये ऐतिहासिक विद्वानों एवं रिसर्चस्कॉलरोंके सामने यह प्रश्न बराबर खड़ा हुआ है कि ये वट्टकेरादि नामके कौनसे आचार्य हैं और कब हुए हैं?

मूलाचारकी कितनी ही ऐसी पुरानी हस्तलिखित प्रतियाँ पाई जाती हैं जिनमें ग्रंथकर्ताका नाम कुन्दकुन्दाचार्य दिया हुआ है। डाक्टर ए० एन० उपाध्येको दक्षिणभारतकी ऐसी कुछ प्रतियोंको स्वयं देखनेका अवसर मिला है और जिन्हें, प्रवचनसारकी प्रस्तावनामें, उन्होंने quite genuine in their appearance—'अपने रूपमें बिना किसी मिलावटके बिल्कुल असली प्रतीत होनेवाली' लिखा है। इसके सिवाय, माणिकचन्द-दि० जैन-ग्रंथमालामें मूलाचारकी जो सटीक प्रति प्रकाशित हुई है उसकी अन्तिम पुष्पिकामें भी मूलाचारको 'कुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीत' लिखा है। वह पुष्पिका इस प्रकार है:—

"इति मूलाचार-विवृत्तौ द्वादशोऽध्यायः। कुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीत-मूलाचाराख्य-विवृतिः। कृतिरियं वसुनन्दिनः श्रीश्रमणस्य।"

यह सब देखकर मेरे हृदयमें खयाल उत्पन्न हुआ कि कुन्दकुन्द एक बहुत बड़े प्रवर्तक आचार्य हुए हैं—आचार्यभक्तिमें उन्होंने स्वयं आचार्यके लिये 'प्रवर्तक' होना बहुत बड़ी विशेषता बतलाया है[2] और 'प्रवर्तक' विशिष्ट साधुओंकी एक उपाधि है, जो श्वेताम्बर जैनसमाजमें आज भी व्यवहृत है। हो सकता है कि कुन्दकुन्दके इस प्रवर्तकत्व-गुणको लेकर ही उनके लिये यह 'वट्टकेर' जैसे पदका प्रयोग किया गया हो। और इसलिये मैंने वट्टकेर, वट्टकेरि और वट्टेरक इन तीनों शब्दोंके अर्थपर गम्भीरताके साथ विचार करना उचित समझा। तदनुसार मुझे यह मालूम हुआ कि 'वट्टक'का अर्थ वर्तक-प्रवर्तक है, 'इरा' गिरा-वाणी-सरस्वतीको कहते हैं, जिसकी वाणी-सरस्वती प्रवर्तिका हो—जनताको सदाचार एवं सन्मार्ग

---

१ देखो, माणिकचन्दग्रंथमालामें प्रकाशित ग्रन्थके दोनों भाग नं० १६, २३।

२ बाल-गुरु-वुड्ढ-सेहे गिलाण-थेरे य खमण-संजुत्ता।
वट्टावणगा अण्णे दुस्सीले चावि जाणित्ता ॥ ३ ॥

में लगाने वाली हो—उसे 'वट्टकेर' समझना चाहिये। दूसरे, वट्टकों—प्रवर्तकोंमें जो इरि=गिरि-प्रधान-प्रतिष्ठित हो अथवा ईरि=समर्थ-शक्तिशाली हो उसे 'वट्टकेरि' जानना चाहिये। तीसरे, 'वट्ट' नाम वर्तन—आचरणका है और 'ईरक' प्रेरक तथा प्रवर्तकको कहते हैं, सदाचारमें जो प्रवृत्ति करानेवाला हो उसका नाम 'वट्टेरक' है; अथवा 'वट्ट' नाम मार्गका है, सन्मार्गका जो प्रवर्तक, उपदेशक एवं नेता हो उसे भी 'वट्टेरक' कहते हैं। और इसलिये अर्थ की दृष्टिसे ये वट्टकेरादि पद कुन्दकुन्दके लिये बहुत ही उपयुक्त तथा संगत मालूम होते हैं। आश्चर्य नहीं जो प्रवर्तकत्व-गुणकी विशिष्टताके कारण ही कुन्दकुन्दके लिये वट्टेरकाचार्य (प्रवर्तकाचार्य) जैसे पदका प्रयोग किया गया हो। मूलाचारकी कुछ प्राचीन प्रतियोंमें ग्रंथ-कर्तृत्वरूपसे कुन्दकुन्दका स्पष्ट नामोल्लेख उसे और भी अधिक पुष्ट करता है। ऐसी वस्तु-स्थितिमें सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीने जैनसिद्धान्तभास्कर (भाग १२ किरण १) में प्रकाशित 'मूलाचारके कर्ता वट्टकेरि' शीर्षक अपने हालके लेखमें, जो यह कल्पना की है कि, बेट्टगेरि या बेट्टकेरी नामके कुछ ग्राम तथा स्थान पाये जाते हैं, मूलाचारके कर्ता उन्हींमेंसे किसी बेट्टगेरि या बेट्टकेरी ग्रामके ही रहनेवाले होंगे और उसपरसे कोण्डकुन्दादिकी तरह 'बेट्टकेरि' कहलाने लगे होंगे, वह कुछ संगत मालूम नहीं होती—बेट्ट और वट्ट शब्दोंके रूप में ही नहीं किन्तु भाषा तथा अर्थमें भी बहुत अन्तर है। 'बेट्ट' शब्द, प्रेमीजीके लेखानुसार, छोटी पहाड़ीका वाचक कनड़ी भाषाका शब्द है और 'गेरि' उस भाषामें गली—मोहल्लेको कहते हैं; जब कि 'वट्ट' और 'वट्टक' जैसे शब्द प्राकृत भाषाके उपर्युक्त अर्थके वाचक शब्द हैं और ग्रंथकी भाषाके अनुकूल पड़ते हैं। ग्रंथभरमें तथा उसकी टीकामें बेट्टगेरि या बेट्टकेरि रूपका एक जगह भी प्रयोग नहीं पाया जाता और न इस ग्रंथके कर्तृत्वरूपमें अन्यत्र ही उस का प्रयोग देखनेमें आता है, जिससे उक्त कल्पनाको कुछ अवसर मिलता। प्रत्युत इसके, ग्रंथदानकी जो प्रशस्ति मुद्रित प्रतिमें अंकित है उसमें 'श्रीमद्वट्टेरकाचार्यकृतसूत्रस्य सद्विधेः' इस वाक्यके द्वारा 'वट्टेरक' नामका उल्लेख है, जोकि ग्रंथकार-नामके उक्त तीनों रूपोंमेंसे एक रूप है और सार्थक है। इसके सिवाय, भाषा-साहित्य और रचना-शैलीकी दृष्टिसे भी यह ग्रंथ कुन्दकुन्दके ग्रंथोंके साथ मेल खाता है, इतना ही नहीं बल्कि कुन्दकुन्दके अनेक ग्रंथोंके वाक्य (गाथा तथा गाथांश) इस ग्रंथमें उसी तरहसे संप्रयुक्त पाये जाते हैं जिस तरह कि कुन्दकुन्दके अन्य ग्रंथोंमें परस्पर एक-दूसरे ग्रंथके वाक्योंका स्वतंत्र प्रयोग देखनेमें आता है[१]। अतः जब तक किसी स्पष्ट प्रमाण-द्वारा इस ग्रंथके कर्तृत्वरूपमें वट्टकेराचार्यका कोई स्वतंत्र अथवा पृथक् व्यक्तित्व सिद्ध न हो जाए तब तक इस ग्रंथको कुन्दकुन्दकृत मानने और वट्टकेराचार्यको कुन्दकुन्दके लिये प्रयुक्त हुआ प्रवर्तकाचार्यका पद स्वीकार करनेमें कोई खास बाधा मालूम नहीं होती।

२४. **कसायपाहुड**—यह श्रीगुणधर आचार्यकी अपूर्व कृति है, जो कुन्दकुन्दाचार्यसे भी पहले होगये हैं और पाँचवें ज्ञानप्रवाद-पूर्व-स्थित दशम-वस्तुके तीसरे 'कसाय-पाहुड' नामक ग्रंथ-महार्णवके पारगामी थे। उन्होंने मूलग्रंथके व्युच्छेद-भयसे और प्रवचन-वात्सल्यसे प्रेरित होकर, सोलह हजार पद-परिमाण उस कसायपाहुड (अपरनाम 'पेज्ज-दोस-पाहुड') का १८०[२] सूत्रगाथाओंमें उपसंहार किया—सार खींचा है। साथ ही, इन गाथाओंके सम्बन्ध तथा कुछ वृत्ति आदिकी सूचक ५३ विवरण गाथाएँ भी और रची हैं

---

१ देखो, अनेकान्त वर्ष २ किरण ३ पृ० २२१—२२४।

२ इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें 'त्र्यधिकाशीत्या युक्तं शतं' इस पाठके द्वारा मूलसूत्रगाथाओंकी संख्या १८३ सूचित की है, जो ठीक नहीं है और समझनेकी किसी गलतीका परिणाम है। जयधवला टीकामें १८० गाथाओंका खूब खुलासा किया गया है।

और उन्हें यथास्थान संनिविष्ट किया है, जिससे इस ग्रंथकी कुल गाथा-संख्या २३३ होगई है। इस संख्यासे मूल सूत्रगाथाओंको अलग व्यक्त करनेके लिये प्रस्तुत वाक्य-सूचीमें उनके क्रमाङ्कों (नम्बरों) को ब्रैकट ( ) में अलग दे दिया है। ग्रन्थके ये गाथासूत्र प्रायः बहुत संक्षिप्त हैं और अधिक अर्थके संसूचनको लिये हुए हैं। इसीसे इनकी कुल संख्या २३३ होते हुए भी इनपर यतिवृषभाचार्यने छह हजार श्लोकपरिमाण चूर्णिसूत्र रचे, उच्चारणाचार्य ने बारह हजार श्लोकपरिमाण वृत्तिसूत्र लिखे और श्रीवीरसेन तथा जिनसेन आचार्योंने (२०+४० हजारके क्रमसे) ६० हजार श्लोकपरिमाण 'जयधवला' टीकाकी रचना की, जो शकसंवत् ७५६ में बनकर समाप्त हुई और जिसका अब सानुवाद छपना प्रारम्भ हो गया है तथा एक खण्ड प्रकाशित भी हो चुका है।

२५. षट्खण्डागम—यह १ जीवस्थान, २ क्षुल्लकबन्ध, ३ बन्धस्वामित्वविचय, ४ वेदना. ५ वर्गणा और ६ महाबन्ध नामके छह खण्डोंमें विभक्त आगम-ग्रंथ है। इसके कर्ता श्री पुष्पदन्त और भूतबलि नामके दो आचार्य हैं। पुष्पदन्तने विंशति-प्ररूपणात्मक सूत्रोंकी रचना की है, जो कि प्रथमखण्डके सत्प्ररूपणा नामक प्रथम अनुयोगद्वारके अन्तर्गत हैं, शेष सारा ग्रंथ भूतबलि आचार्यकी कृति है। इसका मूल आधार 'महाकम्मपयडि-पाहुड' नामका वह श्रुत है जो अग्रायणीपूर्व-स्थित पंचम वस्तुका चौथा प्राभृत है और जिसका ज्ञान अष्टांग महानिमित्तके पारगामी धरसेनाचार्यको आचार्य-परम्परासे पूर्णतः प्राप्त हुआ था और उन्होंने श्रुतविच्छेदके भयसे उसे उक्त पुष्पदन्त तथा भूतबलि नामके दो खास मुनियों को पढ़ाया था, जो श्रुतके ग्रहण धारणमें समर्थ थे। इस पूरे ग्रंथकी संख्या, इन्द्रनन्दि श्रुतावतारके कथनानुसार ३६ हजार श्लोकपरिमाण है, जिसमेंसे ६ हजार संख्या पाँच खण्डोंकी और शेष ३० हजार महाबन्ध नामक छठे खण्डकी है। ग्रंथका विषय मुख्यतया जीव और कर्म-विषयक जैनसिद्धान्तका निरूपण है, जो बड़ा ही गहन है और अनेक भेद-प्रभेदों में विभक्त है। यह ग्रंथ प्रायः गद्यात्मक सूत्रोंमें है, परन्तु कहीं कहीं गाथासूत्रोंका भी प्रयोग किया गया है। ऐसे जो गाथासूत्र अभी तक टीकापरसे स्पष्ट हो सके हैं उन्हींको, पद्यानुक्रमणी होनेसे, इस वाक्य-सूचीमें लिया गया है। जो पद्य-वाक्य और स्पष्ट होवें उन्हें विद्वानोंको परिशिष्ट नं० २ में बढ़ा लेना चाहिये। इस ग्रंथके प्रायः चार खण्डोंपर ६ वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य वीरसेनने 'धवला' नामकी टीका लिखी है, जो ७२ हजार श्लोकपरिमाण है और बड़ी ही महत्वपूर्ण है। इस टीकामें दूसरे दो खण्डोंके विषयको भी कुछ समाविष्ट किया गया है, इसस इन्द्रनन्दिके कथनानुसार यह छहों खण्डोंकी और विबुध श्रीधरके कथनानुसार पाँचखण्डोंकी टीका भी कहलाती है। यह टीका कई वर्षसे हिन्दी अनुवादादिके साथ छप रही है और इसके कई खण्ड निकल चुके हैं।

२६. भगवती आराधना—यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपरूप चार आराधनाओंपर, जो मुक्ति को प्राप्त करानेवाली हैं, एक बड़ा ही अधिकारपूर्ण प्राचीन ग्रंथ है, जैनसमाजमें सर्वत्र प्रसिद्ध है और प्रायः मुनिधर्मसे सम्बन्ध रखता है। जैनधर्ममें समाधिपूर्वक मरणकी सर्वोपरि विशेषता है—मुनि हो या श्रावक सबका लक्ष्य उसकी ओर रहता है, नित्यकी प्रार्थनामें उसके लिये भावना की जाती है और उसकी सफलतापर जीवनकी सफलता तथा सुन्दर भविष्यकी आशा निर्भर रहती है। इस ग्रंथपर से समाधिपूर्वक मरणकी पर्याप्त शिक्षा-सामग्री तथा व्यवस्था मिलती है—सारा ग्रंथ मरण के भेद-प्रभेदों और तत्सम्बन्धी शिक्षाओं तथा व्यवस्थाओंसे भरा हुआ है। इसमें मरणके मुख्य पाँच भेद किये हैं—१ पंडितपंडित, २ पंडित, ३ बालपंडित, ४ बाल और ५ बाल-बाल। इनमें पहले तीन प्रशस्त और शेष अप्रशस्त हैं। बाल-बालमरण मिथ्यादृष्टि जीवोंका,

बालमरण अविरत-सम्यग्दृष्टियोंका, बालपंडितमरण विरताऽविरत (देशव्रती) श्रावकोंका, पंडितमरण सकलसंयमी साधुओंका और पंडितपंडितमरण क्षीणकषाय केवलियोंका होता है। साथ ही, पंडितमरणके १ भक्तप्रत्याख्यान, २ इंगिनी और ३ प्रायोपगमन ऐसे तीन भेद करके भक्तप्रत्याख्यानके सविचार-भक्त-प्रत्याख्यान और अविचार-भक्त-प्रत्याख्यान ऐसे दो भेद किये हैं और फिर सविचारभक्तप्रत्याख्यानका 'अर्ह' आदि चालीस अधिकारोंमें विस्तारके साथ वर्णन दिया है। तदनन्तर अविचार-भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनी, प्रायोपगमन-मरण, बालपंडितमरण और पंडितपंडितमरणका संक्षेपतः निरूपण किया है। इस विषय के इतने अधिक विस्तृत और व्यवस्थित विवेचनको लिये हुए दूसरा कोई भी ग्रंथ जैन-समाजमें उपलब्ध नहीं है। अपने विषयका असाधारण मूलग्रंथ होनेसे जैनसमाजमें यह खूब ख्यातिको प्राप्त हुआ है। इसकी गाथासंख्या सब मिलाकर २१७० है, जिनमें ५ गाथाएं 'उक्तं च' आदि रूपसे दी हुई हैं।

भगवती आराधनाके कर्ता शिवार्य अथवा शिवकोटि नामके आचार्य हैं, जिन्होंने ग्रंथके अन्तमें आर्यजिननन्दिगणी, सर्वगुप्तगणी और आर्यमित्रनन्दीका अपने विद्या अथवा शिक्षा-गुरुके रूपमें इस प्रकारसे उल्लेख किया है कि उनके पादमूलमें बैठकर 'सम्म' सूत्र और उसके अर्थकी अथवा सूत्र और अर्थकी भले प्रकार, जानकारी प्राप्त की गई और पूर्वाचार्य अथवा आचार्योंके द्वारा निबद्ध हुई आराधनाओंका उपयोग करके यह आराधना स्वशक्तिके अनुसार रची गई है। साथ ही, अपनेको 'पाणि-दल-भोजी' (करपात्र-आहारी) लिखकर श्वेताम्बर सम्प्रदायसे भिन्न दिगम्बर सम्प्रदायका सूचित किया है। इसके सिवाय, उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि छद्मस्थता (ज्ञानकी अपूर्णता) के कारण मुझसे कहीं कुछ प्रवचन (आगम) के विरुद्ध निबद्ध होगया हो तो उसे सुगीतार्थ (आगमज्ञानमें निपुण) साधु प्रवचनवत्सलताकी दृष्टिसे शुद्ध कर लेवें। और यह भावना भी की है कि भक्तिसे वर्णन की हुई यह भगवती आराधना संघको तथा (मुझ) शिवार्यको उत्तम समाधि-वर प्रदान करे—इसके प्रसादसे मेरा तथा संघके सभी प्राणियोंका समाधिपूर्वक मरण होवे[1]।

इस ग्रंथपर संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी आदिकी कितनी ही टीका-टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, अनुवाद भी हुए हैं और वे सब ग्रंथकी ख्याति, उपयोगिता, प्रचार और महत्ताके द्योतक हैं। प्राकृतकी टीका–टिप्पणियाँ यद्यपि आज उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु संस्कृत टीकाओंमें उनके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं और वे ग्रंथकी प्राचीनताको सविशेषरूपसे सूचित करते हैं। जयनन्दी और श्रीधरके दो टिप्पण और एक अज्ञातनाम विद्वानका पद्यानुवाद भी अभी तक उपलब्ध नहीं हुए, जिनका पं० आशाधरकी टीकामें उल्लेख है। और भी कुछ टीका-टिप्पणियाँ अनुपलब्ध हैं। उपलब्ध टीकाओंमें संभवतः विक्रमकी ८ वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य अपराजित सूरिकी 'विजयोदया' टीका, १३ वीं शताब्दीके विद्वान पं० आशाधरकी 'मूलाराधनादर्पण' नामकी टीका और ११ वीं शताब्दीके विद्वान् अमितगतिकी पद्यानुवादरूपमें 'संस्कृत आराधना' ये तीनों कृतियाँ एक साथ नई हिन्दी टीका-सहित

---

१ अज्जजिणणंदिगणि-सव्वगुत्तगणि-अज्जमित्तणंदीणं।
अवगमिय पादमूले सम्मं सुत्तं च अत्थं च ॥ २१६५
पुव्वायरियणिबद्धा उवजीवित्ता इमा ससत्तीए।
आराहणा सिवज्जेण पाणिदलभोइणा रइदा ॥ २१६६ ॥
छदुमत्थदाए एत्थ दु जं बद्धं होज पवयण-विरुद्धं।
सोधंतु सुगीदत्था पवयण-वच्छलदाए दु ॥ २१६७ ॥
आराहणा भगवदी एवं भत्तीए वण्णिदा संती।
संघस्स सिवज्जस्स य समाहिवरमुत्तमं देउ ॥ २१६८ ॥

मुद्रित हो चुकी हैं। पं० सदासुखजीकी हिन्दी टीका इनसे भी पहले मुद्रित हुई है। और 'आराधनापञ्जिका' तथा शिवजीलालकृत भावार्थदीपिका' टीका दोनों पूनाके भाण्डारकर-प्राच्य-विद्या-संशोधक-मंदिरमे पाई जाती हैं, ऐसा पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने लेखोंमें सूचित किया है।

२७. कार्तिकेयानुप्रेक्षा और स्वामिकुमार—यह अनुप्रेक्षा अध्रुवादि बारह भावनाओंपर, जिन्हें भव्यजनोंके लिये आनन्दकी जननी लिखा है (गा० १), एक बड़ा ही सुन्दर, सरल तथा मार्मिक ग्रंथ है और ४८९ गाथासंख्याको लिये हुए है। इसके उपदेश बड़े ही हृदय-ग्राही हैं, उक्तियाँ अन्तस्तलको स्पर्श करती हैं और इसीसे यह जैनसमाजमें सर्वत्र प्रचलित है तथा बड़े ही आदर एवं प्रेमकी दृष्टिसे देखा जाता है।

इसके कर्ता ग्रंथकी निम्न गाथा नं० ४८७ के अनुसार 'स्वामिकुमार' हैं, जिन्होंने जिनवचनकी भावनाके लिये और चंचल मनको रोकनेके लिये परमश्रद्धाके साथ इन भावनाओंकी रचना की है:—

जिण-वयण-भावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए।
रइया अणुपेक्खाओ चंचलमण-रुंभणट्ठं च ॥

'कुमार' शब्द पुत्र, बालक, राजकुमार, युवराज, अविवाहित, ब्रह्मचारी आदि अर्थोंके साथ 'कार्तिकेय' अर्थमें भी प्रयुक्त होता है, जिसका एक आशय कृतिकाका पुत्र है और दूसरा आशय हिन्दुओंका वह षडानन देवता है जो शिवजीके उस वीर्यसे उत्पन्न हुआ था जो पहले अग्निदेवताको प्राप्त हुआ, अग्निसे गंगामें पहुँचा और फिर गंगामें स्नान करती हुई छह कृतिकाओंके शरीरमें प्रविष्ट हुआ, जिससे उन्होंने एक एक पुत्र प्रसव किया और वे छहों पुत्र बादको विचित्र रूपमें मिलकर एक पुत्र कार्तिकेय हो गए, जिसके छह मुख और १२ भुजाएँ तथा १२ नेत्र बतलाये जाते हैं। और जो इसीसे शिवपुत्र, अग्निपुत्र, गंगापुत्र तथा कृतिका आदिका पुत्र कहा जाता है। कुमारके इस कार्तिकेय अर्थको लेकर ही यह ग्रंथ स्वामिकार्तिकेय-कृत कहा जाता है तथा कार्तिकेयानुप्रेक्षा जैसे नामोंसे इसकी सर्वत्र प्रसिद्धि है। परन्तु ग्रंथभरमें कहीं भी ग्रंथकारका नाम कार्तिकेय नहीं दिया और न ग्रंथको कार्तिकेयानुप्रेक्षा अथवा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा जैसे नामसे उल्लेखित ही किया है; प्रत्युत इसके, प्रतिज्ञा और समाप्ति-वाक्योंमें ग्रंथका नाम सामान्यतः 'अणुपेहा' या 'अणुपेक्खा' (अनुप्रेक्षा) और विशेषतः 'बारसअणुवेक्खा' दिया है[1]। कुन्दकुन्दके इस विषयके ग्रंथका नाम भी 'बारस अणुपेक्खा' है। तब कार्तिकेयानुप्रेक्षा यह नाम किसने और कब दिया, यह एक अनुसन्धानका विषय है। ग्रंथपर एकमात्र संस्कृत टीका जो उपलब्ध है वह भट्टारक शुभचन्द्रकी है और विक्रम-संवत् १६१३ में बनकर समाप्त हुई है। इस टीकामें अनेक स्थानों पर ग्रंथका नाम 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' दिया है और ग्रंथकारका नाम 'कार्तिकेय' मुनि प्रकट किया है तथा कुमारका अर्थ भी 'कार्तिकेय' बतलाया है[2]। इससे संभव है कि शुभचन्द्र भट्टारकके

१ वोच्छं अणुपेहाओ (गा० १); बारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण (गा० ४८८)।

२ यथा:—(१) कार्तिकेयानुप्रेक्षाष्टीकां वक्ष्ये शुभश्रिये। (आदिमंगल)

(२) कार्तिकेयानुप्रेक्षाया वृत्तिर्विरचिता वरा। (प्रशस्ति ८)

(३) स्वामिकार्तिकेयो मुनीन्द्रो अनुप्रेक्षा व्याख्यातुकामः मलगालन-मंगलावाप्ति-लक्षण-[मंगल]माचष्टे। (गा० १)

(४) केन रचितः स्वामिकुमारेण भव्यवर-पुण्डरीक—श्रीस्वामिकार्तिकेयमुनिना आजन्मशील-धारिणा अनुप्रेक्षाः रचिताः। (गा० ४८७)

(५) अहं श्रीकार्तिकेयसाधुः संस्तुवे (४८९)। (देहली नयामन्दिर प्रति, वि० संवत् १८०६)

द्वारा ही यह नामकरण किया गया हो—टीकासे पूर्वके उपलब्ध साहित्यमें ग्रंथकाररूपमें इस नामकी उपलब्धि भी नहीं होती।

'कोहेण जो ण तप्पदि' इत्यादि गाथा नं० ३९४ की टीकामें निर्मल क्षमाको उदाहृत करते हुए घोर उपसर्गोंको सहन करनेवाले सन्तजनोंके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जिनमें एक उदाहरण कार्तिकेय मुनिका भी निम्नप्रकार है :—

"स्वामिकार्तिकेयमुनि-क्रौंचराज-कृतोपसर्गं सोढ्वा साम्यपरिणामेन समाधिमरणेन देवलोकं प्राप्यः (प्तः?)।"

इसमें लिखा है कि 'स्वामिकार्तिकेय मुनि क्रौंचराजकृत उपसर्गको समभावसे सह कर समाधिपूर्वक मरणके द्वारा देवलोकको प्राप्त हुए।'

तत्त्वार्थराजवार्तिकादि ग्रंथोंमें 'अनुत्तरोपपाददशांग' का वर्णन करते हुए, वर्द्धमान तीर्थंकरके तीर्थमें दारुण उपसर्गोंको सहकर विजयादिक अनुत्तर विमानों (देवलोक) में उत्पन्न होनेवाले दस अनगार साधुओंके नाम दिये हैं, उनमें कार्तिक अथवा कार्तिकेयका भी एक नाम है; परन्तु किसके द्वारा वे उपसर्गको प्राप्त हुए ऐसा कुछ उल्लेख साथमें नहीं है।

हाँ, भगवती आराधना-जैसे प्राचीन ग्रंथकी निम्न गाथा नं० १५४९ में क्रौंचके द्वारा उपसर्गको प्राप्त हुए एक व्यक्तिका उल्लेख जरूर है—साथमें उपसर्गस्थान 'रोहेडक' और 'शक्ति' हथियारका भी उल्लेख है—परन्तु 'कार्तिकेय' नामका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। उस व्यक्तिको मात्र 'अग्निदयितः' लिखा है, जिसका अर्थ होता है अग्निप्रिय, अग्निका प्रेमी अथवा अग्निका प्यारा-प्रेमपात्र :—

रोहेडयम्मि सत्तीए हओ कौंचेण अग्गिदयिदो वि।
तं वेदणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥

'मूलाराधनादर्पण' टीकामें पं० आशाधरजीने 'अग्गिदयिदो' (अग्निदयितः) पदका अर्थ, 'अग्निराजनाम्नो राज्ञः पुत्रः कार्तिकेयसंज्ञः—अग्निनामके राजाका पुत्र कार्तिकेयसंज्ञक —दिया है। कार्तिकेय मुनिकी एक कथा भी हरिषेण, श्रीचन्द्र और नेमिदत्तके कथाकोषोंमें पाई जाती है और उसमें कार्तिकेयको कृतिका मातासे उत्पन्न अग्निराजाका पुत्र बतलाया है। साथ ही, यह भी लिखा है कि कार्तिकेयने राजकालमें—कुमारावस्थामें—ही मुनिदीक्षा ली थी, जिसका अमुक कारण था, और कार्तिकेयकी बहन रोहेटक नगरके उस क्रौंच राजा को व्याही थी जिसकी शक्तिसे आहत होकर अथवा जिसके किये हुए दारुण उपसर्गको जीतकर कार्तिकेय देवलोक सिधारे हैं। इस कथाके पात्र कार्तिकेय और भगवती आराधना की उक्त गाथाके पात्र 'अग्निदयित' को एक बतलाकर यह कहा जाता है और आमतौरपर माना जाता है कि यह कार्तिकेयानुप्रेक्षा उन्हीं स्वामी कार्तिकेयकी बनाई हुई है जो क्रौंचराजा के उपसर्गको समभावसे सहकर देवलोक पधारे थे, और इसलिये इस ग्रंथका रचनाकाल भगवती आराधना तथा श्रीकुन्दकुन्दके ग्रंथोंसे भी पहलेका है—भले ही इस ग्रंथ तथा भ० आराधनाकी उक्त गाथामें कार्तिकेयका स्पष्ट नामोल्लेख न हो और न कथामें इनकी इस ग्रंथरचनाका ही कोई उल्लेख हो।

परन्तु डाक्टर ए० एन० उपाध्ये एम० ए० कोल्हापुर इस मतसे सहमत नहीं हैं। यद्यपि वे अभी तक इस ग्रंथके कर्ता और उसके निर्माणकालके सम्बन्धमें अपना कोई निश्चित एकमत स्थिर नहीं कर सके फिर भी उनका इतना कहना स्पष्ट है कि यह ग्रंथ उतना

(विक्रमसे दोसौ या तीनसौ वर्ष पहलेका[1]) प्राचीन नहीं है जितना कि दन्तकथाओंके आधार पर माना जाता है, जिन्होंने ग्रंथकार कुमारके व्यक्तित्वको अन्धकारमें डाल दिया है। और इसके मुख्य दो कारण दिये हैं, जिनका सार इस प्रकार है :—

(१) कुमारके इस अनुप्रेक्षा-ग्रंथमें बारह भावनाओंकी गणनाका जो क्रम स्वीकृत है वह वह नहीं है जो कि वट्टकेर, शिवार्य और कुन्दकुन्दके ग्रंथों (मूलाचार, भ० आराधना तथा बारसअणुपेक्खा) में पाया जाता है, बल्कि उससे कुछ भिन्न वह क्रम है जो बादको उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें उपलब्ध होता है।

(२) कुमारकी यह अनुप्रेक्षा अपभ्रंश भाषामें नहीं लिखी गई, फिर भी इसकी २७६ वीं गाथामें 'णिसुणहि' और 'भावहि' (preferably हिं) ये अपभ्रंशके दो पद आ घुसे हैं जो कि वर्तमान काल तृतीय पुरुषके बहुवचनके रूप हैं। यह गाथा जोइन्दु (योगीन्दु) के योगसारके ६५ वें दोहे के साथ मिलती जुलती है, एक ही आशयको लिये हुए है और उक्त दोहेपरसे परिवर्तित करके रक्खी गई हैं। परिवर्तनादिका यह कार्य किसी बादके प्रतिलेखकद्वारा संभव मालूम नहीं होता, बल्कि कुमारने ही जान या अनजानमें जोइन्दुके दोहेका अनुसरण किया है ऐसा जान पड़ता है। उक्त दोहा और गाथा इस प्रकार हैं:—

विरला जाणहि तत्तु बहु विरला णिसुणहिं तत्तु।
विरला झायहि तत्तु जिय विरला धारहि तत्तु॥ ६५॥

—योगसार

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।
विरला भावहि तच्चं विरलाणं धारणा होदि॥ २७६॥

—कार्तिकेयानुप्रेक्षा

और इसलिये ऐसी स्थितिमें डा० साहबका यह मत है कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा उक्त कुन्दकुन्दादिके बादकी ही नहीं बल्कि परमात्मप्रकाश तथा योगसारके कर्ता योगीन्दु आचार्य के भी बादकी बनी हुई है, जिसका समय उन्होंने पूज्यपादके समाधितंत्रसे बादका और चण्डव्याकरणसे पूर्वका अर्थात् ईसाकी ५ वीं और ७ वीं शताब्दीके मध्यका निर्धारित किया है; क्योंकि परमात्मप्रकाशमें समाधितंत्रका बहुत कुछ अनुसरण किया गया है और चण्ड-व्याकरणमें परमात्मप्रकाशके प्रथम अधिकारका ८५ वाँ दोहा (कालु लहेविणु जोइया' इत्यादि) उदाहरणके रूपमें उद्धृत है[2]।

इसमें-सन्देह नहीं कि मूलाचार, भगवती आराधना और बारसअणुवेक्खामें बारह भावनाओंका क्रम एक है, इतना ही नहीं बल्कि इन भावनाओंके नाम तथा क्रमकी प्रतिपादक गाथा भी एक ही है और यह एक खास विशेषता है जो गाथा तथा उसमें वर्णित भावनाओंके क्रमकी अधिक प्राचीनताको सूचित करती है। वह गाथा इस प्रकार है :—

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्ण-संसार-लोगमसुचित्तं।
आसव-संवर-णिज्जर-धम्मं बोहिं च चिंति(ते)ज्जो॥

उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रमें इन भावनाओंका क्रम एक स्थानपर ही नहीं बल्कि तीन स्थानोंपर विभिन्न है। उसमें अशरणके अनन्तर एकत्व-अन्यत्व भावनाओंको न देकर

---

१ पं० पन्नालालजी बाकलीवालकी प्रस्तावना पृ० १। Catalogue of SK. and PK. Manuscripts in the C. P. and Berar p. XIV; तथा Winternitz. A History of Indian Literature, Vol. II p. 577.

२ परमात्मप्रकाशकी अंग्रेजी प्रस्तावना पृ० ६४-६५; प्रस्तावनाका हिन्दीसार पृ० ११३-११५।

संसारभावनाको दिया है और संसारभावनाके अनन्तर एकत्व-अन्यत्व भावनाओंको रक्खा है; लोकभावनाको संसारभावनाके बाद न रखकर निर्जराभावनाके बाद रक्खा है और धर्मभावनाको बोधि-दुर्लभसे पहले स्थान न देकर उसके अन्तमें स्थापित किया है; जैसाकि निम्न सूत्रसे प्रकट है—

"अनित्याऽशरण-संसारैकत्वाऽन्यत्वाऽशुच्याऽऽस्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधि-दुर्लभ-धर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ ९—७ ॥

और इससे ऐसा जाना जाता है कि भावनाओंका यह क्रम, जिसका पूर्व साहित्यपरसे समर्थन नहीं होता, बादको उमास्वातिके द्वारा प्रतिष्ठित हुआ है। कार्तिकेयानुप्रेक्षामें इसी क्रमको अपनाया गया है। अतः यह ग्रंथ उमास्वातिसे पूर्वका नहीं बनता और जब उमास्वातिके पूर्वका नहीं बनता तब यह उन स्वामिकार्तिकेयकी कृति भी नहीं हो सकता जो हरिषेणादिकथाकोषोंकी उक्त कथाके मुख्य पात्र हैं, भगवती आराधनाकी गाथा नं० १५४९ में 'अग्निदयित' (अग्निपुत्र) के नामसे उल्लेखित हैं अथवा अनुत्तरोपपाददशाङ्गमें वर्णित दश अनगारोंमें जिनका नाम है। इससे अधिक ग्रंथकार और ग्रंथके समय-सम्बन्धमें इस क्रम-विभिन्नतापरसे और कुछ फलित नहीं होता।

अब रही दूसरे कारणकी बात, जहाँ तक मैंने उसपर विचार किया है और ग्रंथकी पूर्वापर स्थितिको देखा है उसपरसे मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं होता कि ग्रंथमें उक्त गाथा नं० २७९ की स्थिति बहुत ही संदिग्ध है और वह मूलतः ग्रंथका अंग मालूम नहीं होती—बादको किसी तरहपर प्रक्षिप्त हुई जान पड़ती है। क्योंकि उक्त गाथा 'लोकभावना' अधिकारके अन्तर्गत है, जिसमें लोकसंस्थान, लोकवर्ती जीवादि छह द्रव्य, जीवके ज्ञान-गुण और श्रुतज्ञानके विकल्परूप नैगमादि सात नय, इन सबका संक्षेपमें बड़ा ही सुन्दर व्यवस्थित वर्णन गाथा नं० ११५ से २६८ तक पाया जाता है। २७८ वीं गाथामें नयोंके कथनका उपसंहार इस प्रकार किया गया है:—

एवं विविह-णएहिं जो वत्थू ववहरेदि लोयम्मि।
दंसण-णाण-चरित्तं सो साहदि सग्ग-मोक्खं च ॥ २७८ ॥

इसके अनन्तर 'विरला णिसुणहिं तच्चं' इत्यादि गाथा नं० २७९ है, जो औपदेशिक ढंगको लिये हुए है और ग्रंथकी तथा इस अधिकारकी कथन-शैलीके साथ कुछ संगत मालूम नहीं होती—खासकर क्रमप्राप्त गाथा नं० २८० की उपस्थितिमें, जो उसकी स्थितिको और भी संदिग्ध कर देती है, और जो निम्न प्रकार है:—

तच्चं कहिज्जमाणं णिच्चलभावेण गिह्लदे जो हि।
तं चि य भावेइ सया सो वि य तच्चं वियाणेई ॥ २८० ॥

इसमें बतलाया है कि, 'जो उपर्युक्त तत्त्वको—जीवादि-विषयक तत्त्वज्ञानको अथवा उसके मर्मको—स्थिरभावसे— दृढताके साथ— ग्रहण करता है और सदा उसकी भावना रखता है वह तत्त्वको सविशेष रूपसे जाननेमें समर्थ होता है।'

इसके अनन्तर दो गाथाएँ और देकर 'एवं लोयसहावं जो झायदि' इत्यादिरूपसे गाथा नं० २८३ दी हुई है, जो लोकभावनाके उपसंहारको लिये हुए उसकी समाप्तिसूचक है और अपने स्थानपर ठीक रूपसे स्थित है। वे दो गाथाएँ इस प्रकार हैं:—

को ण वसो इत्थिजणे कस्स ण मयणेण खंडियं माणं।
को इंदिएहिं ण जिओ को ण कसाएहिं संतत्तो ॥ २८१ ॥

सो ण वसो इत्थिजणे सो ण जिओ इंदिएहिं मोहेण ।
जो ण य गिह्लदि गंथं अब्भंतर बाहिरं सव्वं ॥ २८२ ॥

इनमेंसे पहली गाथामें चार प्रश्न किये गए हैं—"१ कौन स्त्रीजनोंके वशमें नहीं होता ? २ मदन-कामदेवसे किसका मान खंडित नहीं होता ?, कौन इंद्रियोंके द्वारा जीता नहीं जाता ?, ४ कौन कषायोंसे संतप्त नहीं होता ?' दूसरी गाथामें केवल दो प्रश्नोंका ही उत्तर दिया गया है जो कि एक खटकनेवाली बात है, और वह उत्तर यह है कि 'स्त्री जनों के वशमें वह नहीं होता, और वह इन्द्रियोंसे जीता नहीं जाता जो मोहसे बाह्य और आभ्यन्तर समस्त परिग्रहको ग्रहण नहीं करता है।'

इन दोनों गाथाओंकी लोकभावनाके प्रकरणके साथ कोई संगति नहीं बैठती और न ग्रंथमें अन्यत्र ही कथनकी ऐसी शैलीको अपनाया गया है । इससे ये दोनों ही गाथाएँ स्पष्ट रूपसे प्रक्षिप्त जान पड़ती हैं और अपनी इस प्रक्षिप्तताके कारण उक्त 'विरला णिसुणहिं तच्चं' नामकी गाथा नं० २७९की प्रक्षिप्तताकी संभावनाको और दृढ करती हैं। मेरी रायमें इन दोनों गाथाओंकी तरह २७९ नम्बरकी गाथा भी प्रक्षिप्त है, जिसे किसीने अपनी ग्रंथप्रति में अपने उपयोगके लिये संभवतः गाथा नं० २८० के आसपास हाशियेपर, उसके टिप्पणके रूपमें, नोट कर रक्खा होगा, और जो प्रतिलेखककी असावधानीसे मूलमें प्रविष्ट होगई है। प्रवेशका यह कार्य भ० शुभचन्द्रकी टीकासे पहले ही हुआ है, इसीसे इन तीनों गाथाओंपर भी शुभचन्द्रकी टीका उपलब्ध है और उसमें (तदनुसार पं० जयचन्द्रजीकी भाषाटीकामें भी) बड़ी खींचातानीके साथ इनका संबंध जोड़नेकी चेष्टा की गई है; परन्तु सम्बन्ध जुड़ता नहीं है। ऐसी स्थितिमें उक्त गाथाकी उपस्थितिपरसे यह कल्पित कर लेना कि उसे स्वामिकुमारने ही योगसारके दोहेको परिवर्तित करके बनाया है समुचित प्रतीत नहीं होता—खासकर उस हालतमें जब कि ग्रंथभरमें अपभ्रंश भाषाका और कोई प्रयोग भी न पाया जाता हो। बहुत संभव है कि किसी दूसरे विद्वान्ने दोहेको गाथाका रूप देकर उसे अपनी ग्रंथप्रतिमें नोट किया हो। और यह भी संभव है कि यह गाथा साधारणसे पाठभेदके साथ अधिक प्राचीन हो और योगीन्दुने ही इसपरसे थोड़ेसे परिवर्तनके साथ अपना उक्त दोहा बनाया हो; क्योंकि योगीन्दुके परमात्मप्रकाश आदि ग्रंथोंमें और भी कितने ही दोहे ऐसे पाये जाते हैं जो भावपाहुड तथा समाधितंत्रादिके पद्योंपरसे परिवर्तन करके बनाये गये हैं और जिसे डाक्टर साहबने स्वयं स्वीकार किया है; जब कि स्वामिकुमारके इस ग्रंथकी ऐसी कोई बात अभी तक सामने नहीं आई—कुछ गाथाएँ ऐसी जरूर देखनेमें आती हैं जो कुन्दकुन्द तथा शिवार्य जैसे आचार्योंके ग्रंथोंमें भी समानरूपसे पाई जाती हैं और वे और भी प्राचीन स्रोतसे सम्बन्ध रखनेवाली हो सकती हैं, जिसका एक नमूना भावनाओंके नामवाली गाथाका ऊपर दिया जा चुका है। अतः इस विवादापन्न गाथाके सम्बन्धमें उक्त कल्पना करके यह नतीजा निकालना कि, यह ग्रंथ जोइन्दुके योगसारसे—ईसाकी प्रायः छठी शताब्दीसे—बादका बना हुआ है, ठीक मालूम नहीं देता । मेरी समझमें यह ग्रंथ उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रसे अधिक बादका नहीं है—उसके निकटवर्ती किसी समयका होना चाहिये। और इसके कर्ता वे अग्निपुत्र कार्तिकेय मुनि नहीं हैं जो आमतौरपर इसके कर्ता समझे जाते हैं और क्रौंच राजाके द्वारा उपसर्गको प्राप्त हुए थे, बल्कि स्वामिकुमारनामके आचार्य ही हैं जिस नामका उल्लेख उन्होंने स्वयं अन्तमंगलकी निम्न गाथामें श्लेषरूपसे भी किया है:—

तिहुयण-पहाण-सामिं कुमार-काले वि तविय तवयरणं ।
वसुपुज्जसुयं मल्लिं चरम-तियं संथुवे णिच्चं ॥ ४८९ ॥

इसमें वसुपूज्यसुत–वासुपूज्य, मल्लि और अन्तके तीन नेमि, पार्श्व तथा वर्द्धमान ऐसे पाँच कुमार-श्रमण तीर्थंकरोंकी वन्दना की गई है, जिन्होंने कुमारावस्थामें ही जिनदीक्षा लेकर तपश्चरण किया है और जो तीन लोकके प्रधान स्वामी हैं। और इससे ऐसा ध्वनित होता है कि ग्रंथकार भी कुमारश्रमण थे, बालब्रह्मचारी थे और उन्होंने बाल्यावस्थामें ही जिनदीक्षा लेकर तपश्चरण किया है—जैसाकि उनके विषयमें प्रसिद्ध है, और इसीसे उन्होंने अपनेको विशेषरूपमें इष्ट पाँच कुमार तीर्थंकरोंकी यहाँ स्तुति की है।

स्वामि-शब्दका व्यवहार दक्षिण देशमें अधिक है और वह व्यक्तिविशेषोंके साथ उनकी प्रतिष्ठाका द्योतक होता है। कुमार, कुमारसेन, कुमारनन्दी और कुमारस्वामी जैसे नामोंके आचार्य भी दक्षिणमें हुए हैं। दक्षिण देशमें बहुत प्राचीन कालसे क्षेत्रपालकी पूजा का प्रचार रहा है और इस ग्रंथकी गाथा नं० २५ में 'क्षेत्रपाल' का स्पष्ट नामोल्लेख करके उसके विषयमें फैली हुई रक्षा-सम्बन्धी मिथ्या धारणाका निषेध भी किया है। इन सब बातों परसे ग्रंथकार महोदय प्रायः दक्षिण देशके आचार्य मालूम होते हैं, जैसा कि डाक्टर उपाध्येने भी अनुमान किया है।

२८. तिलोयपण्णत्ती और यतिवृषभ—तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) तीन लोकके स्वरूप, आकार, प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल और युग-परिवर्तनादि-विषयका निरूपक एक महत्वका प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथ है—प्रसंगोपात्त जैनसिद्धान्त, पुराण और भारतीय इतिहास-विषयको भी कितनी ही बातों एवं सामग्रीको यह साथमें लिये हुए है। इसमें १ सामान्यजगत्स्वरूप, २ नारकलोक, ३ भवनवासिलोक, ४ मनुष्यलोक, ५ तिर्यक्लोक, ६ व्यन्तरलोक, ७ ज्योतिर्लोक, ८ सुरलोक और ९ सिद्धलोक नामके ९ महाधिकार हैं। अवान्तर अधिकारोंकी संख्या १८० के लगभग है; क्योंकि द्वितीयादि महाधिकारोंके अवान्तर अधिकार क्रमशः १५, २४, १६, १६, १७ १७, २१, ५ ऐसे १३१ हैं और चौथे महाधिकारके जम्बूद्वीप, धातकीखण्डद्वीप और पुष्करद्वीप नामके अवान्तर अधिकारोंमेंसे प्रत्येकके फिर सोलह सोलह (१६×३=४८) अन्तर अधिकार हैं। इस तरह यह ग्रंथ अपने विषयके बहुत विस्तारको लिये हुए है। इसका प्रारंभ निम्न मंगलगाथासे होता है, जिसमें सिद्धि-कामनाके साथ सिद्धोंका स्मरण किया गया है :—

> अट्ठविह-कम्म-वियला णिट्ठिय-कज्जा पणट्ठ-संसारा।
> दिट्ठ-सयलट्ठ-सारा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ १ ॥

ग्रंथका अन्तिम भाग इस प्रकार है :—

> पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुण[हर]वसहं।
> दट्ठूण परिसवसहं (?) जदिवसहं धम्मसुत्तपाढगवसहं ॥९–७८॥
> चुण्णिसरूवं अत्थं करणसरूवपमाण होदि किं (?) जं तं।
> अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए ॥९–७९॥

एवं आइरियपरंपरागए तिलोयपण्णत्तीए सिद्धलोयसरूवणिरूवणपण्णत्ती णाम णवमो महाहियारो सम्मत्तो ॥

> मग्गप्पभावणट्ठं पवयण-भत्तिप्पचोदिदेण मया।
> भणिदं गंथप्पवरं सोहंतु बहुसुदाइरिया ॥९–८० ॥

तिलोयपण्णत्ती सम्मत्ता ॥

इसमें तीन गाथाएँ हैं, जिनमें पहली गाथा ग्रंथके अन्तमंगलको लिये हुए है और उसमें ग्रंथकार यतिवृषभाचार्यने 'जदिवसहं' पदके द्वारा, श्लेषरूपसे अपना नाम भी सूचित किया है[१]। इसका दूसरा और तीसरा चरण कुछ अशुद्ध जान पड़ते हैं। दूसरे चरणमें 'गुण' के अनन्तर 'हर' और होना चाहिये—देहलीकी प्रतिमें भी त्रुटित अंशके संकेत-पूर्वक उसे हाशियेपर दिया है, जिससे वह उन गुणधराचार्यका भी वाचक हो जाता है जिनके 'कसायपाहुड' सिद्धान्त ग्रंथपर यतिवृषभने चूर्णिसूत्रोंकी रचना की है और उस 'हर' शब्दके संयोगसे 'आर्यागीति' छंदके लक्षणानुरूप दूसरे चरणमें भी २० मात्राएँ हो जाती हैं जैसी कि वे चतुर्थ चरणमें पाई जाती हैं। तीसरे चरणका पाठ पं० नाथूरामजी प्रेमीने पहले यही 'दट्ठूण परिसवसहं' प्रकट किया था[२], जो देहलीकी प्रतिमें भी पाया जाता है और उसका संस्कृत रूप 'दृष्ट्वा परिषद्वृषभं' दिया था, जिसका अर्थ होता है—परिषदोंमें श्रेष्ठ परिषद् (सभा) को देखकर। परन्तु 'परिस' का अर्थ कोषमें परिषद् नहीं मिलता किन्तु 'स्पर्श' उपलब्ध होता है, परिषद्का वाचक 'परिसा' शब्द स्त्रीलिङ्ग है[३]। शायद यह देखकर अथवा दूसरे किसी कारणके वश, जिसकी कोई सूचना नहीं की गई, हालमें उन्होंने 'दट्ठूण य रिसिवसहं' पाठ दिया है[४], जिसका अर्थ होता है—'ऋषियोंमें श्रेष्ठ ऋषिको देखकर'। परन्तु 'जदिवसहं' की मौजूदगीमें 'रिसिवसहं' पद कोई खास विशेषता रखता हुआ मालूम नहीं होता—ऋषि, मुनि, यति जैसे शब्द प्रायः समान अर्थके वाचक हैं—और इसलिये वह व्यर्थ पड़ता है। अस्तु, इस पिछले पाठको लेकर पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने उसके स्थानपर 'दट्ठूण अरिसवसहं' पाठ सुझाया है[५] और उसका अर्थ 'आर्षग्रंथोंमें श्रेष्ठको देखकर' सूचित किया है। परन्तु 'अरिस' का अर्थ कोषमें 'आर्ष' उपलब्ध नहीं होता किन्तु 'अर्श' (बवासीर) नामका रोगविशेष पाया जाता है, आर्षके लिये 'आरिस' शब्दका प्रयोग होता है[६]। यदि 'अरिस' का अर्थ आर्ष भी मान लिया जाय अथवा 'प' के स्थानपर कल्पना किये गए 'अ' के लोपपूर्वक इस चरणको 'दट्ठूणारिसवसहं' ऐसा रूप देकर (जिस की उपलब्धि कहींसे नहीं होती) संधिके विश्लेषण-द्वारा इसमेंसे आर्षका वाचक 'आरिस' शब्द निकाल लिया जावे, फिर भी इस चरणमें 'दट्ठूण' पद सबसे अधिक खटकने वाली चीज मालूम होता है, जिसपर अभी तक किसीकी भी दृष्टि गई मालूम नहीं होती। क्योंकि इस पदकी मौजूदगीमें गाथाके अर्थकी ठीक संगति नहीं बैठती—उसमें प्रयुक्त हुआ 'पणमह' (प्रणाम करो) क्रिया पद कुछ बाधा उत्पन्न करता है और उससे अर्थ सुव्यवस्थित अथवा सुशृंखलित नहीं हो पाता। ग्रंथकारने यदि 'दट्ठूण' (दृष्ट्वा) पदको अपने विषयमें प्रयुक्त किया है तो दूसरा क्रियापद भी अपने ही विषयका होना चाहिये था अर्थात् वृषभ या ऋषिवृषभ आदिको देखकर मैंने यह कार्य किया या मैं प्रणामादि अमुक कार्य करता हूँ ऐसा कुछ बतलाना चाहिये था, जिसकी गाथापरसे उपलब्धि नहीं होती। और यदि यह पद दूसरोंसे सम्बन्ध रखता है—उन्हींकी प्रेरणाके लिये प्रयुक्त हुआ है—तो 'दट्ठूण' और 'पणमह' दोनों क्रियापदोंके लिये गाथामें अलग अलग कर्मपदोंकी संगति बिठलानी चाहिये, जो नहीं बैठती। गाथाके वसहान्त पदोंमेंसे एकका वाच्य तो देखनेकी ही वस्तु हो

१ श्लेषरूपसे नाम-सूचनकी पद्धति अनेक ग्रंथोंमें पाई जाती है। देखो, गोम्मटसार, नीतिवाक्यामृत और प्रभाचन्द्रादिके ग्रंथ।

२ देखो, जैनहितैषी भाग १३ अंक १२ पृ० ५२८।

३ देखो, 'पाइअसद्दमहण्णव' कोश।

४ देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० ६।

५ देखो जैनसिद्धान्तभास्कर भाग ११ किरण १, पृ० ८०।

६ देखो, 'पाइअसद्दमहण्णव' कोश।

और दूसरेका वाच्य प्रणामकी वस्तु, यह बात संदर्भपरसे कुछ संगत मालूम नहीं होती। और इसलिये 'दट्ठूण' पदका अस्तित्व यहाँ बहुत ही आपत्तिके योग्य जान पड़ता है। मेरी रायमें यह तीसरा चरण 'दट्ठूण परिसवसहं' के स्थानपर 'दुट्ठुपरीसहविसहं' होना चाहिये। इससे गाथाके अर्थकी सब संगति ठीक बैठ जाती है। यह गाथा जयधवलाके १० वें अधिकारमें बतौर मंगलाचरणके अपनाई गई है, वहाँ इसका तीसरा चरण 'दुसह-परीसहविसहं' दिया है। परिषहके साथ दुसह (दुःसह) और दुठ्ठु(दुष्ट)दोनों शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं—दोनोंका आशय परीषहको बहुत बुरी तथा असह्य बतलानेका है। लेखकों की कृपासे 'दुसह'की अपेक्षा 'दुट्ठु' के 'दट्ठूण' होजानेकी अधिक संभावना है, इसीसे यहाँ 'दुट्ठु' पाठ सुझाया गया है वैसे 'दुसह' पाठ भी ठीक है। यहाँ इतना और भी जान लेना चाहिये कि जयधवलामें इस गाथाके दूसरे चरणमें 'गुणवसहं' के स्था पर 'गुणहर-वसहं' पाठ ही दिया है और इस तरह इस गाथाके दोनों चरणोंमें जो गलती और शुद्धि सुझाई गई है उसकी पुष्टि भले प्रकार हो जाती है।

दूसरी गाथामें इस तिलोयपण्णत्तीका परिमाण आठ हजार श्लोक-जितना बतलाया है। साथ ही, एक महत्वकी बात और सूचित की है और वह यह कि यह आठ हजारका परिमाण चूर्णिस्वरूप अर्थका और करणस्वरूपका जितना परिमाण है उसके बराबर है। इससे दो बातें फलित होती हैं—एक तो यह कि गुणधराचार्यके कसायपाहुड ग्रंथपर यति-वृषभने जो चूर्णिसूत्र रचे हैं वे इस ग्रंथसे पहले रचे जा चुके हैं; दूसरी यह कि 'करणस्वरूप' नामका भी कोई ग्रंथ यतिवृषभके द्वारा रचा गया है, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। वह भी इस ग्रंथसे पहले बन चुका था। बहुत संभव है कि वह ग्रंथ उन करण-सूत्रोंका ही समूह हो जो गणितसूत्र कहलाते हैं और जिनका कितना ही उल्लेख त्रिलोक-प्रज्ञप्ति, गोम्मटसार, त्रिलोक-सार और धवला-जैसे ग्रंथोंमें पाया जाता है। चूर्णिसूत्रोंकी—जिन्हें वृत्तिसूत्र भी कहते हैं—संख्या चूंकि छह हजार श्लोक-परिमाण है अतः 'करणस्वरूप' ग्रंथकी संख्या दोहजार श्लोक-परिमाण समझनी चाहिये; तभी दोनोंकी संख्या मिलकर आठ हजारका परिमाण इस ग्रंथका बैठता है। तीसरी गाथामें यह निवेदन किया गया है कि यह ग्रंथ प्रवचनभक्तिसे प्रेरित होकर मार्गकी प्रभावनाके लिये रचा गया है, इसमें कहीं कोई भूल हुई हो तो बहुश्रुत आचार्य उसका संशोधन करें।

(क) ग्रंथकार यतिवृषभ और उनका समय—

ग्रंथमें रचना-काल नहीं दिया और न ग्रंथकारने अपना कोई परिचय ही दिया है —उक्त दूसरी गाथापरसे इतना ही ध्वनित होता है कि 'वे धर्मसूत्रके पाठकोंमें श्रेष्ठ थे'। और इसलिये ग्रंथकार तथा ग्रंथके समय-सम्बन्धादिमें निश्चितरूपसे कुछ कहना सहज नहीं है। चूर्णिसूत्रोंको देखनेसे मालूम होता है कि यतिवृषभ एक अच्छे प्रौढ सूत्रकार थे और प्रस्तुत ग्रंथ जैनशास्त्रोंके विषयमें उनके अच्छे विस्तृत अध्ययनको व्यक्त करता है। उनके सामने 'लोकविनिश्चय' 'संगाइणी' (संग्रहणी ?) और 'लोकविभाग (प्राकृत)' जैसे कितने ही ऐसे प्राचीन ग्रंथ भी मौजूद थे जो आज अपनेको उपलब्ध नहीं हैं और जिनका उन्होंने अपने इस ग्रंथमें उल्लेख किया है। उनका यह ग्रंथ प्रायः प्राचीन ग्रंथोंके आधारपर ही लिखा गया है इसीसे उन्होंने ग्रंथकी पीठिकाके अन्तमें ग्रंथ-रचनेकी प्रतिज्ञा करते हुए उसके विषयको 'आयरिय-अणुक्कमायादं' (गा० ८६) बतलाया है और महाधिकारोंके संधिवाक्योंमें प्रयुक्त हुए 'आयरियपरंपरागए' पदके द्वारा भी उसी बातको पुष्ट किया है। और इस तरह यह घोषित किया है कि इस ग्रंथका मूल विषय उनका स्वरुचि-विरचित नहीं है, किन्तु आचार्यपरम्पराके आधारको लिये हुए है। रही उपलब्ध करणसूत्रोंकी बात, वे यदि आपके उस 'करणस्वरूप' ग्रंथके ही अंग हैं, जिसकी अधिक संभावना है, तब

तो कहना ही क्या है ? वे सब आपके उस विषयके पाण्डित्य और आपकी बुद्धिकी खूबी तथा उसकी सूक्ष्मताके अच्छे परिचायक हैं।

जयधवलाकी आदिमें मंगलाचरण करते हुए श्रीवीरसेनाचार्यने यतिवृषभका जो स्मरण किया है वह इस प्रकार है :—

जो अज्जमंखु-सीसो अंतेवासी वि णागहत्थिस्स ।
सो वित्तिसुत्त-कत्ता जइवसहो मे वरं देउ ॥ ८ ॥

इसमें यतिवृषभको, कसायपाहुडपर लिखे गए उन वृत्ति (चूर्णि) सूत्रोंका कर्ता बतलाते हुए जिन्हें साथमें लेकर ही जयधवला टीका लिखी गई है, आर्यमंक्षुका शिष्य और नागहस्तिका अन्तेवासी बतलाया है, और इससे यतिवृषभके दो गुरुओंके नाम सामने आते हैं, जिनके विषयमें जयधवलापरसे इतना और जाना जाता है कि श्रीगुणधराचार्यने कसायपाहुड अपर नाम पेज्जदोसपाहुडका उपसंहार (संक्षेप) करके जो सूत्रगाथाएँ रची थीं वे इन दोनोंको आचार्यपरम्परासे प्राप्त हुई थीं और ये उनके अर्थके भले प्रकार जानकार थे, इनसे समीचीन अर्थको सुनकर ही यतिवृषभने, प्रवचन-वात्सल्यसे प्रेरित होकर उन सूत्र-गाथाओंपर चूर्णिसूत्रोंकी रचना की है[१]। ये दोनों जैनपरम्पराके प्राचीन आचार्योंमें हैं और इन्हें दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंने माना है—श्वेताम्बर सम्प्रदायमें आर्यमंक्षुको आर्यमंगु नामसे उल्लेखित किया है, मंगु और मंक्षु एकार्थक हैं। धवला-जयधवलामें इन दोनों आचार्योंको 'क्षमाश्रमण' और 'महावाचक' भी लिखा है[२] जो उनकी महत्ताके द्योतक हैं। इन दोनों आचार्योंके सिद्धान्त-विषयक उपदेशोंमें कहीं कहीं कुछ सूक्ष्म मतभेद भी रहा है जो वीरसेनको उनके ग्रंथों अथवा गुरुपरम्परासे ज्ञात था, और इसलिये उन्होंने धवला और जयधवला टीकाओंमें उसका उल्लेख किया है। ऐसे जिस उपदेशको उन्होंने सर्वाचार्यसम्मत, अव्युच्छिन्न-सम्प्रदाय-क्रमसे चिरकालागत और शिष्यपरंपरामें प्रचलित तथा प्रज्ञापित समझा है उसे 'पवाइज्जंत' 'पवाइज्जमाण' उपदेश बतलाया है और जो ऐसा नहीं उसे 'अपवाइज्जंत' अथवा 'अपवाइज्जमाण' नाम दिया है[३]। उल्लिखित मतभेदोंमें आर्यनागहस्तिके अधिकांश उपदेश 'पवाइज्जंत' और आर्यमंक्षुके 'अपवाइज्जंत' बतलाये गए हैं। इस तरह यतिवृषभ दोनोंका शिष्यत्व प्राप्त करनेके कारण उन सूक्ष्म मत-

---

१ 'पुणो तेण गुणहर-भडारएण णाणपवाद-पंचमपुव्व-दसम वत्थु-तदियकसायपाहुड-महण्णव-पारएण गंथवोच्छेदभएण वच्छलपरवसिकयहियएण एवं पेज्जदोसपाहुडं सोलसपदसहस्सपरिमाणं होंतं असीदिसदमेत्तगाहाहि उपसंहारिदं। पुणो ताओ चेय सुत्तगाहाओ आइरियपरंपराए आगच्छमाणाओ अज्जमंखु-णागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाणं गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जइवसह-भडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं ।"—जयधवला।

२ "कम्मट्ठिदि त्ति अणियोगद्दारे हि भण्णमाणे वे उवएसा होंति। जहण्णमुक्कस्सट्ठिदीणं पमाणपरूवणा कम्मट्ठिदिपरूवणे त्ति णागहत्थि-खमासमणा भणंति। अज्जमंखु-खमासमणा पुण कम्मट्ठिदिपरूवणे त्ति भणंति। एवं दोहि उवएसेहि कम्मट्ठिदिपरूवणा कायव्वा।" "एत्थ दुवे उवएसा...... ......महावाचयाणमज्जमंखुखवणाणमुवएसेण लोगपूरिदे आउगसमाणं णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्मं ठवेदि। महावाचयाणं णागहत्थि-खवणाणमुवएसेण लोगे पूरिदे णामा-गोद-वेदणीयाण ट्ठिदिसंतकम्मं अंतोमुहुत्तपमाणं होदि।—षट्खं० १ प्र० पृ० ५७

३ "सव्वाइरिय-सम्मदो चिरकालमवोच्छिण्णसंपदायकमेणागच्छमाणो जो सिस्सपरंपराए पवाइज्जदे सो पवाइज्जंतोवएसो त्ति भण्णदे। अथवा अज्जमंखुभयवंताणमुवएसो एत्थाऽपवाइज्जमाणो णाम। णागहत्थिखमणाणमुवएसो पवाइज्जंतो त्ति घेत्तव्वो।—जयध० प्र० पृ० ४३।

भेदोंकी बातोंसे भी अवगत थे, यह सहज ही में जाना जाता है। वीरसेनने यतिवृषभको एक बहुत प्रामाणिक आचार्यके रूपमें उल्लेखित किया है और एक प्रसंगपर राग-द्वेष-मोह के अभावको उनकी वचन-प्रमाणतामें कारण बतलाया है[1]। इन सब बातोंसे आचार्य यतिवृषभका महत्व स्वतः ख्यापित हो जाता है।

अब देखना यह है कि यतिवृषभ कब हुए हैं और कब उनकी यह तिलोयपण्णत्ती बनी है, जिसके वाक्योंको धवलादिकमें उद्धृत करते हुए अनेक स्थानोंपर श्रीवीरसेनने उसे 'तिलोयपण्णत्तिसुत्त' सूचित किया है। यतिवृषभके गुरुओंमेंसे यदि किसीका भी समय सुनिश्चित होता तो इस विषयका कितना ही काम निकल जाता; परन्तु उनका भी समय सुनिश्चित नहीं है। श्वेताम्बर पट्टावलियोंमेंसे 'कल्पसूत्रस्थविरावली' और 'पट्टावलीसारोद्धार' जैसी कितनी ही प्राचीन तथा प्रधान पट्टावलियोंमें तो आर्यमंगु और आर्यनागहस्तिका नाम ही नहीं है, किसी किसी पट्टावलीमें एकका नाम है तो दूसरेका नहीं और जिनमें दोनोंका नाम है उनमेंसे कोई दोनोंके मध्यमें एक आचार्यका और कोई एकसे अधिक आचार्योंका नामोल्लेख करती है। कोई कोई पट्टावली समयका निर्देश ही नहीं करती और जो करती है उनमें इन दोनोंके समयोंमें परस्पर अन्तर भी पाया जाता है—जैसे आर्यमंगु का समय तपागच्छ-पट्टावलीमें वीरनिर्वाणसे ४६७ वर्षपर और 'सिरिदुसमाकाल-समणसंघथयं' की अवचूरिमें ४५० पर बतलाया है[2]। और दोनोंका एक समय तो किसी भी श्वे० पट्टावलीसे उपलब्ध नहीं होता बल्कि दोनोंमें १५० या १३० वर्षके करीबका अन्तराल पाया जाता है; जब कि दिगम्बर परम्पराका स्पष्ट उल्लेख दोनोंको यतिवृषभके गुरुरूपमें प्रायः समकालीन बतलाता है। ऐसी स्थितिमें श्वे० पट्टावलियोंको उक्त दोनों आचार्योंके समयादि-विषयमें विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। और इसलिये यतिवृषभादिके समयका अब तिलोयपण्णत्तीके उल्लेखोंपरसे अथवा उसके अन्तःपरीक्षणपरसे ही अनुसंधान करना होगा। तदनुसार ही नीचे उसका यत्न किया जाता है :—

(१) तिलोयपण्णत्तीके अनेक पद्योंमें 'संगाइणी' तथा 'लोकविनिश्चय' ग्रंथके साथ 'लोकविभाग' नामके ग्रंथका भी स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। यथा :—

> जलसिहरे विक्खंभो जलणिहिणो जोयणा दससहस्सा।
> एवं संगाइणिए लोयविभाए विणिद्दिट्ठं ॥ अ० ४ ॥
> लोयविणिच्छय-गंथे लोयविभागम्मि सव्वसिद्धाणं।
> ओगाहण-परिमाणं भणिदं किंचूणचरिमदेहसमो ॥ अ० ६ ॥

यह 'लोकविभाग' ग्रंथ उस प्राकृत लोकविभाग ग्रंथसे भिन्न मालूम नहीं होता, जिसे प्राचीन समयमें सर्वनन्दी आचार्यने लिखा (रचा) था, जो कांचीके राजा सिंहवर्माके राज्यके २२ वें वर्ष—उस समय जबकि उत्तराषाढ नक्षत्रमें शनिश्चर वृषराशिमें वृहस्पति, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रमा था, शुक्लपक्ष था—शक संवत् ३८० में लिखकर पाणराष्ट्रके पाटलिक ग्राममें पूरा किया गया था और जिसका उल्लेख सिंहसूर[3] के उस संस्कृत 'लोक-

---

१ "कुदो णव्वदे? एदम्हादो चेव जइवसहाइरियमुहकमलविणिग्गयचुण्णिसुत्तादो। चुण्णिसुत्तमण्णहा किं ण होदि? ण, रागदोसमोहाभावेण पमाणत्तमुवगय—जइवसह-वयणस्स असच्चत्तविरोहादो।"

—जयध० प्र० पृ० ४६

२ देखो, 'पट्टावलीसमुच्चय'।

३ 'सिंहसूरर्षिणा' पदपरसे 'सिंहसूर' नामकी उपलब्धि होती है—सिंहसूरिकी नहीं, जिसके 'सूरि' पदको 'आचार्य' पदका वाचक समझकर पं० नाथूरामजी प्रेमीने (जैन साहित्य और इतिहास पृ० ५ पर)

विभाग' के निम्न पद्योंमें पाया जाता है, जो कि सर्वनन्दीके लोकविभागको सामने रख कर ही भाषाके परिवर्तनद्वारा रचा गया है:—

वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे, राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाणराष्ट्रे, शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥३॥
संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीश-सिंहवर्मणः।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥ ४ ॥

तिलोयपण्णत्तीकी उक्त दोनों गाथाओंमें जिन विशेष वर्णनोंका उल्लेख 'लोकविभाग' आदि ग्रंथोंके आधारपर किया गया है वे सब संस्कृत लोकविभागमें भी पाये जाते हैं[2]। और इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि संस्कृतका उपलब्ध लोकविभाग उक्त प्राकृत लोकविभागको सामने रखकर ही लिखा गया है।

इस सम्बन्धमें एक बात और भी प्रकट कर देने की है और वह यह कि संस्कृत लोकविभागके अन्तमें उक्त दोना पद्योंके बाद एक पद्य निम्न प्रकार दिया है:—

पंचदशशतान्याहुः षट्त्रिंशदधिकानि वै।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेदं छंदसानुष्टुभेन च ॥ ५ ॥

इसमें ग्रंथकी संख्या १५३६ श्लोक-परिमाण बतलाई है, जबकि उपलब्ध[3] संस्कृत-लोकविभागमें वह २०३० के करीब जान पड़ती है। मालूम होता है कि यह १५३६ की श्लोकसंख्या उसी पुराने प्राकृत लोकविभागकी है—यहाँ उसके संख्यासूचक पद्यका भी अनुवाद करके रख दिया है। इस संस्कृत ग्रंथमें जो ५०० श्लोक जितना पाठ अधिक है वह प्रायः उन 'उक्तं च' पद्योंका परिमाण है जो इस ग्रंथमें दूसरे ग्रंथोंसे उद्धृत करके रक्खे गये हैं—१०० से अधिक गाथाएँ तो तिलोयपण्णत्तीकी ही हैं, २०० के करीब श्लोक भगवज्जिनसेनके आदिपुराणसे उठाकर रक्खे गये हैं और शेष ऊपरके पद्य तिलोयसार (त्रिलोकसार) और जंबूदीवपण्णत्ती (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति) आदि ग्रंथोंसे लिये गये हैं। इस तरह इस ग्रंथमें भाषाके परिवर्तन और दूसरे ग्रंथोंसेकुछ पद्योंके 'उक्तं च' रूपसे उद्धरणके सिवाय सिंहसूरकी प्रायः और कुछ भी कृति मालूम नहीं होती। बहुत संभव है कि 'उक्तं च' रूपसे जो यह पद्योंका संग्रह पाया जाता है वह स्वयं सिंहसूर मुनिके द्वारा न किया गया हो, बल्कि बादको किसी दूसरे ही विद्वानके द्वारा अपने तथा दूसरोंके विशेष उपयोगके लिये किया गया हो; क्योंकि ऋषि सिंहसूर जब एक प्राकृत ग्रंथका संस्कृतमें—मात्र भाषाके परिवर्तन रूपसे ही—अनुवाद करने बैठें—व्याख्यान नहीं, तब उनके लिये यह संभावना बहुत ही कम जान पड़ती है कि वे दूसरे प्राकृतादि ग्रंथोंपरसे तुलनादिके लिये कुछ वाक्योंको स्वयं

नामके अधूरेपनकी कल्पना की है और "पूरा नाम शायद सिंहनन्दि हो" ऐसा सुझाया है। छंदकी कठिनाईका हेतु कुछ भी समीचीन मालूम नहीं होता; क्योंकि सिंहनन्दि और सिंहसेन-जैसे नामोंका वहाँ सहज ही समावेश किया जा सकता था।

१ "आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा,
भाषायाः परिवर्तनेन निपुणैः सम्मानितं साधुभिः।"

२ "दशैवैष सहस्राणि मूलेऽग्रेपि पृथुर्मतः।"—प्रकरण २
"अन्त्यकायप्रमाणात्तु किञ्चित्संकुचितात्मकाः॥"—प्रकरण ११

३ देखो, आरा जैनसिद्धान्तभवनकी प्रति और उसपरसे उतारी हुई वीरसेवामन्दिरकी प्रति।

उद्धृत करके उन्हें ग्रंथका अंग बनाएं। यदि किसी तरह उन्हींके द्वारा यह उद्धरण-कार्य सिद्ध किया जा सके तो कहना होगा कि वे विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके अन्तमें अथवा उसके बाद हुए हैं; क्योंकि इसमें आचार्य नेमिचन्द्रके त्रिलोकसारकी गाथाएँ भी 'उक्तं च त्रैलोक्यसारे' जैसे वाक्यके साथ उद्धृत पाई जाती हैं। और इसलिये इस सारी परिस्थिति परसे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं होता कि तिलोयपण्णत्तीमें जिस लोकविभागका उल्लेख है वह वही सर्वनन्दीका प्राकृत-लोकविभाग है जिसका उल्लेख ही नहीं किन्तु अनुवादितरूप संस्कृत लोकविभागमें पाया जाता है। चूंकि उस लोकविभागका रचनाकाल शक संवत् ३८० (वि० सं० ५१५) है अतः तिलोयपण्णत्तीके रचयिता यतिवृषभ शक सं० ३८० के बाद हुए हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। अब देखना यह है कि कितने बाद हुए हैं।

(२) तिलोयपण्णत्तीमें अनेक काल-गणनाओंके आधारपर 'चतुर्मुख' नामक कल्कि[१] की मृत्यु वीरनिर्वाणसे एक हजार वर्ष बाद बतलाई है, उसका राज्यकाल ४२ वर्ष दिया है, उसके अत्याचारों तथा मारे जानेकी घटनाओंका उल्लेख किया है और मृत्युपर उसके पुत्र अजितंजयका दो वर्ष तक धर्मराज्य होना लिखा है। साथ ही, बादको धर्मकी क्रमशः हानि बतलाकर और किसी राजाका उल्लेख नहीं किया है। इस प्रकारकी कुछ गाथाएँ निम्न प्रकार हैं, जो कि पालकादिके राज्यकाल ९५८ का उल्लेख करनेके बाद दी गई हैं :—

> "तत्तो कक्की जादो इंदसुदो तस्स चउमुहो णामो।
> सत्तरि-वरिसा आऊ विगुणिय-इगवीस-रज्जत्तो ॥ ९९ ॥
> आचारांगधरादो पणहत्तरि-जुत्त दुसय-वासेसुं।
> वोलीणेसुं बद्धो पट्टो कक्की स णरवइणो ॥ १०० ॥"
> "अह को वि असुरदेओ ओहीदो मुणिगणाण उवसग्गं।
> णादूणं तक्ककक्की मेरेदि हु धम्मदोहि त्ति ॥ १०३ ॥
> कक्किसुदो अजिदंजय-णामो रक्खदि णमदि तच्चरणे।
> तं रक्खदि असुरदेओ धम्मे रज्जं करेज्जंति ॥ १०४ ॥
> तत्तो दो वे वासो सम्मं धम्मो पयट्टदि जणाणं।
> कमसो दिवसे दिवसे कालमहप्पेण हाएदे ॥ १०५ ॥"

इस घटनाचक्रपरसे यह साफ मालूम होता है कि तिलोयपण्णत्तीकी रचना कल्कि राजाकी मृत्युसे १०–१२ वर्षसे अधिक बादकी नहीं है। यदि अधिक बादकी होती तो ग्रंथपद्धतिको देखते हुए संभव नहीं था कि उसमें किसी दूसरे प्रधान राज्य अथवा राजाका

---

१ कल्कि निःसन्देह ऐतिहासिक व्यक्ति हुआ है, इस बातको इतिहासज्ञोंने भी मान्य किया है। डा० के० बा० पाठक उसे 'मिहिरकुल' नामका राजा बतलाते हैं और जैन काल-गणनाके साथ उसकी संगति बिठलाते हैं, जो बहुत अत्याचारी था और जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्तसाङ्गने अपने यात्रा-वर्णनमें विस्तारके साथ किया है तथा राजतरंगिणीमें भी जिसकी दुष्टताका हाल दिया है। परन्तु डा० काशीप्रसाद (के० पी०) जायसवाल इस मिहिरकुलको पराजित करनेवाले मालवाधिपति विष्णुयशोधर्माको ही हिन्दू पुराणों आदिके अनुसार 'कल्कि' बतलाते हैं, जिसका विजयस्तम्भ मन्दसौरमें स्थित है और वह ई० सन् ५३३–३४ में स्थापित हुआ था। (देखो, जैनहितैषी भाग १३ अंक १२ में जायसवालजीका 'कल्कि-अवतारकी ऐतिहासिकता' और पाठकजीका 'गुप्त राजाओंका काल, मिहिरकुल और कल्कि' नामक लेख पृ० ५१६ से ५२५।)

उल्लेख न किया जाता। अस्तु; वीर-निर्वाण शकराजा अथवा शक संवत्से ६०५ वर्ष ५ महीने पहले हुआ है, जिसका उल्लेख तिलोयपण्णत्तीमें भी पाया जाता है[1]। एक हजार वर्षमेंसे इस संख्याको घटानेपर ३६४ वर्ष ७ महीने अवशिष्ट रहते हैं। यही (शक संवत् ३६५) कल्किकी मृत्युका समय है। और इसलिये तिलोयपण्णत्तीका रचनाकाल शक सं० ४०५ (वि० सं० ५४०) के करीबका जान पड़ता है जब कि लोकविभागको बने हुए २५ वर्षके करीब हो चुके थे, और यह अर्सा लोकविभागकी प्रसिद्धि तथा यतिवृषभ तक उसकी पहुँचके लिये पर्याप्त है।

(ख) यतिवृषभ और कुन्दकुन्दके समय-सम्बन्धमें प्रेमीजीके मतकी आलोचना—

ये यतिवृषभ कुन्दकुन्दाचार्यसे २०० वर्षसे भी अधिक समय बाद हुए हैं, इस बात को सिद्ध करनेके लिये मैंने 'श्रीकुन्दकुन्द और यतिवृषभमें पूर्ववर्ती कौन?' नामका एक लेख आजसे कोई ६ वर्ष पहले लिखा था[2]। उसमें, इन्द्रनन्दि-श्रुतावतारके कुछ गलत तथा भ्रान्त उल्लेखोंपरसे बनी हुई और श्रीधर-श्रुतावतारके उससे भी अधिक गलत एवं आपत्तिके योग्य उल्लेखोंपरसे पुष्ट हुई कुछ विद्वानोंकी गलत धारणाको स्पष्ट करते हुए, मैंने सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीकी उन युक्तियोंपर विचार किया था जिनके आधारपर वे कुन्दकुन्दको यतिवृषभके बादका विद्वान बतलाते हैं। उनमेंसे एक युक्ति तो इन्द्रनन्दि-श्रुतावतारपर ही अपना आधार रखती है; दूसरी प्रवचनसारकी 'एस सुरासुर' नामकी आद्य मंगल-गाथासे सम्बन्धित है, जो तिलोयपण्णत्तीके अन्तिम अधिकारमें भी पाई जाती है और जिसे प्रेमीजीने तिलोयपण्णत्तीपरसे ही प्रवचनसारमें लीगई लिखा था; और तीसरी कुन्दकुन्दके नियमसारकी निम्न गाथा से सम्बन्ध रखती है, जिसमें प्रयुक्त हुए 'लोयविभागेसु' पदमें प्रेमीजी सर्वनन्दीके 'लोकविभाग' ग्रंथका उल्लेख समझते हैं और चूंकि उसकी रचना शक सं० ३८० में हुई है अतः कुन्दकुन्दाचार्यको शक सं० ३८० (वि० सं० ५१५) के बादका विद्वान ठहराते हैं:—

चउदसभेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं लोयविभागेसु णादव्वं ॥१७॥

'एस सुरासुर' नामकी गाथाको कुन्दकुन्दकी सिद्ध करनेके लिये मैंने जो युक्तियाँ दी थीं उनपरसे प्रेमीजीका विचार अपनी दूसरी युक्तिके सम्बन्धमें तो बदल गया है, ऐसा उनके 'जैनसाहित्य और इतिहास' नामक ग्रन्थके प्रथम लेख 'लोकविभाग और तिलोयपण्णत्ति' परसे जाना जाता है। उसमें उन्होंने उक्त गाथाको स्थितिको प्रवचनसार-में सुदृढ स्वीकार किया है, उसके अभावमें प्रवचनसारकी दूसरी गाथा 'सेसे पुण तित्थयरे' को लटकती हुई माना है और तिलोयपण्णत्तीके अन्तिम अधिकारके अन्तमें पाई जाने वाली कुन्थुनाथसे वर्द्धमान तककी स्तुति-विषयक ८ गाथाओंके सम्बन्धमें, जिनमें उक्त गाथा भी शामिल है, लिखा है कि—'बहुत संभव है कि ये सब गाथाएं मूलग्रंथकी न हों, पीछेसे किसीने जोड़ दी हों और उनमें प्रवचनसारकी उक्त गाथा आ गई हो।"

---

१ णिव्वाणे वीरजिणे छव्वास-सदेसु पंच-वरसेसु।
पण-मासेसु गदेसुं संजादो सग-णिओ अहवा ॥—तिलोयपण्णत्ती
पण-छस्सय-वस्सं पणमासजुदं गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहियसगमासं ॥—त्रिलोकसार

वीरनिर्वाण और शक संवत्की विशेष जानकारीके लिये, लेखककी 'भगवान महावीर और उनका समय' नामकी पुस्तक देखनी चाहिये।

२ देखो, अनेकान्त वर्ष २ नवम्बर सन् १९३८ की किरण नं० १

दूसरी युक्तिके संबन्धमें मैंने यह बतलाया था कि इन्द्रनन्दि-श्रुतावतारके जिस उल्लेख[1] परसे कुन्दकुन्द (पद्मनन्दी) को यतिवृषभके बादका विद्वान समझा जाता है। उसका अभिप्राय 'द्विविध सिद्धान्त' के उल्लेखद्वारा यदि कसायपाहुड (कषायप्राभृत) को उसकी टीकाओं-सहित कुन्दकुन्द तक पहुँचाना है तो वह जरूर गलत है और किसी गलत सूचना अथवा गलतफहमीका परिणाम है। क्योंकि कुन्दकुन्द यतिवृषभसे बहुत पहले हुए हैं, जिसके कुछ प्रमाण भी दिये थे। साथ ही, यह भी बतलाया था कि यद्यपि इन्द्रनन्दी ने यह लिखा है कि 'गुणधर और धरसेन आचार्योंकी गुरु-परम्पराका पूर्वाऽपरक्रम, उनके वंशका कथन करनेवाले शास्त्रों तथा मुनिजनोंका उस समय अभाव होनेसे, उन्हें मालूम नहीं है[2]'; परन्तु दोनों सिद्धान्त-ग्रन्थोंके अवतारका जो कथन दिया है वह भी उन ग्रन्थों तथा उनकी टीकाओंको स्वयं देखकर लिखा गया मालूम नहीं होता—सुना-सुनाया जान पड़ता है। यही वजह है जो उन्होंने आर्यमंक्षु और नागहस्तिको गुणधराचार्यका साक्षात् शिष्य घोषित कर दिया और लिख दिया है कि 'गुणधराचार्यने कसायपाहुडकी सूत्रगाथाओंको रचकर उन्हें स्वयं ही उनकी व्याख्या करके आर्यमंक्षु और नागहस्तिको पढाया था[3]; जबकि उनकी टीका जयधवलामें स्पष्ट लिखा है कि 'गुणधराचार्यकी उक्त सूत्रगाथाएँ आचार्यपरम्परासे चली आती हुई आर्यमंक्षु और नागहस्तिको प्राप्त हुई थीं—गुणधराचार्यसे उन्हें उनका सीधा (Jir ct आदान-प्रदान नहीं हुआ था। जैसा कि उसके निम्न अंशसे प्रकट है:—

"पुणो ताओ सुत्तगाहाओ आइरिय-परंपराए आगच्छमाणाओ अज्जमंखु-णागहत्थीणं पत्ताओ।"

और इसलिये इन्द्रनन्दिश्रुतावतारके उक्त कथनकी सत्यतापर कोई भरोसा अथवा विश्वास नहीं किया जा सकता। परन्तु मेरी इन सब बातोंपर प्रेमीजीने कोई खास ध्यान दिया मालूम नहीं होता और इसी लिये वे अपने उक्त ग्रंथगत लेखमें आर्यमंक्षु और नागहस्तिको गुणधराचार्यका साक्षात् शिष्य मानकर ही चले हैं और इस मानकर चलनेमें उन्हें यह भी खयाल नहीं हुआ कि जो इन्द्रनन्दि गुणधराचार्यके पूर्वाऽपर अन्वयगुरुओंके विषयमें एक जगह अपनी अनभिज्ञता व्यक्त करते हैं वे ही दूसरी जगह उनकी कुछ शिष्य-परम्पराका उल्लेख करके अपर (बादको होनेवाले) गुरुओंके विषयमें अपनी अभिज्ञता जतला रहे हैं, और इस तरह उनके इन दोनों कथनोंमें परस्पर भारी विरोध है! और चूंकि यतिवृषभ आर्यमंक्षु और नागहस्तिके शिष्य थे इसलिये प्रेमीजीने उन्हें गुणधराचार्यका समकालीन अथवा २०-२५ वर्ष बादका ही विद्वान सूचित किया है और साथ ही यह प्रतिपादन किया है कि 'कुन्दकुन्द (पद्मनन्दि) को दोनों सिद्धान्तोंका जो

---

१ "गाथा-चूर्ण्युच्चारणसूत्रैरुपसंहृतं कषायाख्य—
प्राभृतमेवं गुणधर-यतिवृषभोच्चारणाचार्यैः ॥१५६॥
एवं द्विविधो द्रव्य-भाव-पुस्तकगतः समागच्छत्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धान्तः कोण्डकुन्दपुरे ॥१६०॥
श्रीपद्मनन्दि-मुनिना, सोऽपि द्वादश सहस्रपरिमाणः।
ग्रन्थ-परिकर्म-कर्ता षट्खण्डाऽऽद्यत्रिखण्डस्य" ॥१६१॥

२ 'गुणधर-धरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वाऽपरक्रमोऽस्माभि—
र्न ज्ञायते तदन्वय-कथकाऽऽगम-मुनिजनाभावात् ॥१५०॥

३ एवं गाथासूत्राणि पंचदशमहाधिकाराणि।
प्रविरच्य व्याचख्यौ स नागहस्त्यार्यमंक्षुभ्याम् ॥ १५४ ॥

ज्ञान प्राप्त हुआ उसमें यतिवृषभकी चूर्णिका अन्तर्भाव भले ही न हो, फिर भी जिस द्वितीय सिद्धान्त कषायप्राभृतको कुन्दकुन्दने प्राप्त किया है उसके कर्ता गुणधर जब यतिवृषभके समकालीन अथवा २०–२५ वर्ष पहले हुए थे तब कुन्दकुन्द भी यतिवृषभके समसामयिक बल्कि कुछ पीछेके ही होंगे; क्योंकि उन्हें दोनों सिद्धान्तोंका ज्ञान 'गुरुपरिपाटीसे प्राप्त हुआ था। अर्थात् एक दो गुरु उनसे पहलेके और मानने होंगे।' और अन्तमें इन्द्रनन्दि श्रुतावतारपर अपना आधार व्यक्त करते और उनके विषयमें अपनी श्रद्धाको कुछ ढीली करते हुए यहाँ तक लिख दिया है:—"गरज यह कि इन्द्रनन्दिके श्रुतावतारके अनुसार पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द) का समय यतिवृषभसे बहुत पहले नहीं जा सकता। अब यह बात दूसरी है कि इन्द्रनन्दिने जो इतिहास दिया है, वहां गलत हो और या ये पद्मनन्दि कुन्दकुन्दके बादके दूसरे ही आचार्य हों और जिस तरह कुन्दकुन्द कोण्डकुण्डपुरके थे उसी तरह पद्मनन्दि भी कोण्डकुण्डपुरके हों।"

बादमें जब प्रेमीजीको जयधवलाका वह कथन पूरा मिल गया जिसका एक अंश 'पुणो ताओ' से आरंभ करके मैंने अपने उक्त लेखमें दिया था और जो अधिकांशमें ऊपर उद्धृत किया गया है तब ग्रंथ छप चुकनेपर उसके परिशिष्टमें आपने उस कथनको देते हुए स्पष्ट सूचित किया है कि "नागहस्ति और आर्यमंक्षु गुणधरके साक्षात् शिष्य नहीं थे।" परन्तु इस सत्यको स्वीकार करनेपर उनकी उस दूसरी युक्तिका क्या रहेगा, इस विषयमें कोई सूचना नहीं की, जब कि करनी चाहिये थी। स्पष्ट है कि उनकी इस दूसरी युक्तिमें तब कोई सार नहीं रहता और कुन्दकुन्द, द्विविध सिद्धान्तमें चूर्णिका अन्तर्भाव न होनेसे, यतिवृषभसे बहुत पहलेके विद्वान भी हो सकते हैं।

अब रही प्रेमीजीकी तीसरी युक्तिकी बात, उसके विषयमें मैंने अपने उक्त लेखमें यह बतलाया था कि 'नियमसारकी उस गाथामें प्रयुक्त हुए 'लोयविभागेसु' पदका अभिप्राय सर्वनन्दीके उक्त लोकविभागसे नहीं है और न हो सकता है; बल्कि बहुवचनान्त पद होनेसे वह 'लोकविभाग' नामके किसी एक ग्रंथविशेषका भी वाचक नहीं है। वह तो लोकविभाग-विषयक कथन-वाले अनेक ग्रंथों अथवा प्रकरणोंके संकेतको लिये हुए जान पड़ता है और उसमें खुद कुन्दकुन्दके 'लोयपाहुड'—'संठाणपाहुड' जैसे ग्रंथ तथा दूसरे 'लोकानुयोग' अथवा लोकाऽलोकके विभागको लिये हुए करणानुयोग-सम्बन्धी ग्रंथ भी शामिल किये जा सकते हैं। और इसलिये 'लोयविभागेसु' इस पदका जो अर्थ कई शताब्दियों पीछेके टीकाकार पद्मप्रभने 'लोकविभागाभिधानपरमागमे' ऐसा एकवचनान्त किया है वह ठीक नहीं है[1]।' साथ ही यह भी बतलाया था कि उपलब्ध लोकविभागमें, जो कि (उक्तं च वाक्योंको छोड़कर) सर्वनन्दीके प्राकृत लोकविभागका ही अनुवादित संस्कृतरूप है, तिर्यंचोंके उन चौदह भेदोंके विस्तार-कथनका कोई पता भी नहीं, जिसका उल्लेख नियमसारकी उक्त गाथामे किया गया है। और इससे मेरा उक्त कथन अथवा स्पष्टीकरण और भी ज्यादा पुष्ट होता है। इसके सिवाय, दो प्रमाण ऐसे उपस्थित किये थे, जिनकी मौजूदगीमें कुन्दकुन्दका समय शक सं० ३८० (वि० सं० ५१५) के बादका किसी तरह भी नहीं हो सकता। उनमें एक प्रमाण मर्कराके ताम्रपत्रका था, जो शक सं० ३८८ का उत्कीर्ण है और जिसमें देशीगणान्तर्गत कुन्दकुन्दकेअन्वय (वंश) में होनेवाले गुणचन्द्रादि छह आचार्योंका गुरु-शिष्यक्रमसे उल्लेख है। और दूसरा प्रमाण स्वयं कुन्दकुन्दके बोधपाहुडकी

---

१ मेरे इस विवेचनसे, जो 'जैनजगत' वर्ष ८ अंक ६ के एक पूर्ववर्ती लेखमें प्रथमत: प्रकट हुआ था, डा० ए० एन० उपाध्ये एम० ए० ने प्रवचनसारकी प्रस्तावना (पृ० २२, २३) में अपनी पूर्ण सहमति व्यक्त की है।

'सद्दवियारो हूओ' नामकी गाथाका था, जिसमें कुन्दकुन्दने अपनेको भद्रबाहुका शिष्य सूचित किया है।

प्रथम प्रमाणको उपस्थित करते हुए मैंने बतलाया था कि 'यदि मोटे रूपसे गुणचन्द्रादि छह आचार्योंका समय १५० वर्ष ही कल्पना किया जाय, जो उस समयकी आयुकायादिककी स्थितिको देखते हुए अधिक नहीं कहा जा सकता, तो कुन्दकुन्दके वंशमें होने वाले गुणचन्द्रका समय शक संवत् २३८ (वि० सं० ३७३) के लगभग ठहरता है। और चूंकि गुणचन्द्राचार्य कुन्दकुन्दके साक्षात् शिष्य या प्रशिष्य नहीं थे बल्कि कुन्दकुन्दके अन्वय (वंश)में हुए हैं और अन्वयके प्रतिष्ठित होनेके लिये कमसे कम ५० वर्षका समय मान लेना कोई बड़ी बात नहीं है। ऐसी हालतमें कुन्दकुन्दका पिछला समय उक्त ताम्रपत्रपरसे २०० (१५०+५०) वर्ष पूर्वका तो सहज ही में हो जाता है। और इसलिये कहना होगा कि कुन्दकुन्दाचार्य यतिवृषभसे २०० वर्षसे भी अधिक पहले हुए हैं। और दूसरे प्रमाणमें गाथाको[1] उपस्थित करते हुए लिखा था कि इस गाथामें बतलाया है कि 'जिनेन्द्रने—भगवान महावीरने—अर्थ रूपसे जो कथन किया है वह भाषासूत्रोंमें शब्दविकारको प्राप्त हुआ है—अनेक प्रकारके शब्दोंमें गूँथा गया है—, भद्रबाहुके मुक्त शिष्यने उन भाषासूत्रों परसे उसको उसी रूपमें जाना है और (जानकर) कथन किया है।' इससे बोधपाहुडके कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य भद्रबाहुके शिष्य मालूम होते हैं। और ये भद्रबाहु श्रुतकेवलीसे भिन्न द्वितीय भद्रबाहु जान पड़ते हैं, जिन्हें प्राचीन ग्रंथकारोंने 'आचाराङ्ग' नामक प्रथम अंगके धारियोंमें तृतीय विद्वान सूचित किया है और जिनका समय जैन कालगणनाओंके[2] अनुसार वीरनिर्वाण-संवत् ६१२ अर्थात् वि सं० १४२ (भद्रबाहु द्वि०के समाप्तिकाल) से पहले भले ही हो; परन्तु पीछेका मालूम नहीं होता। क्योंकि श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयमें जिन-कथित श्रुतमें ऐसा कोई विकार उपस्थित नहीं हुआ था, जिसे गाथामें 'सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं' इन शब्दोंद्वारा सूचित किया गया है—वह अविच्छिन्न चला आया था। परन्तु दूसरे भद्रबाहुके समयमें वह स्थिति नहीं रही थी–कितना ही श्रुतज्ञान लुप्त हो चुका था और जो अवशिष्ट था वह अनेक भाषा-सूत्रोंमें परिवर्तित हो गया था। और इसलिये कुन्दकुन्दका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दि तो हो सकता है परन्तु तीसरी या तीसरी शताब्दिके बादका वह किसी तरह भी नहीं बनता।'

परन्तु मेरे इस सब विवेचनको प्रेमीजीकी बद्धमूल हुई धारणाने कबूल नहीं किया, और इसलिये वे अपने उक्त ग्रंन्थगत लेखमें मर्कराके ताम्रपत्रको कुन्दकुन्दके स्वनिर्धारित समय (शक सं० ३८० के बाद) के माननेमें "सबसे बड़ी बाधा" स्वीकार करते हुए और यह बतलाते हुए भी कि "तब कुन्दकुन्दको यतिवृषभके बाद मानना असंगत हो जाता है।" लिखते हैं—

"पर इसका समाधान एक तरहसे हो सकता है और वह यह कि कौण्डकुन्दान्वयका अर्थ हमें कुन्दकुन्दकी वंशपरम्परा न करके कोण्डकुन्दपुर नामक स्थानसे निकली हुई परम्परा करना चाहिये। जैसे श्रीपुर स्थानकी परम्परा श्रीपुरान्वय, अरुंगलकी अरुंगलान्वय, कित्तूरकी कित्तूरान्वय, मथुराकी माथुरान्वय आदि।"

---

१ सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥६१॥

२ जैन कालगणनाओंका विशेष जाननेके लिये देखो लेखकद्वारा लिखित 'स्वामी समन्तभद्र' (इतिहास) का 'समय निर्णय' प्रकरण पृ० १८३ से तथा 'भ० महावीर और उनका समय' नामक पुस्तक पृ० ३१ से।

परन्तु अपने इस संभावित समाधानकी कल्पनाके समर्थनमें आपने एक भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया, जिससे यह मालूम होता कि श्रीपुरान्वयकी तरह कुन्दकुन्दपुरान्वयका भी कहीं उल्लेख आया है अथवा यह मालूम होता कि जहाँ पद्मनन्दि अपरनाम कुन्दकुन्दका उल्लेख आया है वहाँ उसके पूर्व कुन्दकुन्दान्वयका भी उल्लेख आया है और उसी कुन्दकुन्दान्वयमें उन पद्मनन्दि-कुन्दकुन्दको बतलाया है, जिससे ताम्रपत्रके 'कुन्दकुन्दान्वय' का अर्थ 'कुन्दकुन्दपुरान्वय' कर लिया जाता। बिना समर्थनके कोरी कल्पनासे काम नहीं चल सकता। वास्तवमें कुन्दकुन्दपुरके नामसे किसी अन्वयके प्रतिष्ठित अथवा प्रचलित होनेका जैनसाहित्यमें कहीं कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। प्रत्युत इसके, कुन्दकुन्दाचार्यके अन्वयके प्रतिष्ठित और प्रचलित होनेके सैकड़ों उदाहरण शिलालेखों तथा ग्रंथप्रशस्तियोंमें उपलब्ध होते हैं और वह देशादिके भेदसे 'इंगलेश्वर'[1] आदि अनेक शाखाओं (बलियों) में विभक्त रहा है। और जहाँ कहीं कुन्दकुन्दके पूर्वकी गुरुपरम्पराका कुछ उल्लेख देखनेमें आता है वहाँ उन्हें गौतम गणधरकी सन्ततिमें अथवा श्रुतकेवली भद्रबाहुके शिष्य चन्द्रगुप्तके अन्वय (वंश) में बतलाया है[2]। जिनका कोण्डकुन्दपुरके साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं है। श्रीकुन्दकुन्द मूलसंघ (नन्दिसंघ भी जिसका नामान्तर है) के अग्रणी गणी थे और देशीगणका उनके अन्वयसे खास सम्बन्ध रहा है, ऐसा श्रवणबेल्गोलके ५५(६९) नम्बरके शिलालेखके निम्नवाक्योंसे जाना जाता है:—

श्रीमतो वर्द्धमानस्य वर्द्धमानस्य शासने।
श्रीकोण्डकुन्दनामाऽभून्मूलसङ्घाग्रणी गणी ॥३॥
तस्याऽन्वयेऽजनि ख्याते······देशिके गणे।
गुणी देवेन्द्रसैद्धान्तदेवो देवेन्द्र-वन्दितः ॥४॥

और इसलिये मर्कराके ताम्रपत्रमें देशीगणके साथ जो कुन्दकुन्दान्वयका उल्लेख है वह श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके अन्वयका ही उल्लेख है कुन्दकुन्दपुरान्वयका नहीं। और इससे प्रेमीजीकी उक्त कल्पनामें कुछ भी सार मालूम नहीं होता। इसके सिवाय, प्रेमीजीने बोधपाहुड-गाथा-सम्बन्धी मेरे दूसरे प्रमाणका कोई विरोध नहीं किया, जिससे वह स्वीकृत जान पड़ता है अथवा उसका विरोध अशक्य प्रतीत होता है। दोनों ही अवस्थाओंमें कोण्डकुन्दपुरान्वयकी उक्त कल्पनासे क्या नतीजा? क्या वह कुन्दकुन्दके समय-सम्बन्धी अपनी धारणाको, प्रबलतर बाधाके उपस्थित होने पर भी, जीवित रखने आदिके उद्देश्यसे की गई है? कुछ समझमें नहीं आता !!

नियमसारकी उक्त गाथामें प्रयुक्त हुए 'लोयविभागेसु' पदको लेकर मैंने जो उपर्युक्त दो आपत्तियाँ की थीं उनका भी कोई समुचित समाधान प्रेमीजीने नहीं किया है। उन्होंने अपने उक्त मूल लेखमें तो प्रायः इतना ही कह कर छोड़ दिया है कि "बहुवचनका प्रयोग इसलिये भी इष्ट हो सकता है कि लोक-विभागके अनेक विभागों या अध्यायोंमें उक्त भेद देखने चाहियें।" परन्तु ग्रंथकार कुन्दकुन्दाचार्यका यदि ऐसा अभिप्राय होता तो वे 'लोयविभाग-विभागेसु' ऐसा पद रखते, तभी उक्त आशय घटित हो सकता था; परन्तु ऐसा नहीं है, और इसलिये प्रस्तुत पदके 'विभागेसु' पदका आशय यदि ग्रंथके विभागों या अध्यायोंका लिया जाता है तो ग्रंथका नाम 'लोक' रह जाता है—'लोकविभाग' नहीं—और

---

१ सिरिमूलसंघ-देसियगण-पुत्थयगच्छ-कोंडकुंदाणं।
परमण्ण-इंगलेसर-बलिम्मि जादस्स मुणिपहाणस्स ॥
—भावत्रिभंगी ११८, परमागमसार २२६।

२ देखो, श्रवणबेल्गोलके शिलालेख नं० ४०, ४२, ४३, ४७, ५०, १०८।

इससे प्रेमीजीकी सारी युक्ति ही लौट जाती है जो 'लोकविभाग' ग्रंथके उल्लेखको मानकर-की गई है। इसपर प्रेमीजीका उस समय ध्यान गया मालूम नहीं होता। हाँ, बादको किसी समय उन्हें अपने इस समाधानकी निःसारताका ध्यान आया जरूर जान पड़ता है और उसके फलस्वरूप उन्होंने परिशिष्टमें समाधानकी एक नई दृष्टिका आविष्कार किया है और वह इस प्रकार है:—

"लोयविभागेसु णादव्वं" पाठ पर जो यह आपत्ति की गई है कि वह बहुवचनान्त पद है, इसलिये किसी लोकविभागनामक एक ग्रन्थके लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता, तो इसका एक समाधान यह हो सकता है कि पाठको 'लोयविभागे सुणादव्वं' इस प्रकार पढ़ना चाहिये; 'सु' को 'णादव्वं' के साथ मिला देनेसे एकवचनान्त 'लोयविभागे' ही रह जायगा और अगली क्रिया 'सुणादव्वं' (सुज्ञातव्यं) हो जायगी। पद्मप्रभने भी शायद इसी लिये उसका अर्थ 'लोकविभागाभिधानपरमागमे' किया है।'

इसपर मैं इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि प्रथम तो मूलका पाठ जब 'लोयविभागेसु णादव्वं' इस रूपमें स्पष्ट मिल रहा है और टीकामें उसकी संस्कृत छाया जो 'लोकविभागेसु ज्ञातव्यः'[१] दी है उससे वह पुष्ट हो रहा है तथा टीकाकार पद्मप्रभने क्रियापदके साथ 'सु' का 'सम्यक्' आदि कोई अर्थ व्यक्त भी नहीं किया—मात्र विशेषणरहित 'दृष्टव्यः' पदके द्वारा उसका अर्थ व्यक्त किया है, तब मूलके पाठकी, अपने किसी प्रयोजनके लिये, अन्यथा कल्पना करना ठीक नहीं है। दूसरे, यह समाधान तभी कुछ कारगर हो सकता है जब पहले मर्कराके ताम्रपत्र और बोधपाहुडकी गाथा-सम्बन्धी उन दोनों प्रमाणोंका निरसन कर दिया जाय जिनका ऊपर उल्लेख हुआ है; क्योंकि उनका निरसन अथवा प्रतिवाद न हो सकनेकी हालतमें जब कुन्दकुन्दका समय उन प्रमाणों परसे विक्रमकी दूसरी शताब्दी अथवा उससे पहलेका निश्चित होता है तब 'लोयविभागे' पदकी कल्पना करके उसमें शक सं० ३८० अर्थात् विक्रमकी छठी शताब्दीमें बने हुए लोकविभाग ग्रंथके उल्लेखकी कल्पना करना कुछ भी अर्थ नहीं रखता। इसके सिवाय, मैंने जो यह आपत्ति की थी कि नियमसारकी उक्त गाथाके अनुसार प्रस्तुत लोकविभागमें तिर्यंचोंके १४ भेदोंका विस्तारके साथ कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है, उसका भले प्रकार प्रतिवाद होना चाहिये अर्थात् लोकविभागमें उस कथनके अस्तित्वको स्पष्ट करके बतलाना चाहिये, जिससे 'लोयविभागे' पदका वाच्य प्रस्तुत लोकविभाग समझा जा सके। परन्तु प्रेमीजीने इस बातका कोई ठीक समाधान न करके उसे टालना चाहा है। इसीसे परिशिष्टमें आपने यह लिखा है कि "लोकविभागमें चतुर्गतजीव-भेदोंका या तिर्यंचों और देवोंके चौदह और चार भेदोंका विस्तार नहीं है, यह कहना भी विचारणीय है। उसके छठे अध्यायका नाम ही तिर्यक् लोकविभाग है और चतुर्विध देवोंका वर्णन भी है।" परन्तु "यह कहना" शब्दोंके द्वारा जिस वाक्यको मेरा वाक्य बतलाया गया है उसे मैंने कब और कहाँ कहा है? मेरी आपत्ति तो तिर्यंचोंके १४ भेदोंके विस्तार-कथन तक ही सीमित है और वह ग्रंथको देख कर ही की गई है, फिर उतने अंशोंमें ही मेरे कथनको न रखकर अतिरिक्त कथनके साथ उसे 'विचारणीय' प्रकट करना तथा ग्रंथमें 'तिर्यक्लोकविभाग' नामका भी एक अध्याय है ऐसी बात कहना, यह

---

१ मूलमें 'एदेसिं वित्थारं' पदोंके अनन्तर 'लोयविभागेसु णादव्वं' पदोंका प्रयोग है। चूँकि प्राकृतमें 'वित्थार' शब्द नपुँसक लिंगमें भी प्रयुक्त होता है इसीसे 'वित्थारं' पदके साथ 'णादव्वं' क्रियाका प्रयोग हुआ है। परन्तु संस्कृतमें 'विस्तार' शब्द पुल्लिंग माना गया है अतः टीकामें संस्कृत छाया 'एतेषां विस्तारः लोकविभागेसु ज्ञातव्यः' दी गई है, और इसलिये 'ज्ञातव्यः' क्रियापद ठीक है। प्रेमीजीने ऊपर जो 'सुज्ञातव्यं' रूप दिया है उसपरसे उसे ग़लत न समझ लेना चाहिये।

सब टलानेके सिवाय और कुछ भी अर्थ रखता हुआ मालूम नहीं होता। मैं पूछता हूं क्या ग्रंथमें 'तिर्यक् लोकविभाग' नामका छठा अध्याय होनेसे ही उसका यह अर्थ हो जाता है कि 'उसमें तिर्यंचोंके १४ भेदोंका विस्तारके साथ वर्णन है ? यदि नहीं तो ऐसे समाधानसे क्या नतीजा ? और वह टलानेकी वात नहीं तो और क्या है ?

जान पड़ता है प्रेमीजी अपने उक्त समाधानकी गहराईको समझते थे—जानते थे कि वह सब एक प्रकारकी खानापूरी ही है—और शायद यह भी अनुभव करते थे कि संस्कृत लोकविभागमें तिर्यंचोंके १४ भेदोंका विस्तार नहीं है, और इसलिये उन्होंने परिशिष्टमें ही; एक कदम आगे, समाधानका एक दूसरा रूप अख्तियार किया है—जो सब कल्पनात्मक, सन्देहात्मक एवं अनिर्णयात्मक है—और वह इस प्रकार है:—

"ऐसा मालूम होता है कि सर्वनन्दिका प्राकृत लोकविभाग वड़ा होगा। सिंहसूरिने उसका संक्षेप किया है। 'व्याख्यास्यामि समासेन' पदसे वे इस वातको स्पष्ट करते हैं। इसके सिवाय, आगे शास्त्रस्य संग्रहस्त्विदं' से भी यही ध्वनित होता है—संग्रहका भी एक अर्थ संक्षेप होता है। जैसे गोम्मटसंगहसुत्त आदि। इसलिये यदि संस्कृत लोकविभागमें तिर्यंचोंके १४ भेदोंका विस्तार नहीं, तो इससे यह भी तो कहा जा सकता है कि वह मूल प्राकृत ग्रन्थमें रहा होगा, संस्कृतमें संक्षेप करनेके कारण नहीं लिखा गया।"

इस समाधानके द्वारा प्रेमीजीने, संस्कृत लोकविभागमें तिर्यंचोंके १४ भेदोंका विस्तार-कथन न होनेकी हालतमें, अपने वचावको और नियमसारकी उक्त गाथामें सर्वनन्दीके लोकविभाग-विषयक उल्लेखकी अपनी धारणाको वनाये रखने तथा दूसरों पर लादे रखनेकी एक सूरत निकाली है। परन्तु प्रेमीजी जब स्वयं अपने लेखमें लिखते हैं कि "उपलब्ध 'लोकविभाग' जो कि संस्कृतमें है वहुत प्राचीन नहीं है। प्राचीनतासे उसका इतना ही सम्वन्ध है कि वह एक वहुत पुराने शक संवत् ३८० के वने हुए ग्रन्थसे अनुवाद किया गया है" और इस तरह संस्कृतलोकविभागको सर्वनन्दीके प्राकृत लोकविभागका अनुवादित रूप स्वीकार करते हैं। और यह वात मैं अपने लेखमें पहले भी वतला चुका हूँ कि संस्कृत लोकविभागके अन्तमें ग्रन्थकी श्लोकसंख्याका सूचक जो पद्य है और जिसमें श्लोकसंख्या-का परिमाण १५३६ दिया है वह प्राकृत लोकविभागकी संख्याका ही सूचक है और उसी-के पद्यका अनुवादित रूप है; अन्यथा उपलब्ध लोकविभागकी श्लोकसंख्या २०३० के करीव पाई जाती है और उसमें जो ५०० श्लोक जितना पाठ अधिक है वह प्रायः उन 'उक्तं च' पद्योंका परिमाण है जो दूसरे ग्रन्थोंपरसे किसी तरह उद्धृत होकर रक्खे गये हैं। तब किस आधार पर उक्त प्राकृत लोकविभागको 'वड़ा' वतलाया जाता है ? और किस आधार पर यह कल्पना की जाती है कि 'व्याख्यास्यामि समासेन' इस वाक्यके द्वारा सिंहसूरि स्वयं अपने ग्रंथ-निर्माणकी प्रतिज्ञा कर रहे हैं और वह सर्वनन्दीकी ग्रंथनिर्माण-प्रतिज्ञाका अनुवादित रूप नहीं है ? इसी तरह 'शास्त्रस्य संग्रहस्त्विदं' यह वाक्य भी सर्वनन्दीके वाक्यका अनुवादित रूप नहीं है ? जब सिंहसूरि स्वतंत्र रूपसे किसी ग्रन्थका निर्माण अथवा संग्रह नहीं कर रहे हैं और न किसी ग्रंथकी व्याख्या ही कर रहे हैं वल्कि एक प्राचीन ग्रंथका भाषाके परिवर्तन द्वारा (भाषायाः परिवर्तनेन) अनुवादमात्र कर रहे हैं तब उनके द्वारा 'व्याख्यास्यामि समासेन' जैसा प्रतिज्ञावाक्य नहीं वन सकता और न श्लोक-संख्याको साथमें देता हुआ 'शास्त्रस्य संग्रहस्त्विदं' वाक्य ही वन सकता है। इससे दोनों वाक्य मूलकार सर्वनन्दीके ही वाक्योंके अनुवादितरूप जान पड़ते हैं। सिंहसूरका इस ग्रंथकी रचनासे केवल इतना ही सम्वन्ध है कि वे भाषाके परिवर्तन द्वारा इसके रचयिता हैं—विषयके संकलनादिद्वारा नहीं—जैसा कि उन्होंने अन्तके चार पद्योंमेंसे प्रथम पद्यमें सूचित किया है और ऐसा ही उनकी ग्रंथ-प्रकृतिपरसे जाना जाता है। मालूम होता है प्रेमीजीने इन सब वातों पर कोई

ध्यान नहीं दिया और वे वैसे ही अपनी किसी धुन अथवा धारणाके पीछे युक्तियोंको तोड़-मरोड़ कर अपने अनूकूल बनानेके प्रयत्नमें समाधान करने बैठ गये हैं।

ऊपरके इस सब विवेचनपरसे स्पष्ट है कि प्रेमीजीके इस कथनके पीछे कोई युक्ति-बल नहीं है कि कुन्दकुन्द यतिवृषभके बाद अथवा सम-सामयिक हुए हैं। उनका जो खास आधार आर्यमंक्षु और नागहस्तिका गुणधराचार्यके साक्षात् शिष्य होना था वह स्थिर नहीं रह सका—प्रायः उसीको मूलाधार मानकर और नियमसारकी उक्त गाथामें सर्वनन्दीके लोकविभागकी आशा लगाकर वे दूसरे प्रमाणोंको खींच-तानद्वारा अपने सहायक बनाना चाहते थे, और वह कार्य भी नहीं हो सका। प्रत्युत इसके, ऊपर जो प्रमाण दिये गए हैं उन परसे यह भले प्रकार फलित होता है कि कुन्दकुन्दका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दि तक तो हो सकता है—उसके बादका नहीं, और इसलिये छठी शताब्दीमें होनेवाले यतिवृषभ उनसे कई शताब्दी बाद हुए हैं।

(ग) नई विचार-धारा और उसकी जाँच—

अब 'तिलोयपण्णत्ती' के सम्बन्धमें एक नई विचार-धाराको सामने रखकर उसपर विचार एवं जाँचका कार्य किया जाता है। यह विचार-धारा पं० फूलचन्दजी शास्त्रीने अपने 'वर्तमान तिलोयपण्णत्ति और उसके रचनाकाल आदिका विचार' नामक लेखमें प्रस्तुत की है, जो जैनसिद्धान्तभास्कर भाग ११ की किरण १ में प्रकाशित हुआ है। शास्त्रीजीके विचारानुसार वर्तमान तिलोयपण्णत्ती विक्रमकी ६ वीं शताब्दी अथवा शक सं० ७३८ वि० सं० ८७३) से पहलेकी बनी हुई नहीं है और उसके कर्ता भी यतिवृषभ नहीं हैं। अपने इस विचारके समर्थनमें आपने जो प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, उनका सार निम्न प्रकार है। इस सारको देनेमें इस बातका खास खयाल रक्खा गया है कि जहाँ तक भी हो सके शास्त्रीजीका युक्तिवाद अधिकसे अधिक उन्हींके शब्दोंमें रहे :—

(१) 'वर्तमानमें लोकको उत्तर और दक्षिणमें जो सर्वत्र सात राजु मानते हैं उसकी स्थापना धवलाके कर्ता वीरसेन स्वामीने की है—वीरसेन स्वामीसे पहले वैसी मान्यता नहीं थी। वीरसेन स्वामीके समय तक जैन आचार्य उपमालोकसे पाँच द्रव्योंके आधारभूत लोक को भिन्न मानते थे। जैसा कि राजवार्तिकके निम्न दो उल्लेखोंसे प्रकट है :—

"अधः लोकमूले दिग्विदिक्षु विष्कम्भः सप्तरज्जवः, तिर्यग्लोके रज्जुरेका, ब्रह्मलोके पंच, पुनर्लोकाग्रे रज्जुरेका। मध्यलोकादधो रज्जुमवगाह्य शर्करान्ते अष्टास्वपि दिग्विदिक्षु विष्कम्भः रज्जुरेका रज्ज्वाश्च षट् सप्तभागाः।" —(अ० १ सू० २० टीका)

"ततोऽसंख्यान् खण्डानपनीयासंख्येयमेकं भागं बुद्धया विरलीकृत्य एकैकस्मिन् घनाङ्गुलं दत्वा परस्परेण गुणिता जगच्छ्रेणी सापरया जगच्छ्रेण्या अभ्यस्ता प्रतरलोकः। स एवापरया जगच्छ्रेण्या संवर्गितो घनलोकः।" —(अ० ३० सू० ३८ टीका)

इनमेंसे प्रथम उल्लेख परसे लोक आठों दिशाओंमें समान परिमाणको लिये हुए होनेसे गोल हुआ और उसका परिमाण भी उपमालोकके प्रमाणानुसार ३४३ घनराजु नहीं बैठता, जब कि वीरसेनका लोक चौकौर है, वह पूर्व पश्चिम दिशामें ही उक्त क्रमसे घटता है दक्षिण-उत्तर दिशामें नहीं—इन दोनों दिशाओंमें वह सर्वत्र सात राजु बना रहता है। और इसलिये उसका परिमाण उपमालोकके अनुसार ही ३४३ घनराजु बैठता है और वह प्रमाणमें पेश की हुई निम्न दो गाथाओंपरसे, उक्त आकारके साथ भले प्रकार फलित होता है :—

"मुहतलसमासअद्धं वुस्सेधगुणं गुणं च वेधेण।
घणगणिदं जाणेज्जो वेत्तासणसंठिए खेत्ते ॥ १ ॥
मूलं मज्झेण गुणं मुहजहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं।
घणगणिदं जाणेज्जो मुइंगसंठाणखेत्तम्मि ॥ २ ॥"

—धवला, क्षेत्रानुयोगद्वार पृ० २०

राजवार्तिकके दूसरे उल्लेखपरसे उपमालोकका परिमाण ३४३ घनराजु तो फलित होता है; क्योंकि जगश्रेणीका प्रमाण ७ राजु है और ७ का घन ३४३ होता है। यह उपमालोक है परन्तु इसपरसे पाँच द्रव्योंके आधारभूत लोकका आकार आठों दिशाओंमें उक्त क्रमसे घटता-बढ़ता हुआ 'गोल' फलित नहीं होता।

"वीरसेनस्वामीके सामने राजवार्तिक आदिमें बतलाये गये आकारके विरुद्ध लोकके आकारको सिद्ध करनेके लिये केवल उपर्युक्त दो गाथाएँ ही थीं। इन्हींके आधारसे वे लोकके आकारको भिन्न प्रकारसे सिद्ध कर सके तथा यह भी कहनेमें समर्थ हुए कि 'जिन[1] ग्रंथोंमें लोकका प्रमाण अधोलोकके मूलमें सात राजु, मध्यलोकके पास एक राजु, ब्रह्मस्वर्गके पास पाँच राजु और लोकाग्रमें एक राजु बतलाया है वह वहाँ पूर्व और पश्चिम दिशाकी अपेक्षासे बतलाया है। उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे नहीं। इन दोनों दिशाओंकी अपेक्षा तो लोकका प्रमाण सर्वत्र सात राजु है। यद्यपि इसका विधान[2] करणानुयोगके ग्रंथोंमें नहीं है तो भी वहाँ निषेध भी नहीं है अतः लोकको उत्तर और दक्षिणमें सर्वत्र सात राजु मानना चाहिये।

वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमें निम्न तीन गाथाएँ भिन्न स्थलोंपर पाई जाती हैं, जो वीरसेन स्वामीके उस मतका अनुसरण करती हैं जिसे उन्होंने 'मुहतलसमास' इत्यादि गाथाओं और युक्तिपरसे स्थिर किया है:—

"जगसेढिघणपमाणो लोयायासो स पंचदव्वरिदी।
एस अणंताणंतलोयायासस्स बहुमज्झे ॥ ९१ ॥
सयलो एस य लोओ णिप्पण्णो सेढिविंदमाणेण।
तिवियप्पो णादव्वो हेट्ठिममज्झिमउड्ढभेएण ॥ १३६ ॥"
सेढिपमाणायामं भागेसु दक्खिणुत्तरेसु पुढं।
पुव्वावरेसु वासं भूमिमुहे सत्त एक्क पंचेक्का ॥ १४९ ॥"

इन पाँच द्रव्योंसे व्याप्त लोकाकाशको जगश्रेणीके घनप्रमाण बतलाया है। साथ ही, "लोकका प्रमाण दक्षिण-उत्तर दिशामें सर्वत्र जगश्रेणी जितना अर्थात् सात राजु और पूर्व-पश्चिमदिशामें अधोलोकके पास सात राजु, मध्यलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पाँच राजु और लोकाग्रमें एक राजु है" ऐसा सूचित किया है। इसके सिवाय, तिलोयपण्णत्तीका पहला महाधिकार सामान्यलोक, अधोलोक व ऊर्ध्वलोकके विविध प्रकारसे निकाले गए घनफलों[3] से भरा पड़ा है जिससे वीरसेन स्वमीकी मान्यताकी ही पुष्टि होती है। तिलोय-

---

१ 'ण च तइयाए गाहाए सह विरोहो, एत्थ वि दोसु दिसासु चउव्विहविक्खंभदंसणादो।'

—धवला, क्षेत्रानुयोगद्वार पृ० २१।

२ 'ण च सत्तरज्जुबाहल्लं करणाणिओगसुत्त-विरुद्धं, तत्थ विधिप्पडिसेधाभावादो।'

—धवला, क्षेत्रानुयोगद्वार पृ० २२।

३ देखो, तिलोयपण्णत्तिके पहले अधिकारकी गाथाएँ २१५ से २५१ तक।

पण्णत्तीका यह अंश यदि वीरसेनस्वामीके सामने मौजूद होता तो "वे इसका प्रमाणरूपसे उल्लेख नहीं करते यह कभी संभव नहीं था।" चूंकि वीरसेनने तिलोयपण्णत्तीकी उक्त गाथाएँ अथवा दूसरा अंश धवलामें अपने विचारके अवसर पर प्रमाणरूपसे उपस्थित नहीं किया अतः उनके सामने जो तिलोयपण्णत्ती थी और जिसके अनेक प्रमाण उन्होंने धवलामें उद्धृत किये हैं वह वर्तमान तिलोयपण्णत्ती नहीं थी—इससे भिन्न दूसरी ही तिलोयपण्णत्ती होनी चाहिये, यह निश्चित होता है।

(२) "तिलोयपण्णत्तीमें पहले अधिकारकी ७ वीं गाथासे लेकर ८७ वीं गाथा तक ८१ गाथाओंमें मंगल आदि छह अधिकारोंका वर्णन है। यह पूराका पूरा वर्णन संतपरूवणाकी धवलाटीकामें आये हुए वर्णनसे मिलता हुआ है। ये छह अधिकार तिलोयपण्णत्तीमें अन्यत्रसे संग्रह किये गये हैं इस बातका उल्लेख स्वयं तिलोयपण्णत्तीकारने पहले अधिकारकी ८५ वीं गाथा[1] में किया है तथा धवलामें इन छह अधिकारोंका वर्णन करते समय जितनी गाथाएं या श्लोक उद्धृत किये गये हैं वे सब अन्यत्रसे लिये गये हैं तिलोयपण्णत्तीसे नहीं, इससे मालूम होता है कि तिलोयपण्णत्तिकारके सामने धवला अवश्य रही है।"

(दोनों ग्रन्थोंके कुछ समान उद्धरणोंके अनन्तर) "इसी प्रकारके पचासों उद्धरण दिये जा सकते हैं जिनसे यह जाना जा सकता है कि एक ग्रन्थ लिखते समय दूसरा ग्रंथ अवश्य सामने रहा है। यहाँ पाठक एक विशेषता और देखेंगे कि धवलामें जो गाथा या श्लोक अन्यत्रसे उद्धृत हैं तिलोयपण्णत्तिमें वे भी मूलमें शामिल कर लिये गए हैं। इससे तो यही ज्ञात होता है कि तिलोयपण्णत्ति लिखते समय लेखकके सामने धवला अवश्य रही है।"

(३) " 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' इत्यादि श्लोक इन (भट्टाकलंकदेव) की मौलिक कृति है जो लघीयस्त्रयके छठे अध्यायमें आया है। तिलोयपण्णत्तिकारने इसे भी नहीं छोड़ा। लघीयस्त्रयमें जहाँ यह श्लोक आया है वहाँसे इसके अलग करदेने पर प्रकरण ही अधूरा रह जाता है। पर तिलोयपण्णत्तिमें इसके परिवर्तित रूपकी स्थिति ऐसे स्थल पर है कि यदि वहाँसे उसे अलग भी कर दिया जाय तो भी प्रकरणकी एकरूपता बनी रहती है। वीरसेन स्वामीने धवलामें उक्त श्लोकको उद्धृत किया है। तिलोयपण्णत्तिको देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि तिलोयपण्णत्तिकारने इसे लघीयस्त्रयसे न लेकर धवलासे ही लिया है; क्योंकि धवलामें इसके साथ जो एक दूसरा श्लोक उद्धृत है उसे भी उसी क्रमसे तिलोयपण्णत्तिकारने अपना लिया है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि तिलोयपण्णत्तिकी रचना धवलाके बाद हुई है।"

(४) "धवला द्रव्यप्रमाणानुयोगद्वारके पृष्ठ ३६ में तिलोयपण्णत्तिका एक गाथांश उद्धृत किया है जो निम्न प्रकार है—

'दुगुणदुगुणो दुवग्गो णिरंतरो तिरियलोगो' त्ति।

वर्तमान तिलोयपण्णत्तिमें इसकी पर्याप्त खोज की, किन्तु उसमें यह नहीं मिला। हाँ, इस प्रकारकी एक गाथा स्पर्शानुयोगमें वीरसेन स्वामीने अवश्य उद्धृत की है; जो इस प्रकार है:—

'चंदाइच्चगहेहिं चेवं णक्खत्ततारुरूवेहिं।
दुगुणदुगुणेहि णीरंतरेहि दुवग्गो तिरियलोगो॥'

[1] "मंगलपहुदिछक्कं वक्खाणिय विविहगंथजुत्तीहिं।"

किन्तु वहाँ यह नहीं बतलाया कि कहाँकी है। मालूम पड़ता है कि इसीका उक्त गाथांश परिवर्तित रूप है। यदि यह अनुमान ठीक है तो कहना होगा कि तिलोयपण्णत्तिमें पूरी गाथा इस प्रकार रही होगी। जो कुछ भी हो पर इतना सच है कि वर्तमान तिलोय-पण्णत्ति उससे भिन्न है।"

(५) "तिलोयपण्णत्तिमें यत्र तत्र गद्य भाग भी पाया जाता है। इसका बहुत कुछ अंश धवलामें आये हुए इस विषयके गद्य भागसे मिलता हुआ है। अतः यह शंका होना स्वाभाविक है कि इस गद्य भागका पूर्ववर्ती लेखक कौन रहा होगा। इस शंकाके दूर करनेके लिये हम एक ऐसा गद्यांश उपस्थित करते हैं जिससे इसका निर्णय करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। वह इस प्रकार है :—

'एसा तप्पाओग्गासंखेज्जरूवाहियजंबूदीवछेदणयसहिददीवसायररूपमेत्तरज्जु-च्छेदपमाणपरिक्खाविही ण अण्णाइरिओवएसपरंपराणुसारिणी केवलं तु तिलोय-पण्णत्तिसुत्ताणुसारिजोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइदसुत्तावलंबिजुत्तिबलेण पयदगच्छसा-हणट्ठमम्हेहि परूविदा।'

यह गद्यांश धवला स्पर्शानुयोगद्वार पृ० १५७ का है। तिलोयपण्णत्तिमें यह उसी प्रकार पाया जाता है। अन्तर केवल इतना है कि वहाँ 'अम्हेहि' के स्थानमें 'एसा परूवणा' पाठ है। पर विचार करनेसे यह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है; क्योंकि 'एसा' पद गद्यके प्रारंभमें ही आया है अतः पुनः उसी पदके देनेकी आवश्यकता नहीं रहती। 'परिक्खा-विही' यह पद विशेष्य है; अतः 'परूवणा' पद भी निष्फल हो जाता है।

"(गद्यांशका भाव देनेके अनन्तर) इस गद्यभागसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त गद्यभागमें एक राजुके जितने अर्धच्छेद बतलाये हैं वे तिलोयपण्णत्तिमें नहीं बतलाये गये हैं किन्तु तिलोयपण्णत्तिमें जो ज्योतिषी देवोंके भागहारका कथन करनेवाला सूत्र है उसके बलसे सिद्ध किये गए हैं। अब यदि यह गद्यभाग तिलोयपण्णत्तिका होता तो उसीमें 'तिलोलपण्णत्तिसुत्ताणुसारि' पद देनेकी और उसीके किसी एक सूत्रके बलपर राजुकी चालू मान्यतासे संख्यात अधिक अर्धच्छेद सिद्ध करनेकी क्या आवश्यकता थी। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि यह गद्यभाग धवलासे तिलोयपण्णत्तिमें लिया गया है। नहीं तो वीरसेन स्वामी जोर देकर 'हमने यह परीक्षाविधि' कही है' यह न कहते। कोई भी मनुष्य अपनी युक्तिको ही अपनी कहता है। उक्त गद्य भागमें आया हुआ 'अम्हेहि' पद साफ बतला रहा है कि यह युक्ति वीरसेनस्वामीकी है। इस प्रकार इस गद्यभागसे भी यही सिद्ध होता है कि वर्तमान तिलोयपण्णत्तिकी रचना धवलाके अनन्तर हुई है।"

इन पांचों प्रमाणोंको देकर शास्त्रीजीने बतलाया है कि धवलाकी समाप्ति चूंकि शक संवत् ७३८ में हुई थी इसलिये वर्तमान तिलोयपण्णत्ति उससे पहलेकी बनी हुई नहीं है और चूंकि त्रिलोकसार इसी तिलोयपण्णत्तीके आधार पर बना हुआ है और उसके रचयिता नेमिचन्द्र सि० चक्रवर्ती शक संवत् ६०० के लगभग हुए हैं इसलिये यह ग्रन्थ शक सं० ६०० के बादका बना हुआ नहीं है, फलतः इस तिलोयपण्णत्तिकी रचना शक सं० ७३८ से लेकर ६०० के मध्यमें हुई है। अतः इसके कर्ता यतिवृषभ किसी भी हालतमें नहीं हो सकते।" इसके रचयिता संभवतः वीरसेनके शिष्य जिनसेन हैं—वे ही होने चाहियें, क्योंकि एक तो वीरसेन स्वामीके साहित्य-कार्यसे वे अच्छी तरह परिचित थे। तथा उनके शेष कार्यको इन्होंने पूरा भी किया है। संभव है उन शेष कार्योंमें उस समयकी आवश्यकता-नुसार तिलोयपण्णत्तिका संकलन भी एक कार्य हो। दूसरे वीरसेनस्वामीने प्राचीन साहि-त्यके संकलन, संशोधन और सम्पादनकी जो दिशा निश्चित की थी वर्तमान तिलोयपण्णत्तिका

संकलन भी उसीके अनुसार हुआ है। तथा सम्पादनकी इस दिशासे परिचित जिनसेन ही थे। इसके सिवाय 'जयधवलाके जिस भागके लेखक आचार्य जिनसेन हैं उसकी एक गाथा ('पणमह जिणवरवसहं' नामकी) कुछ परिवर्तनके साथ तिलोयपण्णत्तिके अन्तमें पाई जाती है, और इससे तथा उक्त गद्यमें 'अम्हेहि' पदके न होनेके कारण वीरसेन स्वामी वर्तमान तिलोयपण्णत्तिके कर्ता मालूम नहीं होते। उनके सामने जो तिलोयपण्णत्ति थी वह संभवतः यतिवृषभाचार्यकी रही होगी।' 'वर्तमान तिलोयपण्णत्तिके अन्तमें पाई जाने वाली उक्त गाथा ('पणमह जिणवरवसहं') में जो मौलिक परिवर्तन दिखाई देता है वह कुछ अर्थ अवश्य रखता है और उसपरसे, सुझाये हुए 'अरिस वसहं' पाठके अनुसार, यह अनुमानित होता एवं सूचना मिलती है कि वर्तमान तिलोयपण्णत्तिके पहले एक दूसरी तिलोयपण्णत्ति आर्षग्रंथके रूपमें थी, जिसके कर्ता यतिवृषभ स्थविर थे और उसे देखकर इस तिलोयपण्णत्तिकी रचना की गई है।'

शास्त्रीजीके उक्त प्रमाणों तथा निष्कर्षोंके सम्बन्धमें अब मैं अपनी विचारणा एवं जाँच प्रस्तुत करता हूँ और उसमें शास्त्रीजीके प्रमाणोंको क्रमसे लेता हूँ:—

(१) प्रथम प्रमाणको प्रस्तुत करते हुए शास्त्रीजीने जो कुछ कहा है उसपरसे इतना ही फलित होता है कि 'वर्तमान तिलोयपण्णत्ति वीरसेन स्वामीसे बादकी बनी हुई है और उस तिलोयपण्णत्तिसे भिन्न है जो वीरसेन स्वामीके सामने मौजूद थी; क्योंकि इसमें लोकके उत्तर-दक्षिणमें सर्वत्र सात राजूकी उस मान्यताको अपनाया गया है और उसीका अनुसरण करते हुए घनफलोंको निकाला गया है जिसके संस्थापक वीरसेन हैं। और वीरसेन इस मान्यताके संस्थापक इस लिये हैं कि उनसे पहले इस मान्यताका कोई अस्तित्व नहीं था, उनके समय तक सभी जैनाचार्य ३४३ घनराजु वाले उपमालोक (प्रमाणलोक) से पाँच द्रव्योंके आधारभूत लोकको भिन्न मानते थे। यदि वर्तमान तिलोयपण्णत्ति वीरसेनके सामने मौजूद होती अथवा जो तिलोयपण्णत्ति वीरसेनके सामने मौजूद थी उसमें उक्त मान्यताका कोई उल्लेख अथवा संसूचन होता तो यह असंभव था कि वीरसेन स्वामी उसका प्रमाणरूपसे उल्लेख न करते। उल्लेख न करनेसे ही दोनोंका अभाव जाना जाता है।' अब देखना यह है कि क्या वीरसेन सचमुच ही उक्त मान्यताके संस्थापक हैं और उन्होंने कहीं अपनेको उसका संस्थापक या आविष्कारक प्रकट किया है। जिस धवला टीकाका शास्त्रीजीने उल्लेख किया है उसके उस स्थलको देख जानेसे वैसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता। वहाँ वीरसेनने, क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वारके 'ओघेण मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे' इस द्वितीय सूत्रमें स्थित 'लोगे' पदकी व्याख्या करते हुए, बतलाया है कि यहाँ 'लोक' से सात राजु घनरूप (३४३ घनराजुप्रमाण) लोक ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि यहाँ क्षेत्र प्रमाणाधिकारमें पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगश्रेणी, लोकप्रतर और लोक ऐसे आठ प्रमाण क्रमसे माने गये हैं। इससे यहाँ प्रमाणलोकका ही ग्रहण है—जो कि सात राजुप्रमाण जगश्रेणीके घनरूप होता है। इसपर किसीने शंका की कि 'यदि ऐसा लोक ग्रहण किया जाता है तो फिर पाँच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ग्रहण नहीं बनता; क्योंकि उसमें सात राजुके घनरूप क्षेत्रका अभाव है। यदि उसका क्षेत्र भी सातराजुके घनरूप माना जाता है तो 'हेट्ठा मज्झे उवरिं' 'लोगो अकिट्टिमो खलु' और 'लोयस्स विक्खंभो चउप्पयारो' ये तीन सूत्र-गाथाएँ अप्रमाणताको प्राप्त होती हैं। इस शंकाका परिहार (समाधान) करते हुए वीरसेन स्वामीने पुनः बतलाया है कि यहाँ 'लोगे' पदमें पंच द्रव्योंके आधाररूप आकाशका ही ग्रहण है, अन्यका नहीं। क्योंकि 'लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोगे' (लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त केवली कितने क्षेत्रमें रहता है? सर्वलोकमें रहता है) ऐसा सूत्रवचन पाया जाता है। यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है तो यह कहना चाहिये कि लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त

हुआ केवली लोकके संख्यातवें भागमें रहता है । और शंकाकार जिनका अनुयायी है उन दूसरे आचार्योंके द्वारा प्ररूपित मृदंगाकार लोकके प्रमाणकी दृष्टिसे लोकपूरण समुद्घात-गत केवलीका लोकके संख्यातवें भागमें रहना असिद्ध भी नहीं है; क्योंकि गणना करने पर मृदंगाकार लोकका प्रमाण घनलोकके संख्यातवें भाग ही उपलब्ध होता है ।

इसके अनन्तर गणित द्वारा घनलोकके संख्यातवें भागको सिद्ध घोषित करके, वीरसेन स्वामीने इतना और बतलाया है कि 'इस पंच द्रव्योंके आधाररूप आकाशसे अतिरिक्त दूसरा सात राजु घनप्रमाण लोकसंज्ञक कोइ क्षेत्र नहीं है, जिससे प्रमाणलोक (उपमालोक) छह द्रव्योंके समुदायरूप लोकसे भिन्न होवे । और न लोकाकाश तथा अलोकाकाश दोनोंमें स्थित सातराजु घनमात्र आकाश प्रदेशोंकी प्रमाणरूपसे स्वीकृत 'घन-लोक' संज्ञा है । ऐसी संज्ञा स्वीकार करनेपर लोकसंज्ञाके यादृच्छिकपनेका प्रसंग आता है और तब संपूर्ण आकाश, जगश्रेणी, जगप्रतर और घनलोक जसी संज्ञाओंके यादृच्छिक-पनेका प्रसंग उपस्थित होगा । (और इससे सारी व्यवस्था ही बिगड़ जायगी) इसके सिवाय, प्रमाणलोक और षट्द्रव्योंके समुदायरूप लोकको भिन्न माननेपर प्रतरगत केवलीके क्षेत्रका निरूपण करते हुए यह जो कहा गया है कि 'वह केवली लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्वलोकमें रहता है और लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्वलोकका प्रमाण उर्ध्व-लोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोक प्रमाण है[1]' वह नहीं बनता । और इसलिये दोनों लोकोंकी एकता सिद्ध होती है । अतः प्रमाणलोक (उपमालोक) आकाश-प्रदेशोंकी गणनाकी अपेक्षा छह द्रव्योंके समुदायरूप लोकके समान है, ऐसा स्वीकार करना चाहिये ।

इसके बाद यह शंका होनेपर कि 'किस प्रकार पिण्ड (घन) रूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण होता है ? वीरसेन स्वामीने उत्तरमें बतलाया है कि 'लोक संपूर्ण आकाशके मध्यभागमें स्थित है' चौदह राजु आयामवाला है दोनों दिशाओंके अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाके मूल, अर्धभाग, त्रिचतुर्भाग और चरम भागमें क्रमसे सात, एक, पाँच और एक राजु विस्तारवाला है, तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, वृद्धि और हानिके द्वारा उसके दोनों प्रान्तभाग स्थित हैं, चौदह राजु लम्बी एकराजुके वर्गप्रमाण मुखवाली लोक-नाली उसके गर्भमें है, ऐसा यह पिण्डरूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण अर्थात् ७×७×७=३४३ राजु होता है । यदि लोकको ऐसा नहीं माना जाता है तो प्रतर-समुद्घातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ जो 'मुहतलसमासअद्धं' और 'मूलं मज्झेण गुणं' नामकी दो गाथाएँ कही गई हैं वे निरर्थक हो जायेंगी; क्योंकि उनमें कहा गया घनफल लोकको अन्य प्रकारसे मानने पर संभव नहीं है । साथ ही, यह भी बतलाया है कि 'इस (उपर्युक्त आकार वाले) लोकका शंकाकारके द्वारा प्रस्तुत की गई प्रथम गाथा ('हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासन-झल्लरीमुइंगणिभो') के साथ विरोध नहीं है; क्योंकि एक दिशामें लोक वेत्रासन और मृदंगके आकार दिखाई देता है, और ऐसा नहीं कि उसमें झल्लरीका आकार न हो; क्योंकि मध्यलोकमें स्वयंभूरमण समुद्रसे परिक्षिप्त तथा चारों ओरसे असंख्यात योजन विस्तार वाला और एक लाख योजन मोटाईवाला यह मध्यवर्ती देश चन्द्रमण्डलकी तरह झल्लरी के समान दिखाई देता है । और दृष्टान्त सर्वथा दार्ष्टान्तके समान होता भी नहीं, अन्यथा दोनोंके ही अभावका प्रसंग आजायगा । ऐसा भी नहीं कि (द्वितीय सूत्रगाथामें बतलाया हुआ) तालवृक्षके समान आकार इसमें असंभव हो, क्योंकि एक दिशासे देखनेपर

---

१ 'पदरगदो केवली केवडि खेत्ते, लोगे असंखेज्जदिभागूणे । उड्ढलोगेण दुवे उड्ढलोगा उड्ढलोगस्स तिभागेण देसूणेण सादिरेगा ।'

तालवृक्षके समान आकार दिखाई देता है। और तीसरी गाथा ('लोयस्स विक्खंभो चउप्प-यारो') के साथ भी विरोध नहीं है; क्योंकि यहाँपर भी पूर्व और पश्चिम इन दोनों दिशाओं में गाथोक्त चारों ही प्रकारके विष्कम्भ दिखाई देते हैं। सात राजुकी मोटाई करणानुयोग सूत्रके विरुद्ध नहीं है; क्योंकि उक्त सूत्रमें उसकी यदि विधि नहीं है तो प्रतिषेध भी नहीं है—विधि और प्रतिषेध दोनोंका अभाव है। और इसलिये लोकको उपर्युक्त प्रकारका ही ग्रहण करना चाहिये।'

यह सब धवलाका वह कथन है जो शास्त्रीजीके प्रथम प्रमाणका मूल आधार है और जिसमें राजवार्तिकका कोई उल्लेख भी नहीं है। इसमें कहीं भी न तो यह निर्दिष्ट है और न इसपरसे फलित ही होता है कि वीरसेन स्वामी लोकके उत्तर-दक्षिणमें सर्वत्र सात राजु मोटाई वाली मान्यताके संस्थापक हैं—उनसे पहले दूसरा कोई भी आचार्य इस मान्यताको माननेवाला नहीं था अथवा नहीं हुआ है। प्रत्युत इसके, यह साफ जाना जाता है कि वीरसेनने कुछ लोगोंकी गलतीका समाधानमात्र किया है—स्वयं कोई नई स्थापना नहीं की। इसी तरह यह भी फलित नहीं होता कि वीरसेनके सामने 'मुहतलसमासअद्धं' और 'मूलं मज्झेण गुणं' नामकी दो गाथाओंके सिवाय दूसरा कोई भी प्रमाण उक्त मान्यताको स्पष्ट करनेके लिये नहीं था। क्योंकि प्रकरणको देखते हुए 'अण्णाइरियपरूविद-मुदिंगायारलोगस्स' पदमें प्रयुक्त हुए 'अण्णाइरिय' (अन्याचार्य) शब्दसे उन दूसरे आचार्योंका ही ग्रहण किया जा सकता है जिनके मतका शंकाकार अनुयायी था अथवा जिनके उपदेशको पाकर शंकाकार उक्त शंका करनेके लिये प्रस्तुत हुआ था, न कि उन आचार्योंका जिनके अनुयायी स्वयं वीरसेन थे और जिनके अनुसार कथन करनेकी अपनी प्रवृत्तिका वीरसेनने जगह जगह उल्लेख किया है। इस क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वारके मंगला-चरणमें भी वे 'खेत्तसुत्तं जहोवएसं पयासेमो' इस वाक्यके द्वारा यथोपदेश (पूर्वाचार्योंके उपदेशानुसार) क्षेत्रसूत्रको प्रकाशित करनेकी प्रतिज्ञा कर रहे हैं। दूसरे, जिन दो गाथाओं को वीरसेनने उपस्थित किया है उनसे जब उक्त मान्यता फलित एवं स्पष्ट होती है तब वीरसेनको उक्त मान्यताका संस्थापक कैसे कहा जा सकता है ?—वह तो उक्त गाथाओंसे भी पहलेकी स्पष्ट जानी जाती हैं। और इससे तिलोयपण्णत्तीको वीरसेनसे बादकी बनी हुई कहनेमें जो प्रधान कारण था वह स्थिर नहीं रहता। तीसरे, वीरसेनने 'मुहतल-समासअद्धं' आदि उक्त दोनों गाथाएँ शंकाकारको लक्ष्य करके ही प्रस्तुत की हैं और वे संभवतः उसी ग्रन्थ अथवा शंकाकारके द्वारा मान्य ग्रन्थकी जान पड़ती हैं जिसपरसे तीन सूत्रगाथाएँ शंकाकारने उपस्थित की थीं; इसीसे वीरसेनने उन्हें लोकका दूसरा आकार मानने पर निरर्थक बतलाया है। और इस तरह शंकाकारके द्वारा मान्य ग्रन्थके वाक्यों परसे ही उसे निरुत्तर कर दिया है। और अन्तमें जब उसने 'करणानुयोगसूत्र' के विरोध की कुछ बात उठाई है अर्थात् ऐसा संकेत किया है कि उस ग्रन्थमें सात राजुकी मोटाईकी कोई स्पष्ट विधि नहीं है तो वीरसेनने साफ उत्तर दे दिया है कि वहां उसकी विधि नहीं तो निषेध भी नहीं है—विधि और निषेध दोनोंके अभावसे विरोधके लिये कोई अवकाश नहीं रहता। इस विवक्षित 'करणानुयोगसूत्र'का अर्थ करणानुयोग-विषयके समस्त ग्रंथ तथा प्रक-रण समझ लेना युक्तियुक्त नहीं है। वह 'लोकानुयोग'की तरह, जिसका उल्लेख सर्वार्थसिद्धि और लोकविभागमें भी पाया जाता है[1], एक जुदा ही ग्रंथ होना चाहिये। ऐसी स्थितिमें वीरसेनके सामने लोकके स्वरूप सम्बन्धमें अपने मान्य ग्रंथोंके अनेक प्रमाण मौजूद होते हुए भी उन्हें उपस्थित (पेश) करनेकी जरूरत नहीं थी और न किसीके लिये यह लाजिमी

---

१ "इतरो विशेषो लोकानुयोगतः वेदितव्यः" (३-२) —सर्वार्थसिद्धि
"विन्दुमात्रमिदं शेषं माह्यं लोकानुयोगतः" (७-६८) —लोकविभाग

है कि जितने प्रमाण उसके पास हों वह उन सबको ही उपस्थित करे—वह जिन्हें प्रसंगानुसार उपयुक्त और जरूरी समझता है उन्हींको उपस्थित करता है और एक ही आशयके यदि अनेक प्रमाण हों तो उनमेंसे चाहे जिसको अथवा अधिक प्राचीनको उपस्थित कर देना काफी होता है। उदाहरणके लिये 'मुहतलसमासअद्धं' नामकी गाथासे मिलती जुलती और उसी आशयकी एक गाथा तिलोयपण्णत्तीमें निम्न प्रकार पाई जाती है:—

मुहभूमिसमासद्धिय गुणिदं तुंगेन तह य वेधेण।
घणगणिदं णादव्वं वेत्तासण-सण्णिए खेत्ते ॥१६५॥

इस गाथाको उपस्थित न करके यदि वीरसेनने 'मुहतलसमासअद्धं' नामकी उक्त गाथाको उपस्थित किया जो शंकाकारके मान्य सूत्रग्रंथकी थी तो उन्होंने वह प्रसंगानुसार उचित ही किया, और उसपरसे यह नहीं कहा जा सकता कि वीरसेनके सामने तिलोयपण्णत्तीकी यह गाथा नहीं थी, होती तो वे उसे जरूर पेश करते। क्योंकि शंकाकार मूल सूत्रोंके व्याख्यानादि-रूपमें स्वतंत्ररूपसे प्रस्तुत किये गए तिलोयपण्णत्ती जैसे ग्रथोंको माननेवाला मालूम नहीं होता—माननेवाला होता तो वैसी शंका ही न करता—, वह तो कुछ प्राचीन मूलसूत्रोंका पक्षपाती जान पड़ता है और उन्हींपरसे सब कुछ फलित करना चाहता है। उसे वीरसेनने मूलसूत्रोंकी कुछ दृष्टि बतलाई है और उसके द्वारा पेश की हुई सूत्र-गाथाओंकी अपने कथनके साथ संगति बिठलाई है। और इस लिये अपने द्वारा सविशेपरूपसे मान्य ग्रंथोंके प्रमाणोंको उपस्थित करनेका वहां प्रसंग ही नहीं था। उनके आधारपर तो वे अपना सारा विवेचन अथवा व्याख्यान लिख ही रहे हैं।

अब मैं तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न दो ऐसे प्राचीन प्रमाणोंको भी पेश कर देना चाहता हूँ जिनसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि वीरसेनकी धवला कृतिसे पूर्व अथवा (शक सं० ७३८ से पहले) छह द्रव्योंका आधारभूत लोक, जो अधः ऊर्ध्व तथा मध्यभागमें क्रमशः वेत्रासन, मृदंग तथा झल्लरीके सदृश आकृतिको लिये हुए है अथवा डेढ मृदंग जैसे आकारवाला है उसे चौकोर (चतुरस्रक) माना है। उसके मूल, मध्य, ब्रह्मान्त और लोकान्तमें जो क्रमशः सात, एक, पाँच, तथा एक राजुका विस्तार बतलाया गया है वह पूर्व और पश्चिम दिशाकी अपेक्षासे है, दक्षिण तथा उत्तर दिशाकी अपेक्षासे सर्वत्र सात राजुका प्रमाण माना गया है और इसी लोकको सात राजुके घनप्रमाण निर्दिष्ट किया है:—

(अ) कालः पञ्चास्तिकायाश्च स प्रपञ्चा इहाऽखिलाः।
लोक्यंते येन तेनाऽयं लोक इत्यभिलप्यते ॥४-५॥

वेत्रासन-मृदंगोरु-झल्लरी-सदृशाऽऽकृतिः।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च यथायोगमिति त्रिधा ॥४-६॥

मुजोर्धमधोभागे तस्योर्ध्वे मुरजो यथा।
आकारस्तस्य लोकस्य किन्त्वेप चतुरस्रकः ॥४-७॥

ये हरिवंशपुराणके वाक्य हैं, जो शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में बनकर समाप्त हुआ है। इसमें उक्त आकृतिवाले छह द्रव्योंके आधारभूत लोकको चौकोर (चतुरस्रक) बतलाया है— गोल नहीं, जिसे लम्बा चौकोर समझना चाहिये।

(आ) सत्तेक्कुपंचइक्का मूले मज्झे तहेव बंभंते।
लोयंते रज्जूओ पुव्वावरदो य वित्थारो ॥११८॥

दक्खिण-उत्तरदो पुण सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ।
उड्ढो चउदस रज्जू सत्त वि रज्जू घणो लोओ ॥११६॥

ये स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथाएं हैं, जो एक बहुत प्राचीन ग्रंथ है और वीरसेनसे कई शताब्दी पहलेका बना हुआ है। इनमें लोकके पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिणके राजुओंका उक्त प्रमाण बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें दिया हुआ है और लोकको चौदह राजु ऊंचा तथा सात राजुके घनरूप (३४३ राजु) भी बतलाया है।

इन प्रमाणोंके सिवाय, जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिमें दो गाथाएँ निम्न प्रकारसे पाई जाती हैं:—

पच्छिम-पुव्वदिसाए विक्खंभो होइ तस्स लोगस्स।
सत्तेग-पंच-एया मूलादो होंति रज्जूणि ॥ ४-१६ ॥
दक्खिण-उत्तरदो पुण विक्खंभो होइ सत्त रज्जूणि।
चदुसु वि दिसासु भागे चउदसरज्जूणि उत्तुंगो ॥ ४-१७ ॥

इनमें लोककी पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण चौड़ाई-मोटाई तथा ऊचाईका परिमाण स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथाओंके अनुरूप ही दिया है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति एक प्राचीन ग्रन्थ है और उन पद्मनन्दी आचार्यकी कृति है जो बलनन्दिके शिष्य तथा वीरनन्दीके प्रशिष्य थे और आगमोपदेशक महासत्व श्रीविजय भी जिनके गुरु थे। श्रीविजयगुरुसे सुपरिशुद्ध आगमको सुनकर तथा जिनवचन-विनिर्गत अमृतभूत अर्थपदको धारण करके उन्हींके माहात्म्य अथवा प्रसादसे उन्होंने यह ग्रंथ उन श्रीनन्दी मुनिके निमित्त रचा है जो माघनन्दी मुनिके शिष्य अथवा प्रशिष्य (सकलचन्द[1] शिष्यके शिष्य) थे, ऐसा ग्रंथकी प्रशस्तिपरसे जाना जाता है। बहुत संभव है कि ये श्रीविजय वे ही हों जिनका दूसरा नाम 'अपराजितसूरि' था। जिन्होंने श्रीनन्दी गणीकी प्रेरणाको पाकर भगवतीआराधनापर 'विजयोदया' नामकी टीका लिखी है और जो बल्देवसूरिके शिष्य तथा चन्द्रनन्दीके प्रशिष्य थे। और यह भी संभव है कि उनके प्रगुरु चन्द्रनन्दी वे ही हों जिनकी एक शिष्य-परम्पराका उल्लेख श्रीपुरुषके दानपत्र अथवा 'नागमंगल' ताम्रपत्रमें पाया जाता है, जो श्रीपुरके जिनालयके लिये शक सं० ६६८ (वि० सं० ८३३) में लिखा गया है और जिसमें चन्द्रनन्दीके एक शिष्य कुमारनन्दी, कुमारनन्दीके शिष्य कीर्तिनन्दी और कीर्तिनन्दीके शिष्य विमलचन्द्रका उल्लेख है। और इससे चन्द्रनन्दीका समय शक संवत् ६३८ से कुछ पहलेका ही जान पड़ता है। यदि यह कल्पना ठीक हो तो श्रीविजयका समय शक संवत् ६५८ के लगभग प्रारंभ होता है और तब जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिका समय शक सं० ६७० अर्थात् वि० सं० ८०५ के आस-पासका होना चाहिये। ऐसी स्थितिमें जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिकी रचना भी धवलासे पहलेकी—कोई ६८ वर्ष पूर्वकी—ठहरती है।

ऐसी हालतमें शास्त्रीजीका यह लिखना कि "वीरसेनस्वामीके सामने राजवार्तिक आदिमें बतलाए गये आकारके विरुद्ध लोकके आकारको सिद्ध करनेके लिये केवल उपर्युक्त दो गाथाएँ ही थीं। इन्हींके आधारपर वे लोकके आकारको भिन्न प्रकारसे सिद्ध कर सके तथा यह भी कहनेमें समर्थ हुए..................इत्यादि" न्यायसंगत मालूम नहीं होता। और न इस आधारपर तिलोयपण्णत्तिको वीरसेनसे बादकी बनी हुई अथवा उनके मतका अनुसरण करने वाली बतलाना ही न्यायसंगत अथवा युक्ति-युक्त कहा जा सकता है। वीरसेनके सामने तो उस विषयके न मालूम कितने ग्रंथ थे जिनके आधारपर उन्होंने अपने

---

१ सकलचन्द-शिष्यके नामोल्लेखवाली गाथा आमेरकी वि० सं० १५१८ की प्राचीन प्रतिमें नहीं है बादकी कुछ प्रतियोंमें है, इसीसे श्रीनन्दीके विषयमें माघनन्दीके प्रशिष्य होनेकी कल्पना की गई है।

सिद्ध है कि धवलाकारके सामने तिलोयपण्णत्ति थी, जिसके विषयमें दूसरी तिलोयपण्णत्ति होनेकी तो कल्पना की जाती है परन्तु यह नहीं कहा जाता और न कहा जा सकता है कि उसमें मंगलादिक छह अधिकारोंका वह सब वर्णन ही था जो वर्तमान तिलोयपण्णत्तिमें पाया जाता है; तब धवलाकारके द्वारा तिलोयपण्णत्तीके अनुसरणकी बात ही अधिक संभव और युक्तियुक्त जान पड़ती है।

ऐसी स्थितिमें शास्त्रीजीका यह दूसरा प्रमाण वस्तुतः कोई प्रमाण ही नहीं है और न स्वतंत्र युक्तिके रूपमें उसका कोई मूल्य जान पड़ता है।

(३) तीसरा प्रमाण अथवा युक्तिवाद प्रस्तुत करते हुए शास्त्रीजीने जो कुछ कहा है उसे पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है कि 'तिलोयपण्णत्तिमें धवलापरसे उन दो संस्कृत श्लोकोंको कुछ परिवर्तनके साथ अपना लिया गया है जिन्हें धवलामें कहींसे उद्धृत किया गया था और जिनमेंसे एक श्लोक अकलंकदेवके लघीयस्त्रयका 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' नाम का है।' परन्तु दोनों ग्रंथोंको जब खोलकर देखते हैं तो मालूम होता है कि तिलोयपण्णत्तिकारने धवलोद्धृत उन दोनों संस्कृत श्लोकोंको अपने ग्रन्थका अंग नहीं बनाया—वहाँ प्रकरणके साथ कोई संस्कृत श्लोक हैं ही नहीं, दो गाथाएँ हैं जो मौलिक रूपमें स्थित हैं और प्रकरणके साथ संगत हैं। इसी तरह लघीयस्त्रयवाला पद्य धवलामें उसी रूपसे उद्धृत नहीं जिस रूपमें कि वह लघीयस्त्रयमें पाया जाता है—उसका प्रथम चरण 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' के स्थान पर 'ज्ञानं प्रमाणमित्याहुः' के रूपमें उपलब्ध है। और दूसरे चरणमें 'इष्यते' की जगह 'उच्यते' क्रिया पद है। ऐसी हालतमें शास्त्रीजीका यह कहना कि "ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' इत्यादि श्लोक भट्टाकलंकदेवकी मौलिक कृति है, तिलोयपण्णत्तिकारने इसे भी नहीं छोड़ा" कुछ संगत मालूम नहीं होता। अस्तु, यहाँ दोनों ग्रन्थोंके दोनों प्रकृत पद्योंको उद्धृत किया जाता है, जिससे पाठक उनके विषयके विचारको भले प्रकार हृदयङ्गम कर सकें:—

जो ण पमाणणयेहिं णिक्खेवेणं णिक्खदे अत्थं।
तस्साऽजुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं च (व) पडिहादि ॥ ८२ ॥
णाणं होदि पमाणं णओ वि णादुस्स हिदयभावत्थो।
णिक्खेओ वि उवाओ जुत्तीए अत्थपडिगहणं ॥ ८३ ॥

—तिलोयपण्णत्ती

प्रमाण-नय-निक्षेपैर्योऽर्थो नाऽभिसमीक्ष्यते।
युक्तं चाऽयुक्तवद् भाति तस्याऽयुक्तं च युक्तवत् ॥ १० ॥
ज्ञानं प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास उच्यते।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः ॥ ११ ॥

—धवला १, १, पृ० १६, १७,

तिलोयपण्णत्तीकी पहली गाथामें यह बतलाया है कि 'जो प्रमाण, नय और निक्षेपके द्वारा अर्थका निरीक्षण नहीं करता है उसको अयुक्त (पदार्थ) युक्तकी तरह और युक्त (पदार्थ) अयुक्तकी तरह प्रतिभासित होता है।' और दूसरी गाथामें प्रमाण, नय और निक्षेपका उद्देशानुसार क्रमशः लक्षण दिया है और अन्तमें बतलाया है कि यह सब युक्तिसे अर्थका परिग्रहण है। अतः ये दोनो गाथाएं परस्पर संगत हैं। और इन्हें ग्रन्थसे अलग कर देने पर अगली 'इय णायं अवहारिय आइरियपरंपरागयं मणसा' (इस प्रकार

व्याख्यानादिकी उसी तरह सृष्टि की है जिस तरह कि अकलंक और विद्यानन्दादिने अपने राजवार्तिक, श्लोकवार्तिकादि ग्रन्थोंमें अनेक विषयोंका वर्णन और विवेचन बहुतसे ग्रन्थोंके नामोल्लेखके बिना भी किया है।

(२) द्वितीय प्रमाणको उपस्थित करते हुए शास्त्रीजीने यह बतलाया है कि 'तिलोयपण्णत्तिके प्रथम अधिकारकी ७ वीं गाथासे लेकर ८७ वीं गाथा तक ८१ गाथाओंमें मंगलादि छह अधिकारोंका जो वर्णन है वह पूरा का पूरा वर्णन संतपरूवणाकी धवला टीकामें आए हुए वर्णनसे मिलता जुलता है।' और साथ ही इस सादृश्य परसे यह भी फलित करके बतलाया कि "एक ग्रंथ लिखते समय दूसरा ग्रन्थ अवश्य सामने रहा है।" परन्तु धवलाकारके सामने तिलोयपण्णत्ति नहीं रही, धवलामें उन छह अधिकारोंका वर्णन करते हुए जो गाथाएँ या श्लोक उद्धृत किये गये हैं वे सब अन्यत्रसे लिये गये हैं तिलोयपण्णत्तिसे नहीं, इतना ही नहीं बल्कि धवलामें जो गाथाएं या श्लोक अन्यत्रसे उद्धृत हैं उन्हें भी तिलोयपण्णत्तिके मूलमें शामिल कर लिया है' इस दावेको सिद्ध करनेके लिये कोई भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया। जान पड़ता है पहले भ्रांत प्रमाणपरसे बनी हुई गलत धारणाके आधारपर ही यह सब कुछ बिना हेतुके ही कह दिया गया है!! अन्यथा शास्त्री जी कमसे कम एक प्रमाण तो ऐसा उपस्थित करते जिससे यह जाना जाता कि धवलाका अमुक उद्धरण अमुक ग्रन्थके नामोल्लेख पूर्वक अन्यत्रसे उद्धृत किया गया है और उसे तिलोयपण्णत्तिका अंग बना लिया गया है। ऐसे किसी प्रमाणके अभावमें प्रस्तुत प्रमाण परसे अभीष्ट की कोई सिद्धि नहीं हो सकती और इसलिये वह निरर्थक ठहरता है। क्योंकि वाक्योंकी शाब्दिक या आर्थिक समानतापरसे तो यह भी कहा जा सकता है कि धवलाकारके सामने तिलोयपण्णत्ति रही है; बल्कि ऐसा कहना, तिलोयपण्णत्तिके व्यवस्थित मौलिक कथन और धवलाकारके कथनकी व्याख्या शैलीको देखते हुए अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

रही यह बात कि तिलोयपण्णत्तिकी ८५ वीं गाथामें विविध ग्रन्थ-युक्तियोंके द्वारा मंगलादिक छह अधिकारोंके व्याख्यानका उल्लेख है[1] तो उससे यह कहाँ फलित होता है—कि उन विविध ग्रन्थोंमें धवला भी शामिल है अथवा धवलापरसे ही इन अधिकारोंका संग्रह किया गया है?—खासकर ऐसी हालतमें जबकि धवलाकार स्वयं 'मंगलणिमित्तहेऊ' नामकी एक भिन्न गाथाको कहींसे उद्धृत करके यह बतला रहे हैं कि 'इस गाथामें मंगलादिक छह बातोंका व्याख्यान करनेके पश्चात् आचार्यके लिये शास्त्रका (मूलग्रन्थका) व्याख्यान करनेकी जो बात कही गई है वह आचार्य परम्परासे चला आया न्याय है, उसे हृदयमें धारण करके और पूर्वाचार्योंके आचार (व्यवहार) का अनुसरण करना रत्नत्रयका हेतु है ऐसा समझकर, पुष्पदन्त आचार्य मंगलादिक छह अधिकारोंका सकारण प्ररूपण करनेके लिये मंगलसूत्र कहते हैं[2]। क्योंकि इससे स्पष्ट है कि मंगलादिक छह अधिकारोंके कथनकी परिपाटी बहुत प्राचीन है—उनके विधानादिका श्रेय धवलाको प्राप्त नहीं है। और इसलिये तिलोयपण्णत्तिकारने यदि इस विषयमें पुरातन आचार्योंकी कृतियोंका अनुसरण किया है तो वह न्याय ही है परन्तु उतने मात्रसे उसे धवलाका अनुसरण नहीं कहा जासकता धवलाका अनुसरण कहनेके लिये पहले यह सिद्ध करना होगा कि धवला तिलोयपण्णत्तिसे पूर्वकी कृति है, और यह सिद्ध नहीं है। प्रत्युत इसके, यह स्वयं धवलाके उल्लेखोंसे ही

---

१ "मंगलपहुदिछक्कं वक्खाणिय विविहगंथजुत्तीहिं।"

२ 'इदि णायमाइरिय-परंपरागयं मणेणावहारिय पुव्वाइरियायाराणुसरणं ति-रयण-हेउ त्ति पुप्फदंताइरियो मंगलादीणं छण्णं सकारणाणं परूवणट्ठं सुत्तमाह।'

आचार्य परम्परासे चले आये हुए न्यायको हृदयमें धारण करके) नामकी गाथा[1] असंगत तथा खटकनेवाली हो जाती है। इस लिये ये तीनों ही गाथाएं तिलोयपण्णत्तीकी अंगभूत हैं।

धवला (संतपरूवणा) में उक्त दोनों श्लोकोंको देते हुए उन्हें 'उक्तं च' नहीं लिखा और न किसी खास ग्रन्थके वाक्य ही प्रकट किया है। वे इस प्रश्नके उत्तरमें दिये गए हैं कि "एत्थ किमट्ठं णयपरूवणमिदि"?—यहाँ नयका प्ररूपण किस लिये किया गया है? और इस लिये वे धवलाकार-द्वारा निर्मित अथवा उद्धृत भी हो सकते हैं। उद्धृत होनेकी हालतमें यह प्रश्न पैदा होता है कि वे एक स्थानसे उद्धृत किये गये हैं या दो स्थानोंसे? यदि एक स्थान से उद्धृत किये गए हैं तो वे लघीयस्त्रयसे उद्धृत नहीं किये गये, यह सुनिश्चित है; क्योंकि लघीयस्त्रयमें पहला श्लोक नहीं है। और यदि दो स्थानोंसे उद्धृत किये गए हैं तो यह बात कुछ बनती हुई मालूम नहीं होती; क्योंकि दूसरा श्लोक अपने पूर्वमें ऐसे श्लोकको अपेक्षा रखता है जिसमें उद्देशादि किसी भी रूपमें प्रमाण, नय और निक्षेपका उल्लेख हो—लघीयस्त्रयमें भी 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' श्लोकके पूर्वमें एक ऐसा श्लोक पाया जाता है जिसमें प्रमाण, नय और निक्षेपका उल्लेख है और उनके आगमानुसार कथनकी प्रतिज्ञा की गई है ('प्रमाण-नय-निक्षेपानभिधास्ये यथागमं')—और उसके लिये पहला श्लोक संगत जान पड़ता है। अन्यथा, उसके विषयमें यह बतलाना होगा कि वह दूसरे कौनसे ग्रन्थका स्वतंत्र वाक्य है। दोनों गाथाओं और श्लोकोंकी तुलना करनेसे तो ऐसा मालूम होता है कि दोनों श्लोक उक्त गाथाओं परसे अनुवादरूपमें निर्मित हुए हैं। दूसरी गाथामें प्रमाण, नय और निक्षेपका उसी क्रमसे लक्षण-निर्देश किया गया है जिस क्रमसे उनका उल्लेख प्रथम गाथामें हुआ है। परन्तु अनुवादके छन्द (श्लोक) में शायद वह बात नहीं बन सकी, इसीसे उसमें प्रमाणके बाद निक्षेपका और फिर नयका लक्षण दिया गया है। इससे तिलोयपण्णत्तीकी उक्त गाथाओंकी मौलिकताका पता चलता है और ऐसा जान पड़ता है कि उन्हीं परसे उक्त श्लोक अनुवादरूपमें निर्मित हुए हैं—भले ही यह अनुवाद स्वयं धवलाकारके द्वारा निर्मित हुआ हो या उनसे पहले किसी दूसरेके द्वारा। यदि धवलाकारको प्रथम श्लोक कहींसे स्वतंत्र रूपमें उपलब्ध होता तो वे प्रश्नके उत्तरमें उसीको उद्धृत कर देना काफी समझते—दूसरे लघीयस्त्रय—जैसे ग्रंथसे दूसरे श्लोकको उद्धृत करके साथमें जोड़नेकी जरूरत नहीं थी; क्योंकि प्रश्नका उत्तर उस एक ही श्लोकसे हो जाता है। दूसरे श्लोकका साथमें होना इस बातको सूचित करता है कि एक साथ पाई जाने वाली दोनों गाथाओंके अनुवादरूपमें ये श्लोक प्रस्तुत किये गए हैं—चाहे वे किसीके भी द्वारा प्रस्तुत किये गये हों।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि धवलाकारने तिलोयपण्णत्तीकी उक्त दोनों गाथाओंको ही उद्धृत क्यों न कर दिया, उन्हें श्लोकोंमें अनुवादित करके या उनके अनुवादको रखनेकी क्या जरूरत थी? इसके उत्तरमें मैं सिर्फ इतना ही कह देना चाहता हूँ कि यह सब धवलाकार वीरसेनकी रुचिकी बात है, वे अनेक प्राकृत वाक्योंको संस्कृतमें और संस्कृत वाक्योंको प्राकृतमें अनुवादित करके रखते हुए भी देखे जाते हैं। इसी तरह अन्य ग्रन्थोंके गद्यको पद्यमें और पद्यको गद्यमें परिवर्तित करके अपनी टीकाका अंग बनाते हुए भी पाये जाते है। चुनाँचे तिलोयपण्णत्तीकी भी अनेक गाथाओंको उन्होंने संस्कृत गद्यमें अनुवादित करके रक्खा है; जैसे कि मंगलकी निरुक्तिपरक गाथाएं, जिन्हें शास्त्रीजीने अपने द्वितीय प्रमाणमें, समानताकी तुलना करते हुए, उद्धृत किया है। और इसलिये यदि ये उनके द्वारा

---

१ इस गाथाका नम्बर ८४ है। शास्त्रीजीने जो इसका नं० ८८ सूचित किया है वह किसी गलतीका परिणाम जान पड़ता है।

ही अनुवादित होकर रक्खे गये हैं तो इसमें आपत्तिकी कोई बात नहीं है। इसे उनकी अपनी शैली और पसन्द आदिकी बात समझना चाहिये।

अब देखना यह है कि शास्त्रीजीने 'ज्ञानं प्रमाणमात्मादेः' इत्यादि श्लोकको जो अकलंकदेवकी 'मौलिक कृति' बतलाया है उसके लिये उनके पास क्या आधार है ? कोई भी आधार उन्होंने व्यक्त नहीं किया; तब क्या अकलंकके ग्रंथमें पाया जाना ही अकलंककी मौलिक कृति होनेका प्रमाण है ? यदि ऐसा है तो राजवार्तिकमें पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धिके जिन वाक्योंको वार्तिकादिके रूपमें बिना किसी सूचनाके अपनाया गया है अथवा न्यायविनिश्चयमें समन्तभद्रके 'सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः' जैसे वाक्योंको अपनाया गया है उन सबको भी अकलंकदेवकी 'मौलिक कृति' कहना होगा। यदि नहीं, तो फिर उक्त श्लोकको अकलंकदेवकी मौलिक कृति बतलाना निर्हेतुक ठहरेगा। प्रत्युत इसके, अकलंकदेव चूंकि यतिवृषभके बाद हुए हैं अतः यतिवृषभकी तिलोयपण्णत्तीका अनुसरण उनके लिये न्यायप्राप्त है और उसका समावेश उनके द्वारा पूर्वपद्यमें प्रयुक्त 'यथागमं' पदसे हो जाता है; क्योंकि तिलोयपण्णत्ती भी एक आगम ग्रन्थ है जैसा कि गाथा नं० ८५, ८६, ८७ में प्रयुक्त हुए उसके विशेषणोंसे जाना जाता है। धवलाकारने भी जगह जगह उसे 'सूत्र' लिखा है और प्रमाणरूपमें उपस्थित किया है। एक जगह वे किसी व्याख्यानको व्याख्यानाभास बतलाते हुए तिलोयपण्णत्तिसूत्रके कथनको भी प्रमाणमें पेश करते हैं और फिर लिखते हैं कि सूत्रके विरुद्ध व्याख्यान नहीं होता है—जो सूत्रविरुद्ध हो उसे व्याख्यानाभास समझना चाहिये—नहीं तो अतिप्रसंग दोष आयेगा[1]।

इस तरह यह तीसरा प्रमाण असिद्ध ठहरता है। तिलोयपण्णत्तिकारने चूँकि धवलाके किसी भी पद्यको नहीं अपनाया अतः पद्योंको अपनानेके आधारपर तिलोयपण्णत्तीको धवलाके बादकी रचना बतलाना युक्तियुक्त नहीं है।

(४) चौथे प्रमाणरूपमें शास्त्रीजीका इतना ही कहना है कि 'दुगुणदुगुणो दुवग्गो णिरंतरो तिरियलोगो' नामका जो वाक्य धवलाकारने द्रव्यप्रमाणानुयोगद्वार (पृष्ठ ३६) में तिलोयपण्णत्तिके नामसे उद्धृत किया है वह वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमें पर्याप्त खोज करने पर भी नहीं मिला, इसलिये यह तिलोयपण्णत्ती उस तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न है जो धवलाकारके सामने थी। परन्तु यह मालूम नहीं हो सका कि शास्त्रीजीकी पर्याप्त खोजका क्या रूप रहा है। क्या उन्होंने भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंपर पाई जानेवाली तिलोयपण्णत्तीकी समस्त प्रतियाँ पूर्ण रूपसे देख डाली हैं ? यदि नहीं देखी हैं, और जहाँ तक मैं जानता हूँ समस्त प्रतियाँ नहीं देखी हैं, तब वे अपनी खोजको 'पर्याप्त खोज' कैसे कहते हैं ? वह तो बहुत कुछ अपर्याप्त है। क्या दो एक प्रतियोंमें उक्त वाक्यके न मिलनेसे ही यह नतीजा निकाला जा सकता है कि वह वाक्य किसी भी प्रतिमें नहीं है ? नहीं निकाला जा सकता। इसका एक ताजा उदाहरण गोम्मटसार-कर्मकाण्ड (प्रथम अधिकार) के वे प्राकृत गद्यसूत्र हैं जो गोम्मटसारकी पचासों प्रतियोंमें नहीं पाये जाते; परन्तु मूडबिद्रीकी एक प्राचीन ताडपत्रीय कन्नड प्रतिमें उपलब्ध हो रहे हैं और जिनका उल्लेख मैंने अपने गोम्मटसार-विषयक निबन्धमें किया है। इसके सिवाय, तिलोयपण्णत्ति-जैसे बड़े ग्रन्थमें लेखकोंके प्रमादसे दो चार गाथाओंका छूट जाना कोई बड़ी बात नहीं है। पुरातन-जैनवाक्य-सूचीके अवसरपर मेरे सामने तिलोयपण्णत्तीकी चार प्रतियाँ रहीं हैं—

---

१ "तं वक्खाणाभासमिदि कुदो णव्वदे ? जोइसिय-भागहारसुत्तादो चंदाइच्च बिंबपमाणपरूवय-तिलोयपण्णत्तिसुत्तादो च। ण च सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होइ, अइप्पसंगादो।"

—धवला १, २, ४, पृ० ३६

एक बनारसके स्याद्वादमहाविद्यालयकी, दूसरी देहलीके नया मन्दिरकी, तीसरी आगराके मोतीकटरा मन्दिरकी और चौथी सहारनपुरके ला० प्रद्युम्नकुमारजीके मन्दिरकी। इन प्रतियोंमें, जिनमें बनारसकी प्रति बहुत ही अशुद्ध एवं त्रुटिपूर्ण जान पड़ी, कितनी ही गाथाएं ऐसी देखनेको मिलीं जो एक प्रतिमें है तो दूसरीमें नहीं हैं, इसीसे जो गाथा किसी एक प्रतिमें ही बढ़ी हुई मिली उसका सूचीमें उस प्रतिके साथ सूचन किया गया है। ऐसी भी गाथाएं देखनेमें आईं जिनमें किसीका पूर्वार्ध एक प्रतिमें है तो उत्तरार्ध नहीं, और उत्तरार्ध है तो पूर्वार्ध नहीं। और ऐसा तो बहुधा देखनेमें आया कि कितनी ही गाथाओंको बिना नम्बर डाले रनिंगरूपमें लिख दिया है, जिससे वे सामान्यावलोकनके अवसरपर ग्रंथका गद्यभाग जान पड़ती हैं। किसी किसी स्थलपर गाथाओंके छूटनेकी साफ सूचना भी की गई है; जैसे कि चौथे महाधिकारकी 'णवणउदिसहस्साणि' इस गाथा नं० २२१३ के अनन्तर आगरा और सहारनपुरकी प्रतियोंमें दस गाथाओंके छूटनेकी सूचना की गई है और वह कथनक्रमको देखते हुए ठीक जान पड़ती है—दूसरी प्रतियोंपरसे उनकी पूर्ति नहीं हो सकी। क्या आश्चर्य है जो ऐसी छूटी अथवा त्रुटित हुई गाथाओंमेंका ही उक्त वाक्य हो। ग्रन्थ-प्रतियोंका ऐसी स्थितिमें दो-चार प्रतियोंको देखकर ही अपनी खोजको पर्याप्त खोज बतलाना और उसके आधारपर उक्त नतीजा निकाल बैठना किसी तरह भी न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। और इसलिये शास्त्रीजीका यह चतुर्थ प्रमाण भी उनके इष्टको सिद्ध करनेके लिये समर्थ नहीं है।

(५) अब रहा शास्त्रीजीका अन्तिम प्रमाण, जो प्रथम प्रमाणकी तरह उनकी गलत धारणाका मुख्य आधार बना हुआ है। इसमें जिस गद्यांशकी ओर संकेत किया गया है और जिसे कुछ अशुद्ध भी बतलाया गया है वह क्या स्वयं तिलोयपण्णत्तिकारके द्वारा धवलापरसे 'अम्हेहि' पदके स्थानपर 'एसा परूवणा' पाठका परिवर्तन करके उद्धृत किया गया है अथवा किसी तरहपर तिलोयपण्णत्तीमें प्रक्षिप्त हुआ है? इसपर शास्त्रीजीने गम्भीरताके साथ विचार करना शायद आवश्यक नहीं समझा और इसीसे कोई विचार प्रस्तुत नहीं किया; जब कि इस विषयपर खास तौरपर विचार करनेकी जरूरत थी और तभी कोई निर्णय देना था—वे वैसे ही उस गद्यांशको तिलोयपण्णत्तीका मूल अंग मान बैठे हैं, और इसीसे गद्यांशमें उल्लिखित तिलोयपण्णत्तीको वर्तमान तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न दूसरी तिलोयपण्णत्ती कहनेके लिये प्रस्तुत हो गए हैं। इतना ही नहीं, बल्कि तिलोयपण्णत्तीमें जो यत्र तत्र दूसरे गद्यांश पाये जाते हैं उनका अधिकांश भाग भी धवलापरसे उद्धृत है, ऐसा सुझानेका संकेत भी कर रहे हैं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। जान पड़ता है ऐसा कहते और सुझाते हुए शास्त्रीजीको यह ध्यान नहीं आया कि जिन आचार्य जिनसेनको वे वर्तमान तिलोयपण्णत्तीका कर्ता बतलाते हैं वे क्या उनकी दृष्टिमें इतने असावधान अथवा अयोग्य थे कि जो 'अम्हेहि' पदके स्थानपर 'एसा परूवणा' पाठका परिवर्तन करके रखते और ऐसा करनेमें उन साधारण मोटी भूलों एवं त्रुटियोंको भी न समझ पाते जिन्हें शास्त्रीजी बतला रहे हैं? और ऐसा करके जिनसेनको अपने गुरु वीरसेनकी कृतिका लोप करने की भी क्या जरूरत थी? वे तो बराबर अपने गुरुका कीर्तन और उनकी कृतिके साथ उनका नामोल्लेख करते हुए देखे जाते हैं। चुनाँचे वीरसेन जब जयधवलाको अधूरा छोड़ गये और उसके उत्तरार्धको जिनसेनने पूरा किया तो वे प्रशस्तिमें स्पष्ट शब्दोंद्वारा यह सूचित करते हैं कि 'गुरुने पूर्वार्धमें जो भूरि वक्तव्य प्रकट किया था—आगे कथनके योग्य बहुत विषयका संसूचन किया था, उसे (तथा तत्सम्बन्धी नोट्स आदिको) देखकर यह अल्पवक्तव्यरूप उत्तरार्ध पूरा किया गया है:—

गुरुणाऽर्धेऽग्रिमे भूरिवक्तव्ये संप्रकाशिते ।
तन्निरीक्ष्याऽल्पवक्तव्यः पश्चार्धस्तेन पूरितः ॥ ३६ ॥

परन्तु वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमें तो वीरसेनका कहीं नामोल्लेख भी नहीं है—ग्रंथके मंगलाचरण तकमें भी उनका स्मरण नहीं किया गया। यदि वीरसेनके संकेत अथवा आदेशादिके अनुसार जिनसेनके द्वारा वर्तमान तिलोयपण्णत्तीका संकलनादि कार्य हुआ होता तो वे ग्रंथके आदि या अन्तमें किसी न किसी रूपसे इसकी सूचना जरूर करते तथा अपने गुरुका नाम भी उसमें जरूर प्रकट करते। और यदि कोई दूसरी तिलोयपण्णत्ती उनकी तिलोयपण्णत्तीका आधार होती तो वे अपनी पद्धति और परिणतिके अनुसार उसका और उसके रचयिताका स्मरण भी ग्रंथकी आदिमें इसी तरह करते जिस तरह कि महापुराणकी आदिमें 'कविपरमेश्वर' और उनके 'वागर्थसंग्रह' पुराणका किया है, जो कि उनके महापुराणका मूलाधार रहा है। परन्तु वर्तमान तिलोयपण्णत्तीमें ऐसा कुछ भी नहीं है, और इसलिये उसे उक्त जिनसेनकी कृति बतलाना और उन्हींके द्वारा उक्त गद्यांशका उद्धृत किया जाना प्रतिपादित करना किसी तरह भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। दूसरे भी किसी विद्वान् आचार्यके साथ जिन्हें वर्तमान तिलोयपण्णत्तीका कर्ता बतलाया जाय, उक्त भूलभरे गद्यांशके उद्धरणकी बात संगत नहीं बैठती; क्योंकि तिलोयपण्णत्तीकी मौलिक रचना इतनी प्रौढ और सुव्यवस्थित है कि उसमें मूलकार-द्वारा ऐसे सदोष उद्धरणकी कल्पना नहीं की जा सकती। और इसलिये उक्त गद्यांश बादको किसीके द्वारा धवला आदि परसे प्रक्षिप्त किया हुआ जान पड़ता है। और भी कुछ गद्यांश ऐसे हो सकते हैं जो धवलापरसे प्रक्षिप्त किये गये हों; परन्तु जिन गद्यांशोंकी तरफ शास्त्रीजीने फुटनोटमें संकेत किया है वे तिलोयपण्णत्तीमें धवलापरसे उद्धृत किये गये मालूम नहीं होते; बल्कि धवलामें तिलोयपण्णत्तीपरसे उद्धृत जान पड़ते हैं। क्योंकि तिलोयपण्णत्तीमें गद्यांशोंके पहले जो एक प्रतिज्ञात्मक गाथा पाई जाती है वह इस प्रकार है:—

वादवरुद्धक्खेत्ते विंदफलं तह य अट्ठपुढवीए ।
सुद्धायासखिदीणं लवमेत्तं वत्तइस्सामो ॥ २८२ ॥

इसमें वातवलयोंसे अवरुद्ध क्षेत्रों, आठ पृथिवियों और शुद्ध आकाशभूमियोंका घनफल बतलानेकी प्रतिज्ञा की गई है और उस घनफलका 'लवमेत्तं (लवमात्र)'[1] विशेषणके द्वारा बहुत संक्षेपमें ही कहनेकी सूचना की गई है। तदनुसार तीनों घनफलोंका क्रमशः गद्यमें कथन किया गया है और यह कथन मुद्रित प्रतिमें पृष्ठ ४३ से ५० तक पाया जाता है। धवला (पृ० ५१ से ५५) में इस कथनका पहला भाग 'संपहि (सपदि)' से लेकर 'जगपदरं होदि' तक प्रायः ज्योंका त्यों उपलब्ध है परन्तु शेष भाग, जो आठ पृथिवियों आदिके घनफलसे सम्बन्ध रखता है, उपलब्ध नहीं है। और इससे वह तिलोयपण्णत्तीपरसे उद्धृत जान पड़ता है—खासकर उस हालतमें जब कि धवलाकारके सामने तिलोयपण्णत्ती मौजूद थी और उन्होंने अनेक विवादग्रस्त स्थलोंपर उसके वाक्योंको बड़े गौरवके साथ प्रमाणमे उपस्थित किया है तथा उसके कितने ही दूसरे वाक्योंको भी विना नामोल्लेखके

---

१ तिलोयपण्णत्तिकारको जहाँ विस्तारसे कथन करनेकी इच्छा अथवा आवश्यकता हुई है वहाँ उन्होंने वैसी सूचना कर दी है; जैसाकि प्रथम अधिकारमें लोकके आकारादिका संक्षेपसे वर्णन करनेके अनन्तर 'वित्थररुइबोहत्थं वोच्छं णाणावियप्पे वि (७४)' इस वाक्यके द्वारा विस्ताररुचिवाले प्रतिपाद्योंको लक्ष्य करके उन्होंने विस्तारसे कथनकी प्रतिज्ञा की है।

उद्धृत किया है और अनुवादित करके भी रक्खा है। ऐसी स्थितिमें तिलोयपण्णत्तीमें पाये जाने वाले गद्यांशोंके विषयमें यह कल्पना करना कि वे धवलापरसे उद्धृत किये गये हैं, समुचित नहीं है और न शास्त्रीजीके द्वारा प्रस्तुत किये गये गद्यांशसे इस विषयमें कोई सहायता मिलती है; क्योंकि उस गद्यांशका तिलोयपण्णत्तिकारके द्वारा उद्धृत किया जाना सिद्ध नहीं है—वह बादको किसीके द्वारा प्रक्षिप्त हुआ जान पड़ता है।

अब मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि यह इतना ही गद्यांश प्रक्षिप्त नहीं है बल्कि इसके पूर्वका "एत्तो चंदाण सपरिवाराणमाणयण विहाणं वत्तइस्सामो" से लेकर "एदम्हादो चेव सुत्तादो" तकका अंश और उत्तरवर्ती "तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति" से लेकर "तं चेदं १६५५३६१।" तकका अंश, जो 'चंदस्स सदसहस्सं' नामकी गाथाके पूर्ववर्ती है, वह सब प्रक्षिप्त है। और इसका प्रबल प्रमाण मूलग्रन्थपरसे ही उपलब्ध होता है। मूलग्रन्थमें सातवें महाधिकारका प्रारम्भ करते हुए पहली गाथामें मंगलाचरण और ज्योतिर्लोकप्रज्ञप्तिके कथनकी प्रतिज्ञा करनेके अनन्तर उत्तरवर्ती तीन गाथाओंमें ज्योतिषियोंके निवासक्षेत्र आदि १७ महाधिकारोंके नाम दिये हैं जो इस ज्योतिर्लोकप्रज्ञप्ति नामक महाधिकारके अंग हैं। वे तीनों गाथाएँ इस प्रकार हैं:—

> जोइसिय-णिवासखिदी भेदो संखा तहेव विण्णासो ।
> परिमाणं चरचारो अचरसरूवाणि आऊ य ॥ २ ॥
> आहारो उस्सासो उच्छेहो ओहिणाणसत्तीओ ।
> जीवाणं उप्पत्ती मरणाइं एक्कसमयम्मि ॥ ३ ॥
> आउगबंधणभावं दंसणगहणस्स कारणं विविहं ।
> गुणठाणादि पवण्णणमहियारा सत्तरसिमाए ॥ ४ ॥

इन गाथाओंके बाद निवासक्षेत्र, भेद, संख्या, विन्यास, परिमाण, चरचार, अचरस्वरूप और आयु नामके आठ अधिकारोंका क्रमशः वर्णन दिया है—शेष अधिकारोंके विषयमें लिख दिया है कि उनका वर्णन भावनलोकके वर्णनके समान कहना चाहिये ('भावणलोए व्व वत्तव्वं')—और जिस अधिकारका वर्णन जहाँ समाप्त हुआ है वहाँ उस की सूचना कर दी है। सूचनाके वे वाक्य इस प्रकार हैं :—

> "णिवासखेत्तं सम्मत्तं। भेदो सम्मत्तो। संखा सम्मत्ता। विण्णासं सम्मत्तं। परिमाणं सम्मत्तं। एवं चरगिहाणं चारो सम्मत्तो। एवं अचरजोइसगणपरूवणा सम्मत्ता। आऊ सम्मत्ता।"

अचर ज्योतिषगणकी प्ररूपणाविषयक ७वें अधिकारकी समाप्तिके बाद ही 'एत्तो चंदाण' से लेकर 'तं चेदं १६५५३६१' तकका वह सब गद्यांश है, जिसकी ऊपर सूचना की गई है। 'आयु' अधिकारके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। आयुका अधिकार उक्त गद्यांशके अनन्तर 'चंदस्स सदसहस्सं' इस गाथासे प्रारम्भ होता है और अगली गाथापर समाप्त होजाता है। ऐसी हालतमें उक्त गद्यांश मूल ग्रंथके साथ सम्बद्ध न होकर साफ तौरसे प्रक्षिप्त जान पड़ता है। उसका आदिका भाग 'एत्तो चंदाण' से लेकर 'तदो ण एत्थ संपदायविरोधो कायव्वो त्ति' तक तो धवला-प्रथम खंडके स्पर्शनानुयोगद्वारमें, थोड़ेसे शब्दभेदके साथ प्रायः ज्योंका त्यों पाया जाता है और इसलिये यह उसपरसे उद्धृत हो सकता है परन्तु अन्तका भाग—"एदेण विहाणेण परूविदगच्छं विरलिय रूवं पडि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णभत्थे" के अनन्तरका—धवलाके अगले गद्यांशके साथ कोई मेल

नहीं खाता, और इसलिये वह वहाँसे उद्धृत न होकर अन्यत्रसे लिया गया है। और यह भी हो सकता है कि यह सारा ही गद्यांश धवलासे न लिया जाकर किसी दूसरे ही ग्रंथपरसे, जो इस समय अपने सामने नहीं है और जिसमें आदि अन्तके दोनों भागोंका समावेश हो, लिया गया हो और तिलोयपण्णत्तीमें किसीके द्वारा अपने उपयोगादिकके लिये हाशियेपर नोट किया गया हो और जो बादको ग्रंथमें कापीके समय किसी तरह प्रक्षिप्त होगया हो। इस गद्यांशमें ज्योतिष देवोंके जिस भागहार सूत्रका उल्लेख है वह वर्तमान तिलोयपण्णत्ती के इस महाधिकारमें पाया जाता है। उसपरसे फलितार्थ होनेवाले व्याख्यानादिकी चर्चाको किसीने यहांपर अपनाया है, ऐसा जान पड़ता है।

इसके सिवाय, एक बात यहां और भी प्रकट कर देनेकी है और वह यह कि जिस वर्तमान तिलोयपण्णत्तीको शास्त्रीजी मूलानुसार आठहजार श्लोकपरिमाण बतलाते हैं वह उपलब्ध प्रतियोंपरसे उतने ही श्लोकपरिमाण मालूम नहीं होती, बल्कि उसका परिमाण एक हजार श्लोक-जितना बढ़ा हुआ है, और उससे यह साफ़ जाना जाता है कि मूलमें उतना अंश बादको प्रक्षिप्त हुआ है। और इसलिये उक्त गद्यांशको, जो अपनी स्थितिपरसे प्रक्षिप्त होनेका स्पष्ट सन्देह उत्पन्न कर रहा है और जो ऊपरके विवेचनपरसे मूलकारकी कृति मालूम नहीं होती, प्रक्षिप्त कहना कुछ भी अनुचित नहीं है। ऐसे ही प्रक्षिप्त अंशोंसे, जिनमें कितने ही 'पाठान्तर' वाले अंश भी शामिल जान पड़ते हैं, ग्रंथके परिमाणमें वृद्धि हो रही है। और यह निर्विवाद है कि कुछ प्रक्षिप्त अंशोंके कारण किसी ग्रंथको दूसरा ग्रंथ नहीं कहा जा सकता। अतः शास्त्रीजीने उक्त गद्यांशमें तिलोयपण्णत्तीका नामोल्लेख देख कर जो यह कल्पना करली है कि 'वर्तमान तिलोयपण्णत्ती उस तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न है जो धवलाकारके सामने थी' वह ठीक नहीं है।

इस तरह शास्त्रीजीके पाँचों प्रमाणोंमें कोई भी प्रमाण यह सिद्ध करनेके लिये समर्थ नहीं है कि वर्तमान तिलोयपण्णत्ती आचार्य वीरसेनके बादकी बनी हुई है अथवा उस तिलोयपण्णत्तीसे भिन्न है जिसका वीरसेन अपनी धवला टीकामें उल्लेख कर रहे हैं। और तब यह कल्पना करना तो अतिसाहसकी बात है कि 'वीरसेनके शिष्य जिनसेन इसके रचयिता हैं, जिनकी स्वतंत्र रचना-पद्धतिके साथ इसका कोई मेल भी नहीं खाता। प्रत्युत इसके, ऊपरके संपूर्ण विवेचन एवं ऊहापोहपरसे स्पष्ट है कि यह तिलोयपण्णत्ती यतिवृषभाचार्य की कृति है, धवलासे कई शताब्दी पूर्वकी रचना है और वही चीज है जिसका वीरसेन स्वामी अपनी धवलामें उद्धरण, अनुवाद तथा आशयग्रहणादिके रूपमें स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग करते रहे हैं। शास्त्रीजीने ग्रंथकी अन्तिम मंगलगाथामें 'दट्ठूण' पदको ठीक मानकर उसके आगे जो 'अरिसवसहं' पाठकी कल्पना की है और उसके द्वारा यह सुझानेका यत्न किया है कि इस तिलोयपण्णत्तीसे पहले यतिवृषभका तिलोयपण्णत्ती नामका कोई आर्ष ग्रंथ था जिसे देखकर यह तिलोयपण्णत्ती रची गई है और उसीकी सूचना इस गाथामें 'दट्ठूण अरिसवसहं' वाक्यके द्वारा की गई है, वह भी युक्तियुक्त नहीं है; क्योंकि इस पाठ और उसके प्रकृत अर्थकी संगति गाथाके साथ नहीं बैठती, जिसका स्पष्टीकरण इस निबन्ध के प्रारम्भमें किया जा चुका है। और इसलिये शास्त्रीजीका यह लिखना कि "इस तिलोयपण्णत्तिका संकलन शक संवत् ७३८ (वि० सं० ८७३) से पहलेका किसी भी हालतमें नहीं है" तथा "इसके कर्ता यतिवृषभ किसी भी हालतमें नहीं हो सकते" उनके अतिसाहसका द्योतक है। वह पूर्णतः बाधित है और उसे किसी तरह भी युक्तिसंगत नहीं कहा जासकता।

२६. परमात्मप्रकाश— यह अपभ्रंश भाषामें अध्यात्मविषयका अभी तक उपलब्ध अतिप्राचीन ग्रंथ है, दोहा छन्दमें लिखा गया है, आत्मा तथा मोक्ष-विषयक दो मुख्य प्रश्नोंको लेकर दो अधिकारोंमें विभक्त है और इसकी पद्यसंख्या ब्रह्मदेवकी संस्कृत टीकाके

अनुसार सब मिलाकर ३४५ है, जिसमें ३३७ दोहे हैं, एक चतुष्पादिका (चौपाई) है और शेष ७ गाथादि छंद हैं, जो अपभ्रंशमें नहीं हैं। इस ग्रंथमें आत्माके तीन भेदों—वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका वर्णन बड़े ही अच्छे ढंगसे दिया है और उसके द्वारा आत्मा-परमात्माके भेदको भले प्रकार प्रदर्शित किया है। आत्मा कैसे परमात्मा बन सकता है अथवा कैसे कोई जीव मोह-ग्रंथिको भेदकर अपना पूर्णविकास सिद्ध कर सकता है और मोक्षसुखका साक्षात् अनुभव कर सकता है, यह सब भी इसमें बड़ी युक्तिके साथ वर्णित है। ग्रंथ भट्टप्रभाकर नामक शिष्यके प्रश्नोंको लेकर सर्वसाधारणके लिये लिखा गया है और अपने विषयका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रंथ है। इसका विशेष परिचय जाननेके लिये डाक्टर ए०एन० उपाध्येद्वारा सम्पादित परमात्मप्रकाशकी अंग्रेजी प्रस्तावनाको देखना चाहिये, जो बड़े परिश्रम और अनुसन्धानके साथ लिखी गई है और जिसका हिन्दीसार भी साथमें लगा हुआ है।

इसके कर्ता योगीन्दु (योगिचन्द्र) नामके आचार्य हैं, जिन्हें आमतौरपर 'योगीन्द्र' समझा तथा लिखा जाता है और जो मूलमें प्रयुक्त 'जोइन्दु' का गलत संस्कृतरूप है। इनके दूसरे ग्रंथ 'योगसार' में ग्रंथकारका स्पष्ट नाम 'जोगिचंद' दिया है, जिसपरसे 'योगीन्दु' नाम फलित होता है—योगीन्द्र नहीं; क्योंकि इन्दु चन्द्रका वाचक है—इन्द्रका नहीं। और इस गलतीको डा० उपाध्येने अपनी उक्त प्रस्तावनामें स्पष्ट किया है। आचार्य योगीन्दुका समय भी उन्होंने ईसाकी ५ वीं और ७ वीं शताब्दीका मध्यवर्ती छठी शताब्दीका निश्चित किया है, जो प्रायः ठीक जान पड़ता है; क्योंकि ग्रंथमें कुन्दकुन्दके भावपाहुडके साथ साथ पूज्यपाद (ई० ५वीं श०) के समाधितंत्रका भी बहुत कुछ अनुसरण किया गया है और परमात्मप्रकाशका 'कालु लहेविणु जोइया' नामका दोहा चण्डके 'प्राकृतलक्षण' व्याकरण (ई० ७वीं श०) में उदाहरणरूपसे उद्धृत है। ग्रंथकारने अपना कोई परिचय नहीं दिया और न अन्यत्रसे उसका कोई खास परिचय उपलब्ध होता है, यह बड़े ही खेदका विषय है।

इस ग्रंथपर प्रधानतः तीन टीकाएँ उपलब्ध हैं—संस्कृतमें ब्रह्मदेवकी, कन्नडमें बालचन्द्र मलधारीकी और हिन्दीमें पं० दौलतरामकी, जो संस्कृत टीकाके आधारपर लिखी गई है। संस्कृत और हिन्दीकी दोनों टीकाएँ एक साथ रायचन्द्र जैनशास्त्रमालामें प्रकाशित हो चुकी हैं।

३०. **योगसार**—यह भी अपभ्रंश भाषामें अध्यात्मविषयका एक दोहात्मक ग्रंथ है और उन्हीं योगीन्दु अर्थात् योगिचन्द्र आचार्यकी रचना है जो परमात्मप्रकाशके रचयिता हैं—ग्रंथके अन्तिम दोहेमें 'जोगिचंदमुणिणा' पदके द्वारा ग्रंथकारके नामका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इसके पद्योंकी संख्या २०८ है, जिनमें एक चौपाई और दो सोरठा छंद भी हैं; परन्तु ग्रंथको दोहा छंदमें रचनेकी प्रतिज्ञा की गई है, और दोहोंमें ही रचे जानेकी अन्तिम दोहेमें सूचना की गई है, इससे तीनों भिन्न छन्द प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। यह ग्रंथ उन भव्य जीवोंको लक्ष्य करके लिखा गया है जो संसारसे भयभीत हैं और मोक्षके लिये लालायित हैं।

३१. **निजात्माष्टक**—यह आठ पद्यों (स्रग्धरा छंदों) में एक स्तोत्र ग्रंथ है, जिसमें निजात्माका सिद्धस्वरूपसे ध्यान किया गया है। प्रत्येक पद्यके अन्तमें लिखा है 'सोहं झायेमि णिच्चं परमपय-गओ णिव्वियप्पो णियप्पो' अर्थात् वह परमपदको प्राप्त निर्विकल्प निजात्मा मैं हूँ, ऐसा मैं नित्य ध्यान करता हूँ। इसे भी परमात्मप्रकाशके कर्ताकी कृति कहा जाता है; परन्तु मूलमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। अन्तमें लिखा है—"इति योगीन्द्रदेव-विरचितं निजात्माष्टकं समाप्तम्।" इतने मात्रसे यह ग्रंथ परमात्मप्रकाशके कर्ताका

सिद्ध नहीं होता। डाक्टर ए० एन उपाध्ये एम० ए० का भी इसके विषयमें ऐसा ही मत है। अतः इसका कर्तृत्व-विषय अभी अनुसन्धानके योग्य है।

३२. दर्शनसार—अनेक मतों तथा संघोंकी उत्पत्ति आदिको लिये हुए यह अपने विषयका एक ही ग्रंथ है, जो प्राचीन गाथाओंपरसे निबद्ध किया गया अथवा उन्हें साथमें लेकर संकलित किया गया है (गा. १,४६) और अनेक ऐतिहासिक घटनाओंकी समय-सूचना आदिको साथमें लिये हुए है। इसकी गाथासंख्या ५१ है और यह धारानगरीके पार्श्वनाथ चैत्यालयमें माघसुदी दसमी विक्रम सं० ६६०को बनकर समाप्त हुआ है (गा०५०)। इसमें एकान्तादि प्रधान पाँच मिथ्या मतों और द्राविड, यापनीय, काष्ठा, माथुर तथा भिल्ल संघोंकी उत्पत्तिका कुछ इतिहास उनके सिद्धान्तोंके उल्लेखपूर्वक दिया है, और इसलिये इतिहासके प्रेमियों तथा ऐतिहासिक विद्वानोंके लिये यह कामकी चीज है। इसके रचयिता अथवा संग्रहकर्ता देवसेन गणी हैं जिनके बनाये हुए तत्त्वसार, आराधनासार, नयचक्र और भावसंग्रह नामके और भी कई ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। भावसंग्रहमें देवसेनने अपने गुरुका नाम विमलसेन गणधर (गणी) दिया है[1], जबकि दूसरे ग्रंथोंमें स्पष्टरूपसे गुरुका नाम उल्लेखित नहीं है; परन्तु कुछ ग्रंथोंके मंगलाचरणोंमें अस्पष्टरूपसे अथवा श्लेषरूपमें वह उल्लेखित मिलता है—जैसे दर्शनसारमें 'विमलणाणं' पदके द्वारा, नयचक्रमें 'विगयमलं' और 'विमल-णाण-संजुत्तं' पदोंके द्वारा, आराधनासारमें 'विमलयरगुणसमिद्धं' पदके द्वारा और तत्त्वसारमें 'णिम्मलविसुद्धलद्धसब्भावे' पदके द्वारा उसकी सूचना मिलती है। 'विगयमलं' पद साफ तौरसे विमलका वाचक है और 'विमलणाणं' अथवा 'विमलणाण संजुत्तं' को जब प्रतिज्ञात ग्रंथका विशेषण किया जाता है तब उसका अर्थ विमल (गुरु) प्रतिपादित ज्ञानसे युक्त भी हो जाता है। इसी तरह 'विमलयरगुणसमिद्धं' आदिको भी समझ लेना चाहिये। अनेक ग्रंथोंके मंगलाचरणादिमें देव, गुरु तथा शास्त्रके लिये श्लेषरूपमें समान विशेषणोंके प्रयोगको अपनाया गया है और कहीं कहीं अपने नामकी भी श्लेषरूपमें सूचना साथमें कर दी गई है[2]। उसी प्रकारकी स्थिति उक्त प्रयोगोंकी है। इसके सिवाय, भावसंग्रहके मंगलाचरणमें 'सुरसेणणुयं' दर्शनसारके मंगलाचरणमें 'सुरसेणणमंसियं' और आराधनासारकी मंगलगाथामें 'सुरसेणवंदियं' इन पदोंकी सनानता भी अपना कुछ अर्थ रखती है और वह एककर्तृत्वको सूचित करती है। और इसलिये पांचों ग्रंथ एक ही देवसेनकी कृति मालूम होते हैं, जो कि मूलसंघके और संभवतः कुन्दकुन्दान्वय के आचार्य थे; क्योंकि दर्शनसारमें उन्होंने दूसरे जैन संघोंको थोड़ी थोड़ीसे मत-विभिन्नता के कारण 'जैनाभास' बतलाया है। और साथ ही ४३वीं गाथामें यह भी लिखा है कि 'यदि पद्मनन्दिनाथ (कुन्दकुन्दाचार्य) सीमन्धरस्वामीसे प्राप्त दिव्यज्ञानके द्वारा विशेप बोध न देते तो श्रमणजन सन्मार्गको कैसे जानते?[3]

पं० परमानन्द शास्त्रीने 'सुलोचनाचरित और देवसेन' नामक अपने लेख (अनेकान्त वर्ष ७ किरण ११-१२) में भावसंग्रहके कर्ता देवसेनको दर्शनसारके कर्तासे भिन्न बत-

---

१ सिरिविमलसेणगणहर-सिस्सो णामेण देवसेणो त्ति।
अबुहजण-बोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ॥ ७०१ ॥

२ यथा:—श्रीज्ञानभूषणं देवं परमात्मानमव्ययम्।
प्रणम्य बालसंबुध्यै वक्ष्ये प्राकृतलक्षणम् ॥—प्राकृतलक्षणटीकायां, ज्ञानभूषण-शिष्य-शुभचंद्रः
अभिभूय निजविपक्षं निखिलमतोद्योतनो गुणाम्भोधिः।
सविता जयतु जिनेन्द्रः शुभप्रबन्धः प्रभाचन्द्रः ॥—न्यायकुमुदचंद्र-प्रशस्ति

३ जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥ ४३ ॥

लाते हुए यह प्रतिपादन किया है कि अपभ्रंश भाषाका सुलोचनाचरित्र (वि० सं० ११३२ या १३७२)[1] और प्राकृत भाषाका भावसंग्रह दोनों एक ही देवसेनकी कृति हैं; क्योंकि भावसंग्रहके कर्ताकी तरह सुलोचनाचरित्रके कर्ताको भी विमलसेन गणी (गणधर) का शिष्य लिखा है। साथ ही, इन दोनों ग्रंथोंके कर्ता देवसेनकी संगति उन देवसेनके साथ बिठलाते हुए जिनका उल्लेख माथुरसंघके भट्टारक गुणकीर्तिके शिष्य यशःकीर्तिने वि० संवत् १४६७ के बने हुए अपने पाण्डवपुराणमें किया है, उन्हें माथुरसंघका विद्वान ठहराया है; इनके समयकी कल्पना विक्रमकी १२वीं या १३वीं शताब्दी की है और इस तरह यह सिद्ध एवं घोषित करना चाहा है वि० सं० ६६० (१० वीं शताब्दी) में दर्शनसारको समाप्त करनेवाले देवसेनके साथ सुलोचनाचरितके कर्ता देवसेनकेका ही नहीं किन्तु भावसंग्रहके कर्ता देवसेनका भी कोई सम्बन्ध नहीं बन सकता। परन्तु यह सब ठीक नहीं है और उसके निम्न कारण हैं :—

(१) सुलोचनाचरित्रमें देवसेनने अपने गुरु विमलसेनका नामोल्लेख करते हुए गणी या गणधर नहीं लिखा, बल्कि उनके लिये एक खास विशेषण 'मलधारि' तथा 'मलधारिदेव' का प्रयोग किया है[2]। यह विशेषण भावसंग्रहके कर्ता देवसेनके गुरु विमलसेन गणधरके साथ लगा हुआ नहीं है, और इसलिये दोनोंको एक नहीं कहा जा सकता।

(२) भावसंग्रह और सुलोचनाचरित्रके कर्ताओंमेंसे किसी भी देवसेनने अपनेको काष्ठासंघी अथवा माथुरसंघी नहीं लिखा; जब कि पाण्डवपुराणके कर्ता यशःकीर्तिने अपनी गुरुपरम्परामें जिन देवसेनका उल्लेख किया है उन्हें साफ तौरपर काष्ठासंघी माथुरगच्छी[3] बतलाया है। साथ ही, देवसेनको विमलसेनका शिष्य भी नहीं लिखा, बल्कि विमलसेनको देवसेनका उत्तराधिकारी बतलाया है। और इसलिये पाण्डवपुराणके देवसेनके साथ उक्त दोनों ग्रंथोंमेंसे किसीके भी कर्ता देवसेनकी संगति नहीं बैठती। गुरुपरम्परामें कुछ अक्रम-कथन अथवा क्रमभंगकी कल्पना करके संगति बिठलानेकी बात भी नहीं बन सकती है; क्योंकि एक तो गुरुपरम्पराको देते हुए उसमें अनुक्रमपरिपाटीसे कथनकी साफ सूचना की गई है; दूसरे अन्यत्र भी इस गुरुपरम्पराका प्रारंभ देवसेनसे मिलता है और विमलसेनको देवसेनका पट्टशिष्य सूचित किया है, जिसका एक उदाहरण कवि रैधूके सिद्धान्तार्थसारकी वह लेखकप्रशस्ति[4] है जो जयपुरके बाबा दुलीचन्दजीके शास्त्रभंडारकी संवत १५६३ की लिखी

---

१ ग्रन्थकी समाप्तिका समय श्रावणशुक्ला १४ बुधवार राक्षससंवत्सर दिया है, जो ज्योतिषकी गणनानुसार इन दोनों संवतोंमें पड़ता है, जो राक्षस नामक संवत्सर था।

२ "विमलसेणमलधारिहिं सीसें।" ३।
"सिरिमलधारिदेवपभणिज्जइ, णामे विमलसेणु जाणिज्जइ। तासु सीसु..............................(प्रशस्ति)

३ सिरिकट्ठसंघ माहुरहो गच्छि, पुक्खरगणि मुणि[वर] चड्ढ विं लच्छि।
संजायउ(या) वीरजिणुक्कमेण, परिवाडियजइवर णिहयएण।
सिरिदेवसेणु तह विमलसेणु, तह धम्मसेणु पुण भावसेणु।
तहो पट्ट उवएणउ सहसकित्ति, अणवरय भमिय जइ जासु कित्ति।

४ प्रशस्तिका आद्य अंश इस प्रकार है :—

"अथ संवत्सरेस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यगताब्दः संवत् १५६३ वर्षे वैशाखसुदि त्रयोदशी १३ भौमदिने कुरुजांगलदेशे श्रीसुवर्णपथ-शुभदुर्गे पातिसाहबब्बरु मुगुलु काबिली तस्य पुत्र हुमाऊँ तस्य राज्य-प्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे मिथ्यात्मविनाशनैककौमुदीप्रियगमार्थः गृहः भट्टारक-श्रीदेवसेनदेवाः तत्पट्टे वादिगजगंधहस्तिआचार्यश्रीविमलसेनदेवाः तत्पट्टे उभयभाषाप्रवीणतपोनिधि-भट्टारकश्रीधर्मसेनदेवाः तत्पट्टे मिथ्यात्वगिरिस्फोटनैकवहुदंडः आचार्यश्रीभावसेनदेवाः तत्पट्टे भ० श्रीसहस्रकीर्तिदेवाः तत्पट्टे आचार्यश्रीगुणकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ० यशःकीर्तिदेवाः तत्पट्टे..............॥"

हुई ६६ पत्रात्मक प्रतिमें पाई जाती है और जिसकी नकल उक्त पं० परमानन्दजीके पास से ही देखनेको मिली है।

(३) पाण्डवपुराण जब १४६७ में समाप्त हुआ तब उसके कर्ता यशःकीर्तिकी पाँचवीं गुरुपरम्परामें होनेवाले देवसेनका समय वि० सं० १४०० के लगभग ठहरता है। ऐसी स्थितिमें इन देवसेनके साथ एकत्व स्थापित करते हुए भावसंग्रहके कर्ता और सुलोचना-चरित्रके कर्ता देवसेनको विक्रमकी १२वीं या १३वीं शताब्दीका विद्वान कैसे बतलाया जा सकता है? १३वीं शताब्दी तो उन दो संवतों ११३२ और १३७२ के भी विरुद्ध जाती है जिनमेंसे किसी एकमें सुलोचनाचरित्रके रचे जानेकी संभावना व्यक्त की गई है।

(४) भावसंग्रहकी 'संकाइदोसरहियं', 'रायगिहे णिस्संको', 'णिव्विदगिंछो राया', 'ठिदिय(क)रणगुणपउत्तो' 'उवगूहणगुणजुत्तो' और 'एरिसगुणअट्ठजुयं', ये छह (२७६ से २८४ नं० की) गाथाएँ वसुनन्दी आचार्यके श्रावकाचारमें (नं० ५१ से ५६ तक) उद्धृत की गई हैं, ऐसा वसुनन्दिश्रावकाचारकी उस देहली-धर्मपुरा के नये मन्दिरकी शुद्ध प्रतिपरसे जाना जाता है जो संवत् १६६१ की लिखी हुई है, और जिसमें उक्त गाथाओंको देते हुए साफतौरसे लिखा है—"अतो गाथाषट्कं भावसंग्रहात्।" इन वसुनन्दी आचार्यका समय विक्रमकी ११वीं-१२वीं शताब्दी है। अतः भावसंग्रहके कर्ता देवसेन उनसे पहले हुए; तब सुलोचनाचरित्रके कर्ता देवसेन और पाण्डवपुराणकी गुरु-परम्परावाले देवसेनके साथ उनकी एकता किसी तरह भी स्थापित नहीं की जा सकती और न उन्हें १२वीं या १३वीं शताब्दीका विद्वान् ही ठहराया जा सकता है। और इसलिये जब तक भिन्न कर्तृकताका द्योतक कोई दूसरा स्पष्ट प्रमाण सामने न आ जावे तब तक दर्शनसार और भावसंग्रहको एक ही देवसेनकृत माननेमें कोई खास बाधा मालूम नहीं होती।

३३. भावसंग्रह—यह वही देवसेनकृत भावसंग्रह है, जिसकी ऊपर दर्शनसारके प्रकरणमें चर्चा की गई है। इसमें मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थानोंके क्रमसे जीवोंके औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ऐसे पाँच भावोंका अनेकरूप से वर्णन है और उसमें कितनी ही बातोंका समावेश किया गया है। माणिकचन्द्रग्रंथमाला के संस्करणानुसार इस ग्रंथकी पद्यसंख्या ७०१ है परन्तु यह संख्या अभी सुनिश्चित नहीं कही जा सकती; क्योंकि अनेक प्रतियोंमें हीनाधिक पद्य पाये जाते हैं। पं० नाथूरामजी प्रेमीने पूनाके भाण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूटकी एक प्रति (नं० १४६३ सन् १८८६-६२) का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "इसके प्रारंभिक अंशमें अन्य ग्रंथोंके उद्धरणोंको भरमार है", जो मूल ग्रंथकारके द्वारा उद्धृत नहीं हुए हैं, और अनेक स्थानोंपर—खासकर पाँचवें गुणस्थानके वर्णनमें—इसके पद्योंकी स्थिति रयणसार-जैसी संदिग्ध पाई जाती है। अतः प्राचीन प्रतियोंकी खोज करके इसके मूलरूपको सुनिश्चित करनेकी खास जरूरत है।

३४. तत्त्वसार—यह भी उक्त देवसेनका ७४ गाथात्मक ग्रंथ है। इसमें स्वगत और परगतके भेदसे तत्त्वका दो प्रकारसे निरूपण किया है और यह अपने विषयका अच्छा पठनीय तथा मननीय ग्रंथ है।

३५. आराधनासार—उक्त देवसेनका यह ग्रंथ ११५ गाथासंख्याको लिये हुए है और हेमकीर्तिके शिष्य रत्नकीर्तिकी संस्कृत टीकाके साथ माणिकचन्द्र-ग्रंथमालामें मुद्रित हुआ है। इसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपरूप चार आराधनाओंके कथनका सार निश्चय और व्यवहार दोनों रूपसे दिया है। ग्रंथ अपने विषयका बड़ा ही सुन्दर है।

३६. नयचक्र—यह भी उक्त देवसेनकी कृति है और ८७ गाथासंख्याको लिये हुए है। इसे 'लघुनयचक्र' भी कहते हैं, जो किसी बड़े नयचक्रको दृष्टिमें लेकर बादको किए

गए नामकरणका फल है। मूलके आदि-प्रतिज्ञा-वाक्यमें इसको 'नयलक्षण' और समाप्ति-वाक्यमें 'नयचक्र' प्रकट किया गया है। अन्यत्र भी 'नयचक्र' नामसे इसका उल्लेख मिलता है[1]। इससे इसका मूलनाम 'नयचक्र' ही है। परन्तु यह वह 'नयचक्र' नहीं जिसका विद्यानन्द आचार्यने अपने श्लोकवार्तिकके नयविवरण-प्रकरणमें निम्न शब्दोंद्वारा उल्लेख किया है :—

संक्षेपेण नयास्तावद् व्याख्याताः सूत्रसूचिताः ।
तद्विशेषाः प्रपञ्चेन संचिन्त्या नयचक्रतः ॥

क्योंकि इस कथनपरसे वह नयचक्र बहुत विस्तृत होना चाहिये। प्रस्तुत नयचक्र बहुत छोटा है, इससे अधिक कथन तो श्लोकवार्तिकके उक्त नयविवरण-प्रकरणमें पाया जाता है, जिसमें विशेष कथनके लिये नयचक्रको देखनेकी प्रेरणा की गई है। बहुत संभव है कि यह बड़ा नयचक्र वह हो जिसको दुःसमीरसे पोत (ज़हाज) की तरह नष्ट हो जानेका और उसके स्थानपर देवसेनद्वारा दूसरे नयचक्रके रचे जानेका उल्लेख माइल्लदेवने अपने 'दव्वसहावणयचक्क' के अन्तमें[2] किया है। इसके सिवाय, एक दूसरा बड़ा नयचक्र संस्कृतमें श्वेताम्बराचाय मल्लवादिका भी प्रसिद्ध है, जिसे 'द्वादशार-नयचक्र' कहते हैं और जो आज अपने मूलरूपमें उपलब्ध नहीं है। उसकी ओर भी संकेत हो सकता है। अस्तु।

देवसेनके इस नयचक्रमें नयोंका सूत्ररूपसे बड़ा सुन्दर वर्णन है, नयोंके मूल दो भेद द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक किये गये हैं और शेष सब संख्यात असंख्यात भेदोंको इन्हींके भेद-प्रभेद बतलाया गया है। नयोंके कथनका प्रारंभ करते हुए लिखा है कि—'जो नयदृष्टिसे विहीन हैं उन्हें वस्तुस्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती और जिन्हें वस्तुस्वरूपकी उपलब्धि नहीं—जो वस्तुस्वभावको नहीं पहचानते—वे सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते हैं ? नहीं हो सकते,' यह बड़े ही मर्मकी बात है और इसपरसे ग्रंथके विषयका महत्त्व स्पष्ट जाना जाता है। इसी तरह ग्रंथके अन्तमें 'नयचक्र' के विज्ञानको सकल शास्त्रोंकी शुद्धि करनेवाला और दुर्णयरूप अन्धकारके लिये मार्तण्ड बतलाते हुए यह भी लिखा है कि 'यदि अज्ञान-महोदधिको लीलामात्रमें तिरना चाहते हो तो नयचक्रको जाननेके लिये अपनी बुद्धिको लगाओ —नयोंका ज्ञान प्राप्त किये बिना अज्ञान-महासागरसे पार न हो सकोगे'।

३७. द्रव्यस्वभावप्रकाश-नयचक्र—यह ग्रंथ द्रव्यों, गुण-पर्यायों और उनके स्वरूपादिको सामान्य-विशेषादिकी दृष्टिसे प्रकाशित करनेवाला है और साथ ही उनको जाननेके साधनोंमें मुख्यभूत नयोंके स्वरूपादिपर प्रकाश डालनेवाला है, इसीसे इसका यह नाम प्रायः सार्थक है। वास्तवमें यह एक संग्रह-प्रधान ग्रंथ है। इसमें कुन्दकुन्दादि आचार्योंके ग्रंथोंकी कितनी ही गाथाओं तथा पद्य-वाक्योंका संग्रह किया गया है। और देवसेनके नयचक्रको तो प्रायः पूरा ही समाविष्ट कर लिया गया है। नयचक्रकी स्तुतिके कई पद्य भी इसके अन्तमें दिये हुए हैं और इसीसे इसे कुछ लोग बृहत् नयचक्र भी कहने अथवा समझने लगे हैं जो ठीक नहीं हैं; क्योंकि इसमें बृहत् नयचक्र जैसी कोई बात नहीं है। इसकी पद्यसंख्या देवसेनके नयचक्रसे प्रायः पंचगुनी अर्थात् ४२३ जितनी होने और अन्तिम गाथाओंमें नयचक्रका ही सविशेषरूपसे उल्लेख पाये जानेके कारण यह बृहत् नयचक्र समझ लिया गया जान पड़ता है। ग्रंथके अन्य भागोंकी अपेक्षा अन्तका भाग कुछ विशेषरूपसे अव्यवस्थित मालूम होता है। 'जइ इच्छइ उत्तरिदुं' इस गाथा नं० ४१६ के

१ श्वेताम्बराचार्य यशोविजयने 'द्रव्यगुणपर्ययरास' में और भोजसागरने 'द्रव्यानुयोगतर्कणा' में भी देवसेनके नामोल्लेखपूर्वक उनके नयचक्रका उल्लेख किया है।

२ दुसमीरणेण पोयं पेरियसंतं जहा ति(चि)रं णट्ठं।
सिरिदेवसेणमुणिणा तह णयचक्कं पुणो रइयं ॥

बाद, जोकि देवसेनके नयचक्रकी पूर्वोद्धृत अन्तिम गाथा (नं० ८७) है, एक गाथा निम्न प्रकारसे दी हुई है, जिसमें बतलाया गया है कि—'दोहार्थको सुनकर शुभंकर अथवा शंकर हँसकर बोला कि दोहोंमें अर्थ शोभित नहीं होता, उसे गाथाओंमें गूंथकर कहो—

सुणिऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहंकरो भणइ।
एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहाबंधेण तं भणह ॥ ४१७ ॥

इसके अनन्तर 'दारिय-दुण्णय-दणुयं' इत्यादि तीन गाथाओंमें देवसेनके नयचक्रकी प्रशंसाके साथ उसे नमस्कार करनेकी प्रेरणा की गई है, इससे यह गाथा, जिसमें ग्रंथ रचने की प्रेरणाका उल्लेख है, पूर्वाऽपर गाथाओंके साथ कुछ सम्बन्ध रखती हुई मालूम नहीं होती। इसी तरह नयचक्रकी प्रशंसात्मक उक्त तीन गाथाओंके बाद निम्न गाथा पाई जाती है जिसका उन तीन गाथाओं तथा अन्तकी (नं० ४२२) 'दुसमीरणेण पोयं' नामकी उस गाथाके साथ कोई सम्बन्ध नहीं बैठता, जिसमें प्राचीन नयचक्रके नष्ट होजानेपर देवसेनके द्वारा दूसरे नयचक्रके रचे जानेका उल्लेख है :—

दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं।
गाहाबंधेण पुणो रइयं माहल्लदेवेण ॥ ४२१ ॥

क्योंकि इसमें बतलाया है कि—'द्रव्यस्वभावप्रकाश' नामका कोई ग्रंथ पहलेसे दोहा छंदमें मौजूद था उसे माहल्ल अथवा माहिल्लदेवने गाथाछंदमें परिवर्तित करके पुनः रचा है। इस गाथाकी उक्त प्रेरणात्मक गाथा नं० ४१७ के साथ तो संगति बैठती है परन्तु आगे पीछेकी गाथाओंने ग्रंथके सन्दर्भमें गड़बड़ी उपस्थित कर रक्खी है। और इससे ऐसा मालूम होता है कि इन दोनों (नं० ४१७, ४२१) के पूर्वापर सम्बन्धकी कुछ गाथाएँ नष्ट हो गई हैं और दूसरी गाथाएँ उनके स्थानपर आ घुसी हैं। अतः इस ग्रंथकी प्राचीन प्रतियोंकी खोज होकर ग्रन्थसन्दर्भको ठीक एवं सुव्यवस्थित किये जानेकी जरूरत है।

उक्त गाथा नं० ४२१ परसे ग्रंथकर्ताका नाम 'माहल्लदेव' उपलब्ध होता है; परन्तु पं०नाथूरामजी प्रेमीने अपनी ग्रंथपरिचयात्मक प्रस्तावनामें तथा 'जैनसाहित्य और इतिहास' के अन्तर्गत 'देवसेन और नयचक्र' नामक लेखमें भी सर्वत्र ग्रंथकर्ताका नाम 'माइल्लधवल' दिया है। मालूम नहीं इस नामकी उपलब्धि उन्हें कहाँसे हुई है? क्योंकि इस पाठान्तर का उनके द्वारा कहीं कोई उल्लेख नहीं किया गया। हो सकता है कि कारंजाकी प्रतिमें यह पाठ हो; क्योंकि अपने उक्त लेखमें प्रेमीजीने एक जगह यह सूचित किया है कि "कारंजाकी प्रतिमें 'माइल्लधवलेण' पर 'देवसेनशिष्येण' टिप्पण भी है। अस्तु, ये ग्रंथकार संभवतः उन्हीं देवसेनके शिष्य जान पड़ते हैं जिनके नयचक्रको इन्होंने अपने इस ग्रंथमें समाविष्ट किया है, जिन्हें 'सियसद्दसुणयदुण्णय' नामकी गाथा नं० ४२० में भारी प्रशंसाके साथ नयचक्रकार बतलाया है और 'गुरु' लिखा है और जिसका समर्थन कारंजा प्रतिके उक्त टिप्पणसे भी होता है। इसके सिवाय, प्रेमीजीने 'दुसमीरणेण पोयं पेरिय' नामकी गाथा नं० ४२२ का एक दूसरा पाठ मोरेनाकी प्रतिका निम्न प्रकारसे दिया है, जिस का पूर्वार्ध बहुत अशुद्ध है—

दुसमीरपोयमि(नि)वाय पा(या)ता(णं) सिरिदेवसेणजोईणं।
तेसिं पायपसाए उवलद्धं समणतच्चेण ॥

और इस परसे यह कल्पना की है कि 'माइल्लधवलका देवसेनसूरिसे कुछ निकट का गुरु-शिष्य सम्बन्ध था,' जो उपर्युक्त अन्य कारणोंकी मौजूदगीमें ठीक हो सकता है।

और इसलिये जब तक कोई दूसरा स्पष्ट प्रमाण सामने न आवे तब तक इन्हें देवसेनका शिष्य मानना अनुचित न होगा।

३८. **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति**—यह त्रिलोकप्रज्ञप्ति और त्रिलोकसार जैसे ग्रंथोंकी तरह करणानुयोग-विषयका ग्रंथ है। इसमें मध्यलोकके मध्यवर्ती जम्बूद्वीपका कालादि-विभागके साथ मुख्यतासे वर्णन है और वह वर्णन प्रायः जम्बूद्वीपके भरत, ऐरावत, महाविदेहक्षेत्रों, हिमवान आदि पर्वतों, गंगा-सिन्ध्वादि नदियों, पद्म-महापद्मादि द्रहों, लवणादि समुद्रों तथा अन्य बाह्य-प्रदेशों, कालके अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी आदि भेद-प्रभेदों, उनमें होनेवाले परिवर्तनों और ज्योतिष्पटलादिसे सम्बन्ध रखता है। साथ ही, लौकिक-अलौकिक गणित, क्षेत्रादिकी पैमाइश और प्रमाणादिके कथनोंको भी साथमें लिये हुए है। संक्षेपमें इसे पुरातन भूगोल और खगोल-विषयक ग्रंथ समझना चाहिये। इसमें १३ उद्देश अथवा अधिकार हैं और गाथासंख्या प्रायः २४२७ पाई जाती है। यह ग्रंथ भी अभी तक प्रकाशित (मुद्रित) नहीं हुआ है।

इस ग्रंथके कर्ता श्री पद्मनन्दि आचार्य हैं, जो बलनन्दिके शिष्य और वीरनन्दिके प्रशिष्य थे, जिन्होंने श्रीविजय गुरुके पाससे सुपरिशुद्ध आगमको सुनकर तथा जिनवचन-विनिर्गत अमृतभूत अर्थपदको धारण करके उन्हींके माहात्म्य अथवा प्रसादसे यह ग्रंथ पारियात्रदेशके वारानगरमें रहते हुए, उस नगरके स्वामी शक्तिभूपाल अथवा शान्तिभूपालके समयमें, उन श्रीनन्दि गुरुके निमित्त संक्षेपसे रचा है जो सकलचन्द्रके शिष्य और माघनन्दि गुरुके प्रशिष्य थे अथवा सकलचन्द्रके शिष्य न होकर माघनन्दीके शिष्य थे—प्रशिष्य नहीं[1]। ऐसा ग्रंथके अन्तिमभाग अर्थात् उसकी प्रशस्तिपरसे जाना जाता है, जो इस प्रकार है :—

> णाणा-णरवइ-महिदो विगयभओ संगभंगउम्मुक्को।
> सम्मदंसणसुद्धो संजम-तव-सील-संपुण्णो ॥ १४३ ॥
> जिणवर-वयण-विणिग्गय-परमागमदेसओ महासत्तो।
> सिरिणिलओ गुणसहिओ सिरिविजयगुरु त्ति विक्खाओ ॥ १४४ ॥
> सोऊण तस्स पासे जिणवयणविणिग्गयं अमदभूदं।
> रइदं किंचिदुद्देसे अत्थपदं तह य लद्धूणं ॥ १४५ ॥

× × × ×

> अह तिरिय-उड्ढ लोएसु तेसु जे होंति बहु वियप्पा दु।
> सिरिविजयस्स महप्पा ते सव्वे वण्णिदा किंचि ॥ १५३ ॥
> गय-राय-दोस-मोहो सुद-सायर-पारओ मइ-पगब्भो।
> तव-संजम-संपण्णो विक्खाओ माघणंदिगुरू ॥ १५४ ॥
> तस्सेव य वरसिस्सो सिद्धंतमहोवहिम्मि धुयकलुसो।
> णवणियमसीलकलिदो गुणउत्तो सयलचंदगुरू ॥ १५५ ॥

---

१ आमेर (जयपुर) की वि० संवत् १५१८ की प्रतिमें सकलचन्द्रके नामोल्लेखवाली गाथा (नं० १५५) नहीं है, ऐसा पं० परमानन्द शास्त्री वीरसेवामंदिरको मिलान करनेपर मालूम हुआ है। यदि वह वस्तुतः ग्रन्थका अङ्ग नहीं है तो श्रीनन्दीको माघनन्दीका प्रशिष्य न समझकर शिष्य समझना चाहिये।

तस्सेव य वर-सिस्सो णिम्मल-वरणाण-चरण-संजुत्तो।
सम्मद्दंसण-सुद्धो सिरिणंदिगुरु त्ति विक्खाओ ॥ १५६ ॥
तस्स णिमित्तं लिहियं (रइयं) जंबूदीवस्स तह य पण्णत्ती।
जो पढइ सुणइ एदं सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥ १५७ ॥
पंच-महव्वय-सुद्धो दंसण-सुद्धो य णाण-संजुत्तो।
संजम-तव-गुण-सहिदो रागादि-विवज्जिदो धीरो ॥ १५८ ॥
पंचाचार-समग्गो छज्जीव-दयावरो विगद-मोहो।
हरिस-विसाय-विहूणो णामेण वीरणंदि त्ति ॥ १५९ ॥
तस्सेव य वर-सिस्सो सुत्तत्थ-वियक्खणो मइ-पगब्भो।
पर-परिवाद-णियत्तो णिस्संगो सव्व-संगेसु ॥ १६० ॥
सम्मत्त-अभिगद-मणो णाणे तह दंसणे चरित्ते य।
परतंति-णियत्तमणो बलणंदिगुरु त्ति विक्खाओ ॥ १६१ ॥
तस्स य गुण-गण-कलिदो तिदंडरहिदो तिसल्ल-परिसुद्धो।
तिण्णि वि गारव-रहिदो सिस्सो सिद्धंत-गय-पारो ॥ १६२ ॥
तव-णियम-जोग-जुत्तो उज्जुत्तो णाण-दंसण-चरित्ते।
आरंभकरण-रहिदो णामेण पउमणंदि त्ति ॥ १६३ ॥
सिरिगुरुविजय-सयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं।
मुणिपउमणंदिणा खलु लिहियं एयं समासेण ॥ १६४ ॥
सम्मद्दंसण-सुद्धो कद-वद-कम्मो सुसील-संपण्णो।
अणवरय-दाणसीलो जिणसासण-वच्छलो धीरो ॥ १६५ ॥
णाणा-गुण-गण-कलिओ णरवइ-संपूजिओ कला-कुसलो।
वारा-णयरस्स पहू णरुत्तमो सत्ति(संति)-भूपालो ॥ १६६ ॥
पोक्खरणि-वावि-पउरे बहु-भवण-विहूसिए परम-रम्मे।
णाणा-जण-संकिण्णे धण-धण्ण-समाउले दिव्वे ॥ १६७ ॥
सम्मादिट्ठिजणोघे मुणिगणणिवहेहिं मंडिये रम्मे।
देसम्मि पारियत्ते जिणभवण-विहूसिए दिव्वे ॥ १६८ ॥
जंबूदीवस्स तहा पण्णत्ती बहुपयत्थसंजुत्तं(त्ता)।
लिहियं(या) संखेवेणं वाराए अच्छमाणेण ॥ १६९ ॥
छदुमत्थेण विरइयं जं किं पि हवेज्ज पवयण-विरुद्धं।
सोधंतु सुगीदत्था तं पवयण-वच्छलत्ताए ॥ १७० ॥

—उद्देश १३

इस प्रशस्तिमें ग्रंथकारने अपनेको गुणगणकलित, त्रिदण्डरहित, त्रिशल्यपरिशुद्ध, त्रिगारवरहित, सिद्धान्तपारंगत, तपनियमयोगयुक्त, ज्ञानदर्शनचरित्रोद्युक्त और आरम्भ-

करणरहित वतलाया है; अपने गुरु वलनन्दिको सूत्रार्थविचक्षण, मतिप्रगल्भ, परपरिवाद-निवृत्त, सर्वसंगनिःसंग, दर्शनज्ञानचरित्रमें सम्यक् अविगतमन, परतृप्तिनिवृत्तमन, और विख्यात सूचित किया है; अपने दादागुरु वीरनन्दिको पंचमहाव्रतशुद्ध, दर्शनशुद्ध, ज्ञान-संयुक्त, संयमतपगुणसहित, रागादिविवर्जित, धीर, पंचाचारसमग्र, षट्जीवदयातत्पर, विगतमोह और हर्षविषादविहीन विशेषणोंके साथ उल्लेखित किया है; और अपने शास्त्र-गुरु श्रीविजयको नानानरपतिमहित, विगतभय, संगभंगउन्मुक्त, सम्यग्दर्शनशुद्ध, संयम-तप-शीलसम्पूर्ण, जिनवरवचनाविनिर्गत-परमागमदेशक, महासत्व, श्रीनिलय, गुणसहित और विख्यात विशेषणोंसे युक्त प्रकट किया है। साथ ही, सत्ति (संति) भूपालको सम्यग्-दर्शनशुद्ध, कृत-व्रत-कर्म, सुशीलसम्पन्न, अनवरतदानशील, जिनशासनवत्सल, धीर, नानागुणगणकलित, नरपतिसंपूजित, कलाकुशल, वारानगरप्रभु और नरोत्तम वतलाया है। परन्तु इतना सब कुछ वतलाते हुए भी अपने तथा अपने गुरुओंके संघ अथवा गण-गच्छादिके विषयमें कुछ नहीं वतलाया, न सत्ति भूपाल अथवा सति भूपालके वंशादिकका कोई परिचय दिया और न ग्रंथका रचनाकाल ही निर्दिष्ट किया है। ऐसी हालतमें ग्रंथकार और ग्रंथके निमाणकालादिकका ठीक ठीक पता चलाना आसान नहीं है; क्योंकि पद्मनन्दि नामके दसों विद्वान आचार्य-भट्टारकादि हो गए हैं और वीरनन्दि, श्रीनन्दि, सकलचन्द्र, माघनन्दि, और श्रीविजय जैसे नामोंके भी अनेक आचार्यादिक हुए हैं। इसीसे सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीने, अपने 'जैन साहित्य और इतिहास' में, इस ग्रंथके समयनिर्णयको कठिन वतलाते हुए उसके विषयमें असमर्थता व्यक्त की है और अन्तको इतना कहकर ही सन्तोष धारण किया है कि—"फिर भी यह ग्रंथ हमारे अनुमानसे काफी प्राचीन है और उस समयका है जब प्राकृतमें ही ग्रंथरचना करनेकी प्रणाली अधिक थी, और जब संघ, गण आदि भेद अधिक रूढ नहीं हुए थे।" वादको उन्हें महामहोपाध्याय ओझाजीके 'राजपूतानेका इतिहास' द्वि० भागपरसे यह मालूम हुआ कि वाराँनगर जो वर्तमानमें कोटा राज्यके अन्तर्गत है वह पहले मेवाड़के ही अन्तर्गत था और इसलिये मेवाड़ भी पारियात्र देशमें शामिल था, जिसे हेमचन्द्रकोषमें "उत्तरो विन्ध्यात्पारियात्रः" इस वाक्यके अनुसार विन्ध्याचलके उत्तरमें वतलाया है। इस मेवाड़का एक गुहिलवंशी राजा शक्तिकुमार हुआ है, जिसका एक शिलालेख वैशाख सुदि १ वि० संवत् १०३४ का आहाड़में (उदयपुरके समीप) मिला है। अतः प्रेमीजीने अपने उक्त ग्रंथके परिशिष्टमें इस शक्तिकुमार और जम्बू-द्वीपप्रज्ञप्तिके उक्त सत्तिभूपालके एकत्वकी संभावना करते हुए अनिश्चितरूपमें लिखा है—"यदि इसी गुहिलवंशीय शक्तिकुमारके समयमें जंबूदीपपण्णत्तीकी रचना हुई हो, तो उसके कर्ता पद्मनन्दिका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दी मानना चाहिये।"

ऐसी वस्तुस्थितिमें अब मैं अपने पाठकोंको इतना और भी वतला देना चाहता हूँ कि भगवतीआराधनाकी 'विजयोदया' टीकाके कर्ता 'श्रीविजय' नामके एक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं, जिनका दूसरा नाम 'अपराजित' सूरि है। पं० आशाधरजीने, अपनी 'मूलाराधनादर्पण' नामकी टीकामें जगह जगह उन्हें 'श्रीविजयाचार्य' के नामसे उल्लेखित किया है और प्रायः इसी नामके साथ उनकी उक्त संस्कृत टीकाके वाक्योंको मतभेदादिके प्रदर्शनरूपमें उद्धृत किया है अथवा किसी गाथाके अमान्यतादि-विषयमें उनके इस नाम को पेश किया है[1]। श्रीविजयने अपनी उक्त टीका श्रीनन्दीगणीकी प्रेरणाको पाकर लिखी है। इधर यह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति भी एक श्रीनन्दि गुरुके निमित्त लिखी गई है और इसके कर्ता पद्मनन्दिने अपने शास्त्रगुरुके रूपमें श्रीविजयका नाम खासतौरसे कई वार उल्लेखित किया है। इससे वहुत संभव है कि दोनों 'श्रीविजय' एक हों और दोनों ग्रंथोंके निमित्त-

१ अनेकान्त वर्ष २ किरण १ पृ० ५७-६०।

भूत श्रीनन्दि गुरु भी एक ही हों। श्रीविजयने अपने गुरुका नाम बलदेव सूरि और प्रगुरु का चन्द्रनन्दि (महाकर्मप्रकृत्याचार्य) सूचित किया है और पद्मनन्दि अपने गुरुका नाम बलनन्दि और प्रगुरुका वीरनन्दि लिख रहे हैं। हो सकता है कि बलदेव और बलनन्दिका व्यक्तित्व भी एक हो और इस तरह श्रीविजय और पद्मनन्दि दोनों परस्परमें गुरुभाई हों जिनमें श्रीविजय ज्येष्ठ और पद्मनन्दि कनिष्ठ हों, और इस तरह पद्मनन्दिने श्रीविजयका उसी तरहसे गुरुरूपमें उल्लेख किया हो जिस तरह कि गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्रने इन्द्रनन्दि आदिका किया है, जो उन्हींके गुरु अभयनन्दिके बड़े शिष्योंमें थे। और दोनोंके प्रगुरुनामोंमें जो अन्तर है उसका कारण एकके अनेक गुरुओंका होना अथवा एक गुरुके अनेक नामोंका होना हो सकता है, जिनमेंसे कोई भी अपनी इच्छानुसार चाहे जिस गुरु अथवा गुरुनामका उल्लेख कर सकता है, और ऐसा प्रायः होता आया है। यदि यह कल्पना ठीक हो तो फिर यह देखना चाहिये कि इस ग्रंथ और उसके कर्ता पद्मनन्दिका दूसरा समय क्या हो सकता है?

चन्द्रनन्दीका सबसे पुराना उल्लेख उनकी एक शिष्य-परम्पराके उल्लेख-सहित, श्रीपुरुषके दानपत्र अथवा नागमंगल ताम्रपत्रमें पाया जाता है[1] जो श्रीपुरके जिनालयके लिये शक संवत् ६९८ (वि० सं० ८३३) में लिखा गया है और जिसमें चन्द्रनन्दीके एक शिष्य कुमारनन्दी, कुमारनन्दीके शिष्य कीर्तिनन्दी और कीर्तिनन्दीके शिष्य विमलचन्द्र का उल्लेख है, और इससे चन्द्रनन्दीका समय शक संवत् ६३८ से कुछ पहलेका ही जान पड़ता है। बहुत संभव है कि उक्त श्रीविजय इन्हीं चन्द्रनन्दीके प्रशिष्य हों। यदि ऐसा है तो श्रीविजयका समय शक संवत् ६५८ के लगभग प्रारंभ होता है और तब जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति और उसके कर्ता पद्मनन्दिका समय शक संवत् ६७० अर्थात् वि० संवत् ८०५ के आसपासका होना चाहिये। उस समय पारियात्र देशके अन्तर्गत वारानगरका स्वामी कोई शक्ति या शान्ति नामका भूपाल (राजा) हुआ होगा, जिसका इतिहाससे पता चलाना चाहिये। और यह भी संभव है कि वह कोई बड़ा राजा न होकर वारानगरका जागीरदार (जमींदार) हो 'भूपाल' उसके नामका ही अंश हो अथवा उसे टाईटलके रूपमें प्राप्त हो और राजा या महाराजाके द्वारा सम्मानित होनेके कारण ही उसे 'नरवइसंपूजिओ' (नर-पतिसंपूजित) विशेषण दिया गया हो। ऐसी हालतमें उसका नाम इतिहासमें मिलना ही कठिन है। कुछ भी हो, यह ग्रंथ अपने साहित्यादिकपरसे काफी प्राचीन मालूम होता है।

३९. धर्मरसायन—यह १९३ गाथाओंका ग्रंथ है, सरल तथा सुबोध है और माणिकचन्द्रग्रंथमालामें संस्कृत छायाके साथ प्रकट हो चुका है। इसमें धर्मकी महिमा, धर्म-अधर्मके विवेककी प्रेरणा, परीक्षा करके धर्मग्रहण करनेकी आवश्यकता, अधर्मका फल नरकादिकके दुःख, सर्वज्ञप्रणीत धर्मकी उपलब्धि न होनेपर चतुर्गतिरूप संसार-परिभ्रमण,

---

१. "अष्टानवत्युत्तरे षट्छतेषु शकवर्षेष्वतीतेष्वात्मनः प्रवर्द्धमान-विजयवीर्य-संवत्सरे पंचशत्तमे प्रवर्त्तमाने मान्यपुरमधिवसति विजयस्कन्दावारे श्रीमूलमूलशरणाभिनन्दितनन्दिसंघान्वय एरेगित्तुर्नाम्नि गणे मूलि-कलगच्छे स्वच्छतरगुणकिरप्र(ण)तति-प्रल्हादित-सकललोकः चन्द्र इवापरः चन्द्रनन्दिनामगुरुरासीत्। तस्य शिष्यस्समस्तविबुधलोकपरिरक्षण-क्षमात्मशक्तिः परमेश्वरलालनीयमहिमाकुमारवद्विवि(ने)यः कुमार-नन्दिनाममुनिपतिरभवत्। तस्यान्तेवासि-समधिगतसकलतत्त्वार्थ-समर्पित-बुधसार्थ-सम्पत्सम्पादितकीर्तिः कीर्तिनन्द्याचार्यो नाम महामुनिस्समजनि। तस्य प्रियशिष्यः शिष्यजनकमलाकर-प्रबोधनकः मिथ्याज्ञान-संततसनुतस्त्वसन्मानान्तक-सद्धर्म-व्योमावभासनभास्करः विमलचन्द्राचार्यस्समुदपादि। तस्य महर्षेधर्मो-पदेशनया.........................।"

(ताम्रपत्रका यह अंश डा० ए० एन० उपाध्ये कोल्हापुरके सौजन्यसे प्राप्त हुआ है।)

सर्वज्ञोंकी परीक्षा, सर्वज्ञ-प्रणीत सागार तथा अनागार (गृहस्थ तथा मुनि) धर्मका संक्षिप्त स्वरूप और उसका फल-जैसे विषयोंका सामान्यतः वर्णन है। धर्मपरीक्षाकी आवश्यकताको जिन गाथाओं-द्वारा व्यक्त किया गया है उनमेंसे चार गाथाएँ नमूनेके तौरपर इस प्रकार हैं—

खीराइं जहा लोए सरिसाइं हवंति वरण-णामेण।
रसभेएण य ताइं वि णाणागुण-दोस-जुत्ताइं॥ ९॥
काइं वि खीराइं जए हवंति दुक्खावहाणि जीवाणं।
काइं वि तुट्ठि-पुट्ठिं करंति वरवण्णमारोग्गं॥ १०॥
धम्मा य तहा लोए अणेयभेया हवंति णायव्वा।
णामेण समा सव्वे गुणेण पुण उत्तमा केई॥ ११॥

× × × ×

तम्हा हु सव्व धम्मा परिक्खियव्वा णरेण कुसलेण।
सो धम्मो गहियव्वो जो दोसेहिं विवज्जिओ विमलो॥ १४॥

इनमें बतलाया है कि 'जिस प्रकार लोकमें विविध प्रकारके दूध वर्ण और नामकी दृष्टिसे समान होते हैं; परन्तु रसके भेदसे वे नाना प्रकारके गुण-दोषोंसे युक्त रहते हैं। कोई दूध तो उनमेंसे जीवोंको दुखकारी होते हैं और कोई दूध तुष्टि-पुष्टि तथा उत्तम वर्ण और आरोग्य प्रदान करते हैं। उसी प्रकार धर्म भी लोकमें अनेक प्रकारके होते हैं, धर्म-नामसे सब समान हैं; परन्तु गुणकी अपेक्षा कोई उत्तम होते हैं, और कोई दुःखमूलकादि दूसरे प्रकारके। अतः कुशल मनुष्यको चाहिये कि सभी धर्मोंकी परीक्षा करके उस धर्मको ग्रहण करे जो दोषोंसे विवर्जित निर्मल हो।'

इसके अनन्तर लिखा है कि 'जिस धर्ममें जीवोंका वध, असत्यभाषण, परद्रव्य-हरण, परस्त्रीसेवन, सन्तोषरहित बहुआरम्भ-परिग्रह-ग्रहण, पंच उदम्बर फल तथा मधु-मांसका भक्षण, दम्भधारण और मदिरापान विधेय है वह धर्म भी यदि धर्म है,तो फिर अधर्म अथवा पाप कैसा होगा? और ऐसे धर्मसे यदि स्वर्ग मिलता है तो फिर नरक कौनसे कर्मसे जाना होगा? अर्थात् जीवोंका वधादिक ही अधर्म है—पाप कर्म है—और वैसे कर्मोंका फल ही नरक है।'

इस ग्रंथके कर्ता पद्मनन्दिमुनि हैं परन्तु अनेकानेक पद्मनन्दि-मुनियोंमेंसे ये पद्मनन्दि कौनसे हैं, इसकी ग्रंथपरसे कोई उपलब्धि नहीं होती; क्योंकि ग्रंथकारने अपने तथा अपने गुरु-आदिके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा है। इस गुरु-नामादिके उल्लेखाऽभाव और भाषासाहित्यकी दृष्टिसे यह ग्रंथ उन पद्मनन्दि आचार्यकी तो कृति मालूम नहीं होता जो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके कर्ता हैं।

४०. गोम्मटसार और नेमिचन्द्र—'गोम्मटसार' जैनसमाजका एक बहुत ही सुप्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रंथ है, जो जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड नामके दो बड़े विभागोंमें विभक्त है और वे विभाग एक प्रकारसे अलग-अलग ग्रंथ भी समझे जाते हैं, अलग-अलग मुद्रित भी हुए हैं और इसीसे वाक्यसूचीमें उनके नामकी (गो० जी०, गो.क० रूपसे) स्पष्ट सूचना साथमें करदी गई है। जीवकाण्डकी अधिकार-संख्या २२ तथा गाथा-संख्या ७३३ है और कर्मकाण्डकी अधिकार-संख्या ९ तथा गाथा-संख्या ९७२ पाई जाती है। इस समूचे ग्रंथका दूसरा नाम 'पञ्चसंग्रह' है, जिसे टाकाकारोंने अपनी टाकाओंमें व्यक्त किया है। यद्यपि यह ग्रंथ प्रायः संग्रहग्रंथ है, जिसमें शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियोंसे सैद्धान्तिक विषयोंका संग्रह किया गया है, परन्तु विषयके संकलनादिकमें यह अपनी खास विशेषता रखता है और

इसमें जीव तथा कर्म-विषयक करणानुयोगके प्राचीन ग्रंथोंका अच्छा सुन्दर सार खींचा गया है। इसीसे यह विद्वानोंको बड़ा ही प्रिय तथा रुचिकर मालूम होता है; चुनाँचे प्रसिद्ध विद्वान् पंडित सुखलालजीने अपने द्वारा सम्पादित और अनुवादित चतुर्थ कर्मग्रंथकी प्रस्तावनामें, श्वेताम्बरीय कर्मसाहित्यकी गोम्मटसारके साथ तुलना करते हुए और चतुर्थ कर्मग्रंथके सम्पूर्ण विषयको प्रायः जीवकाण्डमें वर्णित बतलाते हुए, गोम्मटसारकी उसके विषय-वर्णन, विषय-विभाग और प्रत्येक विषयके सुस्पष्ट लक्षणोंकी दृष्टिसे प्रशंसा की है और साथ ही निःसन्देहरूपसे यह बतलाया है कि—"चौथे कर्मग्रंथके पाठियोंके लिये जीवकाण्ड एक खास देखनेकी वस्तु है; क्योंकि इससे अनेक विशेष बातें मालूम हो सकती हैं।"

इस ग्रंथका प्रधानतः मूलाधार आचार्य पुष्पदन्त-भूतबलिका षट्खण्डागम और वीरसेनकी धवला टीका तथा दिगम्बरीय प्राकृत पञ्चसंग्रह नामके ग्रंथ हैं। पंचसंग्रहमें पाई जानेवाली सैंकड़ों गाथाएँ इसमें ज्यों-की-त्यों तथा कुछ परिवर्तनके साथ उद्धृत हैं और उनमेंसे बहुत-सी गाथाएँ ऐसी भी हैं जो धवलामें ज्यों-की-त्यों अथवा कुछ परिवर्तनके साथ 'उक्तञ्च' आदि रूपसे पाई जाती हैं। साथ ही षट्खण्डागमके बहुतसे सूत्रोंका सार खींचा गया है। शायद षट्खण्डागमके जीवस्थानादि पाँच खण्डोंके विषयका प्रधानतासे सार-संग्रह करनेके कारण ही इसे 'पञ्चसंग्रह' नाम दिया गया हो।

(क) ग्रन्थके निर्माणमें निमित्त चामुण्डराय 'गोम्मट'—

यह ग्रंथ नेमिचन्द्र-द्वारा चामुण्डरायके अनुरोध या प्रश्नपर रचा गया है, जो गङ्गवंशी राजा राचमल्लके प्रधानमन्त्री एवं सेनापति थे, अजितसेनाचार्यके शिष्य थे और जिन्होंने श्रवणबेलगोलमें बाहुबलि-स्वामीकी वह सुन्दर विशाल एवं अनुपम मूर्ति निर्माण कराई है जो संसारके अद्भुत पदार्थोंमें परिगणित है और लोकमें गोम्मटेश्वर-जैसे नामोंसे प्रसिद्ध है।

चामुण्डरायका दूसरा नाम 'गोम्मट' था और यह उनका खास घरेलू नाम था, जो मराठी तथा कनड़ी भाषामें प्रायः उत्तम, सुन्दर, आकर्षक एवं प्रसन्न करनेवाला जैसे अर्थोंमें व्यवहृत होता है,[1] और 'राय' (राजा) की उन्हें उपाधि प्राप्त थी। ग्रंथमें इस नामका उपाधि-सहित तथा उपाधि-विहीन दोनों रूपसे स्पष्ट उल्लेख किया गया है और प्रायः इसी प्रिय नामसे उन्हें आशीर्वाद दिया गया है; जैसा कि निम्न दो गाथाओंसे प्रकट है:—

अज्जज्जसेण-गुणगणसमूह-संधारि-अजियसेणगुरू।
भुवणगुरू जस्स गुरू सो राओ गोम्मटो जयउ॥७३३॥
जेण विणिम्मिय-पडिमा-वयणं सव्वट्ठसिद्धि-देवेहिं।
सव्व-परमोहि-जोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ॥क०९६९॥

इनमें पहली गाथा जीवकाण्डकी और दूसरी कर्मकाण्डकी है। पहलीमें लिखा है कि 'वह राय गोम्मट जयवन्त हो जिसके गुरु वे अजितसेनगुरु हैं जो कि भुवनगुरु हैं और आचार्य आर्यसेनके गुण-गण-समूहको सम्यक् प्रकार धारण करने वाले—उनके वास्तविक शिष्य—हैं।' और दूसरी गाथामें बतलाया है कि 'वह 'गोम्मट' जयवन्त हो जिसकी निर्माण कराई हुई प्रतिमा (बाहुबलीकी मूर्ति) का मुख सर्वार्थसिद्धिके देवों और सर्वावधि तथा परमावधि ज्ञानके धारक योगियों-द्वारा भी (दूरसे ही) देखा गया है।'

चामुण्डरायके इस 'गोम्मट' नामके कारण ही उनकी बनवाई हुई बाहुबलीकी मूर्ति 'गोम्मटेश्वर' तथा 'गोम्मटदेव' जैसे नामोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई है, जिनका अर्थ है गोम्मटका ईश्वर, गोम्मटका देव। और इसी नामकी प्रधानताको लेकर ग्रन्थका नाम 'गोम्मटसार' दिया गया है, जिसका अर्थ है 'गोम्मटके लिये खींचा गया पूर्वके (षट्खण्डागम तथा

---

१ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण ३, ४ में डा० ए० एन० उपाध्येका 'गोम्मट' नामक लेख।

धवलादि) ग्रन्थोंका सार ।' ग्रन्थको 'गोम्मटसंग्रहसूत्र' नाम भी इसी आशयको लेकर दिया गया है, जिसका उल्लेख कर्मकाण्डकी निम्न गाथामें पाया जाता है:—

गोम्मट-संगहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य ।
गोम्मटराय-विणिम्मिय-दक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥९६८॥

इस गाथामें उन तीन कार्योंका उल्लेख है और उन्हींका जयघोष किया गया है जिनके लिये गोम्मट उर्फ चामुण्डरायकी खास ख्याति है और वे हैं—१ गोम्मटसंग्रहसूत्र, २ गोम्मटजिन और ३ दक्षिणकुक्कुटजिन । 'गोम्मटसंग्रहसूत्र' गोम्मटके लिये संग्रह किया हुआ 'गोम्मटसार' नामका शास्त्र है; 'गोम्मटजिन' पदका अभिप्राय श्रीनेमिनाथकी उस एक हाथ-प्रमाण इन्द्रनीलमणिकी प्रतिमासे है जिसे गोम्मटरायने बनवाकर गोम्मट-शिखर अर्थात् चन्द्रगिरि पर्वतपर स्थित अपने मन्दिर (वस्ति) में स्थापित किया था और जिसकी बावत यह कहा जाता है कि वह पहले चामुण्डराय-वस्तिमें मौजूद थी परन्तु बादको मालूम नहीं कहाँ चली गई, उसके स्थान पर नेमिनाथकी एक दूसरी पाँच फुट ऊंची प्रतिमा अन्यत्रसे लाकर विराजमान की गई है और जो अपने लेखपरसे एचनके बनवाए हुए मन्दिरकी मालूम होती है । और 'दक्षिण-कुक्कुट-जिन' बाहुवलीकी उक्त सुप्रसिद्ध विशाल-मूर्तिका ही नामान्तर है, जिस नामके पीछे कुछ अनुश्रुति अथवा कथानक है और उसका सार इतना ही है कि उत्तर-देश पौदनपुरमें भरतचक्रवर्तीने बाहुवलीकी उन्हींकी शरीरा-कृति-जैसी मूर्ति बनवाई थी, जो कुक्कुट-सर्पोंसे व्याप्त हो जानेके कारण दुर्लभ-दर्शन हो गई थी । उसीके अनुरूप यह मूर्ति दक्षिणमें विन्ध्यगिरिपर स्थापित की गई है और उत्तरकी मूर्तिसे भिन्नता बतलानेके लिये ही इसको 'दक्षिण' विशेषण दिया गया है । अस्तु; इस गाथापरसे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि 'गोम्मट' चामुण्डरायका खास नाम था और वह संभवतः उनका प्राथमिक अथवा घरू बोलचालका नाम था । कुछ अर्से पहले आमतौरपर यह समझा जाता था कि 'गोम्मट' बाहुवलीका ही नामान्तर है और उनकी उक्त असाधारण मूर्तिका निर्माण करानेके कारण ही चामुण्डराय 'गोम्मट' तथा 'गोम्मटराय' नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं । चुनाँचे पं० गोविन्द पै जैसे कुछ विद्वानोंने इसी बातको प्रकारान्तरसे पुष्ट करनेका यत्न भी किया है; परन्तु डाक्टर ए० एन० उपाध्येने अपने 'गोम्मट' नामक लेखमें[1] उनकी सब युक्तियोंका निराकरण करते हुए, इस बातको बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि 'गोम्मट' बाहुवलीका नाम न होकर चामुण्डरायका ही दूसरा नाम था और उनके इस नामके कारण ही बाहुवलीकी मूर्ति 'गोम्मटेश्वर' जैसे नामोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई है । इस मूर्तिके निर्माणसे पहले बाहुवलीके लिये 'गोम्मट' नामकी कहींसे भी उपलब्धि नहीं होती । बादको कारकल आदिमें बनी हुई मूर्तियोंको जो 'गोम्मटेश्वर' जैसा नाम दिया गया है उसका कारण इतना ही जान पड़ता है कि वे श्रवणबेलगोलकी इस मूर्तिकी नक़ल-मात्र हैं और इसलिये श्रवणबेलगोलकी मूर्तिके लिये जो नाम प्रसिद्ध हो गया था वही उनको भी दिया जाने लगा । अस्तु ।

चामुण्डरायने अपना त्रेसठ शलाकापुरुषोंका पुराण-ग्रंथ, जिसे 'चामुण्डरायपुराण' भी कहते हैं शक संवत् ९०० (वि० सं० १०३५) में बनाकर समाप्त किया है, और इसलिये उनके लिये निर्मित गोम्मटसारका सुनिश्चित समय विक्रमकी ११वीं शताब्दी है ।

(ख) ग्रन्थकार और उनके गुरु—

गोम्मटसार ग्रन्थके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र 'सिद्धान्त-चक्रवर्ती' कह-लाते थे । चक्रवर्ती जिस प्रकार चक्रसे छह खण्ड पृथ्वीकी निर्विघ्न साधना

---

१ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ कि० ३, ४ पृ० २२९, २९३ ।

करके—उसे स्वाधीन बनाकर—चक्रवर्तिपदको प्राप्त होता है उसी प्रकार मति-चक्रसे षट्खण्डागमकी साधना करके आप सिद्धान्त-चक्रवर्तीके पदको प्राप्त हुए थे, और इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं कर्मकाण्डकी गाथा ३९७में किया है[1]। आप अभयनन्दी आचार्यके शिष्य थे, जिसका उल्लेख आपने इस ग्रंथमें ही नहीं किन्तु अपने दूसरे ग्रंथों—त्रिलोकसार और लब्धिसारमें भी किया है। साथ ही, वीरनन्दी तथा इंद्रनन्दीको भी आपने अपना गुरु लिखा है[2]। ये वीरनन्दी वे ही जान पड़ते हैं जो 'चन्द्रप्रभ-चरित्र' के कर्ता हैं; क्योंकि उन्होंने अपनेको अभयनन्दीका ही शिष्य लिखा है[3]। परन्तु ये इन्द्रनन्दी कौनसे हैं ? इसके विषयमें निश्चयपूर्वक अभी कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इन्द्रनन्दी नामके अनेक आचार्य हुए हैं—जैसे १ छेदपिंड नामक प्रायश्चित्त-शास्त्रके कर्ता, २ श्रुतावतारके कर्ता, ३ ज्वालामालिनीकल्पके कर्ता, ४ नीतिसार अथवा समयभूषणके कर्ता, ५ संहिताके कर्ता। इनमेंसे पिछले दो तो हो नहीं सकते; क्योंकि नीतिसारके कर्ताने उन आचार्योंकी सूचीमें जिनके रचे हुए शास्त्र प्रमाण हैं नेमिचंद्रका भी नाम दिया है, इसलिये वे नेमिचंद्रके बाद हुए हैं और इंद्रनन्दि संहितामें वसुनन्दीका भी नामोल्लेख है. जिनका समय विक्रमकी प्रायः १२वीं शताब्दी है और इसलिये वे भी नेमिचंद्रके बाद हुए हैं। शेषमेंसे प्रथम दो ग्रंथोंके कर्ताओंने न तो अपने गुरुका नाम दिया है और न ग्रंथका रचनाकाल ही, इससे उनके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, ज्वालामालिनीकल्पके कर्ता इंद्रनन्दिने ग्रंथका रचनाकाल शक संवत् ८६१ (वि० सं० ९९६) दिया है और यह समय नेमिचंद्रके गुरु इन्द्रनन्दीके साथ बिल्कुल सङ्गत बैठता है, परन्तु इस कल्पके कर्ता इंद्रनन्दीने अपनेको उन बप्पनन्दीका शिष्य बतलाया है जो वासवनन्दीके शिष्य और इन्द्रनन्दी (प्रथम) के प्रशिष्य थे। बहुत संभव है ये इन्द्रनन्दी बप्पनन्दीके दीक्षित हों और अभयनन्दीसे उन्होंने सिद्धान्तशास्त्रकी शिक्षा प्राप्त की हो, जो उस समय सिद्धान्त-विषयके प्रसिद्ध विद्वान थे; क्योंकि प्रशस्ति[4] में बप्पनन्दीकी पुराण-विषयमें अधिक ख्याति लिखी है—सिद्धांत विषयमें नहीं—

---

१ जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइ-चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

२ जस्स य पायपसाएणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥४३६॥

णमिऊण अभयणंदिं सुदसागरपारगिंदणंदिगुरुं।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥ कर्म० ७८५॥

इदि णेमिचन्द-मुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण।
रइओ तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया ॥ त्रि० १०१८॥

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदि-सिस्सेण।
दंसण-चरित्त-लद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण ॥लब्धि० ४४८॥

३ मुनिजननुतपादः प्राप्तमिथ्याप्रवादः, सकलगुणसमृद्धस्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः।
अभवदभयनन्दी जैनधर्माभिनन्दी स्वमहिमजितसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धुः ॥३॥
भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमतेर्भास्वत्समानत्विषः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः श्रीवीरनन्दीत्यभूत्।
स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवनप्रख्यातकीर्तेः सतां
संसत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो वाचः कुतर्काङ्कुशाः ॥ ४ ॥
—चन्द्रप्रभचरित-प्रशस्ति।

४ आसीदिन्द्रादिदेवस्तुतपदकमलश्रीन्द्रनन्दिर्मुनीन्द्रो
नित्योत्सर्पच्चरित्रो जिनमत-जलधिर्धौतपापोपलेपः।

और शिष्य इन्द्रनन्दी (द्वितीय) को 'जैनसिद्धान्तवार्धौ विमलितहृदयः' प्रकट किया है। जिससे सिद्धांत विषयमें उनके कोई खास गुरु होने भी चाहियें। इसके सिवाय, ज्वालिनी-कल्पके कर्ता इन्द्रनन्दीने जिन दो आचार्योंके पाससे इस मन्त्रशास्त्रका अध्ययन किया है उनमें एक नाम गुणनन्दी[1] का भी है, जो सम्भवतः वे ही जान पड़ते हैं जो चन्द्रप्रभचरित के अनुसार अभयनन्दीके गुरु थे; और इस तरह इन्द्रनन्दीके दीक्षा-गुरु वप्पनन्दी, मन्त्रशास्त्र-गुरु गुणनन्दी और सिद्धान्तशास्त्र-गुरु अभयनन्दी हो जाते हैं। यदि यह सच कल्पना ठीक है तो इससे नेमिचंद्रके गुरु इन्द्रनन्दीका ठीक पता चल जाता है, जिन्हें गोम्मटसार (क० ७८५) में श्रुतसागरका पारगामी लिखा है।

नेमिचन्द्रने अपने एक गुरु कनकनन्दि भी लिखे हैं और बतलाया है कि उन्होंने इन्द्रनन्दिके पाससे सकल सिद्धान्तको सुनकर 'सत्वस्थान' की रचना की है[2]। यह सत्वस्थान ग्रंथ 'विस्तरसत्वत्रिभंगी' के नामसे आराके जैन-सिद्धान्त-भवनमें मौजूद है, जिसका मैंने कई वर्ष हुए अपने निरीक्षणके समय नोट ले लिया था। पं० नाथूरामजी प्रेमीने इन कनक-नन्दीको भी अभयनन्दीका शिष्य बतलाया है,[3] परन्तु यह ठीक मालूम नहीं होता; क्योंकि कनकनन्दीके उक्त ग्रंथपरसे इसकी कोई उपलब्धि नहीं होती—उसमें साफतौरपर इन्द्रनन्दी को ही गुरुरूपसे उल्लेखित किया है। इस सत्वस्थान ग्रन्थको नेमिचद्रने अपने गोम्मटसारके तीसरे सत्वस्थान अधिकारमें प्रायः ज्यों-का-त्यों अपनाया है—आराकी उक्त प्रतिके अनुसार

प्रज्ञानावामलोद्यत्प्रगुणगणभृतोत्कीर्णविस्तीर्णसिद्धा—
न्ताम्भोराशिस्त्रिलोकाम्बुजवनविचरत्सद्यशोराजहंसः ॥ १ ॥
यद्वृत्तं दुरितारिसैन्यहनने चण्डासिधारायितम्
चित्तं यस्य शरत्सरस्सलिलवत्स्वच्छं सदा शीतलम् ।
कीर्तिः शारदकौमुदी शशिभृतो ज्योत्स्नेव यस्याऽमला
स श्रीवासवनन्दिसन्मुनिपतिः शिष्यस्तदीयो भवेत् ॥ २ ॥
शिष्यस्तस्य महात्मा चतुरनुयोगेषु चतुरमतिविभवः ।
श्रीवप्पणंदिगुरुरिति बुधनिषेवितपदाब्जः ॥ ३ ॥
लोके यस्य प्रसादादजनि मुनिजनस्तत्पुराणार्थवेदी
यस्याशास्तंभमूर्धन्यतिविमलयशःश्रीवितानो निबद्धः ।
कालास्ता येन पौराणिककविवृषभा द्योतितास्तत्पुराण—
व्याख्यानाद् वप्पणंदिप्रथितगुणगणस्तस्य किं वर्ण्यतेऽत्र ॥४॥
शिष्यस्तस्येन्द्रनंदिर्विमलगुणगणोद्दामधामाभिरामः
प्रज्ञातीक्ष्णास्त्र-धारा-विदलित-बहलाऽज्ञानवल्लीवितानः ।
जैने सिद्धान्तवार्धौ विमलितहृदयस्तेन सद्ग्रंथतोऽयम्
हेलाचार्योदितार्थो व्यरचि निरुपमो ज्वालिनीमंत्रवादः ॥ ५ ॥
अष्टशतस्यै(सै)कषष्ठिप्रमाणशकवत्सरेष्वतीतेषु ।
श्रीमान्यखेटकटके पर्वण्यक्षयतृतीयायाम् ॥

1 कन्दर्पेण ज्ञातं तेनाऽपि स्वसुत-निर्विशेषाय ।
गुणनंदिश्रीमुनये व्याख्यातं सोपदेशं तत् ॥ २ ॥
पार्श्वे तयोर्द्वयोरपि तच्छास्त्रं ग्रन्थतोऽर्थतश्चापि ।
मुनिनेन्द्रनन्दिनाम्ना सम्यगधीतं विशेषेण ॥ २५ ॥

2 वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयल-सिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥क०३९६॥

3 देखो, जैनसाहित्य और इतिहास पृ० २६६।

प्रायः ८ गाथाएँ छोड़ी गई हैं; शेष सब गाथाओंको, जिनमें मंगलाचरण और अन्तकी गाथाएँ[1] भी शामिल हैं, ग्रंथका अंग बनाया गया है और कहीं-कहीं उनमें कुछ क्रमभेद भी किया गया है। यहाँ मैं इस विषयका कुछ विशेष परिचय अपने पाठकोंको दे देना चाहता हूँ, जिससे उन्हें इस ग्रंथकी संग्रह-प्रकृतिका कुछ विशेष बोध हो सके :—

रायचंद्र-जैनशास्त्रमाला संवत् १९६९ के संस्करणमें इस अधिकारकी गाथासंख्या ३५८ से ३९७ तक ४० दी है; जबकि आराकी उक्त ग्रंथ-प्रतिमें वह ४८ या ४९ पाई जाती है[2]। आठ गाथाएं जो उसमें अधिक हैं अथवा गोम्मटसारमें जिन्हें छोड़ा गया है वे निम्न प्रकार हैं। गोम्मटसारकी जिस गाथाके बाद वे उक्त ग्रंथ-प्रतिमें उपलब्ध हैं उसका नम्बर शुरूमें कोष्ठकके भीतर दे दिया गया है :—

(३६०) घाई तियउज्जोवं थावर वियलं च ताव एइंदी।
णिरय-तिरिक्ख दु सुहुमं साहरणे होइ तेसट्ठी ॥ ४ ॥

(३६४) णिरयादिसु भुज्जेगं बंधुदगं बारि बारि दोण्णेत्थ
पुणरुत्तसमविहीणा आउगभंगा हु पज्जेव ॥ ९ ॥
णिरयतिरयाणु णोरइ पणहाउ(?) तिरियमणुयआऊ य
तेरिच्छिय-देवाऊ माणुस-देवाउ एगेगे ॥ १० ॥

(३७५) बंध(बद्ध)देवाउगुवसमसद्दिट्ठी बंधिऊण आहा ।
सो चेव सासणे जादो तरिसं पुण बंध एक्को दु ॥ २२ ॥
तस्से वा बंधाउगठाणे भंगा दु भुज्जमाणम्मि ।
मणुवाउगम्मि एक्को देवेसुववणगे (?) विदियो ॥२३ ॥

(३७९) मणुवणिरयाउगे णरसुरआये (?) णिराणबंधम्मि ।
तिरयाऊण तिगिदरे मिच्छव्वणम्मि (?) भुज्जमणुसाऊ ॥२८॥

(३८०) पुव्वुत्तपणपणाउगभंगा बंधस्स भुज्जमणुसाऊ ।
अण्णतियाऊसहिया तिगतिगचउणिरयतिरियआऊण ॥ ३० ॥

(३९०) विदियं तेरसबारमठाणं पुणरुत्तमिदि विहाय पुणो ।
दुसु सादेदरपयडी परियट्टणदो दुगदुगा भंगा ॥ ४१ ॥

उक्त ग्रन्थप्रतिकी गाथाएं नं० १५, १६, १७ गोम्मटसारमें क्रमशः नं० ३६८, ३६९, ३७० पर पाई जाती है; परन्तु गाथा नं० १४ को ३७१ नम्बरपर दिया है, और इस तरह गोम्मटसारमें क्रमभेद किया गया है। इसी तरह २५, २६, नं० की गाथाओंको भी क्रमभेद करके नं० ३७८, ३७७ पर दिया है।

---

१ अन्तकी दो गाथाएँ वे ही हैं जिनमेंसे एकमें इन्द्रनन्दीसे सकल-सिद्धान्तको सुनकर कनकनन्दीके द्वारा सत्वस्थानके रचे जानेका उल्लेख है और दूसरी 'जह चक्केण य चक्की' नामकी वह गाथा है जिसमें चक्की की तरह षट्खण्ड साधनेकी बात है और जिससे कनकनन्दीका भी 'सिद्धांतचक्रवर्ती' होना पाया जाता है—आराकी उक्त प्रतिमें ग्रन्थको 'श्रीकनकनन्दि-सैद्धान्तचक्रवर्तिकृत' लिखा भी है। ये दोनों गाथाएं कर्मकाण्डकी गाथा नं० ३९६ तथा ३९७ के रूपमें पीछे उद्धृत की जा चुकी हैं।

२ संख्याङ्क ४९ दिये हैं परन्तु गाथाएं ४८ हैं, इससे या तो एक गाथा यहाँ छूट गई है और या संख्याङ्क गलत पड़े हैं। हो सकता है कि णिरयाऊ-तिरियाऊ' नामकी वह गाथा ही यहां छूट गई हो जो आगे उल्लेखित एक दूसरी प्रतिमें पाई जाती है।

आराके उक्त भवनमें एक दूसरी प्रति भी है, जिसमें तीन गाथाएं और अधिक हैं और वे इस प्रकार हैं:—

तित्थसमे गिधिमिच्छे बद्धाउसि माणुसीगदी एग ।
मणुवणिरयाऊ भंगु पज्जत्ते भुज्जमाणणिरयाऊ ॥ १५ ॥
णिरयदुगं तिरियदुगं विगतिगचउरक्खजादि थीणतियं ।
उज्जोवं आदाविगि साहारण सुहुम थावरयं ॥ ३६ ॥
मज्झड कसाय संढं थीवेदं हस्सपमुहछक्कसाया ।
पुरिसो कोहो माणो अणियट्टी भागहीणपयडीओ ॥ ४० ॥

हालमें उक्त सत्वस्थानकी एक प्रति संवत् १८०७ की लिखी हुई मुझे पं० परमानन्दजीके पाससे देखनेको मिली जो दूसरे त्रिभंगी आदि ग्रंथोंके साथ सवाई जयपुरमें लिखी गई एक पत्राकार प्रति है और जिसके अन्तमें ग्रन्थका नाम 'विशेषसत्तात्रिभंगी' दिया है। इस ग्रंथप्रतिमें गाथा-संख्या कुल ४१ है, अतः इस प्रतिके अनुसार गोम्मटसारके उक्त अधिकारमें केवल एक गाथा ही छूटी हुई है और वह 'णारकछक्कल्वेल्ले' नामका गाथा (क० ३७०) के अनन्तर इस प्रकार है:—

णिरियाऊ तिरयाऊ णिरिय-णराऊ तिरय-मणुवायु ।
तेरंचिय-देवाऊ माणस-देवाउ एगेगं ॥ १५ ॥

शेष गाथाओंका क्रम आराकी प्रतिके अनुरूप ही है, और इससे गोम्मटसारमें किये गये क्रमभेदकी बातको और भी पुष्टि मिलती है।

यहाँ पर मैं इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि सत्वस्थान अथवा सत्व (सत्ता)त्रिभंगीकी उक्त प्रतियोंमें जो गाथाओंकी न्यूनाधिकता पाई जाती है उनके तीन कारण हो सकते हैं—(१) एक तो यह कि, मूलमें आचार्य कनकनन्दीने ग्रंथको ४० या ४१ गाथा-जितना ही निर्मित किया हो, जिसकी कापियाँ अन्यत्र पहुंच गई हों और बादको उन्होंने उसमें कुछ गाथाएं और बढ़ाकर उसे 'विस्तरसत्वत्रिभंगी' का रूप उसी प्रकार दिया हो जिस प्रकार द्रव्यसंग्रहके कर्ता नेमिचन्द्रने, टीकाकार ब्रह्मदेवके कथनानुसार, अपनी पूर्व-रचित २६ गाथाओंमें ३२ गाथाओंकी वृद्धि करके उसे वर्तमान द्रव्यसंग्रहका रूप दिया है[1]। और यह कोई अनोखी अथवा असंभव बात नहीं है, आज भी ग्रन्थकार अपने ग्रंथोंके संशोधित और परिवर्धित संस्करण निकालते हुए देखे जाते हैं। (२) दूसरा यह कि बादको अन्य विद्वानोंने अपनी-अपनी प्रतियोंमें कुछ गाथाओंको किसी तरह बढ़ाया अथवा प्रक्षिप्त किया हो। परन्तु इस वाक्यसूचीके दूसरे किसी भी मूल ग्रंथमें उक्त बारह गाथाओंमेंसे कोई गाथा उपलब्ध नहीं होती, यह बात खास तौरसे नोट करने योग्य है[2]। और (३) तीसरा कारण यह कि प्रतिलेखकोंके द्वारा लिखते समय कुछ गाथाएं छूट गई हों, जैसा कि बहुधा देखनेमें आता है।

(ग) प्रकृतिसमुत्कीर्तन और कर्मप्रकृति—

इस ग्रंथके कर्मकाण्डका पहला अधिकार 'पयडिसमुक्कित्तण' (प्रकृतिसमुत्कीर्तन) नामका है. जिसमें मुद्रित प्रतिके अनुसार ८६ गाथाएं पाई जाती हैं। इस अधिकारको जब

---

१ देखो, ब्रह्मदेव-कृत टीकाकी पीठिका।

२ सूचीके समय पृथकरूपमें इस सत्वत्रिभंगी ग्रंथकी कोई प्रति अपने सामने नहीं थी और इसीसे इसके वाक्योंको सूचीमें शामिल नहीं किया जा सका। उन्हें अब यथास्थान बढ़ाया जा सकता है।

पढ़ते हैं तो अनेक स्थानों पर ऐसा महसूस होता है कि वहाँ मूलग्रंथका कुछ अंश त्रुटित है—छूट गया अथवा लिखनेसे रह गया है—, इसीसे पूर्वाऽपर कथनोंकी सङ्गति जैसी चाहिये वैसी ठीक नहीं बैठती और उससे यह जाना जाता है कि यह अधिकार अपने वर्तमान रूपमें पूर्ण अथवा सुव्यवस्थित नहीं है। अनेक शास्त्र-भंडारोंमें कर्मप्रकृति (कम्म-पयडी), प्रकृतिसमुत्कीर्तन, कर्मकाण्ड अथवा कर्मकाण्डका प्रथम अंश जैसे नामोंके साथ एक दूसरा अधिकार (प्रकरण) भी पाया जाता है, जिसकी सैकड़ों प्रतियाँ उपलब्ध हैं औरजो उस अधिकारके अधिक प्रचारका द्योतन करती हैं। साथ ही उसपर टीका-टिप्पण भी उपलब्ध हैं[1] और उनपरसे उसकी गाथा-संख्या १६० जानी जाती है तथा ग्रंथ-कर्ताका नाम 'नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती' भी उपलब्ध होता है। उसमें ७५ गाथाएँ ऐसी हैं जो इस अधिकारमें नहीं पाई जातीं। उन बढ़ी हुई गाथाओंमेंसे कुछ परसे उन अंशोंकी पूर्ति हो जाती है जो त्रुटित समझे जाते हैं और शेषपरसे विशेष कथनोंकी उपलब्धि होती है। और इसलिये पं० परमानन्दजी शास्त्रीने 'गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी त्रुटि-पूर्ति' नामका एक लेख लिखा, जो अनेकान्त वर्ष ३ किरण ८-९ में प्रकाशित हुआ है और उसके द्वारा त्रुटियोंको तथा कर्मप्रकृतिकी गाथाओंपरसे उनकी पूर्तिको दिखलाते हुए यह प्रेरणा की कि कर्मप्रकृति की उन बढ़ी हुई गाथाओंको कर्मकाण्डमें शामिल करके उसकी त्रुटिपूर्ति कर लेनी चाहिये। यह लेख जहाँ पण्डित कैलाशचन्द्रजी आदि अनेक विद्वानोंको पसन्द आया वहाँ प्रो० हीरालालजी एम० ए० आदि कुछ विद्वानोंको पसन्द नहीं आया, और इसलिये प्रोफ़ेसर साहबने इसके विरोधमें पं० फूलचन्दजी शास्त्री तथा पं० हीरालालजी शास्त्रीके सहयोगसे एक लेख लिखा, जो 'गो० कर्मकाण्डकी त्रुटिपर विचार' नामसे अनेकान्तके उसी वर्षकी किरण ११ में प्रकट हुआ है और जिसमें यह बतलाया गया है कि 'उन्हें कर्मकाण्ड अधूरा मालूम नहीं होता, न उससे उतनी गाथाओंके छूट जाने व दूर पड़ जानेकी संभावना जँचती है और न गोम्मटसारके कर्ता-द्वारा ही कर्मप्रकृतिके रचित होनेके कोई पर्याप्त प्रमाण दृष्टिगोचर होये हैं, ऐसी अवस्थामें उन गाथाओंको कमकाण्डमें शामिल कर देनेका प्रस्ताव बड़ा साहसिक प्रतीत होता है।' इसके उत्तरमें पं० परमानन्दजीने दूसरा लेख लिखा, जो अनेकान्तकी अगली १२ वीं किरणमें 'गो० कर्मकाण्डकी त्रुटि-पूर्तिके विचार पर प्रकाश' नामसे प्रकाशित हुआ है और जिसमें अधिकारके अधूरेपनको कुछ और स्पष्ट किया गया, गाथाओंके छूटनेकी संभावनाके विरोधका परिहार करते हुए प्रकारान्तरसे उनके छूटनेकी संभावनाको व्यक्त किया गया और टीका-टिप्पणके कुछ अंशोंको उद्धृत करके यह स्पष्ट करनेका यत्न किया गया कि उनमें ग्रन्थकाकर्ता 'नेमिचन्द्रसिद्धान्ती' 'नेमिचन्द्रसिद्धान्तदेव'

---

१ (क) संस्कृत टीका भट्टारक ज्ञानभूषणने, जो कि मूलसंघी भ० लक्ष्मीचन्द्रके पट्टशिष्य वीरचन्द्रके वंशमें हुए हैं, सुमतिकीर्तिके सहयोगसे बनाई है और टीकामें मूल ग्रंथका नाम 'कर्मकाण्ड' दिया है:—

तदन्वये दयाम्भोधिर्ज्ञानभूषो गुणाकरः।
टीकां हि कर्मकाण्डस्य चक्रे सुमतिकीर्तियुक्॥ प्रशस्ति

(ख) दूसरी भाषा टीका पं० हेमराजकी बनाई हुई है, जिसकी एक प्रति सं० १८२९ की लिखी हुई तिगोड़ा जि० सागरके जैन मन्दिरमें मौजूद है।

(अनेकान्त वर्ष ३, किरण १२ पृष्ठ ७६४)

(ग) सटिप्पण-प्रति शाहगढ़ जि० सागरके सिंघीजीके मन्दिरमें संवत् १५२७ की लिखी हुई है, जिसकी अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है:—

"इति श्रीनेमिचन्द्र-सिद्धान्त-चक्रवर्ति-विरचित-कर्मकाण्डस्य प्रथमांशः समाप्तः। शुभं भवतु लेखक-पाठकयोः अथ संवत् १५२७ वर्षे माघवदि १४ रविवारे।"

(अनेकान्त वर्ष ३, कि० १२ पृ० ७६२-६४)

ही नहीं, किन्तु 'नेमिचन्द्र-सिद्धान्तचक्रवर्ती' भी लिखा है और ग्रन्थकी टीकामें 'कर्मकाण्ड' तथा टिप्पणमें 'कर्मकाण्डका प्रथम अंश' सूचित किया है। साथही, शाहगढ़ जि० सागरके सिंघईजीके मन्दिरकी एक ऐसी जीर्ण-शीर्ण प्रतिका भी उल्लेख किया है जिसमें कर्मकाण्डके शुरूके दो अधिकार तो पूरे हैं और तीसरे अधिकारकी ४० मेंसे २५ गाथाएं हैं, शेष ग्रन्थ संभवतः अपनी अतिजीर्णताके कारण टूट-टाट कर नष्ट हुआ जान पड़ता है। इसके प्रथम अधिकारमें वे ही १६० गाथाएं पाई जाती हैं जो कर्मप्रकृतिमें उपलब्ध हैं और इस परसे यह घोषित किया गया कि कर्मप्रकृतिकी जिन गाथाओंको कर्मकाण्डमें शामिल करनेका प्रस्ताव रक्खा गया है वे पहलेसे कर्मकाण्डकी कुछ प्रतियोंमें शामिल हैं अथवा शामिल करली गई। इस लेखके प्रत्युत्तरमें प्रो० हीरालालजीने एक दूसरा लेख और लिखा, जो 'गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी त्रुटिपूर्ति-सम्बन्धी प्रकाशपर पुनः विचार' नामसे जैनसन्देश भाग ४ के अङ्क ३२ आदिमें प्रकाशित हुआ है और जिसमें अपनी उन्हीं बातोंको पुष्ट करने का यत्न किया गया है और गोम्मटसार तथा कर्मप्रकृतिके एककर्तृत्वपर अपना सन्देह कायम रक्खा गया है; परन्तु कल्पना अथवा संभावनाके सिवाय सन्देहका कोई खास कारण व्यक्त नहीं किया गया।

त्रुटिपूर्ति-सम्बन्धी यह चर्चा जब चल रही थी तब उससे प्रभावित होकर पं० लोकनाथजी शास्त्रीने मूडबिद्रीके सिद्धान्त-मन्दिरके शास्त्र-भण्डारमें, जहां धवलादिक सिद्धान्तग्रंथोंकी मूलप्रतियाँ मौजूद हैं, गोम्मटसारकी खोज की थी और उस खोजके नतीजेसे मुझे ३० दिसम्बर सन् १९४० को सूचित करनेकी कृपा की थी, जिसके लिये मैं उनका बहुत आभारी हूँ। उनकी उस सूचनापरसे मालूम होता है कि उक्त शास्त्रभंडारमें गोम्मटसारके जीवकाण्ड और कर्मकाण्डकी मूलप्रति त्रिलोकसार और लब्धिसार-क्षपणासार सहित ताडपत्रोंपर मौजूद है। पत्र-संख्या जीवकाण्डकी ३८, कर्मकाण्डकी ५३, त्रिलोकसार की ५१ और लब्धिसार-क्षपणासारकी ४१ है। ये सब ग्रंथ पूर्ण हैं और इनकी पद्य-संख्या क्रमशः ७३०, ८७२, १०१८, ८२० है[1]। ताडपत्रोंकी लम्बाई दो फुट दो इञ्च और चौड़ाई दो इञ्च है। लिपि 'प्राचीन कन्नड' है, और उसके विषयमें शास्त्रीजीने लिखा था—

"ये चारों ही ग्रंथोंमें लिपि बहुत सुन्दर एवं धवलादि सिद्धान्तोंकी लिपिके समान है। अतएव बहुत प्राचीन हैं। ये भी सिद्धान्त लिपि-कालीन ही होना चाहिये।"

साथ हीं, यह भी लिखा था कि "कर्मकाण्डमें इस समय विवादस्थ कई गाथाएं (इस प्रतिमें) सूत्र रूपमें हैं" और वे सूत्र कर्मकाण्डके 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारकी जिस-जिस गाथाके बाद मूलरूपमें पाये जाते हैं उसकी सूचना साथमें देते हुए उनकी एक नकल भी उतार कर उन्होंने भेजी थी। इस सूचनादिको लेकर मैंने उस समय 'त्रुटिपूर्ति-विषयक नई खोज' नामका एक लेख लिखना प्रारम्भ भी किया था परन्तु समयाभावादि कुछ कारणोंके वश वह पूरा नहीं हो सका और फिर दोनों विद्वानोंकी ओरसे चर्चा समाप्त होगई, इससे उसका लिखना रह ही गया। अस्तु; आज मैं उन सूत्रोंमेंसे आदिके पाँच स्थलोंके सूत्रोंको, स्थल-विषयक सूचनादिके साथ नमूनेके तौरपर यहाँपर दे देना चाहता हूँ, जिससे पाठकोंको उक्त अधिकारकी त्रुटिपूर्तिके विषयमें विशेष विचार करनेका अवसर मिल सके

कर्मकाण्डकी २२वीं गाथामें ज्ञानावरणादि आठ मूल कर्मप्रकृतियोंकी उत्तरकर्म-प्रकृति-संख्याका ही क्रमशः निर्देश है—उत्तरप्रकृतियोंके नामादिक नहीं दिये और न आगे ही संख्यानुसार अथवा संख्याकी सूचनाके साथ उनके नाम दिये हैं। २३ वीं गाथामें क्रम-

---

१ रायचन्द्र-जैनशास्त्रमालामें प्रकाशित जीवकाण्डमें ७३३, कर्मकाण्डमें ९७२ और लब्धिसार-क्षपणासारमें ६४९ गाथा संख्या पाई जाती है। मुद्रित प्रतियोंमें कौन-कौन गाथाएं बढ़ी हुई तथा घटी हुई हैं उनका लेखा यदि उक्त शास्त्रीजी प्रकट करें तो बहुत अच्छा हो।

प्राप्त ज्ञानावरणकी ५ प्रकृतियोंका कोई नामोल्लेख न करके और न उस विषयकी कोई सूचना करके दर्शनावरणकी ९ प्रकृतियोंमेंसे स्त्यानगृद्धि आदि पाँच प्रकृतियोंके कार्यका निर्देश करना प्रारम्भ किया गया है, जो २५ वीं गाथा तक चलता रहा है। इन दोनों गाथाओंके मध्यमें निम्न गद्यसूत्र पाये जाते हैं, जिनमें ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीयकर्मों-की उत्तरप्रकृतियोंका संख्याके निर्देशसहित स्पष्ट उल्लेख है और जिनसे दोनों गाथाओंका सम्बन्ध ठीक जुड़ जाता है। इनमेंसे प्रत्येक सूत्र 'चेइ' अथवा 'चेदि'पर समाप्त होता है:—

"णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेदणीयं [मोहणीयं] आउगं णामं गोदं अंतरायं चेइ। तत्थ णाणावरणीयं पंचविहं आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जव-णाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेइ। दंसणावरणीयं णवविहं थीणगिद्धि णिद्दाणिद्दा पयलापयला णिद्दा य पयला य चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेइ।"

इन सूत्रोंकी उपस्थितिमें ही अगली तीन गाथाओंमें जो स्त्यानगृद्धि आदिका क्रमशः निर्देश है वह संगत बैठता है, अन्यथा तत्त्वार्थसूत्रमें तथा षट्खण्डागमकी पयडिसमुक्कित्तणचूलियामें जब उनका भिन्नक्रम पाया जाता है तब उनके इस क्रमका कोई व्यवस्थापक नहीं रहता। अतः २३, २४, २५ नम्बरकी गाथाओंके पूर्व इन सूत्रोंकी स्थिति आवश्यक जान पड़ती है।

२५वीं गाथामें दर्शनावरणीय कर्मकी ९ प्रकृतियोंमें 'प्रचला' प्रकृतिके उदयजन्य कार्यका निर्देश है। इसके बाद क्रमप्राप्त वेदनीय तथा मोहनीयकी उत्तर-प्रकृतियोंका कोई नामोल्लेख तक न करके एकदम २६ वीं गाथामें यह प्रतिपादन किया गया है कि मिथ्यात्व-द्रव्य (जो कि मोहनीय कर्मका दर्शनमोहरूप एक प्रधान भेद है) तीन भेदोंमें कैसे बँटकर तीन प्रकृतिरूप हो जाता है। परन्तु जब पहलेसे मोहनीयके दो भेदों और दर्शनमोहनीयके तीन उपभेदोंका कोई निर्देश नहीं तब वे तीन उपभेद कैसे हो जाते हैं यह बतलाना कुछ खटकता हुआ जरूर जान पड़ता है, और इसीसे दोनों गाथाओंके मध्यमें किसी अंशके त्रुटित होनेकी कल्पना की जाती है। मूडबिद्रीकी उक्त प्राचीन प्रतिमें दोनोंके मध्यमें निम्न गद्य-सूत्र उपलब्ध होते हैं, जिनसे उक्त त्रुटित अंशकी पूर्ति हो जाती है:—

"वेदनीयं दुविहं सादावेदणीयमसादावेदणीयं चेइ। मोहणीयं दुविहं दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेइ। दंसणमोहणीयं बंधादो एयविहं मिच्छत्तं, उदयं संतं पडुच्च तिविहं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं सम्मत्तं चेइ।"

उक्त दर्शनमोहनीयके भेदोंकी प्रतिपादक २६वीं गाथाके बाद चारित्रमोहनीयकी मूलोत्तर-प्रकृतियों, आयुकर्मकी प्रकृतियों और नामकर्मकी प्रकृतियोंका कोई नाम निर्देश न करके २७वीं गाथामें एकदम किसी कर्मके १५ संयोगी भेदोंको गिनाया गया है, जो नाम-कर्मकी शरीर-बन्धनप्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखते हैं; परन्तु वह कर्म कौनसा है और उसकी किन किन प्रकृतियोंके ये संयोगी भेद होते हैं, यह सब उसपरसे ठीक तौरपर जाना नहीं जाता। और इसलिये वह अपने कथनकी सङ्गतिके लिये पूर्वमें किसी ऐसे कथनके अस्तित्वकी कल्पनाको जन्म देती है जो किसी तरह छूट गया अथवा त्रुटित हो गया है। वह कथन मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमें निम्न गद्यसूत्रोंमें पाया जाता है, जिससे उत्तर-कथनकी संगति ठीक बैठ जाती है; क्योंकि इनमें चारित्र-मोहनीयकी २८, आयुकी ४ और नामकर्मकी मूल ४२ प्रकृतियोंका नामोल्लेख करनेके अनन्तर नामकर्मके जाति आदि भेदोंकी उत्तर-

प्रकृतियोंका उल्लेख करते हुए शरीर-बन्धन नामकर्मकी पाँच प्रकृतियों तक ही कथन किया गया है :—

"चारित्तमोहणीयं दुविहं कसायवेदणीयं णोकसायवेदणीयं चेइ । कसायवेदणीयं सोलसविहं खवणं पडुच्च अणंताणुबंधि-कोह-माण-माया-लोहं अपच्चक्खाण-पच्चक्खाणावरण-कोह-माण-माया-लोहं कोह-संजलणं माण-संजलणं माया-संजलणं लोह-संजलणं चेइ । पक्कमदव्वं पडुच्च अणंताणुबंधि-लोह-कोह-माया-माणं संजलण-लोह-माया-कोह-माणं पच्चक्खाण-लोह-कोह-माया-माणं अपच्चक्खाण-लोह-कोह-माया-माणं चेइ । णोकसायवेदणीयं णवविहं पुरिसित्थिणउंसयवेदं रदि-अरदि-हस्स-सोग-भय-दुगुंछा चेदि । आउगं चउविहं णिरयायुगं तिरिक्ख-माणुस्स-देवाउगं चेदि । णामं वादालीसं पिंडापिंडपयडिभेयेण गयि-जायि-सरीर-बंधण-संघाद-संठाण-अंगोवंग-संघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-आणुपुव्वी-अगुरुगलहुगुवघाद-परघाद-उस्सास-आदाव-उज्जोद-विहायगयि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुब्भग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्जाणादेज्ज-जसाजसकित्तिणिमिण-तित्थयरणामं चेदि । तत्थ गयिणामं चउविहं णिरयतिरिक्खगयिणामं मणुसदेवगयिणामं चेदि । जायिणामं पंचविहं एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउइंदिय-जायिणामं पंचिंदियजायिणामं चेदि । सरीरणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइयसरीरणामं चेइ । सरीरबंधणणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय-सरीरबंधणणामं चेइ ।"

२७वीं गाथाके बाद जो २८वीं गाथा है उसमें शरीरमें होने वाले आठ अङ्गोंके नाम देकर शेषको उपाङ्ग बतलाया है; परन्तु उस परसे यह मालूम नहीं होता कि ये अंग कौनसे शरीर अथवा शरीरोंमें होते हैं। पूर्वकी गाथा नं० २७ में शरीरबन्धनसम्बन्धी १५ संयोगी भेदोंकी सूचना करते हुए तैजस और कार्माण नामके शरीरोंका तो स्पष्ट उल्लेख है शेष तीनका 'तिए' पदके द्वारा संकेतमात्र है; परन्तु उनका नामोल्लेख पहलेकी भी किसी गाथामें नहीं है, तब उन अंगों—उपाङ्गोंको तैजस और कार्माणके अङ्ग—उपाङ्ग समझा जाय अथवा पाँचोमेंसे प्रत्येक शरीरके अङ्ग—उपाङ्ग ? तैजस और कार्माण शरीरके अंगोपांग माननेपर सिद्धान्तका विरोध आता है; क्योंकि सिद्धान्तमें इन दोनों शरीरोंके अंगोपांग नहीं माने गये हैं और इसलिये प्रत्येक शरीरके अंगोपांग भी उन्हें नहीं कहा जा सकता है। शेष तीन शरीरोंमेंसे कौनसे शरीरके अङ्गोपाङ्ग यहाँ विवक्षित हैं यह संदिग्ध है । अतः गाथा नं० २८ का कथन अपने विषयमें अस्पष्ट तथा अधूरा है और उसकी स्पष्टता तथा पूर्तिके लिये अपने पूर्वमें किसी दूसरे कथनकी अपेक्षा रखता है । वह कथन मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमें दोनों गाथाओंके मध्यमें उपलब्ध होनेवाले निम्न गद्यसूत्रोंमेंसे अन्तके सूत्रमें पाया जाता है, जो उक्त २८वीं गाथाके ठीक पूर्ववर्ती है और जिसमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरोंकी दृष्टिसे अङ्गोपांग नामकर्मके तीन भेद किये हैं, और इस तरह इन तीन शरीरोंमें ही अंगोपांग होते हैं ऐसा निर्दिष्ट किया है :—

"सरीरसंघादणामं पंचविहंओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय-सरीरसंघादणामं चेदि । सरीरसंठाणणामकम्मं छव्विहं समचउरसंठाणणामं णग्गोद-परिमंडल-सादिय-

कुज्ज-वामण-हुंड-सरीसंठाणणामं चेदि। सरीर-अंगोवंगणामं तिविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहारसरीर-अंगोवंगणामं चेदि।"

यहाँ पर इतना और जान लेना चाहिये कि २७वीं गाथाके पूर्ववर्ती गद्यसूत्रोंमें नामकर्मकी प्रकृतियोंका जो क्रम स्थापित किया गया है उसकी दृष्टिसे ही शरीरबन्धनादिके बाद २८वीं गाथामें अंगोपाङ्गका कथन किया गया है, अन्यथा तत्त्वार्थसूत्रकी दृष्टिसे वह कथन शरीरबन्धनादिकी प्रकृतियोंके पूर्वमें ही होना चाहिये था; क्योंकि तत्त्वार्थसूत्रमें "शरीराङ्गोपांगनिर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-संहनन" इस क्रमसे कथन है। और इससे नामकर्म-विषयक उक्त सूत्रोंकी स्थिति और भी सुदृढ होती है।

२८वीं गाथाके अनन्तर चार गाथाओं (नं० २६, ३०, ३१, ३२) में संहननोंका, जिनकी संख्या छह सूचित की है, वर्णन है अर्थात् प्रथम तीन गाथाओंमें यह बतलाया है कि किस किस संहननवाला जीव स्वर्गादि तथा नरकोंमें कहाँ तक जाता अथवा मरकर उत्पन्न होता है और चौथी (नं० ३२) में यह प्रतिपादन किया है कि 'कर्मभूमिकी स्त्रियोंके अन्तके तीन संहननोंका ही उदय रहता है, आदिके तीन संहनन तो उनके होते ही नहीं, ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।' परन्तु ठीक क्रम-आदिको लिये हुए छहों संहननोंके नामोंका उल्लेख नहीं किया—मात्र चार संहननोंके नाम ही इन गाथाओंपरसे उपलब्ध होते हैं—, जिससे 'आदिमतिगसंहडणं', 'अंतिमतियसंहडणस्स', 'तिदुगेगे संहडणे,' और 'पणचदुरेगसंहडणो' जैसे पदोंका ठीक अर्थ घटित हो सकता। और न यही बतलाया है कि ये छहों संहनन कौनसे कर्मकी प्रकृतियाँ हैं—पूर्वकी किसी गाथापरसे भी छहोंके नाम नामकर्मके नामसहित उपलब्ध नहीं होते। और इसलिये इन चारों गाथाओंका कथन अपने पूर्वमें ऐसे कथनकी माँग करता है जो ठीक क्रमादिके साथ छह संहननोंके नामोल्लेखको लिये हुए हो। ऐसा कथन मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमें २८वीं गाथाके अनन्तर दिये हुए निम्न सूत्रपरसे उपलब्ध होता है:—

"संहडण-णामं छव्विहं वज्जरिसहणारायसंहडणणामं वज्जणाराय-णाराय-अद्ध-णाराय-खीलिय-असंपत्त-सेवट्टि-सरीरसंहडणणामं चेइ।"

यहाँ संहननोंके प्रथम भेदको अलग विभक्तिसे रखना अपनी खास विशेषता रखता है और वह ३०वीं गाथामें प्रयुक्त हुए 'इग' 'एग' शब्दोंके अर्थको ठीक व्यवस्थित करनेमें समर्थ है।

इसी तरह, मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमें, नामकर्मकी अन्य प्रकृतियोंके भेदाऽभेदको लिये हुए तथा गोत्रकर्म और अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंको प्रदर्शित करनेवाले और भी गद्य-सूत्र यथास्थान पाये जाते हैं, जिन्हें स्थल-विशेषकी सूचनादिके विना ही मैं यहाँ, पाठकोंकी जानकारीके लिये उद्धृत कर देना चाहता हूँ:—

"वण्णणामं पंचविहं किण्ण-णील-रुहिर-पीद-सुक्किल-वण्णणामं चेदि। गंधणामं दुविहं सुगंध-दुगंध-णामं चेदि। रसणामं पंचविहं तिट्ठ-कडु-कसायंबिल-महुर-रसणामं चेइ। फासणामं अट्ठविहं कक्कड-मउगगुरुलहुग-रुक्ख-सणिद्ध-सीदुसुण-फासणामं चेदि। आणु-पुव्वीणामं चउविहं णिरय-तिरक्खगाय-पाओग्गाणुपुव्वीणामं मणुस-देवगाय-पाओग्गा-णुपुव्वीणामं चेइ। अगुरुलघुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदव-उज्जोद-णाम चेदि। विहाय-गदिणामकम्मं दुविहं पसत्थविहायगदिणामं अप्पसत्थविहायगदिणामं चेदि। तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-सुभ-सुभग - सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण - तित्थयरणामं चेदि। थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारण-सरीर - अथिर - असुह-दुब्भग - दुस्सर - अणादेज्ज - अज-

सकिरिणामं चेदि। *[1]गोदकम्मं दुविहं उच्च-णीचगोदं चेइ। अंतरायं पंचविहं दाण-लाभ-भोगोपभोग-वीरिय-अंतरायं चेइ।"

मूडबिद्रीकी उक्त प्रतिमें पाये जाने वाले ये सब सूत्र पट्खण्डागमके सूत्रोंपरसे थोड़ा बहुत संक्षेप करके बनाये गये मालूम होते हैं[2], अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आते और ग्रन्थके पूर्वाऽपर सम्बन्धको दृष्टिमें रखते हुए उसके आवश्यक अंग जान पड़ते हैं, इसलिये इन्हें प्रस्तुत ग्रन्थके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्रकी ही कृति अथवा योजना समझना चाहिये। पद्य-प्रधान ग्रन्थोंमें गद्यसूत्रों अथवा कुछ गद्य भागका होना कोई अस्वाभाविक अथवा दोषकी बात भी नहीं है, दूसरे अनेक पद्य-प्रधान ग्रन्थोंमें भी पद्योंके साथ कहीं-कहीं कुछ गद्यभाग उपलब्ध होता है; जैसे कि तिलोयपण्णत्ती और प्राकृतपञ्चसंग्रहमें। ऐसा मालूम होता है कि ये गद्यसूत्र टीका-टिप्पणका अंश समझे जाकर लेखकोंकी कृपासे प्रतियोंमें छूट गये हैं और इसलिये इनका प्रचार नहीं हो पाया। परन्तु टीकाकारोंकी आँखोंसे ये सर्वथा ओझल नहीं रहे हैं—उन्होंने अपनी टीकाओंमें इन्हें ज्यों-के-त्यों न रखकर अनुवादितरूपमें रक्खा है, और यही उनकी सबसे बड़ी भूल हुई है, जिससे मूलसूत्रोंका प्रचार रुक गया और उनके अभावमें ग्रंथका यह अधिकार त्रुटिपूर्ण जँचने लगा। चुनाँचे कलकत्तासे जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्था-द्वारा दो टीकाओंके साथ प्रकाशित इस ग्रंथकी संस्कृत टीकामें (और तदनुसार भाषा टीकामें भी) ये सब सूत्र प्रायः[3] ज्यों-के-त्यों अनुवादके रूपमें पाये जाते हैं, जिसका एक नमूना २५वीं गाथाके साथ पाये जाने वाले सूत्रोंका इस प्रकार है:—

---

[1] इस* चिन्हसे पूर्ववर्ती सूत्रोंको गाथा नं० ३२ के बाद के और उत्तरवर्ती सूत्रोंको गाथा नं० ३३ के बादके समझना चाहिये।

[2] तुलनाके लिये दोनोंके कुछ सूत्र उदाहरणके तौरपर नीचे दिये जाते हैं:—

(क) "वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ।" "सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव।"

—षट्खं० १, ६ चू० ८

"वेदणीयं दुविहं सादावेदणीयमसादावेदणीयं चेइ"　　　　—गो० क० मूडबिद्री-प्रति

(ख) जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं ओरालिय-सरीरबंधणणामं, वेउव्विय-सरीरबंधणणामं आहार-सरीरबंधणणामं तेजासरीरबंधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि।

—षट्खं० १, ६ चू० ८

"सरीरबंधणणामं पंचविहं ओरालिय-वेगुव्विय-आहार-तेज-कम्मइय-सरीरबंधणणामं चेइ।"

—गो० क० मूडबिद्री-प्रति

[3] 'प्रायः' शब्दके प्रयोगका यहाँ आशय इतना ही है कि दो एक जगह थोड़ासा भेद भी पाया जाता है, वह या तो अनुवादादिकी ग़लती अथवा अनुवाद-पद्धतिसे सम्बन्ध रखता है और या उसे सम्पादनकी ग़लती समझना चाहिये। सम्पादनकी ग़लतीका एक स्पष्ट उदाहरण २२वीं गाथा-टीकाके साथ पाये जानेवाले निम्न सूत्रमें उपलब्ध होता है—

"दर्शनावरणीयं नवविधं स्त्यानगृद्धि-निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयं चेति।"

इसमें स्त्यानगृद्धिके बाद दो हाईफनों (-) के मध्यमें जो 'निद्रा' को रक्खा है उसे उस प्रकार वहाँ न रखकर 'प्रचलाप्रचला' के मध्यमें रखना चाहिये था और इस "प्रचलाप्रचला" के पूर्वमें जो हाइफन है उसे निकाल देना चाहिये था, तभी मूलसूत्रके साथ और ग्रन्थकी अगली तीन गाथाओंके साथ इसकी संगति ठीक बैठ सकती थी। पं० टोडरमल्लजीकी भाषा टीकामें मूलसूत्रके अनुरूप ही अनुवाद किया गया है। अनुवाद-पद्धतिका एक नमूना ऊपर उद्धृत मोहनीय-कर्म-विषयक सूत्रमें पाया जाता है, जिसमें 'एकविध' और 'त्रिविध' पदोंको थोड़ा-सा स्थानान्तरित करके रक्खा गया है। और दूसरा

"वेदनीयं द्विविधं सातावेदनीयमसातावेदनीयं चेति । मोहनीयं द्विविधं दर्शन-मोहनीयं चारित्रमोहनीयं चेति । तत्र दर्शनमोहनीयं बंध-विवक्षया मिथ्यात्वमेकविधं उदयं सत्वं प्रतीत्य मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतिश्चेति त्रिविधं।"

और इससे इन सूत्रोंके मूलग्रंथका अंग होनेकी बात और भी सुदृढ हो जाती है। वस्तुतः इन सूत्रोंकी मौजूदगीमें ही अगली गाथाओंके भी कितने ही शब्दों, पद-वाक्यों अथवा सांकेतिक प्रयोगोंका अर्थ ठीक घटित किया जा सकता है—इनके अथवा इन जैसे दूसरे पद-वाक्योंके अभावमें नहीं। इस विषयके विशेष प्रदर्शन एवं स्पष्टीकरणको मैं लेखके बढ़ जानेके भयसे ही नहीं, किन्तु वर्तमानमें अनावश्यक समझकर भी, यहाँ छोड़े देता हूँ—विज्ञ पाठक उसका अनुभव स्वतः कर सकते हैं; क्योंकि मैं समझता हूँ इस विषयमें ऊपर जो कुछ लिखा गया और विवेचन किया गया है वह सब इस बातके लिये पर्याप्त है कि ये सब सूत्र मूलग्रंथके अंगभूत हैं और इसलिये इन्हें ग्रंथमें यथास्थान गाथाओंवाले टाइपमें ही पुनः स्थापित करके ग्रंथके प्रकृत अधिकारकी त्रुटिको दूर करना चाहिये।

अब रही उन ७५ गाथाओंकी बात, जो 'कर्मप्रकृति' प्रकरणमें तो पाई जाती हैं किन्तु गोम्मटसारके इस 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारमें नहीं पाई जातीं, और जिनके विषयमें पं० परमानन्दजी शास्त्रीका यह कहना है कि वे सब कर्मकाण्डकी अंगभूत आवश्यक और संगत गाथाएँ हैं, जो किसी समय लेखकोंकी कृपासे कर्मकाण्डसे छूट गई अथवा उससे जुदी पड़ गई हैं, 'कर्मप्रकृति' जैसे ग्रंथ-नामोंके साथ प्रचारको प्राप्त हुई हैं; और इस लिये उन्हें फिरसे कर्मकाण्डमें यथास्थान शामिल करके उसकी उस त्रुटिको पूरा करना चाहिये जिसके कारण वह अधूरा और लँडूरा जान पड़ता है।

जहाँ तक मैंने उन विवादस्थ गाथाओंपर, उनके कर्मकाण्डका आवश्यक तथा संगत अंग होने, कमकाण्डसे किसी समय छूटकर कर्म-प्रकृतिके रूपमें अलग पड़ जाने और कर्मकाण्डमें उनके पुनः प्रवेश कराने आदिके प्रश्नोंको लेकर, विचार किया है मुझे प्रथम तो यह मालूम नहीं हो सका कि 'कर्मप्रकृति' प्रकरण और 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकार दोनोंको एक कैसे समझ लिया गया है, जिसके आधारपर एकमें जो गाथाएं अधिक हैं उन्हें दूसरेमें भी शामिल करानेका प्रस्ताव रक्खा गया है; जब कि कर्मप्रकृतिमें प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारसे ७५ गाथाएं अधिक ही नहीं बल्कि उसकी ३५ गाथाएं (नं० ५२ से ८६ तक) कम भी हैं, जिन्हें कर्मप्रकृतिमें शामिल करनेके लिये नहीं कहा गया, और इसी तरह ७३ गाथाएं

नमूना २२वीं गाथाकी टीकामें उपलब्ध होता है, जिसका प्रारम्भ 'ज्ञानावरणादीनां यथासंख्यमुत्तरभेदाः पंच नव' इत्यादि रूपसे किया गया है, और इसलिये मूलकर्मोंके नाम-विषयक प्रथम सूत्रके ('तत्थ' शब्द सहित) अनुवादको छोड़ दिया है; जब कि पं० टोडरमल्लजीकी टीकामें उसका अनुवाद किया गया है और उसमें ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके नाम देकर उन्हें "आठ मूलप्रकृति" प्रकट किया है, जो कि संगत है और इस बातको सूचित करता है कि उक्त प्रथम सूत्रमें या तो उक्त आशयका कोई पद त्रुटित है अथवा 'मोहणीय' पदकी तरह उद्धृत होनेसे रह गया है। इसके सिवाय, 'शरीरबन्धन' नामकर्मके पांच भेदोंका जो सूत्र २७वीं गाथाके पूर्व पाया जाता है उसे टीकामें २७वीं गाथाके अनन्तर पाये जाने वाले सूत्रोंमें प्रथम रक्खा है और इससे 'शरीरबन्धन' नामकर्मके जो १५ भेद होते थे वे 'शरीर' नामकर्मके १५ भेद हो जाते हैं, जो कि एक सैद्धान्तिक गलती है और टीकाकार-द्वारा उक्त सूत्रको नियत स्थानपर न रखनेके कारण २७वीं गाथाके अर्थमें घटित हुई है; क्योंकि षट्खण्डागममें भी 'ओरालिय-ओरालिय-सरीरबंधो' इत्यादि रूपसे १५ भेद शरीरबन्धके ही दिये हैं और उन्हें देकर श्रीवीरसेनस्वामीने धवला-टीकामें साफ लिखा है—

"एसो पण्णारसविहो बंधो सो सरीरबंधो त्ति घेत्तव्वो।"

कर्मकाण्डके द्वितीय अधिकारकी (नं० १२७ से १४५, १६३, १८०, १८१, १८४,) तथा ११ गाथाएं छठे अधिकारकी (नं० ८०० से ८१० तक) भी उसमें और अधिक पाई जाती हैं, जिन्हें पण्डित परमानन्दजीने अधिकार-भेदसे गाथा-संख्याके कुछ गलत उल्लेखके साथ स्वयं स्वीकार किया है, परन्तु प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारमें उन्हें शामिल करनेका सुझाव नहीं रक्खा गया! दोनोंके एक होनेकी दृष्टिसे यदि एककी कमीको दूसरेसे पूरा किया जाय और इस तरह 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारकी उक्त ३५ गाथाओंको कर्मप्रकृतिमें शामिल करानेके साथ-साथ कर्मप्रकृतिकी उक्त ३४ (२३+११) गाथाओंको भी प्रकृतिसमुत्कीर्तनमें शामिल करानेके लिये कहा जाय अर्थात् यह प्रस्ताव किया जाय कि 'ये ३४ गाथाएं चूंकि कर्मप्रकृतिमें पाई जाती हैं, जो कि वास्तवमें कर्मकाण्डका प्रथम अधिकार है और 'प्रथम अंश' आदिरूपसे उल्लेखित भी मिलता है, इसलिये इन्हें भी वर्तमान कर्मकाण्डके 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारमें त्रुटित समझा जाकर शामिल किया जाय' तो यह प्रस्ताव बिल्कुल ही असंगत होगा; क्योंकि ये गाथाएं कर्मकाण्डके 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारके साथ किसी तरह भी संगत नहीं हैं और साथ ही उसमें अनावश्यक भी हैं। वास्तवमें ये गाथाएं प्रकृतिसमुत्कीर्तनसे नहीं किन्तु स्थिति-बन्धादिकसे सम्बन्ध रखती हैं, जिनके लिये ग्रन्थकारने ग्रन्थमें द्वितीयादि अलग अधिकारोंकी सृष्टि की है। और इसलिये एक योग्य ग्रन्थकारके लिये यह संभव नहीं कि जिन गाथाओंको वह अधिकृत अधिकारमें रक्खे उन्हें व्यर्थ ही अनधिकृत अधिकारमें भी डाल देवे। इसके सिवाय, कर्मप्रकृतिमें, जिसे गोम्मटसारके कर्मकाण्डका प्रथम अधिकार समझा और बतलाया जाता है, उक्त गाथाओंका देना प्रारम्भ करनेसे पहले ही 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' के कथनको समाप्त कर दिया है—लिख दिया है "इति पयडिसमुक्कित्तणं समत्तं ।।" और उसके अनन्तर तथा 'तीसं कोडाकोडी' इत्यादि गाथाको देनेसे पूर्व टीकाकार ज्ञानभूषणने साफ लिखा है:—

"इति प्रकृतीनां समुत्कीर्तनं समाप्तं ।। अथ प्रकृतिस्वरूपं व्याख्याय स्थितिबन्धमनुपक्रमन्नादौ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धमाह ।"

इससे 'कर्मप्रकृति' की स्थिति बहुत स्पष्ट हो जाती है और वह गोम्मटसारके कर्मकाण्डका प्रथम अधिकार न होकर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही ठहरता है, जिसमें 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' को ही नहीं किन्तु प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके कथनोंको भी अपनी रुचिके अनुसार संकलित किया गया है और जिसका संकलन गोम्मटसारके निर्माणसे किसी समय बादको हुआ जान पड़ता है। उसे छोटा कर्मकाण्ड समझना चाहिये। इसीसे उक्त टीकाकारने उसे 'कर्मकाण्ड' ही नाम दिया है—कर्मकाण्डका 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकार नाम नहीं, और अपनी टीकाको 'कर्मकाण्डस्य टीका' लिखा है; जैसाकि ऊपर एक फुटनोटमें उद्धृत किये हुए उसके प्रशस्तिवाक्यसे प्रकट है। पं० हेमराजने भी, अपनी भाषा टीकामें, ग्रन्थका नाम 'कर्मकाण्ड' और टीकाको 'कर्मकाण्ड-टीका' प्रकट किया है। और इस लिये शाहगढ़की जिस सटिप्पण प्रतिमें इसे 'कर्मकाण्डका प्रथम अंश' लिखा है वह किसी गलतीका परिणाम जान पड़ता है। संभव है कर्मकाण्डके आदि-भाग 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' से इसका प्रारम्भ देखकर और कर्मकाण्डसे इसको बहुत छोटा पाकर प्रतिलेखकने इसे पुष्पिकामें 'कर्मकाण्डका प्रथम अंश' सूचित किया हो। और शाहगढ़की जिस प्रतिमें ढाई अधिकारके करीब कर्मकाण्ड उपलब्ध है उसमें कर्मप्रकृतिकी १६० गाथाओंको जो प्रथम अधिकारके रूपमें शामिल किया गया है वह संभवतः किसी ऐसे व्यक्तिका कार्य है जिसने कर्मकाण्डके 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' अधिकारको त्रुटित एवं अधूरा समझकर, पं० परमानन्दजीकी तरह, 'कर्मप्रकृति' ग्रन्थसे उसकी पूर्ति करनी चाही है और इसलिये कर्म-

काण्डके प्रथम अधिकारके स्थानपर उसे ही अपनी प्रतिमें लिख लिया अथवा लिखा लिया है और अन्य बातोंके सिवाय, जिन्हें आगे प्रदर्शित किया जायगा, इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया कि स्थितिबंधादिसे संबन्ध रखनेवाली उक्त २३ गाथाएं, जो एक कदम आगे दूसरे ही अधिकारमें यथास्थान पाई जाती हैं उनकी इस अधिकारमें व्यर्थ ही पुनरावृत्ति हो रही है। अथवा यह भी हो सकता है कि वह कर्मकाण्ड कोई दूसरा ही बादको संकलित किया हुआ कर्मकाण्ड हो और कर्मप्रकृति उसीका प्रथम अधिकार हो। अस्तु; वह प्रति अपने सामने नहीं है और उतनी मात्र अधूरी भी बतलाई जाती है, अतः उसके विषयमें उक्त संगत कल्पनाके सिवाय और अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऐसी हालतमें पं० परमानन्दजीका उक्त प्रतियों परसे यह फलित करना कि "कर्मकाण्डके प्रथम अधिकारमें उक्त ७५ गाथाएं पहलेसे ही संकलित और प्रचलित हैं"[1] कुछ विशेष महत्व नहीं रखता।

अब उन त्रुटित कही जाने वाली ७५ गाथाओंपर उनके प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारका आवश्यक तथा संगत अंग होने न होने आदिकी दृष्टिसे, विचार किया जाता है:—

(१) गो० कर्मकाण्डकी १५वीं गाथाके अनन्तर जो 'सियअत्थिणत्थिउभयं' नामकी गाथा त्रुटित बतलाई जाती है वह ग्रन्थ-संदर्भकी दृष्टिसे उसका संगत तथा आवश्यक अंग मालूम नहीं होती; क्योंकि १५वीं गाथामें जीवके दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्वगुणोंका निर्देश किया गया है, बीचमें स्यात् अस्ति-नास्ति आदि सप्तनयोंका स्वरूपनिर्देशके बिना ही नामोल्लेखमात्र करके यह कहना कि 'द्रव्य आदेशवशसे इन सप्तभंगरूप होता है' कोई संगत अर्थ नहीं रखता। जान पड़ता है १५वीं गाथामें सत्तभंगों-द्वारा श्रद्धानकी जो बात कही गई है उसे लेकर किसीने 'सत्तभंगीहि' पदके टिप्पणरूपमें इस गाथाको अपनी प्रतिमें पंचास्तिकाय ग्रंथसे, जहाँ वह नं० १५ पर पाई जाती है, उद्धृत किया होगा, जो बादको संग्रह करते समय कर्मप्रकृतिके मूलमें प्रविष्ट हो गई। शाहगढ़वाले टिप्पणमें इसे 'प्रक्षिप्त' सूचित भी किया है[2]।

(२) २०वीं गाथाके अनन्तर 'जीवपएसेक्केक्के', 'अत्थिअणाईभूओ', 'भावेण तेण पुनरवि', 'एकसमयणिबद्धं' सो बंधो चउभेओ' इन पांच गाथाओंको जो त्रुटित बतलाया है[3] वे भी गोम्मटसारके इस प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारका कोई आवश्यक अंग मालूम नहीं होतीं और न संगत ही जान पड़ती हैं; क्योंकि २०वीं गाथामें आठ कर्मोंका जो पाठ-क्रम है उसे सिद्ध सूचित करके २१वीं गाथामें दृष्टान्तोंद्वारा उनके स्वरूपका निर्देश किया है, जो संगत है। इन पाँच गाथाओंमें जीवप्रदेशों और कर्मप्रदेशोंके बन्धादिका उल्लेख है और अन्तकी गाथामें बन्धके प्रकृति, स्थिति आदि चार भेदोंका उल्लेख करके यह सूचित किया है कि प्रदेशबन्धका कथन ऊपर हो चुका;[3] चुनाँचे आगे प्रदेशबन्धका कथन किया भी नहीं। और इसलिये

---

१ अनेकान्त वर्ष ३ किरण १२ पृ० ७६३।

२ अनेकान्त वर्ष ३ कि० ८-६ पृ० ५४०।

मेरे पास कर्म-प्रकृतिकी एक वृत्तिसहित प्रति और है, जिसमें यहाँ पाँचके स्थानपर छह गाथाएँ हैं। छठी गाथा 'सो बंधो चउभेओ' से पूर्व इस प्रकार है :—

"आउगभागो थोवो णामागोदे समो तत्तो अहियो।
घादितिये वि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदी(दि)ये ॥"

३ "पयडिट्ठिदिअणुभागं पएसबंधो पुरा कहियो," कर्मप्रकृतिकी अनेक प्रतियोंमें यही पाट पाया जाता है जो ठीक जान पड़ता है; क्योंकि 'जीवपएसेक्केक्के' इत्यादि पूर्वकी तीन गाथाओंमें प्रदेशबन्धका ही कथन है। ज्ञानभूषणने टीकामें इसका अर्थ देते हुए लिखा है:—" ते चत्वारो भेदाः के? प्रकृति-स्थित्यनुभागाः प्रदेशबन्धश्च अयं भेदः पुरा कथितः।" अतः अनेकान्तकी उक्त किरण ८-६ में जो

पूर्वापर कथनके साथ इनकी संगति ठीक नहीं बैठती। कर्मप्रकृति ग्रंथमें चूंकि चारों बंधों का कथन है, इसलिये उसमें खींचतान करके किसी तरह इनका सम्बन्ध बिठलाया जा सकता है परन्तु गोम्मटसारके इस प्रथम अधिकारमें तो इनकी स्थिति समुचित प्रतीत नहीं होती, जब कि उसके दूसरे ही अधिकारमें बन्ध-विषयका स्पष्ट उल्लेख है। ये गाथाएँ कर्मप्रकृतिमें देवसेनके भावसंग्रहग्रंथसे उठाकर रक्खी गई मालूम होती हैं, जिसमें ये नं० ३२५ से ३२६ तक पाई जाती हैं।

(३) २१वीं और २२वीं गाथाओंके मध्यमें 'णाणावरणं कम्मं', 'दंसणआवरणं पुण', 'महुलित्त-खग्गसरिसं', 'मोहेइ मोहणीयं, 'आउं चउप्पयारं', 'चित्तं पड व विचित्तं', 'गोदं कुलालसरिसं', 'जह भंडयारिपुरिसो' इन आठ गाथाओंकी स्थिति भी संगत मालूम नहीं होती। इनकी उपस्थितिमें २१वीं और २२वीं दोनों गाथाएँ व्यर्थ पड़ती हैं; क्योंकि २१वीं गाथामें जब दृष्टान्तों-द्वारा आठों कर्मोंके स्वरूपका और २२वीं गाथामें उन कर्मोंकी उत्तर प्रकृति-संख्याका निर्देश है तब इन आठों गाथाओंमें दोनों बातोंका एक साथ निर्देश है। इन गाथाओंमें जब प्रत्येक कर्मकी अलग अलग उत्तरप्रकृतियोंकी संख्याका निर्देश किया जाचुका तब फिर २२वीं गाथामें यह कहना कि 'कर्मोंकी क्रमशः ५, ६, २, २८, ४, ६३ या १०३, २, ५ उत्तरप्रकृतियाँ होती हैं' क्या अर्थ रखता है? व्यर्थताके सिवाय उससे और कुछ भी फलित नहीं होता। एक सावधान ग्रंथकारके द्वारा ऐसी व्यर्थ रचनाकी कल्पना नहीं की जा सकती। ये गाथाएँ यदि २२वीं गाथाके बाद रक्खी जातीं तो उसकी भाष्य-गाथाएँ हो सकती थीं, और फिर २१वीं गाथाको देनेकी जरूरत नहीं थी; क्योंकि उसका विषय भी इनमें आगया है। ये गाथाएँ भी उक्त भावसंग्रहकी हैं और वहींसे उठाकर कर्मप्रकृतिमें रक्खी गई मालूम होती हैं। भावसंग्रहमें ये ३३१ से ३३८ नम्बरकी गाथाएँ हैं[1]।

(४) गो० कर्मकाण्डकी २२वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमें 'अहिमुहणियमियबोहणं', अत्थादो अत्थंतर', 'अवहीयदि त्ति ओही', 'चिंतियमचिंतियं वा', 'संपुण्णं तु समग्गं', 'मदिसुदओहीमणपज्जवं', 'जं सामण्णं गहणं', 'चक्खूण जं पयासइ, परमाणुआदियाइं', 'बहुविहबहुप्पयारा', 'चक्खुअचक्खूओही', 'अह थीणगिद्धिणिद्दा' ये १२ गाथाएँ पाई जाती हैं, जिन्हें कर्मकाण्डके प्रथम अधिकारमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेंसे मतिज्ञानादि पाँच ज्ञानों और चक्षु-दर्शनादि चार दर्शनोंके लक्षणोंकी जो ९ गाथाएँ हैं वे उक्त अधिकारकी कथनशैली और विषयप्रतिपादनकी दृष्टिसे उसका कोई आवश्यक अंग मालूम नहीं होतीं—खासकर उस हालतमें जब कि वे ग्रन्थके पूर्वार्ध जीवकाण्डमें पहलेसे आचुकी हैं और उसमें क्रमशः नं० ३०५, ३१४, ३६६, ४३७, ४५६, ४८१, ४८३, ४८४, ४८५ पर दर्ज हैं। शेष तीन गाथाएँ ('मदिसुद-ओहीमणपज्जव', 'चक्खुअचक्खूओही' 'अह थीणगिद्धिणिद्दा') जिनमें ज्ञानावरणकी ५ और दर्शनावरणकी ६ उत्तरप्रकृतियोंके नाम हैं, प्रकरणके साथ संगत हैं अथवा यों कहिये कि २२वीं गाथाके बाद उनकी स्थिति ठीक कही जा सकती है; क्योंकि मूलसूत्रोंकी तरह उनसे भी अगली तीन गाथाओं (नं० २३, २४, २५) की संगति ठीक बैठ जाती है।

(५) कर्मकाण्डमें २५वीं गाथाके बाद 'दुविहं खु वेयणीयं' और 'बंधादेगं मिच्छं' नामकी जिन दो गाथाओंको कर्मप्रकृतिके अनुसार त्रुटित बतलाया जाता है वे भी प्रकरणके साथ संगत हैं अथवा उनकी स्थितिको २५वीं गाथाके बाद ठीक कहा जा सकता है; क्योंकि मूलसूत्रोंकी तरह उनमें भी क्रमप्राप्त वेदनीयकर्मकी दो उत्तर-प्रकृतियों और मोहनीय कर्मके

"पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधो हु चउविहो कहियो" पाठ दिया है वह ठीक मालूम नहीं होता—उसके पूर्वार्धमें 'चउभेयो' पदके होते हुए उत्तरार्धमें 'चउविहो' पदके द्वारा उसकी पुनरावृत्ति खटकती भी है।

१ देखो, माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें प्रकाशित 'भावसंग्रहादि' ग्रन्थ।

दो भेद करके प्रथम भेद दर्शनमोहके तीन भेदोंका उल्लेख है, और इसलिये उनसे भी अगली २६वीं गाथाकी सङ्गति ठीक बैठ जाती है।

(६) कर्मकाण्डकी २६वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमें 'दुविहं चरित्तमोहं' 'अणं अपच्चक्खाणं' 'सिलपुढविभेदधूली' 'सिअट्ठिकट्ठवेत्ते' 'वेणुवमूलोरब्भय', 'किमिरायचक्कतणुमल' 'सम्मत्तं देस-सयल' 'हस्सरदिअरदिसोयं' 'छादयदि सयं दोसे' 'पुरुगुणभोगे सेदे' 'णेवित्थी णेव पुमं' 'णारयतिरियणरामर' 'णेरइयतिरियमाणुस' 'ओरालियवेगुव्विय' ये १४ गाथाएं पाई जाती हैं जिन्हें कर्मकाण्डके इस प्रथम अधिकारमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेंसे ८ गाथाएं जो अनंतानुबन्धि आदि सोलह कषायों और स्त्रीवेदादि तीन वेदोंके स्वरूपसे सम्बन्ध रखती हैं वे भी इस अधिकारकी कथन-शैली आदिकी दृष्टिसे उसका कोई आवश्यक अङ्ग मालूम नहीं होतीं—खासकर उस हालतमें जब कि वे जीवकाण्डमें पहले आ चुकी हैं और उसमें क्रमशः नं० २८३, २८४, २८५, २८६, २८२, २७३, २७२, २७४ पर दर्ज हैं। शेष ६ गाथाएं (पहली दो, मध्यकी 'हस्सरदिअरदिसोयं' नामकी एक और अन्तकी तीन), जो चारित्रमोहनीय कर्मकी २५, आयु कर्मकी ४ और नाकर्मकी ४२ पिण्डाऽपिण्ड प्रकृतियोंमेंसे गतिकी ४, जातिकी ५ और शरीरकी ५ उत्तर प्रकृतियोंके नामोल्लेखको लिये हुए हैं, प्रकरणके साथ सङ्गत कही जा सकती हैं; क्योंकि इस हद तक वे भी मूलसूत्रोंके अनुरूप हैं। परन्तु मूलसूत्रोंके अनुसार २७वीं गाथाके साथ सङ्गत होनेके लिये शरीरबन्धनकी उत्तर-प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली 'पंच य सरीरबंधण' नामकी वह गाथा उनके अनन्तर और होनी चाहिये जो २७वीं गाथाके अनन्तर पाई जाने वाली ४ गाथाओंमें प्रथम है, अन्यथा २७वीं गाथामें जिन १५ संयोगी भेदोंका उल्लेख है वे शरीरबन्धनके न होकर शरीरके हो जाते हैं, जो कि एक सैद्धान्तिक भूल है और जिसका ऊपर स्पष्टीकरण किया जा चुका है। एक सूत्र अथवा गाथाके आगे-पीछे हो जानेसे, इस विषयमें, कर्मकाण्ड और कर्मप्रकृतिके प्रायः सभी टीकाकारोंने गलती खाई है, जो उक्त २७वीं गाथाकी टीकामें यह लिख दिया है कि 'ये १५ संयोगी भेद शरीरके हैं', जबकि वे वास्तवमें 'शरीरबन्धन' नामकर्मके भेद हैं।

(७) कर्मकाण्डकी २७वीं गाथाके पश्चात् कर्मप्रकृतिमें 'पंच य सरीरबंधण' 'पंच संघादणामं' 'समचउरं णग्गोहं' 'ओरालियवेगुव्विय' ये चार गाथाएं पाई जाती हैं, जिन्हें कर्मकाण्डमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेंसे पहली गाथा तो २७वीं गाथाके ठीक पूर्वमें संगत बैठती है, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। शेष तीन गाथाएं यहाँ संगत कही जा सकती हैं; क्योंकि इनमें मूल-सूत्रोंके अनुरूप संघातकी ५, संस्थानकी ६ और अङ्गोपाङ्ग नामकर्मकी ३ उत्तरप्रकृतियोंका क्रमशः नामोल्लेख है। पिछली (चौथी) गाथाकी अनुपस्थितिमें तो अगली कर्मकाण्डवाली २८वीं गाथाका अर्थ भी ठीक घटित नहीं हो सकता, जिसमें आठ अङ्गोंके नाम देकर शेषको उपाङ्ग बतलाया है और यह नहीं बतलाया कि वे अङ्गोपाङ्ग कौनसे शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं।

(८) कर्मकाण्डकी २८वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमें 'दुविहं विहायणामं' 'तह अद्धं णारायं' 'जस्स कम्मस्स उदये वज्जमयं' 'जस्सुदये वज्जमयं' 'जस्सुदये वज्जमया' 'वज्जविसेसणरहिदा' 'जस्स कम्मस्स उदये अवज्जहड्डा' 'जस्स कम्मस्स उदये अण्णोण्ण' ये ८ गाथाएं उपलब्ध हैं, जिन्हें कर्मकाण्डमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेंसे पहली दो गाथाएँ तो आवश्यक और सङ्गत हैं; क्योंकि वे मूलसूत्रोंके अनुरूप हैं और उनकी उपस्थितिसे कर्मकाण्डकी अगली तीन गाथाओं (२६, ३०, ३१) का अर्थ ठीक बैठ जाता है। शेष ६ गाथाएं, जो छहों संहननोंके स्वरूपकी निर्देशक हैं, इस अधिकारका कोई आवश्यक तथा अनिवार्य अंग नहीं कही जा सकतीं; क्योंकि सब प्रकृतियोंके स्वरूप अथवा लक्षण-निर्देशको

पद्धतिको इस अधिकारमें अपनाया नहीं गया है। इन्हें भाष्य अथवा व्याख्यान गाथाएं कहा जा सकता है। इनकी अनुपस्थितिसे मूल ग्रन्थके सिलसिले अथवा उसकी सम्बद्ध रचनामें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

(६) कर्मकाण्डकी ३१वीं गाथाके बाद कर्मप्रकृतिमें 'घम्मा वंसा मेघा' 'मिच्छापुव्वदुगादिसु' 'विमलचउक्के छट्ठं' 'सव्वविदेहेसु तहा' नामकी ४ गाथाएं उपलब्ध हैं, जिन्हें भी कर्मकाण्डमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेंसे पहली गाथा जो नरकभूमियोंके नामोंकी है, प्रकृत अधिकारका कोई आवश्यक अंग मालूम नहीं होती। जान पड़ता है ३१वीं गाथामें 'मेघा' पृथ्वीका जो नामोल्लेख है और शेष नरकभूमियोंकी विना नामके ही सूचना पाई जाती है, उसे लेकर किसीने यह गाथा उक्त गाथाकी टिप्पणीरूपमें त्रिलोकसार अथवा जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति परसे अपनी प्रतिमें उद्धृत की होगी, जहाँ यह क्रमशः नं० १४५ पर तथा ११वें अ० के नं० ११२ पर पाई जाती है, और वहाँसे संग्रह करते हुए यह कर्मप्रकृतिके मूलमें प्रविष्ट हो गई है। शाहगढ़के उक्त टिप्पणमें इसे भी 'सिय अत्थि णत्थि' गाथाकी तरह प्रक्षिप्त बतलाया है और सिद्धान्त-गाथा प्रकट किया है[१]। शेष तीन गाथाएं जो संहननसम्बन्धी विशेष कथनको लिये हुए हैं, यद्यपि प्रकरणके साथ संगत हो सकती हैं परन्तु वे उसका कोई ऐसा आवश्यक अंग नहीं कही जा सकतीं जिसके अभावमें उसे त्रुटित अथवा असम्बद्ध कहा जा सके। मूल-सूत्रोंमें इन चारों ही गाथाओंमेंसे किसीके भी विषयसे मिलता जुलता कोई सूत्र नहीं है, और इसलिये इनकी अनुपस्थितिसे कर्मकाण्डमें कोई असंगति पैदा नहीं होती।

(१०) कर्मकाण्डकी ३२वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमें 'पंच य वण्णस्सेदं' 'तित्तं कडुवकसायं' 'फासं अट्ठवियप्पं' 'एदा चोद्दसपिंडप्पयडीओ' 'अगुरुलघुगउवघादं' नामकी ५ गाथाएं उपलब्ध हैं और ३३वीं गाथाके अनन्तर 'तस थावरं च बादर' 'सुहअसुहसुहगदुब्भग' 'तसबादरपज्जत्तं' 'थावरसुहुमपज्जत्तं' 'इदि णामप्पयडीओ' 'तह दाणलाहभोगे' ये ६ गाथाएँ उपलब्ध हैं, जिन सबको भी कर्मकाण्डमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेंसे ६ गाथाओंमें नामकर्मकी शेष वर्णादि-विषयक उत्तरप्रकृतियोंका और पिछली दो गाथाओंमें गोत्रकर्मकी २ तथा अन्तरायकर्मकी ५ उत्तरप्रकृतियोंका नामोल्लेख है। यद्यपि मूल-सूत्रोंके साथ इनका कथनक्रम कुछ भिन्न है परन्तु प्रतिपाद्य विषय प्रायः एक ही है, और इसलिये इन्हें संगत तथा आवश्यक कहा जा सकता है। ग्रन्थमें इन उत्तरप्रकृतियोंकी पहलेसे प्रतिष्ठाके विना ३३वीं तथा अगली-अगली गाथाओंमें इनसे सम्बन्ध रखने वाले विशेष कथनोंकी संगति ठीक नहीं बैठती। अतः प्रतिपाद्य विषयकी ठीक व्यवस्थाके लिये इन सब उत्तरप्रकृतियोंका मूलतः अथवा उद्देश्यरूपमें उल्लेख बहुत जरूरी है—चाहे वह सूत्रोंमें हो या गाथाओंमें।

(११) कर्मकाण्डकी ३४वीं गाथाके बाद कर्मप्रकृतिमें 'वण्णरसगंधफासा' नामकी जो एक गाथा पाई जाती है उसमें प्रायः उन बन्धरहित प्रकृतियोंका ही स्पष्टीकरण है जिनकी सूचना पूर्वकी गाथा (३४) में की गई है और उत्तरकी गाथा (३५) से भी जिनकी संख्या-विषयक सूचना मिलती है और इसलिये वह कर्मकाण्डका कोई आवश्यक अंग नहीं है—उसे व्याख्यान-गाथा कह सकते हैं। मूल-सूत्रोंमें भी उसके विषयका कोई सूत्र नहीं है। यह पञ्चसंग्रहके द्वितीय अधिकारकी गाथा है और संभवतः वहींसे संग्रह की गई है।

(१२) कर्मकाण्डकी 'मणवयणकायवक्को' नामकी ८०८वीं गाथाके अनन्तर कर्मप्रकृतिमें 'दंसणविसुद्धिविणयं' 'सत्तीदो चागतवा' 'पवयणपरमाभत्ती' 'एदेहिं पसत्थेहिं'

१ अनेकान्त वर्ष ३, कि० १२, पृष्ठ ७६३।

'तित्थयरसत्तकम्मं' ये पाँच गाथाएँ पाई जाती हैं, जिन्हें भी कर्मकाण्डमें त्रुटित बतलाया जाता है। इनमेंसे प्रथम चार गाथाओंमें दर्शनविशुद्धि आदि षोडश भावनाओंको तीर्थङ्कर नामकर्मके बन्धकी कारण बतलाया है और पाँचवींमें यह सूचित किया है कि तीर्थङ्कर नामकर्मकी प्रकृतिका जिसके बन्ध होता है वह तीन भवमें सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त होता है और जो क्षायिक-सम्यक्त्वसे युक्त होता है वह अधिक-से-अधिक चौथे भवमें जरूर मुक्त हो जाता है। यह सब विशेष कथन है और विशेष कथनके करने-न-करनेका हरएक ग्रन्थ-कारको अधिकार है। ग्रन्थकार महोदयने यहाँ छठे अधिकारमें सामान्य-रूपसे शुभ और अशुभ नामकर्मके बन्धके कारणोंको बतला दिया है—नामकर्मकी प्रत्येक प्रकृति अथवा कुछ खास प्रकृतियोंके बन्ध-कारणोंको बतलाना उन्हें उसी तरह इष्ट नहीं था, जिस तरह कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय जैसे कर्मोंकी अलग-अलग प्रकृतियोंके बंध-कारणोंको बतलाना उन्हें इष्ट नहीं था; क्योंकि वेदनीय, आयु और गोत्र नामके जिन कर्मोंकी अलग-अलग प्रकृतियोंके बन्ध-कारणोंको बतलाना उन्हें इष्ट था उनको उन्होंने बतलाया है। ऐसी हालतमें उक्त विशेष-कथन-वाली गाथाओंको त्रुटित नहीं कहा जा सकता और न उनकी अनुपस्थितिसे ग्रन्थको अधूरा या लँडूरा ही घोषित किया जा सकता है। उनके अभावमें ग्रन्थकी कथन-संगतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता और न किसी प्रकारकी बाधा ही उपस्थित होती है।

इस प्रकार त्रुटित कही जानेवाली ये ७५ गाथाएँ हैं, जिनमेंसे ऊपरके विवेचना-नुसार मूलसूत्रोंसे सम्बन्ध रखने वाली मात्र २८ गाथाएं ही ऐसी हैं जिनका विषय प्रस्तुत कर्मकाण्डके प्रथम अधिकारमें त्रुटित है और उस त्रुटित विषयकी दृष्टिसे जिन्हें त्रुटित कहा जा सकता है, शेष ४७ गाथाओंमेंसे कुछ असंगत हैं, कुछ अनावश्यक हैं और कुछ लक्षण-निर्देशादिरूप विशेष कथनको लिये हुए हैं, जिसके कारण वे त्रुटित नहीं कही जा सकतीं। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या उक्त २८ गाथाओंको, जिनका विषय त्रुटित है, उक्त अधिकारमें यथास्थान प्रविष्ट एवं स्थापित करके उसकी त्रुटि-पूर्ति और गाथा-संख्यामें वृद्धि की जाय? इसके उत्तरमें मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि, जब गोम्मटसारकी प्राचीनतम ताडपत्रीय प्रतिमें मूल-सूत्र उपलब्ध हैं और उनकी उपस्थितिमें उन स्थानोंपर त्रुटित अंशकी कोई कल्पना उत्पन्न नहीं होती—सब कुछ संगत हो जाता है—तब उन्हें ही ग्रन्थकी दूसरी प्रतियोंमें भी स्थापित करना चाहिये। उन सूत्रोंके स्थानपर इन गाथाओंको तभी स्थापित किया जा सकता है जब यह निश्चित और निर्णीत हो कि स्वयं ग्रन्थकार नेमिच-न्द्राचार्यने ही उन सूत्रोंके स्थानपर बादको इन गाथाओंकी रचना एवं स्थापना की है; परन्तु इस विषयके निर्णयका अभी तक कोई समुचित साधन नहीं है।

कर्मप्रकृतिको उन्हीं सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्रकी कृति कहा जाता है; परन्तु उसके उन्हींकी कृति होनेमें अभी सन्देह है। जहाँ तक मैंने इस विषयपर विचार किया है मुझे वह उन्हीं आचार्य नेमिचन्द्रकी कृति मालूम नहीं होती; क्योंकि उन्होंने यदि गोम्मटसार-कर्मकाण्डके बाद उसके प्रथम अधिकारको विस्तार देनेकी दृष्टिसे इसकी रचना की होती तो वह कृति और भी अधिक सुव्यवस्थित होती, इसमें असंगत तथा अनावश्यक गाथा-ओंको—खासकर ऐसी गाथाओंको जिनसे पूर्वापरकी गाथाएं व्यर्थ पड़ती हैं अथवा अगले अधिकारोंमें जिनकी उपस्थितिसे व्यर्थकी पुनरावृत्ति होती है—स्थान न दिया जाता, जो कि सिद्धान्त-चक्रवर्ती-जैसे योग्य ग्रंथकार की कृतिमें बहुत खटकती हैं, और न उन ३५ (नं० ५२ से ८६ तककी) सङ्गत गाथाओंको निकाला ही जाता जो उक्त अधिकारमें पहलेसे मौजूद थीं और अब तक चली आती हैं और जिन्हें कर्मप्रकृतिमें नहीं रक्खा गया। साथ ही, अपनी १२१वीं अथवा कर्मकाण्डकी 'गदिजादीउस्सासं' नामक ४१वीं गाथाके अनन्तर ही 'प्रकृतिसमु-

त्कीर्तन' अधिकारकी समाप्तिको घोषित न किया जाता। और यदि कर्मकाण्डसे पहले उन्हीं आचार्य महोदयने कर्मप्रकृतिकी रचना की होती तो उन्हें अपनी उन पूर्व-निर्मित २८ गाथाओंके स्थानपर सूत्रोंको नवनिमाण करके रखनेकी जरूरत न होती—खासकर उस हालतमें जब कि उनका कर्मकाण्ड भी पद्यात्मक था। और इस लिये मेरी रायमें यह 'कर्म-प्रकृति' या तो नेमिचन्द्र नामके किसी दूसरे आचार्य, भट्टारक अथवा विद्वान्की कृति है जिनके साथ नाम-साम्यादिके कारण 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' का पद बादको कहीं-कहीं जुड़ गया है—सब प्रतियोंमें वह नहीं पाया जाता[1]। और या किसी दूसरे विद्वान्ने उसका संकलन कर उसे नेमिचन्द्र आचार्यके नामाङ्कित किया है, और ऐसा करनेमें उसकी दो दृष्टि हो सकती हैं—एक तो ग्रंथ-प्रचारकी और दूसरी नेमिचन्द्रके श्रेय तथा उपकार-स्मरणको स्थिर रखनेकी। क्योंकि इस ग्रंथका अधिकांश शरीर आद्यन्तभागों सहित, उन्हींके गोम्मट-सारपरसे बना है—इसमें गोम्मटसारकी १०२ गाथाएं तो ज्यों-की-त्यों उद्धृत हैं और २८ गाथाएं उसीके गद्यसूत्रोंपरसे निर्मित हुई जान पड़ती हैं। शेष ३० गाथाओंमेंसे १६ दूसरे कई ग्रंथोंकी ऊपर सूचित की जा चुकी हैं और १४ ऐसी हैं जिनके ठीक स्थानका अभी तक पता नहीं चला—वे धवलादि ग्रंथोंके षट्संहननोंके लक्षण-जैसे वाक्योंपरसे खुदकी निर्मित भी हो सकती हैं।

हाँ, ऐसी सन्दिग्ध अवस्थामें यह हो सकता है कि प्राकृत मूल-सूत्रोंके नीचे उनके अनुरूप इन सूत्रानुसारिणी ७८ गाथाओंको भी यथास्थान ब्रैकट [ ] के भीतर रख दिया जावे, जिससे पद्य-प्रेमियोंको पद्य-क्रमसे ही उनके विषयके अध्ययन तथा कण्ठस्थादि करने में सहायता मिल सके। और तब यह गाथाओंके संस्कृत छायात्मक रूपकी तरह गद्य-सूत्रोंका पद्यात्मक रूप कहलाएगा, जिसके साथ रहनेमें कोई बाधा प्रतीत नहीं होती—मूल ज्यों-का त्यों अक्षुण्ण बना रहता है। आशा है विद्वज्जन इसपर विचार कर समुचित मार्गको अङ्गीकार करेंगे।

(घ) ग्रंथकी टीकाएँ—

इस गोम्मटसार ग्रंथपर मुख्यतः चार टीकाएँ उपलब्ध हैं—एक, अभयचन्द्राचार्यकी संस्कृत टीका 'मन्दप्रबोधिका', जो जीवकाण्डकी गाथा नं० ३८३ तक ही पाई जाती है, ग्रंथ के शेष भागपर वह बनी या कि नहीं इसका कोई ठीक निश्चय नहीं। दूसरी, केशववर्णीकी संस्कृत-मिश्रित कनडी टीका 'जीवतत्त्वप्रदीपिका', जो ग्रंथके दोनों काण्डोंपर अच्छे विस्तारको लिये हुए है और जिसमें मन्दप्रबोधिकाका पूरा अनुसरण किया गया है। तीसरी, नेमिचंद्राचार्यकी संस्कृत टीका 'जीवतत्त्वप्रदीपिका', जो पिछली दोनों टीकाओंका गाढ अनुसरण करती हुई ग्रंथके दोनों काण्डोंपर यथेष्ट विस्तारके साथ लिखी गई है। और चौथी, पं० टोडरमल्लजीकी हिन्दी टीका 'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका', जो संस्कृत टीकाके विषयको खूब स्पष्ट करके बतलानेवाली है और जिसके आधारपर हिन्दी, अंग्रेजी तथा मराठीके

---

१ भट्टारक ज्ञानभूषणने अपनी टीकामें कर्मकाण्ड अपर नाम कर्मप्रकृतिको 'सिद्धान्तज्ञानचक्रवर्ती-श्रीनेमि-चन्द्रविरचित' लिखा है। इसमें 'सिद्धान्त' और 'चक्रवर्ति' के मध्यमें 'ज्ञान' शब्दका प्रयोग अपनी कुछ खास विशेषता रखता हुआ मालूम होता है और उसके संयोगसे इस विशेषण-पदकी वह स्पिरिट नहीं रहती जो मतिचक्रसे षट्खण्डरूप आगम-सिद्धान्तकी साधना कर सिद्धान्तचक्रवर्ती बननेकी बतलाई गई है (क० ३९७); बल्कि सिद्धान्तज्ञानके प्रचारकी स्पिरिट सामने आती है। और इसलिये इसका संग्रहकर्ता प्रचारकी स्पिरिटको लिये हुए कोई दूसरा ही होना चाहिये, ऐसा इस प्रयोगपरसे खयाल उत्पन्न होता है।

अनुवादों¹का निर्माण हुआ है। इनमेंसे दूसरी केशववर्णीकी टीकाको छोड़कर, जो अभी तक अप्रकाशित है, शेष तीनों टीकाएं कलकत्तासे 'गाँधी हरिभाई देवकरण-जैनग्रंथमाला' में एक साथ प्रकाशित हो चुकी हैं। कनडी और संस्कृत दोनों टीकाओंका एक ही नाम (जीवतत्त्वप्रदीपिका) होने, मूल ग्रंथकर्ता और संस्कृत टीकाकारका भी एक ही नाम (नेमिचन्द्र) होने, कर्मकाण्डकी गाथा नं० ६७२ के एक अस्पष्ट उल्लेखपरसे चामुण्डरायको कनडी टीकाका कर्ता समझा जाने और संस्कृत टीकाके 'श्रित्वा कर्णाटकीं वृत्ति' पद्यके द्वितीय चरणमें 'वर्णिश्रीकेशवैः कृतां²' की जगह कुछ प्रतियोंमें 'वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः' पाठ उपलब्ध होने आदि कारणोंसे पिछले अनेक विद्वानोंको, जिनमें पं० टोडरमल्लजी भी शामिल हैं, संस्कृत टीकाके कर्तृत्व-विषयमें भ्रम रहा है और उसके फलस्वरूप उन्होंने उसका कर्ता 'केशववर्णी' लिख दिया है³। चुनाँचे कलकत्तासे गोम्मटसारका जो संस्करण दो टीकाओं-सहित प्रकाशित हुआ है उसमें भी संस्कृत टीकाको "केशववर्णीकृत" लिख दिया है। इस फैले हुए भ्रमको डा० ए० एन० उपाध्ये एम० ए० ने तीनों टीकाओं और गद्य-पद्यात्मक प्रशस्तियोंकी तुलना आदिके द्वारा, अपने एक लेखमें⁴ विल्कुल स्पष्ट कर दिया है और यह साफ घोषित कर दिया है कि 'संस्कृत टीका नेमिचन्द्राचार्यकृत है और उसमें जिस कनडी टीकाका गाढ अनुसरण है वह अभयसूरिके शिष्य केशववर्णीकी कृति है और उसकी रचना धर्मभूषण भट्टारकके आदेशानुसार शक सं० १२८१ (ई० सन १३५६) में हुई है; जब कि संस्कृत टीका मल्लिभूपालके समयमें लिखी गई है, जो कि सालुव मल्लिराय थे और जिनका समय शिलालेखों आदि परसे ईसाकी १६वीं शताब्दीका प्रथमचरण पाया जाता है, और इसलिये इस टीकाको १६वीं शताब्दीके प्रथम चरणकी ठहराया जा सकता है।'

साथ ही यह भी बतलाया है कि दोनों प्रशस्तियोंपरसे इस संस्कृत टीकाके कर्ता वे आचार्य नेमिचन्द्र उपलब्ध होते हैं जो मूलसंघ, शारदागच्छ, बलात्कारगण, कुन्दकुन्द-अन्वय और नन्दि-आम्नायके आचार्य थे; ज्ञानभूषण भट्टारकके शिष्य थे; जिन्हें प्रभाचंद्र भट्टारकने, जोकि सफलवादी तार्किक थे, सूरि-बनाया अथवा आचार्यपद प्रदान किया था; कर्नाटकके जैन राजा मल्लिभूपालके प्रयत्नोंके फलस्वरूप जिन्होंने मुनिचंद्रसे, जोकि 'त्रैविद्यविद्यापरमेश्वर'के पदसे विभूषित थे, सिद्धान्तका अध्ययन किया था; जो लालावर्णी के आग्रहसे गौर्जरदेशसे आकर चित्रकूटमें जिनदासशाह-द्वारा स्थापित पार्श्वनाथके मन्दिरमें ठहरे थे और जिन्होंने धर्मचन्द अभयचन्द्र तथा अन्य सज्जनोंके हितके लिये खण्डेलवालवंशके साह सांग और साह सहेसकी प्राथनापर यह संस्कृत टीका, कर्णाटकवृत्ति-का अनुसरण करते हुए, त्रैविद्यविद्या-विशालकीर्तिकी सहायतासे लिखी थी। और इस टीकाकी प्रथम प्रति अभयचंद्रने, जोकि निर्ग्रन्थाचार्य और त्रैविद्य-चक्रवर्ती कहलाते थे, संशोधन करके तैयार की थी। दोनों प्रशस्तियोंकी

---

१ हिन्दी अनुवाद जीवकाण्डपर पं० खूबचन्दका, कर्मकाण्डपर पं० मनोहरलालका; अंग्रेजी अनुवाद जीवकाण्डपर मिस्टर जे. एल. जैनीका, कर्मकाण्डपर ब्र० शीतलप्रसाद तथा बाबू अजितप्रसादका; और मराठी अनुवाद गांधी नेमचन्द बालचन्दका है।

२ यह पाठ ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बईकी जीवतत्त्वप्रदीपिका सहित गोम्मटसारकी एक हस्तलिखित प्रतिपरसे उपलब्ध होता है (रिपोर्ट १ वीर सं० २४४६, पृ० १०४-१०६)।

३ पं० टोडरमल्लजीने लिखा है—

"केशववर्णी भव्य विचार कर्णाटक-टीका-अनुसार।
संस्कृत टीका कीनी एहु जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु॥"

४ अनेकान्त वर्ष ४ कि० १ पृ० ११३-१२०।

मौलिक बातोंमें कोई खास भेद नहीं है, उल्लेखनीय भेद केवल इतना ही है कि पद्यप्रशस्तिमें ग्रन्थकारने अपना नाम नेमिचन्द्र नहीं दिया, जब कि गद्य-पद्यात्मक प्रशस्तिमें वह स्पष्टरूपसे पाया जाता है, और उसका कारण इतना ही है कि पद्यप्रशस्ति उत्तम-पुरुपमें लिखी गई है। ग्रन्थकी संधियों—"इत्याचार्य-नेमिचन्द्र-विरचितायां गोम्मटसारापरनाम - पंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकायां" इत्यादिमें—जीवतत्त्वप्रदीपिका टीकाके कर्तृत्वरूपमें नेमिचन्द्रका नाम स्पष्ट उल्लिखित है और उससे गोम्मटसारके कर्ताका आशय किसी तरह भी नहीं लिया जा सकता। इसी तरह संस्कृत-टीकामें जिस कर्नाटकवृत्तिका अनुसरण है उसे स्पष्टरूपमें केशववर्णीकी घोषित किया गया है, चामुण्डरायकी वृत्तिका उसमें कोई उल्लेख नहीं है और न उसका अनुसरण सिद्ध करनेके लिये कोई प्रमाण ही उपलब्ध है। चामुण्डरायवृत्तिका कहीं कोई अस्तित्व मालूम नहीं होता और इसलिये यह सिद्ध करनेकी कोई संभावना नहीं कि संस्कृत-जीवतत्त्वप्रदीपिका चामुण्रायकी टीकाका अनुसरण करती है। गो० कर्मकाण्डकी ६७२वीं गाथामें चामुण्डराय (गोम्मटराय) के द्वारा जिस 'देशी'के लिखे जानेका उल्लेख है उसे 'कर्नाटकवृति' समझा जाता है—अर्थात् वह वस्तुतः गोम्मटसारपर कर्णाटकवृत्ति लिखी गई है इसका कोई निश्चय नहीं है।'

सचमुचमें चामुण्रायकी कर्णाटकवृत्ति अभी तक एक पहेली ही बनी हुई है, कर्मकाण्डकी उक्त गाथा[1] में प्रयुक्त हुए 'देसी' पद परसे की जानेवाली कल्पनाके सिवाय उसका अन्यत्र कहीं कोई पता नहीं चलता। और उक्त गाथाकी शब्द-रचना बहुत कुछ अस्पष्ट है—उसमें प्रयुक्त 'जा' पदका संबंध किसी दूसरे पदके साथ व्यक्त नहीं होता, उत्तरार्धमें 'राओ' पद भी खटकता हुआ है, उसकी जगह कोई क्रियापद होना चाहिये। और जिस 'वीरमत्तंडी' पदका उसमें उल्लेख है वह चामुण्डरायकी 'वीरमार्तण्ड' नामकी उपाधिकी दृष्टिसे उनका एक उपनाम है, न कि टीकाका नाम; जैसा कि प्रो० शरच्चन्द्र घोशालने समझ लिया है,[2] और जो नाम गोम्मटसारकी टीकाके लिये उपयुक्त भी मालूम नहीं होता। मेरी रायमें 'जा' के स्थानपर 'जं' पाठ होना चाहियं, जो कि प्राकृतमें एक अव्यय पद है और उससे 'जेण'(येन) का अर्थ (जिसके द्वारा) लिया जा सकता है और उसका सम्बन्ध 'सो' (वह) पदके साथ ठीक बैठ जाता है। इसी तरह 'राओ' के स्थान पर 'जयउ' क्रियापद होना चाहिये, जिसकी वहाँ आशीर्वादात्मक अर्थकी दृष्टिसे आवश्यकता है—अनुवादकों आदिने 'जयवंत प्रवर्तो' अर्थ दिया भी है, जो कि 'जयउ' पदका संगत अर्थ है। दूसरा कोई क्रियापद गाथामें है भी नहीं, जिससे वाक्यके अर्थकी ठीक संगति घटित की जा सके। इसके सिवाय, 'गोम्मटरायेण' पदमें राय' शब्दकी मौजूदगीसे 'राओ' पदकी ऐसी कोई खास जरूरत भी नहीं रहती, उससे गाथाके तृतीय चरणमें एक मात्राकी वृद्धि होकर छंदोभंग भी हो रहा है। 'जयउ' पदके प्रयोगसे यह दोष भी दूर हो जाता है। और यदि 'राओ' पदको स्पष्टताकी दृष्टिसे रखना ही हो तो, 'जयउ' पदको स्थिर रखते हुए, उसे 'कालं' पदके स्थानपर रखना चाहिये' क्योंकि तब 'कालं' पदके विना ही 'चिरं' पदसे उसका काम चल जाता है, इस तरह उक्त गाथाका शुद्धरूप निम्न-प्रकार ठहरता है :—

---

१ "गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी।
सो राओ चिरं कालं णामेण य वीरमत्तंडी ॥ ६७२ ॥"

२ प्रो० शरचन्द्र घोशाल एम. ए. कलकत्ताने, 'द्रव्यसंग्रह'के अँग्रेजी संस्करणकी अपनी प्रस्तावनामें, गोम्मटसारकी उक्त गाथापरसे कनडी टीकाका नाम 'वीरमार्तण्डी' प्रकट किया है और जिसपर मैंने जनवरी सन् १९१८ में, अपनी समालोचना (जैनहितैषी भाग १३ अङ्क १२) के द्वारा आपत्ति की थी।

गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण जं कया देसी ।
सो जयउ चिरं कालं (राओ) णामेण य वीरमत्तंडी ॥

गाथाके इस संशोधित रूपपरसे उसका अर्थ निम्न प्रकार होता है :—

'गोम्मट-सूत्रके लिखे जानेके अवसरपर—गोम्मटसार शास्त्रकी पहली प्रति तैयार किये जानेके समय—जिस गोम्मटरायके द्वारा देशीकी रचना की गई है—देशकी भाषा कनडीमें उसकी छायाका निर्माण किया गया है—वह 'वीरमार्तण्डी' नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त राजा चिरकाल तक जयवन्त हो।'

यहाँ 'देसी' का अर्थ 'देशकी कनडी भाषामें छायानुवादरूपसे प्रस्तुत की गई कृति' का ही संगत बैठता है न कि किसी वृत्ति अथवा टीकाका; क्योंकि ग्रंथकी तैयारीके बाद उसकी पहली साफ कापीके अवसरपर, जिसका ग्रंथकार स्वयं अपने ग्रंथके अन्तमें उल्लेख कर सके, छायानुवाद-जैसी कृतिकी ही कल्पना की जा सकती है, समय-साध्य तथा अधिक परिश्रमकी अपेक्षा रखनेवाली टीका-जैसी वस्तुकी नहीं। यही वजह है कि वृत्तिरूपमें उस देशीका अन्यत्र कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता—वह संस्कृत-छायाकी तरह कन्नड-छायारूपमें ही उस वक्तकी कर्नाटक-देशीय कुछ प्रतियोंमें रही जान पड़ती है।

अब मैं दूसरी दो टीकाओंके सम्बन्धमें इतना और बतला देना चाहता हूँ कि अभयचन्द्रकी 'मन्दप्रबोधिका' टीकाका उल्लेख चूँकि केशववर्णीकी कन्नड-टीकामें पाया जाता है इससे वह ई० सन १३५६ से पहलेकी बनी हुई है इतना तो सुनिश्चित है; परन्तु कितने पहलेकी ? इसके जाननेका इस समय एक ही साधन उपलब्ध है और वह है मंद-प्रबोधिकामें एक 'बालचन्द्र पण्डितदेव' का उल्लेख[1]। डा० उपाध्येने, अपने उक्त लेखमें इनकी तुलना उन 'बालेन्दु' पंडितसे की है जिनका उल्लेख श्रवणबेल्गोलके ई० सन १३१३ के शिलालेख नं० ६५ में हुआ है[2] और जिनकी प्रशंसा अभयचन्द्रकी प्रशंसाके साथ बेलूर के शिलालेखों[3] नं० १३१–१३३ में की गई है और जिनपरसे बालचंद्रके स्वर्गवासका समय ई० सन् १२७४ तथा अभयचन्द्रके स्वर्गवासका समय ई० सन् १२७६ उपलब्ध होता है। और इस तरह 'मन्दप्रबोधिका' का समय ई० सन्की १३वीं शताब्दीका तीसरा चरण स्थिर किया जा सकता है। शेष रही पंडित टोडरमल्लजीकी 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' टीका, उसका समय सुनिश्चित है ही—वह माघ सुदी पञ्चमी सं० १८१८ को लब्धिसार-क्षपणासारकी टीकाकी समाप्तिसे कुछ पहले ही बनकर पूर्ण हुई है। इसी हिन्दी टीकाको, जो खूब परिश्रमके साथ लिखी गई है, गोम्मटसार ग्रंथके प्रचारका सबसे अधिक श्रेय प्राप्त है।

इन चारों टीकाओंके अतिरिक्त और भी अनेक टीका-टिप्पणादिक इस ग्रंथराज पर पिछली शताब्दियोंमें रचे गये होंगे; परन्तु वे इस समय अपनेको उपलब्ध नहीं हैं और इसलिये उनके विषयमें यहाँ कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

४१. लब्धिसार—यह लब्धिसार ग्रंथ भी उन्हीं श्रीनेमिचन्द्राचार्यकी कृति है जो कि गोम्मटसारके कर्ता हैं और इसे एक प्रकारसे गोम्मटसारका परिशिष्ट समझा जाता है। गोम्मटसारके दोनों काण्डोंमें क्रमशः जीव और कर्मका वर्णन है, तब इसमें बतलाया गया है कि कर्मोंको काटकर जीव कैसे मुक्तिको प्राप्त कर सकता अथवा अपने शुद्धरूपमें स्थित होसकता है। इसका प्रधान आधार कसायपाहुड और उसकी धवला टीका है। इसमें

१ जीवकाण्ड, कलकत्ता संस्करण, पृ० १५० ।
२ एपिग्रेफिया कर्णाटिका जिल्द नं० २ ।
३ एपिग्रेफिया कर्णाटिका जिल्द नं० ५ ।

१ दर्शनलब्धि, चारित्रलब्धि और ३ क्षायिकचारित्र नामके तीन अधिकार हैं। प्रथम अधिकारमें पाँच लब्धियोंके स्वरूपादिका वर्णन है, जिनके नाम हैं—१ क्षयोपशम २ विशुद्धि, ३ देशना, ४ प्रायोग्य और ५ करण। इनमेंसे प्रथम चार लब्धियां सामान्य हैं, जो भव्य और अभव्य दोनों ही प्रकारके जीवोंके होती हैं। पाँचवीं करणलब्धि सम्यग्दर्शन और सम्यक्चरित्रकी योग्यता रखने वाले भव्यजीवोंके ही होती है और उसके तीन भेद हैं—१ अधःकरण, २ अपूर्वकरण ३ अनिवृत्तिकरण। दूसरे अधिकारमें चरित्र-लब्धिका स्वरूप और चारित्रके भेदों-उपभेदों आदिका संक्षेपमें वर्णन है। साथ ही उपशमश्रेणी चढ़नेका विधान है। तीसरे अधिकारमें चारित्रमोहकी क्षपणाका संक्षिप्त विधान है, जिसका अन्तिम परिणाम मुक्ति है। इस प्रकार यह ग्रन्थ संक्षेपमें आत्मविकासकी कुंजी अथवा उस की साधन-सूचीको लिये हुए है। रायचन्द्र-जैनशास्त्रमालामें मुद्रित प्रतिके अनुसार इसकी गाथासंख्या ६४९ है। इसपर भी दूसरे नेमिचंद्राचार्यकी संस्कृत टीका और पं० टोडरमल्ल जीकी हिन्दी टीका उपलब्ध है। पण्डित टोडरमल्लजीने इसके दो अधिकारोंका व्याख्यान तो संस्कृत टीकाके अनुसार किया है और तीसरे 'क्षपणा' अधिकारका व्याख्यान उस संस्कृत गद्यात्मक क्षपणासारके अनुसार किया है जो श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्यदेवकी कृति है। और इसीसे उन्होंने अपनी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाको लब्धिसार-क्षपणासार-सहित गोम्मटसारकी टीका व्यक्त किया है।

४२. त्रिलोकसार—यह त्रिलोकसार ग्रन्थ भी उक्त नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती-की कृति है। इसमें ऊर्ध्व, मध्य, अध: ऐसे तीनों लोकोंके आकार-प्रकारादिका विस्तारके साथ वर्णन है। इसका आधार 'तिलोयपण्णत्ती' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) और 'लोकविभाग' जैसे प्राचीन ग्रन्थ जान पड़ते हैं। इसकी गाथासंख्या १०१८ है, जिसमें कुछ गाथाएँ माधवचन्द्र त्रैविद्यके द्वारा भी रची गई हैं, जो कि ग्रन्थकारके प्रधान शिष्योंमें थे और जिन्होंने इस ग्रन्थपर संस्कृत टीका भी लिखी है। वे गाथाएं नेमिचन्द्राचार्यको सम्मत थीं अथवा उनके अभिप्रायानुसार लिखी गई हैं, ऐसा टीकाकी प्रशस्तिमें व्यक्त किया गया है। गोम्मटसार ग्रन्थमें भी कुछ गाथाएं आपकी बनाई हुई शामिल हैं, जिनकी सूचना टीकाओं-के प्रस्तावना-वाक्योंसे होती है। गोम्मटसारकी तरह इस ग्रन्थका निर्माण भी प्रधानत: चामुण्डरायको लक्ष्य करके—उनके प्रतिबोधनार्थ हुआ है और इस बातको माधवचन्द्रजीने अपनी टीकाके प्रारम्भमें व्यक्त किया है। अस्तु; यह ग्रन्थ उक्त संस्कृत टीका-सहित माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो चुका है। इसपर भी पं० टोडरमल्लजीकी विस्तृत हिन्दी टीका है, जिसमें गणितके विषयको विशेष रूपसे खोला गया है।

४३. द्रव्यसंग्रह—यह संक्षेपमें जीव और अजीव द्रव्योंके कथनको लिये हुए एक बड़ा ही सुन्दर सरल एवं रोचक ग्रन्थ है। इसमें षट्द्रव्यों, पंचास्तिकायों, सप्ततत्त्वों और नवपदार्थोंका सूत्ररूपसे वर्णन है। साथ ही, निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्गका भी सूत्रतः निरूपण है। और इस लिये यह एक पद्यात्मक सूत्र ग्रन्थ है, जिसकी पद्य संख्या कुल ५८ है। ग्रन्थके अन्तिम पद्यमें ग्रन्थकारने अपना नाम 'नेमिचन्द्रमुनि' दिया है—अपना तथा अपने गुरु आदिका और कोई परिचय नहीं दिया। इन नेमिचन्द्रमुनिको आम तौर पर गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती समझा जाता है; परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी मालूम नहीं होती और उसके निम्नकरण हैं:—

प्रथम तो इन ग्रन्थकार महोदयका 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' के रूपमें कोई प्राचीन उल्लेख नहीं मिलता। संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेवने भी इन्हें 'सिद्धान्तिचक्रवर्ती' नहीं लिखा, किन्तु 'सिद्धान्तिदेव' प्रकट किया है। सिद्धान्ती होना और बात है और सिद्धान्तचक्रवर्ती होना दूसरी बात है। सिद्धान्तचक्रवर्तीका पद सिद्धान्ती, सैद्धान्तिक अथवा सिद्धान्तिदेवके

पदसे बड़ा है।

दूसरे, गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्राचार्यकी यह खास पद्धति रही है कि वे अपने ग्रन्थोंमें अपने गुरु अथवा गुरुवोंका नामोल्लेख जरूर करते आए हैं; चुनाँचे लब्धिसार और त्रिलोकसारके अन्तमें भी उन्होंने अपने नामके साथ गुरु-नामका उल्लेख किया है; परन्तु इस ग्रन्थमें वैसा कुछ नहीं है[1]। अतः इसे भी उन्हींकी कृति कहनेमें संकोच होता है।

तीसरे, टीकाकार ब्रह्मदेवने, इस ग्रन्थके रचे जानेका सम्बन्ध व्यक्त करते हुए अपनी टीकाके प्रस्तावना-वाक्यमें लिखा है कि—'यह द्रव्यसंग्रह नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवके द्वारा, भाण्डागारादि अनेक नियोगोंके अधिकारी 'सोम' नामके राजश्रेष्ठिके निमित्त, 'आश्रम' नाम नगरके मुनिसुव्रत-चैत्यालयमें रचा गया है, और वह नगर उस समय धाराधीश महाराज भोजदेव कलिकालचक्रवर्ती-सम्बन्धी श्रीपाल मण्डलेश्वरके अधिकारमें था। साथ ही, यह भी सूचित किया है कि 'पहले २६ गाथा-प्रमाण लघुद्रव्यसंग्रहकी रचना की गई थी, बादको विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थ उसे बढ़ाकर यह बृहद्द्रव्यसंग्रह बनाया गया है[2]।' यह सब कथन ऐसे ढंगसे और ऐसी तफसीलके साथ लिखा गया है कि इसे पढ़ते समय यह ख़याल आये बिना नहीं रहता कि या तो ब्रह्मदेव उस समय मौजूद थे जब कि द्रव्यसंग्रह बनकर तय्यार हुआ, अथवा उन्हें दूसरे किसी खास विश्वस्त मार्गसे इन सब बातोंका ज्ञान प्राप्त हुआ है, और इस लिये इसे सहसा असत्य या अप्रमाण नहीं कहा जा सकता। और जब तक इस कथनको असत्य सिद्ध न कर दिया जाय तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रन्थ उन्हीं नेमिचन्द्रके द्वारा रचा गया है जो कि चामुण्डरायके समकालीन थे; क्योंकि उनका समय ईसाकी १०वीं शताब्दी है, जब कि भोजकालीन नेमिचन्द्रका समय ईसाकी ११वीं शताब्दी बैठता है।

चौथे, द्रव्यसंग्रहके कर्ताने भावास्रवके भेदोंमें 'प्रमाद' को भी गिनाया है और अविरतके पाँच तथा कषायके चार भेद ग्रहण किये हैं। परन्तु गोम्मटसारके कर्त्ताने 'प्रमाद' को भावास्रवके भेदोंमें नहीं माना और अविरतके (दूसरे ही प्रकारके) बारह तथा कषायके २५ भेद स्वीकार किये हैं; जैसा कि दोनों ग्रंथोंके निम्नवाक्योंसे प्रकट है:—

मिच्छत्ताऽविरदि-पमादजोग-कोहादओऽथ विण्णेया।
पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥ —द्रव्यसंग्रह

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय-जोगा य आसवा होंति।
पण बारस पणवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया ॥७८६॥ —गो० कर्म्मकाण्ड

---

१ "वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण।
दंसणचरित्तलद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण" ॥ ६४८ ॥—लब्धिसार
"इदि णेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण।
रइयो तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया" ॥ १०१८ ॥—त्रिलोकसार
"दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥ ५८ ॥—द्रव्यसंग्रह

२ "अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपतिराजाभोजदेवाभिधान-कलिकालचक्रवर्तिसम्बन्धिनः श्रीपाल-मण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याऽऽश्रमनामनगरे श्रीमुनिसुव्रततीर्थकरचैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्न-सुखामृतरसास्वादविपरीतनारकादिदुःखभयभीतस्य परमात्मभावनोत्पन्नसुखसुधारसपिपासितस्य भेदाऽभेद-रत्नत्रयभावनाप्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेक-नियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्तं श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद्विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य बृहद्द्रव्यसंग्रहस्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन वृत्तिः प्रारभ्यते।"

एक ही विषयपर, दोनों ग्रंथोंके इन विभिन्न कथनोंसे ग्रंथकर्ताओंकी विभिन्नताका बहुत कुछ बोध होता है। और इस लिये उक्त सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए यह कहनेमें कोई बाधा मालूम नहीं होती कि द्रव्यसंग्रहके कर्ता नेमिचन्द्र गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीसे भिन्न हैं। इसी बातको मैंने आजसे कोई २९ वर्ष पहले द्रव्यसंग्रहकी अपनी उस विस्तृत समालोचनामें व्यक्त किया था, जो आरासे बा० देवेन्द्रकुमार द्वारा प्रकाशित द्रव्यसंग्रहके अंग्रेजी संस्करणपर की गई थी और जैन हितैषी भाग १३ के १२वें अंकमें प्रकट हुई थी। उसके विरोधमें किसीका भी कोई लेख अभी तक मेरे देखनेमें नहीं आया। प्रत्युत इसके, पं० नाथूरामजी प्रेमीने, त्रिलोकसारकी अपनी (ग्रंथकर्तृपरिचयात्मक) प्रस्तावनामें, उसे स्वीकार किया है। अस्तु; नेमिचन्द्र नामके अनेक विद्वान् आचार्य जैनसमाजमें होगए हैं, जिनमेंसे एक ईसाकी प्रायः ११वीं शताब्दीमें भी हुए हैं जो वसुनन्दि-सैद्धान्तिकके गुरु थे, जिन्हें वसुनन्दि-श्रावकाचारमें 'जिनागमरूप समुद्रकी वेला-तरंगोंसे धूयमान और संपूर्णजगतमें विख्यात' लिखा है। आश्चर्य तथा असंभव नहीं जो ये ही नेमिचन्द्र द्रव्यसंग्रहके कर्ता हों; परन्तु यह बात अभी निश्चितरूपसे नहीं कही जा सकती—उसके लिये और भी कुछ साधन-सामग्रीकी जरूरत है।

ग्रंथपर ब्रह्मदेवकी उक्त टीका आध्यात्मिक दृष्टिसे निश्चय और व्यवहारका पृथक्करण करते हुए कुछ विस्तारके साथ लिखी गई है। इस टीकाकी एक हस्तलिखित प्रति जेसलमेरके भण्डारमें संवत् १४८५ अर्थात् ई० सन् १४२८ की छिखी हुई उपलब्ध है और इससे यह टीका ई० सन् १४२८ से पहलेकी बनी हुई है। चूंकि टीकामें धाराधीश भोजका उल्लेख है, जिसका समय ई० सन् १०१८ से १०६० है अत: यह टीका ईसाकी ११वीं शताब्दी से पहलेकी नहीं है। इसका समय अनुमानतः १२वीं-१३वीं शताब्दी जान पड़ता है।

४४. **कर्मप्रकृति**—यह वही १६० गाथाओंका एक संग्रह ग्रंथ है जो प्रायः गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्राचार्य (सिद्धान्तचक्रवर्ती) की कृति समझा जाता है; परन्तु वस्तुतः उनके द्वारा संकलित मालूम नहीं होता—उन्हींके नामके अथवा उन्हींके नामसे किसी दूसरे विद्वानके द्वारा संकलित या संगृहीत जान पड़ता है—और जिसका विशेष ऊहापोहके साथ पूर्ण परिचय गोम्मटसार-विषयक प्रकरणमें 'प्रकृति समुत्कीर्तन और कर्मप्रकृति' उपशीर्षकके नीचे दिया जा चुका है। वहींपर इस ग्रंथपर उपलब्ध होनेवाली टीकाओं तथा टिप्पणादिका भी उल्लेख किया गया है, जिनपरसे ग्रंथका दूसरा नाम 'कर्मकाण्ड' उपलब्ध होता है और गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी दृष्टिसे जिसे 'लघुकर्मकाण्ड' कहना चाहिये। यहाँपर मैं सिर्फ इतना ही बतलाना चाहता हूँ कि इस ग्रंथका अधिकांश शरीर, आदि-अन्तभागों-सहित गोम्मटसारकी गाथाओंसे निर्मित हुआ है—गोम्मटसारकी १०२ गाथाएं इसमें ज्यों-की-त्यों उद्धृत हैं और २८ गाथाएं उसीके गद्य सूत्रोंपरसे निर्मित जान पड़ती हैं। शेष ३० गाथाओंमें १६ गाथाएं तो देवसेनादिके भावसंग्रहादि ग्रंथोंसे ली गई मालूम होती हैं और १४ ऐसी हैं जिनके ठीक स्थानका अभी तक पता नहीं चला—वे धवलादि ग्रंथोंके पट्संहननोंके लक्षण-जैसे वाक्योंपरसे संग्रहकारद्वारा खुदकी निर्मित भी हो सकती हैं। इन सब गाथाओंका विशेष परिचय गोम्मटसार-प्रकरणके उक्त उपशीर्षकके नीचे (पृष्ठ ७४ से ८८ तक) दिया है, वहींसे उसे जानना चाहिये।

४५. **पंचसंग्रह**—यह गोम्मटसार-जैसे विषयोंका एक अच्छा अप्रकाशित संग्रह ग्रंथ है। गोम्मटसारका भी दूसरा नाम 'पंचसंग्रह' है; परन्तु इसमें सारे ग्रंथको जिस प्रकार दो काण्डों (जीव, कर्म) में विभक्त किया है और फिर प्रत्येक काण्डके अलग अलग अधिकार दिये हैं उस प्रकारका विभाजन इस ग्रंथमें नहीं है। इसमें समूचे ग्रंथको पांच अधिकारों

में विभक्त किया है और वे अधिकार हैं १ जीवस्वरूप, २ प्रकृति समुत्कीर्तन, ३ कर्मस्तव, ४ शतक और ५ सप्ततिका। ग्रंथकी गाथासंख्या १५०० के लगभग है—किसी किसी प्रतिमें कुछ गाथाएं कम-बढ़ती भी पाई जाती हैं, इससे अभी निश्चित गाथासंख्याका निर्देश नहीं किया जा सकता। गाथाओंके अतिरिक्त कहीं कहीं कुछ गद्य-भाग भी पाया जाता है। ग्रंथ-की जो दो चार प्रतियाँ देखनेमें आई उनमेंसे किसीपरसे भी ग्रंथकर्ताका नाम उपलब्ध नहीं होता और न रचनाकाल ही पाया जाता है। और इससे यह समस्या अभी तक खड़ी ही चली जाती है कि इस ग्रंथके कर्ता कौन आचार्य हैं और कब यह ग्रंथ बना है ? ग्रंथपर सुमतिकीर्तिकी संस्कृत टीका और किसीका संस्कृतटिप्पण भी उपलब्ध है; परन्तु उनपरसे भी इस विषयमें कोई सहायता नहीं मिलती।

पं० परमानन्दजी शास्त्रीने इस ग्रंथका प्रथम परिचय अनेकान्तके तृतीय वर्षकी तीसरी किरणमें 'अतिप्राचीन प्राकृत पंचसंग्रह' नामसे प्रकाशित कराया है। यह परिचय जिस प्रतिके आधारपर लिखा गया है वह बम्बईके ऐलकपन्नालाल-सरस्वती-भवनकी ६२ पत्रात्मक प्रति है[1], जो माघ वदी ३ गुरुवार संवत् १५२७ की टंवकनगरकी लिखी हुई है। इस परिचयमें चौथे-पाँचवें अधिकारकी निम्न दो गाथाओंको उद्धृत करके बतलाया है कि "ग्रंथकी अधिकांश रचना दृष्टिवादनामक १२वें अंगसे सार लेकर और उसकी कुछ गाथाओंको भी उद्धृत करके की गई है।" और इस तरह ग्रंथकी अति-प्राचीनताको घोषित किया है :—

> सुणह इह जीव-गुणसन्निहीसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
> वोच्छं कदिवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवादाओ ॥ ४–३ ॥
> सिद्धपदेहिं महत्थं बंधोदय-सत्त-पयडि-ठाणाणि ।
> वोच्छं पुण संखेवेण णिस्सदं दिट्ठिवादाओ ॥ ५-२ ॥

साथ ही, कुछ गाथाओंकी तुलना करते हुए यह भी बतलाया है कि वीरसेनाचार्यकी धवला टीकामें जो सैकड़ों गाथाएँ 'उक्तं च' आदि रूपसे उद्धृत पाई जाती हैं। वे तो प्रायः इसी (ग्रन्थ) परसे उद्धृत जान पड़ती हैं। उनमेंसे जिन १०० गाथाओंको प्रो० हीरालालजीने, धवलाके सत्प्ररूपणा-विपयक प्रथम अंशकी प्रस्तावनामें, धवलापरसे गोम्मटसारमें संग्रह किया जाना लिखा है वे गाथाएँ गोम्मटसारमें तो कुछ पाठभेदके साथ भी उपलब्ध होती हैं परन्तु पंचसंग्रहमें प्रायः ज्योंकी त्यों पाई जाती हैं।' और इस परसे फिर यह फलित किया है कि 'आचार्य वीरसेनके सामने 'पंचसंग्रह' जरूर था, इसीसे उन्होंने उसकी उक्त गाथाओंको अपने ग्रन्थ (धवला) में उद्धृत किया है। आचार्य वीर-सेनने अपनी 'धवला टीका शक संवत् ७३८ (वि० सं० ८७३) में पूर्ण की है। अतः यह निश्चित है कि पंचसंग्रह इससे पहलेका बना हुआ है।" परन्तु यह फलितार्थ अपने औचित्यके लिये कुछ अधिक प्रमाणकी आवश्यकता रखता है—कमसे कम जब तक धवलामें एक जगह भी किसी गाथाके उद्धरणके साथ पंचसंग्रहका स्पष्ट नामोल्लेख न बतला दिया जाय तब तक मात्र गाथाओंकी समानतापरसे यह नहीं कहा जा सकता कि धवलामें वे गाथाएँ इसी पंचसंग्रह ग्रन्थपरसे उद्धृत की गई हैं, जो खुद भी एक संग्रह ग्रन्थ है। हो सकता है कि धवला परसे ही वे गाथाएँ पंचसंग्रहमें उसी प्रकार संग्रह की गई हों जिस प्रकार कि गोम्मटसारमें बहुत-सी गाथाएँ संग्रहीत पाई जाती हैं। साथ ही, यह भी हो सकता है कि पंचसंग्रहपरसे ही धवलामें उनको उद्धृत किया गया हो। इसके सिवाय, यह

---

१ ग्रन्थकी दूसरी प्रतियां जयपुर, आमेर, नागौर आदिके शास्त्रभण्डारोंमें पाई जाती हैं।

भी संभव है कि धवलामें वे किसी दूसरे ही प्राचीन ग्रन्थपरसे उद्धृत की गई हों और उसी परसे पंचसंग्रहकारने भी उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक अपनाया हो। और इस तरह विशेष प्रमाणके अभावमें पंचसंग्रह धवलासे पूर्ववर्ती तथा पश्चाद्वर्ती दोनों ही हो सकता है।

इसी तरह पंचसंग्रहमें "पुट्ठं सुणेइ सद्दं अपुट्ठं पुण पस्सदे रूवं, फासं रसं च गंधं बद्धं पुट्ठं वियाणादि" इस गाथाको देखकर और तत्त्वार्थसूत्र १, १९की 'सर्वार्थसिद्धि' वृत्तिमें उसे उद्धृत पाकर यह जो नतीजा निकाला गया है कि "विक्रमकी छठी शताब्दीके पूर्वार्धके विद्वान् आचार्य देवनन्दी (पूज्यपाद) ने अपनी सर्वार्थसिद्धिमें आगमसे चक्षु-इन्द्रियको अप्राप्यकारी सिद्ध करते हुए पंचसंग्रहकी यह गाथा उद्धृत की है, जिससे स्पष्ट है कि पंचसंग्रह पूज्यपादसे पहलेका बना हुआ है" वह भी अपने औचित्यके लिये विशेष प्रमाणकी आवश्यकता रखता है, क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें उक्त गाथाको उद्धृत करते हुए 'पंचसंग्रह'का कोई नामोल्लेख नहीं किया गया है, बल्कि स्पष्ट रूपमें "आगमतस्तावत्" इस वाक्य के साथ उसे उद्धृत किया है और इससे बहुत संभव है कि मौलिक कृतिरूपमें रचे गये किसी स्वतंत्र आगम ग्रन्थकी ही उक्त गाथा हो और वहींपरसे उसे सर्वार्थसिद्धिमें उद्धृत किया गया हो, न कि किसी संग्रहग्रन्थपरसे। साथ ही, यह भी संभव है कि सर्वार्थसिद्धिपरसे ही उक्त गाथाको पंचसंग्रहमें अपनाया गया हो अथवा उस आगम ग्रन्थ परसे सीधा अपनाया गया हो जिसपरसे वह सर्वार्थसिद्धिमें उद्धृत हुई है। और इसलिये सर्वार्थसिद्धिमें उक्त गाथाके उद्धृत होने मात्रसे यह लाजिमी नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि 'पंचसंग्रह' सर्वार्थसिद्धिसे पहलेका बना हुआ है। वह नतीजा तभी निकाला जा सकता है जब पहले यह साबित (सिद्ध) हो जाय कि उक्त गाथा पंचसंग्रहकारकी ही मौलिक कृति है—दूसरी गाथाओंकी तरह अन्यत्रसे ग्रंथमें संगृहीत नहीं है।

ग्रंथके प्रथम अधिकारमें दर्शनमोहकी उपशमना और क्षपणा-विषयक तीन गाथाएँ ऐसी संगृहीत हैं जो श्रीगुणधराचार्यके कषायपाहुड (कषायप्राभृत) में नं० ९१, १०६, १०९ पर पाई जाती हैं, उन्हें तुलनाके साथ देनेके अनन्तर परिचयलेखमें लिखा है कि कषायप्राभृतका रचनाकाल यद्यपि निर्णीत नहीं है तो भी इतना तो निश्चित है कि इसकी रचना कुन्दकुन्दाचार्यसे पहले हुई है। साथ ही, यह भी निश्चित है कि गुणधराचार्य पूर्ववित् थे और उनके इस ग्रंथकी रचना सीधी ज्ञानप्रवादपूर्वके उक्त अंशपरसे स्वतंत्र हुई है—किसी दूसरे आधारको लेकर नहीं हुई। अतः यह कहना होगा कि उक्त तीनों गाथाएं कषायप्राभृतकी ही हैं और उसीपरसे पंचसंग्रहमें उठाकर रक्खी गई हैं।" इससे पंचसंग्रहकी पूर्वसीमाका निर्धारण होता है अर्थात् वह कषायप्राभृतसे, जिसका समय विक्रमकी १ली शताब्दीसे बादका मालूम नहीं होता, पूर्वकी रचना नहीं है, बादकी ही है; परन्तु कितने बादकी, यह अभी ठीक नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना जरूर कहा जा सकता है कि पंच-संग्रहकी रचना विक्रम संवत् १०७३ से बादकी नहीं है—पहलेकी ही है; क्योंकि इस संवत में अमितगति आचार्यने अपना संस्कृतका पंचसंग्रह बनाकर समाप्त किया है[1] जो प्रायः इसी प्राकृत पंचसंग्रहके आधारपर—इसे सामने रखकर—अधिकांशतः अनुवादरूपमें प्रस्तुत किया गया है। और इसलिये इस संवत्को पंचसंग्रहके निर्माण-कालकी उत्तरवर्ती सीमा कहना चाहिये, अर्थात् इस संवत्के बाद उसका निर्माणसंभव नहीं—वह इससे पहले ही हो चुका है। पंचसंग्रहके निर्माणके बाद उसके प्रचार, प्रसिद्धि, अमितगति तक पहुँचने और उसे संस्कृतरूप देनेकी प्रेरणा मिलने आदिके लिये भी कुछ समय चाहिये ही, वह समय यदि कमसे कम ५०-६० वर्षका भी मान लिया जाय, जो अधिक नहीं है, तो यह

---

१ त्रिसप्तत्याधिकेऽब्दानां सहस्रे शकविद्विषः।
मसूतिकापुरे जातमिदं शास्त्रं मनोरमम् ॥

कहना भी कुछ अनुचित नहीं होगा कि प्रस्तुत ग्रंथ गोम्मटसारसे, जो विक्रम संवत् १०३५ के बाद बना है, पहलेकी रचना है। और इसलिये यह ग्रंथ विक्रमकी ११वीं शताब्दीसे पूर्व की ही कृति है। कितने पूर्वकी ? यह विशेष अनुसंधानसे सम्बन्ध रखता है और इससे निश्चितरूपमें उसकी बाबत अभी कुछ नहीं कहा जा सकता, फिर भी इतना तो कह ही सकते हैं कि वह विक्रमकी १ ली और १०वीं शताब्दीके मध्यवर्ती कोई काल होना चाहिये।

अब मैं यहाँ पर इतना और बतला देना चाहता हूँ कि इस ग्रन्थके जो अन्तिम तीन अधिकार कर्मस्तव, शतक और सप्ततिका नामके हैं उन्हीं नामोंके तीन ग्रन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अलग भी पाये जाते हैं, जिनकी गाथासंख्या क्रमशः ५५, १०० तथा १०८, ७५ पाई जाती है। उनमेंसे शतकको बन्ध-विषयक कथनकी प्रधानताके कारण 'बन्धशतक' भी कहते हैं और उसका कर्ता कर्मप्रकृतिके रचयिता शिवशर्मसूरिको बतलाया जाता है। 'कर्मस्तव' को द्वितीय प्राचीन कर्मग्रंथ कहा जाता है और उसका अधिक स्पष्ट नाम 'बन्धोदयसत्वयुक्तस्तव' है, उसके कर्ताका कोई पता नहीं। सप्ततिकाको छठा कर्मग्रंथ कहते हैं और उसे चन्द्रर्षि आचार्यकी कृति बतलाया जाता है। श्वेताम्बरोंके इन ग्रंथोंकी पंचसंग्रहके साथ तुलना करते हुए, पं० परमानन्दजी शास्त्रीने 'श्वेताम्बर कर्मसाहित्य और दिगम्बर पंचसंग्रह' नामका एक लेख लिखा है, जो तृतीय वर्षके अनेकान्तकी छठी किरणमें प्रकाशित हुआ है। उसमें कुछ प्रमाणों तथा ऊहापोहके साथ यह प्रकट किया गया है कि 'बन्धशतक' शिवशर्मकी, जिनका समय विक्रमकी ५वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है, कृति मालूम नहीं होता और न सप्ततिका चन्द्रर्षिकी कृति जान पड़ती है। साथ ही तीनों ग्रन्थोंमें पाई जानेवाली कुछ असंगतता, विशृंखलता तथा त्रुटियोंका दिग्दर्शन कराते हुए गाथानम्बरोंके निर्देश सहित यह भी बतलाया है कि पंचसंग्रहके शतक प्रकरणकी ३०० गाथाओंमेंसे ९४ गाथाएँ बन्धशतकमें, कर्मस्तवकी ७८ गाथाओंमेंसे ५३ और दो गाथाएँ प्रकृतिसमुत्कीर्तन प्रकरणकी इस तरह ५५ गाथाएं कर्मस्तव ग्रन्थमें और सप्ततिका प्रकरणकी कईसौ गाथाओंमेंसे ५१ गाथाएं सप्ततिका ग्रन्थमें प्रायः ज्यों-की-त्यों अथवा थोड़ेसे पाठभेद, मान्यताभेद या शब्दपरिवर्तनके साथ पाई जाती हैं, जिनके कुछ नमूने भी दिये गये हैं और उन सबका पंचसंग्रहपरसे उठाकर अलग अलग ग्रन्थोंके रूपमें संकलित किया जाना घोषित किया है। शास्त्रीजीका यह सब निर्णय कहाँ तक ठीक है इस सम्बन्धमें मैं अभी कुछ कहनेके लिये तय्यार नहीं हूँ; क्योंकि दिगम्बर पंचसंग्रह और श्वेताम्बर कर्मग्रंथोंके यथेष्ट रूपमें स्वतंत्र अध्ययन एवं गवेषणापूर्ण विचारका मुझे अभी तक कोई अवसर नहीं मिल सका है। अवसर मिलनेपर उस दिशामें प्रयत्न किया जायगा और तब जैसा कुछ विचार स्थिर होगा उसे प्रकट किया जायगा।

हाँ, एक बात यहाँ पर और भी प्रकट कर देने की है और वह यह कि पंचसंग्रहके शतक अधिकारमें जो ३०० गाथाएं हैं उनकी बाबत यह मालूम हुआ है कि उनमें मूल-गाथाएं १०० हैं, बाकी दोसौ २०० भाष्य-गाथाएं हैं। इसी तरह सप्ततिकामें मूलगाथाएं ७० और शेष सब भाष्यगाथाएं हैं। और इससे स्पष्ट है कि पंचसंग्रहका संकलन उस वक्त हुआ है जबकि स्वतंत्र प्रकरणोंके रूपमें शतक और सप्ततिकाकी मूल गाथाएं ही नहीं बल्कि उनपर भाष्यगाथाएं भी बन चुकी थीं; इसीसे पंचसंग्रहकार दोनोंका संग्रह करनेमें समर्थ हो सका है। दोनों मूलप्रकरणोंपर प्राकृतकी चूर्णि भी उपलब्ध है, दोनोंका ही सम्बन्ध दृष्टिवादकी गाथाओं आदिसे बतलाया गया है। और इससे दोनों प्रकरण अधिक प्राचीन हैं। यह भी मालूम होता है कि भाष्यगाथाओंका प्रचार प्रायः दिगम्बर सम्प्रदायमें रहा है—श्वेताम्बर सम्प्रदायकी टीकाओंके साथ वे नहीं पाई जातीं—और उनमेंसे 'सवद-ट्ठिदीणमुक्कस्स' तथा 'सुहपयडी(यडी)ण विसोही' नामकी दो गाथाएं अकलंकदेवके राजवार्तिक (६-३) में 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत भी मिलती हैं, जिससे भाष्यगाथाओंका प्रायः

७ वीं शताब्दीसे पहले ही निर्मित होना जान पड़ता है और इससे भाष्य भी अधिक प्राचीन ठहरता है। अब देखना यह है कि दोनों मूल प्रकरण दिगम्बर हैं या श्वेताम्बर अथवा ऐसे सामान्य स्रोतसे सम्बन्ध रखते हैं जहाँसे दोनों ही सम्प्रदायोंने उन्हें अपनी अपनी रुचि एवं सैद्धान्तिक स्थितिके अनुसार अपनाया है और उनका कर्ता कौन है तथा रचना-काल क्या है ? साथ ही दोनों प्रकरणोंकी भाष्यगाथाएँ तथा चूर्णियाँ कब बनी हैं और किस किसके द्वारा निर्मित हुई हैं ? ये सब बातें गहरी छान-बीन और गंभीर विचारणासे सम्बन्ध रखती हैं, जिनके होने पर सारा रहस्य सामने आ सकेगा।

संक्षेपमें यह ग्रन्थ अपने साहित्यकी दृष्टिसे बहुत प्राचीन और विषयवर्णनादिकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्वपूर्ण है—भले ही इसका वर्तमान 'पंचसंग्रह'के रूपमें संकलन विक्रमकी ११वीं शताब्दीसे पहले कभी क्यों न हुआ हो और किसीके भी द्वारा क्यों न हुआ हो।

४६. ज्ञानसार—यह ग्रंथ ध्यान-विषयक ज्ञानके सारको लिये हुए है, इसमें ध्यान-विषयका सारज्ञान कराया गया है। अथवा ज्ञानप्राप्तिका सार अमुकरूपसे ध्यान-प्रवृत्तिको बतलाया है। और इसीसे इसका ऐसा नाम रक्खा गया मालूम होता है। अन्यथा इसे 'ध्यानसार' कहना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। ध्यानविषयका इसमें कितना ही उपयोगी वर्णन है। इसकी गाथासंख्या ६३ है और उसे ७४ श्लोकपरिमाण बतलाया गया है। इसके कर्ता श्रीपद्मसिंह मुनि हैं, जिन्होंने अपने मनके प्रतिबोधनार्थ और परमात्म-स्वरूपकी भावनाके निमित्त श्रावण शुक्ला नवमी वि० संवत् १०८६ को 'अम्बक' नगरमें इस ग्रन्थकी रचना की है। ग्रन्थकारने अपना तथा अपने गुरु आदिकका कोई परिचय नहीं दिया, और इसलिये उनके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता, यह सब विशेष अनुसन्धानसे सम्बन्ध रखता है। ग्रन्थकी ३६वीं गाथामें बतलाया है कि जिस प्रकार पाषाणमें सुवर्ण और काष्ठमें अग्नि दोनों बिना प्रयोगके दिखाई नहीं पड़ते उसी प्रकार ध्यानके बिना आत्माका दर्शन नहीं होता और इससे ध्यानका माहात्म्य, लक्ष्य एवं फल स्पष्ट जान पड़ता है, जिसे ध्यानमें लेकर ही यह ग्रन्थ लिखा गया है। यह ग्रन्थ मूलरूपसे माणिकचन्द्रग्रंथमालामें प्रकट हो चुका है।

४७. रिष्टसमुच्चय—यह ग्रंथ मृत्युविज्ञानसे सम्बन्ध रखता है। इसमें अनेक पिण्डस्थ, पदस्थ तथा रूपस्थादि चिन्हों-लक्षणों, घटनाओं एवं निमित्तोंके द्वारा मृत्युको पहलेसे जान लेनेकी कलाका निर्देश है। इसके कर्ता श्रीदुर्गदेव हैं जो उन संयमदेव मुनीश्वरके शिष्य थे जिनकी बुद्धि षट्दर्शनोंके अभ्याससे तर्कमय हो गई थी, जो पञ्चाङ्ग तथा शब्दशास्त्रमें कुशल थे, समस्त राजनीतिमें निपुण थे, वादिगजोंके लिये सिंह थे और सिद्धान्तसमुद्रके पारको पहुँचे हुए थे। उन्हींकी आज्ञासे यह ग्रन्थ 'मरणकण्डिका' आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थोंका उपयोग करके तीन दिनमें रचा गया है और (विक्रम) संवत् १०८९ की श्रावण शुक्ला एकादशीको मूल नक्षत्रके समय, श्रीनिवास राजाके राज्य-कालमें कुम्भनगरके शान्तिनाथ मन्दिरमें बनकर समाप्त हुआ है। दुर्गदेवने अपनेको 'देसजई' (देशयति) बतलाया है, और इससे वे अष्टमूलगुण सहित श्रावकीय १२ व्रतोंसे भूषित[1] अथवा क्षुल्लक साधुके पदपर प्रतिष्ठित जान पड़ते हैं। साथ ही, अपने गुरुओंमें संयमसेन और माधवचन्द्रका भी नामोल्लेख किया है; परन्तु उनके विषयमें अधिक कुछ नहीं लिखा। डा० अमृतलाल सवचन्द गोपाणीने अपनी प्रस्तावनामें उन्हें संयमदेवके क्रमशः गुरु तथा दादा गुरु बतलाया है; परन्तु यह बात मूलपरसे स्पष्ट नहीं होती[2]।

१ "मूलगुणट्ठजुत्तो बारहवयभूसिओ हु देसजई"—भावसंग्रहे देवसेनः

२ जयउ जए जियमाणो संजमदेवो मुणीसरो इत्थ।
तह वि हु संजमसेणो माहवचंदो गुरू तह य ॥ २५४ ॥

ग्रन्थकी गाथासंख्या २६१ है और जिस मरणकंडिकाके उपयोगका इसमें स्पष्ट उल्लेख है उसकी अधिकांश गाथाएं इसमें ज्यों-की-त्यों देखी जाती हैं, शेषके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि मरणकण्डिका अधूरी ही उपलब्ध है और इसीसे उसके रचयिताका नाम भी मालूम नहीं होता—वह मरणविषयपर अच्छा प्राचीन एवं विस्तृत ग्रन्थ जान पड़ता है। मरणकंडिकाके अतिरिक्त और भी रिष्टविषयक कुछ ग्रन्थोंके वाक्योंका शब्दशः अथवा अर्थशः संग्रह इसमें होना चाहिये; क्योंकि ग्रन्थकारने 'रइयं बहुसत्थत्थं उवजीवित्ता' इस वाक्यके द्वारा स्वयं उसकी सूचना की है और तभी यह संग्रहग्रन्थ तीन दिनमें तय्यार हो सका है, जो अपने विषयका एक अच्छा उपयोगी संकलन है। यह ग्रन्थ हालमें उक्त डा० गोपाणीके द्वारा सम्पादित होकर सिंघी-जैनग्रन्थमालामें बम्बईसे अंग्रेजी अनुवादादिके साथ प्रकाशित हुआ है। मेरा विचार कई वर्ष पहलेसे इस ग्रन्थको, और भी कुछ प्रकरणों सहित 'मृत्युविज्ञान' के रूपमें हिन्दी अनुवादादिके साथ वीरसेवामन्दिरसे प्रकट करनेका था, चुनाँचे वीरसेवामन्दिर ग्रन्थमालाके प्रथम ग्रन्थ 'समाधितंत्र' में, ग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थोंकी सूची देते हुए, इसके भी नामका उल्लेख किया गया था; परन्तु अभी तक इस कामको हाथमें लेनेका यथेष्ट रूपसे अवसर ही नहीं मिल सका। अस्तु।

यहाँ पर मैं इतना और बतला देना चाहता हूँ कि इस ग्रन्थकारके रचे हुए दो ग्रन्थ और भी हैं—एक 'अर्घकाण्ड' और दूसरा 'मंत्रमहोदधि'। अर्घकाण्ड उपलब्ध है उसकी गाथासंख्या १४९ है और वह वस्तुओंकी मंदी-तेजी जाननेके विज्ञानको लिये हुए एक अच्छा महत्वका ग्रन्थ है। वाक्य-सूचीके समय यह अपनेको उपलब्ध नहीं हुआ था, इसीसे वाक्यसूचीमें शामिल नहीं हो सका। मंत्रमहोदधिका उल्लेख बृहत्टिप्पणिका[1] में "मंत्रमहोदधिः प्रा० दिगंबर श्रीदुर्गदेव कृतः मं० गा० ३६" इस रूपसे मिलता है और इसपरसे उसकी गाथासंख्या ३६ जानी जाती है। यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। इसकी खोज होनेकी जरूरत है।

४८. **वसुनन्दि-श्रावकाचार**—यह वसुनन्दि आचार्यकी कृति-रूप श्रावकाचार-विषयका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें दर्शनादि ११ प्रतिमाओंके क्रमसे आचारादि-विषयका निरूपण किया है। मुद्रित प्रतिके अनुसार इसकी गाथासंख्या ५४८ है और श्लोककी दृष्टिसे इसका परिमाण अन्तकी गाथामें ६५० दिया है। ग्रन्थकी दूसरी गाथामें 'सावयधम्मं परूवेमो' इस प्रतिज्ञाके द्वारा ग्रन्थनाम श्रावकधर्म (श्रावकाचार) सूचित किया है और अन्तकी ५४६ वीं गाथामें 'रइयं भवियाणमुवासयज्झयणं' इस वाक्यके द्वारा उसे 'उपासकाध्ययन' नाम दिया है। आशय दोनोंका एक ही है—चाहे 'उपासकाध्ययन' कहो और चाहे 'श्रावकाचार'।

इस ग्रन्थके अन्तमें वसुनन्दीने अपनी गुरुपरम्पराका जो उल्लेख किया है उससे मालूम होता है कि श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी वंश-परम्परामें श्रीनन्दी नामके एक बहुत ही यशस्वी, गुणी एवं सिद्धातशास्त्रके पारगामी आचार्य हुए हैं। उनके शिष्य नयनन्दी भी वैसे ही प्रख्यातकीर्ति, गुणशाली और सिद्धान्तके पारगामी थे। नयनन्दीके शिष्य नेमिचन्द्र थे, जो जिनागमसमुद्रकी वेलातरंगोंसे धूयमान और सकल जगतमें विख्यात थे। उन्हीं नेमिचन्द्रके शिष्य वसुनन्दीने, अपने गुरुके प्रसादसे, आचार्यपरम्परासे चले आए हुए श्रावकाचारको इस ग्रन्थमें निबद्ध किया है। यह ग्रन्थ अभी तक बहुत कुछ अशुद्ध रूपमें प्रकाशित हुआ है, इसकी एक अच्छी शुद्ध प्रति देहलीके शास्त्रभण्डारमें मौजूद है। उसपरसे तथा और भी शुद्ध प्रतियोंका उपयोग करके इसका एक अच्छा शुद्ध संस्करण प्रकाशित होना चाहिये।

---

१ जैनसाहित्यसंशोधक प्रथमखण्ड अंक ४, पृ० १५७।

इस ग्रन्थमें वसुनन्दीने ग्रन्थरचनाका कोई समय नहीं दिया; परन्तु उनकी इस कृतिका उल्लेख १३वीं शताब्दीके विद्वान पं० आशाधरने अपनी सागारधर्मामृतकी टीकामें[1] किया है, इससे वे १३वीं शताब्दीसे पहले हुए हैं। और चूँकि उन्होंने मूलाचारकी अपनी 'आचारवृत्ति' में ११वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य अमितगतिके उपासकाचारसे 'त्यागो देहममत्वस्य तनूत्सृतिरुदाहृता' इत्यादि पाँच श्लोक 'उपासकाचारे उक्तमास्ते' रूपसे उद्धृत किये हैं, इसलिये वे अमितगतिके बाद हुए हैं। और इसलिये उनका तथा उनकी इस कृतिका समय विक्रमकी १२वीं शताब्दीका पूर्वार्ध जान पड़ता है और यह भी हो सकता है कि वह ११वीं शताब्दीका चतुर्थ चरण हो, क्योंकि, पं० नाथूरामजीके उल्लेखानुसार[2] अमितगतिने अपनी भगवतीआराधनाके अन्तमें आराधनाकी स्तुति करते हुए उसे 'श्रीवसुनन्दियोगिमहिता' लिखा है। यदि ये वसुनन्दी योगी कोई दूसरे न होकर प्रस्तुत श्रावकाचारके कर्ता ही हैं तो वे अमितगतिके समकालीन भी हो सकते हैं और १२वीं शताब्दीके प्रथम चरणमें भी उनका अस्तित्व बन सकता है।

यहाँ पर मैं इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि एक 'तत्त्वविचार' नामका ग्रन्थ भी वसुनन्दिसूरिकी कृतिरूपमें उपलब्ध है, जिसके वाक्य इस वाक्य-सूचीमें शामिल नहीं हो सके हैं। उसकी एक प्रति बम्बईके ऐलकपन्नालालसरस्वतीभवनमें मौजूद है जिसकी पत्रसंख्या २७ है[3]। सी० पी० और बरारके कैटेलॉगमें भी उसकी एक प्रतिका उल्लेख है। ग्रन्थकी गाथासंख्या ६५ है और उसका प्रारंभ 'णमिय जिणपासपयं' और 'सुयसायरो अपारो' इन दो गाथाओंसे होता है तथा अन्तकी दो गाथाएँ समाप्ति-वाक्यसहित इस प्रकार हैं:—

" एसो तच्चवियारो सारो सज्जन-जणाण सिवसुहदो।
वसुनंदिसूरि-रइयो भव्वाणं पवोहणट्ठं खु ॥ ६४ ॥
जो पढइ सुणइ अक्खइ अण्णं पाढेइ देइ उवएसं।
सो हणइ णिय य कम्मं कमेण सिद्धालयं जाई ॥ ६५ ॥
इति वसुनन्दि-सिद्धांति-विरचित-तत्त्वविचारः समाप्तः।"

इस ग्रन्थमें १ णवकारफल, २ धर्म, ३ एकोनविंशद्भावना, ४ सम्यक्त्व, ५ पूजाफल, ६ विनयफल, ७ वैय्यावृत्य, ८ एकादशप्रतिमा, ९ जीवदया, १० श्रावकविधि, ११ अणुव्रत, और १२ दान नामके बारह प्रकरण हैं। इनमेंसे प्रतिमा, विनय, और वैयावृत्य प्रकरणोंका जो मिलान किया गया तो मालूम हुआ कि इन प्रकरणोंमें बहुतसी गाथाएँ वसुनन्दिश्रावका-चारसे ली गई हैं, बहुतसी गाथाएं उस श्रावकाचारकी छोड़ दी गई हैं और कुछ गाथाएं इधर उधरसे भी दी गई हैं। व्रतप्रतिमामें 'गुणव्रत' और 'शिक्षाव्रत' के कथनकी जो गाथाएं दी हैं वे इस प्रकार हैं:—

---

१ "यस्तु—पंचुंबरसहियाइं सत्त वि वसणाइं जो विवज्जेइ। सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ।" इति वसुनन्दिसैद्धान्तिमतेन दर्शनप्रतिमायां प्रतिपन्नस्तस्येदं। तन्मतेनैव व्रतप्रतिमां बिभ्रतो ब्रह्माणुव्रतं स्यात् तद्यथा—पव्वेसु इत्थिसेवा अणंगकीडा सया विवज्जेइ। थूलअड बंभयारी जिणेहिं भणिदो पवयणम्मि ॥" (४-५२ पृ० ११६)

२ जैनसाहित्य और इतिहास पृ० ४६३।

३ यह ग्रन्थ बम्बईमें अगस्त सन् १९२८ में देखा था और तभी इसके कुछ नोट लिये थे, जिनके आधार पर ये परिचय-पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं। इस विषयपर 'तत्त्वविचार और वसुनन्दी' नामका एक नोट भी अनेकान्तके प्रथम वर्षकी किरण ५ में पृ० २७४ पर प्रकाशित किया गया था।

दिसिविदिसिपच्चक्खाणं अणत्थदंडाण होइ परिहारो ।
भोओवभोयसंखा एए हु गुणव्वया तिण्णि ॥ ५९ ॥
देवे थुवइ तियाले पव्वे पव्वे य पोसहोवासं ।
अतिहीण संविभाओ मरणंते कुणइ सल्लिहणं ॥ ६० ॥

इनमेंसे पहलीमें दिग्विदिक्प्रत्याख्यान, अनर्थदण्डपरिहार और भोगोपभोग-संख्याको तीन गुणव्रत बतलाया है, और दूसरीमें त्रिकालदेवस्तुति, पर्व-पर्वमें प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग और मरणान्तमें सल्लेखना, इन चारको शिक्षाव्रत सूचित किया है। परन्तु वसुनन्दिश्रावकाचारका कथन इससे भिन्न है—उसमें दिग्विरति, देशविरति और अनर्थदण्डविरति, इन तीन व्रतोंके आशयको लिए हुए तो तीन गुणव्रत बतलाये हैं, और भोगविरति, परिभोगनिवृत्ति, अतिथिसंविभाग और सल्लेखना, इन चारको शिक्षाव्रत निर्दिष्ट किया है। ऐसे स्पष्ट भिन्न विचारों एवं कथनोंकी हालतमें दोनों ग्रंथोंके कर्ता एक ही वसुनन्दी नहीं कहे जा सकते। और इसलिए तत्त्वविचारको किसी दूसरे ही वसुनन्दीका संग्रहग्रंथ समझना चाहिये; क्योंकि प्रतिमाप्रकरणकी उक्त दोनों गाथाएँ भी उसमें संगृहीत हैं और वे देवसेनके भावसंग्रहसे ली गई हैं जहाँ वे नं० ३५४, ३५५ पर पाई जाती हैं। और यह भी हो सकता है कि उसे वसुनन्दीसे भिन्न किसी दूसरे ही व्यक्तिने रचा हो, जो वसुनन्दीके नामसे अपने विचारोंको चलाना चाहता हो। ऐसे विचारोंका एक नमूना यह है कि इसमें 'णमोकारमंत्रके एक लाख जापसे निःसन्देह तीर्थंकर गोत्रका बन्ध होना' बतलाया है[1]। कुछ भी हो, यह ग्रंथ वसुनन्दिश्रावकाचारके अनेक प्रकरणोंकी काट-छाँट करके, कुछ इधर उधरसे अपने प्रयोजनानुकूल लेकर और कुछ अपनी तरफसे मिलाकर बनाया गया जान पड़ता है और उक्त श्रावकाचारके कर्ताकी कृति नहीं है। शैली भी इसकी महत्वकी मालूम नहीं होती।

४९. आयज्ञानतिलक—यह प्रश्नविद्यासे सम्बन्ध रखनेवाला एक महत्वका प्रश्नशास्त्र है, जिसमें ध्वजादि ८ प्राचीन आयपदार्थोंको लेकर स्थिरचक्र और चलचक्रादिकी रचना एवं विधिव्यवस्था-द्वारा अनेकविध प्रश्नोंके शुभाऽशुभ फलको जानने और बतलानेकी कलाका निर्देश है। इसमें २५ प्रकरण हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

१ आयस्वरूप, २ पातविभाग, ३ आयावस्था, ४ ग्रहयोग, ५ पृच्छाकार्यज्ञान, ६ शुभाऽशुभ, ७ लाभाऽलाभ, ८ रोगनिर्देश, ९ कन्यापरीक्षण, १० भूलक्षण, ११ गर्भपरिज्ञान, १२ विवाह, १३ गमनाऽऽगमन, १४ परिचितज्ञान, १५ जय-पराजय, १६ वर्षालक्षण, १७ अर्घकाण्ड, १८ नष्टपरिज्ञान, १९ तपोनिर्वाहपरिज्ञान, २० जीवितमान, २१ नामाक्षरोद्देश, २२ प्रश्नाक्षर-संख्या, २३ संकीर्ण, २४ काल, २५ चक्रपूजा।

ग्रंथकी गाथासंख्या ४१५ है और इसे दिगम्बराचार्य पं० दामनन्दीके शिष्य भट्टवोसरिने गुरु दामनन्दीके पाससे आयोंके बहुत गुह्य (रहस्य) को जानकर[2] आयविषयक संपूर्ण शास्त्रोंके साररूपमें[3] रचा है। इसपर ग्रंथकारकी स्वयंकी बनाई हुई एक संस्कृत टीका भी है, जिसमें ग्रंथकारने ग्रंथ अथवा टीकाके रचनेका कोई समय नहीं दिया। इस सटीक ग्रंथकी एक जीर्ण-शीर्ण प्रति घोघा बन्दरके शास्त्रभंडारकी मुझे कुछ समयके लिये मुनि

---

१ जो गुणइ लक्खमेगं पूयविही जिणणमोक्कारं। तित्थयरनामगोत्तं सो बंधइ णत्थि संदेहो ॥ १५ ॥

२ जं दामनन्दिगुरुणोऽमणयं आयाण जाणि[यं] गुज्झं। तं आयणाणतिलए वोसरिणा भण्णइ पयडं ॥ २ ॥

३ श(स)र्वायशास्त्रसारेण यत्कृतं जनमंडनं। तदायज्ञानतिलकं स्वयं विवियते मया ॥ ३ ॥

पुण्यविजयजीके सौजन्यसे प्राप्त हुई थी, जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। उसीपरसे एक प्रति आरा जैनसिद्धान्तभवनको करा दी गई थी। दूसरी कोई प्राचीन प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई, और उपलब्ध प्रति कितने ही स्थानोंपर अशुद्ध पाई जाती है।

इस सटीक ग्रंथके सन्धिवाक्योंका एक नमूना इस प्रकार है :—

"इति दिगम्बराचार्य-पंडित श्रीदामनन्दि-शिष्य-भट्टवोसारि-विरचिते साय-श्रीटीकायज्ञानतिलके आयस्वरूप-प्रकरणं प्रथमं ॥ १ ॥"

अन्तिम संधिवाक्यके पूर्व अथवा टीकाके अन्तमें ग्रंथकारका एक प्रशस्तिपद्य इसमें निम्न प्रकारसे उपलब्ध होता है :—

"महादेवान्मांत्री प्रमितविषयं रागविमुखो
विदित्वा श्रीकोत्कविसमयशा सुप्रणयिनीं।
कलां दद्धाच्छाब्दीं विरचयदिदं शास्त्रमनुजः
स्फुरद्वर्णायश्रीशुभगमधुना वोसरिसुधीः ॥ १२ ॥"

यह पद्य कुछ अशुद्ध है और इससे यद्यपि इसका पूरा आशय व्यक्त नहीं होता, फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि इसमें ग्रंथकारने ग्रंथसमाप्तिकी सूचनाके साथ, अपना कुछ परिचय दिया है—अपनेको मंत्री (मंत्रवादी) और सुधीः (पंडित) व्यक्त करनेके साथ साथ रागविमुख (विरक्त) अनुज और किसी उत्कट कविके समान यशस्वी भी बतलाया है। रागविमुख होनेकी बात तो समझमें आजाती है; क्योंकि ग्रंथकार एक दिगम्बर आचार्यके शिष्य थे, इससे उनका रागसे विमुख—विरक्तचित्त होना स्वाभाविक है। परन्तु आप अनुज (लघुभ्राता) किसके ? और किस कविके समान यशस्वी थे ? ये दोनों बातें विचारणीय रह जाती हैं। कविके उल्लेखवाले पदमें एक अक्षरकी कमी है और वह 'को' अक्षरके पूर्व या उत्तरमें दीर्घस्वरवाला अक्षर होना चाहिये, जिसके बिना छंदोभंग हो रहा है; क्योंकि यह पद्य शिखरिणी छंदमें है, जिसके प्रत्येक चरणमें १७ अक्षर, चरणान्तमें लघु-गुरु और गण क्रमशः य, म, न, स, भ-संज्ञक होते हैं। वह अक्षर 'को' हो सकता है और उसके छूट जानेकी अधिक सम्भावना है। यदि वही अभिमत हो तो पूरा पद 'श्रीकोकोत्कविसमयशाः' होकर उससे 'कोक' कविका आशय हो सकता है जो कि कोक-शास्त्रका कर्ता एक प्रसिद्ध कवि हुआ है। तीसरे चरणमें भी 'दद्धाच्छाब्दीं' पद अशुद्ध जान पड़ता है—उससे कोई ठीक अर्थ घटित नहीं होता। उसके स्थान पर यदि 'लब्ध्वा शाब्दीं' पाठ होवे तो फिर यह अर्थ घटित हो सकता है कि 'महादेव नामके विद्वानसे प्रमित (अल्प) विषयको जानकर और सुप्रणयिनीके रूपमें' शाब्दिकी कलाको प्राप्त करके उनके छोटे भाई वोसरिसुधीने यह शास्त्र रचा है, जो कि स्फुरायमान वर्णोंवाली आय-श्रीके सौभाग्यको प्राप्त है अथवा उस आयश्रीसे सुशोभित है, और इससे इस स्वोपज्ञ टीकाका नाम 'आयश्री' जान पड़ता है। इस तरह इस पद्यमें महादेव नामके जिस व्यक्तिका विद्यागुरुके रूपमें उल्लेख है वह ग्रन्थकारका बड़ा भाई भी हो सकता है।

अनुजका एक अर्थ 'पुनर्जन्म' अथवा 'द्वितीय-जन्मको प्राप्त' का भी है और वह पुनर्जन्म अथवा द्वितीयजन्म संस्कारजन्य होता है जैसे द्विजोंका यज्ञोपवीत-संस्कारजन्य द्वितीयजन्म[१]। बहुत संभव है कि भट्टवोसरि पहले अजैन रहे हों और बादको जैन

१ अनुज—4 Born again inrested with the sacred thread—V. S. Apte Sanskrit, English Dictionary

संस्कारोंसे संस्कृत होकर जैनधर्ममें दीक्षित हुए हों और दिगम्बराचार्य दामनन्दीके शिष्य बने हों, जिनकी गुरुता और अपनी शिष्यताका उन्होंने ग्रन्थमें खास तौरपर उल्लेख किया है। और इसीसे उन्होंने अपनेको 'अनुज' लिखा हो। यदि ऐसा हो तो फिर 'महादेव' को उनका बड़ा भाई न कहकर कोई दूसरा ही विद्वान कहना होगा।

भट्टवोसरिने जिन दिगम्बराचार्य दामनन्दीका अपनेको शिष्य घोषित किया है वे संभवतः वे ही जान पड़ते हैं जिनका श्रवणबेल्गोलके शिलालेख नं० ५५ (६९) में उल्लेख है, जिन्होंने महावादी विष्णुभट्टको वादमें पराजित किया था—पीस डाला था, और इसीसे जिनको 'विष्णुभट्ट-घरट्ट' लिखा है। ये दामनन्दी, शिलालेखके अनुसार, उन प्रभाचन्द्राचार्यके सधर्मा (साथी अथवा गुरुभाई) थे जिनके चरण धाराऽधिपति भोजराजके द्वारा पूजित थे और जिन्हें महाप्रभावक उन गोपनन्दी आचार्यका सधर्मा लिखा है जिन्होंने कुवादि-दैत्य धूर्जटिको वादमें पराजित किया था। धूर्जटि और महादेव दोनों पर्याय नाम हैं, आश्चर्य नहीं जिन महादेवका उक्त प्रशस्तिपद्यमें उल्लेख है वे ये ही धूर्जटि हों और इनकी तथा विष्णुभट्टकी घोर पराजयको देखकर ही भट्टवोसरि जैनधर्ममें दीक्षित हुए हों, और इसीसे उन्होंने महादेवस प्राप्त ज्ञानको 'प्रभितविषय' विशेषण दिया हो और दामनन्दीसे प्राप्त ज्ञानको 'अमनाक्' विशेषणस विभूपित किया हो। अस्तु, गुरुदामनन्दीके विषयमें मेरी उक्त कल्पना यदि ठीक है तो वे भोजराजके प्रायः समकालीन ठहरे और इसलिये उनके शिष्यका यह ग्रन्थ विक्रमकी १२वीं शताब्दीका बना हुआ होना चाहिये।

५० श्रुतस्कन्ध—यह ९४ गाथात्मक ग्रंथ द्वादशाङ्गश्रुतके अवतार एवं पदसंख्यादि-सहित वर्णनको लिये हुए है। इसके कर्ता ब्रह्म हेमचंद्र हैं, जो देशयति थे और जिन्होंने रामनन्दी सिद्धान्तिके प्रसादसे तिलंगदेशान्तर्गत कुण्डनगरके उद्यानमें स्थित सुप्रसिद्ध चन्द्रप्रभजिनके मन्दिरमें इसकी रचना की है[1]। ग्रंथमें रचनाकाल नहीं दिया और जिन रामनन्दीके प्रसादसे यह ग्रंथ रचा गया है उन्हें सिद्धान्ती—सिद्धान्तशास्त्र अथवा आगम के जानकार—सूचित करनेके सिवाय उनका और कोई परिचय भी नहीं दिया गया। ऐसी स्थितिमें ग्रंथपरसे यह मालूम करना कठिन है कि वह कबका बना हुआ है। हाँ, रामनन्दी का उल्लेख अग्गलदेवके चंद्रप्रभपुराणमें आया है, जहाँ उन्हें नमस्कार किया गया है, और यह चंद्रप्रभपुराण शक संवत् ११११, वि० सं० १२४६ में बना है, इसलिये रामनन्दी वि०सं० १२४६ (ई० सन् ११८९) से पहले हुए हैं, और तदनुसार यह ग्रंथ भी वि० सं० १२४६ से पहलेका बना हुआ जान पड़ता है। परन्तु कितने पहलेका? यह रामनन्दीके समयपर निर्भर है।

एक रामनन्दीका उल्लेख कुन्दकुन्दान्वयी माणिक्यनन्दी त्रैविद्यके शिष्य नयनन्दी ने अपने सुदर्शनचरितकी प्रशस्तिमें किया है, जो अपभ्रंशभाषाका ग्रंथ है, और उन्हें अपने गुरु माणिक्यनन्दीका गुरु तथा वृषभनन्दी सिद्धान्तीका शिष्य सूचित किया है[2]।

---

१ "रइओ तिलंगदेसे आरामे कुंडणयरि सुपसिद्धे।
चंदप्पहजिणमंदिरि रइया गाहा इमे विमला ॥ ८९ ॥"
"सिद्धंतिरामणंदीमहापसाएण रयउ सुयखंधो।
लइओ संसारफलो देसजईहेमचंदेण" ॥ ९२ ॥

२ जिणंदस्स वीरस्स तित्थे महंते, महा कुंदकुंदन्नए एंत संते।
सुणरकाहिहाणो तहा पोमणंदी, खमाजुत्त सिद्धंतउ विसहणंदी ॥ १ ॥
जिणिंदागमाहासणे एयचित्तो तवायारणिट्ठाए लद्धीएजुत्तो।
णरिंदामरिंदेहि सो णंदवंतो हुओ तस्स सीसो गणी रामणंदी ॥ २ ॥

यह सुदर्शनचरित्र विक्रमसंवत् ११०० में[1] धारानगरीमें बनकर समाप्त हुआ है, जब कि भोजराजाका वहाँ राज्य था। और इससे रामनन्दी विक्रम सं० ११०० से कुछ पूर्वके अर्थात् विक्रमकी ११वीं शताब्दीके उत्तरार्धके विद्वान् जान पड़ते हैं। बहुत संभव है कि ये ही रामनन्दी वे रामनन्दी हों जिनके प्रसादसे ब्रह्महेमचंदने इस श्रुतस्कन्ध ग्रंथकी रचना की है। यदि ऐसा है तो यह कहना होगा कि ब्रह्महेमचंद विक्रमकी ११वीं शताब्दीके उत्तरार्ध के विद्वान् थे और उसी समयकी उनकी यह रचना है।

५१. ढाढसीगाथा—यह एक औपदेशिक अध्यात्मविषयका ग्रंथ है, जिसकी गाथासंख्या ३६ बतलाई गई है; परन्तु माणिकचंद्र ग्रंथमालाकी प्रकाशित प्रतिमें वह ३८ पाई जाती है। मूलमें ग्रंथ और ग्रंथकर्ताका कोई नाम नहीं। अन्तमें 'इति ढाढसी गाथा समाप्ता' लिखा है। 'ढाढसीगाथा' यह नामकरण किस दृष्टिको लेकर किया गया है इसका कुछ पता नहीं। इसके कर्ता कोई काष्ठासंघी आचार्य हैं ऐसा पं० नाथूराम जी प्रेमीने व्यक्त किया है और वह ग्रंथमें आए हुए 'कट्ठो वि मूलसंघो' (काष्ठासंघ भी मूलसंघ है) जैसे शब्दों परसे अनुमानित जान पड़ता है; परन्तु 'पिच्छे ण हु सम्मत्तं करगहिए चमर-मोर-डंबरए' जैसे वाक्योंपरसे उसके कर्ता निःपिच्छसंघके अर्थात् माथुरसंघके आचार्य भी हो सकते हैं। और यह भी हो सकता है कि वे संघवादकी कट्टरतासे रहित कोई तटस्थ विद्वान् हों। अस्तु। ग्रंथमें मनको रोकने, कषायोंको जीतने और आत्मध्यान करनेकी प्रेरणा की गई है और लिखा है कि 'संघ कोई भी पार नहीं उतारता, चाहे वह काष्ठासंघ हो, मूल-संघ हो अथवा निःपिच्छसंघ हो; बल्कि आत्मा ही आत्माको पार उतारता है, इसलिये आत्माका ध्यान करना चाहिये। उसके लिये अर्हन्तों और सिद्धोंके ध्यानको उपयोगी बतलाया है और उनकी प्रतिष्ठित मूर्तियोंको, चाहे वे मणि-रत्न-धातु-पाषाण और काष्ठादिमेंसे किसीसे भी बनी हों, सालम्ब ध्यानके लिये निमित्तकारण बतलाया है। और अन्तमें ग्रन्थका फल बन्ध-मोक्षको जानना तथा ज्ञानमय होना निर्दिष्ट किया है। इसी उद्देश्यको लेकर वह रचा गया है। ग्रन्थकी आदिमें कोई मंगलाचरण नहीं है।

ग्रन्थमें बननेका कोई समय न होनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि वह कब रचा गया है। इसकी एक गाथा षट्प्राभृतकी टीकामें "निष्पिच्छिका मयूरपिच्छादिकं न मन्यन्ते। उक्तं च ढाढसीगाथासु" इन वाक्योंके साथ निम्नरूपमें पाई जाती है:—

पिच्छे ण हु सम्मत्तं करगहिए मोरचमरडंबरए।
अप्पा तारइ अप्पा तम्हा अप्पा वि झायव्वो ॥ १ ॥

इसका पूर्वार्ध ढाढसीगाथा नं० २८ का पूर्वार्ध है, जिसका उत्तरार्ध है—"समभावे जिणदिट्ठं रायाईदोसचत्तेण" और इसका उत्तरार्ध ढाढसीगाथा नं० २० का उत्तरार्ध है, जिसका पूर्वार्ध है—"संघो को वि ण तारइ कट्ठो मूलो तहेव णिप्पिच्छो।" इसीसे पूर्वार्ध और उत्तरार्ध यहाँ संगत मालूम नहीं होते। परन्तु टीकाके उक्त उल्लेखसे यह स्पष्ट है कि ढाढसी-गाथा षट्प्राभृतकी टीकासे पहलेकी रचना है। षट्प्राभृतटीकाके कर्ता श्रुतसागरसूरि विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं और इसलिये यह ग्रंथ १६वीं शताब्दीसे पहले का बना हुआ है, इतना तो सुनिश्चित है, परन्तु कितने पहलेका? यह अभी निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता।

महापंडिओ तस्स माणिक्कणंदी भुयंगप्पहाओ इमो णामछंदो।
पढमसीसु तहो जायउ जगविक्खायउ मुणिणयणंदि अणंदिउ ॥
१ ······णिवविक्कमकालहो ववगएसु एयारहसंवच्छरसएसु ॥ ६ ॥
तहि केवलिचरिउ अमच्छरेण णयणंदि विरइउ वत्थरेण।······

५२. छेदपिण्ड और इन्द्रनन्दी—यह प्रायश्चित-विषयका एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, प्रायश्चित्त, छेद, मलहरण, पापनाशन, शुद्धि, पुण्य, पवित्र, पावन ये सब प्रायश्चित्तके ही नामान्तर हैं (गा० ३)। प्रायश्चित्तके द्वारा चित्तादिकी शुद्धि करके आत्मविकासको सिद्ध किया जाता है। जिन्हें अपने आत्मविकासको सिद्ध करना अथवा मुक्तिको प्राप्त करना इष्ट है उन्हें अपने दोषों-अपराधोंपर कड़ी दृष्टि रखनेकी जरूरत है और उनकी मात्रानुसार दण्ड लेनेके लिये स्वयं सावधान एवं तत्पर रहनेकी बड़ी जरूरत है। किस दोष अथवा अपराधका किसके लिये क्या प्रायश्चित्त विहित है, यही सब इस ग्रन्थका विषय है, जो अनेक परिभाषाओं तथा व्याख्याओंके साथ वर्णित है। यह मुनि, आर्यिका श्रावक-श्राविकारूप चतुःसंघ और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्ररूप चतुर्वर्णके सभी स्त्री-पुरुषोंको लक्ष्य करके लिखा गया है—सभीसे बन पड़नेवाले दोषों-अपराधोंके प्रकारोंका और उनके आगमादिविहित तपश्चरणादिरूप संशोधनोंका इसमें निर्देश और संकेत है। यह अनेक आचार्योंके उपदेशको अधिगत करके जीत और कल्पव्यवहारादि प्राचीन शास्त्रोंके आधारपर लिखा गया है (३५६)। इतने पर भी परमार्थशुद्धि और व्यवहारशुद्धिके भेदोंमें यदि कहीं कोई विरुद्ध अर्थ अज्ञानभावसे निबद्ध हो गया हो तो उसके संशोधनके लिये ग्रन्थकारने छेदशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वानोंसे प्रार्थना की है (गा०३५६)। वास्तवमें आत्मशुद्धिका मर्म और उस शुद्धिकी प्राप्तिका मार्ग ऐसे ही रहस्य-शास्त्रोंसे जाना जाता है। इसीसे ऐसे शास्त्रोंके जानकार एवं भावनाकारको लौकिक तथा लोकोत्तर व्यवहारमें कुशल बतलाया है (गा० ३६१)।

इस ग्रंथकी गाथासंख्या ग्रंथमें दी हुई संख्याके अनुसार ३३३ है, जिसे ४२० श्लोक-परिमाण बतलाया है[१]। परन्तु मुद्रित प्रतिमें वह ३६२ पाई जाती हैं। इसपर पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने ग्रंथपरिचयमें यह कल्पना की है कि "मूलमें 'तेतीसुत्तर' की जगह 'वासट्ठित्तुर' या इसीसे मिलता जुलता कोई और पाठ होना चाहिये; क्योंकि ३२ अक्षरोंके श्लोकके हिसाबसे अब भी इसकी श्लोकसंख्या ४२० के ही लगभग है और ३३३ गाथाओंके ४२० श्लोक हो भी नहीं सकते हैं।" यद्यपि 'वासट्ठयुत्तर' के स्थानपर 'तेतीसुत्तर' पाठके लिखे जानेकी संभावना कम है और यह भी सर्वथा नहीं कहा जा सकता कि ३३३ गाथाओंके ४२० श्लोक हो ही नहीं सकते; क्योंकि गाथामें अक्षरोंकी संख्याका नियम नहीं है—वह वर्णिक छंद न होकर मात्रिक छंद है और उसमें भी कई प्रकार हैं जिनमें मात्राओंकी भी कमी-बेशी होती है—ऐसी कितनी ही गाथाएँ देखी जाती हैं जिनके पूर्वार्धमें यदि २२–२३ अक्षर हैं तो उत्तरार्धमें १८–२० अक्षर तक पाये जाते हैं, और इस तरह एक गाथाका परिमाण प्रायः सवा १¼ श्लोक जितना हो जाता है, जिससे उक्त गाथासंख्या और श्लोकसंख्याकी पारस्परिक संगति ठीक बैठ जाती है; फिर भी ग्रन्थकी सब गाथाएं सवा श्लोक-जितनी नहीं हैं और उनका औसत भी सवा श्लोक जितना न होनेसे गाथासंख्या और श्लोकसंख्याकी पारस्परिक संगतिमें कुछ अन्तर रह ही जाता है। इस सम्बन्धमें मेरा एक विचार और है और वह यह कि गाथाओंके साथ जो श्लोकसंख्याको दिया जाता है उसका लक्ष्य प्रायः लेखकोंके लिये ग्रन्थका परिमाण निर्दिष्ट करना होता है; क्योंकि लिखाई उन्हें प्रायः श्लोक-संख्याके हिसाबसे ही दी जाती है। और इस दृष्टिसे अंकादिकको शामिल करके कुछ परिमाण अधिक ही रक्खा जाता है। ऐसी हालतमें ३३३ गाथाओंके लिये ४२० की श्लोकसंख्याका निर्देश सर्वथा असंगत या असंभव नहीं कहा जा सकता। यदि दोनों संख्याओंको ठीक

---

१ चउरसयाइं वीसुत्तराइं गंथस्स परिमाणं। तेतीसुत्तरतिसयं पमाणं गाहाणिबद्धस्स ॥ ३६० ॥

माना जाता है तो फिर यह कहना होगा कि ग्रन्थमें २६ गाथाएं वढ़ी हुई हैं; जो किसी तरह ग्रन्थमें प्रक्षिप्त हुई हैं और जिन्हें प्राचीन प्रतियों आदिपरसे खोजनेकी जरूरत है। यहाँ पर मैं एक गाथा नमूनेके तौर पर प्रस्तुत करता हूँ, जो स्पष्टतया प्रक्षिप्त जान पड़ती है और जिसकी मौजूदगीमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूरी ३६२ गाथाओंका ग्रंथ है—उसमें कोई गाथा प्रक्षिप्त नहीं है:—

अणुकंपाकहणेण य विरामवयगहण सह तिसुद्धीए।
पादद्धतयं सव्वं णासइ पावं ण संदेहो ॥ ३५७ ॥

इसके पूर्वकी 'एदं पायच्छित्तं' गाथामें ग्रन्थसमाप्तिकी सूचनाका प्रारंभ करते हुए केवल इतना ही कहा गया है कि 'वहुत आचार्योंके उपदेशको जानकर और जीत आदि शास्त्रोंको सम्यक् अवधारण करके यह प्रायश्चित्त ग्रंथ', और फिर उक्त गाथाको देकर उत्तरवर्ती 'चाउव्वण्णपराधविशुद्धिणिमित्तं' नामकी गाथामें उस समाप्तिकी वातको पूरा करते हुए लिखा है कि 'चातुर्वर्णोंके अपराधोंकी विशुद्धिके निर्मित्त मैंने कहा है, इसका नाम 'छेदपिण्ड' है, साधुजन आदर करो'। इससे स्पष्ट है कि पूर्वोत्तरवर्ती दोनों गाथाओं-का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है और वे 'युग्म' कहलाये जाने योग्य गाथाएँ हैं, उनके मध्यमें उक्त गाथा नं० ३५७ असंगत है। वह गाथा दूसरे 'छेदशास्त्र' की है, जिसका परिचय आगे दिया जायगा और उसमें नं० ६१ पर संस्कृतवृत्तिके साथ दर्ज है, तथा छेदपिण्डके उक्त स्थलपर किसी तरह प्रक्षिप्त हुई है। इसी तरह खोज करनेपर और भी प्रक्षिप्त गाथाएँ मालूम हो सकती हैं। कुछ गाथाएं इसमें ऐसी भी हैं जो एकसे अधिक स्थानोंपर ज्योंकी-त्यों पाई जाती हैं, जिनका एक नमूना इस प्रकार है:—

जे वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायादा।
तेसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव संसुद्धी ॥

यह गाथा १७० और १८१ नम्बर पर पाई जाती है और इसमें इतना ही वतलाया गया है कि 'जो साधु दूसरे गणसे अपने गणको अध्ययनके लिये आये हुए हैं उनके लिये भी आलोचन नामका प्रायश्चित्त है।' अतः यह एक ही स्थानपर होनी चाहिये—दूसरे स्थलपर इसकी व्यर्थ पुनरावृत्ति जान पड़ती है। एक दूसरी 'ख' प्रतिमें यह १७० वें स्थलपर है भी नहीं। एक दूसरा नमूना 'तस्सिस्साणं सुद्धी(सोही)' नामकी गाथा नं० ३५६ का है, जो पहले नं० २४७ पर आ चुकी है, यहाँ व्यर्थ पड़तो है और 'ख, ग' नामकी दो प्रतियोंमें पिछले स्थलपर है भी नहीं। और भी कई गाथाएं ऐसी हैं जिनकी वावत फुटनोटोंमें यह सूचना की गई है कि वे दूसरी प्रतियोंमें नहीं पाई जातीं। जांचनेपर उनमेंसे भी अनेक गाथाएं प्रक्षिप्त तथा व्यर्थ वढ़ी हुई हो सकती हैं।

इस प्रकार प्रक्षिप्त और व्यर्थ वढ़ी हुई गाथाओंके कारण भी ग्रन्थकी वास्तविक गाथासंख्या ३६२ नहीं हो सकती, और इस लिये 'तेतीसुत्तर' की जगह 'वासट्ठित्तुर' पाठ की जो कल्पना की गई है वह समुचित प्रतीत नहीं होती। अस्तु।

इस ग्रंथके कर्ता इन्द्रनन्दी नामके आचार्य हैं, जिन्होंने अन्तकी दो गाथाओंमें क्रमशः 'गणी' तथा 'योगीन्द्र' विशेषणोंके साथ अपना नामोल्लेख करनेके सिवाय और कोई अपना परिचय नहीं दिया। इन्द्रनन्दी नामके अनेक आचार्य जैन समाजमें हो गए हैं, और इसलिये यह कहना सहज नहीं कि उनमेंसे यह इन्द्रनन्दी गणी अथवा योगीन्द्र कौनसे हैं? एक इन्द्रनन्दी गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्रके गुरुवोंमें—ज्येष्ठ गुरुभाईके रूपमें—हुए हैं और प्राय: वे ही ज्वालामालिनीकल्पके कर्ता जान पड़ते हैं, जिसकी रचना शक संवत्

८६१ वि० सं० ६६६ में हुई है, जैसा कि 'गोम्मटसार और 'नेमिचंद्र' नामक परिचयलेखमें स्पष्ट किया जा चुका है। दूसरे इन्द्रनन्दी इनसे भी पहले हुए हैं, जिनका उल्लेख ज्वालामालिनी कल्पके कर्ता इन्द्रनन्दीने अपने गुरु वप्पनन्दीके दादागुरुके रूपमें किया है—अर्थात् वासवनन्दी जिनके शिष्य और वप्पनन्दी प्रशिष्य थे। और इसलिये जिनका समय प्रायः विक्रमकी ९वीं शताब्दीका अन्तिम चरण और १०वीं शताब्दीका प्रथम चरण जान पड़ता है। इन्हें ही यहाँ प्रथम इन्द्रनन्दी समझना चाहिये। तीसरे इन्द्रनन्दी 'श्रुतावतार' के कर्ता रूपमें प्रसिद्ध हैं और जिनके विषयमें पं नाथूरामजी प्रेमीका यह अनुमान है कि 'वे गोम्मटसार और मल्लिषेणप्रशस्तिके[1] इन्द्रनन्दीसे अभिन्न होंगे। क्योंकि श्रुतावतारमें वीरसेन और जिनसेन आचार्य तक ही सिद्धान्त रचनाका उल्लेख है। यदि वे नेमिचन्द्र आचार्यके पीछे हुए होते, तो बहुत संभव है कि गोम्मटसारका भी उल्लेख करते।' चौथे इन्द्रनन्दी नीतिसार अथवा समयभूषणके कर्ता हैं, जो नेमिचन्द्र आचार्यके बाद हुए हैं; क्योंकि उन्होंने नीतिसारके ७०वें श्लोकमें सोमदेवादिके साथ नेमिचन्द्रका भी नामोल्लेख उन आचार्योंमें किया है जिनके रचे हुए शास्त्र प्रमाण बतलाए गए हैं। पाँचवें और छठे इन्द्रनन्दी 'संहिता' शास्त्रोंके कर्ता हैं। छठे इन्द्रनन्दीकी संहितापरसे पाँचवें इन्द्रनन्दीका संहिताकारके रूपमें पता चलता है; क्योंकि उसके दायभागप्रकरणके अन्तमें पाई जाने वाली गाथाओंमेंसे जिन तीन गाथाओंको प्रेमीजीने अपने 'ग्रन्थपरिचय' में उद्धृत किया है, उनमें इन्द्रनन्दीकी पूजाविधिके साथ उनकी संहिताका भी उल्लेख है और उसे भी प्रमाण बतलाया है वे गाथाएं इस प्रकार हैं:—

पुज्जं पुज्जविहाणे जिणसेणाइवीरसेणगुरुजुत्तइ ।
पुज्जस्स या य गुणभद्दसूरीहि जह तहुद्दिट्ठा ॥ ६३ ॥
वसुणंदि-इंदणंदि य तह य मुणिएमसंधिगणिनाहं(हिं) ।
रचिया पुज्जविही या पुव्वक्कमदो विणिद्दिट्ठा ॥ ६४ ॥
गोयम-समंतभद्द य अयलंकसुमाहणंदिमुणिणाहिं ।
वसुणंदि-इंदणंदिहिं रचिया सा संहिता पमाणा हु ॥ ६५ ॥

पहली गाथामें वसुनन्दीके साथ चूँकि एकसंधिमुनिका भी उल्लेख है, जो एकसंधि-जिनसंहिताके कर्ता हैं और जिनका समय विक्रमकी १३वीं शताब्दी है, इसलिये इन छठे इन्द्र-नन्दीको एकसंधि भट्टारकमुनिके बादका विद्वान् समझना चाहिये। अब देखना यह है कि इन छहोंमें कौनसे इन्द्रनन्दीकी यह 'छेदपिण्ड' कृति हो सकती है अथवा होनी चाहिये।

पं० नाथूरामजी प्रेमीके विचारानुसार प्रथम तीन इन्द्रनन्दी तो इस छेदपिण्डके कर्ता हो नहीं सकते; क्योंकि उन्होंने गोम्मटसार तथा मल्लिषेणप्रशस्तिमें उल्लिखित इन्द्रनन्दी और श्रुतावतारके कर्ता इन्द्रनन्दीको एक मानकर उनके कर्तृत्व-विषयका निषेध किया है, और इसलिये ज्वालामालिनीकल्पके कर्ता और उनकी गुरुपरम्परामें उल्लिखित प्रथम इन्द्रनन्दीका निषेध स्वतः होजाता है, जिनके विषयका कोई विचार भी प्रस्तुत नहीं किया गया। चौथे इन्द्रनन्दीकी छठे इन्द्रनन्दीके साथ एक होनेकी संभावना व्यक्त की गई है और संहिताके कर्ता छठे इन्द्रनन्दीको ही ग्रंथका कर्ता माना है, जिससे पाँचवें इन्द्रनन्दीका

---

१ दुरितग्रहनिग्रहाद्भयं यदि भो भूरिनरेन्द्रवन्दितम् ।
ननु तेन हि भव्यदेहिनो भजत श्रीमुनिमिन्द्रनन्दिनम् ॥ २७ ॥
—श० शि० ५४, शक सं० १०५० का उत्कीर्ण

भी निषेध होजाता है। इस तरह प्रेमीजीकी दृष्टिमें यह छेदपिण्ड उपलब्ध इन्द्रनन्दि-संहिताके कर्ताकी ही कृति है, और उसका प्रधान कारण इतना ही है कि यह ग्रंथ उनके कथनानुसार उक्त संहितामें भी पाया जाता है और उसके चतुर्थ अध्यायके रूपमें स्थित है[1]। इसीसे प्रेमीजीने छेदपिण्ड-कर्ताके समय-सम्बन्धमें विक्रमकी १४वीं शताब्दी तककी कल्पना करते हुए इतना तो निःसन्देहरूपमें कह ही डाला है कि "छेदपिण्डके कर्ता विक्रमकी १३वीं शताब्दीके पहलेके तो कदापि नहीं हैं।"

परन्तु संहितामें किसी स्वतंत्र ग्रंथ या प्रकरणका उपलब्ध होना इस बातकी कोई दलील नहीं है कि वह उस संहिताकारकी ही कृति है; क्योंकि अनेक संग्रह-ग्रंथोंमें दूसरोंके ग्रंथ अथवा प्रकरणके प्रकरण उद्धृत पाये जाते हैं; परन्तु इससे वे उन संग्रहकारोंकी कृति नहीं हो जाते। उदाहरणके तौरपर गोम्मटसारके तृतीय अधिकाररूपमें कनकनन्दी सि० च० का 'सत्वस्थान' नामका प्रकरणग्रंथ मंगलाचरण और अन्तकी प्रशस्त्यादिविषयक गाथाओं सहित अपनाया गया है, इससे वह गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्रकी कृति नहीं हो गया—उनके द्वारा मान्य भले ही कहा जा सकता है। प्रभाचन्द्रके क्रियाकलापमें अनेक भक्तिपाठोंका और स्वामी समन्तभद्रके स्वयम्भूस्तोत्र तकका संग्रह है, परन्तु इतने मात्रसे वे सब ग्रंथ प्रभाचन्द्रकी कृति नहीं हो गए।

मेरी रायमें यह छेदपिण्ड, जो अपनी रचनाशैली आदिपरसे एक व्यवस्थित स्वतंत्र ग्रंथ मालूम होता है, यदि उक्त इन्द्रनन्दिसंहितामें भी पाया जाता है तो उसमें उसी तरह अपनाया गया है जिस तरह कि १७वीं शताब्दीकी बनी हुई भद्रबाहुसंहितामें[2] 'भद्रबाहु-निमित्तशास्त्र' नामके एक प्राचीन ग्रंथको अपनाया गया है। और जिस तरह उसके उक्त प्रकार अपनाए जानेसे वह १७वीं शताब्दीका ग्रंथ नहीं हो जाता उसी तरह छेदपिण्डके इन्द्रनन्दि-संहितामें समाविष्ट होजाने मात्रसे वह विक्रमकी १३वीं शताब्दी अथवा उससे बादकी कृति नहीं हो जाता। वास्तवमें छेदपिण्ड संहिताशास्त्रकी अपेक्षा न रखता हुआ अपने विषयका एक बिल्कुल स्वतंत्र ग्रंथ है, यह बात उसके साहित्यको आद्योपान्त गौरसे पढ़नेपर भले प्रकार स्पष्ट हो जाती है। उसके अन्तमें गाथासंख्या तथा श्लोकसंख्याका दिया जाना और उसे ग्रंथपरिमाण (गंथस्स परिमाणं) प्रकट करना भी इसी बातको पुष्ट करता है। यदि वह मूलतः और वस्तुतः संहिताका ही एक अंग होता तो ग्रंथपरिमाण उसी तक सीमित न रहकर सारी संहिताका ग्रंथपरिमाण होता और वह संहिताके ही अन्तमें रहता न कि उसके किसी अंगविशेषके अन्तमें। इसके सिवाय, छेदपिण्डकी साहित्यिक प्रौढता, गम्भीरता और विषय-व्यवस्था भी उसे संहिताकारके खुदके स्वतंत्र साहित्यसे, जो बहुत कुछ साधारण है और जिसका एक नमूना दायभागप्रकरणके अन्तमें पाई जानेवाली उक्त अप्रासंगिक गाथाओंसे जाना जाता है, पृथक् सूचित करती है। उसमें जीतशास्त्र और कल्पव्यवहार जैसे प्राचीन ग्रंथोंका ही उल्लेख होनेसे, जो आज दिगम्बर जैन समाजमें उपलब्ध भी नहीं हैं, उसकी प्राचीनताका ही बोध होता है। और इसलिये, इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए, मेरी इस ग्रंथसम्बन्धमें यही राय होती है कि यह ग्रंथ उक्त इन्द्रनन्दि-संहिताके कर्ताकी कृति नहीं है और न साहित्यादिकी दृष्टिसे नीतिसारके कर्ताकी ही कृति इसे कहा जा सकता है; बल्कि यह अधिकांशमें उन इन्द्रनन्दीकी कृति जान पड़ता है और होना चाहिये जो गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्र और सत्वस्थानके कर्ता कनकनन्दीके गुरु

---

१ देहलीके पंचायतीमन्दिरमें 'इन्द्रनन्दिसंहिता' की जो प्रति है उसमें तीन अध्याय ही पाये जाते हैं, और उनपरसे यह संहिता बहुत कुछ साधारण तथा भट्टारकीय लीलाको लिये हुए आधुनिक कृति जान पड़ती है।

२ देखो, ग्रन्थपरीक्षा द्वितीयभाग पृ० ३६।

थे तथा ज्वालामालिनी-कल्पके रचयिता थे अथवा जो उनसे भी पूर्व वासवनन्दीके गुरु हुए हैं और जिनका उल्लेख ज्वालामालिनी-कल्पकी प्रशस्तिमें पाया जाता है। और इसलिये यह ग्रन्थ विक्रमकी ९वीं १०वीं शताब्दीके मध्यका बना हुआ होना चाहिये। मल्लिषेण-प्रशस्तिमें जिन इन्द्रनन्दीका उल्लेख है वे भी प्रायः इस प्रायश्चित्त ग्रंथके कर्ता ही जान पड़ते हैं; इसीसे उस प्रशस्ति-पद्यमें कहा गया है कि 'भो भव्यो! यदि तुम्हें दुरित-ग्रह-निग्रहसे—पापरूपी ग्रहके द्वारा पकड़े जानेसे—कुछ भय होता है तो अनेक नरेन्द्र-वन्दित इन्द्रनन्दी मुनिको भजो।' चूँकि ये इन्द्रनन्दी अपनी प्रायश्चित्त-विधिके द्वारा पाप-रूप ग्रहका निग्रहकरनेमें समर्थ थे, और इसलिये उनके सम्यक् उपासक—उनकी प्रायश्चित्त-विधिका ठीक उपयोग करने वाले—पापकी पकड़में नहीं आते, इसीसे वैसा कहा गया जान पड़ता है।

५२. छेदशास्त्र—यह ग्रन्थ भी प्रायश्चित्त-विषयका है। इसका दूसरा नाम 'छेदनवति' है, जिसका उल्लेख अन्तकी एक गाथामें है और उसका कारण ग्रन्थका ९० गाथाओंमें निर्दिष्ट होना ('णउदिगाहाहि णिद्दिट्ठं') है। परन्तु मुद्रित ग्रन्थ-प्रतिमें ९४ गाथाएँ उपलब्ध हैं, और इसलिए ३ या ४ गाथाएं इसमें बढ़ी हुई अथवा प्रक्षिप्त समझनी चाहियें। यह ग्रन्थ प्रधानतः साधुओंको लक्ष्य करके लिखा गया है, इसी से प्रथम मंगल-गाथामें 'वुच्छामि छेदसत्थं साहूणं सोहणट्ठाणं' ऐसा प्रतिज्ञा-वाक्य दिया है। परन्तु अन्तमें कुछ थोड़ा-सा कथन श्रावकोंके लिये भी दे दिया गया है। ग्रन्थकी अधिकांश गाथाओंके साथ छोटी-सी वृत्ति भी लगी हुई है, जिसे टिप्पणी कहना चाहिये।

इस ग्रन्थका कर्ता कौन है, यह अज्ञात है—न मूलमें उसका उल्लेख है, न वृत्तिमें और न आद्यन्तमें ही उसकी कोई सूचना की गई है। और इसलिये उसके तथा ग्रन्थके रचनाकाल-विषयमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, इस ग्रन्थको जब छेदपिण्डके साथ पढ़ते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि एक ग्रंथकारके सामने दूसरा ग्रन्थ रहा है, इसीसे कितनी ही गाथाओंमें एक दूसरेका अनुकरण अनेक अंशोंमें पाया जाता है और एक दो गाथाएँ ऐसी भी देखनेमें आती हैं जो प्रायः समान हैं। समान गाथाओंमें एक गाथा तो 'अणुकंपाकहणेण' नामकी वही है जिसे ऊपर छेदपिण्ड-परिचयमें प्रक्षिप्त सिद्ध किया गया है और दूसरी 'आयंविलम्हि पादूण' नामकी है जो इस ग्रन्थमें नं० ५ पर और छेदपिण्डमें नं० ११ पर पाई जाती है और जिसके विषयमें छेदपिण्डके फुटनोटमें लिखा है कि वह 'ख' प्रतिमें उपलब्ध नहीं है। हो सकता है कि वह भी छेदपिण्डमें प्रक्षिप्त हो। अब तीन नमूने ऐसे दिये जाते हैं जिनमें कुछ अनुकरण, अतिरिक्त कथन और स्पष्टी-करणका भाव पाया जाता है:—

१ पायच्छित्तं सोही मलहरणं पावणासणं छेदो। पज्जाया······॥ २ ॥

२ एक्कम्मि वि उवसग्गे णव णवकारा हवंति बारसहिं।
सयमट्ठोत्तरमेदे हवंति उववास जस्स फलं ॥ ६ ॥

३ जावदिया परिणामा तावदिया होंति तत्थ अवराहा।
पायच्छित्तं सक्कइ दादुं कादुं च को समए ॥ ९० ॥

—छेदशास्त्र

१ पायच्छित्तं छेदो मलहरणं पावणासणं सोही।
पुण्ण पवित्तं पावणमिदि पायच्छित्तनामाइं ॥ ३ ॥

२ णव पंचणमोक्कारा काउस्सग्गम्मि होंति एगम्मि ।
एदेहिं बारसेहिं उववासो जायदे एक्को ॥ १० ॥
३ जावदिया अविसुद्धा परिणामा तेत्तिया अदीचारा ।
को ताण पायच्छित्तं दाउं काउं च सक्केज्जो ॥ ३५४ ॥
—छेदपिण्ड

दोनों ग्रन्थोंके इन वाक्योंकी तुलनापरसे ऐसा मालूम होता है कि छेदशास्त्रसे छेदपिण्ड कुछ उत्तरवर्ती कृति है; क्योंकि उसमें छेदशास्त्रके अनुसरणके साथ पहली गाथामें प्रायश्चित्तके नामोंमें कुछ वृद्धि की गई है, दूसरी गाथामें 'णवकारा' पदको 'पंचणमोक्कारा' पदके द्वारा स्पष्ट किया गया है और तीसरी गाथामें 'परिणामा' पदके पूर्व 'अविसुद्धा' विशेषण लगाकर उसके आशयको व्यक्त किया गया और 'अवराहा' पदके स्थानपर 'अदीचारा' जैसे सौम्य पदका प्रयोग करके उसके भावको सूचित किया गया है।

५४. **भावत्रिभंगी**(भावसंग्रह)—इस ग्रंथका नाम 'भावसंग्रह' भी है, जो कि अनेक प्राचीन ताडपत्रीय आदि प्रतियोंमें पाया जाता है। मूलमें 'मूलुत्तरभावसरूवं पवक्खामि'(गा.२), 'इदि गुणमग्गणठाणे भावा कहिया'(गा.११६), इन प्रतिज्ञा तथा समाप्ति-सूचक वाक्योंसे भी यह भावोंका एक संग्रह ही जान पड़ता है—भावोंको अधिकांशमें तीन भंग करके कहनेसे 'भावत्रिभंगी' भी इसका नाम रूढ हो गया है। इसमें जीवोंके १ औपशमिक, २ क्षायिक, ३ क्षायोपशमिक, ४ औदयिक और ५ पारिणामिक ऐसे पाँच मूलभावों और इनके क्रमशः २, ६, १८, २१, ३ ऐसे ५३ उत्तरभावोंका वर्णन किया गया है। और अधिकांश वर्णन १४ गुणस्थानों तथा १४ मार्गणाओंकी दृष्टिको लिये हुए हैं। ग्रंथ अपने विषयका अच्छा महत्वपूर्ण है और उसकी प्रशस्ति-सहित कुल गाथा संख्या १२३ (११६+७) है। माणिकचन्द्रग्रन्थमालामें मूलके साथ प्रशस्ति मुद्रित नहीं हुई है। उसे मैंने आरा जैन-सिद्धांतभवनकी एक ताडपत्रीय प्रति परसे मालूम करके उसकी सूचना ग्रंथमालाके मंत्री सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीको की थी और इसलिये उन्होंने 'ग्रन्थपरिचय' नामकी अपनी प्रस्तावनामें उसे दे दिया है। वह प्रशस्ति, जिससे ग्रन्थकार श्रुतमुनिका और उनके गुरुवोंका अच्छा परिचय मिलता है, इस प्रकार है:—

"अणुवद-गुरु-बालेंदू महव्वदे अभयचंद सिद्धंति ।
सत्थेऽभयसूरि-पहाचंदा खलु सुयमुणिस्स गुरू ॥ ११७ ॥
सिरिमूलसंघदेसिय[गण] पुत्थयगच्छ कोंडकुंदमुणिणाहं(कुंदाणं ?)
परमण्ण इंगलेसर्वलिम्मि जाद [स्स] मुणि पहद(हाण)स्स ॥ ११८ ॥
सिद्धंताऽहयचंदस्स य सिस्सो बालचंदमुणिपवरो ।
सो भवियकुवलयाणं आणंदकरो सया जयऊ ॥ ११६ ॥
सद्दागम-परमागम-तक्कागम-णिरवसेसवेदी हु ।
विजिद-सयलण्णवादी जयउ चिरं अभयसूरिसिद्धंति ॥ १२० ॥
णय-णिक्खेव-पमाणं जाणित्ता विजिद-सयल-परसमओ ।
वर-णिवइ-णिवह-वंदिय-पय-पम्मो चारुकित्तिमुणी ॥ १२१ ॥
णाद-णिखिलत्थसत्थो सयलणरिंदेहिं पूजिओ विमलो ।
जिण-मग्ग-गमण-सूरो जयउ चिरं चारुकित्तिमुणी ॥ १२२ ॥

वर-सारत्तय-णिउणो सुद्धप्परओ विरहिय-परभाओ ।
भवियाणं पडिबोहणपरो पहाचंदणाममुणी ॥ १२३ ॥
इति भावसंग्रहः समाप्तः ।"

इसमें बतलाया है कि श्रुतमुनिके अणुव्रतगुरु बालेन्दु-बालचन्द्र मुनि थे—बालचन्द्रमुनिसे उन्होंने श्रावकीय अहिंसादि पाँच अणुव्रत लिये थे, महाव्रतगुरु अर्थात् उन्हें मुनिधर्ममें दीक्षित करनेवाले आचार्य अभयचन्द्र सिद्धान्ती थे और शास्त्रगुरु अभयसूरि तथा प्रभाचन्द्र नामके मुनि थे। ये सभी गुरु-शिष्य (संभवतः प्रभाचन्द्रको छोड़कर[1]) मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छके कुन्दकुन्दान्वयकी इंगलेश्वर शाखामें हुए हैं। इनमें बालचन्द्रमुनि भी अभयचन्द्र-सिद्धान्तीके शिष्य थे और इससे वे श्रुतमुनिके ज्येष्ठ गुरुभाई भी हुए। शास्त्रगुरुवोंमें अभयसूरि भी सिद्धान्ती थे, शब्दागम-परमागम-तर्कागमके पूर्णजानकार थे और उन्होंने सभी परवादियोंको जीता था; और प्रभाचन्द्रमुनि उत्तम सारत्रयमें अर्थात् प्रवचनसार, समयसार और पंचास्तिकायसार नामके ग्रंथोंमें निपुण थे, परभावसे रहित हुए शुद्धात्मस्वरूपमें लीन थे और भव्यजनोंको प्रतिबोध देनेमें सदा तत्पर थे। प्रशस्तिमें इन सभी गुरुवोंका जयघोष किया गया है, साथ ही गाथाओंमें चारुकीर्तिमुनिका भी जयघोष किया गया है, जोकि श्रवणबेल्गोलकी गद्दीके भट्टारकोंका एक स्थायी रूढनाम जान पड़ता है, और उन्हें नयों-निक्षेपों तथा प्रमाणोंके जानकार, सारे धर्मोंके विजेता, नृपगणसे वंदितचरण, समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता और जिनमार्गपर चलनेमें शूर प्रकट किया है।

ग्रंथमें रचनाकाल दिया हुआ नहीं और इससे ग्रंथकारका समय उसपरसे मालूम नहीं होता। परन्तु 'परमागमसार' नामके अपने दूसरे ग्रंथमें ग्रंथकारने रचनाकाल दिया है और वह है शक संवत् १२६३ (वि०सं० १३९८) वृष संवत्सर, मंगसिर सुदी सप्तमी, गुरुवारका दिन। जैसा कि उसकी निम्न गाथासे प्रकट है :—

सगगाले हु सहस्से विसय-तिसट्ठी १२६३ गदे दु विसवरिसे ।
मग्गसिरसुद्धसत्तमि गुरुवारे गंथसंपुण्णो ॥ २२४ ॥

इसके बाद उक्त ग्रन्थमें भी वही प्रशस्ति दी हुई है जो इस भावसंग्रहके अन्तमें पाई जाती है—मात्र चारुकीर्ति सम्बन्धी दूसरी गाथा (१२२) उसमें नहीं है। और इसपरसे श्रुतमुनिका समय बिलकुल सुनिश्चित होजाता है—वे विक्रमकी १४वीं शताब्दीके विद्वान् थे।

५५. **आस्रवत्रिभंगी**—यह ग्रन्थ भी भावत्रिभंगी (भावसंग्रह) के कर्ता श्रुतमुनिकी ही रचना है। इसमें मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग इन मूल आस्रवोंके क्रमशः ५, १२, २५, १५, ऐसे ५७ भेदोंका गुणस्थान और मार्गणाओंकी दृष्टिसे वर्णन है। ग्रंथ अपने विषयका अच्छा सूत्रग्रंथ है और उसमें गोम्मटसारादि दूसरे ग्रंथोंकी भी अनेक गाथाओंको अपनाकर ग्रंथका अंग बनाया गया है; जैसे 'मिच्छत्तं अविरमणं' नामकी दूसरी गाथा गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी ७८६ नं० की गाथा है और 'मिच्छोदएण मिच्छत्तं' नामकी तीसरी गाथा गोम्मटसार-जीवकाण्डकी १५ नंबरकी गाथा है। इस ग्रंथकी कुल गाथा-संख्या ६२ है। अन्तकी गाथामें 'बालेन्दु' (बालचन्द) का जयघोष किया गया है—जो कि श्रुतमुनिके अणुव्रत गुरु थे—और उन्हें विनेयजनोंसे पूजामाहात्म्यको प्राप्त तथा कामदेवके

---

[1] अपनी शाखाके गुरुवोंका उल्लेख करते हुए अभयसूरिके बाद प्रभाचन्द्रका जयघोष न करके चारुकीर्तिके भी बाद जो प्रभाचन्द्रका परिचय पद्य दिया गया है उसपरसे उनके उसी शाखाके मुनि होनेका सन्देह होता है।

प्रभावको निराकृत करनेवाले लिखा है। और इसलिये यह ग्रंथ भी विक्रमकी १४वीं शताब्दी की रचना है।

५६. परमागमसार—यह ग्रंथ भी भावत्रिभंगी (भावसंग्रह) के कर्ता श्रुतमुनिकी कृति है, और इसकी गाथासंख्या २३० है। वाक्यसूचीके समय यह ग्रंथ सामने नहीं था और इसलिये इसकी गाथाओंको सूचीमें शामिल नहीं किया जा सका। इस ग्रंथमें आठ अधिकार हैं—१ पंचास्तिकाय, २ षट्द्रव्य, ३ सप्ततत्त्व, ४ नवपदार्थ, ५ बन्ध, ६ बन्ध-कारण, ७ मोक्ष और मोक्षकारण[१]। और उनमें संक्षेपसे अपने अपने विषयका क्रमशः अच्छा वर्णन है। यह ग्रंथ मँगसिर सुदि सप्तमी शक संवत् १२६३ को गुरुवारके दिन बन कर समाप्त हुआ है; जैसा कि उस गाथासे प्रकट है जो भावत्रिभंगी (भावसंग्रह) के प्रकरण में उद्धृत की गई है। और जिसके अनन्तर चारुकीर्ति-विषयक दूसरी गाथाको छोड़कर, शेष सब प्रशस्ति वही दी हुई है जोकि भावसंग्रहकी ताड़पत्रीय प्रतिमें पाई जाती है और जिसे भावत्रिभंगी (भावसंग्रह) के प्रकरणमें ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। अस्तु, यह ग्रंथ ऐलक-पन्नालाल सरस्वती-भवन बम्बईमें मौजूद हैं। उसे देखकर अगस्त सन् १६२८ में जो नोट लिये गये थे उन्हींके आधारपर यह परिचय लिखा गया है।

५७. कल्याणालोचना—यह ५४ पद्योंमें वर्णित ग्रंथ आत्मकल्याणकी आलोचनाको लिये हुए है। इसमें आत्मसम्बोधनरूपसे अपनी भूलों-गलतियों-अपराधोंकी चिन्ता-विचारणा करते हुए अपनेसे जो दुष्कृत बने हैं, जिन-जिन जीवादिकोंकी जिस तिस प्रकारसे विराधना हुई है उन सबके लिये खेद व्यक्त किया है और 'मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज' जैसे शब्दों-द्वारा उन दुष्कृतोंके मिथ्या होनेकी भावना की है। अपने स्वभावसिद्ध निर्विकल्पज्ञान-दर्शनादिरूप एक आत्माको अथवा एक परमात्माको ही 'अपना शरण्य माना है और 'अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा' जैसे शब्दोंद्वारा उसकी बार बार घोषणा की है। साथ ही, जिनदेव-जिनशासनमें मति और संन्यासके साथ मरणको अपनी सम्पत् माना है। और अन्तमें 'एवं आराहंतो आलोयण-वंदणा-पडिक्कमणं' जैसे शब्दोंद्वारा अपने इस सब कृत्यको आलोचन, वन्दना तथा प्रतिक्रमणरूप धार्मिक क्रियाका आराधन बतलाया है। ग्रंथ साधारण है और सरल है।

ग्रन्थकारने ग्रंथकी अन्तिम गाथामें, 'णिद्दिट्ठं अजिय-बंभेण' इस वाक्यके द्वारा, अपना नाम 'अजितब्रह्म' सूचित किया है—और कोई विशेष परिचय अपना नहीं दिया। इससे ग्रंथकारके विषयमें अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, ब्रह्मअजितका बनाया हुआ एक 'हनुमच्चरित' जरूर उपलब्ध है, जिसे उन्होंने देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य भ० विद्यानन्दिके आदेशसे भृगुकच्छ नगरमें रचा है। और उससे मालूम होता है कि ब्रह्मअजित भ० देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे, उनके पिताका नाम वीरसिंह', माताका नाम 'वीधा' या 'पृथ्वी' (दो प्रतियोंमें दो प्रकारसे) और वंशका नाम 'गोलशृङ्गार' (गोलसिंघाड़) था। और इससे वे विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके विद्वान हैं; क्योंकि भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति और विद्यानंदिका यही समय पाया जाता है। बहुत संभव है कि दोनों ग्रंथोंके कर्ता ब्रह्मअजित एक ही हों, यदि ऐसा है तो इस ग्रंथको विक्रमकी १६वीं शताब्दीकी कृति समझना चाहिये।

५८. अङ्गप्रज्ञप्ति—यह ग्रंथ द्वादशाङ्गश्रुतकी प्रज्ञापनाको लिये हुए है। इसमें जिनेन्द्रकी द्वादशाङ्ग-वाणीके ११ अङ्गों और १४ पूर्वोंके स्वरूप, विषय, भेद और पद-संख्यादिका वर्णन है। आदि तीर्थंकर श्रीवृषभदेवकी वाणीसे कथनके प्रसंगको उठाया गया

---

१ पंचत्थिकाय दव्वं छक्कं तच्चाणि सत्त य पदत्था। एत्थ बन्धो तक्कारण मोक्खो तक्कारणं चेदि ॥ ६ ॥
अहियो अट्ठविहो जिणवयण-णिरूविदो उवित्थरदो। वोच्छामि समासेण य सुणुय जणा दत्त चित्ता हु ॥१०॥

है और फिर यह सूचना की गई है कि जिस प्रकार वृषभदेवने अपने वृषभसेन गणधरको उसके प्रश्नपर यह सब द्वादशाङ्गश्रुत प्रतिपादित किया है उसी प्रकार दूसरे तीर्थंकरोंने भी अपने अपने गणधरोंके प्रति प्रतिपादित किया है। तदनुसार ही श्रीवर्द्धमान तीर्थंकरके मुखकमलसे निकले हुए द्वादशाङ्गश्रुतज्ञानकी श्रीगौतम गणधरने अविरुद्ध रचना की और वह द्वादशाङ्ग-श्रुत बादको पूर्णतः अथवा खण्डशः जिन जिनको आचार्य-परम्परासे प्राप्त हुआ है उन आचार्योंका नामोल्लेख किया है। और इस तरह श्रुतज्ञानकी परम्पराको बतलाया है। इसकी कुल गाथा-संख्या २४८ है और वह तीन अधिकारोंमें विभक्त है। प्रथम अंगनिरूपणाधिकारमें ७७, दूसरे चतुर्दशपूर्वाधिकारमें ११७ और तीसरे चूलिकाप्रकीर्णकाधिकारमें ५४ गाथाएँ हैं।

इस ग्रंथके कर्ता भट्टारक शुभचन्द्र हैं, जिन्होंने ग्रंथमें अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार दी है :—सकलकीर्तिके पट्टशिष्य भुवनकीर्ति, भुवनकीर्तिके पट्टशिष्य ज्ञानभूषण, ज्ञानभूषणके शिष्य विजयकीर्ति और विजयकीर्तिके शिष्य शुभचन्द्र (ग्रंथकार)। शुभचन्द्र नामके यद्यपि अनेक विद्वान् आचार्य होगए हैं, जिनका समय भिन्न है और उनकी अनेक कृतियाँ भी अलग अलग पाई जाती हैं; परन्तु ये विजयकीर्तिके शिष्य और ज्ञानभूषण भ० के प्रशिष्य शुभचन्द्र विक्रमकी १६वीं शताब्दीके उत्तरार्ध और १७वीं शताब्दीके पूर्वार्धके विद्वान् हैं; क्योंकि इन्होंने संवत १५७३ में समयसारकलशाकी टीका 'परमाध्यात्मतरंगिणी' लिखी है, सं० १६०८ में पाण्डवपुराणकी तथा संवत् १६११ में करकंडुचरितकी और सं० १६१३ में कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकाको बनाकर समाप्त किया है[1]। पाण्डवपुराणमें चूँकि उन ग्रंथोंकी एक सूची दी हुई है जो उसकी रचनासे पहले बन चुके थे और उनमें अंगप्रज्ञप्तिका भी नाम है[2] अतः यह ग्रंथ वि० संवत् १६०८ से पहलेकी रचना है। कितने पहलेकी? यह नहीं कहा जा सकता—अधिकसे अधिक ३०-४० वर्ष पहलेकी हो सकती है।

५६. सिद्धान्तसार—यह ७६ गाथाओंका ग्रंथ सिद्धान्त-विषयक कुछ कथनोंके सारको लिए हुए है और वे कथन हैं—(१) चौदह मार्गणाओंमें १५ जीवसमास, १४ गुणस्थान, १५ योग, १२ उपयोग और ५७ प्रत्यय अर्थात् आस्रव; (२) चौदह जीवसमासोंमें १५ योग, १२ उपयोग तथा ५७ आस्रव, और (३) चौदह गुणस्थानोंमें १५ योग १२ उपयोग तथा ५७ आस्रव। इन सब कथनोंकी सूचना तृतीय गाथामें की गई है, जो इस प्रकार है:—

> जीव-गुणे तह जोए सपच्चए मग्गणासु उवओगे।
> जीव-गुणेसु वि जोगे उवजोगे पच्चए वुच्छं ॥ ३ ॥

इसके बाद क्रमशः मार्गणाओं, जीवसमासों और गुणस्थानोंमें योगों तथा उपयोगोंकी संख्यादिका कथन करके अन्तमें प्रत्ययों (आस्रवों) की संख्यादिका कथन किया गया है। यह ग्रंथ अपने विषयका एक महत्वका सूत्रग्रंथ है। इसमें अतिसंक्षेपसे—सूत्रपद्धतिसे-प्रायः सूचनारूपमें कथन किया गया है। और ग्रंथमें रही हुई त्रुटियोंको सुधारने तथा कमी की पूर्ति करनेका अधिकार भी ग्रंथकारने उन्हीं साधुओंको दिया है जो वरसूत्रगेह हैं—उत्तम सूत्रोंके मन्दिर हैं—साथ ही जिननाथके भक्त हैं, विरागचित्त हैं और (सम्यग्दर्शनादि-रूप) शिवमार्गसे युक्त हैं[3]। और इससे यह जाना जाता है कि ग्रंथकारमें ग्रंथके रचनेकी कितनी सावधानता थी। अस्तु।

---

१ देखो, वीरसेवामन्दिरका 'जैन-ग्रन्थ प्रशस्ति-संग्रह' पृ० ४२, ४७, ५४, १६६।

२ "कृता येनाङ्गप्रज्ञप्तिः सर्वाङ्गार्थप्ररूपिका"—२५-१८० ॥

३ सिद्धंतसारं वरसुत्तगेहा सोहंतु साहू मय-मोह-चत्ता।
पूरंतु हीणं जिणणाहभत्ता विरायचित्ता सिवमग्गजुत्ता ॥ ७६ ॥

इस ग्रंथके कर्ता, ७८वीं गाथामें आए हुए 'जिणइंदेण पउत्तं' वाक्यके अनुसार, 'जिनेन्द्र' नामके कोई साधु अथवा आचार्य मालूम होते हैं, जो आगम-भक्तिसे युक्त थे और जिन्होंने अपने आपको प्रवचन (आगम), प्रमाण (तर्क), लक्षण (व्याकरण), छन्द और अलंकारसे रहित-हृदय बतलाया है, और इस तरह इन अगाध और अपार शास्त्रोंमें अपनी गतिको अधिक महत्व न देकर अपनी विनम्रताको ही सूचित किया है। ग्रंथकारने अपने गुरु आदिका और कोई परिचय नहीं दिया और इसी लिये इनके विषय में ठीक तौरपर अभी कुछ कहना सहज नहीं है।

पंडित नाथूरामजी प्रेमीने, 'ग्रंथकर्ताओंका परिचय' नामकी प्रस्तावनामें, इस ग्रंथ का कर्ता जिनचन्द्राचार्यको बतलाया है और फिर जिनचन्द्राचार्यके विषयमें यह कल्पना की है कि वे या तो तत्त्वार्थसूत्रकी सुखबोधिका-टीकाके कर्ता भास्करनन्दीके गुरु जिनचन्द्र होंगे और या धर्मसंग्रहश्रावकाचारके कर्ता पं० मेधावीके गुरु जिनचन्द्र होंगे, दोनोंकी संभावना है, दोनों सिद्धान्तशास्त्रके पारंगत अथवा सैद्धान्तिक विद्वान् थे। और दोनोंमें भी अधिक संभावना पं० मेधावीके गुरु जिनचन्द्रकी बतलाई है; क्योंकि इस ग्रंथपर भ० ज्ञानभूषणकी एक संस्कृत टीका है, जो कि पं० मेधावीके गुरु जिनचन्द्रके कुछ ही पीछे प्रायः समकालीन हुए हैं, इसीसे उन्हें इस ग्रंथपर टीका लिखनेका उत्साह हुआ होगा। और इसलिये प्रेमीजीने इस ग्रन्थकी रचनाका समय भी वि० सं० १५१६ के लगभगका अनुमान किया है, जिस सम्वत्में पं० मेधावीने 'त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति' की एक दानप्रशस्ति लिखी है, जिससे उस समय उनके गुरु जिनचन्द्रका अस्तित्व जाना जाता है।

यहांपर इतना और भी जान लेना चाहिये कि ग्रन्थकी आदिमें 'श्रीजिनेन्द्राचार्य-प्रणीतः' विशेषणके द्वारा ग्रन्थका कर्ता जिनेन्द्राचार्यको ही सूचित किया है; परन्तु उक्त प्रस्तावनामें प्रेमीजीने लिखा है कि "प्रारम्भमें 'जिनेन्द्राचार्य' नाम संशोधककी भूलसे मुद्रित होगया है।" और संशोधक एवं सम्पादक पं० पन्नालालसोनीने ग्रंथके अन्तमें एक फुटनोट[१] द्वारा अपनी भूलको स्वीकार भी किया है। साथ ही, यह भी व्यक्त किया है कि किसी दूसरी मूलपुस्तकको देखकर उनसे यह भूल हुई है। और इसपरसे यह फलित होता है कि मूल पुस्तकमें ग्रंथकर्ताका नाम 'जिनेन्द्राचार्य' उपलब्ध है, टीकामें चूंकि 'जिनइंदेण' का अर्थ 'जिनचन्द्रनाम्ना' किया गया है इसीसे सम्पादकजीने मूलपुस्तकमें 'जिनेन्द्राचार्य' नाम होते हुए भी, अपनी भूल स्वीकार कर ली है और साथ ही उस पुस्तक (प्रति) लेखककी भी भूल मान ली है!! परन्तु मेरी रायमें जिसे टीकापरसे 'भूल' मान लिया गया है वह वास्तवमें भूल नहीं है; बल्कि टीकाकारकी ही भूल है। क्योंकि 'इंदेण' पदका अर्थ 'चन्द्रेण' घटित नहीं होता किन्तु 'इन्द्रेण' होता है और पूर्वमें 'जिन' शब्दके लगनेसे 'जिनेन्द्रेण' होजाता है। 'इंदेण' पदका अर्थ 'चंद्रेण' तभी हो सकता है जब 'इंद' का अर्थ 'चन्द्र' हो; परन्तु 'इंद' का अर्थ चन्द्र न होकर इन्द्र होता है, चन्द्र अर्थ 'इंदु' शब्दका होता है—'इन्द्र' का नहीं। शायद 'इंदु' शब्दकी कल्पना करके ही 'इंदेण' पदका अर्थ चंद्रेण किया गया हो, परन्तु इंदुका तृतीयाके एकवचनमें रूप 'इंदेण' नहीं होता किन्तु 'इंदुणा' होता है, और यहां स्पष्टरूपसे 'इंदेण' पदका प्रयोग है जिससे उसे 'इंदु' शब्दका तृतीयान्तरूप नहीं कहा जासकता। और इसलिये उससे चन्द्र अर्थ नहीं निकाला जासकता। चुनाँचे इस ग्रंथकी कनड़ी टीका-टिप्पणीमें भी 'जिनेन्द्रदेवाचार्य' नाम दिया है। यदि ग्रंथकारको यहां चन्द्र अर्थ विवक्षित होता तो वे सहजमें ही 'जिनइंदेण' की जगह 'जिनचंदेण' पद रख सकते थे और यदि 'जिनेन्दु' जैसे नामके लिये इन्दु शब्द ही विवक्षित होता तो वे उक्त पदको 'जिणइंदुणा' का रूप दे सकते थे, जिसके लिये छन्दकी दृष्टिसे भी कोई बाधा नहीं थी। परन्तु ऐसा कुछ भी

१ "प्रारंभे हि जिनेन्द्राचार्य इति विस्मृत्य लिखितोऽस्माभिरन्यन्मूलपुस्तकं विलोक्य।—सं०।"

नहीं है, और इसलिये 'जिनइंदेण' पदकी मौजूदगीमें उसपरसे ग्रंथकर्ताका नाम 'जिनचन्द्र' फलित नहीं किया जा सकता। ऐसी हालतमें जिनचन्द्रके सम्बन्धमें जो कल्पनाएँ की गई हैं, उनपर विचार करनेकी कोई जरूरत नहीं रहती। मेरे खयालमें जिणइंदका अर्थ जिनचन्द्र करनेमें संस्कृतटीकाकारादिकी उसी प्रकारकी भूल जान पड़ती है जिस प्रकारकी भूल परमात्मप्रकाशके टीकाकारादिकने 'जोइन्दु' का अर्थ 'योगीन्द्र' करनेमें की है और जिसका स्पष्टीकरण डा० उपाध्येने अपनी परमात्मप्रकाशकी प्रस्तावनामें किया है। वहाँ 'इन्दु' का अर्थ 'इन्द्र' किया गया है तो यहाँ 'इंद' का अर्थ 'इंदु'(चंद्र) कर दिया गया है!! अतः इस ग्रन्थके कर्ता 'जिनेन्द्र' का ठीक पता लगाना चाहिये कि वे किसके शिष्य अथवा गुरु थे, कब हुए हैं और उनके इस ग्रन्थके वाक्योंको कौन कौन ग्रन्थोंमें उद्धृत किया गया है।

६०. **नन्दिसंघ-पट्टावली**—इस पट्टावली[1] में १६ गाथाएँ हैं, जिनमेंसे १७ तो पट्टावली-विषयकी हैं और शेष दो विक्रम राजाकी उत्पत्ति आदिसे सम्बन्ध रखती हैं, जिनके अनुसार विक्रमकाल वीरनिर्वाणसे ४७० वर्षके बाद प्रारम्भ होता है। इनमेंसे किसी भी गाथामें संघ, गण, गच्छादिका कोई उल्लेख नहीं है। पट्टावलीकी आदिमें तीन पद्य संस्कृत भाषाके दिये हैं, जिनमें तीसरा पद्य बहुत कुछ स्खलित है, और उनके द्वारा इस प्राचीन पट्टावलीको मूलसंघकी नन्दि-आम्नाय, बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छके कुन्दकुन्दान्वयी गणाधिपों(आचार्यों)के साथ सम्बद्ध किया गया है। वे तीनों पद्य, जिनके क्रमाङ्क भी गाथाओंसे अलग हैं, इस प्रकार हैं:—

श्रीत्रैलोक्याधिपं नत्वा स्मृत्वा सद्गुरु-भारतीम् ।
वक्ष्ये पट्टावलीं रम्यां मूलसंघ-गणाधिपाम् ॥ १ ॥
श्रीमूलसंघ-प्रवरे नन्द्याम्नाये मनोहरे ।
बलात्कार-गणोत्तंसे गच्छे सारस्वतीयके ॥ २ ॥
कुन्दकुन्दान्वये श्रेष्ठं उत्पन्नं श्रीगणाधिपम् ।
तमेवाऽत्र प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सज्जना जनाः ॥ ३ ॥

इन पद्योंके अनन्तर पट्टावलीकी मूलगाथाओंका प्रारम्भ है और उनमें अन्तिम जिन(श्रीवीर भगवान)के निर्वाणके बाद क्रमशः होनेवाले तीन केवलियों, पाँच श्रुतकेवलियों, ग्यारह दशपूर्वधारियों पांच एकादशांगधारियों, चार दशांगादिके पाठियों और पांच एकांगके धारियोंका, उनके अलग-अलग अस्तित्वकालके वर्षों-सहित नामोल्लेख किया है। साथ ही, प्रत्येक वर्गके साधुओंका इकट्ठा काल भी दिया है, जैसे गौतमादि तीनों केवलियों का काल ६२ वर्ष, विष्णु-नन्दिमित्रादि पांचों श्रुतकेवलियोंका उसके बाद १०० वर्ष अर्थात् वीरनिर्वाणसे १६२ वर्ष पर्यन्त. तदनन्तर विशाखाचार्यादि ग्यारह दशपूर्वधारियोंका १८३ वर्ष, नक्षत्रादि पाँच एकादशांगधारियोंका १२३ वर्ष, सुभद्रादि चार दशांगादिकधारियों का ९७ वर्ष और अर्हद्बलि आदि पांच एकांगधारियोंका काल ११८ वर्ष। इस तरह वीर-निर्वाणसे ६८३ वर्ष तकके अर्सेमें होनेवाले केवलियों, श्रुतकेवलियों और अंगपूर्वके पाठियों की यह पट्टावली है। उस वक्त तक दिगम्बर सम्प्रदायमें कोई खास संघ-भेद नहीं हुआ था, और इसलिये बादको होनेवाले नन्दि-सेनादि सभी संघों और गण-गच्छोंके द्वारा यह पूर्वकी पट्टावली अपनाई जा सकती है। तदनुसार ही यह नन्दिसंघके द्वारा अपनाई गई है और इसीसे इसको नन्दिसंघ (बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ)की पट्टावली कहा जाता है। यह पट्टावली प्रत्येक आचार्यके अलग-अलग समयके निर्देशादिकी दृष्टिसे अपना खास महत्व

[1] देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर, भाग १ किरण ४ पृ० ७१।

रखती है। इस पट्टावलीमें वर्णित ६८३ वर्षकी यह संख्या किसी भी अंग-पूर्वादिके पूर्णतः पाठियोंके लिये दिगम्बरसमाजमें रूढ है, इसमें कहीं कोई विरोध नहीं पाया जाता। आंशिक रूपसे अंग-पूर्वादिके पाठी इन ६८३ वर्षों में भी हुए हैं और इनके बाद भी हुए हैं।

६१. सावयधम्मदोहा—यह २२४ दोहोंमें वर्णित श्रावकाचार-विषयका अच्छा ग्रंथ है, जिसे देहली आदिकी कुछ प्रतियोंमें 'श्रावकाचारदोहक' भी लिखा है और कुछ प्रतियों में 'उपासकाचार' जैसे नामोंसे भी उल्लेखित किया है। मूलके प्रतिज्ञावाक्यमें 'अक्खमि-सावयधम्मु' वाक्यके द्वारा इसका नाम श्रावकधर्म' सूचित किया। दोहाबद्ध होनेसे अनेक प्रतियोंमें दोहाबद्ध दोहक तथा दोहकसूत्र-जैसे विशेषणोंको भी साथमें लगाया गया है। इसके कर्ताका मूलपरसे कोई पता नहीं चलता। अनेक प्रतियोंके अन्तमें कर्तृ विषयक विभिन्न सूचनाएँ पाई जाती हैं—किसीमें जोगेन्दु तथा योगीन्द्रको, किसीमें लक्ष्मीचन्द्रको और किसीमें देवसेनको कर्ता बतलाया है। भाण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट पूनाकी एक सटीक प्रतिमें यहाँ तक लिखा है कि "मूलं योगीन्द्रदेवस्य लक्ष्मीचन्द्रस्य पंजिका"—अर्थात् मूलग्रंथ योगीन्द्रदेवका और उसपर पंजिका लक्ष्मीचन्द्रकी है। इन सब बातोंकी चर्चा और उनका ऊहापोह प्रो० हीरालालजी एम० ए० ने अपनी भूमिकामें किया है और देवसेनके भावसंग्रह-की गाथाओं नं० ३५० से ५६६ तकके साथ तुलना करके यह मालूम किया है कि दोनोंमें बहुत कुछ सादृश्य है और उसपरसे उन्हीं देवसेनको ग्रंथका कर्ता ठहराया है जिन्होंने विक्रम संवत् ६६० में अपने दूसरे ग्रंथ दर्शनसारको बनाकर समाप्त किया है। और इस तरह इस ग्रंथको १०वीं शताब्दीकी रचना सूचित किया है। परन्तु मेरी रायमें यह विषय अभी और भी विचारणीय है। शायद इसीसे प्रो० साहबने भी टाइटिल आदिपर ग्रंथनामके साथ उसके कर्ताका नाम निश्चित रूपमें प्रकट करना उचित नहीं समझा। अस्तु।

यह ग्रंथ अपभ्रंश भाषाका है। इसमें श्रावकीय प्रतिमाओं तथा व्रतादिकोंका वर्णन करते हुए एक स्थानपर लिखा है :—

एहुं धम्मु जो आयरइ बंभणु सुद्दु वि कोइ।
सो सावउ किं सावयहँ अण्णु कि सिरि मणि होइ॥ ७६॥

इसमें श्रावकका लक्षण बतलाते हुए कहा है कि—'इस धर्मका जो आचरण करता है, चाहे वह ब्राह्मण या शूद्र कोई भी हो, वही श्रावक है श्रावकके ऊपर और क्या कोई मणि होता है? अर्थात् श्रावकधर्मके पालनके सिवाय श्रावककी पहचानका और कोई चिन्ह नहीं है और श्रावकधर्मके पालनका सबको अधिकार है—उसमें कोई भी जाति-भेद बाधक नहीं है।

६२. पाहुडदोहा—यह २२० पद्योंका ग्रंथ है, जिसमें अधिकांश दोहे ही हैं—कुछ गाथा आदि दूसरे छंद भी पाये जाते हैं, और दो तीन पद्य संस्कृतके भी हैं। इसका विषय योगीन्दुके परमात्मप्रकाश तथा योगसारकी तरह प्रायः अध्यात्मविषयसे सम्बन्ध रखता है। दोनोंकी शैली-सरणि तथा उक्तियोंको भी इसमें अपनाया गया है. इतना ही नहीं बल्कि ५० के करीब दोहे इसमें ऐसे भी हैं जो परमात्मप्रकाशके साथ प्रायः एकता रखते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो योगसारके साथ समानभावको प्राप्त हैं। शायद इस समानताके कारण ही एक प्रतिमें[1] इसे 'योगीन्द्रदेवविरचित' लिख दिया है। परन्तु यह ग्रंथ रामसिंह-मुनिकृत है. जैसा कि २०६वें पद्यमें प्रयुक्त 'रामसीहु मुणि इम भणइ'-जैसे वाक्य[2]से प्रकट है

१ यह प्रति डा० ए० एन० उपाध्ये एम० ए० के पास एक गुटकेमें है।—देखो, 'अनेकान्त' वर्ष १, कि० ८-६-१०, पृ० ५४५।

२ अणुपेहा बारह वि जिया भविवि एक्कविएण।
रामसीहु मुणि इम भणइ सिवपुर पावहि जेण॥ २०६॥

और देहली नयामन्दिरकी प्रतिके अन्तमें, जो पौप शुक्ला ६ शुक्रवार संवत् १७६४ की लिखी हुई है, साफ लिखा है— "इति श्रीमुनिरामसिंहविरचितपाहुडदोहासमाप्तम् ।" यह ग्रंथ भी, 'सावयधम्मदोहा' की तरह, प्रो० हीरालालजी एम० ए० के द्वारा सम्पादित होकर अम्बालाल चवरे दि० जैन ग्रंथमालामें प्रकाशित हो चुका है।

ग्रंथमें ग्रंथकर्ताने अपना तथा अपने गुरु आदिका कोई खास परिचय नहीं दिया और न ग्रंथका रचनाकाल ही दिया है, इससे इनके विपयमें अभी विशेप कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रो० हीरालालजीने 'भूमिका' में बतलाया है कि 'इस ग्रंथके ४३ और २१५ नम्बरके दोहे वे ही हैं जो 'सावयधम्मदोहा' में क्रमशः नं० १२६ व ३० पर पाये जाते हैं। उनकी स्थिति 'सावयधम्मदोहा' में जैसी स्वाभाविक, उपयुक्त और प्रसंगोपयोगी है वैसी इस पाहुडदोहामें नहीं है, इसलिये वे वहीं परसे पाहुडदोहामें उद्धृत किये गये हैं। और चूँकि सावयधम्मदोहा दर्शनसारके कर्ता देवसेन (वि० सं० ६६०) की कृति है इसलिये यह पाहुडदोहा वि० सं० ६६० (ई० सन् ९३३) के बादकी कृति ठहरती है।' साथ ही, यह भी बतलाया है कि 'हेमचन्द्राचार्यने अपने व्याकरणमें अपभ्रंश-सम्बन्धी सूत्रोंके उदाहरणरूप पाँच दोहे ऐसे दिये हैं जो इस ग्रन्थपरसे परिवर्तित करके रक्खे गये मालूम होते हैं। चूँकि हेमचन्द्रका व्याकरण गुजरातके चालुक्यवंशी राजा सिद्धराजके राज्यकालमें—ई० सन् १०६३ और ११४३ के मध्यवर्ती समयमें—बना है। इससे प्रस्तुत ग्रन्थ सन् ११०० से पूर्वका बना हुआ सिद्ध होता है।' परन्तु हेमचन्द्रके व्याकरणमें उक्त दोहे जिस स्थितिमें पाये जाते हैं उसपरसे निश्चितरूपमें यह नहीं कहा जा सकता कि वे इसी ग्रन्थपरसे लिये गये हैं. परिवर्तन करके रखनेको बात उनके विपयके अनुमानको और भी कमजोर बना देती है—उदाहरणके तौरपर उद्धृत किये जानेवाले पद्योंमें स्वेच्छासे परिवर्तनकी बात कुछ जीको भी नहीं लगती। इसी तरह 'सावयधम्मदोहा' का देवसेनकृत होना भी अभी सुनिर्णीत नहीं है। ऐसी हालतमें इस ग्रंथका समय ई० सन् ६३३ के बादका और सन् ११०० से पूर्वका जो निश्चित किया गया है वह अभी सन्दिग्ध जान पड़ता है और विशेप विचारकी अपेक्षा रखता है। अतः ग्रंथके समय-सम्बन्धादिके विपयमें अधिक खोज होनेकी जरूरत है।

ग्रंथकार महोदयने इस ग्रंथमें जो उपदेश दिया है उसके कुछ अंशोंका सार प्रो० हीरालालजीके शब्दोंमें इस प्रकार है :—

"उनका (ग्रंथकारका) उपदेश है कि सुखके लिये बाहरके पदार्थोंपर अवलम्बित होनेकी आवश्यकता नहीं है, इससे तो केवल दुःख और संताप ही बढ़ेगा। सच्चा सुख इन्द्रियोंपर विजय और आत्मध्यानमें ही मिलता है। यह सुख इंद्रियसुखाभासोंके समान क्षणभंगुर नहीं है, किन्तु चिरस्थायी और कल्याणकारी है, आत्माकी शुद्धिके लिये न तीर्थ-जलकी आवश्यकता है, न नानाप्रकारका वेप धारण करनेकी। आवश्यकता है केवल, राग और द्वेपकी प्रवृत्तियोंको रोककर, आत्मानुभवकी। मूंड मुंडानेसे, केश लौंचकरनेसे या नग्न होनेसे ही कोई सच्चा योगी और मुनि नहीं कहा जा सकता। योगी तो तभी होगा जब समस्त अंतरंग परिग्रह छूट जावे और मन आत्मध्यानमें विलीन होजावे। देवदर्शन के लिये पापाणके बड़े बड़े मन्दिर बनवाने तथा तीर्थों-तीर्थों भटकनेकी अपेक्षा अपने ही शरीरके भीतर निवास करनेवाले देवका दर्शन करना अधिक सुखप्रद और कल्याणकारी है। आत्मज्ञानसे हीन क्रियाकांड कणरहित तुप और पयाल कूटनेके समान निप्फल हैं। ऐसे व्यक्तिको न इन्द्रियसुख ही मिलता और न मोक्षका मार्ग ही।"

६३. सुप्रभदोहा—यह प्रायः दोहोंमें नीति, धर्म और अध्यात्म-विपयकी शिक्षा-को लिये हुए अपभ्रंश भाषाका एक ग्रंथ है, जिसकी पद्य-संख्या ७७ है और जो अभी तक

अप्रकाशित जान पड़ता है। इसमें प्रायः आत्मा, मन और धार्मिकों तथा योगियोंको सम्बोधन करके ही उपदेश दिया गया है और दान, परोपकार, आत्मध्यान, संसार-विरक्ति एवं अर्हद्भक्तिकी प्रेरणा की गई है।

इसके रचयिता सुप्रभाचार्य हैं, जिन्होंने प्रायः प्रत्येक पद्यमें 'सुप्पह भणइ' जैसे वाक्यके द्वारा अपने नामका निर्देश किया है और एक स्थानपर (दोहा ५६ में) 'सुप्पहु भणइ मुणीसरहु' वाक्यके द्वारा अपनेको 'मुनीश्वर' भी सूचित किया है; परन्तु अपना तथा अपने गुरु आदिका अन्य कोई विशेष परिचय नहीं दिया। और इसलिये इनके विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, ग्रंथपरसे इतना स्पष्ट है कि ये निर्ग्रन्थ जैन मुनि थे—निर्ग्रन्थ-तपश्चरण और निरंजन भावको प्राप्त करनेकी इन्होंने प्रेरणा की है।

इस ग्रंथकी एक प्रति नयामन्दिर धर्मपुरा देहलीके शास्त्रभण्डारमें मौजूद है, जो श्रावणशुक्ला ४ सोमवार विक्रम संवत् १८३५ की लिखी हुई है; जैसाकि उसके अन्तकी निम्न पुष्पिकासे प्रकट है:—

"इति श्रीसुप्रभाचार्यविरचितदोहा समाप्ता। संवत् १८३५ वर्षे शाके १७०० मीति श्रावणशुक्ल ४ वार शोमवार लीपते लोकमदपठनार्थ। लिष्यौ आणंदरामजीका-देहरामें संपूर्ण कियो। शुभं भवतु।"

इस ग्रन्थकी आदिमें कोई मंगलाचरण अथवा प्रतिज्ञा-वाक्य नहीं है—ग्रन्थ 'इक्कहिं घरे वधावणउ' से प्रारम्भ होता है— और अन्तमें समाप्तिसूचक पद्य भी नहीं है। यहाँ ग्रन्थके कुछ पद्य नमूनेके तौरपर नीचे दिये जाते हैं, जिससे पाठकोंको उसके भाषा-साहित्य और उक्तियों आदिका कुछ आभास प्राप्त हो सके:—

इक्कहिं घरे वधावणउ, अण्णहिं घरि धाहहिं रोविज्जइ।
परमत्थइं सुप्पहु भणइ, किम वइरायभावु ण उ किज्जइ॥ १॥
अह घरु करि दाणेण सहुं, अह तउ करि णिग्गंथु।
विह चुक्कउ सुप्पहु भणइ, रे जिय इत्थ ण उत्थ॥ ५॥
जिम झाइज्जइ वल्लहु, तिम जइ जिय अरहंतु।
सुप्पहु भणइ ते माणुसहं, सग्गु घरंगणि हुंतु॥ ६॥
धणु दीणहं गुणसज्जणहं, मणु धम्महं जो देइ।
तहं पुरिसहं सुप्पहु भणइ, विहि दासत्तु करेइ॥ ३८॥
जसु मणु जीवइ विसयवसु, सो णर मुवा भणेहु।
जसु पुणु सुप्पहु मण मरय, सो णह जियउ भणेहु॥ ६०॥
जसु लग्गउ सुप्पहु भणइ, पियघर—घरणि—पिसाउ।
सो किं कहिउ समायरइ, मित्त णिरंजण-भाउ॥ ६१॥
जिम चिंतिज्जइ घरु घरणि, तिम जइ परउवयारु।
सो णिच्छउ सुप्पहु भणइ, खणि तुट्टइ संसारु॥ ६४॥
सो घरवइ सुप्पहु भणइ, जसु कर दाणि वहंति।
जो पुणु संचे धणु जि धणु, सो णरु संढु भणंति॥ ७६॥

ग्रन्थकी उक्त देहली-प्रतिके साथ कर्तृनाम-विहीन एक छोटीसी संस्कृत टीका भी लगी हुई है जो बहुत कुछ साधारण तथा अपर्याप्त है और कहीं कहीं अर्थके विपर्यासको भी लिये हुए है।

६४. सन्मतिसूत्र और सिद्धसेन—'सन्मतिसूत्र' जैनवाङ्मयमें एक महत्वका गौरवपूर्ण ग्रंथरत्न है, जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें समानरूपसे माना जाता है। श्वेताम्बरोंमें यह 'सम्मतितर्क', 'सम्मतितर्कप्रकरण' तथा 'सम्मतिप्रकरण' जैसे नामोंसे अधिक प्रसिद्ध है, जिनमें 'सन्मति' की जगह 'सम्मति' पद अशुद्ध है और वह प्राकृत 'सम्मइ' पदका गलत संस्कृत रूपान्तर है। पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने, ग्रन्थका गुजराती अनुवाद प्रस्तुत करते हुए, प्रस्तावनामें इस गलतीपर यथेष्ट प्रकाश डाला है और यह बतलाया है कि 'सन्मति' भगवान महावीरका नामान्तर है, जो दिगम्बर-परम्परामें प्राचीनकालसे प्रसिद्ध तथा 'धनञ्जयनाममाला' में भी उल्लेखित है, ग्रन्थ नामके साथ उसकी योजना होनेसे वह महावीरके सिद्धान्तोंके साथ जहाँ ग्रन्थके सम्बन्धको दर्शाता है वहाँ श्लेषरूपसे श्रेष्ठ मति अर्थका सूचन करता हुआ ग्रन्थकर्ताके योग्य स्थान-को भी व्यक्त करता है और इसलिये औचित्यकी दृष्टिसे 'सम्मति' के स्थानपर 'सन्मति' नाम ही ठीक बैठता है। तदनुसार ही उन्होंने ग्रन्थका नाम 'सन्मति-प्रकरण' प्रकट किया है दिगम्बर-परम्पराके धवलादिक प्राचीन ग्रन्थोंमें यह सन्मतिसूत्र (सम्मइसुत्त) नामसे ही उल्लेखित मिलता है[1] और यह नाम सन्मति-प्रकरण नामसे भी अधिक औचित्य रखता है; क्योंकि इसकी प्रायः प्रत्येक गाथा एक सूत्र है अथवा अनेक सूत्रवाक्योंको साथमें लिये हुए है। पं० सुखलालजी आदिने भी प्रस्तावना (पृ० ६३) में इस बातको स्वीकार किया है कि 'सम्पूर्ण सन्मति ग्रंथ सूत्र कहा जाता है और इसकी प्रत्येक गाथाको भी सूत्र कहा गया है।' भावनगरकी श्वेताम्बर सभासे वि० सं० १९६५ में प्रकाशित मूलप्रतिमें भी "श्रीसंमतिसूत्रं समाप्तमिति भद्रम्" वाक्यके द्वारा इसे सूत्र नामके साथ ही प्रकट किया है—तर्क अथवा प्रकरण नामके साथ नहीं।

इसकी गणना जैनशासनके दर्शन-प्रभावक ग्रंथोंमें है। श्वेताम्बरोंके 'जीतकल्पचूर्णि' ग्रंथकी श्रीचन्द्रसूरि-विरचित विषमपदव्याख्या' नामकी टीकामें श्रीअकलङ्कदेवके 'सिद्धि-विनिश्चय' ग्रंथके साथ इस 'सन्मति' ग्रंथका भी दर्शनप्रभावक ग्रंथोंमें नामोल्लेख किया गया है और लिखा है कि 'ऐसे दर्शनप्रभावक शास्त्रोंका अध्ययन करते हुए साधुको अकल्पित प्रतिसेवनाका दोष भी लगे तो उसका कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं है, वह साधु शुद्ध है।' यथा—

"दंसण त्ति—दंसण-पभावगाणि सत्थाणि सिद्धिविणिच्छय-सम्मत्यादि गिण्हंतोऽसंथरमाणो जं अकप्पियं पडिसेवइ जयणाए तत्थ सो सुद्धोऽप्रायश्चित्त इत्यर्थः[2]।"

इससे प्रथमोल्लेखित सिद्धिविनिश्चयकी तरह यह ग्रंथ भी कितने असाधारण महत्व-का है इसे विज्ञपाठक स्वयं समझ सकते हैं। ऐसे ग्रंथ जैनदर्शनकी प्रतिष्ठाको स्व-पर हृदयोंमें अंकित करने वाले होते हैं। तदनुसार यह ग्रंथ भी अपनी कीर्तिको अक्षुण्ण बनाये हुए है।

इस ग्रंथके तीन विभाग हैं जिन्हें 'काण्ड' संज्ञा दी गई है। प्रथम काण्डको कुछ हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियोंमें 'नयकाण्ड' बतलाया है—लिखा है "नयकंडं सम्मत्तं"—और यह ठीक ही है; क्योंकि सारा काण्ड नयके ही विषयको लिये हुए है और उसमें द्रव्या-र्थिक तथा पर्यायार्थिक दो नयोंको मूलाधार बनाकर और यह बतलाकर कि 'तीर्थंकर

---

१ "अणेण सम्मइसुत्तेण सह कथमिदं वक्खाणं ण विरुज्झदे ? इदि ण, तत्थ पज्जायस्स लक्खणं खइओ भावब्भुवगमादो।" (धवला १)
"ण च सम्मइसुत्तेण सह विरोहो उजुसुद-णय-विसय-भावणिक्खेवमस्सिदूण तप्पउत्तीदो।" (जयधवला १)

२ श्वेताम्बरोंके निशीथ ग्रन्थकी चूर्णिमें भी ऐसा ही उल्लेख है:—
'दंसणगाही—दंसणणाणप्पभावगाणि सत्थाणि सिद्धिविणिच्छय-संमतिमादि गेण्हंतो असंथरमाणे जं अकप्पियं पडिसेवति जयणाते तत्थ सो सुद्धो अप्रायश्चित्ती भवतीत्यर्थः।" (उद्देशक १)

वचनोंके सामान्य और विशेषरूप प्रस्तारके मूलप्रतिपादक ये ही दो नय हैं—शेष सब नय इन्हींके विकल्प हैं,[1] उन्हींके भेद-प्रभेदों तथा विषयका अच्छा सुन्दर विवेचन और संसूचन किया गया है। दूसरे काण्डको उन प्रतियोंमें 'जीवकाण्ड' बतलाया है—लिखा है "जीव-कंडयं सम्मत्तं"। पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीकी रायमें यह नामकरण ठीक नहीं है, इसके स्थानपर, 'ज्ञानकाण्ड' या 'उपयोगकाण्ड' नाम होना चाहिये; क्योंकि इस काण्डमें, उनके कथनानुसार, जीवतत्त्वकी चर्चा ही नहीं है—पूर्ण तथा मुख्य चर्चा ज्ञानकी है। यह ठीक है कि इस काण्डमें ज्ञानकी चर्चा एक प्रकारसे मुख्य है परन्तु वह दर्शनकी चर्चाको भी साथमें लिये हुए है—उसीसे चर्चाका प्रारंभ है—और ज्ञान-दर्शन दोनों जीवद्रव्यकी पर्याय हैं, जीवद्रव्यसे भिन्न उनकी कहीं कोई सत्ता नहीं, और इसलिये उनकी चर्चाको जीवद्रव्य की ही चर्चा कहा जा सकता है। फिर भी ऐसा नहीं है कि इसमें प्रकटरूपसे जीवतत्त्वकी कोई चर्चा ही न हो—दूसरी गाथामें 'दव्वट्ठिओ वि होऊण दंसणे पज्जवट्ठिओ होई' इत्यादिरूपसे जीवद्रव्यका कथन किया गया है, जिसे पं० सुखलालजी आदिने भी अपने अनुवादमें 'आत्मा दर्शन वखते" इत्यादिरूपसे स्वीकार किया है। अनेक गाथाओंमें कथन-सम्बन्धको लिये हुए सर्वज्ञ, केवली, अर्हन्त तथा जिन जैसे अर्थपदोंका भी प्रयोग है जो जीवके ही विशेष हैं। और अन्तकी 'जीवो अणाइणिहणो' से प्रारंभ होकर 'अण्णे वि य जीवपज्जाया' पर समाप्त होनेवाली सात गाथाओंमें तो जीवका स्पष्ट ही नामोल्लेख-पूर्वक कथन है—वही चर्चाका विषय बना हुआ है। ऐसी स्थितिमें यह कहना समुचित प्रतीत नहीं होता कि 'इस काण्डमें जीवतत्त्वकी चर्चा ही नहीं है' और न 'जीवकाण्ड' इस नामकरणको सर्वथा अनुचित अथवा अयथार्थ ही कहा जा सकता है। कितने ही ग्रंथोंमें ऐसी परिपाटी देखनेमें आती है कि पर्व तथा अधिकारादिके अन्तमें जो विषय चर्चित होता है उसीपरसे उस पर्वादिकका नामकरण किया जाता है[2], इस दृष्टिसे भी काण्डके अन्तमें चर्चित जीवद्रव्यकी चर्चाके कारण उसे 'जीवकाण्ड' कहना अनुचित नहीं कहा जा सकता। अब रही तीसरे काण्डकी बात, उसे कोई नाम दिया हुआ नहीं मिलता। जिस किसीने दो काण्डोंका नामकरण किया है उसने तीसरे काण्डका भी नामकरण जरूर किया होगा, संभव है खोज करते हुए किसी प्राचीन प्रतिपरसे वह उपलब्ध हो जाए। डाक्टर पी० एल० वैद्य एम० ए० ने, न्यायावतारकी प्रस्तावना (Introduction) में, इस काण्डका नाम असंदिग्धरूपसे 'अनेकान्तवादकाण्ड' प्रकट किया है। मालूम नहीं यह नाम उन्हें किस प्रति परसे उपलब्ध हुआ है। काण्डके अन्तमें चर्चित विषयादिककी दृष्टिसे यह नाम भी ठीक हो सकता है। यह काण्ड अनेकान्तदृष्टिको लेकर अधिकाँशमें सामान्य-विशेषरूपसे अर्थकी प्ररूपणा और विवेचनाको लिये हुए है, और इसलिये इसका नाम 'सामान्य-विशेषकाण्ड' अथवा 'द्रव्य-पर्याय-काण्ड' जैसा भी कोई हो सकता है। पं० सुखलालजी और पं० बेचर-दासजीने इसे 'ज्ञेय-काण्ड' सूचित किया है, जो पूर्वकाण्डको 'ज्ञानकाण्ड' नाम देने और दोनों काण्डोंके नामोंमें श्रीकुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीत प्रवचनसारके ज्ञान-ज्ञेयाधिकारनामोंके साथ समानता लानेकी दृष्टिसे सम्बद्ध जान पड़ता है।

इस ग्रंथकी गाथा-संख्या ५४, ४३, ७० के क्रमसे कुल १६७ है। परन्तु पं० सुखलाल-जी और पं० बेचरदासजी उसे अब १६६ मानते हैं; क्योंकि तीसरे काण्डमें अन्तिम गाथाके पूर्व जो निम्न गाथा लिखित तथा मुद्रित मूलप्रतियोंमें पाई जाती है उसे वे इसलिये बादको प्रक्षिप्त हुई समझते हैं कि उसपर अभयदेवसूरिकी टीका नहीं है:—

---

१ तित्थयर-वयण-संगह-विसेस-पत्थारमूलवागरणी। दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ य सेसा वियप्पासिं ॥ ३ ॥

२ जैसे जिनसेनकृत हरिवंशपुराणके तृतीय सर्गका नाम 'श्रेणिकप्रश्नवर्णन', जब कि प्रश्नके पूर्वमें वीरके विहारादिका और तत्त्वोपदेशका कितना ही विशेष वर्णन है।

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स ॥ ६९ ॥

इसमें बतलाया है कि 'जिसके बिना लोकका व्यवहार भी सर्वथा बन नहीं सकता उस लोकके अद्वितीय (असाधारण) गुरु अनेकान्तवादका नमस्कार हो।' इस तरह जो अनेकान्तवाद इस सारे ग्रंथकी आधार-शिला है और जिसपर उसके कथनोंकी ही पूरी प्राण-प्रतिष्ठा ही अवलम्बित नहीं है बल्कि उस जिनवचन, जैनागम अथवा जैनशासनकी भी प्राण-प्रतिष्ठा अवलम्बित है जिसकी अगली (अन्तिम) गाथामें मंगल-कामना की गई है और ग्रंथकी पहली (आदिम) गाथामें जिसे 'सिद्धशासन' घोषित किया गया है, उसीकी गौरव-गरिमाको इस गाथामें अच्छे युक्तिपुरस्सर ढंगसे प्रदर्शित किया गया है। और इस लिये यह गाथा अपनी कथनशैली और कुशल-साहित्य-योजनापरसे ग्रंथका अंग होनेके योग्य जान पड़ती है तथा ग्रंथकी अन्त्य मंगल-कारिका मालूम होती है। इसपर एकमात्र अमुक टीकाके न होनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि वह मूलकारके द्वारा योजित न हुई होगी; क्योंकि दूसरे ग्रंथोंकी कुछ टीकाएं ऐसी भी पाई जाती हैं जिनमेंसे एक टीकामें कुछ पद्य मूलरूपमें टीका-सहित हैं तो दूसरीमें वे नहीं पाये जाते[1] और इसका कारण प्रायः टीकाकारको ऐसी मूल प्रतिका ही उपलब्ध होना कहा जा सकता है जिसमें वे पद्य न पाये जाते हों। दिगम्बराचार्य सुमति (सन्मति) देवकी टीका भी इस ग्रंथपर बनी है, जिसका उल्लेख वादिराजने अपने पार्श्वनाथचरित (शक सं० ९४७) के निम्न पद्यमें किया है :—

नमः सन्मतये तस्मै भव-कूप-निपातिनाम्।
सन्मतिर्विवृता येन सुखधाम-प्रवेशिनी ॥

यह टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई—खोजका कोई खास प्रयत्न भी नहीं हो सका। इसके सामने आनेपर उक्त गाथा तथा और भी अनेक बातोंपर प्रकाश पड़ सकता है; क्योंकि यह टीका सुमतिदेवकी कृति होनेसे ११वीं शताब्दीके श्वेताम्बरीय आचार्य अभयदेवकी टीकासे कोई तीन शताब्दी पहलेकी बनी हुई होनी चाहिये। श्वेताम्बराचार्य मल्लवादीकी भी एक टीका इस ग्रंथपर पहले बनी है, जो आज उपलब्ध नहीं है और जिसका उल्लेख हरिभद्र तथा उपाध्याय यशोविजयके ग्रंथोंमें मिलता है[2]।

इस ग्रंथमें, विचारको दृष्टि प्रदान करनेके लिये, प्रारम्भसे ही द्रव्यार्थिक (द्रव्यास्तिक) और पर्यायार्थिक (पर्यायास्तिक) दो मूल नयोंको लेकर नयका जो विषय उठाया गया है वह प्रकारान्तरसे दूसरे तथा तीसरे काण्डमें भी चलता रहा है और उसके द्वारा नयवाद-पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यहाँ नयका थोड़ा-सा कथन नमूनेके तौरपर प्रस्तुत किया जाता है, जिससे पाठकोंको इस विषयकी कुछ झाँकी मिल सके :—

प्रथम काण्डमें दोनों नयोंके सामान्य-विशेषविषयको मिश्रित दिखलाकर उस मिश्रितपनाकी चर्चाका उपसंहार करते हुए लिखा है—

दव्वट्ठिओ त्ति तम्हा णत्थि णओ नियम सुद्धजाईओ।
ण य पज्जवट्ठिओ णाम कोई भयणाय उ विसेसो ॥ ९ ॥

---

१ जैसे समयसारादि ग्रन्थोंकी अमृतचन्द्रसूरिकृत तथा जयसेनाचार्यकृत टीकाएँ, जिनमें कतिपय गाथाओंकी न्यूनाधिकता पाई जाती है।

२ "उक्तं च वादिमुख्येन श्रीमल्लवादिना सन्मतौ" (अनेकान्तजयपताका)
"इहार्थे कोटिशो भङ्गा निर्दिष्टा मल्लवादिना।
मूलसम्मति-टीकायामिदं दिङ्मात्रदर्शनम् ॥" —(अष्टसहस्री-टिप्पण) पृ० प्र० पृ०४०

'अतः कोई द्रव्यार्थिक नय ऐसा नहीं जो नियमसे शुद्धजातीय हो—अपने प्रतिपक्षी पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा न रखता हुआ उसके विषय-स्पर्शसे मुक्त हो। इसी तरह पर्यायार्थिक नय भी कोई ऐसा नहीं जो शुद्धजातीय हो—अपने विपक्षी द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा न रखता हुआ उसके विषय-स्पर्शसे रहित हो। विवक्षाको लेकर ही दोनोंका भेद हैं—विवक्षा मुख्य-गौणके भावको लिये हुए होती है. द्रव्यार्थिकमें द्रव्य-सामान्य मुख्य और पर्याय-विशेष गौण होता है और पर्यायार्थिकमें विशेष मुख्य तथा सामान्यगौण होता है।'

इसके बाद बतलाया है कि—'पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें द्रव्यार्थिकनयका वक्तव्य (सामान्य) नियमसे अवस्तु है। इसी तरह द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें पर्यायार्थिकनयका वक्तव्य (विशेष) अवस्तु है। पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें सर्व पदार्थ नियमसे उत्पन्न होते हैं और नाशको प्राप्त होते हैं। द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें न कोई पदार्थ उत्पन्न होता है और न नाशको प्राप्त होता है। द्रव्य पर्याय (उत्पाद-व्यय) के विना और पर्याय द्रव्य (ध्रौव्य) के विना नहीं होते; क्योंकि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनों द्रव्य-सत्का अद्वितीय लक्षण हैं[1]। ये तीनों एक दूसरेके साथ मिलकर ही रहते हैं, अलग-अलगरूपमें ये द्रव्य (सत्) के कोई लक्षण नहीं होते और इसलिये दोनों मूलनय अलग-अलगरूपमें—एक दूसरेकी अपेक्षा न रखते हुए—मिथ्यादृष्टि हैं। तीसरा कोई मूलनय नहीं है[2] और ऐसा भी नहीं कि इन दोनों नयोंमें यथार्थपना न समाता हो—वस्तुके यथार्थ स्वरूपको पूर्णतः प्रतिपादन करनेमें ये असमर्थ हों—; क्योंकि दोनों एकान्त (मिथ्यादृष्टियाँ) अपेक्षाविशेषको लेकर ग्रहण किये जाते ही अनेकान्त (सम्यग्दृष्टि) बन जाते हैं। अर्थात् दोनों नयोंमेंसे जब कोई भी नय एक दूसरेकी अपेक्षा न रखता हुआ अपने ही विषयको सत्रूप प्रतिपादन करनेका आग्रह करता है तब वह अपने द्वारा ग्राह्य वस्तुके एक अंशमें पूर्णताका माननेवाला होनेसे मिथ्या है और जब वह अपने प्रतिपक्षी नयकी अपेक्षा रखता हुआ प्रवर्तता है—उसके विषयका निरसन न करता हुआ तटस्थरूपसे अपने विषय (वक्तव्य) का प्रतिपादन करता है—तब वह अपने द्वारा ग्राह्य वस्तुके एक अंशको अंशरूपमें ही (पूर्णरूपमें नहीं) माननेके कारण सम्यक् व्यपदेशको प्राप्त होता है। इस सब आशयकी पाँच गाथाएँ निम्न प्रकार हैं—

दव्वट्ठिय-वत्तव्वं अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स।
तह पज्जवत्थु अवत्थुमेव दव्वट्ठियणयस्स॥ १०॥
उप्पज्जंति वियंति य भावा पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सया अणुप्पण्णमविणट्ठं॥ ११॥
दव्वं पज्जव-विउयं दव्व-विउत्ता य पज्जवा णत्थि।
उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा हंदि दवियलक्खणं एयं॥ १२॥
एए पुण संगहओ पाडिक्कमलक्खणं दुवेण्हं पि।
तम्हा मिच्छादिट्ठी पत्तेयं दो वि मूल-णया॥ १३॥

---

१ "पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जवा णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति॥ १-१२॥"
—पञ्चास्तिकाये, श्रीकुन्दकुन्दः।

सद्द्रव्यलक्षणम्॥ २९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्॥ ३०॥ —तत्त्वार्थसूत्र अ० ५।

२ तीसरे काण्डमें गुणार्थिक (गुणास्तिक) नयकी कल्पनाको उठाकर स्वयं उसका निरसन किया गया है (गा० ९ से १५)।

ण य तइयो अत्थि णओ ण य सम्मत्तं ण तेसु पडिपुण्णं।
जेण दुवे एगंता विभज्जमाणा अणेगंतो॥ १४॥

इन गाथाओंके अनन्तर उत्तर नयोंकी चर्चा करते हुए और उन्हें भी मूलनयोंके समान दुर्नय तथा सुनय प्रतिपादन करते हुए और यह बतलाते हुए कि किसी भी नयका एक-मात्र पक्ष लेनेपर संसार, सुख, दुःख, बन्ध और मोक्षकी कोई व्यवस्था नहीं बन सकती, सभी नयोंके मिथ्या तथा सम्यक् रूपको स्पष्ट करते हुए लिखा है—

तम्हा सव्वे वि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा।
अण्णोण्णणिस्सिआ उण हवंति सम्मत्तसब्भावा॥ २१॥

'अतः सभी नय—चाहे वे मूल, उत्तर या उत्तरोत्तर कोई भी नय क्यों न हों—जो एकमात्र अपने ही पक्षके साथ प्रतिबद्ध हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं—वस्तुको यथार्थरूपसे देखने-प्रतिपादन करनेमें असमर्थ हैं। परन्तु जो नय परस्परमें अपेक्षाको लिये हुए प्रवर्तते हैं वे सब सम्यग्दृष्टि हैं—वस्तुको यथार्थरूपसे देखने-प्रतिपादन करनेमें समर्थ हैं।'

तीसरे काण्डमें, नयवादकी चर्चाको एक दूसरे ही ढंगसे उठाते हुए, नयवादके परिशुद्ध और अपरिशुद्ध ऐसे दो भेद सूचित किये हैं, जिनमें परिशुद्ध नयवादको आगम-मात्र अर्थका—केवल श्रुतप्रमाणके विषयका—साधक बतलाया है और यह ठीक ही है; क्योंकि परिशुद्धनयवाद सापेक्षनयवाद होनेसे अपने पक्षका—अंशोंका—प्रतिपादन करता हुआ परपक्षका—दूसरे अंशोंका—निराकरण नहीं करता और इसलिये दूसरे नयवादके साथ विरोध न रखनेके कारण अन्तको श्रुतप्रमाणके समग्र विषयका ही साधक बनता है। और अपरिशुद्ध नयवादको 'दुर्निक्षिप्त' विशेषणके द्वारा उल्लेखित करते हुए स्वपक्ष तथा परपक्ष दोनोंका विघातक लिखा है और यह भी ठीक ही है; क्योंकि वह निरपेक्षनयवाद होनेसे एकमात्र अपने ही पक्षका प्रतिपादन करता हुआ अपनेसे भिन्न पक्षका सर्वथा निरा-करण करता है—विरोधवृत्ति होनेसे उसके द्वारा श्रुतप्रमाणका कोई भी विषय नहीं सधता और इस तरह वह अपना भी निराकरण कर बैठता है। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि वस्तुका पूर्णरूप अनेक सापेक्ष अंशों—धर्मोंसे निर्मित है जो परस्पर अविनाभाव-सम्बन्धको लिये हुए है, एकके अभावमें दूसरेका अस्तित्व नहीं बनता, और इसलिये जो नयवाद परपक्षका सर्वथा निषेध करता है वह अपना भी निषेधक होता है—परके अभावमें अपने स्वरूपको किसी तरह भी सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकता।

नयवादके इन भेदों और उनके स्वरूपनिर्देशके अनन्तर बतलाया है कि 'जितने वचनमार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं और जितने (अपरिशुद्ध अथवा परस्परनिरपेक्ष एवं विरोधी) नयवाद हैं उतने ही परसमय—जैनेतरदर्शन—हैं। उन दर्शनोंमें कपिलका सांख्यदर्शन द्रव्यार्थिकनयका वक्तव्य है। शुद्धोदनके पुत्र बुद्धका दर्शन परिशुद्ध पर्यायनय का विकल्प है। उलूक अर्थात् कणादने अपना शास्त्र (वैशेषिक दर्शन) यद्यपि दोनों नयोंके द्वारा प्ररूपित किया है फिर भी वह मिथ्यात्व है—अप्रमाण है; क्योंकि ये दोनों नयदृष्टियाँ उक्त दर्शनमें अपने अपने विषयकी प्रधानताके लिये परस्परमें एक दूसरेकी कोई अपेक्षा नहीं रखतीं। इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली गाथाएं निम्न प्रकार हैं—

परिसुद्धो णयवाओ आगममेत्तत्थ साधको होइ।
सो चेव दुण्णिगिण्णो दोण्णि वि पक्खे विधम्मेइ॥ ४६॥
जावइया वयणवहा तावइया चेव होंति णयवाया।

जावइया णयवाया तावइया चेव परसमया ॥ ४७ ॥
जं काविलं दरिसणं एयं दव्वट्ठियस्स वत्तव्वं ।
सुद्धोअण-तणअस्स उ परिसुद्धो पज्जवविअप्पो ॥ ४८ ॥
दोहि वि णएहि णीयं सत्थमुलूएण तह वि मिच्छत्तं ।
जं सविसअप्पहाणत्तणेण अण्णोण्णणिरवेक्खा ॥ ४९ ॥

इनके अनन्तर निम्न दो गाथाओंमें यह प्रतिपादन किया है कि 'सांख्योंके सद्वाद पक्षमें बौद्ध और वैशेषिक जन जो दोष देते हैं तथा बौद्धों और वैशेषिकोंके असद्वाद पक्षमें सांख्य जन जो दोष देते हैं वे सब सत्य हैं—सर्वथा एकान्तवादमें वैसे दोष आते ही हैं। ये दोनों सद्वाद और असद्वाद दृष्टियाँ यदि एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हुए संयोजित होजायँ—समन्वयपूर्वक अनेकान्तदृष्टिमें परिणत हो जायँ—तो सर्वोत्तम सम्यग्दर्शन बनता है; क्योंकि ये सत्-असत्रूप दोनों दृष्टियाँ अलग अलग संसारके दुःखसे छुटकारा दिलानेमें समर्थ नहीं हैं—दोनोंके सापेक्ष संयोगसे ही एक-दूसरेकी कमी दूर होकर संसारके दुःखोंसे शान्ति मिल सकती है :—

जे संतवाय-दोसे सक्कोलूया भणंति संखाणं ।
संखा य असव्वाए तेसिं सव्वे वि ते सच्चा ॥ ५० ॥
ते उ भयणोवणीया सम्मद्दंसणमणुत्तरं होंति ।
जं भव-दुक्ख-विमोक्खं दो वि ण पूरेंति पाडिक्कं ॥ ५१ ॥

इस सब कथनपरसे मिथ्यादर्शनों और सम्यग्दर्शनका तत्त्व सहज ही समझमें आजाता है और यह मालूम हो जाता है कि कैसे सभी मिथ्यादर्शन मिलकर सम्यग्दर्शनके रूपमें परिणत हो जाते हैं। मिथ्यादर्शन अथवा जैनेतरदर्शन जब तक अपने अपने वक्तव्यके प्रतिपादनमें एकान्तताको अपनाकर परविरोधका लक्ष्य रखते हैं तब तक वे सम्यग्दर्शनमें परिणत नहीं होते. और जब विरोधका लक्ष्य छोड़कर पारस्परिक अपेक्षाको लिये हुए समन्वयकी दृष्टिको अपनाते हैं तभी सम्यग्दर्शनमें परिणत हो जाते हैं और जैनदर्शन कहलानेके योग्य होते हैं। जैनदर्शन अपने स्याद्वादन्याय-द्वारा समन्वयकी दृष्टिको लिये हुए है—समन्वय ही उसका नियामक तत्त्व है, न कि विरोध—और इसलिये सभी मिथ्या-दर्शन अपने अपने विरोधको भुलाकर उसमें समा जाते हैं। इसीसे ग्रन्थकी अन्तिम गाथामें जिनवचनरूप जिनशासन अथवा जैनदर्शनकी मंगलकामना करते हुए उसे 'मिथ्या-दर्शनोंका समूहमय' बतलाया है। वह गाथा इस प्रकार है:—

भद्दं मिच्छादंसण-समूहमइयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स ॥ ७० ॥

इसमें जैनदर्शन (शासन) के तीन खास विशेषणोंका उल्लेख किया गया है—पहला विशेषण मिथ्यादर्शनसमूहमय, दूसरा अमृतसार और तीसरा संविग्नसुखाधिगम्य है। मिथ्यादर्शनोंका समूह होते हुए भी वह मिथ्यात्वरूप नहीं है, यही उसकी सर्वोपरि विशेषता है और यह विशेषता उसके सापेक्ष नयवादमें संनिहित है—सापेक्ष नय मिथ्या नहीं होते, निरपेक्ष नय ही मिथ्या होते हैं[1]। जब सारी विरोधी दृष्टियाँ एकत्र स्थान पाती हैं तब फिर उनमें विरोध नहीं रहता और वे सहज ही कार्यसाधक बन जाती हैं। इसीपरसे दूसरा विशे-

१ मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्तताऽस्ति नः ।
निरपेक्षा नया मिथ्याः सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥ १०८ ॥—देवागमे, स्वामिसमन्तभद्रः ।

पण ठीक घटित होता है, जिसमें उसे अमतका अर्थात् भवदुःखके अभावरूप अविनाशी मोक्ष का प्रदान करनेवाला बतलाया है; क्योंकि वह सुख अथवा भवदुःखविनाश मिथ्यादर्शनोंसे प्राप्त नहीं होता, इसे हम ५१वीं गाथासे जान चुके हैं। तीसरे विशेषणके द्वारा यह सुझाया गया है कि जो लोग संसारके दुःखों-क्लेशोंसे उद्विग्न होकर संवेगको प्राप्त हुए हैं—सच्चे मुमुक्षु बने हैं—उनके लिये जैनदर्शन अथवा जिनशासन सुखसे समझमें आने योग्य है—कोई कठिन नहीं है। इससे पहले ६४वीं गाथामें 'अत्थगई उण णयवायगहणलीणा दुरभिगम्मा' वाक्यके द्वारा सूत्रोंकी जिस अर्थगतिको नयवादके गहन-वनमें लीन और दुरभिगम्य बतलाया था उसीको ऐसे अधिकारियोंके लिये यहाँ सुगम घोषित किया गया है, यह सब अनेकान्तदृष्टिकी महिमा है। अपने ऐसे गुणोंके कारण ही जिनवचन भगवत्पदको प्राप्त है—पूज्य है।

ग्रंथकी अन्तिम गाथामें जिस प्रकार जिनशासनका स्मरण किया गया है उसी प्रकार वह आदिम गाथामें भी किया गया है। आदिम गाथामें किन विशेषणोंके साथ स्मरण किया गया है यह भी पाठकोंके जानने योग्य है और इसलिये उस गाथाको भी यहाँ उद्धृत किया जाता है—

सिद्धं सिद्धत्थाणं ठाणमणोवमसुहं उवगयाणं।
कुसमय-विसासणं सासणं जिणाणं भव-जिणाणं ॥ १ ॥

इसमें भवको जीतनेवाले जिनों-अर्हन्तोंके शासन-आगमके चार विशेषण दिये गये हैं—१ सिद्ध, २ सिद्धार्थोंका स्थान, ३ शरणागतोंके लिये अनुपम सुखस्वरूप, ४ कुसमयों—एकान्तवादरूप मिथ्यामतोंका निवारक। प्रथम विशेषणके द्वारा यह प्रकट किया गया है कि जैनशासन अपने ही गुणोंसे आप प्रतिष्ठित है। उसके द्वारा प्रतिपादित सब पदार्थ प्रमाणसिद्ध हैं—कल्पित नहीं हैं—यह दूसरे विशेषणका अभिप्राय है और वह प्रथम विशेषण सिद्धत्वका प्रधान कारण भी है। तीसरा विशेषण बहुत कुछ स्पष्ट है और उसके द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि जो लोग वास्तवमें जैनशासनका आश्रय लेते हैं उन्हें अनुपम मोक्ष-सुख तककी प्राप्ति होती है। चौथा विशेषण यह बतलाता है कि जैनशासन उन सब कुशासनों—मिथ्यादर्शनोंके गर्वको चूर-चूर करनेकी शक्तिसे सम्पन्न है जो सर्वथा एकान्तवादका आश्रय लेकर शासनारूढ बने हुए हैं और मिथ्यातत्त्वोंके प्ररूपण-द्वारा जगतमें दुःखोंका जाल फैलाये हुए हैं।

इस तरह आदि-अन्तकी दोनों गाथाओंमें जिनशासन अथवा जिनवचन (जैनागम) के लिये जिन विशेषणोंका प्रयोग किया गया है उनसे इस शासन (दर्शन) का असाधारण महत्त्व और माहात्म्य ख्यापित होता है। और यह केवल कहनेकी ही बात नहीं है बल्कि सारे ग्रंथमें इसे प्रदर्शित करके बतलाया गया है। स्वामी समन्तभद्रके शब्दोंमें 'अज्ञान-अन्धकारकी व्याप्ति (प्रसार) को जैसे भी बने दूर करके जिनशासनके माहात्म्यको जो प्रकाशित करना है उसीका नाम प्रभावना'[1] है। यह ग्रंथ अपने विषय-वर्णन और विवेचनादिके द्वारा इस प्रभावनाका बहुत कुछ साधक है और इसीलिये इसकी भी गणना प्रभावक-ग्रंथोंमें की गई है। यह ग्रंथ जैनदर्शनका अध्ययन करनेवालों और जैनदर्शनसे जैनेतर दर्शनोंके भेदको ठीक अनुभव करनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये बड़े कामकी चीज है और उनके द्वारा खास मनोयोगके साथ पढ़े जाने तथा मनन किये जानेके योग्य है। इसमें अनेकान्तके अंग-स्वरूप जिस नयवादकी प्रमुख चर्चा है और जिसे एक प्रकारसे 'दुरभिगम्य गहन-वन' बत-

---

१ "अज्ञान-तिमिर-व्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिन-शासन-माहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ १८ ॥"—रत्नकरण्डश्रा०।

लाया गया है—अमृतचन्द्रसूरिने भी जिसे 'गहन' और 'दुरासद' लिखा है[1]—उसपर जैन वाङ्मयमें कितने ही प्रकरण अथवा 'नयचक्र' जैसे स्वतंत्र ग्रंथ भी निर्मित हैं, उनका साथ में अध्ययन अथवा पूर्व-परिचय भी इस ग्रंथके समुचित अध्ययनमें सहायक है। वास्तवमें यह ग्रंथ सभी तत्त्वजिज्ञासुओं एवं आत्महितैषियोंके लिये उपयोगी है। अभी तक इसका हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ है। वीरसेवामन्दिरका विचार उसे प्रस्तुत करनेका है।

(क) ग्रंथकार सिद्धसेन और उनकी दूसरी कृतियाँ—

इस 'सन्मति' ग्रंथके कर्ता आचार्य सिद्धसेन हैं, इसमें किसीको भी कोई विवाद नहीं है। अनेक ग्रंथोंमें ग्रंथनामके साथ सिद्धसेनका नाम उल्लेखित है और इस ग्रन्थके वाक्य भी सिद्धसेन नामके साथ उद्धृत मिलते हैं; जैसे जयधवलामें आचार्य वीरसेनने 'णामट्ठवणा दविय' नामकी छठी गाथाको 'उक्तं च सिद्धसेणेण' इस वाक्यके साथ उद्धृत किया है और पंचवस्तुमें आचार्य हरिभद्रने "आयरियसिद्धसेणेण सम्मईए पइट्ठिअजसेणं" वाक्य के द्वारा 'सन्मति' को सिद्धसेनकी कृतिरूपमें निर्दिष्ट किया है, साथ ही 'कालो सहाव णियई' नामकी एक गाथा भी उसकी उद्धृत की है। परन्तु ये सिद्धसेन कौनसे हैं—किस विशेष परिचयको लिये हुए हैं? कौनसे सम्प्रदाय अथवा आम्नायसे सम्बन्ध रखते हैं?, इनके गुरु कौन थे?, इनकी दूसरी कृतियाँ कौन-सी हैं? और इनका समय क्या है? ये सब बातें ऐसी हैं जो विवादका विषय जरूर हैं। क्योंकि जैनसमाजमें सिद्धसेन नामके अनेक आचार्य और प्रखर तार्किक विद्वान् भी होगये हैं और इस ग्रंथमें ग्रंथकारने अपना कोई परिचय दिया नहीं, न रचनाकाल ही दिया है—ग्रंथकी आदिम गाथामें प्रयुक्त हुए 'सिद्धं' पदके द्वारा श्लेषरूपमें अपने नामका सूचनमात्र किया है, इतना ही समझा जा सकता है। कोई प्रशस्ति भी किसी दूसरे विद्वान्के द्वारा निर्मित होकर ग्रंथके अन्तमें लगी हुई नहीं है। दूसरे जिन ग्रंथों—खासकर द्वात्रिंशिकाओं तथा न्यायावतार—को इन्हीं आचार्यकी कृति समझा जाता और प्रतिपादन किया जाता है उनमें भी कोई परिचय-पद्य तथा प्रशस्ति नहीं है और न कोई ऐसा स्पष्ट प्रमाण अथवा युक्तिवाद ही सामने लाया गया है जिससे उन सब ग्रंथोंको एक ही सिद्धसेनकृत माना जा सके। और इसलिये अधिकाँशमें कल्पनाओं तथा कुछ भ्रान्त धारणाओंके आधारपर ही विद्वान् लोग उक्त बातोंके निर्णय तथा प्रतिपादनमें प्रवृत्त होते रहे हैं, इसीसे कोई भी ठीक निर्णय अभी तक नहीं हो पाया—वे विवादापन्न ही चली जाती हैं और सिद्धसेनके विषयमें जो भी परिचय-लेख लिखे गये हैं वे सब प्रायः खिचड़ी बने हुए हैं और कितनी ही गलतफहमियोंको जन्म दे रहे तथा प्रचारमें ला रहे हैं। अतः इस विषयमें गहरे अनुसन्धानके साथ गम्भीर विचारकी जरूरत है और उसीका यहाँपर प्रयत्न किया जाता है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें सिद्धसेनके नामपर जो ग्रंथ चढ़े हुए हैं उनमेंसे कितने ही ग्रंथ तो ऐसे हैं जो निश्चितरूपमें दूसरे उत्तरवर्ती सिद्धसेनोंकी कृतियाँ हैं; जैसे १ जीतकल्पचूर्णि, २ तत्त्वार्थाधिगमसूत्रकी टीका, ३ प्रवचनसारोद्धारकी वृत्ति, ४ एकविंशतिस्थानप्रकरण (प्रा०) और ५ सिद्धिश्रेयसमुदय (शक्रस्तव) नामका मंत्रगर्भित गद्यस्तोत्र। कुछ ग्रंथ ऐसे हैं जिनका सिद्धसेन नामके साथ उल्लेख तो मिलता है परन्तु आज वे उपलब्ध नहीं हैं, जैसे १ वृहत् षड्दर्शनसमुचय[2] (जैनग्रंथावली पृ० ६४), २ विषोग्रग्रहशमन-

---

१ देखो, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय—"इति विविधभङ्ग-गहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्" । (५८)
"अत्यन्तनिशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रम्" । (५९)

२ हो सकता है कि यह ग्रन्थ हरिभद्रसूरिका 'षड्दर्शनसमुचय' ही हो और किसी गलतीसे सूरतके उन सेठ भगवानदास कल्याणदासकी प्राइवेट रिपोर्टमें, जो पिटर्सन साहबकी नौकरीमें थे, दर्ज होगया हो,

विधि, जिसका उल्लेख उग्रादित्याचार्य (विक्रम ६वीं शताब्दी) के 'कल्याणकारक' वैद्यक ग्रंथ (२०-८५) में पाया जाता है[1] और ३ नीतिसारपुराण, जिसका उल्लेख केशवसेनसूरि- (वि० सं० १६८८) कृत कर्णामृतपुराणके निम्न पद्योंमें पाया जाता है और जिनमें उसकी श्लोकसंख्या भी १५६३०० दी हुई है—

> सिद्धोक्त-नीतिसारादिपुराणोद्भूत-सन्मतिं ।
> विधास्यामि प्रसन्नार्थं ग्रन्थं सन्दर्भगर्भितम् ॥ १६ ॥
> खंखाग्निरसबाणेन्दु(१५६३००)श्लोकसंख्या प्रसूत्रिता ।
> नीतिसारपुराणस्य सिद्धसेनादिसूरिभिः ॥ २० ॥

उपलब्ध न होनेके कारण ये तीनों ग्रन्थ विचारमें कोई सहायक नहीं हो सकते। इन आठ ग्रन्थोंके अलावा चार ग्रन्थ और हैं—१ द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, २ प्रस्तुत सन्मतिसूत्र, ३ न्यायावतार और ४ कल्याणमन्दिर। 'कल्याणमन्दिर' नामका स्तोत्र ऐसा है जिसे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें सिद्धसेनदिवाकरकी कृति समझा और माना जाता है; जबकि दिगम्बर परम्परामें वह स्तोत्रके अन्तिम पद्यमें सूचित किये हुए 'कुमुदचन्द्र' नामके अनुसार कुमुदचन्द्राचार्यकी कृति माना जाता है। इस विषयमें श्वेताम्बर-सम्प्रदायका यह कहना है कि 'सिद्धसेनका नाम दीक्षाके समय 'कुमुदचन्द्र' रक्खा गया था, आचार्यपदके समय उनका पुराना नाम ही उन्हें दे दिया गया था, ऐसा प्रभाचन्द्रसूरिके प्रभावकचरित (सं० १३३४) से जाना जाता है और इसलिये कल्याणमन्दिरमें प्रयुक्त हुआ 'कुमुदचन्द्र' नाम सिद्धसेनका ही नामान्तर है।' दिगम्बर समाज इसे पीछेकी कल्पना और एक दिगम्बर कृतिको हथियानेकी योजनामात्र समझता है; क्योंकि प्रभावकचरितसे पहले सिद्धसेन-विषयक जो दो प्रबन्ध लिखे गये हैं उनमें कुमुदचन्द्र नामका कोई उल्लेख नहीं है—पं० सुखलालजी और पं. बेचरदासजीने अपनी प्रस्तावनामें भी इस बातको व्यक्त किया है। बादके बने हुए मेरुतुङ्गाचार्यके प्रबन्धचिन्तामणि (सं० १३६१) में और जिनप्रभसूरिके विविधतीर्थकल्प (सं० १३८६) में भी उसे अपनाया नहीं गया है। राजशेखरके प्रबन्धकोश अपरनाम चतुर्विंशतिप्रबन्ध (सं० १४०५) में कुमुदचंद्र नामको अपनाया जरूर गया है परन्तु प्रभावकचरितके विरुद्ध कल्याणमन्दिरस्तोत्रको 'पार्श्वनाथद्वात्रिंशिका' के रूपमें व्यक्त किया है और साथ ही यह भी लिखा है कि वीरकी द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका स्तुतिसे जब कोई चमत्कार देखनेमें नहीं आया तब यह पार्श्वनाथद्वात्रिंशिका रची गई है, जिसके ११वें से नहीं किन्तु प्रथम पद्यसे ही चमत्कारका प्रारम्भ हो गया[2]। ऐसी स्थितिमें पार्श्वनाथद्वात्रिंशिकाके रूपमें जो कल्याणमन्दिरस्तोत्र रचा गया वह ३२ पद्योंका कोई दूसरा ही होना चाहिये, न कि वर्तमान कल्याणमन्दिरस्तोत्र, जिसकी रचना ४४ पद्योंमें हुई है और इससे दोनों कुमुदचंद्र भी भिन्न होने चाहियें। इसके सिवाय, वर्तमान कल्याणमन्दिरस्तोत्रमें 'प्राग्भारसंभृतनभांसि रजांसि रोपात्' इत्यादि तीन पद्य ऐसे हैं जो पार्श्वनाथको दैत्यकृत उपसर्गसे युक्त प्रकट करते हैं, जो दिगम्बर मान्यताके अनुकूल और श्वेताम्बर मान्यताके प्रतिकूल हैं; क्योंकि श्वेताम्बरीय

जिसपरसे जैनग्रन्थावलीमें लिया गया है? क्योंकि इसके साथमें जिस टीकाका उल्लेख है उसे 'गुणरत्न' की लिखा है और हरिभद्रके षड्दर्शनसमुच्चयपर भी गुणरत्नकी टीका है।

१ "शालाक्यं पूज्यपाद-प्रकटितमधिकं शल्यतंत्रं च पात्रस्वामि-प्रोक्तं विषोग्रग्रहशमनविधिः सिद्धसेनैः प्रसिद्धैः।"

२ "इत्यादिश्रीवीरद्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता। परं तस्मात्ताद्दृक्षं चमत्कारमनालोक्य पश्चात् श्रीपार्श्वनाथद्वात्रिंशिकामभिकर्तुं कल्याणमन्दिरस्तवं चक्रे प्रथमश्लोके एव प्रासादस्थितात् शिखिशिखाग्रादिव लिङ्गाद् धूमवर्तिरुदतिष्ठत्।"—पाटनकी हेमचन्द्राचार्य-ग्रन्थावलीमें प्रकाशित प्रबन्धकोश।

आचाराङ्ग-नियुक्तिमें वद्र्धमानको छोड़कर शेष २३ तीर्थंकरोंके तपःकर्मको निरुपसर्ग वर्णित किया है[1]। इससे भी प्रस्तुत कल्याणमन्दिर दिगम्बर कृति होनी चाहिये।

प्रमुख श्वेताम्बर विद्वान् पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने ग्रंथकी गुजराती प्रस्तावनामें[2] विविधतीर्थकल्पको छोड़कर शेष पाँच प्रबन्धोंका सिद्धसेन-विषयक सार बहुपरिश्रमके साथ दिया है और उसमें कितनी ही परस्पर विरोधी तथा मौलिक मतभेदकी बातोंका भी उल्लेख किया है और साथ ही यह निष्कर्ष निकाला है कि 'सिद्धसेन दिवाकर का नाम मूलमें कुमुदचंद्र नहीं था, होता तो दिवाकर-विशेषणकी तरह यह श्रुतिप्रिय नाम भी किसी-न-किसी प्राचीन ग्रंथमें सिद्धसेनकी निश्चित कृति अथवा उसके उद्धृत वाक्योंके साथ जरूर उल्लेखित मिलता—प्रभावकचरितसे पहलेके किसी भी ग्रंथमें इसका उल्लेख नहीं है। और यह कि कल्याणमन्दिरको सिद्धसेनकी कृति सिद्ध करनेके लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं है—वह सन्देहास्पद है।' ऐसी हालतमें कल्याणमन्दिरकी बातको यहाँ छोड़ ही दिया जाता है। प्रकृत-विषयके निर्णयमें वह कोई विशेष साधक-बाधक भी नहीं है।

अब रही द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, सन्मतिसूत्र और न्यायावतारकी बात। न्यायावतार एक ३२ श्लोकोंका प्रमाण-नय-विषयक लघुग्रंथ है, जिसके आदि-अन्तमें कोई मंगलाचरण तथा प्रशस्ति नहीं है, जो आमतौरपर श्वेताम्बराचार्य सिद्धसेनदिवाकरकी कृति माना जाता है और जिसपर श्वे० सिद्धर्षि (सं० ९६२) की विवृति और उस विवृतिपर देवभद्रकी टिप्पणी उपलब्ध है और ये दोनों टीकाएं डा० पी० एल० वैद्यके द्वारा सम्पादित होकर सन् १९२८ में प्रकाशित होचुकी हैं। सन्मतिसूत्रका परिचय ऊपर दिया ही जा चुका है। उसपर अभय-देवसूरिकी २५ हजार श्लोक-परिमाण जो संस्कृतटीका है वह उक्त दोनों विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर संवत् १९८७ में प्रकाशित हो चुकी है। द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका ३२-३२ पद्योंकी ३२ कृतियाँ बतलाई जाती हैं, जिनमेंसे २१ उपलब्ध हैं। उपलब्ध द्वात्रिंशिकाएं भावनगरकी जैनधर्मप्रसारक सभाकी तरफसे विक्रम संवत् १९६५में प्रकाशित होचुकी हैं। ये जिस क्रमसे प्रकाशित हुई हैं उसी क्रमसे निर्मित हुई हों ऐसा उन्हें देखनेसे मालूम नहीं होता—वे बाद को किसी लेखक अथवा पाठक-द्वारा उस क्रमसे संग्रह की अथवा कराई गई जान पड़ती हैं। इस बातको पं० सुखलालजी आदिने भी प्रस्तावनामें व्यक्त किया है। साथ ही यह भी बत-लाया है कि 'ये सभी द्वात्रिंशिकाएं सिद्धसेनने जैनदीक्षा स्वीकार करनेके पीछे ही रची हों ऐसा नहीं कहा जा सकता, इनमेंसे कितनी ही द्वात्रिंशिकाएं (बत्तीसियाँ) उनके पूर्वाश्रममें भी रची हुई होसकती हैं।' और यह ठीक है, परन्तु ये सभी द्वात्रिंशिकाएं एक ही सिद्धसेनकी रची हुई हों ऐसा भी नहीं कहा जा सकता; चुनाँचे २१ वीं द्वात्रिंशिकाके विषयमें पं० सुखलालजी आदिने प्रस्तावनामें यह स्पष्ट स्वीकार भी किया है कि 'उसकी भाषारचना और वर्णित वस्तुकी दूसरी बत्तीसियोंके साथ तुलना करनेपर ऐसा मालूम होता है कि वह बत्तीसी किसी जुदे ही सिद्धसेनकी कृति है और चाहे जिस कारणसे दिवाकर (सिद्धसेन) की मानी जानेवाली कृतियोंमें दाखिल होकर दिवाकरके नामपर चढ़ गई है।' इसे महा-वीरद्वात्रिंशिका[3] लिखा है—महावीर नामका इसमें उल्लेख भी है; जबकि और किसी

---

१ "सव्वेसिं तवो कम्मं निरुवसग्गं तु वण्णियं जिणाणं। नवरं तु वद्धमाणस्स सोवसग्गं मुणेयव्वं ॥२७६॥"

२ यह प्रस्तावना ग्रन्थके गुजराती अनुवाद-भावार्थके साथ सन् १९३२ में प्रकाशित हुई है और ग्रन्थका यह गुजराती संस्करण बादको अंग्रेजीमें अनुवादित होकर 'सन्मतितर्क' के नामसे सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ है।

३ यह द्वात्रिंशिका अलग ही है ऐसा ताडपत्रीय प्रतिसे भी जाना जाता है, जिसमें २० ही द्वात्रिंशिकाएं अंकित हैं और उनके अन्तमें "ग्रन्थाग्रं ८३० मंगलमस्तु" लिखा है, जो ग्रन्थकी समाप्तिके साथ उसकी श्लोकसंख्याका भी द्योतक है। जैनग्रन्थावली (पृ० २८१) गत ताडपत्रीयप्रतिमें भी २० द्वात्रिंशिकाएं हैं।

द्वात्रिंशिकामें 'महावीर' उल्लेख नहीं है—प्रायः 'वीर' या 'वर्द्धमान' नामका ही उल्लेख पाया जाता है। इसकी पद्यसंख्या ३३ है और ३३वें पद्यमें स्तुतिका माहात्म्य दिया हुआ है; ये दोनों बातें दूसरी सभी द्वात्रिंशिकाओंसे विलक्षण हैं और उनसे इसके भिन्नकर्तृत्वकी द्योतक हैं। इसपर टीका भी उपलब्ध है जब कि और किसी द्वात्रिंशिकापर कोई टीका उपलब्ध नहीं है। चंद्रप्रभसूरिने प्रभावकचरितमें न्यायावतारको, जिसपर टीका उपलब्ध है, गणना भी ३२ द्वात्रिंशिकाओंमें की है ऐसा कहा जाता है परन्तु प्रभावकचरितमें वैसा कोई उल्लेख नहीं मिलता और न उसका समर्थन पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती अन्य किसी प्रबन्धसे ही होता है। टीकाकारोंने भी उसके द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाका अंग होनेकी कोई बात सूचित नहीं की, और इसलिये न्यायावतार एक स्वतंत्र ही ग्रंथ होना चाहिये तथा उसी रूपमें प्रसिद्धिको भी प्राप्त है।

२१ वीं द्वात्रिंशिकाके अन्तमें 'सिद्धसेन' नाम भी लगा हुआ है, जबकि ५ वीं द्वात्रिंशिकाको छोड़कर और किसी द्वात्रिंशिकामें वह नहीं पाया जाता। हो सकता है कि ये नामवाली दोनों द्वात्रिंशिकाएं अपने स्वरूपपरसे एक नहीं किन्तु दो अलग अलग सिद्धसेनोंसे सम्बन्ध रखती हों और शेष विना नामवाली द्वात्रिंशिकाएं इनसे भिन्न दूसरे ही सिद्धसेन अथवा सिद्धसेनोंकी कृतिस्वरूप हों। पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने पहली पाँच द्वात्रिंशिकाओंको, जो वीर भगवानकी स्तुतिपरक हैं, एक ग्रूप (समुदाय) में रक्खा है और उस ग्रूप (द्वात्रिंशिकापंचक) का स्वामी समन्तभद्रके स्वयम्भूस्त्रोत्रके साथ साम्य घोषित करके तुलना करते हुए लिखा है कि स्वयम्भूस्तोत्रका प्रारम्भ जिस प्रकार स्वयम्भू शब्दसे होता है और अन्तिम पद्य (१४३) में ग्रन्थकारने श्लेषरूपसे अपना नाम समन्तभद्र सूचित किया है उसी प्रकार इस द्वात्रिंशिकापंचकका प्रारम्भ भी स्वयम्भू शब्द से होता है और उसके अन्तिम पद्य (५, ३२) में भी ग्रंथकारने श्लेषरूपमें अपना नाम सिद्धसेन दिया है।' इससे शेष १५ द्वात्रिंशिकाएं भिन्न ग्रूप अथवा ग्रूपोंसे सम्बन्ध रखती हैं और उनमें प्रथम ग्रूपकी पद्धतिको न अपनाये जाने अथवा अन्तमें ग्रंथकारका नामोल्लेख तक न होनेके कारण वे दूसरे सिद्धसेन या सिद्धसेनोंकी कृतियाँ भी हो सकती हैं। उनमेंसे ११ वीं किसी राजाकी स्तुतिको लिये हुए हैं, छठी तथा आठवीं समीक्षात्मक हैं और शेष बारह दार्शनिक तथा वस्तुचर्चा वाली हैं।

इन सब द्वात्रिंशिकाओंके सम्बन्धमें यहाँ दो बातें और भी नोट किये जानेके योग्य हैं—एक यह कि द्वात्रिंशिका (बत्तीसी) होनेके कारण जब प्रत्येककी पद्यसंख्या ३२ होनी चाहिये थी तब वह घट-बढ़रूपमें पाई जाती है। १०वींमें दो पद्य तथा २१वींमें एक पद्य बढ़ती है, और ८वींमें छह पद्योंकी, ११वींमें चारकी तथा १५वींमें एक पद्यकी घटती है। यह घट-बढ़ भावनगरकी उक्त मुद्रित प्रतिमें ही नहीं पाई जाती बल्कि पूनाके भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट और कलकत्ताको एशियाटिक सोसाइटीकी हस्तलिखित प्रतियोंमें भी पाई जाती है। रचना-समयकी तो यह घट-बढ़ प्रतीतिका विषय नहीं—पं० सुखलालजी आदिने भी लिखा है कि 'बढ़-घटकी यह घालमेल रचनाके बाद ही किसी कारणसे होनी चाहिये।' इसका एक कारण लेखकोंकी असावधानी हो सकता है; जैसे १९वीं द्वात्रिंशिकामें एक पद्यकी कमी थी वह पूना और कलकत्ताकी प्रतियोंसे पूरी हो गई। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि किसीने अपने प्रयोजनके वश यह घालमेल की हो। कुछ भी हो, इससे उन द्वात्रिंशिकाओंके पूर्णरूपको समझने आदिमें बाधा पड़ रही है; जैसे ११वीं द्वात्रिंशिकासे यह मालूम ही नहीं होता कि वह कौनसे राजाको स्तुति है, और इससे उसके रचयिता तथा रचना-कालको जाननेमें भारी बाधा उपस्थित है। यह नहीं हो सकता कि किसी विशिष्ट राजाकी स्तुति की जाय और उसमें उसका नाम तक भी न हो—दूसरी स्तुत्यात्मक द्वात्रिंशिकाओंमें स्तुत्यका

नाम बराबर दिया हुआ है, फिर यही उससे शून्य रही हो यह कैसे कहा जा सकता है? नहीं कहा जा सकता। अतः जरूरत इस बातकी है कि द्वात्रिंशिका-विषयक प्राचीन प्रतियों की पूरी खोज की जाय। इससे अनुपलब्ध द्वात्रिंशिकाएं भी यदि कोई होंगी तो उपलब्ध हो हो सकेंगी और उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंसे वे अशुद्धियाँ भी दूर हो सकेंगी जिनके कारण उनका पठन-पाठन कठिन होरहा है और जिसकी पं० सुखलालजी आदिको भी भारी शिकायत है।

दूसरी बात यह कि द्वात्रिंशिकाओंको स्तुतियाँ कहा गया है[1] और इनके अवतारका प्रसङ्ग भी स्तुति-विषयका ही है; क्योंकि श्वेताम्बरीय प्रबन्धोंके अनुसार विक्रमादित्य राजा की ओरसे शिवलिंगको नमस्कार करनेका अनुरोध होनेपर जब सिद्धसेनाचार्यने कहा कि यह देवता मेरा नमस्कार सहन करनेमें समर्थ नहीं है—मेरा नमस्कार सहन करनेवाले दूसरे ही देवता हैं—तब राजाने कौतुकवश, परिणामकी कोई पर्वाह न करते हुए नमस्कारके लिये विशेष आग्रह किया[2]। इसपर सिद्धसेन शिवलिंगके सामने आसन जमाकर बैठ गये और इन्होंने अपने इष्टदेवकी स्तुति उच्चस्वर आदिके साथ प्रारम्भ करदी; जैसा कि निम्न वाक्योंसे प्रकट है :—

"श्रुत्वेति पुनरासीनः शिवलिंगस्य स प्रभुः।
उदाजह्रे स्तुतिश्लोकान् तारस्वरकरस्तदा ॥ १३८ ॥
—प्रभावकचरित

ततः पद्मासनेन भूत्वा द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाभिर्देवं स्तुतिमुपचक्रमे।"
—विविधतीर्थकल्प, प्रबन्धकोश।

परन्तु उपलब्ध २१ द्वात्रिंशिकाओंमें स्तुतिपरक द्वात्रिंशिकाएं केवल सात ही हैं, जिनमें भी एक राजाकी स्तुति होनेसे देवताविषयक स्तुतियोंकी कोटिसे निकल जाती है और इस तरह छह द्वात्रिंशिकाएं ही ऐसी रह जाती हैं जिनका श्रीवीरवर्द्धमानकी स्तुतिसे सम्बन्ध है और जो उस अवसरपर उच्चरित कही जा सकती हैं—शेष १४ द्वात्रिंशिकाएं न तो स्तुति-विषयक हैं, न उक्त प्रसंगके योग्य हैं और इसलिये उनकी गणना उन द्वात्रिंशिकाओं में नहीं की जा सकती जिनकी रचना अथवा उच्चारणा सिद्धसेनने शिवलिङ्गके सामने बैठ कर की थी।

यहाँ इतना और भी जान लेना चाहिये कि प्रभावकचरितके अनुसार स्तुतिका प्रारम्भ "प्रकाशितं त्वयैकेन यथा सम्यग्जगत्त्रयं।" इत्यादि श्लोकोंसे हुआ है. जिनमेंसे 'तथा हि" शब्दके साथ चार श्लोकोंको[3] उद्धृत करके उनके आगे 'इत्यादि" लिखा गया

---

१ "सिद्धसेणेण पारद्धा बत्तीसियाहिं जिणथुई" × × —(गद्यप्रबन्ध-कथावली)
"तस्सागयस्स तेणं पारद्धा जिणथुई समत्ताहिं ।बत्तीसाहिं बत्तीसियाहिं उद्दामसद्देण ॥
—(पद्यप्रबन्ध स. प्र. पृ. ५६)

न्यायावतारसूत्रं च श्रीवीरस्तुतिमप्यथ। द्वात्रिंशच्छ्लोकमानाश्च त्रिंशदन्याः स्तुतीरपि ॥ १४३ ॥
—प्रभावकचरित

२ ये मत्प्रणामसोढारस्ते देवा अपरे ननु। किं भावि प्रणम त्वं द्राक् प्राह राजेति कौतुकी ॥ १३५ ॥
देवान्निजप्रणम्यांश्च दर्शय त्वं वदन्निति। भूपतिर्जल्पितस्तेनोत्पाते दोषो न मे नृप ॥ १३६ ॥

३ चारों श्लोक इस प्रकार हैं :—
प्रकाशितं त्वयैकेन यथा सम्यग्जगत्त्रयम्। समस्तैरपि नो नाथ ! परतीर्थाधिपैस्तथा ॥ १३९ ॥
विद्योतयति वा लोकं यथैकोऽपि निशाकरः। समुद्गतः समग्रोऽपि तथा किं तारकागणः ॥ १४० ॥
त्वद्वाक्यतोऽपि केषाञ्चिदबोध इति मेऽद्भुतम्। भानोर्मरीचयः कस्य नाम नालोकहेतवः ॥ १४१ ॥

है। और फिर 'न्यायावतारसूत्रं च' इत्यादि श्लोकद्वारा ३२ कृतियोंकी और सूचना की गई है, जिनमेंसे एक न्यायावतारसूत्र, दूसरी श्रीवीरस्तुति और ३० बत्तीस बत्तीस श्लोकोंवाली दूसरी स्तुतियाँ हैं। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार स्तुतिका प्रारम्भ—

"प्रशान्तं दर्शनं यस्य सर्वभूताऽभयप्रदम् ।
मांगल्यं च प्रशस्तं च शिवस्तेन विभाव्यते ॥"

इस श्लोकसे होता है, जिसके अनन्तर "इति द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता" लिखकर यह सूचित किया गया है कि वह द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका स्तुतिका प्रथम श्लोक है। इस श्लोक तथा उक्त चारों श्लोकोंमेंसे किसीसे भी प्रस्तुत द्वात्रिंशिकाओंका प्रारंभ नहीं होता है, न ये श्लोक किसी द्वात्रिंशिकामें पाये जाते हैं और न इनके साहित्यका उपलब्ध प्रथम २० द्वात्रिंशिकाओंके साहित्यके साथ कोई मेल ही खाता है। ऐसी हालतमें इन दोनों प्रबन्धों तथा लिखित पद्यप्रबन्धमें उल्लेखित द्वात्रिंशिका स्तुतियाँ उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंसे भिन्न कोई दूसरी ही होनी चाहियें। प्रभावकचरितके उल्लेखपरसे इसका और भी समर्थन होता है; क्योंकि उसमें 'श्रीवीरस्तुति' के बाद जिन ३० द्वात्रिंशिकाओंको "अन्याः स्तुतीः" लिखा है वे श्रीवीरसे भिन्न दूसरे ही तीर्थङ्करादिकी स्तुतियाँ जान पड़ती हैं और इसलिये उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंके प्रथम ग्रूप द्वात्रिंशिकापञ्चकमें उनका समावेश नहीं किया जा सकता, जिसमेंकी प्रत्येक द्वात्रिंशिका श्रीवीरभगवानसे ही सम्बन्ध रखती है। उक्त तीनों प्रबन्धोंके बाद बने हुए विविध तीर्थकल्प और प्रबन्धकोश (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) में स्तुतिका प्रारम्भ 'स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्रं' इत्यादि पद्यसे होता है, जो उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंके प्रथम ग्रूपका प्रथम पद्य है, इसे देकर "इत्यादि श्रीवीरद्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका कृता" ऐसा लिखा है। यह पद्य प्रबन्धवर्णित द्वात्रिंशिकाओंका सम्बन्ध उपलब्ध द्वात्रिशकाओंके साथ जोड़नेके लिये बादको अपनाया गया मालूम होता है; क्योंकि एक तो पूर्वरचित प्रबन्धोंसे इसका कोई समर्थन नहीं होता, और उक्त तीनों प्रबन्धोंसे इसका स्पष्ट विरोध पाया जाता है। दूसरे, इन दोनों ग्रंथोंमें द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाको एकमात्र श्रीवीरसे सम्बन्धित किया गया है और उसका विषय भी "देवं स्तोतुमुपचक्रमे" शब्दोंके द्वारा 'स्तुति' ही बतलाया गया है; परन्तु उस स्तुतिको पढ़नेसे शिवलिंगका विस्फोट होकर उसमेंसे वीरभगवानकी प्रतिमाका प्रादुर्भूत होना किसी ग्रंथमें भी प्रकट नहीं किया गया—विविध तीर्थकल्पका कर्ता आदिनाथकी और प्रबन्धकोश का कर्ता पार्श्वनाथकी प्रतिमाका प्रकट होना बतलाया है। और यह एक असंगत-सी बात जान पड़ती है कि स्तुति तो किसी तीर्थंकरकी की जाय और उसे करते हुए प्रतिमा किसी दूसरे ही तीथकरकी प्रकट होवे।

इस तरह भी उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंमें उक्त १४ द्वात्रिंशिकाएं, जो स्तुतिविषय तथा वीरकी स्तुतिसे सम्बन्ध नहीं रखतीं, प्रबन्धवर्णित द्वात्रिंशिकाओंमें परिगणित नहीं की जा सकतीं। और इसलिये पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदासजीका प्रस्तावनामें यह लिखना कि 'शुरुआतमें दिवाकर (सिद्धसेन) के जीवन वृत्तान्तमें स्तुत्यात्मक बत्तीसियों (द्वात्रिंशिकाओं) को ही स्थान देनेकी जरूरत मालूम हुई और इनके साथमें संस्कृत भाषा तथा पद्यसंख्यामें समानता रखनेवाली परन्तु स्तुत्यात्मक नहीं ऐसी दूसरी घनी बत्तीसियाँ इनके जीवनवृत्तान्तमें स्तुत्यात्मक कृतिरूपमें ही दाखिल होगईं और पीछे किसीने इस हकीकतको देखा तथा खोजा ही नहीं कि कही जानेवाली बत्तीस अथवा उपलब्ध इक्कीस बत्तीसियोंमें

नो वाद्धुनमुलूकस्य प्रकृत्या क्लिष्टचेतसः। स्वच्छा अपि तमस्त्वेन भासन्ते भास्वतः कराः ॥ १४२ ॥
लिखित पद्यप्रबन्धमें भी ये ही चारों श्लोक 'तस्यागमस्य तेऽं पारदा जिनपुङ्ग' इत्यादि पद्यके अनन्तर 'यथा' शब्दके साथ दिये हैं।—(स. प्र. पृ. ५४ टि० ५८)

कितनी और कौन स्तुतिरूप हैं और कौन कौन स्तुतिरूप नहीं हैं' और इस तरह सभी प्रबंध-रचयिता आचार्योंको ऐसी मोटी भूलके शिकार बतलाना कुछ भी जीको लगने वाली बात मालूम नहीं होती। उसे उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंकी संगति बिठलानेका प्रयत्नमात्र ही कहा जा सकता है, जो निराधार होनेसे समुचित प्रतीत नहीं होता।

द्वात्रिंशिकाओंकी इस सारी छान-बीन परसे निम्न बातें फलित होती हैं—

१ द्वात्रिंशिकाएं जिस क्रमसे छपी हैं उसी क्रमसे निर्मित नहीं हुई हैं।

२ उपलब्ध २१ द्वात्रिंशिकाएं एक ही सिद्धसेनके द्वारा निर्मित हुई मालूम नहीं होतीं।

३ न्यायावतारकी गणना प्रबन्धोल्लिखित द्वात्रिंशिकाओंमें नहीं की जा सकती।

४ द्वात्रिंशिकाओंकी संख्यामें जो घट-बढ़ पाई जाती है वह रचनाके बाद हुई है और उसमें कुछ ऐसी घट-बढ़ भी शामिल है जो कि किसीके द्वारा जान-बूझकर अपने किसी प्रयोजनके लिये की गई हो। ऐसी द्वात्रिंशिकाओंका पूर्ण रूप अभी अनिश्चित है।

५ उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंका प्रबन्धोंमें वर्णित द्वात्रिंशिकाओंके साथ, जो सब स्तुत्यात्मक हैं और प्रायः एक ही स्तुतिग्रंथ 'द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका' की अंग जान पड़ती हैं, सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता। दोनों एक दूसरेसे भिन्न तथा भिन्नकर्तृक प्रतीत होती हैं।

ऐसी हालतमें किसी द्वात्रिंशिकाका कोई वाक्य यदि कहीं उद्धृत मिलता है तो उसे उसी द्वात्रिंशिका तथा उसके कर्ता तक ही सीमित समझना चाहिये, शेष द्वात्रिंशिकाओंमेंसे किसी दूसरी द्वात्रिंशिकाके विषयके साथ उसे जोड़कर उसपरसे कोई दूसरा बात उस वक्त तक फलित नहीं की जानी चाहिये जब तक कि यह साबित न कर दिया जाय कि वह दूसरी द्वात्रिंशिका भी उसी द्वात्रिंशिकाकारकी कृति है। अस्तु।

अब देखना यह है कि इन द्वात्रिंशिकाओं और न्यायावतारमेंसे कौन-सी रचना सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन आचार्यकी कृति है अथवा हो सकती है? इस विषयमें पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने अपनी प्रस्तावनामें यह प्रतिपादन किया है कि २१वीं द्वात्रिंशिकाको छोड़कर शेष २० द्वात्रिंशिकाएं, न्यायावतार और सन्मति ये सब एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ हैं और ये सिद्धसेन वे हैं जो उक्त श्वेताम्बरीय प्रबन्धोंके अनुसार वृद्धवादीके शिष्य थे और 'दिवाकर' नामके साथ प्रसिद्धिको प्राप्त हैं। दूसरे श्वेताम्बर विद्वानोंका बिना किसी जाँच-पड़तालके अनुसरण करनेवाले कितने ही जैनेतर विद्वानों की भी ऐसी ही मान्यता है और यह मान्यता ही उस सारी भूल-भ्रान्तिका मूल है जिसके कारण सिद्धसेन-विषयक जो भी परिचय-लेख अब तक लिखे गये वे सब प्रायः खिचड़ी बने हुए हैं, कितनी ही गलतफहमियोंको फैला रहे हैं और उनके द्वारा सिद्धसेनके समयादिकका ठीक निर्णय नहीं हो पाता। इसी मान्यताको लेकर विद्वद्वर पं० सुखलाल जीकी स्थिति सिद्धसेनके समय-सम्बन्धमें बराबर डाँवाडोल चली जाती है। आप प्रस्तुत सिद्धसेनका समय कभी विक्रमकी छठी शताब्दीसे पूर्व ५वीं शताब्दी[1] बतलाते हैं, कभी छठी शताब्दीका भी उत्तरवर्ती समय[2] कह डालते हैं, कभी सन्दिग्धरूपमें छठी या सातवीं शताब्दी[3] निर्दिष्ट करते हैं और कभी ५वीं तथा ६ठी शताब्दीका मध्यवर्ती काल[4] प्रतिपादन करते हैं। और बड़ी मजेकी बात यह है कि जिन प्रबन्धोंके आधारपर सिद्धसेन दिवाकर का परिचय दिया जाता है उनमें 'न्यायावतार' का नाम तो किसी तरह एक प्रबन्धमें पाया भी जाता है परन्तु सिद्धसेनकी कृतिरूपमें सन्मतिसूत्रका कोई उल्लेख कहीं भी उप-

---

१ सन्मतिप्रकरण-प्रस्तावना पृ० ३६, ४३, ६४, ६४। २ ज्ञानबिन्दु-परिचय पृ० ६।

३ सन्मतिप्रकरणके अंग्रेजी संस्करणका फोरवर्ड (Forword) और भारतीयविद्यामें प्रकाशित 'श्रीसिद्धसेन दिवाकरना समयनो प्रश्न' नामक लेख—भा० वि० तृतीय भाग पृ० १५२।

४ 'प्रतिभामूर्ति सिद्धसेन दिवाकर' नामक लेख—भारतीयविद्या तृतीय भाग पृ० ११।

लब्ध नहीं होता। इतनेपर भी प्रबन्ध-वर्णित सिद्धसेनकी कृतियोंमें उसे भी शामिल किया जाता है! यह कितने आश्चर्यकी बात है इसे विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

ग्रन्थकी प्रस्तावनामें पं० सुखलालजी आदिने, यह प्रतिपादन करते हुए कि 'उक्त प्रबन्धोंमें वे द्वात्रिंशिकाएँ भी जिनमें किसीकी स्तुति नहीं है और जो अन्य दर्शनों तथा स्वदर्शनके मन्तव्योंके निरूपण तथा समालोचनको लिये हुए हैं स्तुतिरूपमें परिगणित हैं और उन्हें दिवाकर(सिद्धसेन)के जीवनमें उनकी कृतिरूपसे स्थान मिला है,' इसे एक 'पहेली' ही बतलाया है जो स्वदर्शनका निरूपण करनेवाले और द्वात्रिंशिकाओंसे न उतरनेवाले (नीचा दर्जा न रखनेवाले) 'सन्मतिप्रकरण'को दिवाकरके जीवनवृत्तान्त और उनकी कृतियोंमें स्थान क्यों नहीं मिला। परन्तु इस पहेलीका कोई समुचित हल प्रस्तुत नहीं किया गया, प्रायः इतना कहकर ही सन्तोष धारण किया गया है कि 'सन्मतिप्रकरण यदि बत्तीस श्लोकपरिमाण होता तो वह प्राकृतभाषामें होते हुए भी दिवाकरके जीवनवृत्तान्तमें स्थान पाई हुई संस्कृत बत्तीसियों-के साथमें परिगणित हुए बिना शायद ही रहता।' पहेलीका यह हल कुछ भी महत्व नहीं रखता। प्रबन्धोंसे इसका कोई समर्थन नहीं होता और न इस बातका कोई पता ही चलता है कि उपलब्ध जो द्वात्रिंशिकाएँ स्तुत्यात्मक नहीं हैं वे सब दिवाकर सिद्धसेनके जीवनवृत्तान्तमें दाखिल हो गई हैं और उन्हें भी उन्हीं सिद्धसेनकी कृतिरूपसे उनमें स्थान मिला है, जिससे उक्त प्रतिपादनका ही समर्थन होता—प्रबन्धवर्णित जीवनवृत्तान्तमें उनका कहीं कोई उल्लेख ही नहीं है। एकमात्र प्रभावकचरितमें 'न्यायावतार'का जो असम्बद्ध, असमर्थित और असमञ्जस उल्लेख मिलता है उसपरसे उसकी गणना उस द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाके अङ्गरूपमें नहीं की जा सकती जो सब जिन-स्तुतिपरक थी, वह एक जुदा ही स्वतन्त्र ग्रन्थ है जैसा कि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है। और सन्मतिप्रकरणका बत्तीस श्लोकपरिमाण न होना भी सिद्धसेनके जीवनवृत्तान्तसे सम्बद्ध कृतियोंमें उसके परिगणित होनेके लिये कोई बाधक नहीं कहा जा सकता—खासकर उस हालतमें जब कि चवालीस पद्यसंख्यावाले कल्याणमन्दिरस्तोत्र-को उनकी कृतियोंमें परिगणित किया गया है और प्रभावकचरितमें इस पद्यसंख्याका स्पष्ट उल्लेख भी साथमें मौजूद है[1]। वास्तवमें प्रबन्धोंपरसे यह ग्रन्थ उन सिद्धसेनदिवाकरकी कृति मालूम ही नहीं होता, जो वृद्धवादीके शिष्य थे और जिन्हें आगमग्रन्थोंको संस्कृतमें अनुवादित करनेका अभिप्रायमात्र व्यक्त करनेपर पाराञ्चिकप्रायश्चित्तके रूपमें बारह वर्ष तक श्वेताम्बर संघसे बाहर रहनेका कठोर दण्ड दिया जाना बतलाया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थको उन्हीं सिद्धसेनकी कृति बतलाना, यह सब बादको कल्पना और योजना ही जान पड़ती है।

पं० सुखलालजीने प्रस्तावनामें तथा अन्यत्र भी द्वात्रिंशिकाओं, न्यायावतार और सन्मतिसूत्रका एककर्तृत्व प्रतिपादन करनेके लिये कोई खास हेतु प्रस्तुत नहीं किया, जिससे इन सब कृतियोंको एक ही आचार्यकृत माना जा सके, प्रस्तावनामें केवल इतना ही लिख दिया है कि 'इन सबके पीछे रहा हुआ प्रतिभाका समान तत्त्व ऐसा माननेके लिये ललचाता है कि ये सब कृतियाँ किसी एक ही प्रतिभाके फल हैं।' यह सब कोई समर्थ युक्तिवाद न होकर एक प्रकारसे अपनी मान्यताका प्रकाशनमात्र है; क्योंकि इन सभी ग्रन्थोंपरसे प्रतिभाका ऐसा कोई असाधारण समान तत्त्व उपलब्ध नहीं होता जिसका अन्यत्र कहीं भी दर्शन न होता हो। स्वामी समन्तभद्रके मात्र स्वयम्भूस्तोत्र और आप्तमीमांसा ग्रन्थोंके साथ इन ग्रन्थों-की तुलना करते हुए स्वयं प्रस्तावनालेखकोंने दोनोंमें 'पुष्कल साम्य'का होना स्वीकार किया

---

१ ततश्चतुश्चत्वारिंशद्वृत्तां स्तुतिमसौ जगौ। कल्याणमन्दिरेत्यादिविख्यातां जिनशासने ॥१४४॥
—वृद्धवादिप्रबन्ध पृ० १०१।

है और दोनों आचार्योंकी ग्रन्थनिर्माणादि-विषयक प्रतिभाका कितना ही चित्रण किया है। और भी अकलङ्क-विद्यानन्दादि कितने ही आचार्य ऐसे हैं जिनकी प्रतिभा इन ग्रन्थोंके पीछे रहनेवाली प्रतिभासे कम नहीं है, तब प्रतिभाकी समानता ऐसी कोई बात नहीं रह जाती जिसकी अन्यत्र उपलब्धि न हो सके और इसलिये एकमात्र उसके आधारपर इन सब ग्रन्थों-को, जिनके प्रतिपादनमें परस्पर कितनी ही विभिन्नताएँ पाई जाती हैं, एक ही आचार्यकृत नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है समानप्रतिभाके उक्त लालचमें पड़कर ही बिना किसी गहरी जाँच-पड़तालके इन सब ग्रन्थोंको एक ही आचार्यकृत मान लिया गया है; अथवा किसी साम्प्रदायिक मान्यताको प्रश्रय दिया गया है जबकि वस्तुस्थिति वैसी मालूम नहीं होती। गम्भीर गवेषणा और इन ग्रन्थोंकी अन्तःपरीक्षादिपरसे मुझे इस बातका पता चला है कि सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन अनेक द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनसे भिन्न हैं। यदि २१वीं द्वात्रिंशिकाको छोड़कर शेष २० द्वात्रिंशिकाएँ एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ हों तो वे उनमेंसे किसी भी द्वात्रिंशिकाके कर्ता नहीं हैं, अन्यथा कुछ द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता हो सकते हैं। न्याया-वतारके कर्ता सिद्धसेनकी भी ऐसी ही स्थिति है वे सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेनसे जहाँ भिन्न हैं वहाँ कुछ द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनसे भी भिन्न हैं और उक्त २० द्वात्रिंशिकाएँ यदि एकसे अधिक सिद्धसेनोंकी कृतियाँ हों तो वे उनमेंसे कुछके कर्ता हो सकते हैं, अन्यथा किसीके भी कर्ता नहीं बन सकते। इस तरह सन्मतिसूत्रके कर्ता, न्यायावतारके कर्ता और कतिपय द्वात्रिं-शिकाओंके कर्ता तीन सिद्धसेन अलग अलग हैं—शेष द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता इन्हींमेंसे कोई एक या दो अथवा तीनों हो सकते हैं और यह भी हो सकता है कि किसी द्वात्रिंशिकाके कर्ता इन तीनोंसे भिन्न कोई अन्य ही हों। इन तीनों सिद्धसेनोंका अस्तित्वकाल एक दूसरेसे भिन्न अथवा कुछ अन्तरालको लिये हुए है और उनमें प्रथम सिद्धसेन कतिपय द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता, द्वितीय सिद्धसेन सन्मतिसूत्रके कर्ता और तृतीय सिद्धसेन न्यायावतारके कर्ता हैं। नीचे अपने अनुसन्धान-विषयक इन्हीं सब बातोंको संक्षेपमें स्पष्ट करके बतलाया जाता है:—

(१) सन्मतिसूत्रके द्वितीय काण्डमें केवलीके ज्ञान-दर्शन-उपयोगोंकी क्रमवादिता और युगपद्वादितामें दोष दिखाते हुए अभेदवादिता अथवा एकोपयोगवादिताका स्थापन किया है। साथ ही ज्ञानावरण और दर्शनावरणका युगपत् क्षय मानते हुए भी यह बतलाया है कि दो उपयोग एक साथ कहीं नहीं होते और केवलीमें वे क्रमशः भी नहीं होते। इन ज्ञान और दर्शन उपयोगोंका भेद मनःपर्ययज्ञान पर्यन्त अथवा छद्मस्थावस्था तक ही चलता है, केवल-ज्ञान होजानेपर दोनोंमें कोई भेद नहीं रहता—तब ज्ञान कहो अथवा दर्शन एक ही बात है, दोनोंमें कोई विषय-भेद चरितार्थ नहीं होता। इसके लिये अथवा आगमग्रन्थोंसे अपने इस कथनकी सङ्गति बिठलानेके लिये दर्शनकी 'अर्थविशेषरहित निराकार सामान्यग्रहणरूप' जो परिभाषा है उसे भी बदल कर रक्खा है अर्थात् यह प्रतिपादन किया है कि 'अस्पृष्ट तथा अविषयरूप पदार्थमें अनुमानज्ञानको छोड़कर जो ज्ञान होता है वह दर्शन है।' इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ गाथाएँ नमूनेके तौरपर इस प्रकार हैं:—

मणपज्जवणाणंतो णाणस्स दरिसणस्स य विसेसो ।
केवलणाणं पुण दंसणं ति णाणं ति य समाणं ॥ ३ ॥
केई भणंति 'जइया जाणइ तइया ण पासइ जिणो' त्ति ।
सुत्तमवलंबमाणा तित्थयरासायणाभीरू ॥ ४ ॥

केवलणाणावरणक्खयजायं केवलं जहा णाणं ।
तह दंसणं पि जुज्जइ णियआवरणक्खयस्संते ॥ ५ ॥
सुत्तम्मि चेव 'साई अपज्जवसियं' ति केवलं वुत्तं ।
सुत्तासायणभीरूहि तं च दट्ठव्वयं होइ ॥ ७ ॥
संतम्मि केवले दंसणम्मि णाणस्स संभवो णत्थि ।
केवलणाणम्मि य दंसणस्स तम्हा सणिहणाइं ॥ ८ ॥
दंसणणाणावरणक्खए समाणम्मि कस्स पुव्वअरं ।
होज्ज समं उप्पाओ हंदि दुवे णत्थि उवओगा ॥ ९ ॥
अण्णायं पासंतो अदिट्ठं च अरहा वियाणंतो ।
किं जाणइ किं पासइ कह सव्वण्णू त्ति वा होइ ॥१३॥
णाणं अप्पुट्ठे अविसए य अत्थम्मि दंसणं होइ ।
मोत्तूण लिंगओ जं अणागयाईयविसएसु ॥२५॥
जं अप्पुट्ठे भावे जाणइ पासइ य केवली णियमा ।
तम्हा तं णाणं दसणं च अविसेसओ सिद्धं ॥३०॥

इसीसे सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन अभेदवादके पुरस्कर्ता माने जाते हैं। टीकाकार अभयदेवसूरि और ज्ञानबिन्दुके कर्ता उपाध्याय यशोविजयने भी ऐसा ही प्रतिपादन किया है। ज्ञानबिन्दुमें तो एतद्विषयक सन्मति-गाथाओंकी व्याख्या करते हुए उनके इस वादको "श्रीसिद्धसेनोपज्ञनव्यमतं" (सिद्धसेनकी अपनी ही सूझ-बूझ अथवा उपजरूप नया मत) तक लिखा है। ज्ञानबिन्दुकी परिचयात्मक प्रस्तावनाके आदिमें पं० सुखलालजीने भी ऐसी ही घोषणा की है।

(२) पहली, दूसरी और पाँचवीं द्वात्रिंशिकाएँ युगपद्वादकी मान्यताको लिये हुए हैं; जैसा कि उनके निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

क—"जगन्नैकावस्थं युगपदखिलाऽनन्तविषयं
यदेतत्प्रत्यक्षं तव न च भवान् कस्यचिदपि ।
अनेनैवाऽचिन्त्य-प्रकृति-रस-सिद्धेस्तु विदुषां
समीक्ष्यैतद्द्वारं तव गुण-कथोत्का वयमपि ॥१-३२॥"

ख—"नाऽर्थान् विवित्ससि न वेत्स्यसि नाऽप्यवेत्सी-
र्न ज्ञातवानसि न तेऽच्युत ! वेद्यमस्ति ।
त्रैकाल्य-नित्य-विषमं युगपच्च विश्वं
पश्यस्यचिन्त्य-चरिताय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥२-३०॥"

ग—"अनन्तमेकं युगपत् त्रिकालं शब्दादिभिर्निप्रतिघातवृत्ति ॥५-२१॥"
दुरापमाप्तं यदचिन्त्य-भूति-ज्ञानं त्वया जन्म-जराऽन्तकर्तृ
तेनाऽसि लोकानभिभूय सर्वान्सर्वज्ञ ! लोकोत्तमतामुपेतः ॥५-२२॥"

इन पद्योंमें ज्ञान और दर्शनके जो भी त्रिकालवर्ती अनन्त विषय हैं उन सबको युगपत् जानने-देखनेकी बात कही गई है अर्थात् त्रिकालगत विश्वके सभी साकार-निराकार, व्यक्त-अव्यक्त, सूक्ष्म-स्थूल, दृष्ट-अदृष्ट, ज्ञात-अज्ञात, व्यवहित-अव्यवहित आदि पदार्थ अपनी-अपनी अनेक-अनन्त अवस्थाओं अथवा पर्यायों-सहित वीरभगवान्के युगपत् प्रत्यक्ष हैं, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। यहाँ प्रयुक्त हुआ 'युगपत्' शब्द अपनी खास विशेषता रखता है और वह ज्ञान-दर्शनके यौगपद्यका उसी प्रकार द्योतक है जिसप्रकार स्वामी समन्तभद्रप्रणीत आप्तमीमांसा (देवागम)के "तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम्" (का० १०१) इस वाक्यमें प्रयुक्त हुआ 'युगपत्' शब्द, जिसे ध्यानमें लेकर और पादटिप्पणीमें पूरी कारिकाको उद्धृत करते हुए पं० सुखलालजीने ज्ञानविन्दुके परिचयमें लिखा है—"दिगम्बराचार्य समन्तभद्रने भी अपनी 'आप्तमीमांसा'में एकमात्र यौगपद्यपक्षका उल्लेख किया है।" साथ ही, यह भी बतलाया है कि 'भट्ट अकलङ्क'ने इस कारिकागत अपनी 'अष्टशती' व्याख्यामें यौगपद्य पक्षका स्थापन करते हुए क्रमिक पक्षका, संक्षेपमें पर स्पष्टरूपमें, खण्डन किया है, जिसे पादटिप्पणीमें निम्न प्रकारसे उद्धृत किया है:—

"तज्ज्ञान-दर्शनयोः क्रमवृत्तौ हि सर्वज्ञत्वं कादाचित्कं स्यात्। कुतस्तत्सिद्धिरिति चेत् सामान्य-विशेष-विषययोर्विगतावरणयोरयुगपत्प्रतिभासायोगात् प्रतिबन्धकान्तराऽभावात्।"

ऐसी हालतमें इन तीन द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता वे सिद्धसेन प्रतीत नहीं होते जो सन्मतिसूत्रके कर्ता और अभेदवादके प्रस्थापक अथवा पुरस्कर्ता हैं; बल्कि वे सिद्धसेन जान पड़ते हैं जो केवलीके ज्ञान और दर्शनका युगपत् होना मानते थे। ऐसे एक युगपद्वादी सिद्धसेनका उल्लेख विक्रमकी ८वीं–९वीं शताब्दीके विद्वान् आचार्य हरिभद्रने अपनी 'नन्दीवृत्ति'में किया है। नन्दीवृत्तिमें 'केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली नियमा' इत्यादि दो गाथाओंको उद्धृत करके, जो कि जिनभद्रक्षमाश्रमणके 'विशेषणवती' ग्रन्थकी हैं, उनकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

"केचन सिद्धसेनाचार्यादयः भणंति, किं? 'युगपद्' एकस्मिन्नेव काले जानाति पश्यति च, कः? केवली, न त्वन्यः, नियमात् नियमेन।"

नन्दीसूत्रके ऊपर मलयगिरिसूरिने जो टीका लिखी है उसमें उन्होंने भी युगपद्वादका पुरस्कर्ता सिद्धसेनाचार्यको बतलाया है। परन्तु उपाध्याय यशोविजयने, जिन्होंने सिद्धसेनको अभेदवादका पुरस्कर्ता बतलाया है, ज्ञानविन्दुमें यह प्रकट किया है कि 'नन्दीवृत्तिमें सिद्धसेनाचार्यका जो युगपत् उपयोगवादित्व कहा गया है वह अभ्युपगमवादके अभिप्रायसे है, न कि स्वतन्त्रसिद्धान्तके अभिप्रायसे; क्योंकि क्रमोपयोग और अक्रम (युगपत्) उपयोगके पर्यनुयोगाऽनन्तर ही उन्होंने सन्मतिमें अपने पक्षका उद्भावन किया है[१],' जो कि ठीक नहीं है। मालूम होता है उपाध्यायजीकी दृष्टिमें सन्मतिके कर्ता सिद्धसेन ही एकमात्र सिद्धसेनाचार्यके रूपमें रहे हैं और इसीसे उन्होंने सिद्धसेन-विषयक दो विभिन्न वादोंके कथनोंसे उत्पन्न हुई असङ्गतिको दूर करनेका यह प्रयत्न किया है, जो ठीक नहीं है। चुनाँचे पं० सुखलालजीने उपाध्यायजीके इस कथनको कोई महत्व न देते हुए और हरिभद्र जैसे बहुश्रुत आचार्यके इस प्राचीनतम उल्लेखकी महत्ताका अनुभव करते हुए ज्ञानविन्दुके परिचय (पृ० ६०)में अन्तको यह लिखा है कि "समान नामवाले अनेक आचार्य होते आए हैं। इसलिये असम्भव नहीं कि

---

१ "यत्तु युगपदुपयोगवादित्वं सिद्धसेनाचार्याणां नन्दिवृत्तावुक्तं तदभ्युपगमवादाभिप्रायेण, न तु स्वतंन्त्रसिद्धान्ताभिप्रायेण, क्रमाऽक्रमोपयोगद्वयपर्यनुयोगानन्तरमेव स्वपक्षस्य सम्मतौ उद्भावितत्वादिति द्रष्टव्यम्।" —ज्ञानविन्दु पृ० ३३।

सिद्धसेनदिवाकरसे भिन्न कोई दूसरे भी सिद्धसेन हुए हों जो कि युगपद्वादके समर्थक हुए हों या माने जाते हों।" वे दूसरे सिद्धसेन अन्य कोई नहीं, उक्त तीनों द्वात्रिंशिकाओंमेंसे किसीके भी कर्ता होने चाहियें। अतः इन तीनों द्वात्रिंशिकाओंको सन्मतिसूत्रके कर्ता आचार्य सिद्धसेनकी जो कृति माना जाता है वह ठीक और सङ्गत प्रतीत नहीं होता। इनके कर्ता दूसरे ही सिद्धसेन हैं जो केवलीके विषयमें युगपद्-उपयोगवादी थे और जिनकी युगपद्-उपयोग-वादिताका समर्थन हरिभद्राचार्यके उक्त प्राचीन उल्लेखसे भी होता है।

(३) १९वीं निश्चयद्वात्रिंशिकामें "सर्वोपयोग-द्वैविध्यमनेनोक्तमनक्षरम्" इस वाक्यके द्वारा यह सूचित किया गया है कि 'सब जीवोंके उपयोगका द्वैविध्य अविनश्वर है।' अर्थात् कोई भी जीव संसारी हो अथवा मुक्त, छद्मस्थज्ञानी हो या केवली सभीके ज्ञान और दर्शन दोनों प्रकारके उपयोगोंका सत्व होता है—यह दूसरी बात है कि एकमें वे क्रमसे प्रवृत्त (चरितार्थ) होते हैं और दूसरेमें आवरणाभावके कारण युगपत्। इससे उस एकोपयोगवादका विरोध आता है जिसका प्रतिपादन सन्मतिसूत्रमें केवलीको लक्ष्यमें लेकर किया गया है और जिसे अभेदवाद भी कहा जाता है। ऐसी स्थितिमें यह १९वीं द्वात्रिंशिका भी सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेनकी कृति मालूम नहीं होती।

(४) उक्त निश्चयद्वात्रिंशिका १९में श्रुतज्ञानको मतिज्ञानसे अलग नहीं माना है—लिखा है कि 'मतिज्ञानसे अधिक अथवा भिन्न श्रुतज्ञान कुछ नहीं है, श्रुतज्ञानको अलग मानना व्यर्थ तथा अतिप्रसङ्ग दोषको लिये हुए है।' और इस तरह मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानका अभेद प्रतिपादन किया है। इसी तरह अवधिज्ञानसे भिन्न मनःपर्ययज्ञानकी मान्यताका भी निषेध किया है—लिखा है कि 'या तो द्वीन्द्रियादिक जीवोंके भी, जो कि प्रार्थना और प्रतिघातके कारण चेष्टा करते हुए देखे जाते हैं, मनःपर्यायविज्ञानका मानना युक्त होगा अन्यथा मनः-पर्ययज्ञान कोई जुदी वस्तु नहीं है। इन दोनों मन्तव्योंके प्रतिपादक वाक्य इस प्रकार हैं:—

"वैयर्थ्यातिप्रसंगाभ्यां न मत्यधिकं श्रुतम्। सर्वेभ्यः केवलं चक्षुस्तमः-क्रम-विवेककृत् ॥१३॥"
"प्रार्थना-प्रतिघाताभ्यां चेष्टन्ते द्वीन्द्रियादयः। मनःपर्यायविज्ञानं युक्तं तेषु न वाऽन्यथा ॥१७॥"

यह सब कथन सन्मतिसूत्रके विरुद्ध है, क्योंकि उसमें श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान दोनोंको अलग ज्ञानोंके रूपमें स्पष्टरूपसे स्वीकार किया गया है—जैसा कि उसके द्वितीय[1] काण्डगत निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

"मणपज्जवणाणंतो णाणस्स य दरिसणस्स य विसेसो ॥३॥"
"जेण मणोविसयगयाण दंसणं णत्थि दव्वजायाण।
तो मणपज्जवणाणं णियमा णाणं तु णिद्दिट्ठं ॥१९॥"
"मणपज्जवणाणं दंसणं ति तेणेह होइ ण य जुत्तं।
भण्णइ णाणं णोइंदियम्मि ण घडादयो जम्हा ॥२६॥"
"मइ-सुय-णाणणिमित्तो छउमत्थे होइ अत्थउवलंभो।
एगयरम्मि वि तेसिं ण दंसणं दंसणं कत्तो ? ॥२७॥
जं पच्चक्खग्गहणं णं इंति सुयणाण-सम्मिया अत्था।
तम्हा दंसणसद्दो ण होइ सयले वि सुयणाणे ॥२८॥"

---

१ तृतीयकाण्डमें भी आगमश्रुतज्ञानको प्रमाणरूपमें स्वीकार किया है।

ऐसी हालतमें यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि निश्चयद्वात्रिंशिका (१९) उन्हीं सिद्धसेनाचार्यकी कृति नहीं है जो कि सन्मतिसूत्रके कर्ता हैं— दोनोंके कर्ता सिद्धसेननामकी समानताको धारण करते हुए भी एक दूसरेसे एकदम भिन्न हैं। साथ ही, यह कहनेमें भी कोई सङ्कोच नहीं होता कि न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेन भी निश्चयद्वात्रिंशिकाके कर्तासे भिन्न हैं; क्योंकि उन्होंने श्रुतज्ञानके भेदको स्पष्टरूपसे माना है और उसे अपने ग्रन्थमें शब्दप्रमाण अथवा आगम(श्रुत–शास्त्र)प्रमाणके रूपमें रक्खा है, जैसा कि न्यायावतारके निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

"दृष्टेष्टाऽव्याहताद्वाक्यात्परमार्थाऽभिधायिनः। तत्त्व-ग्राहितयोत्पन्नं मानं शाब्दं प्रकीर्तितम् ॥८॥
[1]आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट-विरोधकम्। तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथ-घट्टनम् ॥९॥"
"नयानामेकनिष्ठानां प्रवृत्तेः श्रुतवर्त्मनि। सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वादश्रुतमुच्यते ॥३०॥"

इस सम्बन्धमें पं० सुखलालजीने, ज्ञानविन्दुकी परिचयात्मक प्रस्तावनामें, यह वतलाते हुए कि 'निश्चयद्वात्रिंशिकाके कर्ता सिद्धसेनने मति और श्रुतमें ही नहीं किन्तु अवधि और मनःपर्यायमें भी आगमसिद्ध भेद-रेखाके विरुद्ध तर्क करके उसे अमान्य किया है' एक फुटनोट-द्वारा जो कुछ कहा है वह इस प्रकार है:—

"यद्यपि दिवाकरश्री(सिद्धसेन)ने अपनी बत्तीसी (निश्चय० १९)में मति और श्रुतके अभेदको स्थापित किया है फिर भी उन्होंने चिरप्रचलित मति-श्रुतके भेदकी सर्वथा अवगणना नहीं की है। उन्होंने न्यायावतारमें आगमप्रमाणको स्वतन्त्ररूपसे निर्दिष्ट किया है। जान पड़ता है इस जगह दिवाकरश्रीने प्राचीन परम्पराका अनुसरण किया और उक्त बत्तीसीमें अपना स्वतन्त्र मत व्यक्त किया। इस तरह दिवाकरश्रीके ग्रन्थोंमें आगमप्रमाणको स्वतन्त्र अतिरिक्त मानने और न माननेवाली दोनों दर्शनान्तरीय धाराएँ देखी जाती हैं जिनका स्वीकार ज्ञान-बिन्दुमें उपाध्यायजीने भी किया है।" (पृ० २४)

इस फुटनोटमें जो बात निश्चयद्वात्रिंशिका और न्यायावतारके मति-श्रुत-विषयक विरोधके समन्वयमें कही गई है वही उनकी तरफसे निश्चयद्वात्रिंशिका और सन्मतिके अवधि-मनःपर्यय-विषयक विरोधके समन्वयमें भी कही जा सकती है और समझनी चाहिये। परन्तु यह सब कथन एकमात्र तीनों ग्रन्थोंकी एककर्तृत्व-मान्यतापर अवलम्बित है, जिसका साम्प्रदायिक मान्यताको छोड़कर दूसरा कोई भी प्रबल आधार नहीं है और इसलिये जब तक द्वात्रिंशिका, न्यायावतार और सन्मतिसूत्र तीनोंको एक ही सिद्धसेनकृत सिद्ध न कर दिया जाय तब तक इस कथनका कुछ भी मूल्य नहीं है। तीनों ग्रन्थोंका एक-कर्तृत्व अभी तक सिद्ध नहीं है; प्रत्युत इसके द्वात्रिंशिका और अन्य ग्रन्थोंके परस्पर विरोधी कथनोंके कारण उनका विभिन्नकर्तृक होना पाया जाता है। जान पड़ता है पं० सुखलालजीके हृदयमें यहाँ विभिन्न सिद्धसेनोंकी कल्पना ही उत्पन्न नहीं हुई और इसी लिये वे उक्त समन्वयकी कल्पना करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, जो ठीक नहीं है; क्योंकि सन्मतिके कर्ता सिद्धसेन-जैसे स्वतन्त्र विचारक यदि निश्चयद्वात्रिंशिकाके कर्ता होते तो उनके लिये कोई वजह नहीं थी कि वे एक ग्रन्थमें प्रदर्शित अपने स्वतन्त्र विचारोंको दबाकर दूसरे ग्रन्थमें अपने विरुद्ध परम्पराके विचारोंका अनुसरण करते, खासकर उस हालतमें जब कि वे सन्मतिमें उपयोग-सम्बन्धी युगपद्वादादिकी प्राचीन परम्पराका खण्डन करके अपने अभेदवाद-विषयक नये स्वतन्त्र विचारोंको प्रकट करते हुए देखे जाते हैं—वहींपर वे श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान-विषयक अपने उन स्वतन्त्र

१ यह पद्य मूलमें स्वामी समन्तभद्रकृत रत्नकरण्डकका है, वहींसे उद्धृत किया गया है।

विचारोंको भी प्रकट कर सकते थे, जिनके लिये ज्ञानोपयोगका प्रकरण होनेके कारण वह स्थल (सन्मतिका द्वितीय काण्ड) उपयुक्त भी था; परन्तु वैसा न करके उन्होंने वहाँ उक्त द्वात्रिंशिकाके विरुद्ध अपने विचारोंको रक्खा है और इसलिये उसपरसे यही फलित होता है कि वे उक्त द्वात्रिंशिकाके कर्ता नहीं हैं—उसके कर्ता कोई दूसरे ही सिद्धसेन होने चाहियें। उपाध्याय यशोविजयजीने द्वात्रिंशिकाका न्यायावतार और सन्मतिके साथ जो उक्त विरोध बैठता है उसके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा।

यहाँ इतना और भी जान लेना चाहिये कि श्रुतकी अमान्यतारूप इस द्वात्रिंशिकाके कथनका विरोध न्यायावतार और सन्मतिके साथ ही नहीं है बल्कि प्रथम द्वात्रिंशिकाके साथ भी है, जिसके 'सुनिश्चितं नः' इत्यादि ३०वें पद्यमें 'जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः' जैसे शब्दों-द्वारा अर्हत्प्रवचनरूप श्रुतको प्रमाण माना गया है।

(५) निश्चयद्वात्रिंशिकाकी दो बातें और भी यहाँ प्रकट कर देनेकी हैं, जो सन्मतिके साथ स्पष्ट विरोध रखती हैं और वे निम्न प्रकार हैं:—

"ज्ञान-दर्शन-चारित्राण्युपायाः शिवहेतवः। अन्योऽन्य-प्रतिपक्षत्वाच्छुद्धावगम-शक्तयः ॥१९॥"

इस पद्यमें ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रको मोक्ष-हेतुओंके रूपमें तीन उपाय(मार्ग) बतलाया है—तीनोंको मिलाकर मोक्षका एक उपाय निर्दिष्ट नहीं किया; जैसा कि तत्त्वार्थ-सूत्रके प्रथमसूत्रमें मोक्षमार्गः' इस एकवचनात्मक पदके प्रयोग-द्वारा किया गया है। अतः ये तीनों यहाँ समस्तरूपमें नहीं किन्तु व्यस्त (अलग अलग) रूपमें मोक्षके मार्ग निर्दिष्ट हुए हैं और उन्हें एक दूसरेके प्रतिपक्षी लिखा है। साथ ही तीनों सम्यक् विशेषणसे शून्य हैं और दर्शनको ज्ञानके पूर्व न रखकर उसके अनन्तर रक्खा गया है जो कि समूची द्वात्रिंशिकापरसे श्रद्धान अर्थका वाचक भी प्रतीत नहीं होता। यह सब कथन सन्मतिसूत्रके निम्न वाक्योंके विरुद्ध जाता है, जिनमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी प्रतिपत्तिसे सम्पन्न भव्यजीवको संसारके दुःखोंका अन्तकर्तारूपमें उल्लेखित किया है और कथनको हेतुवाद सम्मत बतलाया है (३-४४) तथा दर्शन शब्दका अर्थ जिनप्रणीत पदार्थोंका श्रद्धान ग्रहण किया है। साथ ही सम्यग्दर्शनके उत्तरवर्ती सम्यग्ज्ञानको सम्यग्दर्शनसे युक्त बतलाते हुए वह इस तरह सम्यग्दर्शनरूप भी है, ऐसा प्रतिपादन किया है (२-३२, ३३):—

'एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावओ भावे।
पुरिसस्साभिणिबोहे दंसणसद्दो हवइ जुत्तो ॥२-३२॥
सम्मण्णाणे णियमेण दंसणं दंसणे उ भयणिज्जं।
सम्मण्णाणं च इमं ति अत्थओ होइ उववण्णं ॥२-३३॥
भविओ सम्मदंसण-णाण-चरित्त-पडिवत्ति-संपण्णो।
णियमा दुक्खंतकडो त्ति लक्खणं हेउवायस्स ॥३-४४॥

निश्चयद्वात्रिंशिकाका यह कथन दूसरी कुछ द्वात्रिंशिकाओंके भी विरुद्ध पड़ता है, जिसके दो नमूने इस प्रकार है:—

"क्रियां च संज्ञान-वियोग-निष्फलां क्रिया-विहीनां च विबोधसंपदम्।
निरस्यता क्लेश-समूह-शान्तये त्वया शिवायालिखितेव पद्धतिः ॥१-२९॥"

"यथाऽगद-परिज्ञानं नालमाऽऽमय-शान्तये।
अचारित्रं तथा ज्ञानं न बुद्ध्यध्य(ध्व)साधकः ॥१७-२७॥"

इनमेंसे पहली द्वात्रिंशिकाके उद्धरणमें यह सूचित किया है कि 'वीरजिनेन्द्रने सम्यग्ज्ञानसे रहित क्रिया (चारित्र)को और क्रियासे विहीन सम्यग्ज्ञानकी सम्पदाको क्लेश-समूहकी शान्ति अथवा शिवप्राप्तिके लिये निष्फल एवं असमर्थ बतलाया है और इसलिये ऐसी क्रिया तथा ज्ञानसम्पदाका निषेध करते हुए ही उन्होंने मोक्षपद्धतिका निर्माण किया है।' और १७वीं द्वात्रिंशिकाके उद्धरणमें बतलाया है कि 'जिस प्रकार रोगनाशक औषधका परिज्ञान-मात्र रोगकी शान्तिके लिये समर्थ नहीं होता उसी प्रकार चारित्ररहित ज्ञानको समझना चाहिए—वह भी अकेला भवरोगको शान्त करनेमें समर्थ नहीं है।' ऐसी हालतमें ज्ञान, दर्शन और चारित्रको अलग-अलग मोक्षकी प्राप्तिका उपाय बतलाना इन द्वात्रिंशिकाओंके भी विरुद्ध ठहरता है।

"प्रयोग-विस्रसाकर्म तदभावस्थितिस्तथा। लोकानुभाववृत्तान्तः किं धर्माऽधर्मयोः फलम् ॥१९-२४॥
आकाशमवगाहाय तदनन्या दिगन्यथा। तावप्येवमनुच्छेदात्ताभ्यां वाऽन्यमुदाहृतम् ॥१९-२५॥
प्रकाशवदनिष्टं स्यात्साध्ये नार्थस्तु न श्रमः। जीव-पुद्गलयोरेव परिशुद्धः परिग्रहः ॥१९-२६॥"

इन पद्योंमें द्रव्योंकी चर्चा करते हुए धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्योंकी मान्यताको निरर्थक ठहराया है तथा जीव और पुद्गलका ही परिशुद्ध परिग्रह करना चाहिए अर्थात् इन्हीं दो द्रव्योंको मानना चाहिए, ऐसी प्रेरणा की है। यह सब कथन भी सन्मतिसूत्रके विरुद्ध है; क्योंकि उसके तृतीय काण्डमें द्रव्यगत उत्पाद तथा व्यय (नाश)के प्रकारोंको बतलाते हुए उत्पादके जो प्रयोगजनित (प्रयत्नजन्य) तथा वैस्रसिक (स्वाभाविक) ऐसे दो भेद किये हैं उनमें वैस्रसिक उत्पादके भी समुदायकृत तथा ऐकत्विक ऐसे दो भेद निर्दिष्ट किये हैं और फिर यह बतलाया है कि ऐकत्विक उत्पाद आकाशादिक तीन द्रव्यों (आकाश, धर्म, अधर्म)में परनिमित्त-से होता है और इसलिये अनियमित होता है। नाशकी भी ऐसी ही विधि बतलाई है। इससे सन्मतिकार सिद्धसेनकी इन तीन अमूर्तिक द्रव्योंके, जो कि एक एक हैं, अस्तित्व-विषयमें मान्यता स्पष्ट है। यथा:—

"उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ य विस्ससा चेव।
तत्थ उ पओगजणिओ समुदयवायो अपरिसुद्धो ॥३२॥
साभाविओ वि समुदयकओ व्व एगत्तिओ व्व होज्जाहि।
आगासाईआणं तिण्हं परप्पच्चओऽणियमा ॥३३॥
विगमस्स वि एस विही समुदयजणियम्मि सो उ दुवियप्पो।
समुदयविभागमेत्तं अत्थंतरभावगमणं च ॥३४॥"

इस तरह यह निश्चयद्वात्रिंशिका कतिपय द्वात्रिंशिकाओं, न्यायावतार और सन्मतिके विरुद्ध प्रतिपादनोंको लिये हुए है। सन्मतिके विरुद्ध तो वह सबसे अधिक जान पड़ती है और इसलिये किसी तरह भी सन्मतिकार सिद्धसेनकी कृति नहीं कही जा सकती। यही एक द्वात्रिंशिका ऐसी है जिसके अन्तमें उसके कर्ता सिद्धसेनाचार्यको अनेक प्रतियोंमें श्वेतपट (श्वेताम्बर) विशेषणके साथ 'द्वेष्य' विशेषणसे भी उल्लेखित किया गया है, जिसका अर्थ द्वेषयोग्य, विरोधी अथवा शत्रुका होता है और यह विशेषण सम्भवतः प्रसिद्ध जैन सैद्धान्तिक मान्यताओंके विरोधके कारण ही उन्हें अपनी ही सम्प्रदायके किसी असहिष्णु विद्वान्-द्वारा दिया गया जान पड़ता है। जिस पुष्पिकावाक्यके साथ इस विशेषण पदका प्रयोग किया गया है वह भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट पूना और एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल (कलकत्ता)की प्रतियोंमें निम्न प्रकारसे पाया जाता है—

"द्वेष्य-श्वेतपटसिद्धसेनाचार्यस्य कृतिः निश्चयद्वात्रिंशिकैकोनविंशतिः।"

दूसरी किसी द्वात्रिंशिकाके अन्तमें ऐसा कोई पुष्पिकावाक्य नहीं है। पूर्वकी १८ और उत्तरवर्ती १ ऐसे १९ द्वात्रिंशिकाओंके अन्तमें तो कर्ताका नाम तक भी नहीं दिया है—द्वात्रिंशिकाकी संख्यासूचक एक पंक्ति 'इति' शब्दसे युक्त अथवा वियुक्त और कहीं कहीं द्वात्रिंशिकाके नामके साथ भी दी हुई है।

(६) द्वात्रिंशिकाओंकी उपर्युक्त स्थितिमें यह कहना किसी तरह भी ठीक प्रतीत नहीं होता कि उपलब्ध सभी द्वात्रिंशिकाएँ अथवा २१वींको छोड़कर बीस द्वात्रिंशिकाएँ सन्मतिकार सिद्धसेनकी ही कृतियाँ हैं; क्योंकि पहली, दूसरी, पाँचवीं और उन्नीसवीं ऐसी चार द्वात्रिंशिकाओंकी बावत हम ऊपर देख चुके हैं कि वे सन्मतिके विरुद्ध जानेके कारण सन्मतिकारकी कृतियाँ नहीं बनतीं। शेष द्वात्रिंशिकाएँ यदि इन्हीं चार द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनोंमेंसे किसी एक या एकसे अधिक सिद्धसेनोंकी रचनाएँ हैं तो भिन्न व्यक्तित्वके कारण उनमेंसे कोई भी सन्मतिकार सिद्धसेनकी कृति नहीं हो सकती। और यदि ऐसा नहीं है तो उनमेंसे अनेक द्वात्रिंशिकाएँ सन्मतिकार सिद्धसेनकी भी कृति हो सकती हैं; परन्तु हैं और अमुक अमुक हैं यह निश्चितरूपमें उस वक्त तक नहीं कहा जा सकता जब तक इस विषयका कोई स्पष्ट प्रमाण सामने न आजाए।

(७) अब रही न्यायावतारकी बात, यह ग्रन्थ सन्मतिसूत्रसे कोई एक शताब्दीसे भी अधिक बादका बना हुआ है; क्योंकि इसपर समन्तभद्रस्वामीके उत्तरकालीन पात्रस्वामी (पात्रकेसरी) जैसे जैनाचार्योंका ही नहीं किन्तु धर्मकीर्ति और धर्मोत्तर जैसे बौद्धाचार्योंका भी स्पष्ट प्रभाव है। डा० हर्मन जैकोबीके मतानुसार[1] धर्मकीर्तिने दिग्नागके प्रत्यक्षलक्षण[2]में 'कल्पनापोढ' विशेषणके साथ 'अभ्रान्त' विशेषणकी वृद्धिकर उसे अपने अनुरूप सुधारा था अथवा प्रशस्तरूप दिया था और इसलिये "प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्" यह प्रत्यक्षका धर्मकीर्ति-प्रतिपादित प्रसिद्ध लक्षण है जो उनके न्यायबिन्दु ग्रन्थमें पाया जाता है और जिसमें 'अभ्रान्त' पद अपनी खास विशेषता रखता है। न्यायावतारके चौथे पद्यमें प्रत्यक्षका लक्षण, अकलङ्कदेवकी तरह 'प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं' न देकर, जो "अपरोक्षतयार्थस्य ग्राहकं ज्ञानमीदृशं प्रत्यक्षम्" दिया है और अगले पद्यमें, अनुमानका लक्षण देते हुए, 'तदभ्रान्तं प्रमाणत्वात्समक्षवत्" वाक्यके द्वारा उसे (प्रत्यक्षको) 'अभ्रान्त' विशेषणसे विशेषित भी सूचित किया है उससे यह साफ ध्वनित होता है कि सिद्धसेनके सामने—उनके लक्ष्यमें—धर्मकीर्तिका उक्त लक्षण भी स्थित था और उन्होंने अपने लक्षणमें 'ग्राहक' पदके प्रयोग-द्वारा जहाँ प्रत्यक्षको व्यवसायात्मक ज्ञान बतलाकर धर्मकीर्तिके 'कल्पनापोढ' विशेषणका निरसन अथवा वेधन किया है वहाँ उनके 'अभ्रान्त' विशेषणको प्रकारान्तरसे स्वीकार भी किया है। न्यायावतारके टीकाकार सिद्धर्षि भी 'ग्राहकं' पदके द्वारा बौद्धों (धर्मकीर्ति)के उक्त लक्षणका निरसन होना बतलाते हैं। यथा—

"ग्राहकमिति च निर्णायकं द्रष्टव्यं, निर्णयाभावेऽर्थग्रहणायोगात्। तेन यत् ताथागतैः प्रत्यपादि 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्' [न्या. वि. ४] इति, तदपास्तं भवति। तस्य युक्तिरिक्तत्वात्।"

इसी तरह 'त्रिरूपाल्लिङ्गाद्यदनुमेये ज्ञानं तदनुमानं' यह धर्मकीर्तिके अनुमानका लक्षण है। इसमें 'त्रिरूपात्' पदके द्वारा लिङ्गको त्रिरूपात्मक बतलाकर अनुमानके साधारण

---

१ देखो, 'समराइच्चकहा'की जैकोबीकृत प्रस्तावना तथा न्यायावतारकी डा. पी. एल्. वैद्यकृत प्रस्तावना।

२ "प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्याद्यसंयुतम्" (प्रमाणसमुच्चय)।

"प्रत्यक्षं कल्पनापोढं यज्ज्ञानं नामजात्यादिकल्पनारहितम्।" (न्यायप्रवेश)।

लक्षणको एक विशेषरूप दिया गया है। यहाँ इस अनुमानज्ञानको अभ्रान्त या भ्रान्त ऐसा कोई विशेषण नहीं दिया गया; परन्तु न्यायबिन्दुकी टीकामें धर्मोत्तरने प्रत्यक्ष-लक्षणकी व्याख्या करते और उसमें प्रयुक्त हुए 'अभ्रान्त' विशेषणकी उपयोगिता बतलाते हुए *"भ्रान्तं ह्यनुमानम्"* इस वाक्यके द्वारा अनुमानको भ्रान्त प्रतिपादित किया है। जान पड़ता है इस सबको भी लक्ष्यमें रखते हुए ही सिद्धसेनने अनुमानके "साध्याविनाभुनो(वो) लिङ्गात्साध्यनिश्चायकमनुमानं" इस लक्षणका विधान किया है और इसमें लिङ्गका 'साध्याविनाभावी' ऐसा एकरूप देकर धर्मकीर्तिके 'त्रिरूप'का—पक्षधर्मत्व, सपक्षेसत्व तथा विपक्षासत्वरूपका निरसन किया है। साथ ही, 'तदभ्रान्तं समक्षवत्' इस वाक्यकी योजनाद्वारा अनुमानको प्रत्यक्षकी तरह अभ्रान्त बतलाकर बौद्धोंकी उसे भ्रान्त प्रतिपादन करनेवाली उक्त मान्यताका खण्डन भी किया है। इसी तरह "न प्रत्यक्षमपि भ्रान्तं प्रमाणत्वविनिश्चयात्" इत्यादि छठे पद्यमें उन दूसरे बौद्धोंकी मान्यताका खण्डन किया है जो प्रत्यक्षको अभ्रान्त नहीं मानते। यहाँ लिङ्गके इस एकरूपका और फलतः अनुमानके उक्त लक्षणका आभारी पात्र स्वामीका वह हेतुलक्षण है जिसे न्यायावतारकी २२वीं कारिकामें *"अन्यथानुपपन्नत्वं हेतोर्लक्षणमीरितम्"* इस वाक्यके द्वारा उद्धृत भी किया गया है और जिसके आधारपर पात्रस्वामीने बौद्धोंके त्रिलक्षणहेतुका कदर्थन किया था तथा 'त्रिलक्षणकदर्थन'[1] नामका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही रच डाला था, जो आज अनुपलब्ध है परन्तु उसके प्राचीन उल्लेख मिल रहे हैं। विक्रमकी ८वीं-९वीं शताब्दीके बौद्ध विद्वान् शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रहमें त्रिलक्षणकदर्थन-सम्बन्धी कुछ श्लोकोंको उद्धृत किया है और उनके शिष्य कमलशीलने टीकामें उन्हें "अन्यथेत्यादिना पात्रस्वामिमतमाशङ्कते" इत्यादि वाक्योंके साथ दिया है। उनमेंसे तीन श्लोक नमूनेके तौरपर इस प्रकार हैं—

अन्यथानुपपन्नत्वे ननु दृष्टा सुहेतुता। नाऽसंति त्र्यंशकस्याऽपि तस्मात् क्लीबास्त्रिलक्षणाः॥ १३६४॥
अन्यथानुपपन्नत्वं यस्य तस्यैव हेतुता। दृष्टान्तौ द्वावपि स्तां वा मा वा तौ हि न कारणम्॥१३६८॥
अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्?। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रियेण किम्?॥ १३६९॥

इनमेंसे तीसरे पद्यको विक्रमकी ७वीं-८वीं शताब्दीके[2] विद्वान् अकलङ्कदेवने अपने 'न्यायविनिश्चय' (कारिका ३२३)में अपनाया है और सिद्धिविनिश्चय (प्र० ६)में इसे स्वामीका 'अमलालीढ पद' प्रकट किया है तथा वादिराजने न्यायविनिश्चय-विवरणमें इस पद्यको पात्रकेसरीसे सम्बद्ध 'अन्यथानुपपत्तिवार्तिक' बतलाया है।

धर्मकीर्तिका समय ई० सन् ६२५से ६५० अर्थात् विक्रमकी ७वीं शताब्दीका प्रायः चतुर्थ चरण, धर्मोत्तरका समय ई० सन् ७२५से ७५० अर्थात् विक्रमकी ८वीं शताब्दीका प्रायः चतुर्थ चरण और पात्रस्वामीका समय विक्रमकी ७वीं शताब्दीका प्रायः तृतीय चरण पाया जाता है, क्योंकि वे अकलङ्कदेवसे कुछ पहले हुए हैं। तब सन्मतिकार सिद्धसेनका समय वि० संवत् ६६६से पूर्वका सुनिश्चित है जैसा कि अगले प्रकरणमें स्पष्ट करके बतलाया

---

१ महिमा स पात्रकेसरिगुरोः परं भवति यस्य भक्त्यासीत्। पद्मावती सहाया त्रिलक्षणकदर्थनं कर्त्तुम्॥
—मल्लिषेणप्रशस्ति (श्र० शि० ५४)

२ विक्रमसंवत् ७०० में अकलङ्कदेवका बौद्धोंके साथ महान् वाद हुआ है, जैसा कि अकलङ्कचरितके निम्न पद्यसे प्रकट है—
विक्रमार्क-शकाब्दीय-शतसप्त-प्रमाजुषि। कालेऽकलङ्क-यतिनो बौद्धैर्वादो महानभूत्॥

जायगा। ऐसी हालतमें जो सिद्धसेन सन्मतिके कर्ता हैं वे ही न्यायावतारके कर्ता नहीं हो सकते—समयकी दृष्टिसे दोनों ग्रन्थोंके कर्ता एक-दूसरेसे भिन्न होने चाहियें।

इस विषयमें पं० सुखलालजी आदिका यह कहना है[1] कि 'प्रो० टुची (Tousi) ने दिग्नागसे पूर्ववर्ती बौद्धन्यायके ऊपर जो एक निबन्ध रॉयल एशियाटिक सोसाइटीके जुलाई सन् १९२९के जर्नलमें प्रकाशित कराया है उसमें बौद्ध-संस्कृत-ग्रन्थोंके चीनी तथा तिब्बती अनुवादके आधारपर यह प्रकट किया है कि 'योगाचार्य भूमिशास्त्र और प्रकरणार्य-वाचा नामके ग्रन्थोंमें प्रत्यक्षकी जो व्याख्या दी है उसके अनुसार प्रत्यक्षको अपरोक्ष, कल्पनापोढ, निर्विकल्प और भूल-विनाका अभ्रान्त अथवा अव्यभिचारी होना चाहिये। साथ ही अभ्रान्त तथा अव्यभिचारी शब्दोंपर नोट देते हुए बतलाया है कि ये दोनों पर्यायशब्द हैं, और चीनी तथा तिब्बती भाषाके जो शब्द अनुवादोंमें प्रयुक्त हैं उनका अनुवाद अभ्रान्त तथा अव्यभिचारी दोनों प्रकारसे हो सकता है। और फिर स्वयं 'अभ्रान्त' शब्दको ही स्वीकार करते हुए यह अनुमान लगाया है कि धर्मकीर्तिने प्रत्यक्षकी व्याख्यामें 'अभ्रान्त' शब्दकी जो वृद्धि की है वह उनके द्वारा की गई कोई नई वृद्धि नहीं है बल्कि सौत्रान्तिकोंकी पुरानी व्याख्याको स्वीकार करके उन्होंने दिग्नागकी व्याख्यामें इस प्रकारसे सुधार किया है। योगाचार्य-भूमिशास्त्र असङ्गके गुरु मैत्रेयकी कृति है, असङ्ग (मैत्रेय ?)का समय ईसाकी चौथी शताब्दीका मध्यकाल है, इससे प्रत्यक्षके लक्षणमें 'अभ्रान्त' शब्दका प्रयोग तथा अभ्रान्तपनाका विचार विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीके पहले भले प्रकार ज्ञात था अर्थात् यह (अभ्रान्त) शब्द सुप्रसिद्ध था। अतः सिद्धसेनदिवाकरके न्यायावतारमें प्रयुक्त हुए मात्र 'अभ्रान्त' पदपरसे उसे धर्मकीर्तिके बादका बतलाना जरूरी नहीं। उसके कर्ता सिद्धसेनको असङ्गके बाद और धर्मकीर्तिके पहले माननेमें कोई प्रकारका अन्तराय (विघ्न-बाधा) नहीं है।'

इस कथनमें प्रो० टुचीके कथनको लेकर जो कुछ फलित किया गया है वह ठीक नहीं है; क्योंकि प्रथम तो प्रोफेसर महाशय अपने कथनमें स्वयं भ्रान्त हैं—वे निश्चयपूर्वक यह नहीं कह रहे हैं कि उक्त दोनों मूल संस्कृत ग्रन्थोंमें प्रत्यक्षकी जो व्याख्या दी अथवा उसके लक्षणका जो निर्देश किया है उसमें 'अभ्रान्त' पदका प्रयोग पाया ही जाता है बल्कि साफ तौरपर यह सूचित कर रहे हैं कि मूलग्रन्थ उनके सामने नहीं, चीनी तथा तिब्बती अनुवाद ही सामने हैं और उनमें जिन शब्दोंका प्रयोग हुआ है उनका अर्थ अभ्रान्त तथा अव्यभिचारि दोनों रूपसे हो सकता है। तीसरा भी कोई अर्थ अथवा संस्कृत शब्द उनका वाच्य हो सकता हो तो उसका निषेध भी नहीं किया। दूसरे, उक्त स्थितिमें उन्होंने अपने प्रयोजनके लिये जो अभ्रान्त पद स्वीकार किया है वह उनकी रुचिकी बात है न कि मूलमें अभ्रान्त-पदके प्रयोगकी कोई गारंटी है और इसलिये उसपरसे निश्चितरूपमें यह फलित कर लेना कि 'विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीके पहले प्रत्यक्षके लक्षणमें 'अभ्रान्त' पदका प्रयोग भले प्रकार ज्ञात तथा सुप्रसिद्ध था' फलितार्थ तथा कथनका अतिरेक है और किसी तरह भी समुचित नहीं कहा जा सकता। तीसरे, उन मूल संस्कृत ग्रन्थोंमें यदि 'अव्यभिचारि' पदका ही प्रयोग हो तब भी उसके स्थानपर धर्मकीर्तिने 'अभ्रान्त' पदकी जो नई योजना की है वह उन्हींकी योजना कहलाएगी और न्यायावतारमें उसका अनुसरण होनेसे उसके कर्ता सिद्धसेन धर्मकीर्तिके बादके ही विद्वान् ठहरेंगे। चौथे, पात्रकेसरीस्वामीके हेतु लक्षणका जो उद्धरण न्यायावतारमें पाया जाता है और जिसका परिहार नहीं किया जा सकता उससे सिद्धसेनका धर्मकीर्तिके

१ देखो, सन्मतिके गुजराती संस्करणकी प्रस्तावना पृ० ४१, ४२, और अंग्रेजी संस्करणकी प्रस्तावना पृ० १२-१४।

बाद होना और भी पुष्ट होता है। ऐसी हालतमें न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेनको असङ्गके बादका और धर्मकीर्तिके पूर्वका बतलाना निरापद् नहीं है—उसमें अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं। फलतः न्यायावतार धर्मकीर्ति और पात्रस्वामीके बादकी रचना होनेसे उन सिद्धसेनाचार्यकी कृति नहीं हो सकता जो सन्मतिसूत्रके कर्ता हैं। जिन अन्य विद्वानोंने उसे अधिक प्राचीनरूपमें उल्लेखित किया है वह मात्र द्वात्रिंशिकाओं, सन्मति और न्यायावतार-को एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ मानकर चलनेका फल है।

इस तरह यहाँ तकके इस सब विवेचनपरसे स्पष्ट है कि सिद्धसेनके नामपर जो भी ग्रन्थ चढ़े हुए हैं उनमेंसे सन्मतिसूत्रको छोड़कर दूसरा कोई भी ग्रन्थ सुनिश्चितरूपमें सन्मतिकारकी कृति नहीं कहा जा सकता—अकेला सन्मतिसूत्र ही असपत्नभावसे अभीतक उनकी कृतिरूपमें स्थित है। कलको अविरोधिनी द्वात्रिंशिकाओंमेंसे यदि किसी द्वात्रिंशिकाका उनकी कृतिरूपमें सुनिश्चय हो गया तो वह भी सन्मतिके साथ शामिल हो सकेगी।

(ख) सिद्धसेनका समयादिक—

अब देखना यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थ 'सन्मति'के कर्ता सिद्धसेनाचार्य कब हुए हैं और किस समय अथवा समयके लगभग उन्होंने इस ग्रन्थकी रचना की है। ग्रन्थमें निर्माणकालका कोई उल्लेख और किसी प्रशस्तिका आयोजन न होनेके कारण दूसरे साधनोंपरसे ही इस विषय-को जाना जा सकता है और वे दूसरे साधन हैं ग्रन्थका अन्तःपरीक्षण—उसके सन्दर्भ-साहित्य-की जांच-द्वारा बाह्य प्रभाव एवं उल्लेखादिका विश्लेषण—, उसके वाक्यों तथा उसमें चर्चित खास विषयोंका अन्यत्र उल्लेख, आलोचन-प्रत्यालोचन, स्वीकार-अस्वीकार अथवा खण्डन-मण्डनादिक और साथ ही सिद्धसेनके व्यक्तित्व-विषयक महत्वके प्राचीन उद्गार। इन्हीं सब साधनों तथा दूसरे विद्वानोंके इस दिशामें किये गये प्रयत्नोंको लेकर मैंने इस विषयमें जो कुछ अनुसंधान एवं निर्णय किया है उसे ही यहाँपर प्रकट किया जाता है:—

(१) सन्मतिके कर्ता सिद्धसेन केवलीके ज्ञान दर्शनोपयोग-विषयमें अभेदवादके पुरस्कर्ता हैं यह बात पहले (पिछले प्रकरणमें) बतलाई जा चुकी है। उनके इस अभेदवादका खण्डन इधर दिगम्बर सम्प्रदायमें सर्वप्रथम अकलंकदेवके राजवार्तिकभाष्यमें[1] और उधर श्वेताम्बर सम्प्रदायमें सर्वप्रथम जिनभद्रक्षमाश्रमणके विशेषावश्यकभाष्य तथा विशेषणवती नामके ग्रन्थोंमें[2] मिलता है। साथ ही तृतीय काण्डकी 'णत्थि पुढवीविसिट्ठो' और 'दोहिं वि णएहिं णीयं' नामकी दो गाथाएँ (५२,४९) विशेषावश्यकभाष्यमें क्रमशः गा० नं० २१०४,२१९५ पर उद्धृत पाई जाती हैं[3]। इसके सिवाय, विशेषावश्यकभाष्यकी स्वोपज्ञटीकामें[4] 'णामाइतियं दव्वट्ठियस्स' इत्यादि गाथा ७५की व्याख्या करते हुए ग्रन्थकारने स्वयं "द्रव्यास्तिकनयावलम्बिनौ संग्रह-व्यवहारौ ऋजुसूत्रादयस्तु पर्यायनयमतानुसारिणः आचार्यसिद्धसेनाऽभिप्रायात्" इस वाक्यके द्वारा सिद्धसेनाचार्यका नामोल्लेखपूर्वक उनके सन्मतिसूत्र-गत मतका उल्लेख किया है, ऐसा मुनि पुण्यविजयजीके मंगसिर सुदि १०मी सं० २००५के एक पत्रसे मालूम हुआ है। दोनों

---

१ राजवा० भ० अ० ६ सू० १० वा० १४-१६।

२ विशेषा० भा० गा० ३०८९ से (कोट्याचार्यकी वृत्तिमें गा० ३७२९से) तथा विशेषणवती गा० १८४ से २८०; सन्मति-प्रस्तावना पृ० ७५।

३ उद्धरण-विषयक विशेष ऊहापोहके लिये देखो, सन्मति-प्रस्तावना पृ० ६८, ६९।

४ इस टीकाके अस्तित्वका पता हालमें मुनि पुण्यविजयजीको चला है। देखो, श्री आत्मानन्दप्रकाश पुस्तक ४५ अंक ८ पृ० १४२ पर उनका तद्विषयक लेख।

ग्रन्थकार विक्रमकी ७वीं शताब्दीके प्रायः उत्तरार्धके विद्वान् हैं। अकलंकदेवका विक्रम सं० ७०० में बौद्धोंके साथ महान् वाद हुआ है जिसका उल्लेख पिछले एक फुटनोटमें अकलंकचरितके आधारपर किया जा चुका है, और जिनभद्रक्षमाश्रमणने अपना विशेषावश्यकभाष्य शक सं० ५३१ अर्थात् वि० सं० ६६६ में बनाकर समाप्त किया है। ग्रन्थका यह रचनाकाल उन्होंने स्वयं ही ग्रन्थके अन्तमें दिया है, जिसका पता श्री जिनविजयजीको जैसलमेर भण्डारकी एक अतिप्राचीन प्रतिको देखते हुए चला है। ऐसी हालतमें सन्मतिकार सिद्धसेनका समय विक्रम सं० ६६६से पूर्वका सुनिश्चित है परन्तु वह पूर्वका समय कौन-सा है?—कहाँ तक उसकी कमसे कम सीमा है?—यही आगे विचारणीय है।

(२) सन्मतिसूत्रमें उपयोग-द्वयके क्रमवादका जोरोंके साथ खण्डन किया गया है, यह बात भी पहले बतलाई जा चुकी तथा मूल ग्रन्थके कुछ वाक्योंको उद्धृत करके दर्शाई जा-चुकी है। उस क्रमवादका पुरस्कर्ता कौन है और उसका समय क्या है? यह बात यहाँ खास तौरसे जान लेनेकी है। हरिभद्रसूरिने नन्दिवृत्तिमें तथा अभयदेवसूरिने सन्मतिकी टीकामें यद्यपि जिन-भद्रक्षमाश्रमणको क्रमवादके पुरस्कर्तारूपमें उल्लेखित किया है परन्तु वह ठीक नहीं है; क्योंकि वे तो सन्मतिकारके उत्तरवर्ती हैं, जबकि होना चाहिये कोई पूर्ववर्ती। यह दूसरी बात है कि उन्होंने क्रमवादका जोरोंके साथ समर्थन और व्यवस्थित रूपसे स्थापन किया है, संभवतः इसीसे उनको उस वादका पुरस्कर्ता समझ लिया गया जान पड़ता है। अन्यथा, क्षमाश्रमणजी स्वयं अपने निम्न वाक्यों द्वारा यह सूचित कर रहे हैं कि उनसे पहले युगपद्वाद, क्रमवाद तथा अभेदवादके पुरस्कर्ता हो चुके हैं:—

"केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली णियमा।
अण्णे एगंतरियं इच्छंति सुओवएसेणं ॥ १८४ ॥
अण्णे ण चेव वीसुं दंसणमिच्छंति जिणवरिंदस्स।
जं चिय केवलणाणं तं चिय से दरिसणं विंति ॥ १८५ ॥ —विशेषणवती

पं० सुखलालजी आदिने भी कथन-विरोधको महसूस करते हुए प्रस्तावनामें यह स्वीकार किया है कि जिनभद्र और सिद्धसेनसे पहले क्रमवादके पुरस्कर्तारूपमें कोई विद्वान् होने ही चाहियें जिनके पक्षका सन्मतिमें खण्डन किया गया है; परन्तु उनका कोई नाम उपस्थित नहीं किया। जहाँ तक मुझे मालूम है वे विद्वान् निर्युक्तिकार भद्रबाहु होने चाहियें, जिन्होंने आवश्यकनिर्युक्तिके निम्न वाक्य-द्वारा क्रमवादकी प्रतिष्ठा की है—

णाणंमि दंसणंमि अ इत्तो एगयरयंमि उवजुत्ता।
सव्वस्स केवलिस्सा(स्स वि) जुगवं दो णत्थि उवओगा ॥ ९७८ ॥

ये निर्युक्तिकार भद्रबाहु श्रुतकेवली न होकर द्वितीय भद्रबाहु हैं जो अष्टाङ्गनिमित्त तथा मन्त्र-विद्याके पारगामी होनेके कारण 'नैमित्तिक'[1] कहे जाते हैं, जिनकी कृतियोंमें

---

१ पावयणी१ धम्मकही२ वाई३ णेमित्तिओ४ तवस्सी५ य।
विज्जा६ सिद्धो७ य कई८ अट्ठेव पभावगा भणिया ॥ १ ॥
अजरक्ख१ नंदिसेणो२ सिरिगुत्तविणेय३ भद्दबाहू४ य।
खवग५ऽज्जखउड६ समिया७ दिवायरो८ वा इहाऽऽहरणा ॥२॥
—'छेदसूत्रकार अने निर्युक्तिकार' लेखमें उद्धृत।

भद्रबाहुसंहिता और उपसग्गहरस्तोत्रके भी नाम लिये जाते हैं और जो ज्योतिर्विद् वराहमिहरके सगे भाई माने जाते हैं। इन्होंने दशाश्रुतस्कन्ध-निर्युक्तिमें स्वयं अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुको 'प्राचीन' विशेषणके साथ नमस्कार किया है[1]; उत्तराध्ययननिर्युक्तिमें मरणविभक्तिके सभी द्वारोंका क्रमशः वर्णन करनेके अनन्तर लिखा है कि 'पदार्थोंको सम्पूर्ण तथा विशदरीतिसे जिन (केवलज्ञानी) और चतुर्दशपूर्वी[2] (श्रुतकेवली ही) कहते हैं—कह सकते हैं', और आवश्यक आदि ग्रन्थोंपर लिखी गई अनेक निर्युक्तियोंमें आर्यवज्र, आर्यरक्षित, पादलिप्ताचार्य, कालिकाचार्य और शिवभूति आदि कितने ही ऐसे आचार्योंके नामों, प्रसङ्गों, मन्तव्यों अथवा तत्सम्बन्धी अन्य घटनाओंका उल्लेख किया गया है जो भद्रबाहु श्रुतकेवलीके बहुत कुछ बाद हुए हैं—किसी-किसी घटनाका समय तक भी साथमें दिया है; जैसे निह्नवोंकी क्रमशः उत्पत्तिका समय वीरनिर्वाणसे ६०९ वर्ष बाद तकका बतलाया है। ये सब बातें और इसी प्रकारकी दूसरी बातें भी निर्युक्तिकार भद्रबाहुको श्रुतकेवली बतलानेके विरुद्ध पड़ती हैं—भद्रबाहुश्रुतकेवलीद्वारा उनका उस प्रकारसे उल्लेख तथा निरूपण किसी तरह भी नहीं बनता। इस विषयका सप्रमाण विशद एवं विस्तृत विवेचन मुनि पुण्यविजयजीने आजसे कोई सात वर्ष पहले अपने 'छेदसूत्रकार और निर्युक्तिकार' नामके उस गुजराती लेखमें किया है जो 'महावीर जैनविद्यालय-रजत-महोत्सव-ग्रन्थ'में मुद्रित है[3]। साथ ही यह भी बतलाया है कि 'तित्थोगालिप्रकीर्णक, आवश्यकचूर्णि, आवश्यक-हारिभद्रीया टीका, परिशिष्टपर्व आदि प्राचीन मान्य ग्रन्थोंमें जहाँ चतुर्दशपूर्वधर भद्रबाहु (श्रुतकेवली)का चरित्र वर्णन किया गया है वहाँ द्वादशवर्षीय दुष्काल……छेदसूत्रोंकी रचना आदिका वर्णन तो है परन्तु वराहमिहरका भाई होना, नियुक्तिग्रन्थों, उपसर्गहरस्तोत्र, भद्रबाहुसंहितादि ग्रन्थोंकी रचनासे तथा नैमित्तिक होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई उल्लेख नहीं है। इससे छेदसूत्रकार भद्रबाहु और निर्युक्ति आदिके प्रणेता भद्रबाहु एक दूसरेसे भिन्न व्यक्तियाँ हैं।

इन निर्युक्तिकार भद्रबाहुका समय विक्रमकी छठी शताब्दीका प्रायः मध्यकाल है; क्योंकि इनके समकालीन सहोदर भ्राता वराहमिहरका यही समय सुनिश्चित है—उन्होंने अपनी 'पञ्चसिद्धान्तिका'के अन्तमें, जो कि उनके उपलब्ध ग्रन्थोंमें अन्तकी कृति मानी जाती है, अपना समय स्वयं निर्दिष्ट किया है और वह है शक संवत् ४२७ अर्थात् विक्रम संवत् ५६२। यथा—

"सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ। अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्ये ॥८"

जब निर्युक्तिकार भद्रबाहुका उक्त समय सुनिश्चित हो जाता है तब यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं रहती कि सन्मतिकार सिद्धसेनके समयकी पूर्व सीमा विक्रमकी छठी शताब्दीका तृतीय चरण है और उन्होंने क्रमवादके पुरस्कर्ता उक्त भद्रबाहु अथवा उनके अनुसर्ता किसी शिष्यादिके क्रमवाद-विषयक कथनको लेकर ही सन्मतिमें उसका खण्डन किया है।

---

१ वंदामि भद्दबाहुं पाईणं चरिमसगलसुयणाणिं। सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे ॥१॥

२ सव्वे एए दारा मरणविभत्तीइं वण्णिया कमसो। सगलणिउणे पयत्थे जिणचउदसपुव्वि भासते ॥२३३॥

३ इससे भी कई वर्ष पहले आपके गुरु मुनि श्रीचतुरविजयजीने श्रीविजयानन्दसूरीश्वरजन्मशताब्दिस्मारकग्रन्थमें मुद्रित अपने 'श्रीभद्रबाहुस्वामी' नामक लेखमें इस विषयको प्रदर्शित किया था और यह सिद्ध किया था कि निर्युक्तिकार भद्रबाहु श्रुतकेवली भद्रबाहुसे भिन्न द्वितीय भद्रबाहु हैं और वराहमिहरके सहोदर होनेसे उनके समकालीन हैं। उनके इस लेखका अनुवाद अनेकान्त वर्ष ३ किरण १२में प्रकाशित हो चुका है।

इस तरह सिद्धसेनके समयकी पूर्व सीमा विक्रमकी छठी शताब्दीका तृतीय चरण और उत्तरसीमा विक्रमकी सातवीं शताब्दीका तृतीय चरण (वि० सं० ५६२से ६६६) निश्चित होती है। इन प्रायः सौ वर्षके भीतर ही किसी समय सिद्धसेनका ग्रन्थकाररूपमें अवतार हुआ और यह ग्रन्थ बना जान पड़ता है।

(३) सिद्धसेनके समय-सम्बन्धमें पं० सुखलालजी संघवीकी जो स्थिति रही है उसको ऊपर बतलाया जा चुका है। उन्होंने अपने पिछले लेखमें, जो 'सिद्धसेनदिवाकरना समयनो प्रश्न' नामसे 'भारतीयविद्या'के तृतीय भाग (श्रीबहादुरसिंहजी सिंघी स्मृतिग्रन्थ)में प्रकाशित हुआ है, अपनी उस गुजराती प्रस्तावना-कालीन मान्यताको जो सन्मतिके अंग्रेजी संस्करणके अवसरपर फोरवर्ड (foreword)[1] लिखे जानेके पूर्व कुछ नये बौद्ध ग्रन्थोंके सामने आनेके कारण बदल गई थी और जिसकी फोरवर्डमें सूचना की गई है फिरसे निश्चित-रूप दिया है अर्थात् विक्रमकी पाँचवी शताब्दीको ही सिद्धसेनका समय निर्धारित किया है और उसीको अधिक सङ्गत बतलाया है। अपनी इस मान्यताकके समर्थनमें उन्होंने जिन दो प्रमाणोंका उल्लेख किया है उनका सार इस प्रकार है, जिसे प्रायः उन्हींके शब्दोंके अनुवादरूपमें सङ्कलित किया गया है:—

(प्रथम) जिनभद्रक्षमाश्रमणने अपने महान् ग्रन्थ विशेषावश्यक भाष्यमें, जो विक्रम संवत् ६६६में बनकर समाप्त हुआ है, और लघुग्रन्थ विशेषणवतीमें सिद्धसेनदिवाकरके उपयोगाऽभेदवादकी तथैव दिवाकरकी कृति सन्मतितकके टीकाकार मल्लवादीके उपयोग-यौग-पद्यवादकी विस्तृत समालोचना की है। इससे तथा मल्लवादीके द्वादशारनयचक्रके उपलब्ध प्रतीकोंमें दिवाकरका सूचन मिलने और जिनभद्रगणिका सूचन न मिलनेसे मल्लवादी जिनभद्रसे पूर्ववर्ती और सिद्धसेन मल्लवादीसे भी पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। मल्लवादीको यदि विक्रमकी छठी शताब्दीके पूर्वार्धमें मान लिया जाय तो सिद्धसेन दिवाकरका समय जो पाँचवी शताब्दी निर्धारित किया गया है वह अधिक सङ्गत लगता है।

(द्वितीय) पूज्यपाद देवनन्दीने अपने जैनेन्द्रव्याकरणके 'वेत्तेः सिद्धसेनस्य' इस सूत्रमें सिद्धसेनके मतविशेषका उल्लेख किया है और वह यह है कि सिद्धसेनके मतानुसार 'विद्' धातुके 'र्' का आगम होता है, चाहे वह धातु सकर्मक ही क्यों न हो। देवनन्दीका यह उल्लेख बिल्कुल सच्चा है, क्योंकि दिवाकरकी जो कुछ थोड़ीसी संस्कृत कृतियाँ बची हैं उनमेंसे उनकी नवमी द्वात्रिंशिकाके २२वें पद्यमें 'विद्रतेः' ऐसा 'र्' आगम वाला प्रयोग मिलता है। अन्य वैयाकरण जब 'सम्' उपसर्ग पूर्वक और अकर्मक 'विद्' धातुके 'र्' आगम स्वीकार करते हैं तब सिद्धसेनने अनुपसर्ग और सकर्मक 'विद्' धातुका 'र्' आगमवाला प्रयोग किया है। इसके सिवाय, देवनन्दी पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धि नामकी तत्त्वार्थ-टीकाके सप्तम अध्यायगत १३वें सूत्रकी टीकामें सिद्धसेनदिवाकरके एक पद्यका अंश 'उक्तं च' शब्दके साथ उद्धृत पाया जाता है और वह है 'वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते।' यह पद्यांश उनकी तीसरी द्वात्रिंशिकाके १६वें पद्यका प्रथम चरण है। पूज्यपाद देवनन्दीका समय वर्तमान मान्यतानुसार विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध है अर्थात् पाँचवीं शताब्दीके अमुक भागसे छठी शताब्दीके अमुक भाग तक लम्बा है। इससे सिद्धसेनदिवाकरको पाँचवीं शताब्दीमें होनेकी बात जो अधिक सङ्गत कही गई है उसका खुलासा हो जाता है। दिवाकरको देवनन्दीने

---

१ फोरवर्डके लेखकरूपमें यद्यपि नाम 'दलसुख मालवणिया'का दिया हुआ है परन्तु उसमें दी हुई उक्त सूचनाको पण्डित सुखलालजीने उक्त लेखमें अपनी ही सूचना और अपना ही विचार-परिवर्तन स्वीकार किया है।

पूर्ववर्ती या देवनन्दीके वृद्ध समकालीनरूपमें मानिये तो भी उनका जीवनसमय पाँचवीं शताब्दीसे अर्वाचीन नहीं ठहरता।

इनमेंसे प्रथम प्रमाण तो वास्तवमें कोई प्रमाण ही नहीं है; क्योंकि वह 'मल्लवादीको यदि विक्रमकी छठी शताब्दीके पूर्वार्धमें मान लिया जाय तो' इस भ्रान्त कल्पनापर अपना आधार रखता है। परन्तु क्यों मान लिया जाय अथवा क्यों मान लेना चाहिये, इसका कोई स्पष्टीकरण साथमें नहीं है। मल्लवादीका जिनभद्रसे पूर्ववर्ती होना प्रथम तो सिद्ध नहीं है, सिद्ध होता भी तो उन्हें जिनभद्रके समकालीन वृद्ध मानकर अथवा २५ या ५० वर्ष पहले मानकर भी उस पूर्ववर्तित्वको चरितार्थ किया जा सकता है, उसके लिये १०० वर्षसे भी अधिक समय पूर्वकी बात मान लेनेकी कोई जरूरत नहीं रहती। परन्तु वह सिद्ध ही नहीं है; क्योंकि उनके जिस उपयोग-यौगपद्यवादकी विस्तृत समालोचना जिनभद्रके दो ग्रन्थोंमें बतलाई जाती है उनमें कहीं भी मल्लवादी अथवा उनके किसी ग्रन्थका नामोल्लेख नहीं है, होता तो पण्डितजी उस उल्लेखवाले अंशको उद्धृत करके ही सन्तोष धारण करते, उन्हें यह तर्क करनेकी जरूरत ही न रहती और न रहनी चाहिये थी कि 'मल्लवादीके द्वादशारनयचक्रके उपलब्ध प्रतीकोंमें दिवाकरका सूचन मिलने और जिनभद्रका सूचन न मिलनेसे मल्लवादी जिनभद्रसे पूर्ववर्ती हैं'। यह तर्क भी उनका अभीष्ट-सिद्धिमें कोई सहायक नहीं होता; क्योंकि एक तो किसी विद्वान्के लिये यह लाजिमी नहीं कि वह अपने ग्रन्थमें पूर्ववर्ती अमुक अमुक विद्वानोंका उल्लेख करे ही करे। दूसरे, मूल द्वादशारनयचक्रके जब कुछ प्रतीक ही उपलब्ध हैं वह पूरा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है तब उसके अनुपलब्ध अंशोंमें भी जिनभद्रका अथवा उनके किसी ग्रन्थादिकका उल्लेख नहीं इसकी क्या गारण्टी? गारण्टीके न होने और उल्लेखोपलब्धिकी सम्भावना बनी रहनेसे मल्लवादीको जिनभद्रके पूर्ववर्ती बतलाना तर्कदृष्टिसे कुछ भी अर्थ नहीं रखता। तीसरे, ज्ञान-बिन्दुकी परिचयात्मक प्रस्तावनामें पण्डित सुखलालजी स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि "अभी हमने उस सारे सटीक नयचक्रका अवलोकन करके देखा तो उसमें कहीं भी केवलज्ञान और केवलदर्शन (उपयोगद्वय)के सम्बन्धमें प्रचलित उपर्युक्त वादों (क्रम, युगपत्, और अभेद) पर थोड़ी भी चर्चा नहीं मिली। यद्यपि सन्मतितर्ककी मल्लवादि-कृत-टीका उपलब्ध नहीं है पर जब मल्लवादि अभेदसमर्थक दिवाकरके ग्रन्थपर टीका लिखें तब यह कैसे माना जा सकता है कि उन्होंने दिवाकरके ग्रन्थकी व्याख्या करते समय उसीमें उनके विरुद्ध अपना युगपत् पक्ष किसी तरह स्थापित किया हो। इस तरह जब हम सोचते हैं तब यह नहीं कह सकते हैं कि अभयदेवके युगपद्वादके पुरस्कर्तारूपसे मल्लवादीके उल्लेखका आधार नयचक्र या उनकी सन्मतिटीकामेंसे रहा होगा।" साथ ही, अभयदेवने सन्मतिटीकामें विशेषणवतीकी "केई भणंति जुगवं जाणइ पासइ य केवली णियमा" इत्यादि गाथाओंको उद्धृत करके उनका अर्थ देते हुए 'केई' पदके वाच्यरूपमें मल्लवादीका जो नामोल्लेख किया है और उन्हें युगपद्वाद-का पुरस्कर्ता बतलाया है उनके उस उल्लेखकी अभ्रान्ततापर सन्देह व्यक्त करते हुए, पण्डित सुखलालजी लिखते हैं—"अगर अभयदेवका उक्त उल्लेखांश अभ्रान्त एवं साधार है तो अधिकसे अधिक हम यही कल्पना कर सकते हैं कि मल्लवादीका कोई अन्य युगपत् पक्ष-समर्थक छोटा बड़ा ग्रन्थ अभयदेवके सामने रहा होगा अथवा ऐसे मन्तव्यवाला कोई उल्लेख उन्हें मिला होगा।" और यह बात ऊपर बतलाई ही जा चुकी है कि अभयदेवसे कई शताब्दी पूर्वके प्राचीन आचार्य हरिभद्रसूरिने उक्त 'केई' पदके वाच्यरूपमें सिद्धसेनाचार्यका नाम उल्लेखित किया है, पं० सुखलालजीने उनके उस उल्लेखको महत्व दिया है तथा सन्मति-कारसे भिन्न दूसरे सिद्धसेनकी सम्भावना व्यक्त की है, और वे दूसरे सिद्धसेन उन द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता हो सकते हैं जिनमें युगपद्वादका समर्थन पाया जाता है, इसे भी ऊपर

दर्शाया जा चुका है। इस तरह जब मल्लवादीका जिनभद्रसे पूर्ववर्ती होना सुनिश्चित ही नहीं है तब उक्त प्रमाण और भी निःसार एवं बेकार हो जाता है। साथ ही, अभयदेवका मल्लवादी-को युगपद्वादका पुरस्कर्ता बतलाना भी भ्रान्त ठहरता है।

यहाँपर एक बात और भी जान लेनेकी है और वह यह कि हालमें मुनि श्रीजम्बू-विजयजीने मल्लवादीके सटीक नयचक्रका पारायण करके उसका विशेष परिचय 'श्री आत्मा-नन्दप्रकाश' (वर्ष ४५ अङ्क ७)में प्रकट किया है, उसपरसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि मल्लवादीने अपने नयचक्रमें पद-पदपर 'वाक्यपदीय' ग्रन्थका उपयोग ही नहीं किया बल्कि उसके कर्ता भर्तृहरिका नामोल्लेख और भर्तृहरिके मतका खण्डन भी किया है। इन भर्तृहरिका समय इतिहासमें चीनी यात्री इत्सिङ्गके यात्राविवरणादिके अनुसार ई० सन् ६००से ६५० (वि० सं० ६५७से ७०७) तक माना जाता है; क्योंकि इत्सिङ्गने जब सन् ६९१में अपना यात्रा-वृत्तान्त लिखा तब भर्तृहरिका देहावसान हुए ४० वर्ष बीत चुके थे। और वह उस समयका प्रसिद्ध वैयाकरण था। ऐसी हालतमें भी मल्लवादी जिनभद्रसे पूर्ववर्ती नहीं कहे जा सकते। उक्त समयादिककी दृष्टिसे वे विक्रमकी प्रायः आठवीं-नवमी शताब्दीके विद्वान् हो सकते हैं और तब उनका व्यक्तित्व न्यायबिन्दुकी धर्मोत्तर[1]-टीकापर टिप्पण लिखनेवाले मल्लवादीके साथ एक भी हो सकता है। इस टिप्पणमें मल्लवादीने अनेक स्थानोंपर न्यायबिन्दुकी विनीतदेव-कृत-टीकाका उल्लेख किया है और इस विनीतदेवका समय राहुलसांकृत्यायनने, वादन्यायकी प्रस्तावनामें, धर्मकीर्तिके उत्तराधिकारियोंकी एक तिब्बती सूचीपरसे ई० सन् ७७५से ८०० (वि० सं० ८५७) तक निश्चित किया है।

इस सारी वस्तुस्थितिको ध्यानमें रखते हुए ऐसा जान पड़ता है कि विक्रमकी १४वीं शताब्दीके विद्वान् प्रभाचन्द्रने अपने प्रभावकचरितके विजयसिंहसूरि-प्रबन्धमें बौद्धों और उनके व्यन्तरोंको वादमें जीतनेका जो समय मल्लवादीका वीरवत्सरसे ८८४ वर्ष बादका अर्थात् विक्रम सवत् ४१४ दिया है[2] और जिसके कारण ही उन्हें श्वेताम्बर समाजमें इतना प्राचीन माना जाता है तथा मुनि जिनविजयने भी जिसका एकबार पक्ष लिया है[3] उसके उल्लेखमें जरूर कुछ भूल हुई है। पं० सुखलालजीने भी उस भूलको महसूस किया है, तभी उसमें प्रायः १०० वर्षकी वृद्धि करके उसे विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध (वि० सं० ५५०) तक मान लेनेकी बात अपने इस प्रथम प्रमाणमें कही है। डा० पी० एल० वैद्य एम० ए०ने न्यायावतारकी प्रस्तावनामें, इस भूल अथवा गलतीका कारण 'श्रीवीरविक्रमात्'के स्थानपर 'श्रीवीरवत्सरात्' पाठान्तरका हो जाना सुझाया है। इस प्रकारके पाठान्तरका हो जाना कोई अस्वाभाविक अथवा असंभाव्य नहीं है किन्तु सहजसाध्य जान पड़ता है। इस सुझावके अनुसार यदि शुद्ध पाठ 'वीरविक्रमात्' हो तो मल्लवादीका समय वि० सं० ८८४ तक पहुँच जाता है और यह समय मल्लवादीके जीवनका प्रायः अन्तिम समय हो सकता है और तब मल्लवादीको हरिभद्रके प्रायः समकालीन कहना होगा; क्योंकि हरिभद्रने 'उक्तं च वादिमुख्येन मल्लवादिना' जैसे शब्दोंके द्वारा अनेकान्तजयपताकाकी टीकामें मल्लवादीका स्पष्ट उल्लेख किया है। हरिभद्रका समय भी विक्रमकी ९वीं शताब्दीके तृतीय-

---

१ बौद्धाचार्य धर्मोत्तरका समय पं० राहुलसांकृत्यायनने वादन्यायकी प्रस्तावनामें ई० सन् ७२५से ७५०, (वि० सं० ७८२से ८०७) तक व्यक्त किया है।

२ श्रीवीरवत्सरादथ शताब्दके चतुरशीति-संयुते। जिग्ये स मल्लवादी बौद्धांस्तद्व्यन्तरांश्चापि ॥८३॥

३ देखो, जैनसाहित्यसंशोधक भाग २।

चतुर्थ चरण तक पहुँचता है;[1] क्योंकि वि० सं० ८५७के लगभग बनी हुई भट्टजयन्तकी न्यायमञ्जरीका 'गम्भीरगर्जितारम्भ' नामका एक पद्य हरिभद्रके षड्दर्शनसमुच्चयमें उद्धृत मिलता है, ऐसा न्यायाचार्य पं० महेन्द्रकुमारजीने न्यायकुमुदचन्द्रके द्वितीय भागकी प्रस्तावनामें उद्घोषित किया है। इसके सिवाय, हरिभद्रने स्वयं शास्त्रवार्तासमुच्चयके चतुर्थस्तवनमें 'एतेनैव प्रतिक्षिप्तं यदुक्तं सूक्ष्मबुद्धिना' इत्यादि वाक्यके द्वारा बौद्धाचार्य शान्तरक्षितके मतका उल्लेख किया है और स्वोपज्ञटीकामें 'सूक्ष्मबुद्धिना'का 'शान्तरक्षितेन' अर्थ देकर उसे स्पष्ट किया है। शान्तरक्षित धर्मोत्तर तथा विनीतदेवके भी प्रायः उत्तरवर्ती हैं और उनका समय राहुलसांकृत्यायनने वादन्यायके परिशिष्टोंमें ई० सन् ८४० (वि० सं० ८९७) तक बतलाया है। हरिभद्रको उनके समकालीन समझना चाहिये। इससे हरिभद्रका कथन उक्त समयमें बाधक नहीं रहता और सब कथनोंकी सङ्गति ठीक बैठ जाती है।

नयचक्रके उक्त विशेष परिचयसे यह भी मालूम होता है कि उस ग्रन्थमें सिद्धसेन नामके साथ जो भी उल्लेख मिलते हैं उनमें सिद्धसेनको 'आचार्य' और 'सूरि' जैसे पदोंके साथ तो उल्लेखित किया है परन्तु 'दिवाकर' पदके साथ कहीं भी उल्लेखित नहीं किया है, तभी मुनि श्रीजम्बूविजयजीकी यह लिखनेमें प्रवृत्ति हुई है कि "आ सिद्धसेनसूरि सिद्धसेन-दिवाकरज संभवतः होवा जोइये" अर्थात् यह सिद्धसेनसूरि सम्भवतः सिद्धसेनदिवाकर ही होने चाहियें—भले ही दिवाकर नामके साथ वे उल्लेखित नहीं मिलते। उनका यह लिखना उनकी धारणा और भावनाका ही प्रतीक कहा जा सकता है; क्योंकि 'होना चाहिये'का कोई कारण साथमें व्यक्त नहीं किया गया। पं० सुखलालजीने अपने उक्त प्रमाणमें इन सिद्धसेनको 'दिवाकर' नामसे ही उल्लेखित किया है, जो कि वस्तुस्थितिका बड़ा ही गलत निरूपण है और अनेक भूल-भ्रान्तियोंको जन्म देने वाला है—किसी विषयको विचारके लिये प्रस्तुत करनेवाले निष्पक्ष विद्वानोंके द्वारा अपनी प्रयोजनादि-सिद्धिके लिये वस्तुस्थितिका ऐसा गलत चित्रण नहीं होना चाहिये। हाँ, उक्त परिचयसे यह भी मालूम होता है कि सिद्धसेन नामके साथ जो उल्लेख मिल रहे हैं उनमेंसे कोई भी उल्लेख सिद्धसेनदिवाकरके नामपर चढ़े हुए उपलब्ध ग्रन्थोंमेंसे किसीमें भी नहीं मिलता है। नमूनेके तौरपर जो दो उल्लेख[2] परिचयमें उद्धृत किये गये हैं उनका विषय प्रायः शब्दशास्त्र (व्याकरण) तथा शब्दनयादिसे सम्बन्ध रखता हुआ जान पड़ता है। इससे भी सिद्धसेनके उन उल्लेखोंको दिवाकरके उल्लेख बतलाना व्यर्थ ठहरता है।

रही द्वितीय प्रमाणकी बात, उससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि तीसरी और नवमी द्वात्रिंशिकाके कर्ता जो सिद्धसेन हैं वे पूज्यपाद देवनन्दीसे पहले हुए हैं—उनका समय विक्रमकी पाँचवीं शताब्दी भी हो सकता है। इससे अधिक यह सिद्ध नहीं होता कि सन्मति-सूत्रके कर्ता सिद्धसेन भी पूज्यपाद देवनन्दीसे पहले अथवा विक्रमकी ५वीं शताब्दीमें हुए हैं।

---

१. ९वीं शताब्दीके द्वितीय चरण तकका समय तो मुनि जिनविजयजीने भी अपने हरिभद्रके समय-निर्णयवाले लेखमें बतलाया है। क्योंकि विक्रमसंवत् ८३५ (शक सं० ७००)में बनी हुई कुवलय-मालामें उद्योतनसूरिने हरिभद्रको न्यायविद्यामें अपना गुरु लिखा है। हरिभद्रके समय, संयतजीवन और उनके साहित्यिक कार्योंकी विशालताको देखते हुए उनकी आयुका अनुमान सौ वर्षके लगभग लगाया जा सकता है और वे मल्लवादीके समकालीन होनेके साथ-साथ कुवलयमालाकी रचनाके कितने ही वर्ष बाद तक जीवित रह सकते हैं।

२ "तथा च आचार्यसिद्धसेन आह—
"यत्र ह्यर्थो वाचं व्यभिचरति न (ना) भिधानं तत्॥" [वि० २७७]
"अस्ति-भवति-विद्यति-वर्ततयः सन्निपातषष्ठाः सत्तार्था इत्यविशेषेणोक्तत्वात् सिद्धसेनसूरिणा।"[वि. १६६

इसको सिद्ध करनेके लिये पहले यह सिद्ध करना होगा कि सन्मतिसूत्र और तीसरी तथा नवमी द्वात्रिंशिकाएँ तीनों एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ हैं। और यह सिद्ध नहीं है। पूज्यपादसे पहले उपयोगद्वयके क्रमवाद तथा अभेदवादके कोई पुरस्कर्ता नहीं हुए हैं, होते तो पूज्यपाद अपनी सर्वार्थसिद्धिमें सनातनसे चले आये युगपद्वादका प्रतिपादनमात्र करके ही न रह जाते वल्कि उसके विरोधी वाद अथवा वादोंका खण्डन ज़रूर करते परन्तु ऐसा नहीं है[1], और इससे यह मालूम होता है कि पूज्यपादके समयमें केवलीके उपयोग-विषयक क्रमवाद तथा अभेदवाद प्रचलित नहीं हुए थे—वे उनके वाद ही सविशेषरूपसे घोषित तथा प्रचारको प्राप्त हुए हैं, और इसीसे पूज्यपादके वाद अकलङ्कादिकके साहित्यमें उनका उल्लेख तथा खण्डन पाया जाता है। क्रमवादका प्रस्थापन निर्युक्तिकार भद्रवाहुके द्वारा और अभेदवादका प्रस्थापन सन्मतिकार सिद्धसेनके द्वारा हुआ है। उन वादोंके इस विकासक्रमका समर्थन जिनभद्रकी विशेषणवती-गत उन दो गाथाओं ('केई भणंति जुगवं' इत्यादि नम्बर १८४, १८५)से भी होता है जिनमें युगपत्, क्रम और अभेद इन तीनों वादोंके पुरस्कर्ताओंका इसी क्रमसे उल्लेख किया गया है और जिन्हें ऊपर (न० २में) उद्धृत किया जा चुका है।

पं० सुखलालजीने निर्युक्तिकार भद्रवाहुको प्रथम भद्रवाहु और उनका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दी मान लिया है[2], इसीसे इन वादोंके क्रम-विकासको समझनेमें उन्हें भ्रान्ति हुई है। और वे यह प्रतिपादन करनेमें प्रवृत्त हुए हैं कि पहले क्रमवाद था, युगपत्वाद वादको सबसे पहले वाचक उमास्वाति[3]-द्वारा जैन वाङ्मयमें प्रविष्ट हुआ और फिर उसके वाद अभेदवादका प्रवेश मुख्यतः सिद्धसेनाचार्यके द्वारा हुआ है। परन्तु यह ठीक नहीं है; क्योंकि प्रथम तो युगपत्वादका प्रतिवाद भद्रवाहुकी आवश्यकनियुक्तिके "सव्वस्स केवलिस्स वि जुगवं दो णत्थि उवओगा" इस वाक्यमें पाया जाता है जो भद्रवाहुको दूसरी शताब्दीका विद्वान् माननेके कारण उमास्वातिके पूर्वका[4] ठहरता है और इसलिये उनके विरुद्ध जाता है। दूसरे, श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके नियमसार-जैसे ग्रन्थों और आचार्य भूतवलिके पट्खण्डागममें भी युगपत्वादका स्पष्ट विधान पाया जाता है। ये दोनों आचार्य उमास्वातिके पूर्ववर्ती[5] हैं और इनके युगपद्वाद-विधायक वाक्य नमूनेके तौरपर इस प्रकार हैं:—

> "जुगवं वट्टइ णाणं केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
> दिणयर-पयास-तावं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं॥" (णियम० १५९)।

"सयं भयवं उप्पण्ण-णाण-दरिसी सदेवाऽसुर-माणुसस्स लोगस्स आगदिं गदिं चयणोववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं मणोमाणसियं भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणदि पस्सदि विहरदित्ति।"—(पट्खण्डा० ४ पयडि अ० सू० ७८)।

---

१ "स उपयोगो द्विविधः। ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति। ....साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति। तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते। निरावरणेषु युगपत्।"

२ ज्ञानविन्दु-परिचय पृ० ५, पादटिप्पण।

३ "मतिज्ञानादिचतुर्षु पर्यायेणोपयोगो भवति, न युगपत्। संभिन्नज्ञानदर्शनस्य तु भगवतः केवलिनो युगपत्सर्वभावग्राहके निरपेक्षे केवलज्ञाने केवलदर्शने चानुसमयमुपयोगो भवति।"
—तत्त्वार्थभाष्य १.३१।

४ उमास्वातिवाचकको पं० सुखलालजीने विक्रमकी तीसरीसे पाँचवीं शताब्दीके मध्यका विद्वान वतलाया है। (ज्ञा० वि० परि० पृ० ५४)।

५ इस पूर्ववर्तित्वका उल्लेख श्रवणबेल्गोलादिके शिलालेखों तथा अनेक ग्रन्थप्रशस्तियोंमें पाया जाता है।

ऐसी हालतमें युगपत्वादकी सर्वप्रथम उत्पत्ति उमास्वातिसे बतलाना किसी तरह भी युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता, जैनवाङ्मयमें इसकी अविकल धारा अतिप्राचीन कालसे चली आई है। यह दूसरी बात है कि क्रम तथा अभेदकी धाराएँ भी उसमें कुछ वादको शामिल होगई हैं; परन्तु विकास-क्रम युगपत्वादसे ही प्रारम्भ होता है जिसकी सूचना विशेषणवतीकी उक्त गाथाओं ('केई भणंति जुगवं' इत्यादि)से भी मिलती है। दिगम्बराचार्य श्रीकुन्दकुन्द, समन्तभद्र और पूज्यपादके ग्रन्थोंमें क्रमवाद तथा अभेदवादका कोई ऊहापोह अथवा खण्डन न होना पं० सुखलालजीको कुछ अखरा है; परन्तु इसमें अखरनेकी कोई बात नहीं है। जब इन आचार्योंके सामने ये दोनों वाद आए ही नहीं तब वे इन वादोंका ऊहापोह अथवा खण्डनादिक कैसे कर सकते थे? अकलङ्कके सामने जब ये वाद आए तब उन्होंने उनका खण्डन किया ही है; चुनाँचे पं० सुखलालजी स्वयं ज्ञानबिन्दुके परिचयमें यह स्वीकार करते हैं कि "ऐसा खण्डन हम सबसे पहले अकलङ्ककी कृतियोंमें पाते हैं।" और इसलिये उनसे पूर्वकी—कुन्दकुन्द, समन्तभद्र तथा पूज्यपादकी—कृतियोंमें उन वादोंकी कोई चर्चाका न होना इस बातको और भी साफ तौरपर सूचित करता है कि इन दोनों वादोंकी प्रादुर्भूति उनके समयके बाद हुई है। सिद्धसेनके सामने ये दोनों वाद थे—दोनोंकी चर्चा सन्मतिमें की गई है—अतः ये सिद्धसेन पूज्यपादके पूर्ववर्ती नहीं हो सकते। पूज्यपादने जिन सिद्धसेनका अपने व्याकरणमें नामोल्लेख किया है वे कोई दूसरे ही सिद्धसेन होने चाहियें।

यहाँपर एक खास बात नोट किये जानेके योग्य है और वह यह कि पं० सुखलालजी सिद्धसेनको पूज्यपादसे पूर्ववर्ती सिद्ध करनेके लिये पूज्यपादीय जैनेन्द्र व्याकरणका उक्त सूत्र तो उपस्थित करते हैं परन्तु उसी व्याकरणके दूसरे समकक्ष सूत्र "चतुष्टयं समन्तभद्रस्य" को देखते हुए भी अनदेखा कर जाते हैं—उसके प्रति गजनिमीलन-जैसा व्यवहार करते हैं—और ज्ञानबिन्दुकी परिचयात्मक प्रस्तावना (पृ० ५५)में बिना किसी हेतुके ही यहाँ तक लिखनेका साहस करते हैं कि "पूज्यपादके उत्तरवर्ती दिगम्बराचार्य समन्तभद्र"ने अमुक उल्लेख किया! साथ ही, इस बातको भी भुला जाते हैं कि सन्मतिकी प्रस्तावनामें वे स्वयं पूज्यपादको समन्तभद्रका उत्तरवर्ती बतला आए हैं और यह लिख आए हैं कि 'स्तुतिकाररूपसे प्रसिद्ध इन दोनों जैनाचार्योंका उल्लेख पूज्यपादने अपने व्याकरणके उक्त सूत्रोंमें किया है, उनका कोई भी प्रकारका प्रभाव पूज्यपादकी कृतियोंपर होना चाहिये।' मालूम नहीं फिर उनके इस साहसिक कृत्यका क्या रहस्य है! और किस अभिनिवेशके वशवर्ती होकर उन्होंने अब यों ही चलती कलमसे समन्तभद्रको पूज्यपादके उत्तरवर्ती कह डाला है!! इसे अथवा इसके औचित्यको वे ही स्वयं समझ सकते हैं। दूसरे विद्वान् तो इसमें कोई औचित्य एवं न्याय नहीं देखते कि एक ही व्याकरण ग्रन्थमें उल्लेखित दो विद्वानोंमेंसे एकको उस ग्रन्थकारके पूर्ववर्ती और दूसरेको उत्तरवर्ती बतलाया जाय और वह भी बिना किसी युक्तिके। इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित सुखलालजीकी बहुत पहलेसे यह धारणा बनी हुई है कि सिद्धसेन समन्तभद्रके पूर्ववर्ती हैं और वे जैसे तैसे उसे प्रकट करनेके लिये कोई भी अवसर चूकते नहीं हैं। हो सकता है कि उसीकी धुनमें उनसे यह कार्य बन गया हो, जो उस प्रकटीकरणका ही एक प्रकार है; अन्यथा वैसा कहनेके लिये कोई भी युक्तियुक्त कारण नहीं है।

पूज्यपाद समन्तभद्रके पूर्ववर्ती नहीं किन्तु उत्तरवर्ती हैं, यह बात जैनेन्द्रव्याकरणके उक्त "चतुष्टयं समन्तभद्रस्य" सूत्रसे ही नहीं किन्तु श्रवणबेलगोलके शिलालेखों आदिसे भी भले प्रकार जानी जाती है[1]। पूज्यपादकी 'सर्वार्थसिद्धि'पर समन्तभद्रका स्पष्ट प्रभाव है, इसे

---

१ देखो, श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० ४० (६४); १०८ (२५८); 'स्वामी समन्तभद्र' (इतिहास) पृ० १४१-१४३; तथा 'जैनजगत' वर्ष ६ अङ्क १५-१६में प्रकाशित 'समन्तभद्रका समय और डा० के० बी०

'सर्वार्थसिद्धिपर समन्तभद्रका प्रभाव' नामक लेखमें स्पष्ट करके बतलाया जा चुका है[1]। समन्तभद्रके 'रत्नकरण्ड'का 'आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यम्' नामका शास्त्रलक्षणवाला पूरा पद्य न्यायावतारमें उद्धृत है, जिसकी रत्नकरण्डमें स्वाभाविकी और न्यायावतारमें उद्धरण-जैसी स्थितिको खूब खोलकर अनेक युक्तियोंके साथ अन्यत्र दर्शाया जा चुका है[2]—इसके प्रक्षिप्त होनेकी कल्पना-जैसी बात भी अब नहीं रही; क्योंकि एक तो न्यायावतारका समय अधिक दूरका न रहकर टीकाकार सिद्धर्षिके निकट पहुँच गया है, दूसरे उसमें अन्य कुछ वाक्य भी समर्थनादिके रूपमें उद्धृत पाये जाते हैं। जैसे "साध्याविनाभुवो हेतोः" जैसे वाक्यमें हेतुका लक्षण आजानेपर भी "अन्यथानुपपन्नत्व हेतोर्लक्षणमीरितम्" इस वाक्यमें उन पात्रस्वामीके हेतु-लक्षणको उद्धृत किया गया है जो समन्तभद्रके देवागमसे प्रभावित होकर जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे। इसी तरह "दृष्टेष्टाव्याहताद्वाक्यात्" इत्यादि आठवें पद्यमें शाब्द (आगम) प्रमाणका लक्षण आजानेपर भी अगले पद्यमें समन्तभद्रका "आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्" इत्यादि शास्त्रका लक्षण समर्थनादिके रूपमें उद्धृत हुआ समझना चाहिये। इसके सिवाय, न्यायावतारपर समन्तभद्रके देवागम (आप्तमीमांसा)का भी स्पष्ट प्रभाव है; जैसा कि दोनों ग्रन्थोंमें प्रमाणके अनन्तर पाये जानेवाले निम्न वाक्योंकी तुलनापरसे जाना जाता है:—

"उपेक्षा फलमाऽऽद्यस्य शेषस्याऽऽदान-हान-धीः ।
पूर्वा(र्वं) वाऽज्ञान-नाशो वा सर्वस्याऽस्य स्वगोचरे ॥१०२॥" (देवागम)

"प्रमाणस्य फलं साक्षादज्ञान-विनिवर्तनम् ।
केवलस्य सुखोपेक्षे[3] शेषस्याऽऽदान-हान धीः ॥२८॥" (न्यायावतार)

ऐसी स्थितिमें व्याकरणादिके कर्ता पूज्यपाद और न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेन दोनों ही स्वामी समन्तभद्रके उत्तरवर्ती हैं, इसमें संदेहके लिये कोई स्थान नहीं है। सन्मति-सूत्रके कर्ता सिद्धसेन चूँकि निर्युक्तिकार एवं नैमित्तिक भद्रबाहुके बाद हुए हैं—उन्होंने भद्रबाहुके द्वारा पुरस्कृत उपयोग-क्रमवादका खण्डन किया है—और इन भद्रबाहुका समय विक्रमकी छठी शताब्दीका प्रायः तृतीय चरण पाया जाता है, यही समय सन्मतिकार सिद्धसेनके समयकी पूर्वसीमा है, जैसा कि ऊपर सिद्ध किया जा चुका है। पूज्यपाद इस समयसे पहले गङ्गवंशी राजा अविनीत (ई० सन् ४३०-४८२) तथा उसके उत्तराधिकारी दुर्विनीतके समयमें हुए हैं और उनके एक शिष्य वज्रनन्दीने विक्रम संवत् ५२६में द्राविडसंघकी स्थापना की है जिसका उल्लेख देवसेनसूरिके दर्शनसार (वि० सं० ९९०) ग्रन्थमें मिलता है[4]। अतः सन्मतिकार सिद्धसेन पूज्यपादके उत्तरवर्ती हैं, पूज्यपादके उत्तरवर्ती होनेसे समन्तभद्रके भी उत्तरवर्ती हैं, ऐसा सिद्ध होता है। और इसलिये समन्तभद्रके स्वयम्भूस्तोत्र तथा आप्तमीमांसा (देवागम) नामक दो

पाठक' शीर्षक लेख पृ० १८-२३, अथवा 'दि एनल्स ऑफ दि भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट पूना वॉल्यूम १५ पार्ट १-२में प्रकाशित Samantabhadra's date and Dr. K. B. Pathak पृ० ८१-८८।

१ देखो, अनेकान्त वर्ष ५, किरण १०-११ पृ० ३४६-३५२।

२ देखो, 'स्वामी समन्तभद्र' (इतिहास) पृ० १२६-१३१ तथा अनेकान्त वर्ष ६ कि० १से ४में प्रकाशित 'रत्नकरण्डके कर्तृत्वविषयमें मेरा विचार और निर्णय' नामक लेख पृ० १०२-१०४।

३ यहाँ 'उपेक्षा'के साथ सुखकी वृद्धि की गई है, जिसका अज्ञाननिवृत्ति तथा उपेक्षा(रागादिकी निवृत्तिरूप अनासक्ति)के साथ अविनाभावी सम्बन्ध है।

४ "सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो। णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्तो ॥२४॥
पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स। दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो ॥२५॥"

ग्रन्थोंकी सिद्धसेनीय सन्मतिसूत्रके साथ तुलना करके पं० सुखलालजीने दोनों आचार्योंके इन ग्रन्थोंमें जिस 'वस्तुगत पुष्कल साम्य'की सूचना सन्मतिकी प्रस्तावना (पृ० ६६)में की है उसके लिये सन्मतिसूत्रको अधिकांशमें सामन्तभद्रीय ग्रन्थोंके प्रभावादिका आभारी समझना चाहिये। अनेकान्त-शासनके जिस स्वरूप-प्रदर्शन एवं गौरव-ख्यापनकी ओर समन्तभद्रका प्रधान लक्ष्य रहा है उसीको सिद्धसेनने भी अपने ढङ्गसे अपनाया है। साथ ही सामान्य-विशेष-मातृक नयोंके सर्वथा-असर्वथा, सापेक्ष-निरपेक्ष और सम्यक्-मिथ्यादि-स्वरूपविषयक समन्तभद्रके मौलिक निर्देशोंको भी आत्मसात् किया है। सन्मतिका कोई कोई कथन समन्तभद्रके कथनसे कुछ मतभेद अथवा उसमें कुछ वृद्धि या विशेष आयोजनको भी साथमें लिये हुए जान पड़ता है, जिसका एक नमूना इस प्रकार है:—

दव्वं खित्तं कालं भावं पज्जाय-देस-संजोगे।
भेदं च पडुच्च समा भावाणं पण्णवणपज्जा ॥३-६०॥

इस गाथामें बतलाया है कि 'पदार्थोंकी प्ररूपणा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पर्याय, देश, संयोग और भेदको आश्रित करके ठीक होती है;' जब कि समन्तभद्रने "सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्" जैसे वाक्योंके द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इस चतुष्टयको ही पदार्थप्ररूपणाका मुख्य साधन बतलाया है। इससे यह साफ जाना जाता है कि समन्तभद्रके उक्त चतुष्टयमें सिद्धसेनने बादको एक दूसरे चतुष्टयकी और वृद्धि की है, जिसका पहलेसे पूर्वके चतुष्टयमें ही अन्तर्भाव था।

रही द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनकी बात, पहली द्वात्रिंशिकामें एक उल्लेख-वाक्य निम्न प्रकारसे पाया जाता है, जो इस विषयमें अपना खास महत्व रखता है:—

य एष षड्जीव-निकाय-विस्तरः परैरनालीढपथस्त्वयोदितः।
अनेन सर्वज्ञ-परीक्षण-क्षमास्त्वयि प्रसादोदयसोत्सवाः स्थिताः ॥१३॥

इसमें बतलाया है कि 'हे वीरजिन! यह जो षट् प्रकारके जीवोंके निकायों (समूहों) का विस्तार है और जिसका मार्ग दूसरोंके अनुभवमें नहीं आया वह आपके द्वारा उदित हुआ —बतलाया गया अथवा प्रकाशमें लाया गया है। इसीसे जो सर्वज्ञकी परीक्षा करनेमें समर्थ हैं वे (आपको सर्वज्ञ जानकर) प्रसन्नताके उदयरूप उत्सवके साथ आपमें स्थित हुए हैं—बड़े प्रसन्नचित्तसे आपके आश्रयमें प्राप्त हुए और आपके भक्त बने हैं।' वे समर्थ-सर्वज्ञ-परीक्षक कौन हैं जिनका यहाँ उल्लेख है और जो आप्तप्रभु वीरजिनेन्द्रकी सर्वज्ञरूपमें परीक्षा करनेके अनन्तर उनके सुदृढ़ भक्त बने हैं? वे हैं स्वामी समन्तभद्र, जिन्होंने आप्तमीमांसा-द्वारा सबसे पहले सर्वज्ञकी परीक्षा[1] की है, जो परीक्षाके अनन्तर वीरकी स्तुतिरूपमें 'युक्त्यनुशासन' स्तोत्रके रचनेमें प्रवृत्त हुए हैं[2] और जो स्वयम्भू स्तोत्रके निम्न पद्योंमें सर्वज्ञका उल्लेख करते हुए उसमें अपनी स्थिति एवं भक्तिको "त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम्" इस वाक्यके द्वारा स्वयं व्यक्त

---

१ अकलङ्कदेवने भी 'अष्टशती' भाष्यमें आप्तमीमांसाको "सर्वज्ञविशेषपरीक्षा" लिखा है और वादिराजसूरिने पार्श्वनाथचरितमें यह प्रतिपादित किया है कि 'उसी देवागम(आप्तमीमांसा)के द्वारा स्वामी (समन्तभद्र)ने आज भी सर्वज्ञको प्रदर्शित कर रक्खा है':—

"स्वामिनश्चरितं तस्य कस्य न विस्मयावहम्। देवागमेन सर्वज्ञो येनाऽद्यापि प्रदर्श्यते ॥"

२ युक्त्यनुशासनकी प्रथमकारिकामें प्रयुक्त हुए 'अद्य' पदका अर्थ श्रीविद्यानन्दने टीकामें "अस्मिन् काले परीक्षाऽवसानसमये" दिया है और उसके द्वारा आप्तमीमांसाके बाद युक्त्यनुशासनकी रचनाको सूचित किया है।

करते हैं, जो कि "त्वयि प्रसादोदयसोत्सवाः स्थिताः" इस वाक्यका स्पष्ट मूलाधार जान पड़ता है :—

वहिरन्तरप्युभयथा च, करणमविघाति नाऽर्थकृत् ।
नाथ ! युगपदखिलं च सदा, त्वमिदं तलाऽऽमलकवद्विवेदिथ ॥१२९॥

अत एव ते वुध-नुतस्य, चरित-गुणमद्भुतोदयम् ।
न्याय-विहितमवधार्य जिने, त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम् ॥१३०॥

इन्हीं स्वामी समन्तभद्रको मुख्यतः लक्ष्य करके उक्त द्वात्रिंशिकाके अगले दो पद्य[1] कहे गये जान पड़ते हैं, जिनमेंसे एकमें उनके द्वारा अर्हन्तमें प्रतिपादित उन दो दो बातोंका उल्लेख है जो सर्वज्ञ-विनिश्चयकी सूचक हैं और दूसरेमें उनके प्रथित यशकी मात्राका बड़े गौरवके साथ कीर्तन किया गया है। अतः इस द्वात्रिंशिकाके कर्ता सिद्धसेन भी समन्तभद्रके उत्तरवर्ती हैं। समन्तभद्रके स्वयम्भूस्तोत्रका शैलीगत, शब्दगत और अर्थगत कितना ही साम्य भी इसमें पाया जाता है, जिसे अनुसरण कह सकते हैं. और जिसके कारण इस द्वात्रिंशिकाको पढ़ते हुए कितनी ही वार इसके पदविन्यासादिपरसे ऐसा भान होता है मानो हम स्वयम्भूस्तोत्र पढ़ रहे हैं। उदाहरणके तौरपर स्वयम्भूस्तोत्रका प्रारम्भ जैसे उपजाति-छन्दमें 'स्वयम्भुवा भूत' शब्दोंसे होता है वैसे ही इस द्वात्रिंशिकाका प्रारम्भ भी उपजाति-छन्दमें 'स्वयम्भुवं भूत' शब्दोंसे होता है। स्वयम्भूस्तोत्रमें जिस प्रकार समन्त. संहृत, गत, उदित, समीक्ष्य, प्रवादिन्, अनन्त, अनेकान्त-जैसे कुछ विशेष शब्दोंका; मुने, नाथ, जिन. वीर-जैसे सम्बोधन-पदोंका और १ जितक्षुल्लकवादिशासनः, २ स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ताः. ३ नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः, ४ शेरते प्रजाः, ५ अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि, ६ नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयः, ७ अचिन्त्यमीहितम्, आर्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं, ८ सहस्राक्षः, ९ त्वद्द्विषः, १० शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं····वपुः, ११ स्थिता वयं-जैसे विशिष्ट पद-वाक्योंका प्रयोग पाया जाता है उसी प्रकार पहली द्वात्रिंशिकामें भी उक्त शब्दों तथा सम्बोधन पदोंके साथ १ प्रपञ्चित-क्षुल्लकतर्कशासनैः, २ स्वपक्ष एव प्रतिवद्धमत्सराः, ३ परैरनालीढपथस्त्वयोदितः, ४ जगत्···· शेरते, ५ त्वदीयमाहात्म्यविशेषसंभली····भारती, ६ समीक्ष्यकारिणः, ७ अचिन्त्यमाहात्म्यं, ८ भूतसहस्रनेत्रं, ९ त्वत्प्रतिघातनोन्मुखैः, १० वपुः स्वभावस्थमरक्तशोणितं, ११ स्थिता वयं-जैसे विशिष्ट पद-वाक्योंका प्रयोग देखा जाता है, जो यथाक्रम स्वयम्भूस्तोत्रगत उक्त पदोंके प्रायः समकक्ष हैं। स्वयम्भूस्तोत्रमें जिस तरह जिनस्तवनके साथ जिनशासन–जिनप्रवचन तथा अनेकान्तका प्रशंसन एवं महत्व ख्यापन किया गया है और वीरजिनेन्द्रके शासन-माहात्म्यको 'तव जिनशासनविभवः जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः' जैसे शब्दोंद्वारा कलिकालमें भी जयवन्त बतलाया गया है उसी तरह इस द्वात्रिंशिकामें भी जिनस्तुतिके साथ जिनशासनादिका संक्षेपमें कीर्तन किया गया है और वीरभगवानको 'सच्छासनवर्द्धमान' लिखा है।

इस प्रथम द्वात्रिंशिकाके कर्ता सिद्धसेन ही यदि अगली चार द्वात्रिंशिकाओंके भी कर्ता हैं, जैसा कि पं० सुखलालजीका अनुमान है, तो ये पाँचों ही द्वात्रिंशिकाएँ, जो वीरस्तुति-से सम्बन्ध रखती हैं और जिन्हें मुख्यतया लक्ष्य करके ही आचार्य हेमचन्द्रने 'क सिद्धसेन-

---

१ "वपुः स्वभावस्थमरक्तशोणितं पराऽनुकम्पा सफलं च भाषितम् ।
न यस्य सर्वज्ञ-विनिश्चयस्त्वयि द्वयं करोत्येतदसौ न मानुषः ॥१४॥
अलब्धनिष्ठाः प्रसमिद्धचेतसस्तव प्रशिष्याः प्रथयन्ति यद्यशः ।
न तावदप्येकसमूहसंहताः प्रकाशयेयुः परवादिपार्थिवाः ॥१५॥

स्तुतयो महार्थाः' जैसे वाक्यका उच्चारण किया जान पड़ता है, स्वामी समन्तभद्रके उत्तरकालीन रचनाएँ हैं। इन सभीपर समन्तभद्रके ग्रन्थोंकी छाया पड़ी हुई जान पड़ती है।

इस तरह स्वामी समन्तभद्र न्यायावतारके कर्ता, सन्मतिके कर्ता और उक्त द्वात्रिंशिका अथवा द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता तीनों ही सिद्धसेनोंसे पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। उनका समय विक्रमकी दूसरी-तीसरी शताब्दी है, जैसा कि दिगम्बर पट्टावली[1] में शकसंवत् ६० (वि० सं० १९५)के उल्लेखानुसार दिगम्बर समाजमें आमतौरपर माना जाता है। श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें उन्हें 'सामन्तभद्र' नामसे उल्लेखित किया है और उनके समयका पट्टाचार्यरूपमें प्रारम्भ वीरनिर्वाणसंवत् ६४३ अर्थात् वि० सं० १७३से बतलाया है। साथ ही यह भी उल्लेखित किया है कि उनके पट्टशिष्यने वीर नि० सं० ६९५ (वि० सं० २२५)[2] में एक प्रतिष्ठा कराई है, जिससे उनके समयकी उत्तरावधि विक्रमकी तीसरी शताब्दीके प्रथम चरण तक पहुँच जाती है[3]। इससे समय-सम्बन्धी दोनों सम्प्रदायोंका कथन मिल जाता है और प्रायः एक ही ठहरता है।

ऐसी वस्तुस्थितिमें पं० सुखलालजीका अपने एक दूसरे लेख 'प्रतिभामूर्ति सिद्धसेन दिवाकर'में, जो कि 'भारतीयविद्या'के उसी अङ्क (तृतीय भाग)में प्रकाशित हुआ है, इन तीनों ग्रन्थोंके कर्ता तीन सिद्धसेनोंको एक ही सिद्धसेन बतलाते हुए यह कहना कि 'यही सिद्धसेन दिवाकर "आदि जैनतार्किक"—"जैन परम्परामें तर्कविद्याका और तर्कप्रधान संस्कृत वाङ्मयका आदि प्रणेता", "आदि जैनकवि", "आदि जैनस्तुतिकार", "आद्य जैनवादी" और "आद्य जैनदार्शनिक" है' क्या अर्थ रखता है और कैसे सङ्गत हो सकता है? इसे विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। सिद्धसेनके व्यक्तित्व और इन सब विषयोंमें उनकी विद्या-योग्यता एवं प्रतिभाके प्रति बहुमान रखते हुए भी स्वामी समन्तभद्रकी पूर्वस्थिति और उनके अद्वितीय-अपूर्व साहित्यकी पहलेसे मौजूदगीमें मुझे इन सब उद्गारोंका कुछ भी मूल्य मालूम नहीं होता और न पं० सुखलालजीके इन कथनोंमें कोई सार ही जान पड़ता है कि—(क) 'सिद्धसेनका सन्मति प्रकरण जैनदृष्टि और जैन मन्तव्योंको तर्कशैलीसे स्पष्ट करने तथा स्थापित करनेवाला जैनवाङ्मयमें सर्वप्रथम ग्रन्थ है' तथा (ख) स्वामी समन्तभद्रका स्वयम्भूस्तोत्र और युक्त्यनुशासन नामक ये दो दार्शनिक स्तुतियाँ सिद्धसेनकी कृतियोंका अनुकरण हैं'। तर्कादि-विषयोंमें समन्भद्रकी योग्यता और प्रतिभा किसीसे भी कम नहीं किन्तु सर्वोपरि रही है, इसीसे अकलङ्कदेव और विद्यानन्दादि-जैसे महान् तार्किकों-दार्शनिकों एवं वादविशारदों आदिने उनके यशका खुला गान किया है; भगवज्जिनसेनने आदिपुराणमें उनके यशको कवियों, गमकों, वादियों तथा वादियोंके मस्तकपर चूड़ामणिकी तरह सुशोभित बतलाया है (इसी यशका पहली द्वात्रिंशिकाके 'तव प्रशिष्याः प्रथयन्ति यद्यशः' जैसे शब्दोंमें उल्लेख है) और साथ ही उन्हें कविब्रह्मा—कवियोंको उत्पन्न करनेवाला विधाता—लिखा है तथा उनके वचन-रूपी वज्रपातसे कुमतरूपी पर्वत खण्ड-खण्ड हो गये, ऐसा उल्लेख भी किया है[4]। और इसलिये

---

१ देखो, हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थोंके अनुसन्धान-विषयक डा० भाण्डारकरकी सन् १८८३ ८४की रिपोर्ट पृ० ३२०; मिस्टर लेविस राइसकी 'इन्स्क्रिपशन्स ऐट् श्रवणबेल्गोल'की प्रस्तावना और कर्णाटक-शब्दानुशासनकी भूमिका।

२ कुछ पट्टावलियोंमें यह समय वी० नि० सं० ५९५ अथवा विक्रमसंवत् १२५ दिया है जो किसी गलतीका परिणाम है और मुनि कल्याणविजयने अपने द्वारा सम्पादित 'तपागच्छपट्टावली'में उसके सुधारकी सूचना की है।

३ देखो, मुनिश्री कल्याणविजयजी द्वारा सम्पादित 'तपागच्छपट्टावली' पृ० ७६-८१।

४ विशेषके लिये देखो, 'सत्साधुस्मरण-मंगलपाठ' पृ० २५से ५१।

उपलब्ध जैनवाङ्मयमें समयादिककी दृष्टिसे आद्य तार्किकादि होनेका यदि किसीको मान अथवा श्रेय प्राप्त है तो वह स्वामी समन्तभद्रको ही प्राप्त है। उनके देवागम (आप्तमीमांसा), युक्त्यनुशासन, स्वयम्भूस्तोत्र और स्तुतिविद्या (जिनशतक) जैसे ग्रन्थ आज भी जैनसमाजमें अपनी जोड़का कोई ग्रन्थ नहीं रखते। इन्हीं ग्रन्थोंको मुनि कल्याणविजयजीने भी उन निर्ग्रन्थ-चूड़ामणि श्रीसमन्तभद्रकी कृतियाँ बतलाया है जिनका समय भी श्वेताम्बर मान्यतानुसार विक्रमकी दूसरी-तीसरी शताब्दी है[1]। तब सिद्धसेनको विक्रमकी ५वीं शताब्दीका मान लेनेपर भी समन्तभद्रकी किसी कृतिको सिद्धसेनकी कृतिका अनुकरण कैसे कहा जा सकता है? नहीं कहा जा सकता।

इस सब विवेचनपरसे स्पष्ट है कि पं० सुखलालजीने सन्मतिकार सिद्धसेनको विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीका विद्वान् सिद्ध करनेके लिये जो प्रमाण उपस्थित किये हैं वे उस विषयको सिद्ध करनेके लिये बिल्कुल असमर्थ हैं। उनके दूसरे प्रमाणसे जिन सिद्धसेनका पूज्यपादसे पूर्ववर्तित्व एवं विक्रमकी पाँचवीं शताब्दीमें होना पाया जाता है वे कुछ द्वात्रिंशिकाओंके कर्त्ता हैं न कि सन्मतिसूत्रके, जिसका रचनाकाल निर्युक्तिकार भद्रबाहुके समयसे पूर्वका सिद्ध नहीं होता और इन भद्रबाहुका समय प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् मुनि श्रीचतुरविजयजी और मुनिश्री पुण्यविजयजीने भी अनेक प्रमाणोंके आधारपर विक्रमकी छठी शताब्दीके प्रायः तृतीय चरण तकका निश्चित किया है। पं० सुखलालजीका उसे विक्रमकी दूसरी शताब्दी बतलाना किसी तरह भी युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। अतः सन्मतिकार सिद्धसेनका जो समय विक्रमकी छठी शताब्दीके तृतीय चरण और सातवीं शताब्दीके तृतीय चरणका मध्यवर्ती काल निर्धारित किया गया है वही समुचित प्रतीत होता है, जब तक कि कोई प्रबल प्रमाण उसके विरोधमें सामने न लाया जावे। जिन दूसरे विद्वानोंने इस समयसे पूर्वकी अथवा उत्तरसमयकी कल्पना की है वह सब उक्त तीन सिद्धसेनोंको एक मानकर उनमेंसे किसी एकके ग्रन्थको मुख्य करके की गई है अर्थात् पूर्वका समय कतिपय द्वात्रिंशिकाओंके उल्लेखोंको लक्ष्य करके और उत्तरका समय न्यायावतारको लक्ष्य करके कल्पित किया गया है। इस तरह तीन सिद्धसेनोंकी एकत्वमान्यता ही सन्मतिसूत्रकारके ठीक समय-निर्णयमें प्रबल बाधक रही है, इसीके कारण एक सिद्धसेनके विषय अथवा तत्सम्बन्धी घटनाओंको दूसरे सिद्धसेनोंके साथ जोड़ दिया गया है, और यही वजह है कि प्रत्येक सिद्धसेनका परिचय थोड़ा-बहुत खिचड़ी बना हुआ है।

(ग) सिद्धसेनका सम्प्रदाय और गुणकीर्तन—

अब विचारणीय यह है कि सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन किस सम्प्रदायके आचार्य थे अर्थात् दिगम्बर सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखते हैं या श्वेताम्बर सम्प्रदायसे और किस रूपमें उनका गुण-कीर्तन किया गया है। आचार्य उमास्वाति(मी) और स्वामी समन्तभद्रकी तरह सिद्धसेनाचार्यकी भी मान्यता दोनों सम्प्रदायोंमें पाई जाती है। यह मान्यता केवल विद्वत्ताके नाते आदर-सत्कारके रूपमें नहीं और न उनके किसी मन्तव्य अथवा उनके द्वारा प्रतिपादित किसी वस्तुतत्त्व या सिद्धान्त-विशेषका ग्रहण करनेके कारण ही है बल्कि उन्हें अपने अपने सम्प्रदायके गुरुरूपमें माना गया है, गुर्वावलियों तथा पट्टावलियोंमें उनका उल्लेख किया गया है और उसी गुरुदृष्टिसे उनके स्मरण, अपनी गुणज्ञताको साथमें व्यक्त करते हुए, लिखे गये हैं अथवा उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की गई हैं। दिगम्बर सम्प्रदायमें सिद्धसेनको सेनगण (संघ)का आचार्य माना जाता है और सेनगणकी पट्टावली[2]में उनका उल्लेख है; हरिवंश-

---

१ तपागच्छपट्टावली भाग पहला पृ० ८०। २ जैनसिद्धान्तभास्कर किरण १ पृ० ३८।

पुराणको शकसम्वत् ७०५में बनाकर समाप्त करनेवाले श्रीजिनसेनाचार्यने पुराणके अन्तमें दी हुई अपनी गुर्वावलीमें सिद्धसेनके नामका भी उल्लेख किया है[1] और हरिवंशके प्रारम्भमें समन्तभद्रके स्मरणानन्तर सिद्धसेनका जो गौरवपूर्ण स्मरण किया है वह इस प्रकार है:—

जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः । बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥३०॥

इसमें बतलाया है कि 'सिद्धसेनाचार्यकी निर्मल सूक्तियाँ (सुन्दर उक्तियाँ) जगत्-प्रसिद्ध-बोध (केवलज्ञान)के धारक (भगवान्) वृषभदेवकी निर्दोष सूक्तियोंकी तरह सत्पुरुषोंकी बुद्धिको बोधित करती हैं—विकसित करती हैं।'

यहाँ सूक्तियोंमें सन्मतिके साथ कुछ द्वात्रिंशिकाओंकी उक्तियाँ भी शामिल समझी जा सकती हैं।

उक्त जिनसेन-द्वारा प्रशंसित भगवज्जिनसेनने आदिपुराणमें सिद्धसेनको अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनका जो महत्वका कीर्तन एवं जयघोष किया है वह यहाँ खासतौरसे ध्यान देने योग्य है:—

"कवयः सिद्धसेनाद्या वयं तु कवयो मताः । मणयः पद्मरागाद्या ननु काचोऽपि मेचकः ।
प्रवादि-करियूथानां केशरी नयकेशरः । सिद्धसेन-कविर्जीयाद्विकल्प-नखरांकुरः ॥"

इन पद्योंमेंसे प्रथम पद्यमें भगवज्जिनसेन, जो स्वयं एक बहुत बड़े कवि हुए हैं, लिखते हैं कि 'कवि तो (वास्तवमें) सिद्धसेनादिक हैं, हम तो कवि मान लिये गये हैं। (जैसे) मणि तो वास्तवमें पद्मरागादिक हैं किन्तु काच भी (कभी कभी किन्हींके द्वारा) मेचकमणि समझ लिया जाता है।' और दूसरे पद्यमें यह घोषणा करते हैं कि 'जो प्रवादिरूप हाथियोंके समूहके लिये विकल्परूप-नुकीले नखोंसे युक्त और नयरूप केशरोंको धारण किये हुए केशरी-सिंह हैं वे सिद्धसेन कवि जयवन्त हों—अपने प्रवचन-द्वारा मिथ्यावादियोंके मतोंका निरसन करते हुए सदा ही लोकहृदयोंमें अपना सिक्का जमाए रक्खें—अपने वचन-प्रभावको अङ्कित किये रहें।'

यहाँ सिद्धसेनका कविरूपमें स्मरण किया गया है और उसीमें उनके वादित्वगुणको भी समाविष्ट किया गया है। प्राचीन समयमें कवि साधारण कविता-शायरी करनेवालोंको नहीं कहते थे बल्कि उस प्रतिभाशाली विद्वान्को कहते थे जो नये-नये सन्दर्भ, नई-नई मौलिक रचनाएँ तय्यार करनेमें समर्थ हो अथवा प्रतिभा ही जिसका उज्जीवन हो, जो नाना वर्णनाओं-में निपुण हो, कृती हो, नाना अभ्यासोंमें कुशाग्रबुद्धि हो और व्युत्पत्तिमान (लौकिक व्यव-हारोंमें कुशल) हो[2]। दूसरे पद्यमें सिद्धसेनको केशरी-सिंहकी उपमा देते हुए उसके साथ जो 'नय-केशरः' और 'विकल्प-नखराङ्कुरः' जैसे विशेषण लगाये गये हैं उनके द्वारा खास तौरपर सन्मतिसूत्र लक्षित किया गया है, जिसमें नयोंका ही मुख्यतः विवेचन है और अनेक विकल्पोंद्वारा प्रवादियोंके मन्तव्यों—मान्यसिद्धान्तोंका विदारण (निरसन) किया गया है। इसी सन्मतिसूत्रका जिनसेनने 'जयधवला'में और उनके गुरु वीरसेनने धवलामें उल्लेख किया है और उसके साथ घटित किये जानेवाले विरोधका परिहार करते हुए उसे अपना एक मान्य ग्रन्थ प्रकट किया है; जैसा कि इन सिद्धान्त ग्रन्थोंके उन वाक्योंसे प्रकट है जो इस लेखके प्रारम्भिक फुटनोटमें उद्धृत किये जा चुके हैं।

---

१ ससिद्धसेनोऽभय-भीमसेनकौ गुरू परौ तौ जिन-शान्ति-सेनकौ ॥६६-२९॥

२ "कविर्नूतनसन्दर्भः"।
"प्रतिभोज्जीवनो नाना-वर्णना-निपुणः कविः । नानाऽभ्यास-कुशाग्रीयमतिर्व्युत्पत्तिमान् कविः ॥"
—अलङ्कारचिन्तामणि।

नियमसारकी टीकामें पद्मप्रभ मलधारिदेवने 'सिद्धान्तोद्धश्रीधवं सिद्धसेनं······वन्दे' वाक्यके द्वारा सिद्धसेनकी वन्दना करते हुए उन्हें 'सिद्धान्तकी जानकारी एवं प्रतिपादनकौशल-रूप उच्चश्रीके स्वामी' सूचित किया है। प्रतापकीर्तिने आचार्यपूजाके प्रारम्भमें दी हुई गुर्वावलीमें "सिद्धान्तपाथोनिधिलब्धपारः श्रीसिद्धसेनोऽपि गणस्य सारः" इस वाक्यके द्वारा सिद्धसेनको 'सिद्धान्तसागरके पारगामी' और 'गणके सारभूत' बतलाया है। मुनिकनकामरने 'करकंडु-चरिउ'में, सिद्धसेनको समन्तभद्र तथा अकलङ्कदेवके समकक्ष 'श्रुतजलके समुद्र'[1] रूपमें उल्लेखित किया है। ये सब श्रद्धांजलि-मय दिगम्बर उल्लेख भी सन्मतिकार-सिद्धसेनसे सम्बन्ध रखते हैं, जो खास तौरपर सैद्धान्तिक थे और जिनके इस सैद्धान्तिकत्वका अच्छा आभास ग्रन्थके अन्तिम काण्डकी उन गाथाओं (६१ आदि)से भी मिलता है जो श्रुतधर-शब्दसन्तुष्टों, भक्तसिद्धान्तज्ञों और शिष्यगणपरिवृत-बहुश्रुतमन्योंकी आलोचनाको लिए हुए हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें आचार्य सिद्धसेन प्रायः 'दिवाकर' विशेषण अथवा उपपद (उपनाम)के साथ प्रसिद्धिको प्राप्त हैं। उनके लिये इस विशेषण-पदके प्रयोगका उल्लेख श्वे-ताम्बर साहित्यमें सबसे पहले हरिभद्रसूरिके 'पञ्चवस्तु' ग्रन्थमें देखनेको मिलता है, जिसमें उन्हें दुःषमाकालरूप रात्रिके लिये दिवाकर (सूर्य)के समान होनेसे 'दिवाकर'की आख्याको प्राप्त हुए लिखा है[2]। इसके बादसे ही यह विशेषण उधर प्रचारमें आया जान पड़ता है; क्योंकि श्वेताम्बर चूर्णियों तथा मल्लवादीके नयचक्र-जैसे प्राचीन ग्रन्थोंमें जहाँ सिद्धसेनका नामोल्लेख है वहाँ उनके साथमें 'दिवाकर' विशेषणका प्रयोग नहीं पाया जाता है[3]। हरिभद्रके बाद विक्रमकी ११वीं शताब्दीके विद्वान् अभयदेवसूरिने सन्मतिटीकाके प्रारम्भमें इसे उसी दुःषमाकालरात्रिके अन्धकारको दूर करनेवालेके अर्थमें अपनाया है[4]।

श्वेताम्बर सम्प्रदायकी पट्टावलियोंमें विक्रमकी छठी शताब्दी आदिकी जो प्राचीन पट्टावलियाँ हैं—जैसे कल्पसूत्रस्थविरावली(थेरावली), नन्दीसूत्रपट्टावली, दुःषमाकाल-श्रमणसंघ-स्तव—उनमें तो सिद्धसेनका कहीं कोई नामोल्लेख ही नहीं है। दुःषमाकालश्रमणसंघकी अवचूरिमें, जो विक्रमकी ६वीं शताब्दीसे बादकी रचना है, सिद्धसेनका नाम जरूर है किन्तु उन्हें 'दिवाकर' न लिखकर 'प्रभावक' लिखा है और साथ ही धर्माचार्यका शिष्य सूचित किया है—वृद्धवादीका नहीं:—

"अत्रान्तरे धर्माचार्य-शिष्य-श्रीसिद्धसेन-प्रभावकः ॥"

दूसरी विक्रमकी १५वीं शताब्दी आदिकी बनी हुई पट्टावलियोंमें भी कितनी ही पट्टावलियाँ ऐसी हैं जिनमें सिद्धसेनका नाम नहीं है—जैसे कि गुरुपर्वक्रमवर्णन, तपागच्छ-पट्टावलीसूत्र, महावीरपट्टपरम्परा, युगप्रधानसम्बन्ध (लोकप्रकाश) और सूरिपरम्परा। हाँ, तपागच्छपट्टावलीसूत्रकी वृत्तिमें, जो विक्रमकी १७वीं शताब्दी (सं० १६४८)की रचना है, सिद्ध-सेनका 'दिवाकर' विशेषणके साथ उल्लेख जरूर पाया जाता है। यह उल्लेख मूल पट्टावलीकी

---

१ तो सिद्धसेण सुसमतभद्द अकलंकदेव सुअजलसमुद्द। क० २

२ आयरियसिद्धसेणेण सम्मइए पइट्ठिअजसेणं। दूसमणिसा-दिवागर-कप्पत्तणओ तदक्खेणं ॥१०४८

३ देखो, सन्मतिसूत्रकी गुजराती प्रस्तावना पृ० ३६, ३७ पर निशीथचूर्णि (उद्देश ४) और दशाचूर्णिके उल्लेख तथा पिछले समय-सम्बन्धी प्रकरणमें उद्धृत नयचक्रके उल्लेख।

४ "इति मन्वान आचार्यो दुःषमाऽरसमाश्यामासमयोद्भूतसमस्तजनाहार्दसन्तमसविध्वंसकत्वेनावाप्तयथार्था-भिधानः सिद्धसेनदिवाकरः तदुपायभूतसम्मत्याख्यप्रकरणकरणे प्रवर्तमानः··············स्तवाभि-धायिकां गाथामाह।"

५वीं गाथाकी व्याख्या करते हुए पट्टाचार्य इन्द्रदिन्नसूरिके अनन्तर और दिन्नसूरिके पूर्वकी व्याख्यामें स्थित है[1]। इन्द्रदिन्नसूरिको सुस्थित और सुप्रतिबुद्धके पट्टपर दसवाँ पट्टाचार्य बतलानेके बाद "अत्रान्तरे" शब्दोंके साथ कालकसूरि आर्यखपुट्टाचार्य और आर्यमंगुका नामोल्लेख समयनिर्देशके साथ किया गया है और फिर लिखा है:—

"वृद्धवादी पादलिप्तश्चात्र। तथा सिद्धसेनदिवाकरो येनोज्जयिन्यां महाकाल-प्रासाद-रुद्र-लिङ्गस्फोटनं विधाय कल्याणमन्दिरस्तवेन श्रीपार्श्वनाथबिम्बं प्रकटीकृतं, श्रीविक्रमादित्यश्च प्रतिबोधितस्तद्राज्यं तु श्रीवीरसप्ततिवर्पशतचतुष्ये ४७० संजातं।"

इसमें वृद्धवादी और पादलिप्तके बाद सिद्धसेनदिवाकरका नामोल्लेख करते हुए उन्हें उज्जयिनीमें महाकालमन्दिरके रुद्रलिङ्गका कल्याणमन्दिरस्तोत्रके द्वारा स्फोटन करके श्रीपार्श्वनाथकेबिम्बको प्रकट करनेवाला और विक्रमादित्यराजाको प्रतिबोधित करनेवाला लिखा है। साथ ही विक्रमादित्यका राज्य वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद हुआ निर्दिष्ट किया है, और इस तरह सिद्धसेन दिवाकरको विक्रमकी प्रथम शताब्दीका विद्वान् बतलाया है, जो कि उल्लेखित विक्रमादित्यको गलतरूपमें समझनेका परिणाम है। विक्रमादित्य नामके अनेक राजा हुए हैं। यह विक्रमादित्य वह विक्रमादित्य नहीं है जो प्रचलित संवत्का प्रवर्तक है, इस बात-को पं० सुखलालजी आदिने भी स्वीकार किया है। अस्तु; तपागच्छ-पट्टावलीकी यह वृत्ति जिन आधारोंपर निर्मित हुई है उनमें प्रधान पद तपागच्छकी मुनि सुन्दरसूरिकृत गुर्वावलीको दिया गया है, जिसका रचनाकाल विक्रम संवत् १४६६ है। परन्तु इस पट्टावलीमें भी सिद्धसेनका नामोल्लेख नहीं है। उक्त वृत्तिसे कोई १०० वर्ष बादके (वि० सं० १७३९ के बादके) बने हुए 'पट्टावलीसारोद्धार' ग्रन्थमें सिद्धसेनदिवाकरका उल्लेख प्रायः उन्हीं शब्दोंमें दिया है जो उक्त वृत्तिमें 'तथा' से 'संजातं' तक पाये जाते हैं[2]। और यह उल्लेख इन्द्रदिन्नसूरिके बाद "अत्रान्तरे" शब्दोंके साथ मात्र कालकसूरिके उल्लेखानन्तर किया गया है—आर्यखपुट, आर्यमंगु, वृद्धवादी और पादलिप्त नामके आचार्योंका कालकसूरिके अनन्तर और सिद्धसेनके पूर्वमें कोई उल्लेख ही नहीं किया है। वि० सं० १७८६ से भी बादकी बनी हुई 'श्रीगुरु-पट्टावली' में भी सिद्धसेनदिवाकरका नाम उज्जयिनीकी लिङ्गस्फोटन-सम्बन्धी घटनाके साथ उल्लेखित है[3]।

इस तरह श्वे० पट्टावलियों-गुर्वावलियोंमें सिद्धसेनका दिवाकररूपमें उल्लेख विक्रमकी १५वीं शताब्दीके उत्तरार्धसे पाया जाता है, कतिपय प्रबन्धोंमें उनके इस विशेषणका प्रयोग सौ-दो सौ वर्ष और पहलेसे हुआ जान पड़ता। रही स्मरणोंकी बात, उनकी भी प्रायः ऐसी ही हालत है—कुछ स्मरण दिवाकर-विशेषणको साथमें लिये हुए हैं और कुछ नहीं हैं। श्वेताम्बर साहित्यसे सिद्धसेनके श्रद्धाञ्जलिरूप जो भी स्मरण अभी तक प्रकाशमें आये हैं वे प्रायः इस प्रकार हैं:—

---

१ देखो, मुनि दर्शनविजय-द्वारा सम्पादित 'पट्टावलीसमुच्चय' प्रथम भाग।

२ "तथा श्रीसिद्धसेनदिवाकरोपि जातो येनोज्जयिन्यां महाकालप्रासादे रुद्रलिंगस्फोटनं कृत्वा कल्याण-मन्दिर स्तवनेन श्रीपार्श्वनाथबिम्बं प्रकटीकृत्य श्रीविक्रमादित्यराजापि प्रतिबोधितः श्रीवीरनिर्वाणात् सप्ततिवर्षाधिक शतचतुष्टये ४७०ऽतिक्रमे श्रीविक्रमादित्यराज्यं संजातं ॥१०॥-पट्टावलीसमुच्चय पृ० १५०।

३ "तथा श्रीसिद्धसेनदिवाकरेणोज्जयिनीनगर्यां महाकाल प्रासादे लिंगस्फोटनं विधाय स्तुत्या ११ काव्ये श्रीपार्श्वनाथबिम्बं प्रकटीकृतं, कल्याणमन्दिरस्तोत्रं कृतं।"—पट्टा० स० पृ० १६६।

(क) *उदितोऽर्हन्मत-व्योम्नि सिद्धसेनदिवाकरः ।*
चित्रं गोभिः क्षितौ जह्रे कविराज-बुध-प्रभा ॥

यह विक्रमकी १३वीं शताब्दी (वि० सं० १२५२) के ग्रन्थ अममचरित्रका पद्य है। इसमें रत्नसूरि अलङ्कार-भाषाको अपनाते हुए कहते हैं कि 'अर्हन्मतरूपी आकाशमें सिद्धसेन-दिवाकरका उदय हुआ है, आश्चर्य है कि उसकी वचनरूप-किरणोंसे पृथ्वीपर कविराजकी—वृहस्पतिरूप 'शेष' कविकी—और बुधकी—बुधग्रहरूप विद्वद्वर्गकी—प्रभा लज्जित होगई—फीकी पड़ गई है।'

(ख) *तमः स्तोमं स हन्तु श्रीसिद्धसेनदिवाकरः ।*
यस्योदये स्थितं मूकैरुलूकैरिव वादिभिः ॥

यह विक्रमकी १४वीं शताब्दी (सं० १३२४) के ग्रन्थ समरादित्यका वाक्य है, जिसमें प्रद्युम्नसूरिने लिखा है कि 'वे श्रीसिद्धसेन दिवाकर (अज्ञान) अन्धकारके समूहको नाश करें जिनके उदय होनेपर वादीजन उल्लुओंकी तरह मूक होरहे थे—उन्हें कुछ बोल नहीं आता था।'

(ग) *श्रीसिद्धसेन-हरिभद्रमुखाः प्रसिद्धास्ते सूरयो मयि भवन्तु कृतप्रसादाः ।*
येषां विमृश्य सततं विविधान्निबन्धान् शास्त्रं चिकीर्षति तनुप्रतिभोऽपि मादृक् ॥

यह 'स्याद्वादरत्नाकर' का पद्य है। इसमें १२वीं-१३वीं शताब्दीके विद्वान् वादिदेव-सूरि लिखते हैं कि 'श्रीसिद्धसेन और हरिभद्र जैसे प्रसिद्ध आचार्य मेरे ऊपर प्रसन्न होवें, जिनके विविध निबन्धोंपर बार-बार विचार करके मेरे जैसा अल्प-प्रतिभाका धारक भी प्रस्तुत शास्त्रके रचनेमें प्रवृत्त होता है।'

(घ) *क्व सिद्धसेन-स्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क्व चैषा ।*
तथाऽपि यूथाधिपतेः पथस्थः स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः ॥

यह विक्रमकी १२वीं-१३वीं शताब्दीके विद्वान् आचार्य हेमचन्द्रकी एक द्वात्रिंशिका स्तुतिका पद्य है। इसमें हेमचन्द्रसूरि सिद्धसेनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए लिखते हैं कि 'कहाँ तो सिद्धसेनकी महान् अर्थवाली गम्भीर स्तुतियाँ और कहाँ अशिक्षित मनुष्योंके आलाप-जैसी मेरी यह रचना? फिर भी यूथके अधिपति गजराजके पथपर चलता हुआ उसका बच्चा (जिस प्रकार) स्खलितगति होता हुआ भी शोचनीय नहीं होता—उसी प्रकार मैं भी अपने यूथाधिपति आचार्यके पथका अनुसरण करता हुआ स्खलितगति होनेपर शोचनीय नहीं हूँ।'

यहाँ 'स्तुतयः' 'यूथाधिपतेः' और 'तस्य शिशुः' ये पद खास तौरसे ध्यान देने योग्य हैं। 'स्तुतयः' पदके द्वारा सिद्धसेनीय ग्रन्थोंकेरूपमें उन द्वात्रिंशिकाओंकी सूचना कीगई है जो स्तुत्यात्मक हैं और शेष पदोंके द्वारा सिद्धसेनको अपने सम्प्रदायका प्रमुख आचार्य और अपनेको उनका परम्परा शिष्य घोषित किया गया है। इस तरह श्वेताम्बर सम्प्रदायके आचार्यरूपमें यहाँ वे सिद्धसेन विवक्षित हैं जो कतिपय स्तुतिरूप द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता हैं, न कि वे सिद्धसेन जो कि स्तुत्येतर द्वात्रिंशिकाओंके अथवा खासकर सन्मतिसूत्रके रचयिता हैं। श्वेताम्बरीय प्रबन्धोंमें भी, जिनका कितना ही परिचय ऊपर आचुका है, उन्हीं सिद्धसेनका उल्लेख मिलता है जो प्रायः द्वात्रिंशिकाओं अथवा द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका-स्तुतियोंके कर्तारूपमें विवक्षित हैं। सन्मतिसूत्रका उन प्रबन्धोंमें कहीं कोई उल्लेख ही नहीं है। ऐसी स्थितिमें सन्मतिकार सिद्धसेनके लिये जिस 'दिवाकर' विशेषणका हरिभद्रसूरिने स्पष्टरूपसे उल्लेख किया है वह बादको नाम-साम्यादिके कारण द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेन एवं न्यायावतारके

कर्ता सिद्धसेनके साथ भी जुड़ गया मालूम होता है और संभवतः इस विशेषणके जुड़ जानेके कारण ही तीनों सिद्धसेन एक ही समझ लिये गये जान पड़ते हैं। अन्यथा, पं० सुखलालजी आदिके शब्दों (प्र० पृ० १०३) में 'जिन द्वात्रिंशिकाओंका स्थान सिद्धसेनके ग्रन्थोंमें चढ़ता हुआ है' उन्हींके द्वारा सिद्धसेनको प्रतिष्ठितयश बतलाना चाहिये था, परन्तु हरिभद्रसूरिने वैसा न करके सन्मतिके द्वारा सिद्धसेनका प्रतिष्ठितयश होना प्रतिपादित किया है और इससे यह साफ ध्वनि निकलती है कि सन्मतिके द्वारा प्रतिष्ठितयश होने वाले सिद्धसेन उन सिद्धसेनसे प्रायः भिन्न हैं जो द्वात्रिंशिकाओंको रचकर यशस्वी हुए हैं।

हरिभद्रसूरिके कथनानुसार जब सन्मतिके कर्ता सिद्धसेन 'दिवाकर'की आख्याको प्राप्त थे तब वे प्राचीनसाहित्यमें सिद्धसेन नामके बिना 'दिवाकर' नामसे भी उल्लेखित होने चाहियें, उसी प्रकार जिस प्रकार कि समन्तभद्र 'स्वामी' नामसे उल्लेखित मिलते हैं[1]। खोज करनेपर श्वेताम्बरसाहित्यमें इसका एक उदाहरण 'अजरक्खनंदिसेणो' नामकी उस गाथामें मिलता है जिसे मुनि पुण्यविजयजीने अपने 'छेदसूत्रकार और निर्युक्तिकार' नामक लेखमें 'पावयणी धम्मकही' नामकी गाथाके साथ उद्धृत किया है और जिसमें आठ प्रभावक आचार्योंकी नामावली देते हुए 'दिवायरो' पदके द्वारा सिद्धसेनदिवाकरका नाम भी सूचित किया गया है। ये दोनों गाथाएँ पिछले समयादिसम्बन्धी प्रकरणके एक फुटनोटमें उक्त लेखकी चर्चा करते हुए उद्धृत की जा चुकी हैं। दिगम्बर साहित्यमें 'दिवाकर'का यतिरूपसे एक उल्लेख रविषेणाचार्यके पद्मचरितकी प्रशस्तिके निम्न वाक्यमें पाया जाता है, जिसमें उन्हें इन्द्र-गुरुका शिष्य, अर्हन्मुनिका गुरु और रविषेणके गुरु लक्ष्मणसेनका दादागुरू प्रकट किया है:—

आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकर-यतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनिः ।
तस्माल्लक्ष्मणसेन-सन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥१२३-१६७॥

इस पद्यमें उल्लेखित दिवाकरयतिका सिद्धसेनदिवाकर होना दो कारणोंसे अधिक सम्भव जान पड़ता है—एक तो समयकी दृष्टिसे और दूसरे गुरु-नामकी दृष्टिसे। पद्मचरित वीरनिर्वाणसे १२०३ वर्ष ६ महीने बीतनेपर अर्थात् विक्रमसंवत् ७३४में बनकर समाप्त हुआ है[2], इससे रविषेणके पड़दादा (गुरुके दादा) गुरुका समय लगभग एक शताब्दी पूर्वका अर्थात् विक्रमकी ७वीं शताब्दीके द्वितीय चरण (६२६-६५०)के भीतर आता है जो सन्मतिकार सिद्धसेनके लिये ऊपर निश्चित किया गया है। दिवाकरके गुरुका नाम यहाँ इन्द्र दिया है, जो इन्द्रसेन या इन्द्रदत्त आदि किसी नामका संक्षिप्तरूप अथवा एक देश मालूम होता है। श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें जहाँ सिद्धसेनदिवाकरका नामोल्लेख किया है वहाँ इन्द्रदिन्न नामक पट्टाचार्यके बाद 'अत्रान्तरे' जैसे शब्दोंके साथ उस नामकी वृद्धि की गई है। हो सकता है कि सिद्धसेनदिवाकरके गुरुका नाम इन्द्र-जैसा होने और सिद्धसेनका सम्बन्ध आद्य विक्रमादित्य अथवा संवत्प्रवर्त्तक विक्रमादित्यके साथ समझ लेनेकी भूलके कारण ही सिद्धसेनदिवाकरका इन्द्रदिन्न आचार्यकी पट्टबाह्य-शिष्यपरम्परामें स्थान दिया गया हो। यदि यह कल्पना ठीक है और उक्त पद्यमें 'दिवाकरयतिः' पद सिद्धसेनाचार्यका वाचक है तो कहना होगा कि सिद्धसेन-दिवाकर रविषेणाचार्यके पड़दादागुरु होनेसे दिगम्बर सम्प्रदायके आचार्य थे। अन्यथा यह कहना अनुचित न होगा कि सिद्धसेन अपने जीवनमें 'दिवाकर'की आख्याको प्राप्त नहीं थे, उन्हें यह नाम अथवा विशेषण बादको हरिभद्रसूरि अथवा उनके निकटवर्ती किसी पूर्वाचार्यने

---

१. देखो, माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें प्रकाशित रत्नकरण्डश्रावकाचारकी प्रस्तावना पृ० ८।

२. द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्द्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्कर-वर्द्धमान-सिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥१२३-१८१॥

अलङ्कारकी भाषामें दिया है और इसीसे सिद्धसेनके लिये उसका स्वतन्त्र उल्लेख प्राचीन-साहित्यमें प्रायः देखनेको नहीं मिलता। श्वेताम्बरसाहित्यका जो एक उदाहरण ऊपर दिया गया है वह रत्नशेखरसूरिकृत गुरुगुणषट्‌त्रिंशत्षट्त्रिंशिकाकी स्वोपज्ञवृत्तिका एकवाक्य होनेके कारण ५०० वर्षसे अधिक पुराना मालूम नहीं होता और इसलिये वह सिद्धसेनकी दिवाकर-रूपमें बहुत बादकी प्रसिद्धिसे सम्बन्ध रखता है। आजकल तो सिद्धसेनके लिये 'दिवाकर' नामके प्रयोगकी बाढ़-सी आरही है परन्तु अतिप्राचीन कालमें वैसा कुछ भी मालूम नहीं होता।

यहाँपर एक बात और भी प्रकट कर देनेकी है और वह यह कि उक्त श्वेताम्बर प्रबन्धों तथा पट्टावलियोंमें सिद्धसेनके साथ उज्जयिनीके महाकालमन्दिरमें लिङ्गस्फोटनादि-सम्बन्धिनी जिस घटनाका उल्लेख मिलता है उसका वह उल्लेख दिगम्बर सम्प्रदायमें भी पाया जाता है, जैसा कि सेनगणकी पट्टावलीके निम्न वाक्यसे प्रकट है:—

"(स्वस्ति) श्रीमदुज्जयिनीमहाकाल-संस्थापन-महाकाललिङ्गमहीधर-वाग्वज्रदण्डविष्ट्या-विष्कृत-श्रीपार्श्वतीर्थेश्वर-प्रतिद्वन्द-श्रीसिद्धसेनभट्टारकाणाम् ॥१४॥"

ऐसी स्थितिमें द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनके विषयमें भी सहज अथवा निश्चित-रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि वे एकान्ततः श्वेताम्बर सम्प्रदायके थे, सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेनकी तो बात ही जुदी है। परन्तु सन्मतिकी प्रस्तावनामें पं० सुखलालजी और पण्डित बेचरदासजीने उन्हें एकान्ततः श्वेताम्बर सम्प्रदायका आचाय प्रतिपादित किया है—लिखा है कि 'वे श्वेताम्बर थे, दिगम्बर नहीं' (पृ० १०४)। परन्तु इस बातको सिद्ध करनेवाला कोई समर्थ कारण नहीं बतलाया, कारणरूपमें केवल इतना ही निर्देश किया है कि 'महावीरके गृहस्थाश्रम तथा चमरेन्द्रके शरणागमनकी बात सिद्धसेनने वर्णन की है जो दिगम्बरपरम्परामें मान्य नहीं किन्तु श्वेताम्बर आगमोंके द्वारा निर्विवादरूपसे मान्य है' और इसके लिये फुट-नोटमें ५वीं द्वात्रिंशिकाके छठे और दूसरी द्वात्रिंशिकाके तीसरे पद्यको देखनेकी प्रेरणा की है, जो निम्न प्रकार हैं:—

"अनेकजन्मान्तरभग्नमानः स्मरो यशोदाप्रिय यत्पुरस्ते ।
चचार निर्ह्रीकशरस्तमर्थं त्वमेव विद्यासु नयज्ञ कोऽन्यः ॥५-६॥"
"कृत्वा नवं सुरवधूभयरोमहर्षं दैत्याधिपः शतमुख-भ्रुकुटीवितानः ।
त्वत्पादशान्तिगृहसंश्रयलब्धचेता लज्जातनुद्युति हरेः कुलिशं चकार ॥२-३॥"

इनमेंसे प्रथम पद्यमें लिखा है कि 'हे यशोदाप्रिय! दूसरे अनेक जन्मोंमें भग्नमान हुआ कामदेव निर्लज्जतारूपी बाणको लिये हुए जो आपके सामने कुछ चला है उसके अर्थको आप ही नयके ज्ञाता जानते हैं, दूसरा और कौन जान सकता है ? अर्थात् यशोदाके साथ आपके वैवाहिक सम्बन्ध अथवा रहस्यको समझनेके लिये हम असमर्थ हैं।' दूसरे पद्यमें देवाऽसुर-संग्रामके रूपमें एक घटनाका उल्लेख है, 'जिसमें दैत्याधिप असुरेन्द्रने सुरवधुओंको भयभातकर उनके रोंगटे खड़े कर दिये। इससे इन्द्रका भ्रकुटी तन गई और उसने उसपर वज्र छोड़ा, असुरेन्द्रने भागकर वीरभगवानके चरणोंका आश्रय लिया जो कि शान्तिके धाम हैं और उनके प्रभावसे वह इन्द्रके वज्रको लज्जासे क्षीणद्युति करनेमें समर्थ हुआ।'

आलंकृत भाषामें लिखी गई इन दोनों पौराणिक घटनाओंका श्वेताम्बर सिद्धान्तोंके साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं है और इसलिये इनके इस रूपमें उल्लेख मात्रपरसे यह नहीं कहा जा सकता कि इन पद्योंके लेखक सिद्धसेन वास्तवमें यशोदाके साथ भ० महावीरका विवाह होना और असुरेन्द्र (चमरेन्द्र) का सेना सजाकर तथा अपना भयंकर रूप बनाकर युद्धके लिये स्वर्गमें जाना आदि मानते थे, और इसलिये श्वेताम्बर सम्प्रदायके आचार्य थे;

क्योंकि प्रथम तो श्वेताम्बरोंके आवश्यकनिर्युक्ति आदि कुछ प्राचीन आगमोंमें भी दिगम्बर आगमोंकी तरह भगवान् महावीरको कुमारश्रमणके रूपमें अविवाहित प्रतिपादित किया है[1] और असुरकुमार-जातिविशिष्ट-भवनवासी देवोंके अधिपति चमरेन्द्रका युद्धकी भावनाको लिये हुए सैन्य सजाकर स्वर्गमें जाना सैद्धान्तिक मान्यताओंके विरुद्ध जान पड़ता है। दूसरे, यह कथन परवक्तव्यके रूपमें भी हो सकता है और आगमसूत्रोंमें कितना ही कथन परवक्तव्यके रूपमें पाया जाता है इसकी स्पष्ट सूचना सिद्धसेनाचार्यने सन्मतिसूत्रमें की है और लिखा है कि ज्ञाता पुरुषको (युक्ति-प्रमाण-द्वारा) अर्थकी सङ्गतिके अनुसार ही उनकी व्याख्या करनी चाहिए[2]।

यदि किसी तरहपर यह मान लिया जाय कि उक्त दोनों पद्योंमें जिन घटनाओंका उल्लेख है वे परवक्तव्य या अलङ्कारादिके रूपमें न होकर शुद्ध श्वेताम्बरीय मान्यताएँ हैं तो इससे केवल इतना ही फलित हो सकता है कि इन दोनों द्वात्रिंशिकाओं (२, ५)के कर्ता जो सिद्धसेन हैं वे श्वेताम्बर थे। इससे अधिक यह फलित नहीं हो सकता कि दूसरी द्वात्रिंशिकाओं तथा सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन भी श्वेताम्बर थे, जबतक कि प्रबल युक्तियोंके बलपर इन सब ग्रन्थोंका कर्त्ता एक ही सिद्धसेनको सिद्ध न कर दिया जाय; परन्तु वह सिद्ध नहीं है जैसा कि पिछले एक प्रकरणमें व्यक्त किया जा चुका है। और फिर इस फलित होनेमें भी एक बाधा और आती है और वह यह कि इन द्वात्रिंशिकाओंमें कोई कोई बात ऐसी भी पाई जाती है जो इनके शुद्ध श्वेताम्बर कृतियाँ होनेपर नहीं बनती, जिसका एक उदाहरण तो इन दोनोंमें उपयोगद्वयके युगपत्वादका प्रतिपादन है, जिसे पहले प्रदर्शित किया जा चुका है और जो दिगम्बर परम्पराका सर्वोपरि मान्य सिद्धान्त है तथा श्वेताम्बर आगमोंकी क्रमवाद-मान्यताके विरुद्ध जाता है। दूसरा उदाहरण पाँचवीं द्वात्रिंशिकाका निम्न वाक्य है:—

"नाथ त्वया देशितसत्पथस्थाः स्त्रीचेतसोऽप्याशु जयन्ति मोहम् ।
नैवाऽन्यथा शीघ्रगतिर्यथा गां प्राचीं यियासुर्विपरीतयायी ॥२५॥"

इसके पूर्वार्धमें बतलाया है कि 'हे नाथ!—वीरजिन! आपके बतलाये हुए सन्मार्गपर स्थित वे पुरुष भी शीघ्र मोहको जीत लेते हैं—मोहनीयकर्मके सम्बन्धका अपने आत्मासे पूर्णतः विच्छेद कर देते हैं—जो 'स्त्रीचेतसः' होते हैं—स्त्रियों-जैसा चित्त (भाव) रखते हैं अर्थात् भावस्त्री होते हैं।' और इससे यह साफ ध्वनित है कि स्त्रियाँ मोहको पूर्णतः जीतनेमें समर्थ नहीं होतीं, तभी स्त्रीचित्तके लिये मोहको जीतनेकी बात गौरवको प्राप्त होती है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जब स्त्रियाँ भी पुरुषोंकी तरह मोहपर पूर्ण विजय प्राप्त करके उसी भवसे मुक्तिको प्राप्त कर सकती हैं तब एक श्वेताम्बर विद्वान्के इस कथनमें कोई महत्त्व मालूम नहीं होता कि 'स्त्रियों-जैसा चित्त रखनेवाले पुरुष भी शीघ्र मोहको जीत लेते हैं,' वह निरर्थक जान पड़ता है। इस कथनका महत्व दिगम्बर विद्वानोंके मुखसे उच्चरित होनेमें ही है जो स्त्रीको मुक्तिकी अधिकारिणी नहीं मानते फिर भी स्त्रीचित्तवाले भावस्त्री पुरुषोंके लिये मुक्तिका विधान करते हैं। अतः इस वाक्यके प्रणेता सिद्धसेन दिगम्बर होने चाहियें, न कि श्वेताम्बर, और यह समझना चाहिये कि उन्होंने इसी द्वात्रिंशिकाके छठे पद्यमें 'यशोदाप्रिय' पदके साथ जिस घटनाका उल्लेख किया है वह अलङ्कारकी प्रधानताको लिये हुए परवक्तव्यके रूपमें उसी प्रकारका कथन है

---

१ देखो, आवश्यकनिर्युक्तिगाथा २२१, २२२, २२६ तथा अनेकान्त वर्ष ४ कि० ११-१२ पृ० ५७९ पर प्रकाशित 'श्वेताम्बरोंमें भी भगवान् महावीरके अविवाहित होनेकी मान्यता' नामक लेख।

२ परवत्तव्वयपक्खा अविसिट्ठा तेसु तेसु सुत्तेसु। अत्थगईअ उ तेसिं वियंजणं जाणओ कुणइ ॥२-१८॥

जिस प्रकार कि ईश्वरको कर्ता-हर्ता न माननेवाला एक जैनकवि ईश्वरको उलहना अथवा उसकी रचनामें दोष देता हुआ लिखता है—

"हे विधि ! भूल भई तुमतैं, समुझे न कहाँ कस्तूरि बनाई !
दीन कुरङ्गनके तनमें, तृन दन्त धरैं करुना नहिं आई !!
क्यों न रची तिन जीभनि जे रस-काव्य करैं परको दुखदाई !
साधु-अनुग्रह दुर्जन-दण्ड, दुहूँ सधते विसरी चतुराई !!"

इस तरह सन्मतिके कर्ता सिद्धसेनको श्वेताम्बर सिद्ध करनेके लिये जो द्वात्रिंशिकाओंके उक्त दो पद्य उपस्थित किये गये हैं उनसे सन्मतिकार सिद्धसेनका श्वेताम्बर सिद्ध होना तो दूर रहा, उन द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेनका भी श्वेताम्बर होना प्रमाणित नहीं होता जिनके उक्त दोनों पद्य अङ्गरूप हैं। श्वेताम्बरत्वकी सिद्धिके लिये दूसरा और कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया और इससे यह भी साफ मालूम होता है कि स्वयं सन्मतिसूत्रमें ऐसी कोई बात नहीं है जिससे उसे दिगम्बरकृति न कहकर श्वेताम्बरकृति कहा जा सके, अन्यथा उसे जरूर उपस्थित किया जाता। सन्मतिमें ज्ञान-दर्शनोपयोगके अभेदवादकी जो खास बात है वह दिगम्बर मान्यताके अधिक निकट है, दिगम्बरोंके युगपद्वादपरसे ही फलित होती है—न कि श्वेताम्बरोंके क्रमवादपरसे, जिसके खण्डनमें युगपद्वादकी दलीलोंको सन्मतिमें अपनाया गया है। और श्रद्धात्मक दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानके अभेदवादकी जो बात सन्मति द्वितीयकाण्डकी गाथा ३२-३३में कही गई है उसके बीज श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके समयसार ग्रन्थमें पाये जाते हैं। इन बीजोंकी बातको पं० सुखलालजी आदिने भी सन्मतिकी प्रस्तावना (पृ० ६२)में स्वीकार किया है—लिखा है कि "सन्मतिना (कां० २ गाथा ३२) श्रद्धा-दर्शन अने ज्ञानना ऐक्यवादनुं बीज कुंदकुंदना समयसार गा० १-१३ मां[1] स्पष्ट छे।" इसके सिवाय, समयसारकी 'जो पस्सदि अप्पाणं' नामकी १४वीं गाथामें शुद्धनयका स्वरूप बतलाते हुए जब यह कहा गया है कि वह नय आत्माको अविशेषरूपसे देखता है तब उसमें ज्ञान-दर्शनोपयोगकी भेद-कल्पना भी नहीं बनती और इस दृष्टिसे उपयोग-द्वयकी अभेदवादताके बीज भी समयसारमें सन्निहित हैं ऐसा कहना चाहिये।

हाँ, एक बात यहाँ और भी प्रकट कर देनेकी है और वह यह कि पं० सुखलालजीने 'सिद्धसेनदिवाकरना समयनो प्रश्न' नामक लेखमें[2] देवनन्दी पूज्यपादको "दिगम्बर परम्पराका *पक्षपाती* सुविद्वान्" बतलाते हुए सन्मतिके कर्ता सिद्धसेनदिवाकरको *"श्वेताम्बरपरम्पराका समर्थक आचार्य"* लिखा है, परन्तु यह नहीं बतलाया कि वे किस रूपमें श्वेताम्बरपरम्पराके समर्थक हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बरमें भेदकी रेखा खींचनेवाली मुख्यतः तीन बातें प्रसिद्ध हैं—१ स्त्रीमुक्ति, २ केवलिभुक्ति (कवलाहार) और ३ सवस्त्रमुक्ति, जिन्हें श्वेताम्बर सम्प्रदाय मान्य करता और दिगम्बर सम्प्रदाय अमान्य ठहराता है। इन तीनोंमेंसे एकका भी प्रतिपादन सिद्धसेनने अपने किसी ग्रन्थमें नहीं किया है और न इनके अलावा अलंकृत अथवा शृङ्गारित जिनप्रतिमाओंके पूजनादिका ही कोई विधान किया है, जिसके मण्डनादिककी भी सन्मतिके टीकाकार अभयदेवसूरिको जरूरत पड़ी है और उन्होंने मूलमें वैसा कोई खास प्रसङ्ग न होते

---

१ यहाँ जिस गाथाकी सूचना की गई है वह 'दंसणणाणचरित्ताणि' नामकी १६वीं गाथा है। इसके अतिरिक्त 'ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं' (७), 'सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं' (१४४), और 'णाणं सम्मादिट्ठं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं' (४०४) नामकी गाथाओंमें भी अभेदवादके बीज संनिहित हैं।

२ भारतीयविद्या, तृतीय भाग पृ० १५४।

हुए भी उसे यों सी टीकामें लाकर घुसेड़ा है[1]। ऐसी स्थितिमें सिद्धसेनदिवाकरको दिगम्बर-परम्परासे भिन्न एकमात्र श्वेताम्बरपरम्पराका समर्थक आचार्य कैसे कहा जा सकता है? नहीं कहा जा सकता। सिद्धसेनने तो श्वेताम्बरपरम्पराकी किसी विशिष्ट बातका कोई समर्थन न करके उल्टा उसके उपयोग-द्वय-विषयक क्रमवादकी मान्यताका सन्मतिमें जोरोंके साथ खण्डन किया है और इसके लिये उन्हें अनेक साम्प्रदायिक कट्टरताके शिकार श्वेताम्बर आचार्योंका कोपभाजन एवं तिरस्कारका पात्र तक बनना पड़ा है। मुनि जिनविजयजीने 'सिद्ध-सेनदिवाकर और स्वामी समन्तभद्र' नामक लेखमें[2] उनके इस विचारभेदका उल्लेख करते हुए लिखा है—

"सिद्धसेनजीके इस विचारभेदके कारण उस समयके सिद्धान्त-ग्रन्थ-पाठी और आगमप्रवण आचार्यगण उनको 'तर्कम्मन्य' जैसे तिरस्कार-व्यञ्जक विशेषणोंसे अलंकृत कर उनके प्रति अपना सामान्य अनादर-भाव प्रकट किया करते थे।"

"इस (विशेषावश्यक) भाष्यमें क्षमाश्रमण (जिनभद्र)जीने दिवाकरजीके उक्त विचार-भेदका खूब ही खण्डन किया है और उनको 'आगम-विरुद्ध-भाषी' बतलाकर उनके सिद्धान्तको अमान्य बतलाया है॥'

"सिद्धसेनगणीने 'एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः' (१-३१) इस सूत्रकी व्याख्यामें दिवाकरजीके विचारभेदके ऊपर अपने ठीक वाग्बाण चलाये हैं। गणीजीके कुछ वाक्य देखिये—'यद्यपि केचित्पण्डितंमन्याः सूत्रान्यथाकारमर्थमाचक्षते तर्कबलानुविद्ध-बुद्धयो वारंवारेणोपयोगो नास्ति, तत्तु न प्रमाणयामः, यत आम्नाये भूयांसि सूत्राणि वारंवारे-णोपयोगं प्रतिपादयन्ति।"

दिगम्बर साहित्यमें ऐसा एक भी उल्लेख नहीं जिसमें सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेनके प्रति अनादर अथवा तिरस्कारका भाव व्यक्त किया गया हो—सर्वत्र उन्हें बड़े ही गौरवके साथ स्मरण किया गया है, जैसा कि ऊपर उद्धृत हरिवंशपुराणादिके कुछ वाक्योंसे प्रकट है। अकलङ्कदेवने उनके अभेदवादके प्रति अपना मतभेद व्यक्त करते हुए किसी भी कटु शब्दका प्रयोग नहीं किया, बल्कि बड़े ही आदरके साथ लिखा है कि "यथा हि असद्भूतमनुपदिष्टं च जानाति तथा पश्यति किमत्र भवतो हीयते"—अर्थात् केवली (सर्वज्ञ) जिस प्रकार असद्-भूत और अनुपदिष्टको जानता है उसी प्रकार उनको देखता भी है इसके माननेमें आपकी क्या हानि होती है?—वास्तविक बात तो प्रायः ज्योंकी त्यों एक ही रहती है। अकलङ्कदेवके प्रधान टीकाकार आचार्य श्रीअनन्तवीर्यजीने सिद्धिविनिश्चयकी टीकामें 'असिद्धः सिद्धसेनस्य विरुद्धो देवनन्दिनः। द्वेधा समन्तभद्रस्य हेतुरेकान्तसाधने।' इस कारिकाकी व्याख्या करते हुए सिद्धसेनको महान् आदर-सूचक '*भगवान्*' शब्दके साथ उल्लेखित किया है और जब उनके किसी स्वयूथ्यने—स्वसम्प्रदायके विद्वान्ने—यह आपत्ति की कि 'सिद्धसेनने एकान्तके साधनमें प्रयुक्त हेतुको कहीं भी असिद्ध नहीं बतलाया है अतः एकान्तके साधनमें प्रयुक्त हेतु सिद्धसेन-की दृष्टिमें असिद्ध है' यह वचन सूक्त न होकर अयुक्त है, तब उन्होंने यह कहते हुए कि 'क्या उसने कभी यह वाक्य नहीं सुना है' सन्मतिसूत्रकी 'जे संतवायदोसे' इत्यादि कारिका (३-५०) को उद्धृत किया है और उसके द्वारा एकान्तसाधनमें प्रयुक्त हेतुको सिद्धसेनकी दृष्टिमें 'असिद्ध' प्रतिपादन करना सन्निहित बतलाकर उसका समाधान किया है। यथा:—

---

१ देखो, सन्मति-तृतीयकाण्डगत गाथा ६५की टीका (पृ० ७५४), जिसमें "भगवत्प्रतिमाया भूषणाद्या-रोपणं कर्मक्षयकारणं" इत्यादि रूपसे मण्डन किया गया है।

२ जैनसाहित्यसंशोधक, भाग १ अङ्क १ पृ० १०, ११।

"असिद्ध इत्यादि, स्वलक्षणैकान्तस्य साधने सिद्धावङ्गीक्रियमानायां सर्वो हेतुः सिद्धसेनस्य भगवतोऽसिद्धः। कथमिति चेदुच्यते·········। ततः सूक्तमेकान्तसाधने हेतुरसिद्धः सिद्धसेनस्येति। कश्चित्स्वयूथ्योऽत्राह—सिद्धसेनेन क्वचित्तस्याऽसिद्धस्याऽवचनादयुक्तमेतदिति। तेन कदाचिदेतत् श्रुतं—'जे संतवायदोसे सक्कोल्लूया भणंति संखाणं। संखा य असव्वाए तेसिं सव्वे वि ते सच्चा'॥"

इन्हीं सब बातोंको लक्ष्यमें रखकर प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् स्वर्गीय श्रीमोहनलाल दलीचन्द देशाई बीए. ए., एल-एल. बी. एडवोकेट हाईकोर्ट बम्बईने, अपने 'जैन-साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' नामक गुजराती ग्रन्थ (पृ. ११६)में लिखा है कि "सिद्धसेनसूरि प्रत्येनो आदर दिगम्बरो विद्वानोमां रहेलो देखाय छे" अर्थात् (सन्मतिकार) सिद्धसेनाचार्यके प्रति आदर दिगम्बर विद्वानोंमें रहा दिखाई पड़ता है—श्वेताम्बरोंमें नहीं। साथ ही हरिवंशपुराण, राजवार्तिक, सिद्धिविनिश्चय-टीका, रत्नमाला, पार्श्वनाथचरित और एकान्तखण्डन-जैसे दिगम्बर ग्रन्थों तथा उनके रचयिता जिनसेन, अकलङ्क, अनन्तवीर्य, शिवकोटि, वादिराज और लक्ष्मीभद्र(धर) जैसे दिगम्बर विद्वानोंका नामोल्लेख करते हुए यह भी बतलाया है कि 'इन दिगम्बर विद्वानोंने सिद्धसेनसूरि-सम्बन्धी और उनके सन्मतितर्क-सम्बन्धी उल्लेख भक्तिभावसे किये हैं, और उन उल्लेखोंसे यह जाना जाता है कि दिगम्बर ग्रन्थकारोंमें घना समय तक सिद्धसेनके (उक्त) ग्रन्थका प्रचार था और वह प्रचार इतना अधिक था कि उसपर उन्होंने टीका भी रची है।

इस सारी परिस्थितिपरसे यह साफ समझा जाता और अनुभवमें आता है कि सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन एक महान् दिगम्बराचार्य थे, और इसलिये उन्हें श्वेताम्बर-परम्पराका अथवा श्वेताम्बरत्वका समर्थक आचार्य बतलाना कोरी कल्पनाके सिवाय और कुछ भी नहीं है। वे अपने प्रवचन-प्रभाव आदिके कारण श्वेताम्बरसम्प्रदायमें भी उसी प्रकारसे अपनाये गये हैं जिस प्रकार कि स्वामी समन्तभद्र, जिन्हें श्वेताम्बर पट्टावलियोंमें पट्टाचार्य तकका पद प्रदान किया गया है और जिन्हें पं० सुखलाल, पं० बेचरदास और मुनि जिनविजय आदि बड़े-बड़े श्वेताम्बर विद्वान् भी अब श्वेताम्बर न मानकर दिगम्बर मानने लगे हैं।

कतिपय द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेन इन सन्मतिकार सिद्धसेनसे भिन्न तथा पूर्ववर्ती दूसरे ही सिद्धसेन हैं, जैसा कि पहले व्यक्त किया जा चुका है, और सम्भवतः वे ही उज्जयिनीके महाकालमन्दिरवाली घटनाके नायक जान पड़ते हैं। हो सकता है कि वे शुरूसे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ही दीक्षित हुए हों, परन्तु श्वेताम्बर आगमोंको संस्कृतमें कर देनेका विचारमात्र प्रकट करनेपर जब उन्हें बारह वर्षके लिये संघबाह्य करने-जैसा कठोर दण्ड दिया गया हो तब वे सविशेषरूपसे दिगम्बर साधुओंके सम्पर्कमें आए हों, उनके प्रभावसे प्रभावित तथा उनके संस्कारों एवं विचारोंको ग्रहण करनेमें प्रवृत्त हुए हों—खासकर समन्तभद्रस्वामीके जीवनवृत्तान्तों और उनके साहित्यका उनपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा हो और इसी लिये वे उन्हीं-जैसे स्तुत्यादिक कार्योंके करनेमें दत्तचित्त हुए हों। उन्हींके सम्पर्क एवं संस्कारोंमें रहते हुए ही सिद्धसेनसे उज्जयिनीकी वह महाकालमन्दिरवाली घटना बन पड़ी हो, जिससे उनका प्रभाव चारों ओर फैल गया हो और उन्हें भारी राजाश्रय प्राप्त हुआ हो। यह सब देखकर ही श्वेताम्बरसंघको अपनी भूल मालूम पड़ी हो, उसने प्रायश्चित्तकी शेष अवधिको रद्द कर दिया हो और सिद्धसेनको अपना ही साधु तथा प्रभावक आचार्य घोषित किया हो। अन्यथा, द्वात्रिंशिकाओंपरसे सिद्धसेन गम्भीर विचारक एवं कठोर समालोचक होनेके साथ साथ जिस उदार स्वतन्त्र और निर्भय-प्रकृतिके समर्थ विद्वान् जान पड़ते हैं उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि उन्होंने ऐसे अनुचित एवं अविवेकपूर्ण दण्डको यों ही चुपके-से गर्दन झुका कर मान लिया हो, उसका कोई प्रतिरोध न किया हो अथवा अपने लिये

कोई दूसरा मार्ग न चुना हो। सम्भवतः अपने साथ किये गये ऐसे किसी दुर्व्यवहारके कारण ही उन्होंने पुराणपन्थियों अथवा पुरातनप्रेमी एकान्तियोंकी (द्वा० ६में) कड़ी आलोचनाएँ की हैं।

यह भी हो सकता है कि एक सम्प्रदायने दूसरे सम्प्रदायकी इस उज्जयिनीवाली घटनाको अपने सिद्धसेनके लिये अपनाया हो अथवा यह घटना मूलतः काँची या काशीमें घटित होनेवाली समन्तभद्रकी घटनाकी ही एक प्रकारसे कापी हो और इसके द्वारा सिद्धसेनको भी उसप्रकारका प्रभावक ख्यापित करना अभीष्ट रहा हो। कुछ भी हो, उक्त द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता सिद्धसेन अपने उदार विचार एवं प्रभावादिके कारण दोनों सम्प्रदायोंमें समानरूपसे माने जाते हैं—चाहे वे किसी भी सम्प्रदायमें पहले अथवा पीछे दीक्षित क्यों न हुए हों।

परन्तु न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेनकी दिगम्बर सम्प्रदायमें वैसी कोई खास मान्यता मालूम नहीं होती और न उस ग्रन्थपर दिगम्बरोंकी किसी खास टीका-टिप्पणका ही पता चलता है, इसीसे वे प्रायः श्वेताम्बर जान पड़ते हैं। श्वेताम्बरोंके अनेक टीका-टिप्पण भी न्यायावतारपर उपलब्ध होते हैं—उसके 'प्रमाणं स्वपराभासि' इत्यादि प्रथम श्लोकको लेकर तो विक्रमकी ११वीं शताब्दीके विद्वान् जिनेश्वरसूरिने उसपर 'प्रमालक्ष्म' नामका एक सटीक वार्तिक ही रच डाला है, जिसके अन्तमें उसके रचनेमें प्रवृत्त होनेका कारण उन दुर्जनवाक्योंको बतलाया है जिनमें यह कहा गया है कि इन 'श्वेताम्बरोंके शब्दलक्षण और प्रमाणलक्षण-विषयक कोई ग्रन्थ अपने नहीं हैं, ये परलक्षणोपजीवी हैं—बौद्ध तथा दिगम्बरादि ग्रन्थोंसे अपना निर्वाह करनेवाले हैं—अतः ये आदिसे नहीं—किसी निमित्तसे नये ही पैदा हुए अर्वाचीन हैं।' साथ ही यह भी बतलाया है कि 'हरिभद्र, मल्लवादी और अभयदेवसूरि-जैसे महान् आचार्योंके द्वारा इन विषयोंकी उपेक्षा किये जानेपर भी हमने उक्त कारणसे यह 'प्रमालक्ष्म' नामका ग्रन्थ वार्तिकरूपमें अपने पूर्वाचार्यका गौरव प्रदर्शित करनेके लिये (टीका—"पूर्वाचार्यगौरव-दर्शनार्थं") रचा है और (हमारे भाई) बुद्धिसागराचार्यने संस्कृत-प्राकृत शब्दोंकी सिद्धिके लिये पद्योंमें व्याकरण ग्रन्थकी रचना की है'[१]।'

इस तरह सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन दिगम्बर और न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेन श्वेताम्बर जाने जाते हैं। द्वात्रिंशिकाओंमेंसे कुछके कर्ता सिद्धसेन दिगम्बर और कुछके कर्ता श्वेताम्बर जान पड़ते हैं और वे उक्त दोनों सिद्धसेनोंसे भिन्न पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती अथवा उनसे अभिन्न भी हो सकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि उज्जयिनीकी उस घटनाके साथ जिन सिद्धसेनका सम्बन्ध बतलाया जाता है उन्होंने सबसे पहले कुछ द्वात्रिंशिकाओंकी रचना की है, उनके बाद दूसरे सिद्धसेनोंने भी कुछ द्वात्रिंशिकाएँ रची हैं और वे सब रचयिताओंके नाम-साम्यके कारण परस्परमें मिलजुल गई हैं, अतः उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओंमें यह निश्चय करना कि कौन-सी द्वात्रिंशिका किस सिद्धसेनकी कृति है विशेष अनुसन्धानसे सम्बन्ध रखता है। साधारणतौरपर उपयोग-द्वयके युगपद्वादादिकी दृष्टिसे, जिसे पीछे स्पष्ट किया जा चुका है, प्रथमादि पाँच द्वात्रिंशिकाओंको दिगम्बर सिद्धसेनकी, १९वीं तथा २१वीं द्वात्रिंशिकाओंको श्वेताम्बर सिद्धसेनकी और शेष द्वात्रिंशिकाओंको दोनोंमेंसे किसी भी सम्प्रदायके सिद्धसेनकी अथवा दोनों ही सम्प्रदायोंके सिद्धसेनोंकी अलग अलग कृति कहा जा सकता है। यही इन विभिन्न सिद्धसेनोंके सम्प्रदाय-विषयक विवेचनका सार है।

---

१ देखो, वार्तिक नं० ४०१से ४०५ और उनकी टीका अथवा जैनहितैषी भाग १३ अङ्क ९-१०में प्रकाशित मुनि जिनविजयजीका 'प्रमालक्षण' नामक लेख।

५. उपसंहार और आभार

इस प्रकार यह सब उन मूलग्रन्थों तथा उनके रचयिता आचार्यादि ग्रन्थकारोंका यथावश्यक और यथासाध्य संक्षेप-विस्तारसे परिचय है जिनके पद-वाक्योंको प्रस्तुत सूची (अनुक्रमणी) में शामिल अथवा संग्रहीत किया गया है।

अब मैं प्रस्तावनाको समाप्त करता हुआ उन सब सज्जनोंका आभार प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनका इस ग्रन्थके निर्माणादि-कार्योंमें मुझे कुछ भी क्रियात्मक अथवा उल्लेखनीय सहयोग प्राप्त हुआ है। सबसे पहले मैं श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमारानीजीका हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थके निर्माण और प्रकाशन-कार्यमें अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। तत्पश्चात् अपने आश्रम वीरसेवा-मन्दिरके दो विद्वानों न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया और पं० परमानन्दजी शास्त्रीके प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूं जो ग्रन्थके संशोधन-सम्पादन और प्रूफरीडिङ्ग आदि कार्योंमें बराबर सहयोगी रहे हैं। साथ ही आश्रमके उन भूतकालीन विद्वानों पंडित ताराचन्दजी दर्शनशास्त्री, पं० शंकरलालजी न्यायतीर्थ और पं० दीपचन्दजी पाण्ड्याको भी मैं इस अवसर पर नहीं भुला सकता जिनका इस ग्रन्थमें पूर्व-सूचनानुससार प्रेसकापी आदिके रूपमें कुछ क्रियात्मक सहयोग रहा है, और इसलिये मैं उनका भी आभारी हूँ।

प्रोफ़ेसर ए० एन० उपाध्येजी एम० ए०, डी० लिट० कोल्हापुरने इस ग्रन्थकी अंग्रेजी प्रस्तावना (Introduction) लिखकर और समय-समयपर अपने बहुमूल्य परामर्श देकर मुझे बहुत ही अनुग्रहीत किया है, और इसलिये उनका मैं यहांपर खासतौरसे आभार मानता हूँ।

भूतबलि-पुष्पदन्ताचार्यकृत षट्खण्डागमपरसे जिन गाथासूत्रोंको स्पष्ट करके परिशिष्ट नं० २ में दिया गया है उनमेंसे दो एक तो पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकी खोजसे सम्बन्ध रखते हैं और शेषपर उनकी अनुमति प्राप्त हुई है। अतः इसके लिये वे भी आभारके पात्र हैं।

पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने स्याद्वादविद्यालय बनारससे, बाबू पन्नालालजी अग्रवाल देहलीने देहली-धर्मपुराके नये मन्दिरसे तथा बाबू कपूरचन्द (मालिक महावीर प्रेस) आगराने मोतीकटरा-जैनमन्दिरसे 'तिलोयपण्णत्ती' की हस्तलिखित प्रति भेजकर और ला० प्रद्युम्नकुमारजी जैन रईस सहारनपुरने अपने मन्दिरके शास्त्रभण्डारसे उसे तुलनाके लिये देकर, और इसी तरह, श्रीरामचन्द्रजी खिन्दुका जयपुरने आमेरके शास्त्रभण्डारसे प्राकृत 'पंचसंग्रह' आदि की कुछ पुरानी प्रतियाँ भेज कर तथा 'जंबूदीवपण्णत्ती' की प्रतिको तुलनाके लिये देकर सूचीके कार्यमें जो सहायता पहुंचाई है उसके लिये ये सब सज्जन मेरे आभार एवं धन्यवादके पात्र हैं।

इसके सिवाय, प्रस्तुत प्रस्तावना के—खासकर उसके 'ग्रंथ और ग्रंथकार' नामक विभागके—लिखनेमें जिन विद्वानोंके ग्रंथो, लेखों, प्रस्तावना-वाक्यों आदिपरसे मुझे कुछ भी सहायता प्राप्त हुई है अथवा जिनके अनुकूल-प्रतिकूल विचारोंको पाकर मुझे उस विषयमें विशेषरूपसे कुछ विचार करने तथा लिखनेकी प्रेरणा मिली है उन सब विद्वानोंका भी मैं हृदयसे आभारी हूं—उनकी कृतियों तथा विचारोंके सम्पर्कमें आए विना प्रस्तावनाको वर्तमान रूप प्राप्त होता, इसमें सन्देह ही है।

अन्तमें मैं बाबू त्रिलोकचन्दजी जैन सरसावाका भी हृदयसे आभार व्यक्त करता हूं जो सहारनपुर-प्रेससे अधिकांश प्रूफोंको कृपया लाते और करैक्शन हो जानेपर उन्हें प्रेसको पहुँचाते रहे हैं।

वीरसेवामन्दिर, सरसावा
जि० सहारनपुर

जुगलकिशोर मुख्तार

प्रस्तावनाका संशोधन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	८	उपस्यित करके	उपस्थित न करके
५०, ५१	×	(५० वें पृष्ठका मैटर ५१ वें पृष्ठपर और ५१ वेंका मैटर ५० वें पृष्ठ पर छप गया है अतः पृष्ठ ५० को ५१ तथा ५१ को ५० बना लें और तदनुसार ही पढ़नेकी कृपा करें ।)	
९१	३६	धवला	जयधवला
९२	३७	निम्नकरण	निम्न कारण
११६	५	आकिकी	आदिकी
१२०	२१	जाता है	जाता है२
१२१	३८	णिदिष्टा	निर्दिष्टा
१२२	२५	वत्तव्यं	वत्तव्वं
१२७	१२	हैं	है
,,	३६	विषोग्रह	विषोग्रग्रह
,,	३८	प्रासादस्थितात्	प्रासादस्थितात्
१३१	१७, २६	विविध तीर्थकल्प	विविधतीर्थकल्प
,,	२०, ३०, ३३	द्वात्रिशकाओं	द्वात्रिंशिकाओं
,,	२७	वतलाया	वतलाता
,,	३३	जीवन वृत्तान्त	जीवनवृत्तान्त
१४२	२३	त्रियेण	त्रयेण
१६०	३	आर्यरवपुट्टाचार्य	आर्यखपुट्टाचार्य
१६१	९	रुलकैरिव	रुलूकैरिव
,,	२३	सिरूसेन	सिद्धसेन
१६६	७	उल्लेख	उल्लेख करते हुए लिखा है—
,,	३९	करते हुए लिखा है—	×

प्रस्तावनाकी नाम-सूची।

पुरातन-जैनवाक्य-सूची

प्रथमो विभागः

अर्थात्

दिगम्बर जैन प्राकृतपद्यानुक्रमणी

अ

अइउएकगपहुदिसु	आय० ति० १५-१२
अइउज्जलरुवाओ	जंबू० प० ४-१४०
अइउट्ठिअणाउट्ठी	तिलो० प० ४-१६२१
अइउत्तमसंहणणो	भावसं० ६६
अइएउकगपहुदिसु	आय० ति० ६-१४
अइएओसरजुत्ता	आय० ति० १०-१७
अइकव्वुरव्भुसुहयं	आय० ति० १६-६
अइ कुणउ तवं पाले-	आरा० सा० १११
अइणिट्ठुरफरसाई	वसु० सा० १२५
अइतित्तकडुवकच्छरि	तिलो० प० २-३४३
अइतिव्वदाहसंता	वसु० सा० १६१
अइतिव्ववेयणाए	आरा० सा० ४३
अइथूलथूल-थूलं	वसु० सा० १८
अइथूलथूल-थूलं	णियम० २१
अइबलिओ वि रउद्दो	कत्ति० अणु० २६
अइबालवुड्ढदासे	छेदपिं० २१६
अइबालवुड्ढरोगा	वसु० सा० २३७
अइभीमदंसणेण य	गो० जी० १३५
अइभीमदंसणेण य	पंचसं० १-५३
अइमुत्तयाणभवणा	तिलो० प० ४-३२६
अइमेच्छा ते पुरिसा	तिलो० प० ४-१५७३
अइलवो हि जुवाणो	रिट्ठस० ८६
अइलंघेय(इ) विचिट्ठो	वसु० सा० ७१
अइलालिओ वि देहो	कत्ति० अणु० ६
अइवट्ठेहिं तेहिं	तिलो० प० १-१२०
अंइविट्ठि अणाविट्ठी	जंबू प० २-१६६
अइवुड्ढबालमूयं	वसु० सा० २३५
अइसयअसेसणिवहं	जंबू प० ३-२४४
अइसयमव्वाबाहं	सिद्धभ० ६
अइसयमादसमुत्थं	पवयणसा० १-१३
अइसरसमइसुगंधं	वसु० सा० २५२
अइसुरहिकुसुमकुंकुम	आय० ति० २५-४
अइसोहणजोएणं	मोक्खपा० २४
अउदइओ परिणमिओ	भावसं० ८
अउदुम्बरफलसरिसा	तिलो० प० ४-२२५०
अउपत्तिकीभवंतर-	तिलो० प० ४-१०१८
अकइयणियाणसम्मो	भावसं० ४०५
अकचटतपजसवग्गा	रिट्ठस० २२७
अकचटतपयसवन्नी	रिट्ठस० १६२
अकडुगमतित्तयमणं-	भ० आरा० १४६०
अकदम्मि वि अवराधे	भ० आरा ६४७
अकदीमाउअआदी	तिलो० सा० ६३

अट्ठ गुणिज्जा वामे	गो० क० ८४६
अट्ठगुणिड्ढिविसिट्ठा	तिलो० सा० २१६
अट्ठगुणिदेगसेढी	तिलो० प० १–१६५
अट्ठचउएक्कअडणभ-	तिलो० प० ४–२८८१
अट्ठचउछक्कएक्का	तिलो० प० ७–२५१
अट्ठचउदुतिनिसत्ता	तिलो० प० ७–१२
अट्ठचउरट्ठवीसे	पंचसं० ५–२२२
अट्ठचउरेयवीसं	पंचसं० ५–३६२
अट्ठचउसत्तपणचउ-	तिलो० प० ४–२८३२
अट्ठ चदु णाणदंसण-	दव्वस० णय० १४
अट्ठ चदु णाणदंसण-	दव्वसं० ६
अट्ठचदुदुगसहस्सा	तिलो० प० ८–३०६
अट्ठच्चिय जोयणया	तिलो० प० ४–१६४१
अट्ठच्चिय लक्खाणि	तिलो० प० ८–७०
अट्ठच्चिय लक्खाणि	तिलो० प० ८–७१
अट्ठच्चिय लक्खाणिं	तिलो० प० ७–६०१
अट्ठ छ अट्ठ य छद्दो	तिलो० प० ४–२६६४
अट्ठछचउदुगदेयं	तिलो० प० १–२७६
अट्ठछणवणवतियचउ-	तिलो० प० ४–२८८६
अट्ठ छदु अट्ठ तिय पण	तिलो० प० ४–२६३८
अट्ठट्ठकम्मरहियं	जंवू० प० १०–१०२
अट्ठट्ठकम्मरहियं	जंवू० प० १२–११३
अट्ठट्ठरेहछिण्णो	रिट्ठस० २०४
अट्ठट्ठसहस्साणिं	तिलो० प० ४–१८८६
अट्ठट्ठसिहरसहिओ	जंवू० प० ६–१७४
अट्ठट्ठा कोडीओ	जंवू० प० ४–८७
अट्ठट्ठा कोडीओ	जंवू० प० ११–२०१
अट्ठट्ठी बत्तीसं	पंचसं० ५–३१४
अट्ठट्ठी सत्तरस य	तिलो० सा० ४०२
अट्ठट्ठी सत्तसया	पंचसं ५–३१६
अट्ठड तिय णभ छद्दो	तिलो० प० ४–२६८१
अट्ठणवणभचउक्का	तिलो० प० ४–२६१४
अट्ठण्णव उवमाणा	तिलो० प० ८–४६८
अट्ठण्हमणुक्कस्सो	पंचसं० ४–४३८
अट्ठण्हं आदिण्णो	छेदपिं० २३७
अट्ठण्हं कम्माणं	गो० जी० ५५२
अट्ठण्हं जमगाणं	जंवू० प० ११–७६
अट्ठण्हं जमगाणं	जंवू० प० ११–३०
अट्ठण्हं देवीणं	तिलो० सा० ५१२
अट्ठण्हं पि य एवं	गो० क० १६१
अट्ठत्तरि अधियाए	तिलो० प० ४–५७६
अट्ठत्तरि संजुत्ता	तिलो० प० ४–२३८२
अट्ठत्तरिं सहस्सा	तिलो० प० ४–२६१६
अट्ठत्तरीहिं सहिया	गो० क० ५०६
अट्ठत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७–३६६
अट्ठत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७–३५१
अट्ठत्तालसहस्सा	तिलो० प० ४–६३
अट्ठत्तालं दुसयं	तिलो० प० २–१६१
अट्ठत्तालं लक्खा	तिलो० प० ७–६०३
अट्ठत्ताला दीवा	तिलो० प० ४–२७१७
अट्ठत्तिय दोण्णि अंबर	तिलो० प० ४–२६५६
अट्ठत्तीसद्धलवा	गो० जी० ५७४
अट्ठत्तीसद्धलवा	जंवू० प० १३–६
अट्ठत्तीससदाइं	जंवू० प० ११–२६
अट्ठत्तीससहस्सा	गो० क० ५०५
अट्ठत्तीससहस्सा	पंचसं० ५–३८१
अट्ठत्तीससहस्सा	तिलो० प० ७–५८२
अट्ठत्तीससहस्सा	तिलो० प० ४–१६६८
अट्ठत्तीसं लक्खा	तिलो० प० ८–२४५
अट्ठत्तीसं लक्खा	तिलो० प० २–११५
अट्ठत्थाणं सुण्णं	तिलो० प० ४–१०
अट्ठदलकमलमज्झे	णाणसा० २६
अट्ठदलकमलमज्झे	वसु० सा० ४७०
अट्ठ दस पंच पच य	धम्मर० १८३
अट्ठदसं अहियाणं	सुदखं० ७८
अट्ठदसहत्थमत्तं	वसु० सा० ३६३
अट्ठदुगतिगचदुक्के	कसायपा० ३७
अट्ठ दुगेक्क दो पण	तिलो० प० ४–२८४६
अट्ठदुणवेक्कअट्ठा	तिलो० प० ७–३१६
अट्ठ पण तिदय सत्ता	तिलो० प० ८–३३४
अट्ठपदेसे मुत्तूण	भ० आरा० १७७६
अट्ठब्भहियसहस्सं	तिलो० प० ४–१८७२
अट्ठमए अट्ठविहा	तिलो० प० ४–८५६
अट्ठमए इगितिसया	तिलो० प० ४–१४३०
अट्ठमए णाकगदे	तिलो० प० ४–४६४
अट्ठमखिदीए उवरिं	तिलो० प० ६–३
अट्ठमछट्ठचउत्थे	तिलो० सा० ७८५
अट्ठमठाणम्मि ससी	रिट्ठस० २४२
अट्ठमवग्गचउत्थं	णाणसा० २१
अट्ठमं भरहकूडा	जंवू० प० २–५१

अट्ठारस जोयणिया	जंबू० प० ११–६२
अट्ठारस जोयणिया	मूला० १०८२
अट्ठारस तेरस अड-	तिलो० सा० ७६५
अट्ठारस पयडीणं	पंचसं० ४–४१५
अट्ठारस भागसया	तिलो० प० ७-४०७
अट्ठार सयसहस्सा	जंबू० प० ११–१७
अट्ठार सयसहस्सा	जंबू० १२–३०
अट्ठारसलक्खाणि	तिलो० प० २–१३७
अट्ठारसलक्खाणि	तिलो० प० ८–४७
अट्ठारसवरिसाधिय-	तिलो० प० ४–६४४
अट्ठारस विवसाया (चेव सया)	तिलो०प०७–४२१
अट्ठारस वीसदिमा	छेदपिं० २३५
अट्ठारसहस्साणि	तिलो० प० ४–१४०३
अट्ठारसा सहस्सा	तिलो० प० ४, २४७०
अट्ठारसुत्तरसदं	तिलो० प० ७–४४७
अट्ठारसुत्तरसयं	तिलो० प० ७–१६६
अट्ठारसेहिं जुत्ता	पंचसं० १–४१
अट्ठारहकोडीणं	जंबू० प० ७–६६
अट्ठारह चउ अट्ठं	गो० क० ३६३
अट्ठावण्णसयाणि	तिलो० प० ४–२६०७
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ७–३०६
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ४–१७७५
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ७–४००
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ७–३७२
अट्ठावण्णसहस्सा	तिलो० प० ७–३५४
अट्ठावण्णं दंडा	तिलो० प० २–२५८
अट्ठावण्णा दुसया	तिलो० प० ८–५८
अट्ठावयम्मि उसहो	णिव्वा० भ० १
अट्ठावीस दुवीसं	तिलो० प० ४–१२६१
अट्ठावीसविहत्ता	तिलो० प० १–२४१
अट्ठावीसविहत्ता	तिलो० प० १–२४०
अट्ठावीससदाइं	जंबू० प० ११–२७
अट्ठावीससयाणि	तिलो० प० ४–११५५
अट्ठावीससहस्सं	तिलो० सा० २८२
अट्ठावीससहस्सं	तिलो० प० ४–२३७८
अट्ठावीससहस्सा	जंबू० प० ११–२८
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४–२२३८
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४–१६६१
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४, १७१४
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४–२२३०
अट्ठावीससहस्सा	तिलो० प० ४–१२२५
अट्ठावीसं चउवी-	कसायपा० २७
अट्ठावीसं च सदं	जंबू० प० ३–२३
अट्ठावीसं णिरए	पंचसं० ४–२५८
अट्ठावीसं णिरए	पंचसं० ५–५२
अट्ठावीसं रिक्खा	जंबू० प० १२–१०८
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० ७–६०२
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० ८–४३
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० ४–२५६२
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० २–१२६
अट्ठावीसं लक्खा	तिलो० प० ४–१४५५
अट्ठावीसाहिं तहा	जंबू० प० ६–१२५
अट्ठावीसाहिं तहा	जंबू० प० ६–१०८
अट्ठावीसाहिं तहा	जंबू० प० ८–४८
अट्ठावीसाहिं तहा	जंबू०प० ६–६२
अट्ठावीसुणतीसा	पंचसं० ५–४६१
अट्ठावीसुत्तरसय-	तिलो० प० ४–३६६
अट्ठावीसेहिं तहा	जंबू० प० ८–१६२
अट्ठावीसेहिं तहा	जंबू० प० ६–३१
अट्ठासट्ठिसहस्सं	तिलो० प० ४–२३८१
अट्ठासट्ठिसहस्सा	तिलो० प० ७–३००
अट्ठासट्ठिसहस्सा	तिलो० प० ७–४०२
अट्ठासट्ठिं तिसया	तिलो० प० ७–५६१
अट्ठासट्ठीहीणं	तिलो० प० २–६३
अट्ठासीदिगहाणं	तिलो० प० ७–४५८
अट्ठासीदिसयाणि	तिलो० प० ४–१२१५
अट्ठासीदिसहस्सा	तिलो० प० ८–२२५
अट्ठासीदी अधिया	तिलो० प० ७–१६१
अट्ठासीदी लक्खा	तिलो० प० ८–२४१
अट्ठासीदी लक्खा	तिलो० प० ७–६०६
अट्ठिगिदुगतिगछ्छण्णभ-	तिलो०प०४–२८६६
अट्ठिणिछ्छण्णं णालिणि-	मूला० ८४६
अट्ठिदलिया छिरावक्क-	भ० आरा० १८१६
अट्ठि य अरोयभुत्ते	छेदस० ५३
अट्ठिसिराहिरवसा-	तिलो० प० ३–२०८
अट्ठिं च चम्मं च तहेव मंसं	मूला० ८४८
अट्ठीणि होंति तिण्णि दु	भ० आरा० १०२७
अट्ठीहिं पडिबद्धं	वां० अणु० ४३
अट्ठुत्तरमेक्कसयं	तिलो० प० ८–१६६
अट्ठुत्तरसयकोडी	सुदखं० ५२

अणुवमम्मवत्तं णव-	तिलो० प० ४-८६५
अणुवय-गुण-सिक्खावयइँ	सावय० दो० ५६
अणुवय-महव्वएहि य	पचसं० ४-२०७
अणुवय-महव्वया जे	कल्लाणा० १३
अणुवेक्खाहिं एवं	मूला० ७६४
अणुसज्जमाणए पुण	भ० आरा० ६६८
अणुसमओवट्टणयं	लद्धिसा० १४८
अणु-संखा-संखेज्जा-	गो० जी० ५६३
अणुसिट्ठि दादूण य	भ० आरा० २०३४
अणुसूरी पडिसूरी	भ० आरा० २२२
अणुहवभावो चेयण-	दव्वस० णय० ६३
अण्णइ रूवं दव्वं	कत्ति० अणु० २४०
अण्णकए गुणदोसे	भावसं० ३६
अण्णणिमित्तपउंजिद-	छेदपिं० १६६
अण्णणिरावेक्खो जो	णियम० २८
अण्णण्णा एदस्सि	तिलो० प० ४-२३६५
अण्णत्थ ठियस्सुदये	गो० क० ४३६
अण्णदरआउसहिया	गो० क० ३७८
अण्णदविएण अण्णद-	समय० ३७२
अण्णदिसा-विदिसासुं	तिलो० प० ८-१२४
अण्णभवे जो सुयणो	कत्ति० अणु० ३६
अण्णम्मि चावि एदा-	भ० आरा० ७४
अण्णम्मि भुंजमाणे	भावसं० ३२
अण्णयरवेयणीयं	पंचसं० ३-४१
अण्णयरवेयणीयं	पंचसं० ३-४४
अण्णयरवेयणीयं	पंचसं० ३-६४
अण्णयरवेयणीयं	पंचसं० ५-४६६
अण्णयरवेयणीयं	पंचसं० ५-४६७
अण्णरिसीणं च दु (पुणो ?)	छेदपिं० २६४
अण्णस्स अप्पणो वा	भ० आरा० ८३६
अण्णस्स अप्पणो वा	भ० आरा० १०२३
अण्णं अपेच्छसिद्धं	मूला० ३११
अण्णं अवरज्झंतस्स	भ० आरा० ८६४
अण्णं इमं सरीरं	भ० आरा० १६७०
अण्ण इमं सरीरा—	मूला० ७०२
अण्णं इमं सरीरा-	बा० अणु० २३
अण्णं इय णिसुणिज्जइ	भावसं० ४६
अण्णं गिण्हदि देहं	भ० आरा० १७७३
अण्णं च एवमाई	दंसणसा० १५
अण्णं च एवमादिय-	भ० आरा० ५५६
अण्णं च जम्मपुव्वं	रिट्ठस० १०
अण्णं च वसिट्ठमुणी	भावपा० ४६
अण्णं जं इय उत्तं	भावसं० ११६
अण्णं देहं गिण्हदि	कत्ति० अणु० ८०
अण्णं पि एवमाई	कत्ति० अणु० २०६
अण्णं पि तहा वत्थुं	भ० आरा० ३३८
अण्णं बहुउवदेसं	तिलो० प० ४-५००
अण्णं व एवमादी	भ० आरा० ५५७
अण्णं वि य मूलुत्तर-	छेदपिं० २२६
अण्णाएं आवंति जि य	सावय० दो० १४५
अण्णाएं दालिद्दियहँ	सावय० दो० १४८
अण्णाएं दालिद्दियहँ	सावय० दो० १४६
अण्णाएं बलियहँ वि खउ	सावय० दो० १४७
अण्णाण-अहंकारे-	छेदपिं० १५३
अण्णाणघोरतिमिरं	तिलो० प० १-४
अण्णाणतिए ताणि य	सिद्धंत० ३७
अण्णाणतिए होंति य	पंचसं० ४-३०
अण्णाणतिमिरदलणे	जंबू० प० १-७४
अण्णाणतियं दोसुं	पंचसं० ४-६६
अण्णाणतियं होदि हु	गो० जी० ३००
अण्णाणदुगे बंधो	गो० क० ७२३
अण्णाणमोहगारव-	भ० आरा० ६१३
अण्णाणधम्मगारव-	छेदपिं० १५४
अण्णाणधम्मलग्गो	भावसं० १८६
अण्णाणमओ भावो	समय० १२७
अण्णाणमया भावा	समय० १२६
अण्णाणमया भावा	समय० १३१
अण्णाणमोहिएहिं	धम्मर० १२८
अण्णाणमोहिदमदी	समय० २३
अण्णाणवाइभेया	अंगप० २-२७
अण्णाणवाहिदप्पे	छेदस० ३८
अण्णाणवाहिदप्पेहिं	छेदपिं० ६१
अण्णाणस्स स उदओ	समय० १३२
अण्णाणं मिच्छत्तं	चारि० पा० १४
अण्णाणाओ मोक्खं	भावसं० १६४
अण्णाणाणविणासो	धम्मर० १२७
अण्णाणादो णाणी	पंचत्थि० १६५
अण्णाणादो मोक्खो	दंसणसा० २१
अण्णाणि एवमाई-	वसु० सा० १८६
अण्णाणिणो वि जम्हा	वसु० सा० २२६

अण्णाणि य रइयाइं	भावसं० २५६
अण्णाणी कम्मफलं	समय० ३१६
अण्णाणीदो विसयवि-	रयण० ७४
अण्णाणी पुण रत्तो	समय० २१६
अण्णाणी वि य गोओ (वो)	भ० आरा० ७५६
अण्णाणी हु अणीसो	गो० क० ८८०
अण्णादमणुण्णादं	मूला० ८१३
अण्णायं पासंतो	सम्मइ० २-१३
अण्णा वि अत्थि अणुगुण-	छेदपिं० ३२३
अण्णु जि जीउ म चिंति तुहुं	पाहु० दो० ७४
अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय	परम० प० १-६५
अण्णु जि दंसणु अत्थि ण वि	परम० प० १-६४
अण्णु जि मुललिउ फुल्लियउ	सावय० दो० ३५
अण्णु णिरंजणु देउ पर	पाहु० दो० ७६
अण्णुण्णं खज्जंता	कत्ति० अणु० ४२
अण्णु तुहारउ णाणमउ	पाहु० दो० ५६
अण्णु म जाणहि अप्पणउ	पाहु० दो० ६
अण्णुवइट्ठइँ मण्णियइँ	सावय० दो २४
अण्णु वि दोसु हवेइ तसु	परम० प० २-४५
अण्णु वि दोसु हवेइ तसु	परम० प० २-४६
अण्णु वि बंधु वि तिहुयणहँ	परम० प० २-२०२
अण्णु वि भत्तिए जे मुणहिं	परम० प० २-२०५
अण्णे कलंबबालुय-	वसु० सा० १६६
अण्णे कुमरणमरणं	भावपा० ३२
अण्णे भणंति एदं	छेदपिं० ३६
अण्णे भणंति एदं	छेदपिं० १६०
अण्णे भणंति चाऊ	छेदपिं १०६
अण्णे भणंति जोगा	छेदपिं० १३०
अण्णे य पव्वदाणं	जंबू० प० ६-६६
अण्णे य सुदेवत्तसु-	वसु० सा० २६६
अण्णे वि एवमादी	छेदपिं० २६५
अण्णे विविहा भंगा	तिलो० प० ४-१०४६
अण्णे मगपदविठिया	तिलो० सा० ६८३
अण्णेसिं अण्णगुणो	दव्वस० णय० २२२
अण्णेसिं अत्तगुणा	णयच० ५०
अण्णेसिं वत्थूणं	अंगप० २-४८
अण्णेहि अणंतेहिं	तिलो० प० १-७५
अण्णेहि अविण्णादे	छेदपिं० १४६
अण्णो अण्णं सोयदि	बा० अणु० २२
अण्णा अण्ण सोयदि	मूला० ७०१
अण्णो उ पावउदए-	वसु० सा० १८६
अण्णो करेइ अण्णो	समय० ३४८
अण्णो करेदि कम्मं	दंसण० सा० १०
अण्णोण्णगुणिदरासी	गो० क० २४६
अण्णोण्णगुणेण तहा	जंबू० प० १२-५४
अण्णोण्णगुणेण तहा	जंबू प० १२-६३
अण्णोण्णगुणेण तहा	जंबू० प० १२-७७
अण्णोण्णणुकूलाओ	मूला० १८८
अण्णोण्णपवेसेण य	कत्ति० अणु० ११६
अण्णोण्णब्भत्थं पुण	गो० क० ४३३
अण्णोण्णब्भत्थेण य	जंबू० प० ४-२२८
अण्णोण्णब्भत्थेण य	जंबू० प० १२-५६
अण्णोण्णं रुज्जंता	कल्लाण० ७
अण्णोण्णं पविसंता	पंचत्थि० ७
अण्णोण्णं वज्झंते	तिलो० प० २-३२४
अण्णोण्णाणुगयाणं	सम्मइ० १-४७
अण्णोण्णाणुपवेसो	वसु० सा० ४१
अण्णोण्णुवयारेण य	गो० जी० ६०५
अण्णो वि को वि ण गुणो	भ० आरा० १६२४
अण्णो वि परस्स जो	वसु० सा० १०८
अण्हयदारोवरमण-	भ० आरा० ११८६
अतिबाला अतिवुड्ढा	मूला० ४६६
अतिहिस्स संविभागो	वसु० सा० २१८
अत्ता कुणदि सहावं	पंचत्थि० ६५
अत्तागम तच्चाइयहँ	सावय० दो० १६
अत्तागमतच्चाणं	णियम० ५
अत्तागमतच्चाणं	वसु० सा० ६
अत्ता चेव अहिंसा	भ० आरा० ८०३ (चे०)
अत्ता जस्सामुत्तो	समय० ४०५
अत्तादि अत्तमज्झं	णियम० २६
अत्ता दोसविमुक्को	वसु० सा० ७
अत्थइ सणी णवसये	तिलो० सा० ३३४
अत्थक्खरं च पदसं-	गो० जी० ३४७
अत्थणिमित्तमदिभयं	भ० आरा० ११२६
अत्थम्मि हिदे पुरिसो	भ० आरा० ८५६
अत्थस्स जीवियस्स य	मूला० ६८७
अत्थस्स संपओगो	मूला० १०२६
अत्थं अक्खणिवदिदं	पवयणसा० १-४०
अत्थं कामसरीरा	मूला० ७२५
अत्थं गओ गहो जो	आव० नि० ४-२८

अत्थंतरभूएहि य	सम्मइ० १-३६
अत्थं देक्खिय जाणदि	गो० क० १५
अत्थं देक्खिय जाणदि	कम्मप० १५
अत्थं बहुयं चिंतइ	जंबू० प० १३-७४
अत्थाओ अत्थंतर-	पंचसं० १-१२२
अत्थाण वंजणाण य	भ० आरा० १८८२
अत्थादो अत्थंतर-	गो० जी० ३१४
अत्थादो अत्थंतर-	कम्मप० ३८
अत्थि अणंता जीवा	मूला० १२०३
अत्थि अणंता जीवा	गो० जी० १९६
अत्थि अणंता जीवा	पंचसं० १-८५
अत्थि अणाईभूओ(दो)	कम्मप० २३
अत्थि अमुत्तं मुत्तं	पवयणसा० १-५३
अत्थि अविणासधम्मी	सम्मइ० ३-५५
अत्थि कसाया बलिया	आरा० सा० ३६
अत्थि जिणागमि कहियं	भावसं० २०२
अत्थि ण उब्भउ जरमरणु	परम० प० १-६६
अत्थि ण उब्भउ जरमरणु	पाहु० दो० ३५
अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु	परम० प० १-२१
अत्थि णवट्ठ य दुदुओ	गो० क० ७३८
अत्थित्तणिच्छिदस्स हि	पवयणसा० २-६०
अत्थित्तं णो मण्णदि	दव्वस० णय० ३०३
अत्थित्तं वत्थुत्तं	दव्वस० णय० १२
अत्थित्ताइसहावा	दव्वस० णय० ३५५
अत्थित्ताइसहावा	दव्वस० णय० ७०
अत्थि त्ति णत्थि उहयं	दव्वस० णय० २५७
अत्थि त्ति णत्थि णिच्चं	दव्वस० णय० ५८
अत्थि त्ति णत्थि दो वि य	दव्वस० णय० २५४
अत्थि त्ति णिव्वियप्पं	सम्मइ० १-३३
अत्थि त्ति पुणो भणिया	तच्चसा० २२
अत्थि त्ति य णत्थि त्ति य	पवयणसा० २-२३
अत्थि लवणंबुरासी	तिलो० प० ४-२३६६
अत्थि सदा अंधारं	तिलो० प० ४-४३५
अत्थि सदो परदो वि य	गो० क० ८७८
अत्थि सदो परदो वि य	अंगप० २-१८
अत्थि सदो परदो वि य	गो० क० ८७७
अत्थिसहावं दव्वं	दव्वस० णय० २५५
अत्थिसहावे सत्ता	दव्वस० णय० ६०
अत्थि हु अणाइभूओ(दो)	भावसं० ३२६
अत्थे संतम्हि सुहं	भ० आरा० ८६१
अत्थेसु जो ण मुज्झदि	पवयणसा० ३-४४
अत्थो खलु दव्वमओ	पवयणसा० २-१
अथ अप्पमत्तभंगा	पंचसं० ५-३६४
अथ अप्पमत्तविरदे	पंचसं० ५-३७६
अथ थीणगिद्धिकम्मं	कसाय० १२८ (७२)
अथ सुदमदिआवरणे	कसाय० २११ (१५८)
अथ सुदमदिउवजोगे	कसाय० १८९ (१३६)
अथिरअसुहदुब्भगया	मूला० १२३३
अथिरसुभगजसअरदी	लद्धिसा० १५
अथिरं परियणसयणं	कत्ति० अणु० ६
अथिरादावणअब्भो	छेदपिं० १३६
अथिरेण थिरा मइलेण	पाहु० दो० १९
अदंतवणमेगभत्ती	अंगप० १-१९
अदिकमणं वदिकमणं	मूला० १०२६
अदिकुणिमम सुहमण्णं	तिलो० प० २-३४५
अदिकोहलोहहीणा	जंबू० प० १०-५६
अदिगूहिदा वि दोसा	भ० आरा० १४३१
अदिभीदाण इमाणं	तिलो० प० ४-४७८
अदिमाणगव्विदा जे	तिलो० प० ४-२५०१
अदिमाणगव्विदा जे	जंबू प० १०-६३
अदिरेकस्स पमाणं	तिलो० प० ७-४७८
अदिरेकस्स पमाणं	तिलो० प० ७-४८४
अदिरेगस्स पमाणं	तिलो० प० ४-१२५७
अदिरेगस्स पमाणं	तिलो० प० ४-१२५६
अदिलहुयगे वि दोसे	भ० आरा० ६४५
अदिवड्ड चलं खिप्पं	भ० आरा० १७२६
अदिसयणे [हे] हि जुदो	जंबू० प० १३-१०२
अदिसयदाणं दत्तं	भ० आरा० ३२७
अदिसयमादसमुत्थं	तिलो० प० ६-६१
अदिसयरूवाण तहा	जंबू प० ३-१०६
अदिसयरूवेण जुदो	जंबू० प० १३-६६
अदिसंजदो वि दुज्जण-	भ० आरा० ३४८
अदिट्ठं अण्णायं	सम्मइ० २-१२
अद्धट्ठा कोडीओ	जंबू प० ४-८६
अद्धत्तेरस बारस	गो० जी० ११४
अद्धत्तेरस बारस	मूला० २२३
अद्धद्धकोससहिया	जंबू० प० ७-७७
अद्धद्धसिहरसहिया	जंबू० प० ६-१७४
अद्धमसणस्स सव्विं-	मूला० ४९१
अद्धविमाणच्छंदा	जंबू० प० ६-१०७

अप्पपवादं भणियं अंगप० २–८५
अप्पपसंसणकरणं कत्ति० अणु० ९२
अप्पपसंसं परिहर भ० आरा० ३५९
अप्पप्पणो सलागा छेदपिं० २४२
अप्पप्पवुत्तिसंचिय पंचसं० १–७५
अप्पबहुलम्हि भागे जंबू० प० ११–१४२
अप्पमहड्ढियमज्झिम- तिलो० प० ३–२४
अप्पमहड्ढियमज्झिम- तिलो० प० ३–२५
अप्पयदप्पयदचारी छेदपिं० १०४
अप्पविसिऊण गंगा तिलो० प० ४–१३०४
अप्पसमाणा दिट्ठा तच्चसा० ३७
अप्पसरूवहँ जो रमइ जोगसा० ८६
अप्पसरूवं पेच्छदि णियम० १६५
अप्पसरूवं वत्थुं कत्ति० अणु० ६६
अप्पसरूवालंवण णियम० ११६
अप्पसहावि परिट्ठियहँ परम०प० १–१००
अप्पसहावे जासु रइ परम० प० २–३६ (वा०)
अप्पसहावे णिरओ आरा० सा० १६
अप्पसहावे थक्को तच्चसा० ६२
अप्पहपरहपरंपरह परम०प० २–१५६ (वा०)
अप्पहँ जे वि विभिण्ण वढ परम०प० १–१०६
अप्पहँ णाणु परिच्चय वि परम०प० २–१५५
अप्पं बंधंतो बहु- गो० क० ४६६
अप्पं बंधिय कम्मं पंचस० ४–२३०
अप्पा अप्पइँ जो मुणइ जोगसा० ३४
अप्पा अप्पउ जइ मुणहि जोगसा० १२
अप्पा अप्पम्मि रओ भावपा० ३१
अप्पा अप्पम्मि रओ भावपा० ८३
अप्पा अप्पि परिट्ठियउ पाहु० दो० ६०
अप्पा अप्पु जि परु जि परु परम० प० १–६७
अप्पाउगरोगिदया भ० आरा० ७६८
अप्पा उवओगप्पा पवयणसा० २–६३
अप्पाए वि विभावियइं पाहु० दो० ७५
अप्पा कम्मविवज्जियउ परम० प० १–५२
अप्पा केवलणाणमउ पाहु० दो० ५६
अप्पा गुणमउ णिम्मलउ परम०प० २–३३
अप्पा गुरु ण वि सिस्सु ण वि परम०प० १–८६
अप्पा गोरउ किण्हु ण वि परम० प० १–८६
अप्पा चरित्तवंतो मोक्खपा० ६४
अप्पा जणियउ केण ण वि परम० प० १–५६

अप्पा जोइय सव्वगउ परम० प० १–५१
अप्पा झाणेण फुडं ढाढसी० २१
अप्पा झायहि णिम्मलउ परम० प० १–९७
अप्पा झायंताणं मोक्खपा० ७०
अप्पाण णाणझाणज्झ- रयण० १३५
अप्पाणमप्पणा रुं- समय० १८७
अप्पाणमयाणंता समय० ३६
अप्पाणमयाणंतो समय० २०२
अप्पाणं जो णिंदइ कत्ति० अणु० ११२
अप्पाणं झायंतो समय० १८६
अप्पाणं पि चवंतं कत्ति० अणु० २६
अप्पाणं पि ण पिच्छइ रयण० ८८
अप्पाणं पि य सरणं कत्ति० अणु० ३१
अप्पाणं मण्णंता तिलो० प० २–२६६
अप्पाणं विणिवायंति छेदपिं० २६
अप्पाणं विणु णाणं णियम० १७०
अप्पा णाऊण णरा मोक्खपा० ६७
अप्पा णाणपमाणं दव्वस० णय० ३८७
अप्पा णाणहँ गम्मु पर परम० प० १–१०७
अप्पा णाणु मुणेहि तुहुँ परम० प० १–१०५
अप्पा णिच्चोऽसंखिज्ज- समय० ३४२
अप्पा णिच्छरदि जहा भ० आरा० १४८२
अप्पा णिय-मणि णिम्मलउ परम० प० १–६८
अप्पा तिविहपयारो णाणसा० २६
अप्पा ति-विहु मुणेवि लहु परम० प० १–१२
अप्पा दमिदो लोएण भ० आरा० ६१
अप्पा दंसणणाणमउ पाहु० दो० ६६
अप्पा दंसणि जिणवरहँ परम० प० १–११८
अप्पा दंसणु एक्कु परु, जोगसा० १६
अप्पा दंसणु केवलु वि परम० प० १–६६
अप्पा दंसणु केवलु वि पाहु० दो० ६८
अप्पा दंसणु णाणुमुणि जोगसा० ८१
अप्पा दिणयरतेओ णाणसा० ३५
अप्पा परप्पयासो णियम० १६२
अप्पा परहँ ण मेलयउ परम० प० २–१५७
अप्पा परहँ ण मेलयउ पाहु० दो० ६५
अप्पा परहँ ण मेलयउ पाहु० दो० १८५
अप्पा परिणामप्पा पवयणसा० २–२३
अप्पा पंगुह अणुहरइ परम० प० १–६६
अप्पा पंडिउ मुक्खु ण वि परम० प० १–६१

अप्पा बंभणु वइसु ण वि	परम० प० १–८७
अप्पा वुज्झहि दव्वु तुहुँ	परम० प० १-४८
अप्पा वुज्झिउ णिच्चु जइ	पाहु० दो० २२
अप्पा माणुसु देउ ण वि	परम० प० १–९०
अप्पा मिल्लिवि एक्कु पर	पाहु० दो० ११७
अप्पा मिल्लिवि गुणणिलउ	पाहु० दो० ६७
अप्पा मिल्लिवि जगतिलउ	पाहु० दो० ७०
अप्पा मिल्लवि जगतिलउ	पाहु० दो० ७१
अप्पा मिल्लिचि णाणमउ	पाहु० दो० ३७
अप्पा मिल्लिवि णाणम उ	परम० प० २–७८
अप्पा मिल्लिवि णाणियहँ	परम० प० २–७७
अप्पा मेल्लिवि णाणमउ	परम० प० २–१५८
अप्पा मेल्लिवि णाणमउ	परम० प० १–७४
अप्पायत्तउ जं जि सुहु	पाहु० दो० २
अप्पायत्तउ जं जि सुहु	परम० प० २–१५४
अप्पायत्ता अज्झप्प-	भ० आरा० १२६६
अप्पा य वंचिओ तेण	भ० आरा० १४५३
अप्पा लद्धउ णाणमउ	परम० प० १–१५
अप्पा वंदउ खवणु ण वि	परम० प० १–८८
अप्पा संजमु सीलु तउ	परम० प० १–९३
अप्पामुएण मिस्सं	मूला० ४२८
अप्पासुगजलपक्खा-	छेदपिं० २६४
अप्पासुगे वसंतो	छेदस० ५८
अप्पासुयचरणयाणं	दंसणसा० २५
अप्पिट्ठपंतिचरिमो	गो० क० ६३६
अप्पि अप्पु मुणंतु जिउ	परम० प० १–७६
अप्पु करिज्जइ काइँ तसु	पाहु० दो० १३६
अप्पु पयासइ अप्पु परु	परम० प० १–१०१
अप्पु वि परु वि वियाणि-	परम० प० १–१०३
अप्पोवयारवेक्खं	गो० क० ६१
अप्पो वि तवो बहुगं	भ० आरा० १४५६
अप्पो वि परस्स गुणो	भ० आरा० ३७३
अप्फालिऊण हत्थं	छेदपिं० ४३
अबलत्ति होदि जं से	भ० आरा० ९८०
अब्बंभभासिणित्थी	छेदपिं० ४७
अब्बंभं भासंतो	छेदस० २६
अब्भरहिदादु पुव्वं	गो० क० १६
अब्भरहिदादु पुव्वं	कम्मप० १७
अब्भहियजादहासो	भ० आरा० ७११
अब्भंगादीहि विणा	भ० आरा १०४८

अब्भंतरदव्वमलं	तिलो० प० १–१३
अब्भंतरदिसिविदिसे	तिलो० सा० ५७६
अब्भंतरपरिमाणं	जंबू० प० ३–८६
अब्भंतरपरिसाए	तिलो० प० ८–२२८
अब्भंतरपरिसाए	तिलो० प० ८–२३१
अब्भंतरपरिसाए	तिलो० प० ४–१६७५
अब्भंतरपरिसाए	तिलो० प० ५–२१६
अब्भंतरबाहिरए	तिलो० प० ४–२७५१
अब्भंतरबाहिरए	भ० आरा० १११७
अब्भंतरबाहिरगे	भ० आरा० १४५०
अब्भंतरभागादो	तिलो० प० ५–२१
अब्भंतरभागेसुं	तिलो प० ५–१३६
अब्भंतरम्मि ताणं	तिलो० प० ४–७६०
अब्भंतरम्मि दीवा	तिलो० प० ४–२७१८
अब्भंतरम्मि भागे	तिलो० प० ४–२७४६
अब्भंतरम्मि भागे	तिलो प० ४–२५५३
अब्भंतरयणसाणू	तिलो० प० ४–४७
अब्भंतरराजीदो	तिलो० प० ८–६१०
अब्भंतरवीहीदो	तिलो० प० ७–१८४४
अब्भंतरवीहीदो	तिलो० प० ७–२६६
अब्भंतरवेदीदो	तिलो० प० ४–२४४८
अब्भंतरसोधीए	भ० आरा० १३४६
अब्भंतरसोधीए	भ० आरा० १६१५
अब्भंतरसोधीए	भ० आरा० १६१६
अब्भंतरसोहणओ	मूला० ४१२
अब्भंतरा य किच्चा	णाणसा० ४७
अब्भंतरिमो भागो	जंबू० प० ११–१०१
अब्भं तह हारिद्दं	जंबू० प० ११–२०६
अब्भावगासठाणा-	छेदस० ५५
अब्भावगाससयणं	भ० आरा० २२६
अब्भिंतरचित्ति वि मइलियइँ	पाहु० दो० ६१
अब्भिंतरबाहिरिया	रिट्ठस० १३
अब्भुज्जदचरियाए	भ० आरा० ५५६
अब्भुज्जदम्मि मरणे	भ० आरा० ६६०
अब्भुट्ठाणं च रादो	भ० आरा० २२७
अब्भुट्ठाणं अंजलि-	मूला० ५८१
अब्भुट्ठाणं किदिअम्मं-	मूला० ३७३
अब्भुट्ठाणं किदियम्मं	भ० आरा० ११६
अब्भुट्ठाणं गहणं	पयणसा० ३–६२
अब्भुट्ठाणं सण्णादि	मूला० ३८२

अब्भुट्ठेया समणा	पवयणसा० ३–६३
अब्भुदयकुसुमपउरं	जंबू० प० १३–१७२
अभयदाणु भयभीरुयहँ	सावय० दो० १४६
अभयपयाणं पढमं	भावसं० ४८६
अभयं च वाहियावय-	आय० ति० २–१४
अभव्वसिद्धे णत्थि हु	गो० क० ३५५
अभिचंदे तिदिवगदे	तिलो० प० ४–४७४
अभिजादितिसीदिसयं	तिलो० सा० ४०७
अभिजिणव सादिपुव्वुत्त-	तिलो० सा० ४३७
अभिजिस्स गगणखंडा	तिलो० सा० ३९८
अभिजिस्स चंदतारो	तिलो० प० ७–५२२
अभिजिस्स छस्सयाणि	तिलो० प० ७–४७३
अभिजी छच्चमुहुत्ते	तिलो० प० ७–५१७
अभिजी सवणधणिट्ठा	तिलो० प० ७–२८
अभिजुंजइ बहुभावे-	मूला० ६५
अभिजोगभावणाए	भ० आरा० १९६०
अभिणंदणादिया पंच-	भ० आरा० १५५५
अभिधाणेण असोगा	तिलो० प० ४–७८४
अभिभूददुब्भिगंधं	भ० आरा० १०४७
अभिमुहणियमियबोहण-	जंबू० प० १३–५६
अभियोगपुराहिंतो	तिलो० प० ४–१४४
अभियोगाणं अहिवइ-	तिलो० प० ८–२७७
अभिवंदिऊण सिरसा	पंचत्थि० १०५
अभिसुआ असुसिरा अघ-	भ० आरा० १९६६
अभिसेयसभासंगी-	तिलो० प० ८–४५३
अमणसरिसपक्खिहंगम-	तिलो० सा० २०५
अमणं ठिदिसत्तादो	लद्धिसा० ११६
अमणु अणिंदिउ णाणमउ	परम० प० १–३१
अमणुण्णजोगइट्ठवि-	मूला० ३९५
अमणुण्णसंपओगे	भ० आरा० १७०२
अमणुण्णे य मणुण्णे	चारि० पा० २८
अममं चउसीदिगुणं	तिलो० प० ४–३०२
अमयक्खरं णिवेसउ	भावसं० ४३०
अमयजलखीरसोमा-	आय० ति० १६–१५
अमयमहुखीरसप्पि-	जोग० भ० १७
अमयम्मि गए चंदे	आय० ति० १६–२०
अमरकओ उवसग्गो	आरा० सा० ५१
अमरणरणमिदचलणा	तिलो० प० ४–२२८२
अमराण वंदियाणं	दंसणपा० २५
अमरावदिपुरमज्झे	तिलो० सा० ५१५
अमरिंदणमियचलणं	जंबू० प० ८–१६७
अमरिंदणमियचलणो	जंबू० प० १३–१३६
अमरेहिं परिग्गहिदा	जंबू० प० १३–१२१
अमलियकोरंटणिभा	जंबू० प० २–७०
अमवस्साए उवही	तिलो० प० ४–२४४१
अमवस्से उवरिमदो	तिलो० प० ४–२४३७
अमिदमदी तद्देवी	तिलो० प० ४–४६०
अमुगम्मि इदो काले	भ० आरा० ५३२
अमुणियकज्जाकज्जे	तिलो० प० २–३००
अमुणियकाले पायं	आय० ति० १–२६
अमुणियतत्तेण इमं	आरा० सा० ११५
अमुयंतो सम्मत्तं	भ० आरा० १८४४
अम्मा-पिदु-सरिसो मे	भ० आरा० ७१३
अम्मिए जो परु सो जि परु	पाहु० दो० ५१
अम्मिय इहु मणु हत्थिया	पाहु० दो० १५५
अम्हहिं जाणिउ एक्कु जिणु	पाहु० दो० ४८
अम्हाणं के अवसा	तिलो० सा० ८५२
अम्हे वि खमा वेमो-	भ० आरा० ३७८
अयउवयरणे णट्ठे	छेदस० ६६
अयणाणि य रविससिणो	तिलो०प० ४–४६६
अय तंब तउस सस्सय	तिलो०प० २–१२
अयदत्तगब्भचरणा	जंबू० २–८५
अयदंडपासविक्कय	वसु० सा० २१५
अयदाचारो समणो	पवयण० सा० ३–१८
अयदादिसु सम्मत्तति-	भावति० ३२
अयदापुण्णे ण हि थी	गो० क० २८७
अयदुवसमगचउक्के	गो० क० ८४५
अयदे विदियकसाया	गो० क० ६७
अयदे विदियकसाया	गो० क० २६६
अयदो त्ति छ लेस्साओ	गो० जी० ५३१
अयदो त्ति हु अविरमणं	गो० जी० ६८८
अयसमणत्थं दुःखं	भ० आरा० ६०७
अयसाण भायणेण य	भावपा० ६६
अरई सोएणूणा	पंचसं० ४–२४६
अरई सोएणूणा	पंचसं० ५–२६
अर-कुंथु-संति-णाना	तिलो० प० ४–६०५
अरजिणवरिंदतित्थे	तिलो० प० ४–११७२
अरदी सोगे संढे	गो० क० १३०
अरदी सोगे संढे	कम्मप० १२६
अर-मल्लि-अंतराले	तिलो० प० ४–१४१३

*इसका पूर्वार्ध उपलब्ध न होनेसे उत्तरार्ध दिया है।

अह गुणपज्जयवंतं दव्वस० णय० २७८
अह घर करि दाणेण सहुँ सुप्प० दो० ५
अह चुलसीदी पल्लट्ठ- तिलो० प० ६-८६
अह छुहिऊण सूअरं (?) भावसं० २२५
अह जइ सत्तिविहीणो छेदपिं० १७६
अह जाणओ उ भावो समय० ३४४
अह जीए संधीए रिट्ठस० १
अह जीवो पयडी तह समय० ३३०
अह जो जस्स य भत्तो रिट्ठस० ११६
अह ढिंकुलियाझाणं भावसं० ३८६
अह ण पयडीण जीवो समय० ३३१
अह णियणियणयरेसुं तिलो० प० ४-१३६८
अह णीराओ देहो कत्ति० अणु० ५२
अह णीराओ होदि हु कत्ति० अणु० २६३
अह तिरियउड्ढलोए भ० आरा० १७१४
अह तिरियउड्ढलोए जंबू० प० १३-१५३
अह तिव्ववेयणाए आरा० सा० ४२
अह तीसकोडिलक्खे तिलो० प० ४-५५४
अह तेउपउमसुक्कं भ० आरा० १६२३
अह तेव वट्ट तत्तं वसु० सा० १३६
अह थीणगिद्धि-णिद्दा- कम्मप० ४८
अह दक्खिणभाएणं तिलो० प० ४-१३४८
अह दक्खिणभाएणं तिलो० प० ४-१३५४
अह दे अप्पणो कोहो समय० ११५
अह देसो सब्भावे सम्मइ० १-३७
अह धणसहिओ होदि कत्ति० अणु० २६२
अह पउमचक्कवट्टी तिलो० प० ४-१२८३
अह पडिकमणं ण सुयं छेदपिं० ११३
अह पंचमवेदीओ तिलो० प० ४-८६२
अह पिच्छइ णियछायं रिट्ठस० ७६
अह पुण अप्पा ण वि मुणहि जोगसा० १५
अह पुण अप्पा णिच्छदि भावपा० ८४
अह पुण अप्पा णिच्छदि सुत्तपा० १५
अह पुण पुव्वपयुत्तो सम्मइ० २-२१
अह भरहप्पमुहाणं तिलो० प० ४-१२०१
अह भुंजइ परमहिलं वसु० सा० ११८
अह मज्झिमम्मि आए आय० ति० १८-२५
अह महमहंति णिज्जइ जंबू० प० ६-११०
अह माणिपुण्णसेलम- तिलो० प० ६-४२
अह माणिपुण्णसेलम- तिलो० सा० २६५
अहमिक्को खलु सुद्धो समय० ३८
अहमिक्को खलु सुद्धो समय० ७३
अहमिंदा जह देवा गो० जी० १६३
अहमिंदा जह देवा पंचसं० १-६५
अहमिंदा जे देवा तिलो० प० ४-७०७
अहमिंदा वि य देवा जंबू० प० ४-२७१
अहमीसजुत्तदिट्ठे आय० ति० १८-२१
अहमेक्को खलु परमो दव्वस० णय० ३६३
अहमेक्को खलु सुद्धो तिलो० प० ६-२६
अहमेदं एदमहं समय० २०
अहरणहा तह दसणा रिट्ठस० २७
अह राजइ उत्तर सर- आय० ति० १४३
अह लहइ अज्जवंतं कत्ति० अणु० २६१
अहव फुइ(ड) फुलिंगेहिं रिट्ठस० ६०
अहव मयंकविहीणं रिट्ठस० ६६
अहव मुणंतो छंडइ भावसं० ६०७
अहव सुदिपाणयं से भ० आरा० ४४५
अहवा अप्पं आसा- भ० आरा० १२६०
अहवा आगम-णोआ- वसु० सा० ४५१
अहवा आगम-णोआ- वसु० सा० ४७७
अहवा आणदजुगले तिलो० प० ८-१८५
अहवा आदिममज्झिम- तिलो० प० ५-२४३
अहवा आयामे पुण जंबू० प० ५-६
अहवा इच्छागुणिदं तिलो० प० ४-२०३३
अहवा एयं वयणं भावसं० ६६
अहवा एसो जीवो समय० ३२६
अहवा एसो धम्मो भावसं० ४१
अहवा कारणभूदा दव्वस० णय० १६१
अहवा किं कुणइ पुरा- वसु० सा० १६६
अहवा खिप्पउ सेहा भावसं० ४३५
अहवा गिरिवरिसाणं तिलो० प० ४-१७४६
अहवा चारित्तारा- भ० आरा० ८
अहवा जत्ताजत्ते छेदस० १४
अहवा जइ असमत्थो भावसं० ४६२
अहवा जइ कलसहिओ भावसं० २३६
अहवा जइ भणइ इयं भावसं० २४६
अहवा जह कहव पुणो भावसं० १६६
अहवा जं उब्भावेदि भ० आरा० ८२७
अहवा जिणागमं पुत्थ- वसु० सा० ३६२
अहवा णादाराणं अंगप० १-४४

अहवा णाहि च वियप्पि-	वसु० सा० ४६०
अहवा णियं विढत्तं	भावसं० ४८१
अहवा णिलाउदेसे	वसु० सा० ४६६
अहवा तण्हादिपरी-	भ० आरा० १५०१
अहवा तरुणी महिला	भावसं० ५८४
अहवा तल्लिच्छाइं	भ० आरा० १२६२
अहवा तिगुणियमज्झिम-	तिलो० प० ५-२४४
अहवा दंसणणाणच-	भ० आरा० १६७
अहवा दुक्खप्पमुहं	तिलो० प० ४-१०८५
अहवा दुक्खप्पहुदिं	तिलो० प० ४-१०८१
अहवा दुक्खप्पहुदिं	तिलो० प० ४-१०७६
अहवा दुक्खादीणं	तिलो० प० ४-१०८३
अहवा देवो होदि हु	कत्ति० अणु० २६८
अहवा दोदो कोसा	तिलो० प० ४-१६६८
अहवा पढमे पक्खे	छेदपिं० २३२
अहवा पयत्त-अपयत्त-	छेदपिं० १६
अहवा पसिद्धवयणं	भावसं० ५६
अहवा बहुभेयगयं	तिलो० प० १-१४
अहवा बहुवाहीहिं	तिलो० प० ४-१०७३
अहवा बंभसरूवं	कत्ति० अणु० २३४
अहवा मण्णसि मज्झं	समय० ३४१
अहवा मंगं सोक्खं	तिलो० प० १-१५
अहवा रुंदपमाणं	तिलो० प० ६-१०
अहवा वत्थुसहाओ	भावसं० ३७३
अहवावलिगदवरठिदि-	लद्धिसा० ६५
अहवा वासणदो यं	दव्वस० णय० ४४
अहवा वीरे सिद्धे	तिलो० प० ४-१४६५
अहवा समक्ख-असमक्ख-	छेदपिं० ४४
अहवा समाधिहेदुं	भ० आरा० ७०८
अहवा सयबुद्धीए	भ० आरा० ८२५
अहवा सरीरसेज्जा	भ० आरा० १६६
अहवा ससहरबिंबं	तिलो० प० ७-२१६
अहवा सिद्धे सद्दे	णयच० ४१
अहवा सिद्धे सद्दे	दव्वस० णय० २१३
अहवा सो परमप्पो	धम्मर० ६६
अहवा होइ विणासो	भ० आरा० ११५४
अह विक्किरिओ रइओ	भावसं० २२०
अह विण्णविंति मंती	तिलो०प० ४-१४२१
अह वि दुलदा लदा वि य	जंबू० प० १३-१४
अह वेदगसद्दिट्ठी	वसु० सा० ५१६
अहवोत्तरइंदेसुं	तिलो० प० ३-१४६
अह सत्तू पावेहिं	आय० ति० ७-३
अह सयमप्पा परिणमदि	समय० १२४
अह सयमेव हि परिणदि	समय० ११६
अह संति-कुंथु-अर-जिण-	तिलो०प० ४-१२८२
अह संसारत्थाणं	समय० ६३
अह सावसेसकम्मा	भ० आरा० १६३०
अह साहियाण कक्की	तिलो० प० ४-१५०६
अह सुट्ठिय सयलजग सि-	पंचसं० ५-५०१
अह सो वि पच्छिमाओ	आय० ति० १३-६
अह सो सुरिंदहत्थी	जंबू० प० ४-२१६
अह सोह (इ) पच्छिमाओ	आय० ति० १३-५
अह हरु पुहु हु अहव हरि	सुप्प० दो० ५७
अह होइ सव्वसरिओ	आय० ति० ११-८
अह होदि सीलजुत्तो	कत्ति० अणु० ३६४
अहिधूमिए कुसीला	आय० ति० ६-४
अहिधूमिएसु मंदं	आय० ति० १०-२१
अहिधूमिय पावजुया	आय० ति० १३-४
अहिमंतिऊण देहं	रिट्ठस० ८६
अहिमंतिऊण सुत्तं	रिट्ठस० ६३
अहिमंतिय मंतेणं	रिट्ठस० १५०
अहिमंतिय सयवारं	रिट्ठस० १५२
अहिमाणएण णिवदिम्मि-	भ० आरा० २०७५
अहिमुहणियमियबोहण-	प० जंबू० १३-५६
अहिमुहणियमियबोहण-	गो० जी० ३०५
अहिमुहणियमियबोहण-	पंचसं० १-१२१
अहिमुहणियमियबोहण-	कम्मप० ३७
अहिमुहचक्कतुरियगओ	आय० ति० २-१०
अहियंकादडवीसं	तिलो० सा० ४३१
अहियागमणणिमित्तं	गो० क० ६५०
अहियारो पाहुडयं	गो० जी० ३४०
अहिवल्लि माघनन्दि य	णंदी० पट्टा १६
अहिसिरमंडवभूमी	तिलो० प० ४-८५०
अहिसेयपट्टसाला	जंबू० प० १-३२
अहिसेयफलेण णरो	वसु० सा० ४६१
अहिसेहगिहं देवा	धम्मर० १७०
अहिंसादीणि उत्ताणि	चारि० भ० ५
अहो धम्ममहोधम्मं	कल्लाणा० ५३
अंकमुहसंठिदाइं	जंबू० प० ११-१०
अंकं अंकपहं मणि-	तिलो० प० ५-१८३

अंकायारा विजया	तिलो० प० ४–२५५२
अंकायारा विजया	तिलो० प० ४–२७६४
अंगइँ सुहुमइँ वादरइँ	परम० प० २–१०३
अंगदछुरियाखग्गा	तिलो० प० ४–३६३
अंगसुदे य वहुविधे	भ० आरा० ४६६
अंगाइं दस य दुण्णि य	भावपा० ५२
अंगारय सिय ससिसुय-	आय० ति० ४–११
अंगुल असंखगुणिदा	गो० क० ३८६
अंगुल असंखभागप्प-	गो० क० २३०
अंगुलअसंखभागं	गो० क० ४३४
अंगुलअसंखभागं	मूला० १०८७
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० ३६०
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० ४००
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० ४०८
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० १७१
अंगुलअसंखभागं	गो० जी० ३६८
अंगुलअसंखभागे	गो० जी० ३२५
अंगुलअसंखभागो	कत्ति अणु० १६६
अंगुलअसंखभागो	गो० जी० ६६६
अंगुलमावलियाए	गो० जी० ४०३
अंगुलिणहावलेहणि-	मूला० ३३
अंगुलि तह आलत्तय	रिट्ठस० १४८
अंगे पासं किच्चा	भावसं० ४३६
अंगोवंगट्ठीणं	तिलो० प० २–३३६
अंगोवंगुदयादो	गो० जी० २२८
अंजणकवज्जधाउक-	तिलो० सा० २८३
अंजणगिरिसरिसाणं	जंबू० प० ७–६५
अंजणदहिकणयणिहा	तिलो० सा० ६६८
अंजणदहिमुहरइयर-	जंबू० प० ३–३७
अंजणपहुदी सत्त य-	तिलो० प० ८–१३६
अंजणमूलं अंकं	तिलो० प० २–१७
अंजणमूलंकणिहो	तिलो० प० ४–२७६४
अंजणमूलिय अंका	तिलो० सा० १४८
अंजलिपुडेण ठिच्चा	मूला० ३४
अंडजपोतजजरजा	पंचसं० १–७३
अंडेसु पवड्ढंता	पंचत्थि० ११३
अंतज्जोई कमलं	णाणसा० ५०
अंतयडं वरमंगं	अंगप० १–४८
अंतरकडपढमादो	लद्धिसा० ८७
अंतरकदपढमादो	लद्धिसा० २५०
अंतरकदपढमादो	लद्धिसा० ४५७
अंतरकदा दु छण्णो	लद्धिसा० २६२
अंतरगा तदसंखेज्ज-	गो० क० २५५
अंतरतच्चं जीवो	कत्ति० अणु० २०५
अंतरदीवमणुस्सा	तिलो० प० ४–२६२८
अंतरदीवे मणुया	मूला० १२१२
अंतरपढमं पत्ते	लद्धिसा० ८६
अंतरपढमठिदि त्ति य	लद्धिसा० ५८२
अंतरपढमठिदि त्ति य	लद्धिसा० ५८३
अंतरपढमठिदि त्ति य	लद्धिसा० ५८५
अंतरपढमठिदि त्ति य	लद्धिसा० ५८६
अंतरपढमा दु कमे	लद्धिसा० २४८
अंतरपढमे अण्णो	लद्धिसा० २४२
अंतरवाहिरजप्पे	णियमसा० १५०
अंतरभावप्पवहु-	गो० जी० ४६१
अंतरमवरुक्कस्सं	गो० जी० ५५२
अंतरमुवरी वि पुणो	गो० क० २३६
अंतरमुहुत्तकालो	भावसं० ६७८
अंतरमुहुत्तमज्झे	भावसं० ४०६
अंतररहियं वरिसइ	जंबू० प० ७–१३८
अंतरहेदुक्कीरिद-	लद्धिसा० २४३
अंतरायस्स कोहाई	पंचसं० ४–२११
अंतरिए अंतरियं	आय० ति० २–२६
अंताइसूइजोग्गं	तिलो० सा० ३१५
अंतादिमज्झहीणं	जंबू० प० १३–१६
अंतादिमज्झहीणं	तिलो० प० १–६८
अंतिमए छट्टंसण-	पंचसं० ४–४६५
अंतिमखंधंताई	तिलो० प० ४–६७०
अंतिमजिणणिव्वाणे	णंदी० पट्टा० १
अंतिमजिणणिव्वाणे	णंदी० पट्टा० १०
अंतिमठाणं सुहुमे	गो० क० ५४८
अंतिमतियसंहडण-	गो० क० ३२
अंतिमतियसंहडण-	कम्मप० ६०
अंतिमरसखंडुक्की-	लद्धिसा० ६३
अंतिमरसखंडुक्की-	लद्धिसा० १७६
अंतिमरुंदपमाणं	तिलो० प० ५–२५३
अंतिमविक्खंभद्धं	तिलो० प० ५–२६३
अंतु वि गंतु वि तिहुवणहँ	परम०प०२–२०३(वा०)
अंते अंकसुहा खलु	जंबू० प० ११–५
अंते टंकच्छिण्णो	तिलो० सा० ६३७

आ

आवासयपरिहीणो	छेदपिं० १२३
आवासयपरिहीणो	छेदस० ४८
आवासयं च कुणदे	भ० आरा० २०५५
आवासयं तु आवा-	मूला० ६८५
आवासयाइं कम्मं	भावसं० ६१०
आवासया पि मौणेण	छेदस० ७६
आवासया हु भवअद्धा-	गो० जी० २५०
आवासं जइ इच्छसि	णियमसा० १४७
आवाहिऊण देवे	भावसं० ४६६
आवाहिऊण संघं	भावसं० १४६
आवेसणा सरीरे	मूला० ५०८
आसणठाणं किच्चा	भावसं ४२८
आसणे आसणत्थं	मूला० ५६८
आसण्णभव्वजीवो	दव्वस० णय० ३१६
आसत्तयमेक्कसयं	तिलो० प० ४-१२१२
आसयवसेण एवं	भ० आरा० ३५६
आसवइ जं तु कम्मं	भावसं० ३२१
आसवइ सुहेण सुहं	भावसं० ३२०
आसवदि जं तु कम्मं	मूला० २४०
आसवदि जेण कम्मं	दव्वसं० २६
आसवदि जेण पुण्णं	पंचत्थि० १५७
आसव-बंधण-संवर-	दव्वसं० २८
आसव-संवर-णिज्जर-	भ० आरा० ३८
आसव-संवर-दव्वं	गो० जी० ६४३
आसवहेदू जीवो	बा० अणु० ५८
आसवहेदू य तहा	मोक्खपा० ५५
आसाए विप्पमुक्कस्स	मूला० ६८८
आसागिरिदुग्गाणि य	भ० आरा० १३०४
आसाढ कत्तिए फग्गु-	वसु० सा० ३५३
आसाढ कत्तिए फग्गु-	वसु० सा० ५०७
आसाढपुण्णमीए	तिलो० प० ७-५३१
आसाढपुण्णमीए	तिलो० सा० ४११
आसाढवहुलदसमी-	तिलो० प० ४-६६३
आसाढे दुपदा छाया	मूला० २७२
आसाढे संवच्छर-	छेदपिं० ११५
आसादित्ता कोई	भ० आरा० ६६२
आसादिदा तदो होंति	भ० आरा० १६३४
आसादे चउभंगा	पंचसं० ५-३२५
आसायछिन्नपयडी	पंचसं० ४-३२७
आसायछिन्नपयडी	पंचसं० ४-३४३
आसायछिन्नपयडी	पंचसं० ४-३४८
आसायछिन्नपयडी	पंचसं० ४-३५६
आसायपुण्णा ताओ	पंचसं० ४-३७६
आसि उज्जेणिणयरे	भावसं० १३८
आसि मम पुव्वमेदं	समय० २१
आसी अणंतखुत्तो	भ० आरा० १६०६
आसी कुमारसेणो	दंसणसा० ३३
आसीदि होइ संता	पंचसं० ५-२११
आसीय महाजुद्धाइं	भ० आरा० ६४२
आसीवादादिं ससि-	तिलो० सा० ८००
आसीविसेण अवरुद्धस्स	भ० आरा० ८६२
आसीविसोव्व कुविदो	भ० आरा० ६४६
आसी ससमय-परसमय-	वसु०सा० ५४२
आसुक्कारे मरणे	भ० आरा० २०८३
आ-सोधम्मादावं	पंचसं० ४-४७०
आहट्टिदूण चिरमवि	भ० आरा० ६२५
आहरइ अणेण मुणी	पंचसं० १-६७
आहरइ सरीराणं	पंचसं० १-१७६
आहरणगिहम्मि तओ	वसु० सा० ५०२
आहरणवासियाहिं	वसु० सा० ४०४
आहरणहेमरयणं	णयच० ७४
आहरणहेमरयणा	दव्वस० णय० २४४
आहदि अणेण मुणी	गो० जी० २३८
आहदि सरीराणं	गो० जी० ६६४
आहार-अभयदाणं	जंबू० प० २-१४६
आहारकायजोगा	गो० जी० २६६
आहारगा दु देवे	गो० क० ५४२
आहार-गिद्धि-रहिओ	कत्ति० अणु० ४४१
आहारजुयलजोगं	पंचसं० ४-१६२
आहारणिमित्तं किर	मूला० ८२
आहारत्थं काऊण	भ० आरा० १६५१
आहारत्थं पुरिसो	भ० आरा० १६४६
आहारत्थं मज्जा-	भ० आरा० १६४७
आहारत्थं हिंसइ	भ० आरा० १६४२
आहारदंसणेण य	गो० जी० १३४
अहारदंसणेण य	पंचसं० १-५२
आहारदाणणिरदा	तिलो० प० ४-३६७
आहारदाणणिरदा	जंबू० प० २-१४४
आहारदायगाणं	मूला० ४५६
आहारदुगविहीणा	पंचसं० ४-७८

इ

इगतिदुतिपंच कमसो	तिलो० प० ७–३१३
इगतीस-उवहि-उवमा	तिलो० प० २–२१०
इगतीमलक्खजोयण-	तिलो० प० ८–३६
इगतीस सत्त चउ दुग	तिलो० प० ८–१५६
इगतीसं च सदाइं	जंबू० प० ४–३०
इगतीसं च सहस्सा	जंबू० प० ४–३५
इगतीसं च सहस्सा	जंबू० प० ४–३६
इगतीमं लक्खाणि	तिलो० प० ८–१६६
इगदालुत्तरसगसय-	तिलो० प० ८–७३
इग दुग चउ अड छत्तिय	तिलो० प० ४–२६१३
इग पण दो इगि छच्चउ	तिलो० प० ४–२८८३
इगपणसगअडपणपण-	तिलो० प० ४–२६४८
इगपल्लपमाणाऊ	तिलो० प० ४–१०६१
इगपुव्वलक्खसमधिय-	तिलो० प० ४–५६१
इगलक्खं चालीसं	तिलो० प० ४–११०४
इगविगतिगचउरिंदिय-	भ० आरा० २०६६
इगविगतियचउपंचि-	भ० आरा० १७७२
इगविगलिंदियजणिदे	आस० ति० ३७
इगविजयं मज्झत्थं	तिलो० प० ४–२३००
इगवीस चदुर सदिया	मूला० १०२३
इगवीसपुव्वलक्खा	तिलो० प० ४–५६३
इगवीसमोहखवणुव-	गो० जी० ४७
इगवीसलक्खवच्छर-	तिलो० प० ४–१२६०
इगवीसवस्सलक्खा	तिलो० प० ४–६५१
इगवीससहस्साइं	तिलो० प० ४–१४०६
इगवीससहस्साइं	तिलो० प० ४–६०१
इगवीससहस्साणि	तिलो० प० ४–३१८
इगवासं चिय रिक्खे	रिट्ठस० २५०
इगवीसं तु सहावा	दव्वस० णय० ६६
इगवीसं तु सहावा	दव्वस० णय० ६८
इगवीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८–५२
इगसट्ठियभागकदे	तिलो० प० ७–६८
इगसट्ठी अहिएणं	तिलो० प० ८–७
इगसट्ठीए गुणिदा	तिलो० प० ७–११२
इगसयअठारवासे	णंदी० पट्टा० १७
इगसयजुदं सहस्सं	तिलो० प० ४–११५५
इगसयरहिदसहस्सं	तिलो० प० ४–११५६
इगहत्तरिजुत्ताइं	तिलो० प० ४–१६६६
इगि अड अट्ठिगि अट्ठिगि-	गो० क० ५७७
इगिअडपहुदि केवल-	तिलो० सा० ६०

इगिकोसोदयरुंदा	तिलो० प० ४–२२६
इगिगमणे पणणउदिं	तिलो० सा० ६१५
इगि चउ पण छस्सत्त य	पंचसं० ५–११०
इगिचादि केवलंतं	तिलो० सा० ५८
इगिछक्कडणवचीसत्ती-	गो० क० ७०८
इगिछक्कडणववीसं	गो० क० ७१६
इगिछव्वीसं च तहा	पंचसं० ५–४२६
इगिजाइथावरादा-	पंचसं० ४–३६१
इगिठाणफड्ढयाओ	गो० क० २२७
इगिठाणफड्ढयाओ	गो० क० २५०
इगिणउदीए तीसं	गो० क० ७७१
इगिणभपणचउअडदुग-	तिलो०प० ४–२६७२
इगि णव णव सगिगिगिदुग-	तिलो० सा० २८
इगिणवतियछक्कदुदुग-	तिलो० प० ४–२६६५
इगिणवदीए वंधा	गो० क० ७५६
इगितीसवंधगेसु य	पंचसं० ५–२४७
इगितीसवंधठाणे	गो० क० ७७४
इगितीस सत्त चत्ता-	बा० अणु० ४१
इगितीस सत्त चत्ता-	तिलो० सा० ४६२
इगितीसंता वंधइ	पंचसं० ५–२५५
इगितीसा णवयसदा	जंबू० प० ३–१६
इगितीसे तीसुदओ	गो० क० ७४४
इगिदालसयसहस्सा	जंबू० प० ११–१२
इगिदालं च सयाइं	गो० क० ८७०
इगिदालीससहस्सा	जंबू० प० ११–७०
इगि-दुग-तिग-संजोए	पंचसं० ४–१७६
इगिदुगपंचेयारं	गो० जी० ३५८
इगिदुतिचउरक्खेसु य	सिद्धंतसा० ६६
इगिपणसत्तावीसं	पंचसं० ५–२४४
इगि पंच तिण्णि पंच य	पंचसं० ५–२५७
इगि पंच तिण्णि पंच य	पंचसं० ५–५१
इगिपंचेंदियथावर-	गो० क० १३१
इगिपंचेंदियथावर-	कम्मप० १२७
इगिपंतिगदं पुध पुध	गो० क० ६३५
इगिपुरिसे वत्तीसं	गो० जी० २७७
इगिवंधट्ठाणेण दु	गो० क० ७६८
इगिविगलथावरचऊ	गो० क० २८८
इगिविगलथावरादव-	पंचसं० ४–३७४
इगिविगलथावरादव-	पंचसं० ४–३७७
इगिविगलवंधठाणं	गो० क० ७१५

इट्ठाओ कंमाओ	जंबू० प० ११–२६३
इट्ठाणिट्ठवियोगज्जो-	गो० क० ७७
इट्ठाणि पियाणि तहा	जंबू० प० ४–२४८
इट्ठिंदियप्पमाणं	तिलो० प० २–५८
इट्ठे इच्छाकारो	मूला० १२६
इट्ठेसु अणिट्ठेसु य	भ० आरा० १६८८
इट्ठावहिविक्खंभे	तिलो० प० ५–२५८
इडपिंगलाण पवणं	णाणसा० ४६
इड्ढिमतुलं विउव्विय	भावपा० १२८
इड्ढिमदुलं विउव्विय	भ० आरा० २०४६
इणमण्णं जीवादो	समय० २८
इणससितारासावद-	तिलो० सा० ७६६
इतिरियं जावजीवं	मूला० ३४७
इतिरिया जावकालिय	छेदस० ६२
इत्तिरियं सव्वयणं	भ० आरा० १७७
इत्तो उवरिं सग सग	आस० ति० १४
इत्थिकहा अत्थकहा	मूला० ८५५
इत्थिणउंसयवेदे	पंचसं० ४–८६
इत्थिणउंसयवेदे	सिद्धंतसा० ४६
इत्थिणउंसयवेयं	पंचसं० ३–४७२
इत्थिपुरिसेसु णेया	पंचसं० ४–१२
इत्थिविसयाभिलासो	भ० आरा० ८७६
इत्थिसंसग्गविजुदे	मूला० १०३२
इत्थीगिहत्थवग्गे	भावसं० ८७
इत्थीणं पुण दिक्खा	दंसणसा० ३५
इत्थीपुरिसणउंसय-	पंचसं० १–१०४
इत्थीपुरिसणउंसय-	मूला० १२२६
इत्थीपुंवेददुगं	आस० ति० २६
इत्थीपुंसादिगच्छंति	मूला० ३०६
इत्थी वि य जं लिंगं	भ० आरा० ८१
इत्थीवेदे वि तहा	भावति० ६१
इत्थी-संसग्ग-पणिद-	मूला० १०२८
इत्थु ण लेवउ पंडियहिं	परम० प० २–२११
इत्थेव तिण्णि भावा	भावसं० ६००
इदि अट्ठारससेढी	तिलो० सा० ६८४
इदि अब्भंतरतडदो	तिलो० सा० ३५६
इदि उसहेण वि भणियं	अंगप० ४१
इदि एसो जिणधम्मो	कत्ति० अणु० ४०७
इदि गुणमग्गणठाणे	भावति० ११६
इदि चदुबंधक्खवगे	गो० क० ५१५
इदि जोयण एगारह-	तिलो० सा० ६१४
इदि णाणभूसपट्टे	अंगप० २–११७
इदि णामप्पयडीओ	कम्मप० १०२
इदि णिच्छयववहारं	बा० अणु० ६१
इदि णेमिचंदमुणिणा	तिलो० सा० १०१८
इदि तं पमाणविसयं	दव्वस० णय० २४८
इदि पडिसहस्सवस्सं	तिलो० सा० ८२७
इदि पंचहिं पंचहदा	भ० आरा० १३५४
इदि पुव्वुत्ता धम्मा	दव्वस० णय० ७३
इदि बारहअंगाणं	अंगप० १–७४
इदि मग्गणासु जोगो	आस० ति० ६१
इदि मोहुदया मिस्से	पंचसं० ५–३०३
इदि वंदिय पंचगुरू	भावति० २
इदि सज्जणपुज्जं रय-	रयणसा० १६७
इदि सल्लिहियसरीरो	रिट्ठस० १४
इदि संढं संकामिय	लद्धिसा० ४४०
इधइं परलोगे वा	भ० आरा० १२७२
इधइं परलोगे वा	भ० आरा० १८०४
इय अट्ठगुणो देओ	धम्मर० १७८
इय अट्ठगुणो वेदो	भ० आरा० ५०७
इय अट्ठभेयअवण	भावसं० ४७८
इय अण्णाणी पुरिसा	भावसं० १६०
इय अण्णोण्णा सत्ता	तिलो० प० ४–३५५
इय अप्पपरिस्समसग-	भ० आरा० ४५७
इय अवराइं बहुसो	वसु० सा० ७७
इय अव्वत्तं जइ सा-	भ० आरा० ५६१
इय आय-पायअक्खर-	आय० ति० २२–१
इय आलंबणमणुपेहा-	भ० आरा० १८७४
इय इंदणंदि जोइंद-	छेदपिं० ३६२
इय उजभावमुवगदो	भ० आरा० ५५३
इय उत्तरम्मि भरहे	तिलो० प० ४–१३५
इय उप्पत्ती कहिया	भावसं० १६०
इय उवएसं सारं	मोक्खपा० ४०
इय एक्केक्ककलाओ	तिलो० प० ७–२१३
इय एदे पंचविधा	भ० आरा० १२१५
इय एयंतविणडिओ	भावसं० ७०
इय एयंतं कहियं	भावसं० ७२
इय एरिसमाहारं	वसु० सा० ३१७
इय एरिसम्मि सुण्णे	आरा० सा० ८६
इय एवं जो बुज्झइ	वचसा० ३६

इरियादाणणिखेवे	भ० आरा० ६६
इरिया-भासा-एसणा-	मूला० १०
इरिया-भासा-एसण-	चारि० पा० ३६
इरियावहपडिवण्णो	मूला० ३०३
इरियावहमाउत्ता	पंचसं० ४-२२३
इलणामा सुरदेवी	तिलो० प० ५-१५५
इलयाइथावराणं	भावसं० ३५२
इसरगव्वु मां उरि घटहिं	सुप्प० दो० ४७
इसुगारगिरिंदाणं	तिलो० प० ४-२५४१
इसुदलजुदविक्खंभो	तिलो० सा० ७६६
इसुपादगुणिदजीवा	तिलो० प० ४-२३७२
इसुरहिदं विक्खंभं	जंवू० प० २-२३
इसुवग्गं चउगुणिदं	तिलो० प० ४-२५६६
इसुवग्गं चउगुणिदं	तिलो० प० ४-२८१५
इसुवग्गं चउगुणिदं	तिलो० सा० ७६१
इसुवग्गं छहगुणिदं	जंवू० प० ६-१०
इसुवग्गं विगिहि गुणं	जंवू० प० ६-७
इसुहीणं विक्खंभं	तिलो० सा० ७६०
इह इंदरायसिस्सो	तिलो० सा० ८४८
इह एव मिच्छदिट्ठी	दव्वस० णय० १३२
इह केई आइरिया	तिलो० प० ४-७१७
इह खेत्ते जह मणुआ	तिलो० प० २-३५०
इह खेत्ते वेरग्गं	तिलो० प० ८-६४५
इह जाहि वाहिया वि य	गो० जी० १३३
इह जाहि बाहिया वि य	पंचसं० १-५१
इह णियसुवित्तवीयं	रयणसा० १८
इह-परलोइयदुक्खा-	भ० आरा० १६४८
इह-परलोके जदि दे	भ० आरा० ११०७
इह-परलोयणिरीहो	कत्ति० अणु० ३६५
इह-परलोयत्ताणं	मूला० ५३
इह-परलोयसुहाणं	कत्ति० अणु० ४००
इह भिण्णसंधिगंठी	तिलो० सा० ३६६
इह य परत्त य लोए	भ० आरा० १४१८
इह य परत्त य लोए	भ० आरा० १४२६
इह य परत्त य लोए	भ० आरा० १४३०
इह य परत्त य लोए	भ० आरा० १४३५
इह य परत्त य लोए	भ० आरा० १४३८
इह य परत्त य लोए	भ० आरा० १४५८
इह रयणसक्करावा-	तिलो० प० १-१५३
इहरा समूहसिद्धो	सम्मइ० १-२७
इहलोइय-परलोइय-	भ० आरा० ८५१
इहलोए परलोए	भ० आरा० २०५१
इहलोए पुण मंता	भावसं० ४५७
इहलोए वि महल्लं	तिलो० प० ४-६३५
इहलोगणिरावेक्खो	पवयणसा० ३-२६
इहलोगबंधवा ते	भ० आरा० १७५१
इहलोगिय-परलोगिय-	भ० आरा० १८१४
इह वग्गमाउआए	तिलो० सा० ६२
इह विविहलक्खणाणं	पवयणसा० २-५
इह होइ भरहखेत्तो	जंवू० प० २-२
इहु तणु जीवड तुज्झ रिउ	परम० प० २-१८२
इहु परियण ण हु महुतणउ	जोगसा० ६७
इहु सिव-संगमु परिहरिवि	परम० प० २-१४२
इंगाल जाल अच्ची	मूला० २११
इंगाल जाल अच्ची	पंचसं० १-७६
इंगाल जाल मुम्मुर	तिलो० प० २-३२७
इंगालो धोव्वंतो	भ० आरा० १०४४
इंगालो धोव्वंतो	भ० आरा० १८१७
इंदट्ठियं विमाणं	तिलो० सा० ४८४
इंद-पडिंद-दिगिंदय-	तिलो० प० १-४०
इंद-पडिंद-दिगिंदा	तिलो० सा० २२३
इंद-पडिंदप्पहुदी	तिलो० प० ३-११०
इंद-पडिंद-समाणिय-	तिलो० प० ६-८४
इंद-पडिंदादीणं	तिलो० प० ८-३०५
इंद-पुरीदो वि पुणो	जंवू० प० ११-३६८
इंदप्पहाण-पासाद-	तिलो० प० ८-३६५
इंदप्पहुदिचउक्के	तिलो० प० ८-५५३
इंदप्पासादाणं	तिलो० प० ८-४१२
इंद-फणिंद-णरिंदय वि	जोगसा० ६८
इंदय-सहस्सयारा	तिलो० प० ८-१४४
इंदय-सेढीवद्धप्प-	तिलो० सा० ४७७
इंदय-सेढीवद्धं	तिलो० प० २-३०२
इंदय-सेढीवद्धा	तिलो० सा० १६८
इंदय-सेढीवद्धा	तिलो० प० २-३६
इंदय-सेढीवद्धा	तिलो० प० २-७२
इंदय-सेढीवद्धा	तिलो० प० ८-११२
इंदविमाणा दु पुणो	जंवू० प० ११-१३२
इंदसदणमिदचलणं	तिलो० प० ७-६२०
इंदसदवंदियाणं	पंचत्थि० १
इंदसमा पडिइंदा	तिलो० प० ३-६६

ई

उ

उक्कड्डिदइगिभागं	लद्धिसा० ६६
उक्कट्टिदइगिभागं	लद्धिसा० २८१
उक्कट्टिददव्वस्स य	लद्धिसा० ४६०
उक्कट्टिदवहुभागे	लद्धिसा० १४२
उक्कट्टिदम्मि देदि हु	लद्धिसा० ७३
उक्कट्टिदं तु देदि अ-	लद्धिसा० ४६७
उक्कडजोगो सण्णी	गो० क० २१०
उक्कड्डुदि जे अंसे	कसायपा० २२२ (१६९)
उक्करिसधारणाए	तिलो० प० ४-९७६
उक्कस्सअसंखेज्जे	तिलो० प० ४-३११
उक्कस्सएण छम्मा-	भ० आरा० २१०९
उक्कस्सएण भत्तप-	भ० आरा० २५२
उक्कस्सखओवसमे	तिलो० प० ४-१०५७
उक्कस्सखओवसमे	तिलो० प० ४-१०६०
उक्कस्सखओवसमे	तिलो० प० ४-१०६३
उक्कस्सजोगसण्णी	पंचसं० ४-५०४
उक्कस्सट्ठिदिचरिमे	गो० जी० २४९
उक्कस्सट्ठिदि बंधिय	लद्धिसा० ५९
उक्कस्सट्ठिदिबंधे	लद्धिसा० ६६
उक्कस्सट्ठिदिबंधे	गो० क० ९४०
उक्कस्सट्ठिदिबंधो	लद्धिसा० ५८
उक्कस्सपदेसत्तं	पंचसं० ४-५००
उक्कस्समणुक्कस्सं	पंचसं० ४-४१७
उक्कस्समणुक्कस्सं	पंचसं० ४-४४२
उक्कस्समणुक्कस्सो	पंचसं० ४-३१४
उक्कस्ससंखमज्झे	तिलो० प० ४-३१०
उक्कस्ससंखमेत्तं	गो० जी० ३३०
उक्कस्सं अणुभागे	कसायपा० १८२ (१३२)
उक्कस्सं च जहण्णं	वसु० सा० ५२८
उक्कस्साउपमाणं	तिलो० प० ८-४६३
उक्कस्साऊ पल्लं	तिलो० प० ६-८३
उक्कस्सा केवलिणो	भ० आरा० ५१
उक्कस्सेणं छच्छम्मा-	छेदपिं० २६९
उक्कस्सेणाहारो	मूला० ११४६
उक्कस्सेणुस्सासो	मूला० ११४७
उक्कस्से रूवसदं	तिलो० प० ६-६५
उक्किट्ठभोयभूमी-	वसु० सा० २५८
उक्किट्ठसीहचरियं	सुत्तपा० ९
उक्किट्ठा पायाला	तिलो० प० ४-२४०८
उक्किट्ठिइँ विहिं तिहिं भवहिं	सावय० दो० ७४
उक्किट्ठो जो बोहो	णियमसा० ११६
उक्किण्णे अवसाणे	लद्धिसा० २६२
उक्कीरिदं तु दव्वं	लद्धिसा० ४३२
उगवीसट्ठारसगं	कसायपा० ५०
उगुतीसअट्ठवीसा	पंचसं० ५-२२२
उगुतीसट्ठावीसा	पंचसं० ५-२०२
उगुतीस-तीसबंधे	पंचसं० ५-२३१
उगुतीसबंधगेसु य	पंचसं० ५-२३३
उगुदालतीससत्तय-	गो० क० ९१८
उगुवीस तियं तत्तो	गो० क० ८३९
उगुवीसं अट्ठारस	गो० क० ४६५
उगुसट्ठिमप्पमत्तो	पंचसं० ५-४७६
उग्गतवचरणकरणे-	पंचगु० भ० ५
उग्गतव-तविय-गत्तो	भावसं० ३७९
उग्गतवा दित्ततवा	तिलो० प० ४-१०४७
उग्गतवेणण्णाणी	मोक्खपा० ५३
उग्गमउप्पादणए-	मूला० ३१८
उग्गम उप्पादणए-	मूला० ४२१
उग्गमउप्पादणए-	भ० आरा० २३०
उग्गमउप्पादणए-	भ० आरा० ४१५
उग्गमउप्पादणए-	भ० आरा० ६३६
उग्गमउप्पादणए-	भ० आरा० ११६०
उग्गमसूरप्पहुदी	मूला १३०
उग्गसिहादेसियसग्ग-	वसु० सा० ४२९
उग्गहईहावाया-	झा० भ० ९
उग्गहईहावाया-	जंबू० प० १३-५५
उग्गाढदूण विक्खं-	जंबू० प० ६-९
उग्गाढो वज्जमओ	जंबू० प० ४-२२
उग्गाहणं तु अवरं	तिलो० प० ५-३१४
उग्गाहिं तस्सुदधिं	भ० आरा० ११०९
उग्गो तिव्वो दुट्ठो	रयणसा० ४३
उग्घडिय कवाडजुगल-	तिलो० प० ४-१२२९
उग्घाडो संवरिदो	छेदपिं० २०५
उग्घेण ण वूढाओ	भ० आरा० ९९९
उच्चत्तणम्मि पीदी	भ० आरा० १२३२
उच्चत्तणं व जो णीच-	भ० आरा० १२३३
उच्चस्सुच्चं देहं	गो० क० ८४
उच्चं णीचं णीचं	पंचसं० ५-२५८
उच्चारणिच्चागोदं	मूला० १२३४
उच्चारं पस्सवणं	वसु० सा० ७२

उप्पज्जदि जो रासी	तिलो० सा० ७३
उप्पज्जदि सण्णाणं	वा० अणु० ८३
उप्पज्जमाणकालं	सम्मइ० ३-३७
उप्पज्जंति चवंति य	जंबू० प० ११-२५८
उप्पज्जंति तहिं बहु-	तिलो० सा० १७६
उप्पज्जंति मणुस्सा	भावसं० ५३५
उप्पज्जंति महप्पा	जंबू० प० १०-८४
उप्पज्जंति वियंति य	सम्मइ० १-११
उप्पज्जंते भवणे	तिलो० प० ३-२०७
उप्पज्जंतो कज्जं	दव्वस० णय० ३६३
उप्पडदि पडंद धावदि	लिंगपा० १५
उप्पण्णपढमसमयम्हि-	वसु० सा० १८३
उप्पण्णम्मि य वाही	मूला० ८३६
उप्पण्णसमयपहुदी	धम्मर० ७२
उप्पण्णसुरविमाणे	तिलो० प० ८-५६६
उप्पण्णं पि कसाए	छेदपिं० १०२
उप्पण्णं पि कसाए	छेदपिं २१४
उप्पण्णाण सिसूणं	आय० ति० १२-१
उप्पण्णो उप्पण्णा	मूला० ६२२
उप्पण्णो कणयमए	भावसं० ४१२
उप्पण्णोदयभोगो	समय० २१५
उप्पत्तिमंडिदाइं	तिलो० प० ४-२३१६
उप्पत्ती तिरियाणं	तिलो० प० ५-२६२
उप्पत्ती मणुयाणं	तिलो० प० ४-२६४५
उप्पत्ती व विणासो	पंचत्थि० ११
उप्पलकुमुदालणिभा	जंबू० प० ४-१०८
उप्पलगुम्मा णलिणा	तिलो० प० ४-१६४४
उप्पहउवएसयरा	तिलो० प० ३-२०५
उप्पाओ दुवियप्पो	सम्मइ० ३-३२
उप्पाडित्ता धीरा	भ० आरा० ४७१
उप्पादट्ठिदिभंगा	पवयणसा० २-६
उप्पादट्ठिदिभंगा	पवयणसा० २-३७
उप्पाद-वय-विमिस्सा	णयच० २२
उप्पाद-वय-विमिस्सा	दव्वस० णय० १६४
उप्पादवयं गउणं	दव्वस० णय० १६१
उप्पादवयं गोणं	णयच० १६
उप्पादा अइघोरा	तिलो० प० ४-४३२
उप्पादेदि करेदि य	समय० १०७
उप्पादो पद्धंसो	पवयणसा० २-५०
उप्पादो य विणासो	पवयणसा० १-१८
उप्पादो य विणासो	दव्वस० णय० ४०१
उप्पायपुव्वगाणिय-	गो० जी० ३४४
उप्पायपुव्वमग्गा-	सुदखं ५
उब्भामगादिगमणे	मूला० १७३
उब्भासेज्ज व गुणसे-	भ० आरा० १५०३
उब्भिण्णकमलपाडल-	जंबू० प० ४-२३५
उब्भियदलेक्कमुरवद्ध-	तिलो० सा० ६
उब्भियदिवड्ढमुरवद्ध-	तिलो० प० १-१४४३
उभयतडवेदिसहिदा	तिलो० प० ४-२६०
उभयतडेसु णदीणं	जंबू० प० ३-१६८
उभयधणे संमिलिदे	गो० क० ६०२
उभयविणट्ठे भावे	तच्चसा० ५८
उभयंतग-वणवेदिय-	तिलो० सा० ६६५
उभयेसिं परिमाणं	तिलो० प० १-१८६
उम्मग्गचारि स-णिदा-	तिलो० सा० ४५०
उम्मग्ग-णिमग्ग-जला	जंबू प० ७-१२७
उम्मग्ग-णिमग्ग-णदी	तिलो० सा० ५६३
उम्मग्गदेसओ मग्ग-	मूला ६७
उम्मग्गदेसओ सम-	पंचसं० ४-२०५
उम्मग्गदेसगोमग्ग-	गो० क० ८०५
उम्मग्गदेसगोमग्ग-	कम्मप० १५१
उम्मग्गदेसणो मग्ग-	भ० आरा० १८४
उम्मग्गसंठियाणं	तिलो० प० ६-१
उम्मग्गं गच्छंतं	समय० २३४
उम्मग्गं परिचत्ता	णियमसा० ८६
उम्मणि थक्का जासु मणु	पाहु० दो० १०४
उम्मत्तो होइ णरो	भ० आरा० ११५७
उम्मूलिवि ते मूलगुण	पाहु० दो० २१
उयसयपडिदावण्णं	भ० आरा० १६७८
उरपरिसप्पादीणं	छेदपिं० ३२०
उलुखलित्तिछुहणं घरसा-?	छेदपिं० ८८
उल्लसिदविब्भमाओ	तिलो० प० ५-२३५
उल्लाव-समुल्लावहिं	भ० आरा० १०८८
उल्लीणोल्लीणेहिं	भ० आरा० २५६
उवएसो पुण आयरि-	भ० आरा० २०६०
उवओए उवओगो	समय० १८१
उवओगमओ जीवो	दव्वस० णय० ११८
उवओगमओ जीवो	पवयणसा० २-८३
उवओगविसुद्धो जो	पवयणसा० १-१५
उवओगस्स अणाई	समय० ८६

उववण-पोक्खरणीहिं	तिलो० प० ७-४४
उववण-वणसंजुत्ता	तिलो० प० ४-१२७
उववण-वावि-जलेणं	तिलो० प० ४-८०६
उववणवेदीजुत्ता	तिलो० प० ४-१६६१
उववणसंडा सव्वे	तिलो० प० ४-१७५५
उववणसंडेहिं जुदा	तिलो० प० ४-२०८१
उववादगब्भजेसु य	गो० जी० ९२
उववादघरा णेया	जंबू० प० ३-१४१
उववादजोगठाणा	गो० क० २१९
उववादमंदिराइं	तिलो० प० ७-५२
उववादमारणंतिय-	गो० जी० १९८
उववादमारणंतिय-	तिलो० प० २-८
उववादसभा विविहा	तिलो० प० ८-४५२
उववादा सुरणिरया	गो० जी० ९०
उववादोवट्टणमे	मूला० ११६२
उववादे अच्चित्तं	गो० जी० ८५
उववादे पढमपदं	गो० जी० ५८४
उववादे सीदुसणं	गो० जी० ८६
उववादो उव्वट्टण	मूला० १०४४
उववायाउ णिवडई	वसु० सा० १२७
उववासपंचए वा	छेदपिं० ६
उववासमोणजुत्तो	रिट्ठस० ११०
उववास-वाहि-परिसम-	वसु० सा० २३६
उववास विसेस करिवि बहु	पाहु० दो० २०७
उववासविहिं तस्स वि	अंगप० २-६७
उववास-सोसिय-तणू	जंबू० प० २-१४८
उववासह होइ पलेवणा	पाहु० दो० २१४
उववासहु इक्कहु फलइँ	सावय० दो० १११
उववासं कुव्वंतो	कत्ति० अणु० ३७८
उववासं कुव्वाणो	कत्ति० अणु० ४४०
उववासं पुण पोसह	वसु० सा० ४०३
उववासा कायव्वा	वसु० सा० ३७१
उववासो कायव्वो	धम्मर० १५४
उववासो य अलाभे	भावसं० १०८
उवसग्गपरिसहसहा	बोधपा० ५६
उवसग्गवाहिकारण-	छेदस० ५१
उवसग्गदो अणारो-	छेदपिं० १२४
उवसग्गेण य साहरि-	भ० आरा० २०७०
उवसप्पणा सप्पणी वि य	तिलो० प० १-१०३
उवसप्पिणि अवसप्पिणि	कत्ति० अणु० ६६
उवसप्पिणि अवसप्पिणि	भ० आरा० १७७८ (क्षे०)
उवसमइ किण्हसप्पो	भ० आरा० ७६२
उवसमई सम्मत्तं	रयणसा० १५५
उवसम खइओ मिस्सो	गो० क० ८१३
उवसमखमदमजुत्ता	बोधपा० ५२
उवसम-खय-भावजुदो	रयणसा० ७१
उवसम-खय-मिस्सं वा	मूला० ७६०
उवसम-खय-मिस्साणं	दव्वस० णय० २६१
उवसम-खाइय-सम्मं	भावति० ६६
उवसमचरियाहिमुहो	लद्धिसा० २०३
उवसमणिरीहझाणज्झ-	रयणसा० १२४
उवसमणो अक्खाणं	कत्ति० अणु० ४३७
उवसमदयादमाउह-	भ० आरा १८३६
उवसम दया य खंती	मूला० ७५३
उवसमभावतवाणं	कत्ति० अणु० १०५
उवसमभावूणेदे	भावति० ११०
उवसमभावो उवसम-	गो० क० ८१६
उवसमवंतो जीवो	आरा० सा० ६५
उवसमसम्मत्तद्धा	लद्धिसा० १००
उवसमसम्मत्तुवरिं	लद्धिसा० १०३
उवसमसम्मं उवसम-	भावति० २०
उवसमसुहमाहारे	गो० जी० १४२
उवसमसेढीदो पुण	लद्धिसा० ३४८
उवसंतखीणमोहे	पंचसं० ३-२८
उवसंतखीणमोहे	गो० क० १०२
उवसंतखीणमोहे	भावसं० ११
उवसंतखीणमोहो	पंचत्थि० ७०
उवसंतखीणमोहो	पंचसं० १-५
उवसंतखीणमोहो	गो० जी० १०
उवसंतद्धा दुगुणा	लद्धिसा० ३७१
उवसंतपढमसमये	लद्धिसा० ३००
उवसंतवयणमगिहत्थ-	मूला० ३७८
उवसंतवयणमगिहत्थ-	भ० आरा० १२४
उवसंता दीणमणा	मूला० ८०४
उवसंते खीणे वा	पंचसं० १-१३३
उवसंते पडिवडिदे	लद्धिसा० ३०५
उवसंतो त्ति सुराऊ	गो० क० ४४६
उवसंतो दु पुहुत्तं	मूला० ४०४
उवसंपया य णेया	मूला० १३६
उवसंपया य सुत्ते	मूला० १४४

ऊ

एकम्हि कालसमये †	पंचसं० १–२०
एकम्हि कालसमये †	गो० क० ६११
एकस्स दु परिणामा	समय० १३८
एकस्स दु परिणामो	समय० १४०
एकस्स वत्थुजुयलस्से-	छेदपिं० २६३
एकं च तिण्णि सत्त य	मूला० ११११
एकं जिणस्स रूवं	दंसणपा० १८
एका अजुदसहावे	दव्वस० णय० ६१
एकादसलक्खाणिं	तिलो० प० २–१४५
एकावण्णसहस्सं	गो० क० ४६३
एकावण्णं कोडी	सुदखं० ४८
एको(क्को)चेवमहप्पा	पंचत्थि० ७१
एकोणतीसदंडा	तिलो० प० २–२४०
एकोणवण्णदंडा	तिलो० प० २–२५६
एक्कचउक्कचउक्केक्क-	तिलो० प० ४–२६१७
एक्कचउक्कट्ठं जण-	तिलो० सा० ६६७
एक्कचउक्कट्ठंजण-	तिलो० प० ५–७०
एक्कचउक्कतिछक्का	तिलो० प० ७–३८०
एक्कचउक्कं चउवी-	गो० जी० ३१३
एक्कचउट्ठाणं दुग-	तिलो० प० ७–५६७
एक्कचउसोलसंखा	तिलो० प० ४–२५६५
एक्क छ छ सत्त पण णव	तिलो०प० ४–२७०७
एक्कट्ठं छक्केक्कं	तिलो० प० ४–२८५८
एक्कट्ठियखिदिसंखं	तिलो० प० २–१७३
एक्कट्ठी पण्णट्ठी	तिलो० सा० ६७
एक्क ण जाणहि वट्टडिय	पाहु० दो० ११४
एक्क णव पंच तिय सत्त	तिलो० प० ७–२५३
एक्कणिरुद्धे इयरो	दव्वस० णय० २५८
एक्कतिसगदससत्तर-	तिलो० प० २–३५१
एक्कत्तरिं सहस्सा	तिलो० प० ४–२०२४
एक्कत्तालसहस्सा	तिलो० प० ४–२८०२
एक्कत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७–३४६
एक्कत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७–३६७
एक्कत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७–६०६
एक्कत्तालं दंडा	तिलो० प० २–२६५
एक्कत्तालं लक्खं	तिलो० प० ८–२५
एक्कत्तालं लक्खा	तिलो० प० २–११२
एक्कत्तालेक्कसयं	तिलो० प० ७–२६१
एक्कत्तीसट्ठाणे	तिलो० प० ४–३०८
एक्कत्तीसमुहुत्ता	तिलो० प० ७–२१४
एक्कत्तीससहस्सा	तिलो० प० ७–२२३
एक्कत्तीससहस्सा	तिलो० प० ७–२४६
एक्कत्तीससहस्सा	तिलो० प० ४–१६८६
एक्कत्तीससहस्सा	तिलो० प० ७–१२३
एक्कत्तीससहस्सा	तिलो० प० ८–६३१
एक्कदुरगदिणिरुवय-	गो० जी० ३३७
एक्कदुगसत्तएक्के	तिलो० प० ८–५६७
एक्क दु ति पंच सत्त य	तिलो० प० २–३११
एक्कधणुमेक्कहत्थो	तिलो० प० २–२२०
एक्कधणुं दो हत्था	तिलो० प० २–२४२
एक्कपएसे दव्वं	दव्वस० णय० २२१
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ३–१४७
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ३–१५५
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ३–१६४
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ४–७६
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ४–२७६
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ५–५१
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ५–१२६
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ५–१३४
एक्कपलिदोवमाऊ	तिलो० प० ८–६६६
एक्क-पह-लंघणं पडि	तिलो० सा० ४०८
एक्कब्भहिया णउदी	तिलो० प० ८–१५४
एक्कम्मि ठिदिविसेसे	कसायपा० २०२ (१४६)
एक्कम्मि महुरपयडी	पंचसं० ४–५०६
एक्कम्मि विउस्सग्गे	छेदस० ६
एक्कम्हि भवग्गहणे	कसायपा० ६४ (११)
एक्कम्हि (एक्के) विदियम्हि पदे	मूला० ६३
एक्क य छक्केगारं	पंचसं० ५–२०७
एक्क य छक्केयारं	गो० क० ४८१
एक्क य छक्केयारं	गो० क० ४८८
एक्कयरं च सुहासुह-	पंचसं० ५–२७५
एक्कयरं वेयंति य	पंचसं ५–१३८
एक्करसतेरसाइं	तिलो० प० ४–११३०
एक्करसवण्णगंधं	तिलो० प० १–६७
एक्करससया इगिवी-	तिलो० प० ८–१६८
एक्करससहस्साणि	तिलो० प० ४–२१५०
एक्करससहस्साणि	तिलो० प० ४–२४४३
एक्करससहस्साणि	तिलो० प० ७–६०८
एक्करस होंति रुद्दा	तिलो० प० ४–१६१८
एक्करसो य सुदम्मो	तिलो० प० ४–१४८४

एक्कादि दुउत्त रयं	तिलो० प० ७-५२७
एक्कादि-दुरुत्तुत्तर-	जंबू० प० २-१६
एक्कादी दुगुणकमा	गो० क० ८६०
एक्कारसकूडाणं	तिलो० प० ४-२२५६
एक्कारसचावाणि	तिलो० प० २-२२५
एक्कारसजागाणं	गो० जी० ७२२
एक्कारसट्ठ णव णव	तिलो० सा० ७२०
एक्कार-मत्त-सम हय-	तिलो० सा० ४६१
एक्कारसपुव्वादी-	तिलो० प० ४-१६३२
एक्कारसमो कोंडल-	तिलो० प० ५-११७
एक्कार-सय-सहस्सं	तिलो० सा० ४४५
एक्कारस-लक्खाणि	तिलो० प० ४-२६१४
एक्कारस-लक्खाणि	तिलो० प० ८-६६
एक्कारस-लक्खाणि	तिलो० प० ८-१७१
एक्कार-सहस्साणि य	तिलो० प० ४-५७०
एक्कार-सहस्साणि	तिलो० प० ४-२८२५
एक्कारसि पुव्वण्हे	तिलो० प० ४ ६५३
एक्कारसुत्तरसयं	तिलो० प० ८-१५३
एक्कारसे पदेसे	तिलो० प० ४-१७६६
एक्कारं दसगुणियं	गो० क० ८५२
एक्कावण्ण-सहस्सा	तिलो० प० ४-१२२३
एक्कावण्ण-सहस्सा	तिलो० प० ७-३५२
एक्कावण्ण-सहस्सा	तिलो० प० ७-३७०
एक्कासीदी-लक्खा	तिलो० प० ३-८१
एक्कासी-पयडीणं	पंचसं० ३-७२
एक्का हवेदि रज्जू	तिलो० प० २-१७०
एक्काहियखिदिसंखा	तिलो० प० २-१५७
एक्कु करे मण विण्णि करि	परम०प० २-१०७
एक्कु खणं ण वि चिंतइ	रयणसा० ५०
एक्कु जि मेल्लिवि बंभु परु	परम०प० २-१२१
एक्कुदयुवसंतंसे	गो० क० ६६०
एक्कुलउ जइ जाइसिहि	जोगसा० ७०
एक्कु सुवेयइ अण्णु ण वेयइ	पाहु० दो० १६५
एक्के एक्कं आऊ	गो० क० ६४२
एक्के काले एगं	कत्ति० अणु० २६०
एक्केक्कइंदयस्स य *	तिलो० सा० ४६३
एक्केक्कइंदयस्स य *	तिलो० प० ८-११
एक्केक्कउत्तरिंदे	तिलो० प० ८-३१७
एक्केक्ककमलसंडे	तिलो० प० ४-७८६
एक्केक्ककमलसंडे	तिलो० प० ८-२८२
एक्केक्ककिण्हराई	तिलो० प० ८-६०२
एक्केक्कगोउराणं	तिलो० प० ४-७३५
एक्केक्कचारखेत्तं	तिलो० प० ७-५५३
एक्केक्कचारखेत्त	तिलो० प० ७-५७३
एक्केक्कचारखेत्ते	तिलो० प० ७-५७५
एक्केक्कजुवइरयणं	तिलो० प० ४-१३७२
एक्केक्कजोयणंतर-	तिलो० प० ४-१२२८
एक्केक्कट्ठिदिखंडय-	लद्धिसा० ७६
एक्केक्कट्ठिदिखंडय-	लद्धिसा० ४०५
एक्केक्कदिगुणघाडं	छेदपिं० ५४
एक्केक्कदिसाभागे	तिलो० प० ४-२२७०
एक्केक्कदिसाभागे	जंबू० प० ७-४२
एक्केक्कपल्लवाहण-	तिलो० प० ८-५२१
एक्केक्कमयंकाणं	तिलो० प० ७-३१
एक्केक्कमाणथंभे	तिलो० प० ३-१३६
एक्केक्कमुहे चंचल-	तिलो० प० ८-२८०
एक्केक्कम्मि गुहम्मि य	जंबू० प० २-६४
एक्केक्कम्मि दहम्मि दु	जंबू० प० ६-४१
एक्केक्कम्मि मुहम्मि दु	जंबू० प० ४-२५२
एक्केक्कम्मि य दंतो	जंबू० प० ४-२५३
एक्केक्कम्मि य वत्थू	सुदभ० ६
एक्केक्कम्मि वि दसणे	तिलो० प० ८-२८१
एक्केक्करज्जुमित्ता	तिलो० प० १-१६२
एक्केक्कलक्खपुव्वा	तिलो० प० ४-१४०५
एक्केक्कवणे पडिदिस-	तिलो० सा० ६११
एक्केक्कवरणगाणं	जंबू० प० ५-६६
एक्केक्कविहेसु तहा	जंबू० प० १३-७२
एक्केक्कसदसहस्सा	जंबू० प० १०-१६
एक्केक्कससंकाणं	तिलो० प० ७-२५
एक्केक्कस्स णिटंभण-	लद्धिसा० ६२६
एक्केक्कस्स दहस्स य	तिलो० प० ४-२०६२
एक्केक्कस्स विमाणस्स	जंबू० प० ११-३४३
एक्केक्कस्सिं तणु-	तिलो० प० ६-७०
एक्केक्कंगुलि वाही	भावपा० ३७
एक्केक्कं चिय लक्खं	तिलो० प० ४-११८०
एक्केक्कं जिणभवणं	तिलो० प० ४-७५८
एक्केक्कं ठिदिखंडं	वसु० सा० ५१६
एक्केक्कं रोमग्गं	तिलो० प० १-१२५
एक्केक्कंहि(म्हि) य ठाणे	कसायपा० ५०
एक्केक्काए उववण-	तिलो० प० ४-८०३

एगवराडयकागिणि-	छेदपिं० ६१
एगविहो खलु लोओ	मूला० ७११
एगसमयप्पबद्धा	कसायपा० १६६ (१४६)
एगसमयप्पबद्धा	कसायपा० १६४ (१४१)
एगसमयम्मि एगद्-	सम्मइ० ३-४१
एगसहस्सं अट्ठुत्त-	जंबू० प० १०-१२
एगसहस्सं णवसद-	पंचसं० ५-३५२
एगं णिसएणदी सट्ठु	छेदपिं० १४८
एगंत णिव्विसेसं	सम्मइ० ३-२
एगंतं मग्गंतं	मूला० ७८६
एगंता सालोगा	भ० आरा० १६६८
एगं तिण्णि य सत्तं	तिलो० प० २-२०३
एगंते अचित्ते	मूला० १५
एगंतेण हि देहो	पवयणसा० १-६६
एगंते सुहदेसे	रिट्ठस० १६४
एगं पंडियमरणं	मूला० ११७
एगं वा णउदिं च य	जंबू० प० ७-६
एगं सगयं तच्चं	तच्चसा० ३
एगं सुहुमसरागो	पंचसं० ५-३०६
एगादिगिहपमाणं	कत्ति० अणु० ४४३
एगादि विउत्तरिया	तिलो० सा० ५६
एगाहि वेहि तीहि य	जंबू० प० १३-३७
एगुणतीसत्तिदयं	गो० क० ६६८
एगुत्तरणवयसया	जंबू० प० ३-२६
एगुत्तरमेगादी-	पवयणसा० २-७२
एगुत्तरसेढीए	भ० आरा० २१२
एगुरुगा लंगलिगा	तिलो० सा० ६१६
एगुववासो छट्ठं	छेदपिं ६८
एगे इगिवीसपणं	गो० क० ५६५
एगेगअट्ठवीसा	जंबू० प० १२-८६
एगेगकमलकुसुमे	जंबू० प० ४-२५६
एगेगकमलकुसुमे	जंबू० प० ४-२५७
एगेगकमलरुंडे	जंबू० प० ४-२५४
एगेगमट्ठ एगे-	गो० क० ६६४
एगेगमट्ठ एगे-	पंचसं० ५-३६५
एगेगम्मि य गच्छे	जंबू० प० ४-२५५
एगेगसिलापट्टे	जंबू० प० ४-१४१
एगेगं इगितीसे	गो० क० ७४१
एगेगं इगितीसे	पंचसं० ५-२४६
एगे वियले सयले	गो० क० ७११

एगो जइ णिज्जवओ	भ० आरा० ६७४
एगो मे सस्सदो अप्पा *	भावपा० ५६
एगो मे सस्सदो अप्पा *	मूला० ४८
एगो मे सासदो अप्पा *	णियमसा० १०२
एगो य मरदि जीवो	णियमसा० १०१
एगोरुगवेसाणिग-	जंबू० प० ११-५१
एगोरुगा गुहाए	तिलो० सा० ६२०
एगोरुगा गुहासुं	जंबू० प० १०-५८
एगोरुगा य णंगो	जंबू० प० १०-५३
एगो वि अणंताणं	भावसं० ६६३
एगो संथारगदो	भ० आरा० ५१६
ए ठाणइँ एयारसइँ	सावय० दो० १८
एण थोत्थेण जो पंचगुरु वंदए	पंचगु० भ० ६
एण विहाणेण फुडं	भावसं० ४८२
एण्हं पि जदि ममत्ति	भ० आरा० १६६८
एत्तियपमाणकालं	वसु० सा० १७५
एत्तियमेत्तपमाणं	तिलो० प० ७-५७६
एत्तियमेत्तविसेसं	तिलो० प० ४-४००
एत्तियमेत्तविसेसं	तिलो० प० ४-४०८
एत्तियमेत्ता दु परं	तिलो० प० ७-४४८
एत्तूणपेसणाइं	तिलो० प० ४-६६७
एत्तो अपुव्वकरणो	मूला० ११६६
एत्तो अवसेसासं-	कसायपा० ३५
एत्तो उवरिं विरदे	लद्धिसा० १८६
एत्तो करेदि किट्टिं	लद्धिसा० ६३१
एत्तो चउचउहीणं	तिलो० प० १-२७६
एत्तो जाव अणंतं	तिलो० प० ४-५८५
एत्तो दलरज्जूणं	तिलो० प० १-२१३
एत्तो दिवायराणं	तिलो० प० ७-४२२
एत्तो पदर कवाडं	लद्धिसा० ६२३
एत्तो वासरपहुणो	तिलो० प० ७-२६२
एत्तो समऊणावलि-	लद्धिसा० ५७
एत्तो सलायपुरिसा	तिलो० प० ४-५०६
एत्तो सुहुमंतो त्ति य	लद्धिसा० ५६२
एत्थ इमं पणुवीसं	पंचसं० ५-८५
एत्थ पमत्तो आऊ-	पंचसं० ५-२२३
एत्थ मुदा णिरयदुगं	तिलो० सा० ८६३
एत्थ विभंगवियप्पा	पंचसं० ५-१२३
एत्थं णिरयगईए	पंचसं० ४-२६२
एत्थं मिस्सं वज्जं	पंचसं० ३-७

एत्थापुव्वविहाणं	लद्धिसा० ६३५
एत्थावसप्पिणीए	तिलो० प० १-६८
एत्थो हणदि कसायं	पंचसं० ५-४८८
एदच्चिय चउगुणिदे	तिलो० प० ४-२७०६
एदमणगारसुत्तं	मूला ७७०
एदम्मि कालसमये	जंबू० प० २-१७६
एदम्मि णवरि मुणिणो	भ० आरा० ३१२
एदम्मि मज्झभागे	जंबू० प० २-१६५
एदम्मि य तम्मिस्से	तिलो० प० ८-६१२
एदम्हादो एक्कं	मूला० ६४
एदम्हि गुणट्ठाणे +	गो० जी० ५१
एद(य)म्हि गुणट्ठाणे +	पंचसं० १८
एदम्हि गुणट्ठाणे	भावसं० ६४०
एदम्हि देसयाले	मूला० ११२
एदम्हि रदो णिच्चं ※	दव्वस० णय० ४११
एदम्हि रदो णिच्चं ※	समय० २०६
एदम्हि विभज्जंते	गो० जी० ३६७
एदस्स उदाहरणं	तिलो० प० १-२२
एदस्स चउदिसासुं	तिलो० प० ५-१६०
एदस्स चउदिसासुं	तिलो० प० ८-६५८
एदं अंतरमाणं	तिलो० प० ७-५८१
एदं अंतरमाणं	तिलो० प० ७-५८५
एदं अंतरिदूणं	तिलो० प० ७-५८३
एदं आदवतिमिरक्खे-	तिलो० प० ७-४२०
एदं खेत्तपमाणं	तिलो० प० १-१८३
एदं चउसीदिहदे	तिलो० प० ४-२६१२
एदं चक्खुप्पासो	तिलो० प० ७-४३३
एदं चिय चउगुणिदं	तिलो० प० ४-२७०३
एदं चेव य तिगुणं	तिलो० प० ७-५०४
एदं पच्चक्खाणं	मूला० १०५
एदं पायच्छित्तं	छेदपिं० २०
एदं पायच्छित्तं	छेदपिं० ४६
एदं पायच्छित्तं	छेदपिं० ३१२
एदं पायच्छित्तं	छेदपिं० ३५६
एदं वि य परमपदं	दव्वस० णय० ४१०
एदं सरीरमसुई	मूला० ८४४
एदंहि अंतरंहि दु	जंबू० प० ६-३
एदंहि अंतरंहि दु	जंबू० प० ७-३५
एदं होदि पमाणं	तिलो० प० ७-३१०
एदाइं जोयणाणि	तिलो० प० ८-३६५
एदाउ अट्ठपवयण-×	मूला० ३३६
एदाउ अट्ठपवयण-×	भ० आरा० १२०५
एदाउ पंच वज्जिय	भ० आरा० १८६
एदाउ वण्णणाओ	तिलो० प० ४-२१११
एदाउ वण्णणाओ	तिलो० प० ४-२७३३
एदाए जीवाए	तिलो० प० ४-१८६
एदाए बहलत्तं	तिलो० प० २-१५
एदाए बहुमज्झे	तिलो० प० ८-६५५
एदाए भत्तीहिं य	जंबू० प० ४-२८५
एदाओ णामाओ	जंबू० प० ६-१३४
एदाओ देवीओ	जंबू० प० ४-१०७
एदाओ सव्वाओ	तिलो० प० ७-८४
एदा (पयदा) चोद्दस पिंड-	कम्मप० ६४
एदाण अंतराणं	तिलो० प० ७-५६१
एदाण कालमाणं	तिलो० प० ४-१५५५
एदाण चउ-विहाणं	तिलो० प० ६-१२
एदाण ति-खेत्ताणं	तिलो० प० ४-२३८०
एदाण मंदिराणं	तिलो० प० ७-७२
एदाणं कूडाणं	तिलो० प० ६-१८
एदाणं कूडाणं	तिलो० प० ७-५०
एदाणं कूडाणं	तिलो० प० ७-७४
एदाणं ति-णगाणं	तिलो० प० ४-२७६६
एदाणं तिमिराणं	तिलो० प० ७-४१४
एदाणं दाराणं	तिलो० प० ४-४३
एदाणं देवाणं	तिलो० प० ४-२४६८
एदाणं देवीणं	तिलो० प० ५-१५६
एदाणं पत्तेक्कं	तिलो० प० ४-२८२१
एदाणं परिहीओ	तिलो० प० ४-२०७७
एदाणं परिहीओ	तिलो० प० ७-४०
एदाणं परिहीओ	तिलो० प० ७-६६
एदाणं परिहीणं	तिलो० प० ७-२१०४
एदाणं पल्लाइं	तिलो० प० ८-४६२
एदाणं पल्लाणं	तिलो० प० १-१२०
एदाणं वत्तीसं	तिलो० प० ८-२७६
एदाणं भवणाणं	तिलो० प० ३-१२
एदाणं रचिदूणं	तिलो० प० ४-२२२०
एदाणं रुंदाणं	तिलो० प० ४-२७८७
एदाणं विच्चाले	तिलो० प० ८-११०
एदाणं विच्चाले	तिलो० प० ८-४२२
एदाणं विच्चाले	तिलो० प० ८-४२५

एदे सव्वे दोसा	भ० आरा० ३६७
एदे सव्वे दोसा	भ० आरा० ८७५
एदे सव्वे भावा	णियमसा० ४६
एदे संवरहेदुं	कत्ति० अणु० १००
एदेसिं कूडेसिं	तिलो० प० ५-१२५
एदेसिं खेत्तफलं	तिलो० प० ४-२६१६
एदेसिं चंदाणं	जंबू० प० १२-३६
एदेसिं ठाणाओ	गो० क० २४१
एदेसिं ठाणाणं	गो० क० २३२
एदेसिं ठाणाणं	कसायपा० ७४(२१)
एदेसिं ठाणाणं	कसायपा० ८१(२८)
एदेसिं णयरवरे	तिलो० प० ४-८५
एदेसिं दाराणं	तिलो० प० ४-७५
एदेसिं दोसाणं	भ० आरा० ८५२
एदेसिं दोसाणं	भ० आरा० ११६७
एदेसिं पल्लाणं *	तिलो० सा० १०२
एदेसिं पल्लाणं *	जंबू० प० १३-४१
एदेसिं पुव्वाणं	सुदभ० ८
एदेसिं लेस्साणं	भ० आरा० १९१०
एदेसु दससु णिच्चं	भ० आरा० ४२२
एदेसु दिग्गिदेसुं	तिलो० प० ८-५३७
एदेसु दिग्गदिंदा	तिलो० प० ५-१७०
एदेसु दिसाकण्णा	तिलो० प० ५-१४८
एदेसु पढमकूडे	तिलो० प० ४-२३२७
एदेसु मंदिरेसुं	तिलो० प० ४-२०४
एदेसु मंदिरेसुं	तिलो० प० ४-२५१
एदे(ए)सु य उवओगो	समय० ६०
एदेसु वि णिद्दिट्ठो	जंबू० प० २-१७०
एदेसु वेंतरिंदा	तिलो० प० ६-६७
एदेसु हेदुभूदेसु	समय० १३५
एदेसुं चेत्तदुमा	तिलो० प० ५-२३०
एदेसुं णट्टसभा	तिलो० प० ७-४५
एदेसुं पत्तेक्कं	तिलो० प० ४-२६०३
एदेसुं भवणेसुं	तिलो० प० ४-२१०६
एदे सोलस कूडा	तिलो० प० ५-१२४
एदे सोलस दीवा	जंबू० प० ११-८६
एदेहि य णिव्वत्ता	समय० ६६
एदेहिं अण्णेहिं	तिलो० प० १-६४
एदेहिं गुणिदसंखेज्ज-	तिलो० प० ७-१३
एदेहिं गुणिदसंखेज्ज-	तिलो० प० ७-३०
एदेहिं तिविहलोगं	दव्वस० णय० ५
एदेहि पसत्थेहिं	कम्मप० १५७
एदेहिं बाहिरेहिं	जंबू० प० १३-१३०
एदेहिं विहीणाणं	लद्धिसा० २६
एदे हेमज्जुणतव-	तिलो० प० ४-६५
ए पंचिंदिय-करहडा	परम० प० २-१३६
ए बारह वय जो करइ	सावय० दो० ७२
एमइ अप्पा झाइयइ	पाहु० दो० १७२
एमादिए दु विविहे	समय० २१४
एमेव अट्ठवीसं	पंचसं० ५-१०३
एमेव अट्ठवीसं	पंचसं० ५-१२७
एमेव अट्ठवीसं	पंचसं० ५-१६३
एमेव ऊणतीसं	पंचसं० ५-१४४
एमेव ऊणतीसं	पंचसं० ५-१४७
एमेव ऊणतीसं	पंचसं० ५-१७२
एमेव एक्कतीसं	पंचसं० ५-१३२
एमेव एक्कतीसं	पंचसं० ५-१५०
एमेव कम्मपयडी	समय० १४६
एमेव कामतंते	मूला० ८६
एमेव जीवपुरिसो	समय० २२५
एमेवट्ठावीसं	पंचसं० ५-१४२
एमेवट्ठावीसं	पंचसं० ५-१७१
एमेवट्ठावीसं	पंचसं० ५-१८५
एमेव दु सेसाणं	जंबू० प० १२-१८
एमेव विदियतीसं +	पंचसं० ४-२६७
एमेव विदियतीसं +	पंचसं० ५-६०
एमेव मिच्छदिट्ठी	समय० ३२६
एमेव य उगुतीसं	पंचसं० ५-१०४
एमेव य उगुतीसं	पंचसं० ५-१८६
एमेव य चउवीसं	पंचसं० ५-११२
एमेव य छव्वीसं	पंचसं० ५-११५
एमेव य छव्वीसं	पंचसं० ५-११८
एमेव य छव्वीसं	पंचसं० ५-१२५
एमेव य छव्वीसं	पंचसं० ५-१३६
एमेव य छव्वीसं	पंचसं० ५-१६०
एमेव य पणुवीसं	पंचसं० ५-१००
एमेव य पणुवीसं	पंचसं० ५-११४
एमेव य पणुवीसं	पंचसं० ५-१८२
एमेव य ववहारो	समय० ४८
एमेव सत्तवीसं	पंचसं० ५-१०२

एयं वा पणकाये	गो० क० २०६
एयं सत्थं सव्वं	तिलो० सा० ५५६
एयाइणा अविहला	मूला० ७८७
एयाइं वयाइं णरो	धम्मर० १५७
एयाए भावणाए	भ० आरा० २०४
एयाओ देवाओ	जंबू० प० ४-२६५
एयाणमवत्थाणं	आय० ति० ३-१०
एयण सम्मुहो जो	आय० ति० ४-१४
एयाणं आयाणं	आय० ति० १-२६
एयाणं आयाणं	आय० ति० १-३२
एयाणं पि हु मज्झे	आय० ति० १६-२३
एयाणेयक्खेत्तट्ठि-	गो० क० १८७
एयाणेयभवगदं *	भ० आरा० १७१३
एया(आ)णेयभवगयं *	मूला० ४०१
एयाणेयवियप्पप-	कल्लाणा० ३८
एयादसेसु पढमं	वसु० सा० ३१४
एयादीया गणणा	तिलो० सा० १६
एया पडिवा बीया-	वसु० सा० ३६८
एया य कोडिकोडी	मूला० २२५
एया य कोडिकोडी	गो० जी० ११६
एयार-जीवठाणे	पंचसं० ५-२५५
एयारट्ठत्तीसा	जंबू० प० ११-४०
एयारसट्ठ णव णव	जंबू० प० २-२६
एयारस-ठाण-ठिया	वसु० सा० २२१
एयारस-ठाणाइं	वसु० सा० ५
एयारस-दस-भेयं	या० अणु० ६८
एयारसम्मि ठाणे	वसु० सा० ३०१
एयारसंगधारी	भावसं० १२२
एयारसंगधारी	वसु० सा० २७६
एयारसंगपयकय-	अंगप० १-७७
एयारसंगसुदसा-	जोगिभ० ८
एयारसुदसमुद्दे	अंगप० ७५
एयारसेसु तिण्णि य	पंचसं० ४-२०
एयारहविहु तं कहिउ	सावय० दो० ६
एयारंगपयाणि य	अंगप० १-७०
एयारंसोसरणे	तिलो० सा० ६१६
एया वि सा समत्था	भ० आरा० ७४६
एरावणमारूढो	तिलो० प० ५-४८
एरावणो त्ति णामे-	जंबू० प० ११-२८६
एरावदखिदिणिग्गद-	तिलो० प० ४-२३७४
एरावदमणिकंचण-	तिलो० सा० ७२६
एरावदम्मि उदआ	तिलो० प० ७-४४२
एरावदविजओदिद-	तिलो० प० ४-२३७२
एरिस-उक्किट्ठिय परि-	वसु० सा० ४७४
एरिसगुणअट्ठजुयं ×	भावसं० २८६
एरिसगुणअट्ठजुयं ×	वसु० सा० ५६
एरिसगुणेहिं सव्वं	बोधपा० ३६
एरिसपत्तम्मि वरे	भावसं० ५१२
एरिसभेदब्भासे	णियमसा० ८२
एरिसयभावणाए	णियमसा० ७६
एला-तमाल-चंदण-	जंबू० प० २-७८
एला-तमाल-वल्ली-	तिलो० प० ४-१६४५
एला-मरीचि-णिवहो	जंबू० प० ४-४७
एलायरियस्स दिण्णाण	छेदपिं० २५१
एव मए सुदपवरा	सुदभं० ११
एवमडसीदितिदए	गो० क० ७७६
एवमणंतं ठाणं	तिलो० सा० ८१
एवमणुद्धददोसो	भ० आरा० ५३७
एवमधक्खादविधिं	भ० आरा० १६२६
एवमधक्खादविधिं	भ० आरा० २०६१
एवमबंधे बंधे	गो० क० ६४४
एवमभिगम्म जीवं	पंचत्थि० १२३
एवमलिये अदत्ते	समय० २६३
एवमवलायमाणो	भ० आरा० २३५
एवमवि दुल्लहपरं	भ० आरा० ४३२
एवमसेसं खेत्तं	तिलो० प० १-१४७
एवमिगवीसकक्की	तिलो० प० ४-१५३२
एवमिह जो दु जीवो	समय० ११४
एवमेव गओ कालो	कल्लाणा० ५१
एव हि लक्खण-लक्खियउ	जोगसा० १०६
एवं अट्ठ वि जामे	भ० आरा० २०५३
एवं अट्ठवियप्पा	तिलो० प० १-२५०
एवं अणंतखुत्तो	तिलो० प० २-६१८
एवं अणाइकालं	कत्ति० अणु० ७२
एवं अणाइकाले	धम्मर० ६४
एवं अणेयभेयं	तिलो० प० १-२६
एवं अधियासेंतो	भ० आरा० १६८३
एवं अवसेसाणं	तिलो० प० ३-८६
एवं अवसेसाणं	जंबू० प० १-४५
एवं अवसेसाणं	जंबू० प० ३-१४४

एवं जाणइ णाणी	समय० १८५
एवं जाणदि णाणं	बा० अणु० ८६
एवं जाणंतेण वि	भ० आरा० ५२९
एवं जाणंतो वि हु	कत्ति० अणु० ९३
एवं जिणपण्णत्तं	मोक्खपा० १०६
एवं जिणपण्णत्तं	दंसणपा० २१
एवं जिणपण्णत्ते	सम्मइ० २–३२
एवं जिणा जिणिंदा	पवयणसा० २–१०७
एवं जिणाणंतरालं	तिलो० प० ४–५७७
एवं जीवद्दव्वं	सम्मइ० २–४१
एवं जीवविभागा	मूला० २२९
एवं जे जिणभवणा	जंबू० प० ४–६२
एवं जेत्तियदिवसा	छेदपिं० २५२
एवं जेत्तियमेत्ता	तिलो० प० ५–११६
एवं जो जाणित्ता	कत्ति० अणु० २०
एवं जो णिच्छयदो	कत्ति० अणु० ३२३
एवं जोदिसपडलं	जंबू० प० १२–९२
एवं जो महिलाए	भ० आरा० ११०६
एवं जोयणलक्खं	तिलो० प० १७९०
एवं ण को वि मोक्खो	समय० ३२३
एवं णरयगईए	धम्मर० ७३
एवं णाऊण फलं	वसु० सा० ३५०
एवं णाऊण फुडं	भावसं० १९१
एवं णाऊण फुडं	भावसं० ५७७
एवं णाऊण फुडं	आय० ति० १–४७
एवं णाऊण फुडं	आय० ति० ५–९
एवं णाऊण सया	भावसं० ६०९
एवं णागाणीया	जंबू० प० ४–२०७
एवं णाणप्पाणं +	पवयणसा० २–१००
एवं णाणप्पाणं +	तिलो० प० ९–२३
एवं णाणी सुद्धो	समय० २७८
एवं णादूण तवं	भ० आरा० १५७४
एवं णिप्पडियम्मं	भ० आरा० २०६९
एवं णियडाणियडं	रिट्ठस० १२१
एवं णिरुद्धतरयं	भ० आरा० २०२१
एवं ण्हवणं काउ-	वसु० सा० ४२४
एवं तइ उगुतीसं	पंचसं० ४–२९०
एवं तइ उगुतीसं	पंचसं० ५–८३
एवं तं सालंबं	भावसं० ३८०
एवं तिदियं ठाणं	वसु० सा० २७९
एवं तिसु उवसमगे	गो० क० ३८५
एवं तु जीवदव्वं	मूला० ९७९
एवं तुज्झं उवए-	भ० आरा० १४८५
एवं तु णिच्छयणयस्स	समय० ३६०
एवं तु भद्दसाले	जंबू० प० ५–७२
एवं तु भावसल्लं	भ० आरा० ४६६
एवं तु महड्ढीओ	जंबू० प० ११–२९६
एवं तुरयाणीया	जंबू० प० ४–१८८
एवं तु समुग्घादे	गो० जी० ५४६
एवं तु सारसमये	मूला० ११८४
एवं तु सुकयतवसं-	जंबू० प० ११–३०३
एवं ते कप्पदुमा	जंबू० प० २–१३५
एवं ते देवगणा	जंबू० प० ४–२७६
एवं ते देववरा	जंबू० प० ११–३२५
एवं ते होंति तदो	जंबू० प० १३–७६
एवं थिरंतिमाए	आय० ति० २४–५
एवं थुणिज्जमाणो	वसु० सा० ५०१
एवं थोऊण जिणं	जंबू० प० ५–११९
एवं दक्खिण-पच्छिम-	तिलो० प० ५–७५
एवं दव्वे खेत्ते	कसायपा० ५८
एवं दसविधपायच्छित्तं	छेदपिं० २८८
एवं दसविधसमये	छेदपिं १७५
एवं दह(स)छेया वि य	अंगप० ३–३८
एवं दंसणजुत्तो	दव्वस० णय० ३२३
एवं दंसणमारा-	भ० आरा० ४८
एवं दंसणसावय-	वसु० सा० २०५
एवं दीवसमुद्दा	मूला० १०७६
एवं दुगुणा दुगुणा	जंबू० प० ३–१०५
एवं दुगुणा दुगुणा	जंबू० प० ११–२७९
एवं दुविहो कप्पो	भावसं० १३२
एवं दुस्समकाले	तिलो० प० ४–१५१८
एवं धम्मज्झाणं	भावसं० ६३९
एवं पइण्णयाणि य	अंगपं० ३–३९
एवं पउमदहादो	तिलो० प० ४–२१०
एवं पएसपसरण-	वसु० सा० ५३२
एवं पडिकमणाए	भ० आरा० ७१९
एवं पडिट्ठविचित्ता	भ० आरा० १९६६
एवं पणछव्वीसे	गो० क० ७७०
एवं पणमिय सिद्धे	पवयणसा० ३–१
एवं पणपरसविहा	तिलो० प० २–५

एवं मो गज्जंतो वसु० सा० ७५
एवं सोमणसवणे जंबू० प० ४-१२३
एवं सोलस भेदा तिलो० प० ४-२५२८
एवं सोलस भेदा तिलो० प० ४-१४
एवं सोलस संखा तिलो० प० ४-२७४४
एवं सोलससंखे तिलो० प० ४-५
एवं हि जीवराया समय० १८
एवं हि रूवं पडिमं जिणस्स तिलो०प० ४-१६२
एवं हि सावराहो समय० ३०३
एवं होदि त्ति पुणो जंबू० प० १२-६१
एवं होदि पमाणं तिलो० प० ७-३०६
एस अखंडियसीलो भ० आरा० ३७५
एस उवाओ कम्मा- भ० आरा० १४४६
एस कमो णायव्वो वसु० सा० ३६१
एस करेमि पणामं मूला० १०८
एसणणिक्खेवादा- * मूला० ३३७
एसणणिक्खेवादा- * भ० आरा० १२०६
एस बलभद्दकूडो तिलो० प० ४-१६७८
एस मणू भेदाणं तिलो० प० ४-४६२
एस सुरासुरमणुसिंद- × तिलो० प० ६-७५
एस सुरासुरमणुसिंद- × पवयणसा० १-१
एसा गणधरथेरा भ० आरा० २६०
एसा छव्विहपूजा वसु० सा० ४७८
एसा जिणिंदप्पडिमा जिणाणं तिलो०प०४-१६६
एसा दु जा मदी दे समय० २५६
एसा दु णिरयसंखा जंबू० प० ११-१४४
एसा पसत्थभूदा पवयणसा० ३-५४
एसा भत्तपइण्णा भ० आरा० २०२६
एसेव लोयपाला जंबू० प० ४-२४६
एसो अक्खरलंभो आय० ति० २१-१२
एसो अण्णाणं पि अ मूला० १८७
एसो अट्ठपयारो भावसं० २६४
एसो अवंदणिज्जो छेदपिं० २७६
एसो आयपयारो आय० ति० १५-११
एसो आयपयारो आय० ति० १७-७
एसो उक्कस्साऊ तिलो० प० ८-५५६
एसो कमो च कोधे कसायपा० १७४(१२१)
एसो कमो च माणे कसायपा० ८०(२७)
एसो कमो दु जाणे जंबू० प० १२-४५
एसो चरणाचारो मूला० २४४
एसो च्चिय पुण चंदो आय० ति० १६-१८
एसो त्ति णत्थि कोई पवयणसा० २-२४
एसो दहप्पयारो कत्ति० अणु० ४०४
एसो दु बंधसामित्त- पंचसं० ५-४७८
एसो दु बाहिरतवो मूला० ३५६
एसो पच्चक्खाओ मूला० ६३५
एसो पमत्तविरओ भावसं० ६१३
एसो पयडीबंधो भावसं० ३४०
एसो पंचणमोयारो मूला० ५१४
एसो पुव्वाहिमुहो तिलो० प० ४-१८५५
एसो बंधसमासो पवयणसा० २-६७
एसो बंधसमासो पंचसं० ४-५१४
एसो बारसभेओ कत्ति० अणु० ४८६
एसो मम होउ गुरू दंसणसा० ४२
एसो य चंदजोओ आय० ति० १६-१३
एसो सम्मामिच्छो भावसं० २५८
एसो सव्वसमासो भ० आरा० ३७४
एसो सव्वो भेओ तिलो० सा० ८८१
एहु विहूइ जिणेसरहँ सावय० दो० १७६
ए(इ)हु घरुघरिणी एहु सहि सुप्प० दो० ७६
एहु जो अप्पा सो परमप्पा परम० प० २-१७४
एहु धम्मु जो आयरइ सावय० दो० ७६
एहु ववहारें जीवडउ परम० प० १-६०

ओ

ओकड्डणकरणं पुण गो० क० ४४५
ओकड्डदि जे अंसे कसायपा० २२१(१६८)
ओकड्डदि जे अंसे कसायपा० १५५(१०१)
ओगाढगाढणिचिदो भ० आरा० १८२४
ओगाढगाढणिचिदो पवयणसा० २-७६
ओगाढगाढणिचिदो पंचत्थि० ६४
ओगाढो वज्जमओ जंबू० प० ४-२२
ओगाहणाणि ताणं गो० जी० २४६
ओघं कम्मे सरगदि- गो० क० ३१८
ओघं तसेण थावर- गो० क० ३१०
ओघं देवे ण हि णिर- गो० क० ३४८
ओघं पंचक्खतसे गो० क० ३४१
ओघं वा णेरइये गो० क० ३४६
ओघादेसे संभव- गो० क० ८८०

ओधियसामाचारो	मूला० १२६
ओघे आदेसे वा	गो० जी० ७२६
ओघे चोद्दसठाणे	गो० जी० ७०६
ओघेणालोचेदि हु	भ० आरा० ५३४
ओघे मिच्छदुगे वि य	गो० जी० ७०७
ओघे वा आदेसे	गो० क० १०५
ओजस्सी तेजस्सी	भ० आरा० ४७८
ओदइए थी संढं	भावति० ६७
ओदइओ खलु भावो	भावति० २७
ओदइया चक्खुदुगं	भावति० ३४
ओदइया भावा पुण	भावति० ६८
ओदयिओ उवसमिओ	दव्वस० णय० ७५
ओदयियं उवसमियं	दव्वस० णय० ३६७
ओदयिया पुण भावा	गो० क० ८१८
ओदरगकोहपढमे	लद्धिसा० ३१८
ओदरगकोहपढमे	लद्धिसा० ३१६
ओदरगपुरिसपढमे	लद्धिसा० ३२०
ओदरगमाणपढमे	लद्धिसा० ३१६
ओदरगमाणपढमे	लद्धिसा० ३१७
ओदरबादरपढमे	लद्धिसा० ३१३
ओदरमायापढमे	लद्धिसा० ३१४
ओदरमायापढमे	लद्धिसा० ३१५
ओदरसुहुमादीए	लद्धिसा० ३१०
ओदरसुहुमादीदो	लद्धिसा० ३२१
ओमोदरिए घोरा-	भ० आरा० १५४४
ओरालदुगे वज्जे	गो० क० ४२५
ओरालमिस्सकम्मइय-	सिद्धंत० ६१
ओरालमिस्स-कम्मे	पंचसं० ४-११
ओरालमिस्स-कम्मे	पंचसं० ४-५६
ओरालमिस्स-कम्मे	पंचसं० ५-१६५
ओरालमिस्सजोए	पंचसं० ४-३५७
ओरालमिस्सजोगं	पंचसं० ४-१७४
ओरालमिस्सजोगे	गो० क० २५२
ओरालमिस्स तसवह-	गो० क० ७६० (क्षे० ४)
ओरालमिस्स सासणे	आस० ति० ४०
ओरालं तम्मिस्सं	आस० ति० ४६
ओरालं तम्मिस्सं	आस० ति० ८
ओरालं दंडदुगे	गो० क० ५८७
ओरालं पज्जत्ते	गो० जी० ६७६
ओरालं वा मिस्से	भावति० ८१
ओरालाहारदुए	पंचसं ४-४२
ओरालिए य तेरस	सिद्धंत० १४
ओरालिओ य देहो	पवयणसा० २-७६
ओरालियआहारदु-	पंचसं० ४-८१
ओरालिय उज्जोवं	पंचसं० ४-४६६
ओरालिय उत्तत्थं	गो० जी० २३०
ओरालिय तम्मिस्सं	सिद्धंत० २६
ओरालियमिस्सं वा	गो० जी० ६८३
ओरालियवेगुव्विय-	गो० जी० २४३
ओरालियवेगुव्विय-	कम्मप० ६८
ओरालियवेगुव्विय-	गो० क० ८१
ओरालियवेगुव्विय-	कम्मप० ७३
ओरालियवरसंचं	गो० जी० २५५
ओरालियंगवंगं *	पंचसं० ४-२६५
ओरालियंगवंगं ×	पंचसं० ४-२७६
ओरालियंगवंगं *	पंचसं ५-५८
ओरालियंगवंगं ×	पंचसं० ५-७२
ओरालियंगवंगं	पंचसं० ५-१२६
ओरालिये सरीरे	कसायपा० १८८(१३५)
ओराले वा मिस्से	गो० क० ११६
ओलगसालापुरदो	तिलो० प० ३-१३५
ओलंगमंतभूसण-	तिलो० प० ४-८१
ओल्लं संतं वत्थं	भ० आरा० २११३
ओवट्टणमुव्वट्टण-	कसायपा० १६१(१०८)
ओवट्टणा जहण्णा	कसायपा० १५२(६६)
ओवट्टेदि ठिदिं पुण	कसायपा० १५८(१०५)
ओसण्णा सेवणाओ	भ० आरा० १२६४
ओसहणयरी तह पुंड-	तिलो० प० ४-२२६२
ओसहदाणेण णरो	भावसं० ४६६
ओसाय हिमग महिगा	मूला० २१०
ओसाय हिमय महिया	पंचसं० १-७८
ओहिट्ठाणं चरिमे	तिलो० सा० १६६
ओहिट्ठाणं जंबू-	अंगप० १-३२
ओहिदुगे बंधतियं	गो० क० ७३०
ओहिमणपज्जवाणं	तिलो० प० ४-६६७
ओहिमणपज्जवाणं	गो० क० ७१
ओहिरहिदा तिरिक्खा	गो० जी० ४६१
ओहिं पि विजाणंतो	तिलो० प० ३-२२४
ओही-केवल-दंसण-	गो० क० ७३
ओहीदंसे केवल-	पंचसं० ४-३४

क

कउलायरिओ अक्खइ	भावसं० १७२
कक्कुदखुरसिंगलंगुल-	जंबू० प० ३–१०७
कक्कडमयरे सव्वब्भं-	तिलो० सा० ३८०
कक्कस-वयणं णिट्ठुर-	भ० आरा० ८३०
कक्कि-सुदो अजिदंजय	तिलो० प० ४–१५१२
कक्की पडि एक्केक्कं	तिलो० प० ४–१५१५
क-ख-गाईणं घाई	आय० ति० ६–१२
कच्चोल-कलस-थाला-	वसु० सा० २५५
कच्छपमाणं विरलिय	जंबू० प० ४–२००
कच्छम्मि महामेघा	तिलो० प० ४–२२४६
कच्छविजयम्मि विविहा	तिलो० प० ४–२२४४
कच्छस्स य वहुमज्झे	तिलो० प० ४–२२५५
कच्छं खेत्तं वसहिं	दंसणसा० २७
कच्छाए कच्छाए	जंबू० प० ४–२०२
कच्छाखंडाण तहा	जंबू० प० ७–७३
कच्छाणं पुव्वाणं	जंबू० प० ८–२
कच्छादिप्पमुहाणं	तिलो० प० ४–२६६१
कच्छादिप्पहुदीणं	तिलो० प० ४–२८७४
कच्छादिसु विजयाणं	तिलो० प० ४–२७०१
कच्छादिसु विजयाणं ॐ	तिलो० प० ४–२८७५
कच्छादिसु विजयाणं ॐ	तिलो० प० ४–२६१०
कच्छादिसु विसयाणं ॐ	तिलो० प० ४–२६६२
कच्छाविजयस्स जहा	जंबू० प० ७–७१
कच्छा सुकच्छा महाकच्छा×	तिलो० प० ४–२२०४
कच्छा सुकच्छा महाकच्छा×	तिलो० सा० ६८७
कच्छु-जर-खास-सोसो	भ० आरा० १५४२
कच्छु(त्त)रिकरकचसूजी(ची)	तिलो० प० २–३४२
कच्छुं कंडुयमाणो	भ० आरा० १२५२
कज्जल कज्जलपह सिरि-	तिलो० सा० ६२६
कज्जं अप्पज्झाणं	ढाढसी० १८
कज्जं किं पि ण साहदि	कत्ति० अणु० ३४३
कज्जं पडि जह पुरिसो	दव्वस० णय० ३०६
कज्जं सयलसमत्थं	दव्वस० णय० १६८
कज्जाभावेण पुणो	भ० आरा० २१३८
कज्जेण मुणह दव्वं	आय० ति० १८–३
कज्जेसु थिरेसु थिरा	आय० ति० २३–१

कट्ठग्गिमहीये डय	आय० ति० १८–११
कट्ठादिवियडिचालण	छेदस० ४४
कट्ठो वि मूलसंघो	ढाढसी० १५
कडयकडिसुत्तकुंडल-	जंबू० प० १३–१२५
कडयकडिसुत्तणेउर-	तिलो० प० ४–३६२
कडिओ अमित्तरित्तो	आय० ति० ६–४
कडिओट्ठेसु खरो वि य	आय० ति० ८–१४
कडि-सिर-णासा-हीणा	रिट्ठस० ६०
कडिसिरविसुद्धसेसं	जंबू० प० ४–३२
कडिसिरविसुद्धसेसं	जंबू० प० ४–१३३
कडिसिरविसेसअद्धं	जंबू० प० ४–३८
कडिसुत्त-कडय-कच्छा(कंठा)-	जंबू० प० ८–६६
कडिसुत्त-कडय-बंधी-	जंबू० प० ११–१३३
कडुअं मण्णइ महुरं	भावसं० १४
कडुगम्मि अणिव्वलिदम्मि	भ० आरा० ७३३
कडु तित्तं च कसायं	रिट्ठस० २४
कडूढइ सरिजलुजलहि विपिल्लिउ	पाहु० दो० १६७
कणओ कणयप्पह कण-	तिलो० प० ४–१५६८
कणय कणयाह पुण्णा	तिलो० सा० ६६४
कणयगिरीणं उवरिं	तिलो० प० ४–२०६६
कणयद्दिचूलिउवरि	तिलो० प० ८–८
कणयद्दिचूलि-उवरिं	तिलो० प० ८–१२६
कणयधराधरधीरं	तिलो० प० १–५१
कणयमओ पायारो	तिलो० प० ४–२२६७
कणयमयकुंडविरचिद-	तिलो० प० ५–२३५
कणयमयचारुदंडा	जंबू० प० १३–११६
कणयमयवेदिणिवहा	जंबू० प० ६–३०
कणयमयवेदिणिवहो	जंबू० प० ६–६६
कणयमयवेदिणिवहा	जंबू० प० ६–११६
कणयमया पासादा	जंबू० प० ५–५१
कणयमया पासादा ॐ	जंबू० प० ५–६०
कणयमया पासादा ॐ	जंबू० प० ६–१२
कणयमया फलिहमया	तिलो० प० ८–२०६
कणयमया भावादो	समय० १३०
कणयमिव णिरुवलेवा	मूला० १०२१

पद्य	स्थल
कर-जुअलं उव्वट्टिय	रिट्ठस० १४८
कर-जुअ-हीणे जाणह	रिट्ठस० १०४
करणपढमा दु जा वय	लद्धिसा० १४७
करणं अधापवत्तं	वसु० सा० ५१८
करणे अधापवत्ते	लद्धिसा० ३४३
करणेहिं होदि विगलो	भ० आरा० १७८७
करबंधं कारिज्जइ	रिट्ठस० २३
करभंगे चउमासं	रिट्ठस० ११८
करयल-णिक्खित्ताणिं	तिलो० प० ४-१०७८
कररुहकेसविहीणा	तिलो० प० ३-१२६
करवत्तसरिच्छाओ	तिलो० प० २-३०७
करवाल-कोंत-कप्पर-	जंबू० प० ३-८६
करवालपहरभिण्णं	तिलो० प० २-३४७
करहा चरि जिणगुणथलिहिं	पाहु० दो० ११२
करिकेसरिपहुदीणं	तिलो० प० ४-१०१४
करितुरयरहाहिवई	तिलो० प० १-४३
करिसणभूमीइ सुहं	आय० ति० १०-६
करिसतणेट्टावग्गी-	पंचसं० १-१०८
करि सिव-संगमु एक्कु पर	परम० प० २१४६
करिसीहवसहदप्पण-	जंबू० प० ४-२३
करिहयपाइक्का तह	तिलो० प० ६-७१
करिहरिसुकमोराणं	तिलो० प० ४-३६
करुणाए णाभिराजो	तिलो० प० ४-४६६
कलभो गयेण पंका-	भ० आरा० १३२१
कललगदं दसरत्तं	भ० आरा० १००७
कलसचउक्कं ठाविय	भावसं० ४३८
कलहपरिदावणादी	भ० आरा० ३६०
कलहप्पिया कदाइं	तिलो० सा० ८३४
कलहं काऊण खमा-	छेदपिं० २५०
कलहं वादं जूवा	लिंगपा० ६
कलहादिधूमकेदू-	मूला० २७५
कलहेण कुणइ लाहं	आय० ति० २-२२
कलहो बोलो झंझा	भ० आरा० २२२
कलुसीकदं पि उदयं	भ० आरा० १०७३
कलुसे कदम्मि अच्छदि	तिलो० प० ४-६२
कल्लं कल्लं पि वरं	मूला० ६३८
कल्लाणपरंपरयं ※	भ० आरा० ७४१
कल्लाणपरंपरया ※	दंसणपा० ३३
कल्लाणपावगाओ	मूला० ५००
कल्लाणपावगाए उ-	भ० आरा० १७१२
कल्लाणवादपुव्वं	अंगप० २-१०४
कल्लाणिड्ढिसुहाइं	भ० आरा० १४६४
कल्लाणे वरणयरे	दंसणसा० २६
कल्ले परे व परदो	भ० आरा० ५४१
कल्हारकमलकंदल-	जंबू० प० १-३६
कल्हारकमलकंदल-	जंबू० प० २-८१
कल्हारकमलकंदल-	जंबू० प० ६-४७
कल्हारकमलकंदल-	तिलो० प० ४-१६४६
कल्हारकमलकुवलय-	तिलो० प० ४-१३२
कल्हारकमलकुवलय-	तिलो० प० ४-३२३
कवणु सयाणु उ जीव,तुहुँ	सुप्प० दो० ४४
कव्वडणामाणि तहा	जंबू० प० ७-५०
कव्वडमडंबणिवहो	जंबू० प० ८-१३३
कव्वडमडंबणिवहो	जंबू० प० ६-१०२
कसणपुरिसेहिं णिज्जइ	रिट्ठस० १२६
कसिणा परीसहचमू	भ० आरा० २०२
कस्स थिरा इह लच्छी	भावसं० ५६०
कस्स वि णत्थि कलत्तं	कत्ति० अणु० ५१
कस्स वि दुट्ठकलत्तं	कत्ति० अणु० ५३
कस्स वि मरदि सुपुत्तो	कत्ति० अणु० ५४
कह एस तुज्झ ण हवदि	समय०१६६से०१३(ज०)
कह कीरइ से उवमा-	जंबू० प० ११-२२२
कह ठाइ सुक्कपत्तं	भ० आरा० १६२०
कहदि हु पयप्पमाणं	अंगप० २-६०
कहमवि णिस्सरिऊणं	वसु० सा० १७७
कहमवि तमंधयारे	भ० आरा० ६२६
कह वि तओ जइ छुट्टो	वसु० सा० १४६
कह सो घिप्पइ अप्पा	समय० २६६
कहं चरे कहं तिट्टे	अंगप० १-११
कहियाणि दिट्ठिवाए	भावसं ३८३
कहिं भोयण सहुँ भिट्टडी	सावय० दो० ६४
कंकणपिणद्धहत्था	जंबू० प० ४-२७३
कं करणं वोच्छिज्जदि	कसायपा० ११५(६२)
कंखा-पिवासणामा	तिलो० प० ३-४७
कंखाभावणिवित्तिं	या० अणु० ७५
कंखिदकलुसिदभूदो	मूला० ८१
कंचण-कयंब-केय (अ) इ-	जंबू० प० २-८०
कंचणकूडे णिवसइ	तिलो० प० ४-२०५
कंचण-णगाण तेया	जंबू० प० ६-४८

वाक्य	स्रोत
कंचणणिहस्स तस्स य	तिलो० प० ४—४८३
कंचणदंडुत्तुंगा	जंबू० प० ४—२३
कंचणपवालमरगय-	जंबू० प० १—३४
कंचणपायारजुदा	जंबू० प० ८—७२
कंचणपायारजुदा	जंबू० प० ६—१६२
कंचणपायारत्तय-	तिलो० प० ४—१५३
कंचणपायाराणं	तिलो० प० ५—१८३
कंचणपासादजुदा	जंबू० प० ८—१०८
कंचणपासादजुदा	जंबू० प० ८—१६७
कंचणमओ विसालो	जंबू० प० ६-२२
कंचणमओ सुतुंगो	जंबू० प० ८—१४७
कंचणमणिपरिणामो	जंबू० प० १३—११०
कंचण-मणि-पायारा	जंबू० प० २—६०
कंचणमणिरयणमया	जंबू० प० ५—३५
कंचणमणिरयणमया	जंबू० प० ६—१०४
कंचणमणिरयणमया	जंबू० प० ११—२४६
कंचणमयाणि खंडप्प-	तिलो० सा० ७३५
कंचणमरगयविद्दुम-	जंबू० प० ८—१५३
कंचण-रूप्प-दवाणं	पंचसं० ३—२
कंचणवेदीसहिदा	तिलो० प० ४—१४२
कंचणवेदीहिं जुदा	जंबू० प० ६—१२४
कंचणसमाणवण्णो	तिलो० प० ४—४०
कंचणसोवाणजुदा	जंबू० प० ८—१६
कंचणसोवाणाओ	तिलो० प० ४—२२११
कंटकसल्लेण जहा	भ० आरा० ४६५
कंटय कलिं च पासा-	छेदपिं० २१०
कंटयखण्णुयपडिणिय-	मूला० १५२
कंटयसक्करपहुदि	तिलो० प० ४—६०६
कंठगदेहि वि पाणे-	भ० आरा० १५१
कंठाणं वेदंतो	कसायपा० ८४(३१)
कंडुड्ढेण हुसासो	णायसा० ५६
कंडणी पीसणी चुल्ली	मूला० ६२६
कंडयगुणचरिमटिदी	लद्धिसा० ५८४
कंतेहिं कोमलेहिं य	जंबू० प० ४—२६२
कंदप्पकिल्विसासुर-	वसु० सा० १६३
कंदप्पकुक्कुआइय-	भ० आरा० १८०
कंदप्पदप्पदलणो	णाणसा० ४
कंदप्पदेवकिव्विस-	भ० आरा० १७६
कंदप्पभावणाए	भ० आरा० १६५६
कंदप्पमाइयाओ	भावपा० १३
कंदप्पमाभिजोगा	मूला० ११३३
कंदप्पमाभिजोग्गं	मूला० ६३
कंदप्प रायराजा	तिलो० प० ८—२६०
कंदप्पाइय वट्टइ	लिंगपा० १२
कंदफलमूलबीया	कल्लाणा० २०
कंदरपुलिणगुहादिसु	मूला० १३४
कंदरविवरदरीसु वि	जंबू० प० ११—१६५
कंदस्स व मूलस्स व	गो० जी० १८८
कंदं मूलं बीयं	भावपा० १०१
कंदा मूला छल्ली	मूला० २१४
कंदा य रिट्ठरयणं	तिलो० प० ४—१६६६
कंपिल्लपुरे विमलो	तिलो० प० ४—५३७
कंबलि वत्थं दुद्धिय	भावसं० ११७
कंसक्खरे बहुपयं	आय० ति० १८—८
काइयमादी सव्वं	भ० आरा० ६६५
काइय-वाइय-माणसि- ×	मूला० ३७२
काइय-वाइय-माणसि- ×	भ० आरा० ११८
काइय-वाइय-माणसि-	भ० आरा० ५३१
काइंदि (कार्कंदि) अभयघोसो	भ० आरा० १५५०
काइँ बहुत्तइँ जंपियइँ	सावय० दो० १०४
काइँ बहुत्तइँ संपयइँ	सावय० दो० ८६
काइँ त्रि खीराइँ जए	धम्मर० १०
काउस्सग्गणिजुत्ती	मूला० ६८३
काउस्सग्गम्हि ठिओ	वसु० सा० २७६
काउस्सग्गं मोक्खपह-	मूला० ६५२
काउस्सग्गुववासा	छेदपिं १५
काउस्सग्गे सुज्झदि	छेदस० ३४
काउस्सग्गो आलो-	छेदपिं० ८४
काउस्सग्गो काउस्स	मूला० ६४६
काउस्सग्गो खमणं	छेदपिं० २६२
काउस्सग्गो दाणं	छेदपिं० ३३०
काऊ काऊ काऊ	गो० जी० ५२८
काऊ काऊ तह का- ※	मूला० ११२४
काऊ काऊ तह का- ※	पंचसं० १—१८५
काऊण अट्ठ एयं	वसु० सा० ३७३
काऊण अंगसोही	रिट्ठस० १०६
काऊण करणलद्धी	दव्वस० णय० ३१४
काऊण णग्गरूवं	परम० प० २—१११
काऊण णमुक्कारं	दंसणपा० १
काऊण णमोक्कारं	मूला० ५०२

कोधो माणा माया	मूला० ५४८
कोधो माणो माया	मूला० ७३५
कोधो य हत्थिकप्पे	मूला० ४५४
कोधो व जदा माणो	पंचत्थि० १३८
कोधो सत्तुगुणकरो	भ० आरा० १३६५
को मज्झ इमो जम्मो	धम्मर० १६४
कोमलहरियतिणंकुर-	छेदपिं० ३८
कोमारतणुतिगिंछा	मूला० ४५२
कोमारमंडलित्ते	तिलो० प० ४-१४२४
कोमारमंडलित्ते	तिलो० प० ४-१४२८
कोमार-रज्ज-छदुमत्थ-	तिलो० प० ४-७०१
कोमारा तिण्णि सया	तिलो० प० ४-१४२७
कोमारा दोण्णि सया	तिलो० प० ४-१४२६
को व अणोवमरूवं	जंबू० प० ११-२३२
कोवं उप्पायंतो	सम्मइ० ३-७
कोविदिदित्थो साहू	समय० १८६ चे० १२ (ज०)
कोसदुगदीहबहला	तिलो० सा० ५८४
कोसदुगमेक्ककोसं	तिलो० प० १-२७३
कोसद्धं उच्छेहा	जंबू० प० ३-१६४
कोसद्धो अवगाढो	तिलो० प० ४-१८६०
कोसलय धम्मसीहो	भ० आरा० २०७३
कोसस्स तुरियमवरं	तिलो० सा० ३३८
कोसं आयामेण य	जंबू० प० ३-७६
कोसं आयामेण य	जंबू० प० ६-१५८
कोसंबीललियघडा	भ० आरा० १५५५
कोसाणं दुगमेक्कं	तिलो० सा० १२६
कोसायामं तदल-	तिलो० सा० ७३६
कोसि तुमं किं णामो	भ० आरा० १५०५
को सुसमाहि करउ को	जोगसा० ४०
कोसुंभो जिह राओ	पंचसं० १-२२
कोसेक्कसमुत्तुंगा	जंबू० प० ११-५४
कोहचउक्कं पढमं	भावसं० २६६
कोहचउक्काणेक्के	भावति० ६२
कोहदुगं संजलणग-	लद्धिसा० २६७
कोहदुसेसेणवहिद-	लद्धिसा० ४७१
कोहपढमं व माणो	लद्धिसा० ५५२
कोह-भय-लोह-हास-प-	मूला० ३३८
कोह-भय-हास-लोहा-	चारित्तपा० ३२
कोह-मद-माय-लोहे-	मूला० ६६६
कोहस्स पढमकिट्टिं	लद्धिसा० ५२७
कोहस्स पढमकिट्टी	लद्धिसा० ५४३
कोहस्स पढमकिट्टी	लद्धिसा० ५६३
कोहस्स पढमसंगह-	लद्धिसा० ५१३
कोहस्स पढमसंगह-	लद्धिसा० ५३८
कोहस्स बिदियकिट्टी	लद्धिसा० ५४०
कोहस्स बिदियसंगह-	लद्धिसा० ५४१
कोहस्स य जे पढमे	लद्धिसा० ५३३
कोहस्स य पढमठिदी-	लद्धिसा० २६८
कोहस्स य पढमठिदी-	लद्धिसा० ६००
कोहस्स य पढमादो	लद्धिसा० ५७३
कोहस्स य माणस्स य	लद्धिसा० ४६४
कोहस्स य माणस्स य	भ० आरा० २६१
कोहस्स य माणस्स य	गो० क० ४८६
को हं इह कस्साओ	भावसं० ४१६
कोहं खमए माणं	णियमसा० ११५
कोहं च छुहइ माणे	कसायपा० १३६ (८६)
कोहं च छुहदि माणे	लद्धिसा० ४३६
कोहं माणं माया	वसु० सा० ५२२
कोहाइकसाएसुं	पंचसं० ४-३६६
कोहाइचउसु बंधा	पंचसं० ५-४३८
कोहादिएहिचउहिवि	पवयणसा० ३-२६ चे० १७ (ज०)
कोहादिकसायाणं	गो० जी० २८६
कोहादिकिट्टियादिट्ठि-	लद्धिसा० ५३४
कोहादिकिट्टिवेदग-	लद्धिसा० ५३२
कोहादिचउक्काणं	तिलो० प० ४-२६४३
कोहादिसगब्भावक्खय-	णियमसा० ११४
कोहादी उवजोगे	कसायपा० ४६
कोहादीणमपुव्वं	लद्धिसा० ४६८
कोहादीणं सगसग-	लद्धिसा० ४८६
कोहादीणुदयादो	भावति० १६
कोहुप्पत्तिस्स पुणो	बा० अणु० ७१
कोहुवजुत्तो कोहो	समय० १२५
कोहेण जो ण तप्पदि	कत्ति० अणु० ३६४
कोहेण य कलहेण य	रयणसा० ११६
कोहेण लोहेण भयंकरेण	तिलो० प० ३-२१७
कोहेण व लोहेण व	छेदपिं० १४१
कोहो चउव्विहो वुत्तो	कसायपा० ७०(१७)
कोहो माणो माया	मूला० १२२८
कोहो माणो माया	बा० अणु० ४६
कोहो माणो माया	कल्लाणा० २३

कोहो माणो लोभो	भ० आरा० १३८७
कोहो य कोध रोसो	कसायपा० ८६ (३३)
कोहो व माण माया	दव्वस० णय० ३०७
कोहोवसामणद्धा	लद्धिसा० ३७०
कोंचविहंगारूढो	तिलो० प० ५-८६

ख

खइएण उवसमेण य	भावसं० ६४८
खइयो पयमणंतो	जंबू० प० १३-४६
खखपदसंसस्स (?) पुढं ※	तिलो० प० ४-५७
खखपदसंसस्स (?) पुढं ※	तिलो० प० ४-६८
खगगिरि-गंगट्ठ-वेदी	तिलो० सा० ८६५
खगमंडलो य जइ सो	आय० ति० २-२०
ख-गयण-णह-ट्ठ-दुग-इगि-	तिलो० प० ८-३८५
ख-गयण-सत्त-छ-णव-चउ	तिलो० प० ८-१५२
खग-सुण-खर-विस-करि-हरि-	आय०ति० १-२६
खगसहस्सवगूढं	जंबू० प० ११-२२७
खट्टंगकपालहरो	धम्मर० ६७
खट्टिक्क-डोंब-सवरा	जंबू० प० २-१६७
खणणुत्तावणवालण-	भ० आरा० १६८
खणणुत्तावणवालण-	भावपा० १०
खणणुत्तावणवालण	धम्मर० ७६
खणमेत्तेण अणादिय-	भ० आरा० २०२७
खणमेत्ते विसयसुहे	तिलो० प० ४-६१३
खणि रहरि (?) सविसाय वसु	सुप्प० दो० ५५
खत्तिय-बंभण-वइसा-	छेदपिं० ३५२
खत्तिय-वणि-महिलाओ	छेदपिं० ३४८
खत्तिय-सुद्दित्थीओ	छेदपिं० ३४६
खमणं छट्ठट्ठम दस-	छेदपिं० ७८
खम-दम-णियम-धराणं	भ० आरा० २१७०
खमामि सव्वजीवाणं	मूला० ४३
खयउवसमं च खइयं	भावसं० २६५
खयउवसमं पउत्तं	भावसं० २६६
खयउवसमियविसोही ×	लद्धिसा० ३
खयउवसमियविसोही ×	गो० जी० ६५०
खयकुट्ठमूलसूलो	रयणसा० ३६
खयरामरमणुयकरं-	भावपा० ३५
खय-वड्ढीण पमाणं	तिलो० प० ४-२४०२
खय-वड्ढीण पमाणं	तिलो० प० ४-२०३२
खयिगो हु पारिणामिय-	भावति० ३१
खरपवणवायवियलिय-	जंबू० प० ४-१८१
खरपंकप्पब्बहुला	तिलो० प० २-६
खरभाग-पंक-बहुला-	जंबू० प० ११-११५
खरभागो णादव्वो	तिलो० प० २-१०
खरभाय-पंकभाए	कत्ति० अणु० १४५
खवएसु उवसमेसु य	भावसं० ६४३
खवएसु य आरूढा	भावसं० १०७
खवओ किलामिदंगो	भ० आरा० ४५८
खवगपडिजग्गणाए	भ० आरा० ६७५
खवगसुहुमस्स चरिमे	लद्धिसा० २०२
खवगस्स घरदुवारं	भ० आरा० ६६६
खवगुवसमगेण विणा	भावति० ३०
खवगे य खीणमोहे	गो० जी० ६७
खवगो य खीणमोहो	कत्ति० अणु० १०८
खवणं वा उवसमणं	गो० क० ३४३
खवणाए पट्ठवगे ×	कसायपा० १०६ (५६)
खवणाए पट्ठवगो ×	पंचसं० १-२०३
खवयस्स अप्पणो वा	भ० आरा० ६७६
खवयस्स कहेदव्वा	भ० आरा० ६५४
खवयस्स चित्तसारं	भ० आरा० २०१७
खवयस्स जइ ण दोसे	भ० आरा० ४८४
खवयस्स तीरपत्तस्स	भ० आरा० ४५६
खवयस्सिच्छासंपा-	भ० आरा० ४४२
खवयस्सुवसंपण्णस्स	भ० आरा० ५१६
खवयं पच्चक्खावेदि	भ० आरा० ७०७
खविए अणकोहाई	पंचसं० ५-३५
खविदघणघाइकम्मे	भावति० १
खंचहि गुरुवयणंकुसहिं	सावय० दो० १२०
खंडंति दो वि हत्था	धम्मर० ५२
खंडुच्छेहो कोसा	तिलो० प० ४-११०३
खंणभसगणभसगचउ-	तिलो० प० ४-२८८२
खंती-मद्दव-अज्जव- ÷	मूला० ७५२
खंती-मद्दव-अज्जव- ÷	मूला० १०२०
खंतु पियंतु वि जीव जइ	पाहु० दो० ६३
खंदेण आसणत्थं	भ० आरा० १२४७
खंधं सयलसमत्थं ÷	तिलो० प० १-९५
खंधं सयलसमत्थं ÷	गो० जी० ६०३
खंधं सयलसमत्थं ÷	मूला० २३१

गंगा-महाणदीए	तिलो० प० ४-२४५
गंगा य रोहिदासा	जंबू० प० ३-१६१
गंगा-रोहिद-हारओ	तिलो० प० ४-२३७०
गंगा-सिंधु-णईणं	तिलो० प० ४-२६६
गंगा-सिंधु-णदीणं	तिलो० प० ४-१५४५
गंगा-सिंधू-णामा	तिलो० प० ४-२२६४
गंगा-सिंधू-तोरण-	जंबू० प० ३-१७८
गंगा-सिंधू वि तहा	जंबू० प० ८-१७८
गंगा-सिंधू सरिया	जंबू० प० २-६२
गंगा-सिंधू[हिं] तहा	जंबू० प० ६-४८
गंगा-सिंधूहि जुदो	जंबू० प० ८-१३२
गंगा-सिंधूहि तहा	जंबू० प० ८-१०४
गंगा-सिंधूहि तहा	जंबू० प० ८-११४
गंगा-सिंधूहि तहा	जंबू० प० ६-६६
गंगा-सिंधूहि तहा	जंबू० प० ६-१८
गंगो सुधम्मुणामो	सुदखं० ७४
गंडं महिसव-राहा	तिलो० प० ४-६०४
गंतुं पुव्वाहिमुहं	तिलो० प० ४-१३०५
गंतूण अण्णदेसे	छेदपिं० २८०
गंतूण गुरुसमीवं	वसु० सा० ३१०
गंतूण णंदणवणं	भ० आरा० १८३२
गंतूण णीलगिरिदो	जंबू० प० ६-२६
गंतूण तदो अवरे	जंबू० प० ८-१०२
गंतूण तदो पुव्वे	जंबू० प० ८-२५
गंतूण तदो पुव्वे	जंबू० प० ८-३८
गंतूण तदो पुव्वे	जंबू० प० ८-६२
गंतूण थोवभूमी	तिलो० प० ४-२४३
गंतूण दक्खिणमुहो	तिलो० प० ४-१२३०
गंतूण दीव णिवडइ	जंबू० प० ७-११५
गंतूण पच्छिमदिसे	जंबू० प० ८-११२
गंतूण य णियगेहं	वसु० सा० २८६
गंतूण सभागेहं	वसु० सा० ५०४
गंतूणं लीलाए	तिलो० प० ४-१२०६
गंतूणं सा मज्झं	तिलो० प० ४-२२३७
गंतूणं सीदिजुदं	तिलो० प० ७-३६
गंथच्चाएण पुणो	भ० आरा० ११७४
गंथच्चाओ इंदिय-	भ० आरा० ११६८
गंथच्चाओ लाघव-	भ० आरा० ८३
गंध-णिमित्तमदीदिय-	भ० आरा० ११३८
गंथणिमित्तं घोरं-	भ० आरा० ११४०
गंथत्थव्वित्थारो-	आय० ति० २३-११
गंथपडियाए लुद्धो	भ० आरा० ११४६
गंथमिण जो ण दिट्ठइ	रयणसा० १६६
गंथस्स गहण-रक्खण-	भ० आरा० ११६४
गंथहँ उप्परि परममुणि	परम० प० २-४६
गंथाडवी चरंतं	भ० आरा० १४०१
गंथाणियत्ततण्हा	भ० आरा० ११५५
गंथेसु घडिद-हिदओ	भ० आरा० ११६५
गंथोभयं णराणं	भ० आरा० ११२८
गंधड्ढकुसुममाला-	जंबू० प० ४-२७५
गंधरसफासरूवा	समय० ६०
गंधव्व-णट्ट-जट्टस्स	भ० आरा० ६३३
गंधव्वणयर-णासे	तिलो० प० ४-६१०
गंधव्व-गीय-वाइय-	जंबू० प० ५-८८
गंधव्वाण अणीया	जंबू० प० ४-२२१
गंधोएण जि जिणवरहँ	सावय० दो० १८२
गंधो णाणं ण हवइ	समय० ३९४
गंभीरो दुद्धरिसो	मूला० १५६
गंभीरो दुद्धरिसो	मूला० १८४
गाउअ-तिण्णि वि जाणसु	जंबू० प० १-२२
गाउअ-सय तह चउरो	जंबू० प० १३-६०
गाउद-चउत्थभागो	जंबू० प० १२-६७
गाउय आयामेण य	जंबू० प० २-५६
गाउय-दल-विक्खंभा	जंबू० प० ६-१३२
गाउय-पुधत्तमवरं	गो० जी० ४५४
गाढप्पहारविद्धो	भ० आरा० १५५३
गाढप्पहारसंता-	भ० आरा० १५२६
गाढो वित्थारो वि य	तिलो० सा० ५६१
गाम-णयरादि सव्वं	तिलो० प० ४-३४०
गामं णगरं रण्णं	मूला० २६३
गामाणं छण्णउदी	तिलो० प० ४-२२३५
गामाणुगामणिचिदो	जंबू० प० ८-६८
गामादिआलयाणं	छेदस० ५६
गामादिसु पडिदाइं	मूला० ७
गामे णगरे रण्णे	मूला० २६१
गामे णयरे रण्णे	धम्मर० १५५
गामेयरादिवासी	मूला० ७८५
गामे वा णयरे वा	णियमसा० ५८
गायदि णच्चदि धावदि	भ० आरा० ६१३
गायंति कन्दुराओ	धम्मर० ११६

गायंति जिणिंदाणं	तिलो० प० ४ ७५७
गायंति महुर-मणहर-	जंबू० प० ४-२२८
गायंति य णच्चंति य	जंबू० प० ११-२६४
गारविओ गिद्धीओ	मूला० ९५३
गालयदि विणासयदे	तिलो० प० १-६
गावइ णच्चइ धावइ	भ० आरा० ११३४
गाह-दह-पंक-वदिणदी	तिलो० सा० ६६७
गाहा-सदे असीदे	कसायपा० २
गाहेण अप्पगाहा	सुत्तपा० २७
गिण्हइ दव्वसहावं	णयच० २६
गिण्हदि अदत्तदाणं	लिंगपा० १४
गिण्हदि मुंचदि जीवो	कत्ति० अणु० ३१०
गिद्धा गरुडा काया	तिलो० प० २-३३५
गिद्धउ लय भारुंडो	रिट्ठस० १७६
गिरि-अब्भंतर-मज्झिम-	तिलो० सा० ३८२
गिरि-उदय-चउब्भागो	तिलो० प० ४-२७६८
गिरि-उवरिम-पासादे	तिलो० प० ४-२७५
गिरि-कंदर-विवर-सिला	णाणसा० ६
गिरि-कंदरं च अडविं	भ० आरा० १७३६
गिरि-कंदरं मसाणं	मूला० ६५०
गिरि-कूड-वरगिहेसु य	जंबू० प० ४-१०४
गिरि-जुद दुभद्दसालं	तिलो० सा० ६२०
गिरि-णदियादि-पदेसा	भ० आरा० २००७
गिरि-णिग्गउणइवाहो	भावसं० ३१६
गिरि-तड-वेदीदारं	तिलो० प० ४-१३६०
गिरि-तड-वेदीदारे	तिलो० प० ४-१३३५
गिरि-तुरियं पढमंतिम-	तिलो० सा० ७४६
गिरि-दीहो जोयणदल-	तिलो० सा० ७३०
गिरिपहुदीणं वासं	तिलो० सा० ७५२
गिरिपहु सिरिधरणामा	तिलो० प० ५-४१
गिरिबहुमज्झपदेसं	तिलो० प० ४-१७१२
गिरि-भद्दसाल-विजया	तिलो० प० ४-२६०२
गिरि-भद्दसाल-विजया	तिलो० प० ४-२८२०
गिरि-भद्दसाल-विजया-	तिलो० सा० ७५१
गिरि-मत्थयत्थ-दीवा	तिलो० सा० ६१६
गिरि-रहिदपरिहिगुणिदं	तिलो० सा० ६३१
गिरि-वरकूडेसु तहा	जंबू० प० ३-६६
गिरि-वरसिहरेसु तहा	जंबू० प० ७-५२
गिरि-वरिसाणं विगुणिय	तिलो०प० ४-१७४८
गिरि-सरि-सायर-दीवो	भावसं० २०८
गिरिम्मसहरपहवड्ढी	तिलो० प० ७-१४६
गिरिसीसगया दीवा	जंबू० प० १०-५०
गिहअंगदुमा णेया	जंबू० प० २-१२६
गिह-गंथ-मोह-मुक्का	बोधपा० ४५
गिहतरुवरवरगेहे	भावसं० ५८८
गिहलिंगे वट्टंतो	भावसं० १००
गिह-वावार-रयाणं	भावसं० ३६३
गिह-वावार-विरत्तो	भावसं० ३६६
गिह-वावारं चत्ता	कत्ति० अणु० ३७४
गिहिदत्थेयविहारो	मूला० १४८
गिहिदत्थो संविग्गो	भ० आरा० ३५
गिहि-वावारपरिट्ठिया	जोगसा० १८
गिंभे दिवसम्मि तहा	छेदस० ३३
गीतरदी गीतयसो	तिलो० सा० २६३
गीदत्थपादमूले	भ० आरा० ४४७
गीदत्था कदकज्जा	भ० आरा० १६७६
गीदत्थो चरणत्थो	भ० आरा० ३६६
गीदत्थो पुण खवयस्स	भ० आरा० ४४१
गीदरदी गीदर(य)सा	तिलो० प० ६-४१
गीदरवेसुं सोत्तं	तिलो० प० ४-३५४
गुज्झकओ इदि एदे	तिलो० प० ४-६३४
गुडखंडसक्करामिय- ÷	गो० क० १८४
गुडखंडसक्करामिय- ÷	कम्मप० १४४
गुणकारिओ त्ति भुंजइ	भ० आरा० ५७३
गुणगणमणिमालाए	भावपा० १५८
गुणगणविहूसियंगो	मोक्खपा० १०२
गुणगार-भागहारं	जंबू० प० १२-६०
गुणगारा पणणउदी	तिलो० प० १-२४५
गुणगारेण विभत्तं	जंबू० प० ५-७
गुण-गुणिआइचउक्के +	दव्वस० णय० १६२
गुण-गुणिपज्जय-दव्वे ※	णयच० ४६
गुण-गुणिपज्जय-दव्वे ※	दव्वस० णय० २१६
गुण-गुणियाइचउक्के +	णयच० २०
गुणजीवठाणरहिया	गो० जी० ७३१
गुणजीवादिपरूवण-	सुदखं० ८४
गुणजीवा पज्जत्ती ×	पंचसं० १-२
गुणजीवा पज्जत्ती ×	गो० जी० २
गुणजीवा पज्जत्ती	गो० जी० ६७६
गुणजीवा पज्जत्ती	गो० जी० ७२४
गुणजीवा पज्जत्ती	तिलो० प० ३-१८२

गुणजीवा पज्जत्ती	तिलो० प० २–२७२
गुणजीवा पज्जत्ती	तिलो० प० ४–४१०
गुणजीवा पज्जत्ती	तिलो० प० ८–६६२
गुणठाणएसु अट्ठसु	पंचसं० ५–२६६
गुणठाण-मग्गणेहिं य	बोधपा० ३१
गुणठाणादिसरूवं	तिलो० प० ८–४
गुणणिव्वत्तियसण्णा	सम्मइ० ३–३०
गुणतीसजोयणसदा-	मूला १०६३
गुणदो अणंतगुणही-	कसायपा० १५०(९७)
गुणदो धिगस्स विणयं	पवयणसा० ३–६६
गुणधरगुणेसु रत्ता	तिलो० प० ४–३६६
गुणपच्चइगो छद्धा	गो० जी० ३७१
गुणपज्जयदो दव्वं	दव्वस० णय० ४१
गुण-पज्जयाण लक्खण-	दव्वस० णय० २८२
गुण-पज्जयादभिण्णो	अंगप० १–३८
गुण-पज्जायसहावा	दव्वस० णय० ६७
गुण-पज्जाया दवियं	दव्वस० णय० ८
गुणपरिणदासणं परि-	तिलो० प० १–२१
गुणपरिणामादीहिं	भ० आरा० ३२५
गुणपरिणामादीहिं	भ० आरा० ३२८
गुणपरिणामो जायइ	वसु० सा० ३४३
गुणपरिणामो सड्ढा	भ० आरा० ३०६
गुणभरिदं जदि-णावं	भ० आरा० १४६५
गुणयारद्धच्छेदा	तिलो० सा० १०५
गुण-वय-तव-सम-पडिमा-	रयणसा० १५६
गुणवंतहँ सह संगु करि	सावय० दो० १४१
गुणवीसउत्तराणिं	तिलो० प० ८–१८२
गुणसण्णिदा दु एदे	समय० ११२
गुणसहमंतरेणा-	सम्मइ० ३–१४
गुणसंकरणसरूवं	तिलो० प० ५–१६८
गुणसंजादप्पयडि	गो० क० ६१२
गुणसेढि अणंतगुणा-	कसायपा० १६५ (११२)
गुणसेढिअणंतगुणे- ※	कसायपा० १५६ (१३)
गुणसेढिअणंतगुणे- ※	लद्धिसा० ४५१
गुणसेढिअसंखेज्जा +	कसायपा० १४६ (९६)
गुणसेढिअसंखेज्जा +	लद्धिसा० ४३६
गुणसेढि अंतरट्ठिदि	लद्धिसा० ४७१
गुणसेढिसंखभागा	लद्धिसा० १३६
गुणसेढीए सीसं	लद्धिसा० ८६
गुणसेढी गुणसंकम ×	लद्धिसा० ३०
गुणसेढी गुणसंकम ×	लद्धिसा० ३६०
गुणसेढी गुणसंकम	लद्धिसा० ३६४
गुणसेढी-गुणसंकम-	लद्धिसा० ५३
गुणसेढीदीहत्तम-	लद्धिसा० ५५
गुणसेढीदीहत्तं	लद्धिसा० ३६५
गुणसेढी सत्थेदर-	लद्धिसा० ३११
गुणहाणिअणंतगुणं	गो० क० ४३५
गुणाधिए उवज्झाए	मूला० ३६०
गुणिदूण दसेहि तदो	तिलो० प० ४–२५२०
गुणिय चउरादिखंडे	लद्धिसा० ५८१
गुत्तित्तयजुत्तस्स य	भावसं० १०४
गुत्तिपरिखाइ गुत्तं	भ० आरा० १८४०
गुत्ति-मयं लेस्साणं	सुदखं० ७६
गुत्ता जोगणिरोहो	कत्ति० अणु० ९७
गुत्ती समिदी धम्मो	कत्ति० अणु० ९६
गुरुआरंभइँ णरयगइ	सावय० दो० १६१
गुरुदत्त-पंडवेहिं य	आरा० सा० ५०
गुरु दिणयरु गुरु हिमकरणु	पाहु० दो० १
गुरुदेवतचकारणु	द्वादसी० २४
गुरुपरिवादो सुदवो-	मूला० १५१
गुरुपुरओ किदियम्मं	वसु० सा० २८२
गुरुभत्तिविहीणाणं	रयणसा० ८२
गुरु-लघु(हु)देहपमाणो	दव्वस० णय० १२१
गुरु-साहम्मिय-दव्वं	मूला० १२८
गुलगुलंतेहिं तिवलेहिं	वसु० सा० ४१२
गूढसिरसंधिपव्वं ※	मूला० २१६
गूढसिरसंधिपव्वं ※	गो० जी० १८६
गेण्हइ दव्वसहावं	दव्वस० णय० १६८
गेण्हइ वत्थुसहावं	दव्वस० णय० १६१
गेण्हइ विधुणइ धोवइ	पवयणसा० ३-२०क्षे०५(ज)
गेण्हदि णेव ण मुंचदि	पवयणसा० २–९३
गेण्हदि णेव ण मुंचदि	पवयणसा० १–३२
गेण्हदि व चेलखंडं	पवयणसा० ३–२०क्षे०३(ज)
गेण्हंते सम्मत्तं	तिलो० प० ८–६७७
गेरुय चंदण वब्बग	मूला २०१
गेरुय हरिदालेण व	मूला० ८७४
गेविज्जमणुद्दिसयं	तिलो० प० ८–११७
गेवेज्ज पत्थपूरा	तिलो० प० ४–२६१
गेवेज्जयादिकाओ	जंबू० प० ११–३४८
गेहुच्छेहो दुसया	तिलो० प० ८–४४४

घ

घम्मा वंमा मेघा ❊ जंबू० प० ११–११२
घम्मे तित्थं वंधदि गो० क० १०६
घयवरदीवादीणं जंबू० प० १२–२६
घरवावारा केई भावसं० ३८५
घरवासउ मा जाणि जिय + पाहु० दो० १२
घरवासउ मा जाणि जिय + परम०प० २–१४४
घरिणी घरेण सोहइ आय० ति० १०–१
घरु पुरु परियणु धणियधणु सावय० दो० १२०
घंटाए कप्पवासी तिलो० प० ४–७०६
घंटाकिंकिणिणाछिद- जंबू० प० ५–८१
घंटाकिंकिणिणिवहा जंबू० प० ४–१६५
घंटाकिंकिणिणिवहा जंबू० प० ३–१७२
घंटापडायपउरा जंबू० प० ६–१८३
घंटाहिं घंटसद्दा- वसु० सा० ४८६
घाइ-चउक्कविणासे भावसं० ६६५
घाइ-चउक्कहँ किउ विलउ जोगसा० २
घाइ-चउक्कं चत्ता दव्वस० णय० ४०७
घाइ-तियं खीणंता पंचसं० ३–६
घाइ-चउक्के णट्ठे तच्चसा० ६६
घाईकम्मखयादो दव्वस० णय० १०७
घाईणं अजहण्णो पंचसं० ४–४३६
घाडा घडा चउत्थे तिलो० सा० १५८
घाणिंदिय वड वसि करहि सावय० दो० १२५
घाणिंदियसुदणाणा तिलो० प० ४–९८६
घाणुक्कस्सखिदीदो तिलो० प० ४–६६०
घादयदव्वादो पुण लद्धिसा० ५२३
घादंता जीवाणं जंबू० प० ११–१६७
घादि-कम्म-विघादत्थं चारि० भ० २
घादिक्खएण जादा तिलो० प० ४–६०४
घादिक्खयजादेहिं य जंबू० प० १३–१०१
घादि-ति-मिच्छ-कसाया गो० क० १२४
घादि-तियाणं णियमा लद्धिसा० २३५
घादि-तियाणं वंधो लद्धिसा० ४३६
घादि-तियाणं वंधो लद्धिसा० ४४८
घादि-तियाणं सगसग- गो० क० २०१
घादि-तियाणं मत्तं लद्धिसा० ५४६
घादि-तियाणं संखं लद्धिसा० ४०५
घादि-ति सादं मिच्छं लद्धिसा० २०
घादिं व वेयणीयं ÷ गो० क० १६
घादिं व वेयणीयं ÷ कम्मप० २०
घादीण मुहुत्तंतं लद्धिसा० ५६७
घादीणं अजहण्णो गो० क० १७८
घादीणं छदुमत्था + पंचसं० ४–२१७
घादीणं छदुमट्ठा + गो० क० ४५५
घादी णीचमसादं × गो० क० ४३
घादी णीचमसादं × कम्मप० ११४
घादी वि अघादिं वा ❊ गो० क० १७
घादी वि अघादिं वा ❊ कम्मप० १८
घादे एक्कावीसं छेदपिं० ३१०
घित्तूणं⋯पडिमा रिट्ठस० १८२
घिद(घय)भरिदघडसरित्थो मूला० ६६१
घोडगलिंडसमाणस्स भ० आरा० १२४७
घोडणजोगमसण्णी पंचसं० ४–४०५
घोडणजोगोसण्णी गो० क० २१६
घोडय लदा य खंभो मूला० ६६८
घोडयलद्दिसमाणस्स मूला० ६६४
घोरट्ठकम्मणियरे दलिदूण तिलो०प० ४–१२०६
घोरसंसारभीमाडवीकाणणे पंचगु० भ० ४
घोरु करंतु वि तवचरणु परम० प० २–१६१
घोरु ण चिण्णउ तवचरणु परम० प० २–१६७
घोरे णिरयसरिच्छे मूला० ८०६
घोसादकी य जह किमि भ० आरा० १२४३

च

चइऊण महामोहं कत्ति० अणु० २२
चइऊण सव्वसंगे आरा० सा० ११२
चइऊण सव्वसंगे धम्मर० १४६
चइदम्मि किण्हपक्खे तिलो० प० ७–५३६
चइदूण चउगदीओ तिलो० प० ४–६४१
चउअट्ठअघातितिपण- तिलो० प० ४–२६२७
चउअट्ठपंचसत्तट्ठ- तिलो० प० ४–२६२४
चउ अड खं दुग दो णभ तिलो० प० ४–२८८०
चउइगिछक्कदुगअड- तिलो० प० ४–२८७१
चउ दुग णव पण दो दो तिलो० प० ४–२६१७
चउदुगदुगपणसगदुग तिलो० प० ४–२६०४
चउ-ण्यरणि-गोण्हि सु- पंचसं० १–३८

वाक्य	संदर्भ
चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ	जोगसा० ७१
चउ-कूड तुंगसिहरो	जंबू० प० ८-४०
चउ-कोसरुंदमज्झे	तिलो० प० ४-१६६७
चउ-कोसेहिं जोयण	तिलो० प० १-११६
चउ-गइ इह संसारो *	णयच० ६४
चउ-गइ इह संसारो *	दव्वस० णय० २३४
चउ-गइ-दुक्खहँ तत्ताहँ	परम० प० १-१०
चउ-गइ-पंकविमुक्कं	तिलो० प० ८-७००
चउ-गइ-भवसंभमणं	णियमसा० ४२
चउ-गइ-सरूवरूवय-	गो० जी० ३३८
चउ-गइ-सरूवरूवय-	अंगप० १-७
चउ-गइ-संकमणुजुदो	अंगप० १-२५
चउ-गइ-संसारगमण-	रयणसा० १४५
चउ-गदिभव्वो सण्णी	कत्ति० अणु० ३०७
चउगयणसत्तणवणह-	तिलो० प० ७-२४९
चउ-गोउरखेत्तेसुं	तिलो० प० ७-२७६
चउ-गोउरजुत्तेसु य	तिलो० प० ७-२०५
चउ-गोउरदारेसुं	तिलो० प० ४-७४३
चउ-गोउरमणिमाल-ति	तिलो० सा० ९८३
चउ-गोउरवं वेदी-	तिलो० सा० ६४२
चउ-गोउरसंजुत्ता	तिलो० सा० ८८५
चउ-गोउरसंजुत्ता	तिलो० प० ४-७८
चउ-गोउराणि सालत्ति-	तिलो० प० ४-१६४२
चउ-गोउरा ति-साला	तिलो० प० ३-४४
चउ चउ कूडा पडिदिस-	तिलो० सा० ६४४
चउ चउ सहस्स कमला-	जंबू० प० ६-३४
चउ चउ सहस्समेत्ता	तिलो० प० ७-६४
चउ चेत्तदुमा जंबू-	तिलो० सा० ५०३
चउ छक्क अड दु अड पण	तिलो०प० ४-२६५७
चउ छक्कदि चउ अट्ठं	गो० क० ३६३
चउ छक्क पंच णभ छह	तिलो० प० ४-२६०५
चउ छक्कं वंधंतो	पंचसं० ४-२४०
चउछव्वीसिगितीस य	पंचसं० ५-२४५
चउ-जुत्तजोयणसयं	तिलो० प० ४-२०३६
चउ-जोयण उच्छेहं	तिलो० प० ४-१८१९
चउ-जोयण उच्छेहो	तिलो० प० ४-१९१०
चउ-जोयण-लक्खाणि	तिलो० प० २-१५२
चउ-जोयण-लक्खाणि	तिलो० प० ४-२५९४
चउ-जोयण-लक्खाणि	तिलो० प० ४-२८१४
चउ-जोयण-विक्खंभं	जंबू० प० ६-१५१
चउ-ठाणेसुं सुण्णा	तिलो० प० ३-८४
चउ-ठाणेसुं सुण्णा	तिलो० प० ३-८८
चउ-ठाणेसुं सुण्णा	तिलो० प० ७-४१८
चउणउदि-जोयणाणि य-	जंबू० प० ७-९१
चउणउदिसयं णवसत्तउ-	तिलो० सा० ७५४
चउणउदिसया ओही	तिलो० प० ४-११०१
चउणउदि-सहस्सा इगि-	तिलो० प० ७-३३८
चउणउदि-सहस्सा इगि-	तिलो० प० ७-३३९
चउणउदि-सहस्सा इगि-	तिलो० प० ७-३४०
चउणउदि-सहस्सा छस्स-	तिलो० प० ७-३४१
चउणउदि-सहस्सा तिय-	तिलो० प० ७-३२२
चउणउदि-सहस्सा तिस-	तिलो० प० ७-३२३
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-३०५
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-३०६
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-३३९
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-४०७
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-४०८
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-४०९
चउणउदि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-४१०
चउणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१७५०
चउणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-२२२४
चउणउदि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-२३८
चउणउदिं च सहस्सा	जंबू० प० ३-२७
चउणउदिं च सहस्सा	जंबू० प० ७-३०
चउणभअडपणपणदुग-	तिलो०प० ४-२६८२
चउणभणव इगि अडणव	तिलो०प०४-२८५२
चउणवअंवरपणसग-	तिलो० प० ४-२६७६
चउणवगयणट्ठनिया	तिलो० प० ७-५६६
चउ णव णव इगि खं णभ	तिलो०प०४-२८५६
चउणवपणचउछक्का	तिलो० प० ४-२२२१
चउ-ति-दुग-कोडकोडी	तिलो० सा० ७८१
चउतियइगिपणतिदयं	तिलो० प० ४-२६०८
चउतियतियपंचा तह	तिलो० प० ७-४६५
चउतियणवसगछक्का	तिलो० प० ७-३१६
चउतिसातिसयभेदे (जुत्ते?)	तिलो० प० ४-९२६
चउतीस-सहस्साणि	तिलो० प० ४-२२३६
चउतीसं चउदालं	तिलो० प० ३-२०
चउतीसं पयडीणं	पंचसं० ३-७९
चउतीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-११९
चउतीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-३५

चउवग्गं तेणउदी	सुदखं० १६
चउवच्छरसमधियअड-	तिलो० प० ४-६४६
चउ-वणमसोयसत्तच्छ-	तिलो० सा० १०११
चउवण्ण तिसयजोयण	तिलो० प० ४-१२४६
चउवण्ण तिसयजोयण	तिलो० प० ८-६१
चउवण्ण-तीस-णव-चउ-	तिलो० प० ४-१२४२
चउवण्ण-तीस-णव-चउ-	तिलो० सा० ८०६
चउवण्णब्भहियाणं	तिलो० प० ४-२८३८
चउवण्ण-लक्ख-वच्छर-	तिलो० प० ४-१२६१
चउवण्ण-सहस्साणि	तिलो० प० ४-२२२७
चउवण्ण-सहस्सा सग-	तिलो० प० ७-३७१
चउवण्ण-सहस्सा सग-	तिलो० प० ७-३५३
चउवण्णं च सहस्सा	तिलो० प० ७-५०५
चउवं(रं)कताडिदाई	तिलो० प० ४-११३२
चउ-वावी मज्झपुरी	तिलो० प० ४-१६६१
चउविदिसासुं गेहा	तिलो० प० ४-२३१७
चउविसजिणाण णामट्ठ-	अंगप० ३-१४
चउविह-उवसग्गेहिं	तिलो० प० १-५६
चउविह-कसायमहणे	जोगिभ० ४
चउविह-दाणं उत्तं	भावसं० ५२२
चउविह-दाणं भणियं	जंबू० प० २-१४५
चउविहमरूविदव्वं	वसु० सा० २०
चउविहमेयविहं वा	छेदपिं० ६६
चउविह-विकहासत्तो	भावपा० १६
चउविह-सुरगण-णमियं	जंबू० प० ५-१२५
चउवीस-छट्ठ-दियहे	रिट्ठस० २३४
चउवीस-जलहिखंडा	तिलो० प० ४-२५२४
चउवीस-जुदट्ठसया	तिलो० प० ८-२००
चउवीस-जुदेक्कसयं	तिलो० प० ७-२६०
चउवीसट्ठारसयं	गो० क० ७६७
चउवीस-चार-तिघणं	तिलो० सा० ८०३
चउवीस-मुहुत्तं पुण	तिलो० सा० २०६
चउवीस-मुहुत्ताणि	तिलो० प० २-२८७
चउवीस य णिज्जुत्ता	मूला० ५७४
चउवीस वि ते दीवा	जंबू० प० १०-५२
चउवीस-विभंगाणं	जंबू० प० ११-३१
चउवीस-विभंगाणं	जंबू० प० ११-७८
चउवीस वीस बारस	तिलो० प० २-६८
चउवीस-सहस्साओ	जंबू० प० ५-१५
चउवीस-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१३६२
चउवीस-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१४०१
चउवीस-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१८८२
चउवीस-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१८८८
चउवीस-सहस्साधिय-	तिलो० प० ३-७३
चउवीसं चउवीसं	तिलो० सा० ६२१
चउवीसं चावाणि	तिलो० प० ४-३३
चउवीस-सहस्सेहिं य	जंबू० प० ६-१५४
चउवीसं चिय कोसा	तिलो० प० ४-७४६
चउवीसं तित्थयरा	अंगप० २-३६
चउवीसं दो उवरिं	पंचसं० ५-४४१
चउवीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-८६
चउवीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-१३०
चउवीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-४६
चउवीसं वज्जित्ता	पंचसं० ५-१६२
चउवीसं वज्जुदया	पंचसं० ५-४१६
चउवीसं वज्जुदया	पंचसं० ५-४२७
चउवीसं वज्जुदया	पंचसं० ५-४३०
चउवीसा चिय दंडा	तिलो० प० ४-१४४२
चउवीसेण य गुणिया	पंचसं० ५-३३१
चउवीसेण वि गुणिदे	पंचसं० ५-३४६
चउवीसेण वि गुणिया	पंचसं० ५-३११
चउव्विहं तं हि विणय-	अंगप० २-१००
चउ सग सग णभ छक्कं	तिलो० प० ४-२८८५
चउसट्ठि-चमरसहिओ	दंसणपा० २६
चउसट्ठि-चामरेहिं	तिलो० प० ४-६२५
चउसट्ठि छस्सयाणि	तिलो० प० २-१६२
चउसट्ठि-पदं विरलिय	गो० जी० ३५२
चउसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ३-७०
चउसट्ठि होंति भंगा	पंचसं० ५-३३२
चउसट्ठि चुलसीदी	जंबू० प० ११-१२५
चउसट्ठि व सहस्सं	जंबू० प० ७-२६
चउसट्ठी अट्ठसया	तिलो० प० ७-५६२
चउसट्ठी गुरुमासा	छेदपिं० २२४
चउसट्ठी चउसीदी	तिलो० प० ३-११
चउसट्ठी चालीसं	तिलो० प० ८-१५६
चउसट्ठी-परिवज्जिद-	तिलो० प० ५-२७
चउसट्ठी पुट्ठीए	तिलो० प० ४-४०४
चउ-सण्णा णरतिरिया	तिलो० प० ४-४१३
चउ-सण्णा ताओ भय-	तिलो० प० ३-१८७
चउ-सण्णा तिरियगदी	तिलो० प० ५-३०४

चउ सत्त एक्क दुग चउ	तिलो० प० ४-२८६४
चउसत्तट्ठेक्कदुगं	तिलो० प० ४-२८३४
चउ सत्त दोण्णि अट्ठ य	तिलो० प० ४-२६४७
चउसद-जुद-दुसहस्सा	तिलो० प० ४-१२३५
चउसमएसु रसस्स य	लद्धिसा० ६२१
चउसय छ-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१२३२
चउसय सत्त-सहस्सा	तिलो० प० ४-१२३३
चउसहियतीसकोट्ठा	तिलो० प० ४-१२८५
चउसाला वेदीओ	तिलो० प० ४-७२१
चउसीदि चउसयाणं	तिलो० प० १-२२६
चउसीदि-लक्खगुणिदा	तिलो० प० ४-३०६
चउसीदि-सया ओही	तिलो० प० ४-११२१
चउसीदि-सहस्साइं	तिलो० प० ४-१०६०
चउसीदि-सहस्साइं	तिलो० प० ४-१०६३
चउसीदि-सहस्साणि	तिलो० प० ८-२१६
चउसीदि-हदलदाए	तिलो० प० ४-३०५
चउसीदी-अधियसयं	तिलो० प० ७-२२०
चउसीदी कोडीओ	तिलो० प० ४-२७०२
चउसीदी लक्खाणि	तिलो० प० ८-४२६
चउसु दिसाभागेसुं	तिलो० ५-६०
चउसु वि दिसाविभागे	जंबू० प० ६-१६१
चउसु वि दिसासु तोरण-	वसु० सा० ३६७
चउसु वि दिसासु भागे	जंबू० प० ८-८१
चउहत्तरि छच्चसया	जंबू० प० ३-१८
चउहत्तरि-जुद-सगसय	तिलो० प० ८-७४
चउहत्तरि सत्तत्तरि	पंचसं० ५-४७५
चउहत्तरिं सहस्सा	तिलो० प० ८-२६
चउहत्तरिं सहस्सा	तिलो० प० ८-५६
चउहिद-तिगुणिद-रज्जू-	तिलो० प० १-२५६
चउ हेट्ठा छह उवरिं	पंचसं० ५-४४७
चक्कधरो वि सुभूमो	भ० आरा० १६५०
चक्कसरकणयतोमर-	तिलो० प० २-३३३
चक्कसरसूलतोमर-	तिलो० प० २-३१८
चक्कहर-केवलीणं	सुदक्खं० ४०
चक्कहरमाणमलणो	तिलो० प० ४-२२८६
चक्कहरमाणमहणा	जंबू० प० २-१०६
चक्कहर-राम-केसव-	भावपा० १५६
चक्कंत चमक्कंतो	जंबू० प० ११-१४८
चक्कि-कुरु-फणि-सुरिंदे-	तिलो० सा० ५६०
चक्किदु तेरसगुणा	तिलो० सा० ८४४
चक्किस्स विजयभंगो	तिलो० प० ४-१६१६
चक्कीण चामराणि	तिलो० प० ४-१३८१
चक्कीण माणमलणो	तिलो० प० ४-२६६
चक्की दो सुण्णाइं	तिलो० प० ४-१२८६
चक्की भरहो दीहा-	तिलो० सा० ८७७
चक्की भरहो सगरो	तिलो० सा० ८१५
चक्कुप्पत्तिपहिट्ठा	तिलो० प० ४-१३०२
चक्केहिं करकचेहिं य	धम्मर० ४८
चक्केहिं करकचेहिं य	भ० आरा० १५७५
चक्खिंदियादिदुप्परि-	छेदपिं० १८६
चक्खु-अचक्खु-अवहि-के-	सम्मइ० २-२०
चक्खु-अचक्खू-ओही-	भावति० ६
चक्खु-अचक्खू ओही	णियमसा० १४
चक्खु-अचक्खू-ओही-	कम्मप० ४७
चक्खुजुगे आलाए	णियमसा० १०३
चक्खुम्म जसस्सी अहि-	तिलो० सा० ७६३
चक्खुम्मि ण साहारण-	गो० क० ३२५
चक्खुविभंगूणा सग	सिद्धंत० ३५
चक्खुस्स दंसणस्स य	भ० आरा० १२
चक्खुं व दुब्बलं जस्स	भ० आरा० ७३
चक्खूण जं पयासइ ☼	गो० जी० ४८३
चक्खूण जं पयासइ ☼	कम्मप० ४४
चक्खूण जं पयासइ ☼	पंचसं० १-१३६
चक्खूणमिच्छसासण-	गो० क० ८३०
चक्खूदंसे छद्धा	पंचसं० ४-१६
चक्खूदंसे जोगा	पंचसं० ४-४१
चक्खू सुदं पुधत्तं	कसायपा० २०
चक्खू सोअं घाणं	रिट्ठस० ३
चक्खू सोदं घाणं	मूला १६
चक्खू सोदं घाणं	गो० जी० १७०
चट्टहिं पट्टहिं कुंडियहिं	परम० प० २-८१
चडणे णामदुगाणं	लद्धिसा० ३८३
चडणोदरकालादो	लद्धिसा० ३४४
चडपडअपुव्वपढमो	लद्धिसा० ३८६
चडपडणमोहचरिमे	लद्धिसा० ३८३
चडपडणमोहपढमे	लद्धिसा० ३८१
चडबादरलोहस्स य	लद्धिसा० ३६७
चडमाणअपुव्वस्स य	लद्धिसा० ३८८
चडमाणस्स य णामा-	लद्धिसा० ३७७
चड-माय-माण-कोहो	लद्धिसा० ३७१

चउमाया वेदद्धा	लद्धिसा० ३६६
चडिदूणेवमणंतं	तिलो० सा० ८६
चतुरो इसुगारणगा	जंबू० प० १३–१४६
चत्तं रिसिआयरणं	भावसं० १४४
चत्ता अगुत्तिभावं	णियमसा० ८८
चत्ता पावारंभं	पवयणसा० १–७६
चत्तारि अट्ठ सोलस	जंबू० प० ३–१६५
चत्तारिआदणवबंध-	पंचसं० ५–३६
चत्तारि कला णेया	जंबू० प० ३–२८
चत्तारिकूडसहिओ	जंबू० प० ६–१७१
चत्तारि गुणट्ठाणा	तिलो० प० ८–६६३
चत्तारि चउदिसासुं	तिलो० प० ४–२४७७
चत्तारि जणा पाणय-	भ० आरा० ६६३
चत्तारि जणा भत्तं	भ० आरा० ६६२
चत्तारि जणा रक्खंति	भ० आरा० ६६४
चत्तारि जोयणसयं	जंबू० प० ११–६०
चत्तारि जोयणसया	जंबू० प० ८–१६६
चत्तारि जोयणसया	जंबू० प० ६–४
चत्तारि जोयणाणं	तिलो० प० ४–२६१५
चत्तारि तिग चदुक्के	कसायपा० ३८
चत्तारि तिण्णि कमसो	गो० क० २४६
चत्तारि तिण्णि तिय चउ	गो० क० ५५३
चत्तारि तिण्णि दोण्णि य	तिलो० प० ८–३६३
चत्तारि तुंगपायव	जंबू० प० ६–१६७
चत्तारि धणुसदाइं	मूला० १०६२
चत्तारि धणु-सहस्सा	जंबू० प० १–२६
चत्तारि धणु-सहस्सा	जंबू० प० १–३१
चत्तारि धणु-सहस्सा	जंबू० प० १–६६
चत्तारि पडिक्कमणे	मूला० ६००
चत्तारि पयडिठाणा	पंचसं० ४–२३७
चत्तारि बारमुवसम-	गो० क० ६१६
चत्तारि महावियडी *	मूला० ३५३
चत्तारि महावियडी *	भ० आरा० २१३
चत्तारि य खवणाए	कसायपा० ८
चत्तारि य पट्ठवए	कसायपा० ७
चत्तारि य लक्खाणि	तिलो० प० ८–६३३
चत्तारि रचिय एदे	तिलो० प० २–६६
चत्तारि लोयपाला	तिलो० प० ३–६६
चत्तारि लोयपाला	जंबू० प० ११–२४४
चत्तारि वि खेत्ताइं ×	गो० क० ३३४
चत्तारि वि खेत्ताइं ×	गो० जी० ६५२
चत्तारि वि छे(खे)त्ताइं ×	पंचसं० १–२०१
चत्तारि वेदयम्मि दु	कसायपा० ४
चत्तारिसदेगुत्तरि-	जंबू० प० २–१३
चत्तारि-सय स-पण्णा	तिलो० प० ४–११५२
चत्तारि-सयाणि तहा	तिलो० प० ४–१८८
चत्तारि-सयाणि तहा	तिलो० प० ४–१६०
चत्तारि-सया णेया	जंबू० प० २–३६
चत्तारि-सया तुंगा	जंबू० प० ३–२५
चत्तारि-सया पण्णुत्तर-	तिलो० प० ८–३०१
चत्तारि-सहस्स-सुरा	जंबू० प० १२–७
चत्तारि-सहस्साइं	जंबू० प० ६–३७
चत्तारि-सहस्साइं	तिलो० प० ४–१०६७
चत्तारि-सहस्साइं	तिलो० प० ४–१११८
चत्तारि-सहस्साइं	तिलो० प० ४–२०३८
चत्तारि-सहस्साइं	तिलो० प० ८–२८३
चत्तारि-सहस्साणि दु	जंबू० प० ५–१८
चत्तारि-सहस्साणि य	तिलो० प० २–७७
चत्तारि-सहस्साणिं	तिलो० प० २–१७५
चत्तारि-सहस्साणिं	तिलो० प० ३–६६
चत्तारि-सहस्साणिं	तिलो० प० ४–१६३७
चत्तारि-सहस्साणिं	तिलो० प० ४–२६२३
चत्तारि-सहस्साणिं	तिलो० प० ४–२७६५
चत्तारि-सहस्साणिं	तिलो० प० ५–१६३
चत्तारि-सहस्साणिं	तिलो० प० ८–१६५
चत्तारि-सहस्साणिं	तिलो० प० ८–२८७
चत्तारि-सहस्सेहिं	जंबू० प० ८–५७
चत्तारि-सागरोवम-	जंबू० प० २–११०
चत्तारि सिद्धकूडा	तिलो० प० ५–१२७
चत्तारि सिरा-जाला-	भ० आरा० १०२६
चत्तारि सिंधु-उवमा	तिलो० प० ८–४६५
चत्तारि होंति लवणे	तिलो० प० ७–५७२
चत्तारो कोदंडा	तिलो० प० २–२२४
चत्तारो गुणठाणा	तिलो० प० २–२७३
चत्तारो चत्तारो	तिलो० प० ४–८३१
चत्तारो चत्तारो	तिलो० प० ४–२५३७
चत्तारो चावाणिं	तिलो० प० २–२२३
चत्तारो पायाला	तिलो० प० ४–२४०७
चत्तारो लवणजले	तिलो० प० ७–५५१
चदुकूडतुंगसिहरो	जंबू० प० ६–८

चरियट्टालयचारू	तिलो० प० ४–१७३
चरियट्टालयचारू	तिलो० प० ८–११३
चरियट्टालयपउरा	तिलो० प० ४–२१२७
चरियट्टालयरइदा	तिलो० प० ४–२१००
चरियट्टालयरम्मा	तिलो० प० ४–७३२
चरियं चरदि सगं सो	पंचत्थि० १५६
चरिया छुहा य तण्हा	भ० आरा० १४७
चरिया पमादबहुला	पंचत्थि० १३६
चरियावरिया वदसमि-	मोक्खपा० ७३
चलचवलजीविदमिणं	मूला० ७७३
चलणट्ठसंविभाओ	आय० ति० १८२६
चलणरहिओ मणुस्सो	तच्चसा० १३
चलणविहीणे दिट्ठे	रिट्ठस० १०१
चलणं वलणं चिंता	भावसं० ६६७
चलतदियअवरबंधं	लद्धिसा० २७८
चलमलिणमगाढसवि-	णियमसा० ५२
चलमलिणमगाढं च	श्रा० अणु० ६१
चलवेरिणि पावजुए	आय० ति० १०–१६
चलिओ चलणकिलेसं	आय० ति० २–२५
चलियसरियम्मि पाए	आय० ति० ६–७
चहुविह अणेयभेयं	समय० १७०
चंकमणे य ट्ठाणे	भ० आरा० ५८०
चंडाल-अण्णपाणे	छेदपिं० ३३६
चंडाल-डोंब-धीवर-	भावसं० २०६
चंडाल-भिल्ल-छिंपिय-	भावसं० ५४३
चंडाल-सवर-पाणा	तिलो० प० ४–१६२०
चंडाल-सवर-पाणा	छेदपिं० ४–१५१६
चंडालसंकरे सई	छेदपिं० ६७
चंडालादिसु उणाहिं	छेदपिं० ३४०
चंडालादिसु सोलस	छेदपिं० २२३
चंडो चवलो मंदो	मूला० ६५५
चंडो ण मुच(य)इ वेरं *	गो० जी० ५०८
चंडो ण मुयइ वेरं *	पंचसं० १–१४४
चंदण-सुअंध-लेओ	भावसं० ४७१
चंदणे वव्वगे चावि	जंबू० प० ११–११६
चंदपहो चंदपुरे	तिलो० प० ४–५३२
चंदपह-पुप्फदंतो	तिलो० प० ४–५८७
चंद-पह-सूइवट्टी	तिलो० प० ७–१६४
चंदपुरा सिग्घगदी	तिलो० प० ७–१८०
चंदप्पह-मल्लिजिणा	तिलो० प० ४–६०६
चंदरविगयणखंडे	तिलो० प० ७–४०६
चंदरविजंबुदीवय-	गो० जी० ३६०
चंदसूराण पिच्छइ	रिट्ठस० ५६
चंदस्स सदसहस्सं	जंबू० प० १२–६५
चंदस्स सदसहस्सं	मूला० ११२२
चंदस्स सदसहस्सं	तिलो० प० ७–६१५
चंदस्साउ विमाणे	अंगप० २–२
चंदाउपमुहवादी (?)	सुदखं० २३
चंदाणि सुप्पहु भणइ	सुप्प० दो० ३४
चंदा दिवायरा गह-	तिलो० प० ७–७
चंदादो मत्तंडो	तिलो० प० ७–४६८
चंदादो सिग्घगदी	तिलो० प० ७–५११
चंदा पुण आइच्चा	तिलो० सा० ३०३
चंदाभसुसीमाओ	तिलो० प० ७–५८
चंदाभा य सुसीमा	तिलो० सा० ४४७
चंदाभा सूराभा	तिलो० प० ८–६२०
चंदाभे सग्गगदे	तिलो० प० ४–४८१
चंदिण वारसहस्सा	तिलो० सा० ३४१
चंदेहिं णिम्मलयरा	थोस्सा० ८
चंदो णियसोलसमं	तिलो० सा० ३४२
चंदो मंदो गमणे	तिलो० सा० ४०३
चंदो य महाचंदो	तिलो० प० ४–१५८७
चंदोवइँ दिण्णइँ जिणहँ	सावय० दो० १६८
चंदो वसहो कमलो	जंबू० प० १२–६२
चंदो हविज्ज उण्हो	भ० आरा० ६६०
चंदो हीणो य पुणो	भ० आरा० १७२२
चंपय-असोय-गहणं	जंबू० प० ५–६६
चंपय-असोय-वण्णा	जंबू० प० ३–२०१
चंपय-कयंच-पउरो	जंबू० प० ४–४४३
चंपंति सव्वदेहं	धम्मर० ४६
चंपाए मासखमणं	भ० आरा० १५५६
चंपाए वासुपुज्जो	तिलो० प० ४–५३६
चाउम्मासिय-वरिसिय-	छेदस० ५०
चाउव्वण्णपराध वि	छेदपिं० ३५८
चाउव्वण्णपराधं	छेदपिं० ६०
चाउव्वण्णे संघे	जंबू० प० १०–७४
चाउव्वण्णो संघो	जंबू० प० ८–१६६
चाओ य होइ दुविहो	मूला० १००६
चागी(ई) भद्दो चोक्खो *	पंचसं० १–१५१
चागी भद्दो चोक्खो *	गो० जी० ५१५

चुण्णीकओ वि देहो	धम्मर० ७१
चुलसीदि छ तेत्तीसा	तिलो० सा० ६०५
चुलसीदि णउदि पणतिग-	तिलो० प० ४-६५६
चुलसीदि-लक्खकोडी	अंगप० १-६८
चुलसीदि-लक्खगुणिदे	जंबू० प० ४-२४२
चुलसीदि-लक्खदेवा	जंबू० प० ४-२४३
चुलसीदि-लक्ख-भदिभ	तिलो० सा० ६८२
चुलसीदि-लक्खसत्ता-	तिलो० सा० ४४१
चुलसीदि-लक्खसंखा	जंबू० प० ४-१६२
चुलसीदि-सयसहस्सा	जंबू० प० ४-१५७
चुलसीदि-सयसहस्सा	सुदखं० २०
चुलसीदि-सहस्साणि	तिलो० प० ६-७६
चुलसीदि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१७३६
चुलसीदि-हद लक्खं	तिलो० प० ४-२६३
चुलसीदिं च सहस्सा	जंबू० प० ११-३१२
चुलसीदीओ सीदी-	तिलो० प० ८-३५५
चुलसीदी वाहत्तरि-	तिलो० प० ४-१४१६
चुलसीदी य असीदी	तिलो० सा० ४८६
चुलसीदी-लक्खाणि	तिलो० प० २-२६
चुल्लहिमवंतरुंदे	तिलो० प० ४-२११
चूडामणि अहिगरुडा	तिलो० प० ३-१०
चूडामणि-फणि-गरुडं	तिलो० सा० २१३
चूरेई हत्थपत्थर-	छेदपिं० २१८
चूलिय-दक्खिणभाए	तिलो० प० ४-१६३३
चेइय बंधं मोक्खं	बोधपा० ६
चेट्ठदि तेसु पुरेसुं	तिलो० प० ४-२१६३
चेट्ठदि देवारण्णं	तिलो० प० ४-२३१४
चेट्ठंति उ[ट्ठ]कण्णा	तिलो० प० ४-२७२६
चेट्ठंति णिरुवमाणा	तिलो० प० ५-२१५
चेट्ठंति तिण्णि तिण्णि य	तिलो० प० ४-२३०४
चेट्ठंति माणुसुत्तर-	तिलो० प० ४-२७७१
चेट्ठंति माणुसुत्तर-	तिलो० प० ४-२६२०
चेट्ठंति सुरगणाइं	तिलो० प० ४-८५४
चेट्ठेदि कच्छणामो	तिलो० प० ४-२२३२
चेट्ठेदि कप्पजुगलं	तिलो० प० ८-१२२
चेट्ठेदि जम्मभूमी	तिलो० प० २-३०३
चेट्ठेदि दिव्ववेदी	तिलो० प० ४-२०६६
चेत्ततरूणं पुरदो	तिलो० प० ४-१६०८
चेत्ततरूणं मूले	तिलो० सा० २१५
चेत्ततरूणं मूले	तिलो० प० ३-३८
चेत्तद्दुमं तलरुंदं	तिलो० प० ३-३२
चेत्तद्दुमा मूलेसुं	तिलो० प० ३-१३७
चेत्तद्दुमीसाणभागे	तिलो० प० ५-२३२
चेत्तप्पासादखिदि	तिलो० प० ४-७६६
चेत्तस्स किण्हपच्छिम-	तिलो० प० ४-११६६
चेत्तस्स बहुलचरिमे-	तिलो० प० ४-१२००
चेत्तस्स य अमवासे	तिलो० प० ४-६८६
चेत्तस्स सुक्कछट्ठी-	तिलो० प० ४-११८५
चेत्तस्स सुक्कतइए	तिलो० प० ४-६६६
चेत्तस्स सुक्कतदिए	तिलो० प० ४-६६२
चेत्तस्स सुक्कदसमी-	तिलो० प० ४-११८७
चेत्तस्स सुक्कपंचमि-	तिलो० प० ४-११८४
चेत्तासिदणवमीए	तिलो० प० ४-६४३
चेत्तासु किण्हतेरसि-	तिलो० प० ४-६४८
चेत्तासु सुद्धछट्ठी-	तिलो० प० ४-६६४
चेदणपरिणामो जो	दव्वसं० ३४
चेदणमचेदणं पि हु	दव्वस० णय० ५६
चेदणमचेदणा तह	दव्वस० णय० १६
चेयणरहिओ दीसइ	तच्चसा० ३६
चेयणरहियममुत्तं	दव्वण० णय० ६७
चेयंतो वि य कम्मो	भ० आरा० १५१०
चेया उ पयडीयट्ठं	समय० ३१२
चेलादिसव्वसंगच्चा-	भ० आरा० ११२२
चेलादीया संगा	भ० आरा० ११५८
चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिं	परम० प० २-८८
चोतीस-तीस चोदाल-	जंबू० प० ११-१२६
चोत्तीस-भेदसंजुद-	तिलो० प० ५-३१३
चोत्तीसं चउदालं	तिलो० सा० २१७
चोत्तीसं भोगधरा	अंगप० २-६
चोत्तीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-१२०
चोत्तीसाइसयाणि	तिलो० प० ८-२६६
चोत्तीसादिसएहि	तिलो० प० ६-१
चोत्तीसाधिय सगसय	तिलो० प० ४-६५५
चोत्थीए सदभिसए	तिलो० प० ७-५३५
चोद्दस-इगि-रिण-रुंदं	तिलो० प० ४-२७०७
चोद्दसए जाणि तहा	तिलो० प० २-६०
चोद्दसग-णवगमादी	कसायपा० ५२
चोद्दसग-दसग-सत्तग-	कसायपा० ३२
चोद्दस-गुहाओ तस्सिं	तिलो० प० ४-२७५६
चोद्दस चेव सहस्सा	जंबू० प० ११-१२६

चोद्दस-जीवे पढमा	पंचसं० ५-२५४
चोद्दसजुद-ति-सयाणि	तिलो० प० ७-२६४
चोद्दस-जोयण-लक्खं	तिलो० प० ८-६२
चोद्दस-जोयण-लक्खा	तिलो० प० २-१४१
चोद्दस-जोयण-लक्खा	तिलो० प० ४-२८१३
चोद्दस-ठाणे छक्का	तिलो० प० ८-४६६
चोद्दस-ठाणे छक्का	तिलो० प० ८-४६६
चोद्दस-ठाणे छक्का	तिलो० प० ८-४७५
चोद्दस-ठाणे छक्का	तिलो० प० ८-४७८
चोद्दस-ठाणे छक्का	तिलो० प० ८-४८१
चोद्दस-ठाणे छक्का	तिलो० प० ८-४८४
चोद्दस-ठाणे छक्का	तिलो० प० ८-४९०
चोद्दस-ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ८-४६५
चोद्दस-ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ८-४६८
चोद्दस-ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ८-४७१
चोद्दस-ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ८-४७४
चोद्दस-ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ८-४८०
चोद्दस-ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ८-४८३
चोद्दस-ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ८-४८६
चोद्दस-ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ८-४८९
चोद्दस-ठाणेसु तिया	तिलो० प० ८-४६४
चोद्दस-ठाणेसु तिया	तिलो० प० ८-४७०
चोद्दस-ठाणेसु तिया	तिलो० प० ८-४७३
चोद्दस-ठाणेसु तिया	तिलो० प० ८-४७६
चोद्दस-ठाणेसु तिया	तिलो० प० ८-४८५
चोद्दस-ठाणेसु तिया	तिलो० प० ८-४८८
चोद्दस-ठाणेसु तिया	तिलो० प० ८-४९१
चोद्दस-ठाणेसु तिये-	तिलो० प० ८-४७९
चोद्दस-दस-णव-पुव्वी	भ० आरा० ४२८
चोद्दस दंडा सोलस-	तिलो० प० २-२२९
चोद्दस दु सदसहस्सा	जंबू० प० ३-१६७
चोद्दसपुव्वधरा पडि-	तिलो० सा० ५४०
चोद्दस पुव्वुद्दिट्ठा	पंचसं० १-३५
चोद्दस-चउक्कसमधिय-	तिलो० प० ४-६४
चोद्दस-भजिदो तिउणं	तिलो० प० १-२६४
चोद्दस-भजिदो वि यदि	तिलो० प० १-२४७
चोद्दस-मग्गणसंजुद-	गो० जी० २२९
चोद्दसयसहस्सेहिं य	जंबू० प० ९-१४६
चोद्दसयं जाणि तहा	तिलो० प० २-६०
चोद्दसया छाहत्तरि	तिलो० प० २-७८
चोद्दस-चउक्कर समधिय	तिलो० प० ४-६९३
चोद्दस[य]सयसहस्सा	तिलो० प० ४-५६४
चोद्दस सरायचरिमे	पंचसं० ४-४६१
चोद्दस-सहस्स-जोयण	तिलो० प० ४-१६१
चोद्दस-सहस्स-जोयण	तिलो० प० २-१७६
चोद्दस-सहस्समेत्ता	तिलो० प० ६-२६
चोद्दससहस्स सगसय	तिलो० प० ४-१४९६
चोद्दालं लक्खाणि	तिलो० प० २-१०९
चोरस्स णत्थि हियए	भ० आरा० ८६२
चोराण भयं वाहीण	आय० ति० ३-१६
चोराण समाएण य	लिंगपा० १०
चोरी चोर हणेइ पर	सावय० दो० ४८
चोरो वि तह सुवेगो	भ० आरा० १३५८
चोसट्ठि-कमलमालो	तिलो० प० ४-१८९६

छ

छक्कट्ठचोद्दसादिसु	तिलो० सा० १७०
छक्कणभअट्ठतियच्चाउ	तिलो० प० ४-२६४१
छक्कदि णवतीस-रूयं	तिलो० सा० ३४७
छक्कदिहिदेक्कणउदी	तिलो० प० २-१८९
छक्क दुग पंच रूवा य	तिलो० प० ४-२७०८
छक्कम्मदेसयरणे	छेदस० ३७
छक्कम्मे संछुद्धे	लद्धिसा० ४८७
चक्कं चदु णव चदु दह	सुदखं० ३७
छक्कं हरसाईणं	पंचसं० ४-८०
छक्कापक्कम-जुत्तो	पंचत्थि० ७२
छक्कुलसेला सव्वे	तिलो० प० ४-२३९२
छक्केक्क एक्क छद्दुग	तिलो० प० ४-२८१०
छक्केक्क दु णव इग पण	तिलो०प० ४-२६३१
छक्खंड छक्कविजयं	जंबू० प० ७-१५०
छक्खंडपुढविमंडल-	तिलो० प० ४-५१५
छक्खंडभरहणाहो	तिलो० प० १-४८
छक्खंडमंडिओ सो	जंबू० प० ८-७
छक्खंडेहिं विभत्तो	जंबू० प० ८-१६५
छगउ दुगि एक्केक्कं	तिलो० प० ४-२८१४
छगड सग छक्केक्कं	तिलो० प० ४-२६१८
छग्गसय-जोयणाणि	तिलो० प० ४-२४१३
छग्गसया पण्णासुत्त-	समु० सा० ४४८
छग्गसहस्सा तिण्णा	तिलो० प० ७-३११

वाक्य	संदर्भ
छच्चसहस्सा तिसया	तिलो० प० ७-३६४
छ च्चिय कोदंडाणि	तिलो० प० २-२२६
छ च्चिय सयाणि पण्णा	तिलो० प० ४-२७२२
छच्चेव य इसुवग्गं	जंबू० प० २-२८
छच्चेव य कोडीओ	जंबू० प० ४-१६०
छच्चेव सया तीसं	तिलो० प० ७-५०२
छच्चेव सहस्साइं	जंबू० प० ११-१५
छच्चेव सहस्साणि	तिलो० प० ४-११२१
छच्चेव सहस्साणि	तिलो० प० ८-१५१
छच्छक्कगयणसत्ता	तिलो० प० ७-२२०
छच्छक्क छक्कदुगसग-	तिलो० प० ४-२८७०
छज्जाए जह अंते	जंबू० प० ४-८
छज्जीव छडायदणं	भावपा० १३१
छज्जीवणिकाएहिं	मूला० ६५४
छज्जीवणिकायाणं	मूला० ४२४
छज्जीवदयावण्णे	जोगिभ० ५
छज्जुगलसेसएसुं	तिलो० प० ८-२५०
छज्जुगलसेसकप्पे	तिलो० सा० ४८०
छज्जुगलसेसकप्पे	तिलो० सा० ४८३
छज्जुगलसेसकप्पे	तिलो० सा० ४९०
छज्जुगलसेसकप्पे	तिलो० सा० ५०७
छज्जोयण अट्ठसया	तिलो० प० ८-७५
छज्जोयण-परिहीणो	जंबू० प० ४-१२९
छज्जोयण-लक्खाणि	तिलो० प० २-१५०
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ३-१४९
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ३-१९३
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ७-८७
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ८-१८०
छज्जोयण सक्कोसा	जंबू० प० ८-१८२
छज्जोयणेक्ककोसा	तिलो० प० ४ १९७
छज्जोयणेक्ककोसा	तिलो० प० ४-२१४
छज्जोयणो य विडवी	जंबू० प० ६-६४
छट्ठ अणुव्वयवादे +	छेदपिं० २०७
छट्ठ अणुव्वदवादे +	छेदपिं० २४२
छट्टट्ठमदसमदुवा-	भ० आरा० १०९
छट्टट्ठमदसमदुवा-	भ० आरा० २५१
छट्टट्ठमदसमदुवा-	मूला० ३४८
छट्टट्ठमदसभेया	तिलो० प० ४२८
छट्टट्ठमभत्तेहिं	मूला० ८१०
छट्टमए गुणठाणे	भावसं० ६०६
छट्ठम-कालवसाणे-	जंबू० प० २-१८६
छट्ठम-कालस्संते	जंबू० प० २-१९८
छट्ठम-खिदिचरमिंदिय-	तिलो० प० २-१७८
छट्ठम-चरिमे होंति [हु]	तिलो० सा० ८६६
छट्ठम्मि जिणवरच्चण-	तिलो० प० ४-८५८
छट्ठ लहुमास मासिय	छेदपिं० २३
छट्ठाणाणं आदी	गो० जी० ३२७
छट्ठीए पुढवीए	मूला० १०६०
छट्ठीए वणसंडो	तिलो० प० ४-२१७३
छट्ठीदो पुढवीदो	मूला० ११५७
छट्ठे अथिरं असुहं	गो० क० ९८
छट्ठो त्ति चारि भंगा	गो० क० ६३४
छट्ठो त्ति पढमसण्णा	गो० जी० ७०१
छट्ठोवहि उवमाणा	तिलो० प० ८-४६६
छण्णउदिउत्तराणि	तिलो० प० ८-१८०
छण्णउदिकोडिगामा	तिलो० प० ४-१२९१
छण्णउदिगामकोडी-	जंबू० प० ९-१५३
छण्णउदिचउसहस्सा	गो० क० ९०९
छण्णउदिजोयणसया	तिलो० प० ४-२६०५
छण्णउदिसया ओही	तिलो० प० ४-११०४
छण्णउदिं च वियप्पा	पंचसं० ५-३७२
छण्णउदिं च सहस्सा	जंबू० प० ७-२८
छण्णवइगामकोडी-	जंबू० प० ७-५४
छण्णवइगामकोडी-	जंबू० प० ८-३४
छण्णउदी छच्चसया	जंबू० प० ७-८८
छण्णवएक्कतिछक्का	तिलो० प० ७-३९१
छण्णव चउक्क पणचउ	तिलो० प० ७-३८४
छण्णव छ त्तिय सग इगि-	गो० क० ६९३
छण्णव छ त्तिय सत्त य	पंचसं० ५-३९४
छण्णवदिकोडिएहिं	जंबू० प० ८-५५
छण्णवदि सहस्साणं	तिलो० प० ४-२५२२
छण्णव सग दुग छक्का	तिलो० प० ७-३१५
छण्णं आवलियाणं	कसायपा० १९५ (१४२)
छण्णाणा दो संजम	तिलो० प० ५-३०५
छण्णोकसाय णवमे	आस० ति० १७
छण्णोकसायणिद्दा-	गो० क० २१२
छण्णोकसायपयला-	पंचसं० ४-५०१
छण्हमसण्णी कुणई	पंचसं० ४-४२८
छण्हं कम्मखिदीणं	जंबू० प० ११-८०
छण्हं पि अणुकस्सो ×	गो० क० २०७

पद्य	स्थान
छण्हं पि अणुक्कस्सो ×	पंचसं० ४-४६२
छण्हं पि सावयाणं	छेदस० ८०
छण्हं सुरणेरइया	पंचसं० ४-४२५
छत्तइँ छणससिपंडुरइँ	सावय० दो० १७७
छत्तत्तयसिंहासण-	जंबू० प० २-७४
छत्तत्तयसिंहासण-	तिलो० प० ७-४७
छत्तत्तयसिंहासण-	तिलो० प० ८-४८१
छत्तत्तयसीहासण-	जंबू० प० ४-५४
छत्तात्तयादिजुत्ता	तिलो० प० ४-८४३
छत्तत्तयादिजुत्ता	तिलो० प० ४-१८७५
छत्तत्तयादिसहिदा	तिलो० प० ४-२०२
छत्तत्तयादिसहिदो	तिलो० प० ४-२४६
छत्त-धय-कलस-चामर-	जंबू० प० १३-११२
छत्तस्स रायमरणं	रिट्ठस० १२०
छत्तं उभयं च कलसं	रिट्ठस० १८६
छत्तासिदंडचक्का	तिलो० प० ४-१३७७
छत्तिय-अट्ठ-ति-छक्का	तिलो० प० ७-३६३
छत्तियणभछत्तियदुग-	तिलो० प० ४-२६६२
छत्तीस अचरतारा	तिलो० प० ७-४६६
छत्तीसगुणसमग्गो	भावसं० ३७७
छत्तीसगुणसमण्णा-	भ० आरा० ५२५
छत्तीसट्ठारसए	छेदस० ६
छत्तीस-लक्ख-पंचस-	अंगप० २-३
छत्तीसं च सहस्सा	जंबू० प० १२-३१
छत्तीसं तिण्णिसया	भावसं० २८
छत्तीसं बत्तीसं	पंचसं० ५-३३८
छत्तीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-११७
छत्तीसं लक्खाणि	तिलो० प० ४-२८१२
छत्तीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-३२
छत्तीसा गाहाए (ओ)	द्वादसी० ३७
छत्तीसा तिण्णिसया	जंबू० प० ४-१६४
छत्तीसुत्तर-छसया	तिलो० प० ८-१७३
छत्तीसे वरिससए ॐ	भावसं० १३७
छत्तीसे वरिससए ॐ	दंसणसा० ११
छत्तु वि पाइ सुगुरुवडा	पाहु० दो० १३७
छत्तेहि एयछत्तं	वसु० सा० ४६०
छत्तेहि य चमरेहि य	वसु० सा० ४००
छदुमत्थदाए एत्थ दु	भ० आरा० २१६७
छदुमत्थविहिदवत्थुसु	पवयणसा० ३-५६
छदुमत्थेण विरइयं	जंबू० प० १३-१७१
छद्दव्व-णवपयत्था	दंसणपा० १६
छद्दव्व-णवपयत्था	भावसं० ३६७
छद्दव्व-णवपयत्थे	तिलो० प० १-३५
छद्दव्व-णवपयत्थे	पंचसं० १-१
छद्दव्व-णवपयत्थो	लद्धिसा० ६
छद्दव्व-णवपयत्थो	तिलो० प० ४-६०३
छद्दव्वावट्ठाणं	गो० जी० ५८०
छद्दव्वेसु य णामं	गो० जी० ५६१
छद्दो-णव-पण-छद्दुग-	तिलो० प० ४-२६७८
छद्दो तिय इग पण चउ	तिलो० प० ४-२८८६
छद्दो-तिय-सग-सग-पण-	तिलो० प० ४-२६५५
छद्दो भू-मुह-रुंदो	तिलो० प० ३-३३
छधणुसहस्सुस्सेधं	मूला० १०६३
छप्पढमा वंधंति य	पंचसं० ४-२१५
छप्पणइगछत्तियदुग-	तिलो० प० ४-२६६१
छप्पणउदये उवसं-	गो० क० ६८८
छप्पण णव तिय इग दुग	तिलो० प० ४-२६६६
छप्पण्ण चउदिसासुं	तिलो० प० ४-६१२
छप्पण्ण छक्क छक्कं	तिलो० प० ७-२३
छप्पण्णब्भहियसयं	तिलो० प० ८-१६४
छप्पण्णरयणदीवा	जंबू० प० ७-५३
छप्पण्णरयणदीवे-	जंबू० प० ६-५४७
छप्पण्णसहस्साणि	तिलो० प० ४-२२२५
छप्पण्णसहस्साधिय-	तिलो० प० ३-७२
छप्पण्णसहस्सेहिं	तिलो० प० ४-१७४०
छप्पण्णसहस्सेहिं	तिलो० प० ४-१७७०
छप्पण्णहरिद(हिदो)लोओ	तिलो० प० १-२०१
छप्पण्णहिदो लोओ	तिलो० प० १-२६६
छप्पण्णं च सहस्सा	जंबू० प० ७-३१
छप्पण्णंतरदीवा	तिलो० सा० ६७७
छप्पण्णंतरदीवा	तिलो० प० ४-१३१५
छप्पण्णा इगसट्ठी	तिलो० प० २-२१३
छप्पण्णा वेहिसदा	जंबू० प० १२-६७
छप्पय-णील-कवोद-सु-	गो० जी० ५१५
छप्पंचचउसयाणि	तिलो० प० ८-३२१
छप्पंचणवविहाणं ॐ	गो० जी० ५६०
छप्पंचणवविहाणं ॐ	पंचसं० १-१५१
छप्पंचतिदुगलक्खा	तिलो० प० २-१७
छप्पंचमुदीरंतो	पंचसं० ४-२३४
छप्पंचादेयंतं	गो० क० ७११

ज

जइ एरिसो वि मूढो	धम्मर० १०५
जइ एरिसो वि लोए	धम्मर० १०१
जइ एवं ण लोहिज्जो	वसु० सा० ३०६
जइ एवं तो इत्थी	भावसं० ६७
जइ एवं तो पियरो	भावसं० ३५
जइ ओग्गहमेत्तं दं-	सम्मइ० २-२३
जइ कह वि अवत्थाओ	आय० ति० ४-१
जइ कह वि आइमाओ	आय० ति० १८-२१
जइ कह वि कसायग्गी-	भ० आरा० २६३
जइ कह वि तत्थ णिग्गइ	भावसं० ५६
जइ कह वि हु एयाई	भावसं० १७१
जइ कह वि हुंति भरिया	आय० ति० ८-६
जइ किएहं करजुअलं	रिट्ठस० १६
जइ को वि उसणणिरए	वसु० सा० १३८
जइ खणियत्तो जीवो	भावसं० ६४
जइ खाइयसद्दिट्ठी	वसु० सा० ५१५
जइ गिहत्थु दाणेण विणु	सावय० दो० ८७
जइ गिहवंतो सिज्झइ	भावसं० १०२
जइ चिंतहिं सुप्पहु भणइ	सुप्प० दो० ७५
जइ चेयणा अणिच्चा	भावसं० ६८
जइ जर-मरण-करालियउ	जोगसा० ४६
जइ जलण्हाणपउत्ता	भावसं० १८
जइ जिय उत्तमु होइ णवि	परम० प० २-४
जइ जिय सुक्खहँ अहिलसहि	सावय० दो० १२२
जइ जीवेण सह चिय	समय० ० १३६
जइ जुत्तो दिट्ठो वा	आय० ति० १८-२४
जइ णिक्कलो महप्पा	भावसं० २३८
जइ ण वि कुणइ च्छेदं	समय० २८६
जइ णाणेण विसोहो	सीलपा० ३१
जइ णिम्मल अप्पा मुणइ	जोगसा० ३०
जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि	जोगसा० २७
जइ णिविसद्धु वि कु वि करइ	परम०प०१-११४
जइ तप्पइ उग्गतवं	भावसं० ६२
जइ ता धारावडणा (?)	जंबू० प० ४-२८०
जइ तिजय-पालणत्थं	भावसं० २३१
जइ तुप्पं णवणीयं	भावसं० २३६
जइ ते हवंति देवा	धम्मर० ११५
जइ ते होंति समत्था	भावसं० ७८
जइ तो वत्थुब्भूओ	भावसं० २१६
जइ थिरु पंथ(थी)घरि वसइ	सुप्प० दो० ४०
जइ दंसणेण सुद्धा	सुत्तपा० २५
जइ दा उच्चत्तादि णि-	भ० आरा० १२३६
जइ दा खंडसिलोगे-	भ० आरा० ७७२
जइ दिणु दह सुप्पहु भणइ	सुप्प० दो० २७
जइ दीसइ परिपुण्णं	रिट्ठस० १०५
जइ दे कदा पमाणं	भ० आरा० ६३५
जइ देखेवउ छड्डियउ	सावय० दो० ३६
जइ देवय देइ सुयं	भावसं० ७६
जइ देदि तत्थ सुण्णहर-	वसु० सा- १२०
जइ देवो वि य रक्खइ	कत्ति० अणु० २५
जइ देवो हणिऊणं	भावसं० ४३
जइ पउमणंदिणाहो	दंसणसा० ४३
जइ पढमतइज्जेहिं	आय० ति० ६-११
जइ पढमतइयवग्गक्ख-	आय० ति० ६-६
जइ पढमतइयवण्णा	आय० ति० ६-८
जइ पढमतइयवण्णा	आय० ति० १७-५
जइ पंचिंदियदमओ	मूला० ८६८
जइ पावइ उच्चत्तं	धम्मर० ८२
जइ पिच्छइ गयणतले	रिट्ठस० १००
जइ पिच्छइ ण हु वयणं	रिट्ठस० १४
जइ पुज्जइ को वि णरो	भावसं० ४४६
जइ पुण केण वि दीसइ	वसु० सा० १२२
जइ पुण सुद्धसहावा	कत्ति० अणु० २००
जइ पुत्तादिण्णदाणे	भावसं० ३३
जइ फलइ कह वि दाणं	भावसं० ४०२
जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि	जोगसा० ८७
जइ बंभो कुणइ जयं	भावसं० २०४
जइ बीहउ चउगइगमणा(णु)	जोगसा० ५
जइ भणइ को वि एवं	भावसं० ३८६
जइ भाविज्जइ गंधे-	भ० आरा० ३४२
जइ मणि कोहु करिवि कलहीजइ	पाहु०दो० १४०
जइ मे होई मरणं	वसु० सा० १६८
जइया इमेण जीवे-	समय० ७१
जइया तव्विवरीए	दव्वस० णय० ३७५
जइया दहरहपुत्तो	भावसं० २२६
जइया मणु णिग्गंथु जिय	जोगसा० ७३
जइया स एव संखो	समय० २२२
जइ रायेण दोसेण	चारि० भ० ६
जइ लद्धउ माणिक्कडउ	पाहु० दो० २१६
जइ वग्गपढमवण्णा	आय० ति० ५-८

जइ वा पुव्वम्मि भवे वसु० सा० १४६
जइ वायनाडिपत्ता आय० ति० १६-२६
जइ वारउँ तो तहिँ जि पर पाहु० दो० ११८
जइ वि खिविज्जे कोई धम्मर० ६७
जइ विलवयंति करुणं तिलो० प० २-३३७
जइ विसयलोलएहिँ सीलपा० ३०
जइ वि सुजायं वीयं भावसं० ४०१
जइ सग्गंथो मुक्खं भावसं० ८८
जइ सव्वदेवयाओ भावसं० ८२
जइ सव्वसरियपाओ आय० ति० १८-१४
जइ सव्वं बंभमयं दव्वस० णय० ५२
जइ सव्वं सायारं सम्मइ० २-१०
जइ सव्वाण वि जोओ आय० ति० १६-२४
जइ संति तस्स दोसा भावसं० १०६
जइ संसारविरत्तो आय० ति० १६-१
जइ सुद्धउ धणु वल्लहउ सुप्प० दो० १७
जइ सुमिणम्मि विलिज्जइ रिट्ठस० १२२
जइ हुंति कह वि जइणो आरा० सा० ४७
जइ होइ एयमुत्ती धम्मर० ११०
जइ होइ धणो बलिओ आय० ति० २१-१०
जक्खयणागादीणं मूला० ४३१
जक्खयणायाईणं भावसं० ७५
जक्खिंदमत्थएसुं तिलो० प० ४-६११
जक्खिंदो वि महप्पा जंबू० प० ६-७६
जक्खीओ चक्केसरि तिलो० प० ४-६३५
जक्खुत्तममणहरणा तिलो० प० ६-४३
जक्खुत्तमा मणोहर- तिलो० सा० २६६
जगजगजगंतसोहं जंबू० प० ११-१६८
जगजगजगंतसोहा जंबू० प० ५-७८
जगदीअब्भंतरए तिलो० प० ४-६८
जगदीअब्भंतरए तिलो० प० ४-६६
जगदीउवरिमभाए तिलो० प० ४-१६
जगदीउवरिमरुंदो तिलो० प० ४-२०
जगदीए अब्भंतर- तिलो० प० ४-८७
जगदीदो गंतूणं जंबू० प० १-४६
जगदीबाहिरभागो तिलो० प० ४-६६
जगदी-विण्णासाइं * तिलो० प० ४-२५२६
जगदी-विण्णासाइं * तिलो० प० ४-१२
जगपदरसत्तभागं तिलो० सा० १२६
जगपूरणम्हि एक्का लद्धिसा० ६२८

जगमज्झादो उवरिं तिलो० प० ४-७
जगसेढिघणपमाणो तिलो० प० १-६१
जगसेढिसत्तभागो तिलो० सा० ७
जगसेढीए वग्गो तिलो० सा० ११२
जच्चंध-बहिर-मूओ भ० आरा० १०८८
जच्छिच्छसि विक्खंभं तिलो० प० ४-१०६५
जच्छिच्छसि विक्खंभं तिलो० प० ४-१०६७
जच्छिच्छसि विक्खंभं जंबू० प० ६-४७
जच्छिच्छसि विक्खंभं जंबू० प० १०-६६
जच्छिच्छसि विक्खंभं जंबू० प० ११-१६
जडसब्भावं ण हु मे * दव्वस० णय० ४०५
जडसब्भावो ण हु मे * णयच० ८२
जण जज्जुर सुप्पहु भणइ सुप्प० दो० ४३
जणण-मरणादिरोगा- भ० आरा० १४६१
जणणंतरेसु पुह पुह तिलो० प० ४-७००
जणणी जणणु वि कंत घरु परम० प० १-८३
जणणी वसंततिलया भ० आरा० १८००
जणपायडो वि दोसो भ० आरा० १४३३
जणवदसच्चं जध ओ- मूला० ३०६
जणवद-सम्मद-ठवणा- + मूला० ३०८
जणवद-सम्मदि-ठवणा- + गो० जी० २२१
जणवद-सम्मदि-ठवणा- + भ० आरा० ११६३
जण्हाम्हि विउस्सग्गे छेदस० ३५
जण्हुप्पमाणतोये रिट्ठस० १४३
जण्हूडवरिं चउ-चउ- छेदपिं० ८३
जत्तस्स पहं टत्तास्स गो० जी० ५६६
जत्ता-माधण-चिन्ह-क- भ० आरा० ८२
जत्तु जदा जेण जहा गो० क० ८८२
जत्तेण कुणइ पावं वा० अणु० ३४
जत्तो दिसाए गामो भ० आरा० १६८६
जत्तो पाणवधादी भ० आरा० ८३१
जत्तोपाये होदि हु लद्धिसा० २५२
जत्तोपाये होदि हु लद्धिसा० ३३५
जत्थ असंखेज्जाणं लद्धिसा० १२३
जत्थ फरे अह पव्वे रिट्ठस० १४३
जत्थ कम्मायुप्पत्ति- मूला० ४५१
जत्थ कुवेरो त्ति सुरो जंबू० प० ११-३२२
जत्थ गुणा सुविसुद्धा कत्ति० अणु० ४८१
जत्थ ण अविणाभावो दव्वस० णय० ३१
जत्थ ण करणं चिंता भावसं० ६२१

जसु ण हु तिवग्गकरणं	दव्वस० णय० १६६
जसु दंसणु तसु माणुसह	सावय० दो० ५४
जसु पत्तुत्तमराइयउ	सावय० दो० १७१
जसु परमत्थें वंधु णवि	परम० प० १-४६
जसु पोसण-कारणु हु णरु	सुप्प० दो० ५२
जसु मणि णाणु ण विप्फुरइ	पाहु० दोहा० २४
जसु मणि णाणु ण विप्फुरइ	पाहु० दो० ६५
जसु मणि णिवसइ परमपउ	पाहु० दो० ६६
जसु मणु जीवइँ विसयवसु	सुप्प० दो० ६०
जसु लग्गउ सुप्पहु भणइ	सुप्प० दो० ६१
जसु हरिणच्छी हियवडए	परम० प० १-१२१
जस्स अणेसणमप्पा	पवयणसा० ३-२७
जस्स असंखेज्जाऊ	तिलो० प० ३-१६६
जस्स कए जं कज्जं	आय० ति० २२-१०
जस्स कम्मस्स उदये	कम्मप० ७७
जस्स कम्मस्स उदये	कम्मप० ८१
जस्स कम्मस्स उदये	कम्मप० ८२
जस्स कसायस्स [य] ज	लद्धिसा० ४४४
जस्स गुरु सुराहिसुओ	भावसं० २५१
जस्स जदा खलु पुण्णं	पंचत्थि० १४३
जस्स ण कोइ अणुदरो	जंबू० प० १३-१७
जस्स ण कोहो माणो	तच्चसा० १६
जस्स ण गया(दा) ण चक्कं	भावसं० २७६
जस्स ण गोरी गंगा	भावसं० २७५
जस्स ण णह-गामित्तं	भावसं० ६११
जस्स ण तवो ण चरणं	भावसं० ४३१
जस्स ण पिच्छइ छाया	रिट्ठस० ७७
जस्स ण विज्जदि रागो	पंचत्थि० १४२
जस्स ण विज्जदि रागो ॐ	पंचत्थि० १४६
जस्स ण विज्जदि रागो ॐ	तिलो० प० ६-२३
जस्स ण संति पदेसा	पवयणसा० २-५२
जस्स ण हु आउसरिसा	वसु० सा० ५२६
जस्स त्थि भयं चित्ते	धम्मर० ११६
जस्स परिग्गहगहणं	सुत्तपा० १६
जस्स पुण उत्तमट्ठम-	भ० आरा० ६८४
जस्स पुण मिच्छदिट्ठिस्स	भ० आरा० ६१
जस्स य पदेण जीवा	भ० आरा० १३७
जस्स य पाय-पसायेण +	लद्धिसा० ६४६
जस्स य पाय-पसायेण +	गो० क० ४२६
जस्स य वग्गे वग्गो	आय० ति० १-२१
जस्स रागो दु दोसो दु	णियमसा० १२८
जस्स वि अव्वभिचारी	भ० आरा० ७८
जस्स सण्णिहिदो अप्पा ×	मूला० ५२५
जस्स सण्णिहिदो अप्पा ×	णियमसा० १२७
जस्स हिदयेऽणुमत्तं	पंचत्थि० १६७
जस्सि इच्छसि वासं	तिलो० प० ४-१७६८
जस्सिं जस्सिं काले	तिलो० प० १-१०६
जस्सिं मग्गे ससहर-	तिलो० प० ७-२०७
जस्सुदएण य चडिदो	लद्धिसा० ३५७
जस्सुदएणारूढो	लद्धिसा० ३५१
जस्सुदएणारूढो	लद्धिसा० ३५२
जस्सुदये वज्जमयं	कम्मप० ७८
जस्सुदये वज्जमया	कम्मप० ७६
जस्सुदये हड्डीणं	कम्मप० ७५
जस्सोदएण गमणे	कम्मप० ६४
जह अणियट्टि पउत्तं	भावसं० ६५२
जह अप्पणो गणस्स य	भ० आरा० १४८३
जह आइच्चमुदेंतं	भ० आरा० १७४०
जह आगमलिंगेण य	जंबू० प० १३-७६
जह इह विहावहेदू	दव्वस० णय० ३६२
जह इंधणेहिं अग्गी	भ० आरा० ११४३
जह इंधणेहिं अग्गी	भ० आरा० १२६४
जह इंधणेहिं अग्गी	भ० आरा० १६५४
जह इंधणेहिं अग्गी	भ० आरा० १६१२
जह उक्कस्सं तह मज्झ-	वसु० सा० २६०
जह उत्तमम्मि खित्ते	वसु० सा० २४०
जह उसुगारो उसुमुज्जु-	मूला० ६७३
जह ऊसरम्मि खित्ते	वसु० सा० २४२
जह एए तह अण्णे	सम्मइ० १-१५
जह कणयमग्गितवियं	समय० १८४
जह कणय-मज्ज-कोद्दव-	भावसं० १५
जह कवचेण अभिज्जेण	भ० आरा० १६८१
जह कंचणमग्गिगयं ॐ	गो० जी० २०२
जह कंचणमग्गिगयं ॐ	पंचसं० १-८३
जह कंचणं विसुद्धं	मोक्खपा० १
जह कंटएण विद्धो	भ० आरा० [illegible]
जह कंसियभिंगारो	भ० आरा० [illegible]
जह कालेण तवेण य	[illegible]
जह किण्ह-[illegible]	[illegible]
जह कुणइ को वि भेयं	[illegible]

वाक्य	स्थान
जह सेडिया दु ण परस्स	समय० ३५६
जह सेडिया दु ण परस्स	समय० ३५७
जह सेडिया दु ण परस्स	समय० ३५८
जह सेडिया दु ण परस्स	समय० ३५९
जह हवदि धम्मदव्वं	पंचत्थि० ८६
जह हिमगिरिंदकमले	जंबू० प० ६-४०
जहा अलाऊ णीरे	द्वादसी० २९
जहाखादं तु चारित्तं	चारि० भ० ४
जहिं अप्पा तहिं सयल-गुण	जोगसा० ८५
जहिं भावइ तहिं जाहि जिय	परम० प० २-७०
जहिं मइ तहिं गइ जीव तुहुँ	परम० प० १-११२
जं अण्णाणी कम्मं +	पवयणसा० ३-३८
जं अण्णाणी कम्मं +	भ० आरा० १०८
जं अप्पसहावादो	दव्वस० णय० १५८
जं अप्पुट्ठा भावा	सम्मइ० २-२९
जं अप्पुट्ठे भावे	सम्मइ० २-३०
जं अवियप्पं तच्चं	तच्चसा० ६
जं असभूदुब्भावण-	भ० आरा० ८२६
जं अंगं अक्कंतो	आय० ति० ४-१७
जं अत्ताणो णिप्पडि-	भ० आरा० १५८४
जं आवट्टादो उप्पा-	भ० आरा० १५७२
जं इह किंपि(चि)वि रिट्ठं	रिट्ठस० २५४
जं इंदिएहिं गिज्झं	कत्ति० अणु० २०७
जं उप्पज्जइ दव्वं	भावसं० ५७८
जं उवहिं सेज्जं पडि	छेदस० १६२
जं एआणं अवरं	आय० ति० १६-७
जं एवं तेल्लोक्कं	भ० आरा० ७८३
जं कम्मं दिढवद्धं	भावसं० १६
जं काले वीरजिणो	तिलो० प० ४-१५०३
जं काविलं दरिसणं	सम्मइ० ३-४८
जं किट्टिं वेदयदे	कसायपा० १७७(१२४)
जं किंचि कयं दोसं	भावपा० १०४
जं किंचि खादि जं किं	भ० आरा० १०२४
जं किंचि गिहारंभं	वसु० सा० २९८
जं किंचि तस्स दव्वं	वसु० सा० ७३
जं किंचि महाकज्जं	मूला० १२६
जं किंचि मे दुच्चरितं ※	णियमसा० १०३
जं किंचि मे दुच्चरियं ※	मूला० ३९
जं किंचि वि चिंतंतो	दव्वसं० ५५
जं किं पि एत्थ भणियं	वसु० सा ५४७
जं किं पि को वि कज्जं	आय० ति० ६-२
जं किं पि तेण दिण्णं	कत्ति० अणु० ४५१
जं किं पि देवलोए	वसु० सा० ३५७
जं किं पि पडिय भिक्खं	वसु० सा० ३०८
जं किं पि वि उप्पण्णं	कत्ति० अणु० ४
जं किं पि सयल-दुक्खं	दव्वस० णय० ३१२
जं किं पि सोक्खसारं	वसु० सा० ५४०
जं कीरइ पररक्खा	वसु० सा० २३८
जं कुणइ गुरुसयासम्मि	वसु० सा० २७२
जं कुणदि भावमादा	समय० १९ चे० ५ (ज०)
जं कुणदि(इ) भावमादा	समय० ९१
जं कुणदि भावमादा	समय० १२६
जं कुणदि विसयलुद्धा	तिलो० प० ४-६१२
जं कुविओ खिण्णमणो	आय० ति० २३-१६
जं कूडसामलीए	भ० आरा० १५६७
जं केवलं ति णाणं	पवयणसा० १-६०
जं खलु जिणोवदिट्ठं	मूला० २६५
जं खाविओ सि अवसो	भ० आरा० १५७०
जं गब्भवासकुणिमं	भ० आरा० १६०१
जं गाढस्स पमाणं	तिलो० प० ८-३६१
जंघासु दुण्णिवरिसं	रिट्ठस० ११६
जं च कामसुहं लोए	मूला० ११४४
जं चडयडंत-कर-चर-	भ० आरा० १५८०
जं च दिसावेरमणं	भ० आरा० २०८१
जं चदुगदिदेहीणं	दव्वस० णय० २२
जं च(जत्थ) दु वेदट्ठाणगो	जंबू० प० ८-१२४
जं च पुण अरिहया तेसु	सम्मइ० ३-११
जं चरदि सुद्धचरणं	बोधपा० ११
जं च समो अप्पाणं	मूला० ५२१
जं च सरीरे रिट्ठं	रिट्ठस० १८
जं चावि संछुहंतो	कसायपा० २१७ (१६४)
जं चिय जीवसहावं	दव्वस० णय० २८६
जं छोडिओ सि जं मे-	भ० आरा० १५७७
जं जत्तो जारिसयं	आय० ति० २०-२
जं जस्स अक्खरं तं	आय० ति० २२-५
जं जस्स जम्मि देसे	कत्ति० अणु० ३२१
जं जस्स जोग्गमहियं	जंबू० प० ११-२८६
जं जस्स जोग्गमुच्चं	तिलो० प० ८-३६०
जं जस्स दु संठाणं	भ० आरा० २१२५
जं जस्स भणिय भावं	दव्वस० णय० २६६

जंबीर-जंबु-केली-	तिलो० सा० ६७३
जंबीर-मोय-दाडिम-	वसु० सा० ४४०
जंबुकुमार-सरिच्छो	तिलो० प० ४-१३६
जंबु-रविंदू दीवे	तिलो० सा० ३७५
जंबु-सम-वएणणो स	तिलो० सा० ६५२
जंबूउभयं परिही	तिलो० सा० ३१४
जंबूचारधरूणो	तिलो० सा० ३६२
जंबूजोयणलक्खण-	तिलो० प० ५-३२
जंबू जोयणलक्खो	सुदखं० २५
जंबू जोयणलक्खो	तिलो० सा० ३०८
जंबूणद-रयणमयं	जंबू० प० ११-२६६
जंबूणय-रयणमयं	जंबू० प० ११-१६६
जंबूणय-रयदमए	जंबू० प० ११-३१६
जंबूतरुदलमाणा	तिलो० सा० ६५०
जंबूदीउ समोसरणु	सावय० दो० २०२
जंबूदीवखिदीए	तिलो० प० ४-१७११
जंबूदीवखिदीए	तिलो० प० ४-२६१६
जंबूदीवपरिहिओ	मूला० १०७२
जंबूदीवपवरिणद-	तिलो० प० ४-२५४४
जंबूदीवपवरिणद-	तिलो० प० ४-२५८१
जंबूदीवमहीए	तिलो० प० ४-२७३५
जंबूदीवम्मि दुवे	तिलो० प० ७-२१८
जंबूदीवसरिच्छा	तिलो० प० ६-६२
जंबूदीवस्स जहा	जंबू० प० ४-६४
जंबूदीवस्स जहा	जंबू० प० ५-८६
जंबूदीवस्स तदो	तिलो० प० ४-२०७१
जंबूदीवस्स तदो	तिलो० प० ४-२११६
जंबूदीवस्स तहा	जंबू० प० १-३८
जंबूदीवस्स तहा	जंबू० प० ११-१७८
जंबूदीवस्स तहा	जंबू० प० १३-१६६
जंबूदीवस्स पुणो	जंबू० प० ११-३८
जंबूदीवं परियदि	जंबू० प० १०-२
जंबूदीवं भरहो	गो० जी० १६४
जंबूदीवादीया	जंबू० प० ११-६०
जंबूदीवाहिंतो	तिलो० प० ५-५२
जंबूदीवाहिंतो	तिलो० प० ५-१७६
जंबूदीवे एक्को	तिलो० सा० ५६३
जंबूदीवे णेया	जंबू० प० १-५५
जंबूदीवे मेरुं	तिलो० प० ४-४३६
जंबूदीवे मेरु	अंगप० २-५
जंबूदीवे मेरू	तिलो० प० ४-४२७
जंबूदीवे लवणो	जंबू० प० १२-१३
जंबूदीवे लवणो ×	जंबू० प० ११-८६
जंबूदीवे लवणो ×	मूला० १०७८
जंबूदीवे लवणो	तिलो० प० ५-२८
जंबूदीवे वाणो	तिलो० सा० ६६१
जंबूदीवो दीवो	जंबू० प० १०-६०
जंबूदीवो धादइ- *	जंबू० प० ११-८४
जंबूदीवो धादइ- *	मूला० १०७४
जंबूदीवो भणिदो	जंबू० प० ११-३६
जंबूदीवो भणिदो	जंबू० प० ११-४८
जंबूदीवो भणिदो	जंबू० प० ११-७३
जंबूदुमा वि णेया	जंबू० प० ६-६८
जंबूदुमा वि तस्स दु	जंबू० प० ३-१२८
जंबू-दुमेसु एवं	जंबू० प० ३-१२
जंबू-धादइ-पुक्खर-	जंबू० प० ११-१८६
जंबू-धादकि-पुक्खर-	तिलो० सा० ३०४
जंबू-धादगि-पोक्खर-	जंबू० प० ११-१८५
जंबू-पायव-सिहरे	जंबू० प० ६-७५
जंबूयंकेदूणं (?)	तिलो० प० ७-५८७
जंबूरुक्खस्स तलं	तिलो० प० ४-२१६३
जंबू-लवणादीणं	तिलो० प० ५-३७
जं वोल्लइ ववहारणउ	परम० प० २-१४
जं भज्जिदो सि भज्जिद-	भ० आरा० १५७४
जं भद्दसालवण-जिण-	तिलो० प० ५-७१
जं भासइ दुक्खसुहं	तिलो० प० ४-१०१३
जं भावं सुहमसुहं	समय० १०२
जं भासियं असच्चं	धम्मर० २७
जं मइँ किं पि वि जंपियउ	परम० प० २-२१२
जं मया दिस्सदे रूवं	मोक्खपा० २६
जं मुणि लहइ अणंत-सुहु	परम० प० १-११७
जं रयणत्तय-रहियं	भावसं० ५३०
जं लद्धं अवराणं	तिलो० प० ४-२४२७
जं लद्धं णायव्वा	जंबू० प० ६-८०
जं लिहिउ ण पुच्छिउ कह व जाइ	पाहु० दो० १६६
जं वज्जिज्जं हरियं	वसु० सा० २६५
जं वडमज्झह वीउ फुडु	जोगसा० ७४
जं वत्थु अणेयंतं	कत्ति० अणु० २६१
जं वत्थु अणेयंतं	कत्ति० अणु० २२५
जं वंतं गिहवासे	मूला० ८५१

पद्य	स्थान
जाव पमाए वट्टइ	भावसं० ६०५
जाव य खेम-सुभिक्खं	भ० आरा० १५६
जाव य वलविरियं से	भ० आरा० २०१४
जाव य सदी ण णस्सदि	भ० आरा० १५८
जावं अपडिक्कमणं	समय० २८५
जावंतरस्स दुचरिम-	लद्धिसा० २१२
जावंति किंचि दुक्खं	भ० आरा० १६६७
जावंति केइ भोगा	भ० आरा० १२६१
जावंति केइ संगा	भ० आरा० २६४
जावंति केइ संगा	भ० आरा० ११८०
जावंतु किंचि लोए	भ० आरा० २१४५
जावंतु केइ संगा	भ० आरा० १७८
जावुवरिमगेवेज्जं	मूला० ११७५
जावे (हे) दु अप्पणो वा	मूला० ६२७
जा सव्व-सुंदरंगी	भ० आरा० १०५६
जा संकप्पवियप्पो	समय० २७० क्षे० २२ (ज०)
जा संकप्पवियप्पो	भावसं० ३२२
जा संकप्पो चित्ते	भावसं० ६१२
जा सासया ण लच्छी	कत्ति० अणु० १०
जासु जणणि सग्गागमणि	सावय० दो० १६७
जासु ण कोहु ण मोहु मउ	परम० प० १-२०
जासु ण धारणु धेउ ण वि	परम० प० १-२२
जासु ण वण्णु ण गंधु रसु	परम० प० १-१९
जासु हियइ अ सि आ उ सा	सावय० दो० २१४
जाहि व जासु व जीवा *	पंचसं० १-५६
जाहि व जासु व जीवा *	गो० जी० १४०
जा हीणा अणुभागे-	कसायपा० १७२(११६)
जाहे सरीरचेट्ठा	भ० आरा० १६६२
जिउ मिच्छत्तें परिणमिउ	परम० प० १-७६
जिणइंदवरगुरूणं	जंबू० प० ६-१२६
जिणइंदाणं चरियं	जंबू० प० ५-८५
जिणइंदाणं णेया	जंबू० प० ८-१६४
जिणइंदाणं पडिमा	जंबू० प० ५-२७
जिण-कहिय-परमसुत्ते	णियमसा० ११५
जिण-गिहवासायामो	तिलो० सा० ६६५
जिण-चरियणा(याणि)लपंता	तिलो०प०५-११५
जिण-जम्मण-णिक्खवणं	वसु० सा० ४५२
जिण-णाण-दिट्ठि-सुद्धं	चारित्तपा० ५
जिण-दिट्ठणामइंदय-	तिलो० प० ८-३४७
जिण-दिट्ठपमाणाओ	तिलो० प० ३-१०८
जिण-देवो होउ सया	कल्लाणा० ४८
जिण-पडिमइँ कारावियइँ	सावय० दो० १६२
जिण-पडिमागमपोत्थय-	छेदपिं० १६८
जिण-पडिमा-संछण्णो	जंबू० प० ३-१६१
जिण-पडिरूवं वरिया-	भ० आरा० ८५
जिण-पयगय-कुसुमंजलिहिं	सावय० दो० १६१
जिण-पासादस्स पुरा	तिलो० प० ४-१८८४
जिणपुरदुवारपुरदो	तिलो० प० ४-१६४०
जिणपुरपासादाणं	तिलो० प० ४-७४१
जिणपूजा-उज्जोगं	तिलो० प० ८-५७५
जिणपूजा मुणिदाणं	रयणसा० १३
जिणबिंबं णाणमयं	बोधपा० १६
जिणभवणइँ कारावियइँ	सावय० दो० १६२
जिणभवण-थूह-मंडव-	जंबू० प० ५-१२२
जिणभवणप्पहुदीणं	तिलो० प० ४-२०५१
जिणभवणस्सवगाढं	जंबू० प० ५-८
जिणभवणंगणदेसे	छेदपिं० ३१३
जिणभवणाण वि संखा	जंबू० प० ६-७४
जिणभवणे अट्ठसया	तिलो० सा० ६८४
जिणमग्गबाहिरं जं	दंसणसा० २३
जिणमग्गे पव्वज्जा	बोधपा० ४४
जिणमहिम-दंसणेणं	तिलो० प० ८-६७६
जिणमंदिर-कूडाणं	तिलो० प० ४-१६६६
जिणमंदिर-जुत्ताइं	तिलो० प० ५-४०
जिणमंदिर-रम्माओ	तिलो० प० ४-२४५३
जिणमुद्दं सिद्धिसुहं	मोक्खपा० ४७
जिणलिंगधरो जोई	रयणसा० १६४
जिणलिंगधारिणो जे	तिलो० प० ८-५५६
जिणलिंगे मायावी	तिलो० सा० ६२२
जिणवयणनिहिदसारा	मोक्खपा० ३८
जिणवयणणिच्छिदमदी	मूला० ८४२
जिणवयणधम्मचेइय-	वसु० सा० २७५
जिणवयणधम्मचेइय-	कल्लाणा० २५
जिणवयणभावणट्ठं	कत्ति० अणु० ४८७
जिणवयणभासिदत्थं	मूला० ८६०
जिणवयणमणुगणेंता	मूला० ८०५
जिणवयणमेव भासदि	कत्ति० अणु० ३१८
जिणवयणमोसहमिणं ८	दंसणपा० १७
जिणवयणमोसहमिणं ८	मूला० ९५
जिणवयणमोसहमिणं ८	मूला० ८४१

जिणवयण सद्दहाणो	मूला० ७३१
जिणवयणमसिदभूदं	भ० आरा० १९६०
जिणवयणे अणुरत्ता	मूला० ७२
जिणवयणेयग्गमणो	कत्ति० अणु० ३४६
जिणवर-चरणंवुरुहं	भावपा० १५१
जिणवर-मएण जोई	मोक्खपा० २०
जिणवर-वयणविणिग्गय-	जंवू० प० १३-१४४
जिणवर-सासणमतुलं	भावसं० ४६६
जिणवरु झावहिं जीव तुहुँ	पाहु० दो० १६७
जिणवंदणापविट्ठा	तिलो० प० ४-६२७
जिणसत्थादो अट्ठे	पवयणसा० १-८६
जिणसमकोट्ठट्ठिदा	तिलो० सा० ८४२
जिणसासण-माहप्पं	कत्ति० अणु० ४२२
जिण-सिद्ध-साहु-धम्मा	भ० आरा० ३२२
जिण-सिद्ध-सूरि-पाठय-	वसु० सा० ३८०
जिण-सिद्धाणं पडिमा	तिलो० सा० १०१५
जिणहरि लिहियइं मंडियइं	सावय० दो० २०१
जिणु अचइ सो अक्खयहिं	सावय० दो० १८५
जिणु गुणु देइ अचेयणु वि	सावय० दो० २१८
जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु	जोगसा० १६
जिणो देवो जिणो देवो	कल्लाणा० ४६
जिणोवदिट्ठागमभावणिज्जं	तिलो०प० ३-२१५
जिण्णिं वरिथं जेम वुहु	परम० प० २-१७६
जिण्णुद्धारपदि(इ)ट्ठा-	रयणसा० ३२
जित्थु ण इंदिय-सुह-दुहइँ	परम० प० १-२८
जिदउवसग्गपरीसह	मूला० ५२०
जिदकोहमाणमाया	मूला० ५६१
जिदणिद्दा तल्लिच्छा	भ० आरा० ६६७
जिदमोहस्स दु जइया	समय० ३३
जिदरागो जिददोसो	भ० आरा० १६६८
जिब्भाए वि लिहंतो	भ० आरा० ४८१
जिब्भाछेयण णयणा-	वसु० सा० १६८
जिब्भा जिब्भगलोला	तिलो० प० २-४२
जिब्भा जिब्भिगसण्णा	तिलो० सा० १५६
जिब्भामूलं चोलेइ	भ० आरा० १६६१
जिब्भिंदिउ जिय संवरहि	सावय० दो० १२४
जिब्भिंदियणोइंदिय-	तिलो० प० ४-१०६१
जिब्भिंदियसुदणाण-	तिलो० प० ४-६८५
जिब्भुक्कस्सखिदीदो	तिलो० प० ४-६८६
जिब्भोवत्थणिमित्तं	मूला० ६८८
जिम चिंतिज्जइ घरु घरिणि	सुप्प० दो० ६४
जिम झाइज्जइ वल्लहउ	सुप्प० दो० ६
जिम लोणु विलिज्जइ पाणियहँ	पाहु० दो० १७६
जिय अणुमित्तु वि दुक्खडा	परम० प० २-१२०
जियकोहो जियमाणो	धम्मर० १३५
जियभय-जियउवसग्गे	जोगिभ० २२
जिय मंतइं सत्तक्खरइं	सावय० दो० २१५
जिह छव्वीसं ठाणं	पंचसं० ५-६६
जिह तिण्हं तीसाणं *	पंचसं० ५-६५
जिह तिण्हं तीसाणं *	पंचसं० ४-२७२
जिह पढमं उणतीसं	पंचसं० ५-८१
जिह समिलहिं सायरगयहिं	सावय० दो० ३
जीइ दिसाए वरणा	आय० ति० ६-१७
जीउ वि पुग्गलु कालु जिय	परम० प० २-२२
जीउ सचेयणु दव्वु मुणि	परम० प० २-१७
जीए चउधणुमाणे	तिलो० प० ४-१०८६
जीए जीओ दिट्ठो	तिलो० प० ४-१०७७
जीए ण होंति मुणिणो	तिलो० प० ४-१०५६
जीए पस्स(सेय) जलाणिल-	तिलो०प०४-१०७१
जीए लाला सेम्मच्छे-	तिलो० प० ४-१०६७
जीओप्पत्तिलयाणं	तिलो० प० ४-२१५७
जीरदि समयपवद्धं ×	गो० क० ५
जीरदि समयपवद्धं ×	कम्मप० ५
जीवइ ण जीवइ च्चिय	आय० ति० ८-१७
जीवकदी तुरिमंसा	तिलो० प० ४-१८२
जीवकम्माण उहयं	भावसं० ३२४
जीवगदमजीवगदं	भ० आरा० ८१०
जीवगुणठाणसण्णा-	सिद्धंत० १
जीवगुणे तह जोए	सिद्धंत० ३
जीवट्ठाणवियप्पा	पंचसं० १-३२
जीवणिवद्धं देहं	बा० अणु० ६
जीवणिवद्धा एदे(ए)	समय० ७४
जीवणिवद्धा वद्धा	मूला० ६
जीवत्तं भव्वत्तम-	गो० क० ८१६
जीवत्तं भव्वत्तं	भावति० १००
जीवदया दम सच्चं	सीलपा० १६
जीवदि जीविस्सदि जो	भावति० १३
जीवदुगं उत्तट्ठं	गो० जी० ६२१
जीव-दु विदेहमज्झे	तिलो० सा० ७७७
जीवपएसप्पचयं	भावसं० ६२२

जुगवेदकसाएहिं	पंचसं० ५–४०
जुगवेदकमाएहिं	पंचसं० ५–३०६
जुज्जइ संबंधवसा	सम्मइ० ३–२१
जुएणं पांचनमइलं	भ० आरा० १०६६
जुएणो व दरिद्दो वा	भ० आरा० ६५६
जुत्तस्स तवधुराए	भ० आरा० ६६१
जुत्ता घणोवहिघणा-	तिलो० प० ८–६५४
जुत्तीसु जुत्तमग्गे	दव्वस० णय० २६६
जुत्तो पमाणरइओ	भ० आरा० ६४५
जुत्तो सुहेण आदा	पवयणसा० १–७०
जुदि-सुदि(?)पहंकराओ	तिलो० प० ७–७६
जुवराय-वकलत्ताणं (?)	तिलो० प० ८–२१६
जुवला जुवला जादा	जंबू० प० ६–१७१
जूअ-महु-मज्ज-मंसं	रिट्ठस० ५
जूएँ धणहु ण हाणि पर	सावय० दो० ३८
जूगा-गुंभी-मक्कण-	पंचत्थि० ११५
जूगाहि य लिक्खाहिं	भ० आरा० ८६
जूयं खेलंतस्स हु	वसु० सा० ६०
जूयं मज्जं मंसं	वसु० सा० ५६
जे अजधागहिदत्था	पवयणसा० ३–७१
जे अत्थपज्जया खलु	मूला० ३६६
जे अब्भंतरभागे	तिलो० प० ४–२४७५
जे अभियोग-पइण्णय-	तिलो० प० ८–२६६
जे आस सुभा एएहिं	भ० आरा० १४१५
जे उप्पण्णा तिरिया	जंबू० प० ११–१७६
जे उप्पण्णा तिरिया	जंबू० प० ११–१८६
जे उप्पण्णा गसी	जंबू० प० १२–८५
जे ऊणतीसबंधे	पंचसं० ५–२४०
जे कयकम्मपउत्ता	भावसं० २७
जे कम्मभूमिजादा	जंबू० प० २–१५०
जे कम्मभूमिजादा	जंबू० प० ६–१७२
जे कम्मभूमिजादा	जंबू० प० ११–१०४
जे कम्मभूमिमणुया	जंबू० प० ३–२३५
जे कुव्वंति ण भत्ति	तिलो० प० ४–२५०६
जे केइ अएणाणतवेहिं जुत्ता	तिलो० प० ३–२४१
जे केइ वि उवएसा	वसु० सा० ३३३
जे केई उवसग्गा	मूला० ६५५
जे के वि दव्वसवणा	भावपा० १२०
जे कोह-माण-माया	तिलो० प० ३–२०६
जे खलु इंदियगेज्झा	पंचत्थि० ९९

जे गच्छादो संवा-	छेदपिं० १०६
जे गारवेहिं रहिदा	भ० आरा० ५४४
जे गेएहंत सुवएणप्प-	तिलो० प० ४–२५०७
जे(ज)च्छिन्नसि विक्खंभं	तिलो०प० ४–२५८०
जे छंडिय मुणिसंघं	तिलो० प० ४–२५०४
जे जत्थ गुणा उदया	पंचसं० ५–३२१
जे जाया झाणग्गिए	परम० प० १–१
जे जिणलिंगु धरे वि मुणि	परम० प० २–६१
जे जिणवयणे कुसला	कत्ति० अणु० १६४
जे जुत्ता णरतिरिया	तिलो० प०४–२५४४
जे जुत्ता णरतिरिया	तिलो० प० ५–२६१
जे जे जम्हि कसाए	कसायपा० ६८(१५)
जे जेट्ठदारपुरदो	तिलो० प० ४–१६२०
जे झायंति स-दव्वं	मोक्खपा० १६
जेट्ठपरित्ताणंतं	तिलो० सा० ४७
जेट्ठभवणाण परिदो	तिलो० सा० २६६
जेट्ठम्मि चावपट्टे	तिलो० प० ४–१८६
जेट्ठवरट्ठिदिबंधे	लद्धिसा० ८
जेट्ठसिदवारसीए	तिलो० प० ४–५४०
जेट्ठस्स किण्हचोद्दसि-	तिलो० प० ४–११६७
जेट्ठस्स किण्हचोद्दसि-	तिलो० प० ४–११६८
जेट्ठस्स बहुलचोत्थी-	तिलो० प० ४–६५८
जेट्ठस्स बहुलबारसि-	तिलो० प० ४–६५६
जेट्ठस्स बारसीए	तिलो० प० ४–५३८
जेट्ठंतरसंखादो-	तिलो० प० ४–२४२४
जेट्ठाए जीवाए	तिलो० प० ४–१८७
जेट्ठाओ साहाओ	तिलो० प० ४–२१५४
जेट्ठाण मज्झिमाणं	तिलो० प० ४–२४२६
जेट्ठाणं विच्चाले	तिलो० प० ४–२४१२
जेट्ठा ताओ पुह पुह	तिलो० सा० ४४८
जेट्ठा ते संलग्गा	तिलो० प० ४–२४११
जेट्ठा दो-सय-दंडा	तिलो० प० ४–२३
जेट्ठावाहोवट्टिय-	गो० क० १४७
जेट्ठा मूल पुवुत्तर	तिलो० सा० ४३३
जेट्ठा मूले जोण्हं	भ० आरा० ८६६
जेट्ठावरबहुमज्झिम-	गो० जी० ६३१
जेट्ठावरभवणाणं	तिलो० सा० २१८
जेट्ठे समयपबद्धे	गो० क० ५८८
जेण कमालिउ जलु पियइ	सावय० दो० ७०
जेण कसेणं पावो	भाव० त्रि० ३१–६

जे मंदरजुत्ताइं	तिलो० प० ४-४०-२६
जे मायाचाररदा	तिलो० प० ४-२५०२
जे रयणत्तउ णिम्मलउ	परम० प० २-३२
जे रायसंगजुत्ता	भावपा० ७२
जे वड्ढिदा दु चंदा	जंबू० प० १२-४२
जे वयणिज्जवियप्पा	सम्मइ० १-४३
जे वि अहिंसादिगुणा	भ० आरा० ५७
जे वि य अण्णगणादो ×	छेदपिं० १७०
जे वि य अण्णगणादो ×	छेदपिं० १८१
जे सच्चवयणहीणा	तिलो० प० ३-२०२
जे वि हु जहण्णियं ते-	भ० आरा० १६४०
जे सरसिं संतुट्ठ-मण	परम०प०२-१११ क्षे०४
जे संखाई खंधा	दव्वस० णय० ३२
जे संघयणाईया	सम्मइ० २-३५
जे संतवायदोसे	सम्मइ० ३-५०
जे संसारसरीरभोगविसये	तिलो० प० ४-७०२
जे संसारी जीवा	भावसं० ४
जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिं	जोगसा० १०७
जेसिं अत्थि सहाओ	पंचत्थि० ५
जेसिं अमेज्झमज्झे	रयणसा० १४०
जेसिं आउसमाइं	भ० आरा० २११०
जेसिं आउसमाणं	भावसं० ६७७
जेसिं जीवसहावो +	पंचत्थि० ३५
जेसिं जीवसहावो +	भावपा० ६३
जेसिं ण संति जोगा ❋	गो० जी० २४२
जेसिं ण संति जोगा ❋	पंचसं० १-१००
जेसिं तरुण मूले	तिलो० प० ४-६१३
जेसिं विसएसु रदी	पवयणसा० १-६४
जेसिं हवंति विसमा-	भ० आरा० २११९
जेसिं हुंति जहण्णा	आरा० सा० १०६
जे सुणंति धम्मक्खरइँ	सावय० दो० ११८
जे सुद्धवीरपुरिसा-	धम्मर० १८४
जे सेसा णरतिरिया	जंबू० प० ११-१६१
जे सोलस कप्पाइं	तिलो० प० ८-१४८
जे सोलस कप्पाइं	तिलो० प० ८-१७८
जे सोलस कप्पाइं	तिलो० प० ८-४२३
जे सोलस कप्पाणं	तिलो० प० ८-४२६
जेहउ जज्जरु णरय-घरु	परम० प० २-१४१
जेहउ जज्जरु णरय-घरु	जोगसा० ५१
जेहउ णिम्मलु णाणमउ	परम० प० १-२६
जेहउ मणु विसयहँ रमइ	जोगसा० ५०
जेहउ सुद्धअयासु जिय	जोगसा० ५६
जेहा पाणहँ झुंपडा	पाहु० दो० १०८
जेहिं ण दिण्णं दाणं	भावसं० ५६६
जेहिं ण णिय वसु विलसियउ	सुप्प० दो० ६३
जेहिं अणेया जीवा ×	गो० जी० ७०
जेहिं अणेया जीवा ×	पंचसं० १-३२
जेहिं झाणग्गिबाणेहिं	पंचगु० भ० २
जेहिं दु लक्खिज्जंते ❋	पंचसं० १-३
जेहिं दु लक्खिज्जंते ❋	गो० जी० ८
जेहिं दु लक्खिज्जंते ❋	गो० क० ८१२
जेहिं जिणह णिहि वल्लहउ	सुप्प० दो० ६२
जे हीणा अवहारे	लद्धिसा० ४७०
जे हुंति तत्थ आया	आय० ति० २१-७
जें दिट्ठें तुट्टंति लहु	परम० प० १-२७
जो अजुदाऊ देवो	तिलो० प० ३-११७
जो अणुमणणं ण कुणदि	कत्ति० अणु० ३८८
जो अणुमेत्तु वि राउ मणि	परम० प० २-८१
जो अण्णेसिं दव्वं	छेदपिं० ६६
जो अण्णोण्णपवेसो	कत्ति० अणु० २०३
जो अत्थो पडिसमयं	कत्ति० अणु० २३७
जो अपरिमिदपराधो	छेदपिं० २४३
जो अप्पणा दु मण्णदि	समय० २५३
जो अप्पणो सरीरे	धम्मर० ११३
जो अप्पसुक्खहेदुं	भ० आरा० १२२१
जो अप्पाणं जाणदि	कत्ति० अणु० ४६३
जो अप्पाणं झायदि	तच्चसा० ५७
जो अप्पा तं णाणं	तच्चसा० ४४
जो अप्पा सुद्ध वि मुणइ	जोगसा० ९५
जो अच्चंभं सेवदि	छेदपिं० ४०
जो अभिलासो विसए-	भ० आरा० १८२२
जो अवमाणणकरणं	भ० आरा० १४२१
जो अवलेहइ णिच्चं	वसु० सा० ८४
जो अहिलसेदि पुण्णं	कत्ति० अणु० ४१०
जो आइंचणकालो	सम्मइ० ३-३५
जो आदभावणमिणं +	समय० ११ क्षे०१ ता०वृ०
जो आदभावणमिणं +	तिलो० प० १-५५
जो आयरेण मण्णदि	कत्ति० अणु० ३१९
जो आयासइ मणु धरइ	परम० प० २-१६९
जो आरंभं ण कुणदि	कत्ति० अणु० ३८५

जो इच्छइ निस्सरिदुं	मोक्खपा० २६
जो इच्छदि निस्सरिदुं	तिलो० प० ६–४०
जोइज्जइ तिं बंभु परु	परम० प० १–१०६
जो इट्ठण(जोइस)णयरीणं	तिलो० प० ७–११५
जोइय अप्पें जाणिएण	परम० प० १–६६
जोइय चिंति म किं पि तुहुँ	परम० प० २–१८७
जोइय जोएं लइयइण	पाहु० दो० ६१
जोइय णिय-मणि णिम्मलए	परम०प० १–११६
जोइय णेहु परिच्चयहि	परम० प० २–११५
जोइय दुम्मइ कवुण तुहुँ	परम० प० २–१७१
जोइय देहु घिणावणउ	परम० प० २–१५१
जोइय देहु परिच्चयहि	परम० प० २–१५२
जोइय भिण्णउ झाय तुहुँ	पाहु० दो० १२६
जोइय मिल्लहि चिंत जइ	परम० प० २–१७०
जोइय मोक्खु वि मोक्ख-फलु	परम० प० २–२
जोइय मोहु परिच्चयहि	परम० प० २–१११
जाइय लोहु परिच्चयहि	परम० प० २–११३
जोइय विसमी जोय-गइ *	परम० प० २–१२७
जोइय विसमी जोय-गइ *	पाहु० दो०१८६
जोइय विंदहिं णाणमउ	परम० प० १–३६
जोइय सयलु वि कारिमउ	परम० प० २–१२६
जाइय हियडइ जासु ण वि	पाहु० दो० १६४
जोइय हियडइ जासु पर	पाहु० दो० ७६
जोइसदुमा वि णेया	जंबू० प० २–१२८
जोइसदेवीणाऊ	तिलो० सा० ४४६
जोइसवरपासादा	जंबू० प० १२–१०६
जोइसविज्जामंतो	रयणसा० १०६
जोइसिय-णिवासखिदी	तिलो० प० ७–२
जोइसिय-वाण-जोणिणि-	गो० जी० २७६
जोइसिय-वाण-वेंतर-	तिलो० प० ५–७३
जोइसियंताणोही-	गो० जी० ४३६
जोइसियाण विमाणा	कत्ति० अणु० १४६
जोइसियादो अहिया	गो० जी० ५३६
जो इह सुदेण भणिओ	दव्वस० णय० २८६
जो इंदियाइं दंडइ	भावसं० १७६
जो इंदियादिविजई	पवयणसा० २–५६
जो इंदिये जिणित्ता	समय० ३१
जोईणं झाणगम्मो परमसुहमहो	णियप्पा० ४
जो उप्पण्णो रासी	जंबू० प० १२–७२
जो उवएसो दिज्जइ	कत्ति० अणु० ३४५
जो उवयग्गदि जदीणं	कत्ति० अणु० ४५७
जो उवविधेदि सव्वा-	भ० आरा० २००५
जो उवसमइ कसाए	भावसं० ६५५
जो एइ अणाहूओ	आय० ति० २३–१४
जोए करणे सण्णा	मूला० १०१७
जो एगेगं अत्थं	कत्ति० अणु० २७६
जो एत्थ अपडिपुण्णो	पंचसं० ५–५०३
जो एयसमयवट्टी *	णयच० ३८
जो एयसमयवट्टी *	दव्वस० णय० २१०
जो एरिसियं धम्मं	धम्मर० १६
जो एवं जाणित्ता	पवयणसा० २–१०२
जो एवं जाणित्ता	तिलो० प० ६–३५
जो एवंविहदोसो	छेदपिं० २७८
जोएहिं तीहिं वियरइ	भावसं० ६४६
जो ओलग्गदि आरा-	भ० आरा० २००६
जो कत्ता सो भुत्ता	भावसं० २६६
जो कम्मजादमइओ	मोक्खपा० ५६
जो कम्मकलुसरहिओ	जंबू० प० १३–६३
जो कम्मंसो पविसदि	कसायपा० २२४ (१७१)
जो कल्लाणसमग्गो	जंबू० प० १३–८८
जो कुणइ काउसग्गं	कत्ति० अणु० ३७१
जो कुणइ जयमसेसं	भावसं० २१५
जो कुणइ पुण्णपावं	भावसं० ३८
जो कुणदि वच्छलत्तं	समय० २३५
जो कोइ मज्झ उवधी	मूला० ११४
जो कोडिए ण जिप्पइ	मोक्खपा० २२
जो को वि धम्मसीलो	दंसणपा० ६
जो खलु अणाइणिहणो	दव्वस० णय० २६
जो खलु जीवसहाओ	दव्वस० णय० ११५
जो खलु दव्वसहावो	पवयणसा० २–१७
जो खलु संसारत्थो	पंचत्थि० १२८
जो खलु सुद्धो भावो	तच्चसा० ८
जो खलु सुद्धो भावो	आरा० सा० ७६
जो खवयसेढिरूढो	भावसं० ६६०
जो खविदमोहकम्मो	तिलो० प० ६–४६
जो खविदमोहकलुसो	पवयणसा० २–१०४
जो खु सदिविप्पहूणो	भ० आरा० १८४३
जो खुह-तिस-भय-हीणो	जंबू० प० १३–८५
जो गच्छिज्ज विसादं	भ० आरा० १५३५
जोगट्ठाणा तिविहा	गो० क० २१८

जोयणदलवासजुदो	तिलो० प० ४-२७५२
जोयणदलविक्खंभो	तिलो० प० ४-१६२८
जोयणपमाणसंठिद-	तिलो० प० १-६०
जोयण-पंचसयाइं	तिलो० प० ४-२७२१
जोयण-पंचसयाणि	तिलो० प० ४-२७१६
जोयण-पंचसहस्सा	तिलो० प० ७-१८६
जोयण-पंचसहस्सा	तिलो० प० ७-१६८
जोयण-पंचूणइया	जंबू० प० २-४६
जोयणमधियं उदयं	तिलो० प० ४-७७६
जोयण-मुहुवित्थारा	जंबू० प० ४-२७८
जोयणमेक्कट्ठिकए	तिलो० सा० ३३७
जोयणमेत्तपमाणो	जंबू० प० १३-१०६
जोयण य छस्सयाणि	तिलो० प० ४-२७२०
जोयणया छण्णवदी	तिलो० प० ८-५३
जोयण-लक्खं तिदियं	तिलो० प० ४-२७६८
जोयण-लक्खं तेरस	तिलो० प० ४-२४२५
जोयण-लक्खं वासो	तिलो० सा० १५
जोयण-लक्खायामा	तिलो० प० ५-६४
जोयण-लक्खायामा	तिलो० प० ६-६५
जोयण-वीससहस्सं	तिलो० सा० १२४
जोयण-वीससहस्सा	तिलो० प० १-२७०
जोयण-वीससहस्सा	तिलो० प० ४-१७५३
जोयण-सगदु दु छक्किगि	तिलो० सा० ३१२
जोयण-सट्ठिसहस्सं	तिलो० प० ४-२०२१
जोयण-सट्ठी रुंदं	तिलो० प० ४-२१८
जोयण-सत्तसहस्सं	तिलो० सा० १७६
जोयण-सत्तसहस्सं	तिलो० प० ४-२०६४
जोयण-सदं तियकदी	तिलो० प० ६-१०२
जोयण-सद-मज्झादं	तिलो० प० ४-८६७
जोयणसदेक्क बे चउ	जंबू० प० ३-१६८
जोयण-सयआयामं	तिलो० सा० ६८१
जोयण-सयआयामा	जंबू० प० ४-४६
जोयण-सयआयामा	जंबू० प० ५-६
जोयण-सयआयामा	जंबू० प० ५-३६
जोयणसयउव्विद्धा	जंबू० प० २-१०४
जोयणसयदीहत्ता	तिलो० प० ८-४३६
जोयणसयद्धतुंगं	जंबू० प० ५-६३
जोयणसयप्पमाणा	जंबू० प० ११-१५७
जोयणसयमुत्तुंगा	तिलो० प० ४-२१०२
जोयणसयमुव्विद्धा	जंबू० प० ६-४५
जोयणसयमुव्विद्धो	तिलो० प० ४-२७०
जोयणसयविक्खंभा	तिलो० प० ४-२४६१
जोयणसयं समहियं	जंबू० प० ११-२३३
जोयणसयाणि दोण्णि	तिलो० प० ४-२८३६
जोयणसहस्स एदे	जंबू० प० ३-२०६
जोयणसहस्सगाढा	तिलो० प० ५-६१
जोयणसहस्सगाढो	तिलो० प० ४-१७७६
जोयणसहस्सगाढो	तिलो० प० ४-२५७५
जोयणसहस्सगाढो	तिलो० प० ५-५८
जोयणसहस्सतुंगा	तिलो० प० ५-१३७
जोयणसहस्सतुंगा	जंबू० प० १०-२८
जोयणसहस्सतुंगो	जंबू० प० ४-६८
जोयणसहस्समधियं	तिलो० प० ५-३१६
जोयणसहस्समेक्कं	तिलो० प० ४-१६३
जोयणसहस्समेक्कं	तिलो० प० ४-१८०८
जोयणसहस्समेक्कं	तिलो० प० ४-२०७३
जोयणसहस्समेक्कं	तिलो० प० ४-२५३३
जोयणसहस्समेक्कं	तिलो० प० ४-२५७७
जोयणसहस्समेक्कं	तिलो० प० ४-२६०६
जोयणसहस्समेक्कं	तिलो० प० ४-२७४७
जोयणसहस्समेक्कं	तिलो० प० ५-२३६
जोयणसहस्सवासा	तिलो० प० ५-६८
जोयणसंखासंखा	तिलो० सा० २२०
जो रत्तीए चरियं	छेदपिं० ७२
जो रयणत्तयजुत्तो	दव्वसं० ५३
जो रयणत्तयजुत्तो	कत्ति० अणु० ३६२
जो रयणत्तयजुत्तो	मोक्खपा० ४३
जो रयणत्तयणासो	पवयणसा० ३-२४क्षे० १६(ज)
जो रयणत्तयमइओ	आरा० सा० २०
जो रसेंदिय फासे य	मूला० ५२८
जो रायदोसहेदू	कत्ति० अणु० ४४५
जो रित्तो पावजुओ	आय० ति० ८-१२
जो रुक्खमूलजोगी	छेदपिं० १३३
जोऽरूविरूविजीवा-	अंगप० २-१२
जो लेइ अणसणं चिय	रिट्ठस० २५२
जो लोहं णिहणित्ता	कत्ति० अणु० ३३६
जो वज्जेदि सच्चित्तं	कत्ति० अणु० ३८१
जो वट्टणं च मण्णइ *	णयच० ४०
जो वट्टणं ण(च) मण्णइ *	दव्वस० णय० २१२
जो वट्टमाणकाले	कत्ति० अणु० २७४

जो वट्टमाणलच्छिं	कत्ति० अणु० १६
जो वड्ढारइ लच्छिं	कत्ति० अणु० १७
जोवणमएण मत्तो	वसु० सा० १४२
जो वयभायणु सो जि तणु	सावय० दो० ११६
जो वहइ सिरे गंगा	धम्मर० १००
जो वावरइ सरूवे	कत्ति० अणु० ४४८
जो वावरेइ सदओ	कत्ति० अणु० ३३१
जोवारि-वीहि-कोद्दव-	आय० ति० १०-७
जो वि य विणिप्पइत्तं	भ० आरा० १४०
जो वि विराधिय दंसण-	भ० आरा० १६८७
जो वि सहदि दुव्वयणं	कत्ति० अणु० १०६
जो वेददि वेदिज्जदि	समय० २१६
जो सग्गसुहणिमित्तं	कत्ति० अणु० ४१५
जो सयरं पि पलित्तं	भ० आरा० २८४
जो सम-भाव-परिट्ठियहँ	परम० प० १-३५
जो सम-भावहँ बाहिरउ	परम० प० २-१०६
जो समयपाहुडमिणं	समय० ४१५
जो सम-सुक्ख-णिलीणु बुहु	जोगसा० ६३
जो सम-सुक्ख-णिलीणो	कत्ति० अणु ११४
जो समो सव्वभूदेसु	णियमसा० १२६
जो समो सव्वभूदेसु	मूला० ५२६
जो सम्मत्त-पहाण बुहु	जोगसा० ९०
जो सम्मत्तं खवया	भ० आरा० १६३३
जो सव्वसंगमुक्को	समय० १८८
जो सव्वसंगमुक्को *	पंचत्थि० १५८
जो सव्वसंगमुक्को *	तिलो० प० ९-२४
जो सव्वसंगमुक्को	तिलो० प० ९-४६
जो (जा *) संकप्पवियप्पो	तिलो० प० ९-६३
जो संगहेण गहिदं	कत्ति अणु० २७३
जो संगहेण गहियं	दव्वस० णय० २०१
जो संगहेदि सव्वं	कत्ति० अणु० २७२
जो संगं तु मुइत्ता	समय० १२५ पे०८(ज०)
जो संचिऊण लच्छिं	कत्ति० अणु० १४
जो संजमेसु सहिओ	सुत्तपा० ११
जो संवरेण जुत्तो	पंचत्थि० १४५
जो संवरेण जुत्तो	पंचत्थि० १५३
जो सामाइय छेदो	पंचसं० १-१२९
जो सावय-वय-सुद्धो	कत्ति० अणु० ३८१
जो साहदि सामण्णं	कत्ति० अणु० २६६
जो साहेदि अदीदं	कत्ति० अणु० २७१
जो साहेदि विसेसे	कत्ति० अणु० २७०
जो सिद्धभत्तिजुत्तो	समय० २३३
जो सिदभेदुवयारं	दव्वस० णय० २६३
जो सुत्तो ववहारे	मोक्खपा० ३१
जो सुयणाणं सव्वं	समय० १०
जो सेवदि अब्बंभं	छेदपिं० ५२
जो सो दु ऐहभावो *	समय० २४०
जो सो दु ऐहभावो *	समय० २४५
जो हणइ एयगावी	भावसं० २४४
जो हवइ रुद्धगहिओ	आय० ति० २-१५
जो हवइ सव्वसरिओ	आय० ति० २-२७
जो हवइ असम्मूढो	समय० २३२
जो हि सुएणहिगच्छइ +	समय० ९
जो हि सुदेण विजाणादि +	पवयणसा० १-३३
जो हु अमुत्तो भणिओ	दव्वस० णय० १२०
जो हेउवायपक्खम्मि	सम्मइ० ३-४५
जो होदि जधाछंदो	भ० आरा० १३११
जो होदि णिसीदप्पा	मूला० ६८७

* पृ० ११७ पर मुद्रित समय० का 'जा' (= यावत्) शब्दसे प्रारम्भ होनेवाला पाठ और यह समान है।

झ

झाएह तिप्पयारं	खाणसा० १८
झाणग्गिदड्ढकम्मे	तच्चसा० १
झाणट्ठिओ हु जोई	तच्चसा० ५६
झाणणिलीणो साहू	णियमसा० ९३
झाणस्स फलं तिविहं	भावसं० ६३३
झाणस्स भावणा वि य	दव्वस० णय० १७८
झाणस्स य सत्तीए	भावसं० ६३४
झाणं करेइ ववयसो-	भ० आरा० १८९४
झाणं पज्जायवहादि	भ० आरा० १८११
झाणं पज्जायपरचक्क-	भ० आरा० ११००
झाणं पज्जायमाणे	भ० आरा० ११०१
झाणं पज्जायवाद	भ० आरा० १८१८
झाणं पिक्केलमायद-	भ० आरा० १८१७
झाणं चउप्पयारं	खाणसा० १०
झाणं झाऊण पुणो	भावसं० ६८१
झाणं झाणब्भासं	दव्वस० णय० १७७
झाणं तह झायारो	भावसं० ६८१

झाणं पुधत्तसवितक्क-	भ० आरा० १८७८
झाणं विसयछुहाए	भ० आरा० १६०२
झाणं सजोइकेवलि	भावसं० ६८२
झाणं हवेइ अग्गी	समय० २१६ चे०१७(ज०)
झाणागदेहिं इंदिय-	भ० आरा० १३६८
झाणाणं संताणं	भावसं० ३८७
झाणे जदि णियआदा	तिलो० प० ६-४२
झाणेण कुणउ भेयं	तच्चसा० २५
झाणेण तेण तस्स हु	भावसं० १०५
झाणेण य तह अप्पा	भ० आरा० २१२६
झाणेण य तेण अधक्खा-	भ० आरा० २१००
झाणेण विणा जोई	णाणसा० ७
झाणेहिं खवियकम्मा	मूला० ७६५
झाणेहिं तेहिं पावं	भावसं० ३६४
झाणें कम्म-क्खउ करिवि	परम० प० २-२०१
झायइ धम्मज्झाणं	भावसं० ६०३
झायह णियकर(उग? भू?)मज्झे	णाणसा० २०
झायहि धम्मं सुक्कं	भावपा० ११६
झायहि पंच वि गुरवे	भावपा० १२२
झायहु सुद्धो अप्पा	ढाढसी० ३४
झायंतो अणगारो	भ० आरा० १६४७
झायारो पुण झाणं	भावसं० ६१६
झीणट्ठिदिकम्मंसे	कसायपा० १२६ (७३)
झुंणिक्खियसंपुण्णहल	सावय० दो० १७८
झेओ जीवसहावो	दव्वस० णय० २८७
झेयं तिविहपयारं	भावसं० ६३१

ट

टंकुक्किण्णायारो	तिलो० प० ४-२७१६

ठ

ठवणा-ठविदं जह दे-	मूला० ३१०
ठविदं ठाविदं चावि	मूला० ५४३
ठविदूण माणुसुत्तर-	तिलो० प० ४-२७८६
ठाणगदिपेच्छिदुल्ला-	भ० आरा० १०६१
ठाणजुदाण अधम्मो	दव्वसं० १८
ठाण-णिसेज्ज-विहारा	णियमसा० १७५
ठाण-णिसेज्ज-विहारा	पवयणसा० १-४४
ठाणभंसं पवासो	आय० ति० ३-१४
ठाणमपुण्णेण जुदं	गो० क० ५२२
ठाण-सयणासणेहिं य	मूला० ३५६
ठाणा चलेज्ज मेरू	भ० आरा० १४८८
ठाणाणि आसणाणि य	मूला० ६६३
ठाणासणाणि छ च्चिय	तिलो० प० २-२२७
ठाणासणादिजोगे	छेदपिं० १३७
ठाणी मोणवदीए	जोगिभ० १२
ठाणे-चंकमणादा	मूला० ६१४
ठाणेहिं वि जोणीहिं वि	गो० जी० ७४
ठावणमंगलमेदं	तिलो० प० १-२०
ठिच्चा णिसिदित्ता वा	भ० आरा० २०४१
ठिदि-अणुभाग-पदेसा	गो० क० ६१
ठिदि-अणुभागाणं पुण	गो० क० ४२६
ठिदि-अणुभागे अंसे	कसायपा० १५७ (१०४)
ठिदिउत्तरसेढीए	कसायपा० २०१ (१४८)
ठिदिकरण-गुण-पउत्तो	भावसं० २८२
ठिदिकारणं अधम्मो	भावसं० ३०७
ठिदिखंडपुधत्तगदे	लद्धिसा० ४४८
ठिदिखंडमसंखेज्जे	लद्धिसा० ६२०
ठिदिखंडयं तु खइये	लद्धिसा० २२०
ठिदिखंडयं तु चरिमं	लद्धिसा० ३८५
ठिदिखंडसहस्सगदे	लद्धिसा० ४३०
ठिदिखंडाणुक्कीरण-	लद्धिसा० १३४
ठिदि-गदि-विलास-विब्भम-	भ० आरा० १०८६
ठिदिगुणहाणिपमाणं	गो० क० ६५१
ठिदिबंधपुधत्तगदे	लद्धिसा० २२७
ठिदिबंधपुधत्तगदे	लद्धिसा० ४२७
ठिदिबंधपुधत्तगदे	लद्धिसा० ४२८
ठिदिबंधपुधत्तगदे	लद्धिसा० ४४७
ठिदिबंधसहस्सगदे *	लद्धिसा० २२६
ठिदिबंधसहस्सगदे	लद्धिसा० २३७
ठिदिबंधसहस्सगदे *	लद्धिसा० ४१२

ड

ढ

ण

णखहरणादिच्छुरिया-	छेदपिं० २१६
णग-गुह-कुंड-विणिग्गय-	जंबू० प० २-६६
ण गणेइ इट्ठमित्तं	वसु० सा० ६३
ण गणेइ दुक्खसल्लं	आरा० सा० ६८
ण गणेइ माय-वप्पं	वसु० सा० १०४
णग-पुढवि-वालुगोदय-	कसायपा० ७१ (१८)
णगरस्स जह दुवारं	भ० आरा० ७३६
णगराणि बहुविहाणि य	जंबू० प० ८-११९
णगरी सुगंधिणी वज्ज-	तिलो० सा० ७०८
णगरेसु तेसु णेया	जंबू० प० ८-६०
ण गुणे पेच्छदि अववद-	भ० आरा० १३६६
णग्गत्तणं अकज्जं	भावपा० ५५
णग्गत्तणि जे गव्विया	पाहु० दो० १५४
णग्गो पावइ दुक्खं	भावपा० ६८
णग्गोह सत्तपण्णं	तिलो० प० ४-६१४
ण च एदि विणिस्सरिदुं	मूला० ८७६
ण चयदि जो दु ममत्तिं	पवयणसा० २-६८
णच्चदि गायदि तावं	लिंगपा० ४
णच्चंतचमरकिंकिणि-	तिलो० प० ५-११२
णच्चंत-विचित्त-धया	तिलो० प० ८-५७६
णच्चा दव्वसहावं	दव्वस० णय० १६४
णच्चा दुरंतमद्धुय-	भ० आरा० १२८२
णच्चावइ बहुभंगिरं-	सुप्प० दो० ७७
णच्चा संवट्टिज्जं	भ० आरा० २०२०
णच्चा संवट्टिज्जं	भ० आरा० २०२३
णच्चिदविविचित्तकीडण-	तिलो० प० ३-२१६
ण जहदि जो दु ममत्तं	तिलो० प० ६-५३
ण जहा णं व दिणे (?)	रिट्ठस० २४३
णज्झवसाणं णाणं	समय० ४०२
णट्टयसालाए पुढं	तिलो० प० ४-७५५
णट्टयसाला थंभा	तिलो० प० ४-७११
णट्टाणीयमहदरी-	जंबू० प० ११-२६३
णट्टाणीया चि सुरा	जंबू० प० ४-२०८
णट्ठकसाये लेस्सा	गो० जी० ५३२
णट्ठ-चउ-घाइकम्मं	भावसं० ४८०
णट्ठ-चदु-घाइकम्मो	दव्वसं० ५०
णट्टचलवलियगिहिभा-	भ० आरा० ६०७
णट्ठट्ठकम्मदेहो	दव्वसं० ५१
णट्ठट्ठकम्मबंधण-	भावसं० ६६८
णट्ठट्ठकम्मबंधा	णियमसा० ७२
णट्ठट्ठकम्मबंधो	भावसं० ३७६
णट्ठट्ठकम्मसुद्धा	दव्वस० णय० १०६
णट्ठट्ठपयडिबंधो	भावसं० ६८७
णट्ठट्ठमयट्ठाणो	जोगिभ० ६
णट्ठपमाए पढमा	गो० जी० १३८
णट्ठा किरियपवित्ती	भावसं० ६८१
णट्ठा य रायदोसा *	गो० क० २७३
णट्ठा य रायदोसा *	लद्धिसा० ६१२
णट्ठासेसपमाओ +	भावसं० ६१४
णट्ठासेसपमाओ +	पंचसं० १-१६
णट्ठासेसपमादो +	गो० जी० ४६
णट्ठे अयउवयरणे	छेदपिं० १६७
णट्ठे असेसलोए	भावसं० २४२
णट्ठे कहिज्जमाणे	आय० ति० १८-१
णट्ठे मण-वावारे	आरा० सा० ६६
णट्ठे मण-संकप्पे	भावसं० ३२३
णट्ठो भग्गो य मओ	रिट्ठस० १८७
णड-भड-मल्ल-कहाओ	मूला० ८५६
ण डहदि अग्गी सच्चे-	भ० आरा० ८३८
ण तहा दोसं पावइ	भ० आरा० १६४१
ण तिलोत्तमाए छलिओ	भावसं० २७७
णत्ताभाए रिक्खे	भ० आरा० १६८८
णत्थि अणं उवसमगे	गो० क० ३६१.
णत्थि अणूदो अप्पं	भ० आरा० ७८४
णत्थि असण्णी जीवा	तिलो० प० ४-३३१
णत्थि कलासंठाणं	तच्चसा० २०
णत्थि गुणो त्ति व कोई	पवयणसा० २-१८
णत्थि चिरं वा खिप्पं	पंचत्थि० २६
णत्थि णउंसय-वेदो	गो० क० ४६७
णत्थि ण णिच्चो ण कुणइ	सम्मइ० ३-५४
णत्थि दु आसव-बंधो	समय० १६६
णत्थि धरा आयासं	भावसं० २१७
णत्थि परोक्खं किंचि वि	पवयणसा० १-२२
णत्थि पुढवीविसिट्ठो	सम्मइ० ३-५२
णत्थि भयं मरणसमं ×	मूला० ११६
णत्थि भयं मरणसमं ×	भ० आरा० १६६६
णत्थि मम कोइ मोहो	तिलो० प० ६-२७
णत्थि मम को वि मोहो	समय० ३६
णत्थि मम धम्मआदी	समय० ३७
णत्थि य सत्तपदत्था	गो० क० ८८५

ण य जे भव्वाभव्वा +	पंचसं० १–१५७
ण य जेसिं पडिक्खलणं	कत्ति० अणु० १२७
णयणेहिं वहु पस्सदि	जंवू० प० १३–७३
ण य तइओ अत्थि णओ	सम्मइ० १–१४
ण य तम्मि देसयाले	भ० आरा० ७७४
ण य दव्वट्ठियपक्खे	सम्मइ० १–१७
ण य दुम्मणा ण विहला	मूला० ८४०
ण य देइ णेय भुंजइ	भावसं० ५५८
ण य पत्तियइ परं सो ×	पंचसं० १–१४८
ण य पत्तियइ परं सो ×	गो० जी० ५१२
ण य परिगेहमकज्जे	मूला० १६२
ण य परिणमदि सयं सो	गो० जी० ५६६
ण य परिहायदि कोई	भ० आरा० १३८०
ण य बाहिरओ भावो	सम्मइ० १–५०
ण य भुंजइ आहारं	वसु० सा० ६८
ण य भुंजदि वेलाए	कत्ति० अणु० १८
ण य मिच्छत्तं पत्तो *	पंचसं० १–१६८
ण य मिच्छत्तं पत्तो *	गो० जी० ६५३
ण य मे अत्थि कवित्तं	आरा० सा० ११४
णयरपदे तस्संखा	तिलो० सा० ४६४
णयरभवाणं मज्झे	रिट्ठस० १७७
णयरम्मि वण्णिदे जह	समय० ३०
णयराण वहिं परिदो	तिलो० सा० ७१७
णयराणं विदियादी-	तिलो०सा०४६६
णयराणि पंचहत्तरि-	तिलो०प०४–२२३५
ण य राय-दोस-मोहं	समय० २८०
णयरीण तदा वहुविह-	तिलो० प० ४–२४५०
णयरीसु चक्कवट्टी	तिलो० प० ४–२२७६
णयरी सुसीमकुंडल-	तिलो० प० ४–२२६५
णयरेसु तेसु दिव्वा	तिलो० प० ६–६६
णयरेसु तेसु राया	जंवू० प० ४–८०
णयरेसुं रमणिज्जा	तिलो० प० ४–२६
ण य सच्च-मोस-जुत्तो ÷	पंचसं० १–९०
ण य सच्च-मोस-जुत्तो ÷	गो० जी० २१८
ण य सुरसेहरमणिकिर-	सावय० दो० २२३
ण य होदु जोव्वणत्थो	सम्मइ० १–४४
ण य होदि णयण-पीडा	मूला० ६१३
ण य होदि मोक्खमग्गो	समय० ४३६
ण य होदि संजदो वत्थ-	भ० आरा० ११२४
णरएसु वेयणाओ	सीलपा० २३
णरकंतकुंडमज्झे	तिलो० प० ४–२३३६
णर-करिणं चउरंसो	आय० ति० २०–४
णरगइणामरगइणा	गो० क० ५२५
णरगीदं वहूकेदू	तिलो० सा० ६६७
णरणारिएहिं पुण्णा	जंवू० प० ८–१४
णरणारयतिरियसुरा	पवयणसा० १–७२
णरणारयतिरियसुरा	पवयणसा० २–२६
णरणारयतिरियसुरा	पवयणसा० २–६१
णरणारयतिरियसुरा	णियमसा० १५
णर-णारिगणा तइया	जंवू० प० २–१२२
णर-णारीणं जमलं	आय० ति० २–१६
णर-णारी-णिवहेहिं	तिलो० प० ४–२२७५
णर-तिरिय-गदीहिंतो	तिलो० सा० ५४६
णरतिरिय देसअयदा	तिलो० सा० ५४५
णरतिरिय लोहमाया-	गो० जी० २९७
णरतिरियाण विचित्तं	तिलो० प० ४–१००६
णरतिरियाणं आऊ	तिलो० प० ४–३१३
णरतिरियाणं ओघो	लद्धिसा० १६
णरतिरियाणं ओघो	गो० जी० ५२६
णरतिरियाणं दट्ठुं	तिलो० प० ४–१००५
णरतिरिया सेसाउं *	गो० क० १३७
णरतिरिया सेसाउं *	कम्मप० १३३
णरतिरिये तिरियणरे	लद्धिसा० १८५
णरदुय-उच्चजुयाओ	पंचसं० ४–३३१
णरदुय-उच्चूणाओ	पंचसं० ४–३२६
णरदेवाऊरहिया	पंचसं० ४–३३४
णरदेवाऊरहिया	पंचसं० ४–३३६
ण रमइ विसएसु मणो	तच्चसा० ६३
ण रमंति जदो णिच्चं ×	पंचसं० १–६०
ण रमंति जदो णिच्चं ×	गो० जी० १४६
णरयतिरिक्खणराउग-	लद्धिसा० ३४७
णरयतिरियाइदुगइ-	रयणसा० ३७
णररासी सामण्णं	तिलो० प० ४–२९२२
णरलद्धिअपज्जत्ते	गो० जी० ७१५
णरलोए त्ति य वयणं	गो० जी० ४५५
णरसुरसुक्खं भुंजं	ढाढसी० ३१
ण रसो दु हवदि णाणं	समय० ३६५
णलया बाहू य तहा ÷	गो० क० २८
णलया वाहू य तहा ÷	कम्मप० ७४
ण लहदि जह लहंतो	भ० आरा० १२५५

वाक्य	संदर्भ
णवणिहि-चउदहरयणं	बा० अणु० १०
णव-णोकसायवग्गं	भावपा० ८६
णव-णोकसाय-विग्घच-	लद्धिसा० ६०८
णव तिय णभ खं णव दो	तिलो० प० ४–२६६६
णवदसएक्कारसमी	छेदपिं० २३६
णव दस सत्तत्तरियं	पंचसं० ५–२७७
णव दस सत्तत्तरियं	पंचसं० ५–४१३
णव-दंडा तिय-हत्था	तिलो० प० २–२३३
णव-दंडा बावीसं-	तिलो० प० २–२३२
णवदुगिगिगिदोणिणखदुग-	तिलो० प० ४–२८५६
णवदुत्तरसत्तसए	तिलो० सा० ३३२
णवदुत्तरसत्तसया	जंबू० प० १२–६३
णवदोछअट्ठचउपण-	तिलो० प० ४–२६४४
णवपणअडणभचउदुग-	तिलो०प०४–२६८६
णवपणअडदुगअडणव-	तिलो०प०४–२८५३
णव पण दो अडवी चउ	दव्वस० णय० ८४
णव पणवीसं णव छप्पण	तिलो०प०४–२५६०
णव पण्णरसलक्खा	तिलो० सा० १४१
णव पंचणमोक्कारा	छेदपिं० १०
णव पंचाणउदि-सया	पंचसं० ५–४४
णवपंचोदयसत्ता *	गो० क० ७४०
णवपंचोदयसंता *	पंचसं० ५–२१६
णव पुव्वधरसयाइं	तिलो० प० ४–११३७
णवफड्डयाण करणं	लद्धिसा० ४७५
णवबंभचेरगुत्ते	जोगिभ० ७
णवमतिए जलणजमे	तिलो० सा० ६४५
णवमम्मि य जं पुव्वे	भ० आरा० ५६५
णवमासाउगि सेसे	वसु० सा० २६४
णवमी अणक्खरगदा	गो० जी० २२५
णवमीए पुव्वण्हे	तिलो० प० ४–६४७
णवमी छव्वीसदिमा	छेदपिं० २३३
णवमे अंजणे वुत्तो	जंबू० प० ११–११८
णवमे ण किंचि जाणदि	भ० आरा० ८६५
णवमे सुरलोयगदे	तिलो० प० ४–४६८
णव य पदत्था जीवा-	गो० जी० ६२०
णव य पयत्था एदे	मूला० २४८
णव य सहस्सा ओही	तिलो० प० ४–१११६
णव य सहस्सा चउसय-	तिलो० प० ७–२६६
णव य सहस्सा चउसय-	तिलो० प० ७–३१२
णव य सहस्सा चउसय-	तिलो० प० ७–२६८
णव य सहस्सा छस्सय-	तिलो० प० ४–१२२६
णव य सहस्सा णवसय-	तिलो० प० ४–१६८८
णव य सहस्साणि चउ-	तिलो० प० ७–३२८
णव य सहस्सा दुसया	तिलो० प० ४–१७१६
णवरि असंखाणंतिम-	लद्धिसा० २८६
णवरि परियायछेदो	छेदपिं० २६०
णवरि य अपुव्वणवगे	गो० क० ६७७
णवरि य जोइसियाणं	तिलो० प० ७–६१६
णवरि य णामं कूडद्दह-	तिलो० प० ४–२३३६
णवरि य णामदुगाणं	लद्धिसा० ३२३
णवरि य दुसरीराणं	गो० जी० २५४
णवरि य पुंवेदस्स य	लद्धिसा० २५६
णवरि य सव्वुवसम्मे	गो० क० १२०
णवरि य सुक्का लेस्सा	गो० जी० ६६२
णवरि विसेसं जाणे	गो० जी० ३१८
णवरि विसेसं जाणे	गो० क० ४४३
णवरि विसेसं जाणे	गो० क० ८२६
णवरि विसेसो एक्को	तिलो० प० ४–२१२६
णवरि विसेसो एक्को	तिलो० प० ४–२१३३
णवरि विसेसो एक्को	तिलो० प० ४–२२६१
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० २–१८८
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ४–२६२
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ४–१७२७
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ४–२०५७
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ४–२३८६
णवरि विसेसो एसो	तिलो० प० ८–५६५
णवरि विसेसो कूडं	तिलो० प० ४–२३५४
णवरि विसेसो जाणे	जंबू० प० ४–८६
णवरि विसेसो जाणे	जंबू० प० १२–१६
णवरि विसेसो णियणिय-	तिलो० प० ४–७६२
णवरि विसेसो णेओ	जंबू० प० ५–६१
णवरि विसेसो तस्सिं	तिलो० प० ४–२३६४
णवरि विसेसो देवो	तिलो० प० ७–१०७
णवरि विसेसो पंडुग-	तिलो० प० ४–२५८३
णवरि विसेसो पुव्वा-	तिलो० प० ७–८
णवरि विसेसो सव्वट्ठ-	तिलो० प० ८–६८३
णवरि विसेसो सव्वट्ठ-	तिलो० प० ८–६६५
णवरि समुग्घादगदे	लद्धिसा० ६१५
णवरि समुग्घादम्मि य	गो० जी० ५५६
णवरि हु णवगेवेज्जा	तिलो० प० ६–६७८

णवरि हु धम्मो मेज्भो भ० आरा० १८२०
णवरि तणसंथारो भ० आरा० २०६४
णवलक्खा णवणउदी- तिलो० प० २-६१
णवविहबंभं पयडहि भावपा० ६६
णववीस-सहस्साणि तिलो० प० ४-१०६८
णव सग छक्को चउ णव तिलो० प० ४-२८४५
णवसत्तपंचगाहा- मूला० २७३
णव सत्त य णव सत्त य तिलो० सा० ७२७
णव सत्तोदयसंता पंचसं० ५-२३२
णवसय-णउदि-णवेसुं तिलो० प० ४-१२४१
णवसय सत्तत्तरिहिं गो० क० ४८६
णव सव्वाओ छक्कं + पंचसं० ५-१०
णव सव्वाओ छक्कं + पंचसं० ५-२८०
णवसंवच्छरसमधिय- तिलो० प० ४-६४७
णव सासणो त्ति वंधो गो० क० ४६०
णवसु चउक्के इक्के सिद्धंत० ४३
णवसु चउक्के एक्के पंचसं० ४-४०
ण वसो अवसो अवसस्स * मूला० ५१५
ण वसो अवसो अवसस्स * णियमसा० १४२
णवहत्था पासजिणे तिलो० प० ४-५८६
णवहिद-बावीससहस्स- तिलो० प० २-१८३
णवं अजोई-ठाणं पंचसं० ५-१७६
ण वि अत्थि अण्णवादो सम्मइ० ३-२६
ण वि अत्थि माणुसाणं धम्मर० १६०
ण वि इंदियउवसग्गा णियमसा० १७६
ण वि इंदियकरणजुदा गो० जी० १७३
ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ परम० प० १-६८
ण वि एस मोक्खमग्गो समय० ४१०
णविएहिं जं णविज्जइ मोक्खपा० १०३
ण वि कम्मं णोकम्मं णियमसा० १८०
ण वि कारणं तणादी- भ० आरा० १६७२
ण वि कुव्वइ कम्मगुणे समय० ८१
ण वि कुव्वदि ण वि वेयइ समय० ३१६
ण वि फो वि जाइ मयरो जंबू० प० ७-१२६
ण वि खुब्भइ से लेयणो- जंबू० प० ७-१३५
ण वि गोरउ ण वि सामलउ पाहु० दो० ३०
ण वि जाणइ कज्जमकज्जं रयणसा० ४०
ण वि जाणइ जिण-सिद्धस- रयणसा० १२७
ण वि जाणइ जोग्गमजो- रयणसा० ४१
ण विणा वट्टदि णारी पवयणसा०२-२४पे. १०(ज)
ण विणासियं ण णिच्चं दव्वस० णय० ४३
ण वि तुहुं कारणु कज्जु ण वि पाहु० दो० २८
ण वि तुहुं पंडिउ मुक्खु ण वि पाहु० दो० २७
ण वि ते अभित्थुणंति य मूला० ८१७
ण वि दुक्खं ण वि सुक्खं णियमसा० १७८
ण वि देहो वंदिज्जइ दंसणपा० २७
ण वि धम्मो वोहिज्जइ जंबू० प० ८-१६५
ण वि परिणामइ ण गिण्हइ + समय० ७६
ण वि परिणामइ ण गि(गे)ण्हइ+तिलो०प०६-६६
ण वि परिणामइ(दि)ण गिण्हइ(दि) समय० ७७
ण वि परिणामइ(दि)ण गिण्हइ(दि) समय० ७८
ण वि परिणामइ(दि)ण गिण्हइ(दि) समय० ७६
ण वि परिणमदि ण गेण्हदि पवयणसा० १-५२
ण वि भुंजंता विसय-सुह पाहु० दो० ५
ण वियप्पदि णाणादो पंचत्थि० ४३
ण वि राग-दोस-मोहं समय० ३०८
ण वि सक्कइ वित्तुं जं समय० ४०६
ण वि सिज्झइ वत्थधरो सुत्तपा० २३
ण वि होइ तत्थ पुण्णं भावसं० ७७
ण वि होदि अप्पमत्तो समय० ६
ण सद्दहदि जो एदे मूला० १०११
ण समत्थो रक्खेउं धम्मर० ११४
ण समुब्भवइ ण णस्सइ दव्वस० णय० ४०
ण सयं वद्धो कम्मे समय० १२१
ण सहंति इयरदप्पं रयणसा० ११५
ण सुया उ जेण पक्खिय- छेदपिं० ११४
णस्सदि सगं पि बहुगं भ० आरा० १३४३
णह(भ)एयपएसत्थो दव्वस० णय० १३१
णह-जंतु-रोम-अट्ठी- * वसु० सा० २३०
णहदंतसिरण्हारू- भावसं० ४०८
णह-रोम-जंतु-अट्ठी- * मूला० ४८४
ण हवदि जदि सद्दव्वं पवयणसा० २-१३
ण हवदि समणो त्ति मदो पवयणसा० ३-६५
ण हि आगमेण सिज्झदि पवयणसा० ३-१७
ण हि इंदियाणि जीवा पंचत्थि० १२१
ण हि णिरवगदो णिगमं ति [illegible]
ण हि णिरवेक्खो चागो पवयणसा० ३-२०
ण हि तम्हि देसयाले मूला० १२
ण हि तस्स तण्णिमित्तो पवयणसा० ३-१७पे.१(ज)
ण हि तं सुमिणज्झ समु- भ० आरा० १३१४

णागागरुडगइंदा	तिलो० प० ३–७९
णावा गरुडिभमयरं	तिलो० सा० २३३
णावा जह सच्छिद्दा	भावसं० ५४८
णाविय-कुलाल-तेलिय-	छेदपिं० २२१
णासइ धणु तसु घरतणउ	सावय० दो० ६२
णासग्गिँ अब्भिंतरहँ	जोगसा० ६०
णासग्गे करजुअलं	रिट्ठस० १९५
णासग्गे थणमज्झे	रिट्ठस० ९८
णासदि बुद्धी जिब्भा-	भ० आरा० १६४४
णासदि मदी अदिण्णे	भ० आरा० १७२९
णासदि विग्घं भेददि	तिलो० प० १–३०
णासविणिग्गउ सासडा	परम० प० २–१६२
णासंति एक्कसमये	तिलो० प० ४–१६०८
णासंतो वि ण णट्ठो	दव्वस० णय० ३५७
णासा-जोई-जीहा	णाणसा० ५२
णासापहारदोसेण	वसु० सा० १३०
णासेज्ज अगीदत्थो	भ० आरा० ४२९
णासेदि परट्ठाणिय	लद्धिसा० ५२१
णासेदूण कसायं	भ० आरा० १३६४
णासो अत्थस्स खओ	भ० आरा० ६८४
णाहल-पुलिंद-चव्वर-	तिलो० प० ४–२२८७
णाहल-पुलिंद-चव्वर-	जंबू० प० ७–१०९
णाहं कस्स वि तणओ	णाणसा० ४३
णाहं कोहो माणो	णियमसा० ८१
णाहं णारयभावो	णियमसा० ७८
णाहं देहो ण मणो	तिलो० प० ९–३०
णाहं देहो ण मणो	आरा० सा० १०१
णाहं देहो ण मणो	पवयणसा० २–६८
णाहं पोग्गलमइओ +	तिलो० प० ९–३२
णाहं पोग्गलमइओ +	पवयणसा० २–७०
णाहं बालो वुड्ढो	णियमसा० ७९
णाहं मग्गणठाणो	णियमसा० ७७
णाहं रागो दोसो	णियमसा० ८०
णाहं होमि परेसिं ※	पवयणसा० २–९९
णाहं होमि परेसिं ※	तिलो० प० ९–३४
णाहं होमि परेसिं	पवयणसा० ३–४
णाहं होमि परेसिं	तिलो० प० ९–२८
णाहं होमि परेसिं	तिलो० प० ९–३६
णाहो तिलोयसामी	अंगप० १–४०
णिउणं विउलं सुद्धं	भ० आरा० ९९
णिउदं चउसीदिहदं	तिलो० प० ४–२९५
णिक्कत्ता णिग्गुणओ	अंगप० २–१६
णिक्कमिदूणं वच्चदि	तिलो० प० ४–२११६
णिक्कम्मा अट्ठगुणा	दव्वसं० १४
णिक्कसायस्स दंतस्स ※	मूला० १०४
णिक्कसायस्स दांतस्स ※	णियमसा० १०५
णिक्कंता णिरयादो	तिलो० प० २–२८९
णिक्कंता भवणादो	तिलो० प० ३–१९५
णिक्कूडं सविसेसं	मूला० ६७१
णिक्खवणपवेसादिसु	भ० आरा० १५०
णिक्खित्तसत्थदंडा	मूला० ८०३
णिक्खत्तु विदियमेत्तं ×	मूला० १०३७
णिक्खत्तु विदियमेत्तं ×	गो० जी० ३८
णिक्खेव-णय-पमाणं	दव्वस० णय० २८१
णिक्खेव-णय-पमाणं	रयणसा० १६२
णिक्खेव-णय-पमाणा	दव्वस० णय० १६७
णिक्खेवणं च गहणं	मूला० ३०१
णिक्खेवमदित्थावण-	लद्धिसा० ५६
णिक्खेवे एयट्ठे +	पंचसं० १–१८२
णिक्खेवे एयत्थे +	गो० जी० ७३२
णिक्खेवो णिव्वत्ती	भ० आरा० ८१३
णिग्गइ अवरेण णिवो	जंबू० प० ७–१४९
णिग्गच्छंते चक्की	तिलो० प० ४–१३४४
णिग्गच्छि य सा गच्छदि	तिलो० प० ४–२०६६
णिग्गहिदिंदियदारा	भ० आरा० ३१२
णिग्गंथ-अज्जियाओ	कल्लाणा० ३१
णिग्गंथमहरिसीणं	मूला० ७७२
णिग्गंथमोहमुक्का	मोक्खपा० ८०
णिग्गंथं दूसित्ता	भावसं० १५६
णिग्गंथं पव्वइदो	पवयणसा० ३–६९
णिग्गंथं पव्वयणं	भ० आरा० ४३
णिग्गंथं पव्वयणं	भावसं० १५२
णिग्गंथा णिस्संगा	बोधपा० ४९
णिग्गंथो जिणवसहो	बोधपा० १३४
णिग्गंथो णीरागो	णियमसा० ४४
णिच्च-णिमित्ता किरिया	अंगप० २–११३
णिच्चयणयेण भणिदो	पंचत्थि० १६१
णिच्चल-पलंभ-णिम्मल-	तिलो० सा० २६८
णिच्चल संपय कस्स घरि	सुप्प० दो० ६५
णिच्चं कुमारियाओ	जंबू० प० ६–१३५

णिद्धं कणाइबहुले	आयं० ति० १०-१४
णिद्धंनकणयसरिणह-	जंबू० प० ४-१८३
णिद्धं मधुरं पल्हा	भ० आरा० १५१४
णिद्धं महुरगभीरं	भ० आरा० २८०
णिद्धं महुरं हिदयं	भ० आरा० ४७५
णिद्धं महुरं हिदयं	भ० आरा० ४७६
णिद्धं महुरं हिदयं	भ० आरा० ६४३
णिद्धादो णिद्धेण [य]	दव्वस० णय० २७
णिद्धा वा लुक्खा वा	पवयणसा० २-७३
णिद्धिदरगुणा अहिया	गो० जी० ६१८
णिद्धिदरवरगुणाणू	गो० जी० ६१७
णिद्धिदरे सम-विसमा	गो० जी० ६१५
णिद्धिदरोलीमज्झे	गो० जी० ६१२
णिद्धो कणाइबहुले	आय० ति० १४-५
णिधणगमणमेयभवे	भ० आरा० १६४०
णिधणगमो एयभवे	भ० आरा० १६१४
णिप्पणमिव पज्जंपदि *	दव्वस० णय० २०६
णिप्पणमिव पयंपदि *	णयच० ३५
णिप्पण्णं तं खादिसु	आय० ति० ११-४
णिप्पत्तकंटइल्लं	भ० आरा० ५५५
णिप्पादित्ता संगयं	भ० आरा० २०३२
णिब्भरभत्तिपसत्ता	तिलो० प० ४-६२१
णिब्भूसणायुधंबर-	तिलो० प० १-५८
णिब्भूसणो वि सोहइ	धम्मर० १२३
णिमिणं चि य तित्थयरं ×	पंचसं० ४-२६६
णिमिणं चि य तित्थयरं ×	पंचसं० ५-८६
णिम्मत्त-जोइमत्ता	तिलो० प० ७-२०
णिम्ममो णिरहंकारो	मूला० १०३
णिम्मल-झाण-परिट्ठिया	जोगसा० १
णिम्मलदप्पणसरिसा	तिलो० प० ४-३२०
णिम्मलपडि(फलि)हविणिम्मिय-	तिलो०प०४-८५१
णिम्मलफलिहहँ जेम जिय	परम० प० २-१७६
णिम्मलमणिमयपीढं	जंबू० प० ६-६१
णिम्मलवरबुद्धीणं	जंबू० प० ४-२१४
णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु	जोगसा० ६
णिम्माणराजणामा	तिलो० प० ८-६२६
णिम्मालियसुमणा विय	मूला० ७७४
णिम्मूलखंधसाहा	पंचसं० १-१६२
णिम्मूलखंधसाहुव-	गो० जी० ५०७
णियआदिमपीढाणं	तिलो० प० ४-८८३
णियखेत्ते केवलिदुग-	गो० जी० २३५
णियगच्छादो णिग्गय-	छेदपिं० २४४
णियगंधवासियदिसं	तिलो० सा० ५६६
णियघरि सुक्खइं पंच दिणु	सुप्प० दो० ५५
णियछायं परछायं	रिट्ठस० ७३
णियछाया गयणयले	रिट्ठस० ६६
णियजणणीए पेट्टं	धम्मर० ११२
णियजलपवाहपडिदं	तिलो० सा० ५६४
णियजलपवाहपडिदं	तिलो० प० ४-२३८
णियजलभरउवरिगदं *	तिलो० सा० ५६५
णियजलभरउवरिगदं *	तिलो० प० ४-२३६
णियजोग्गसुदं पडिदा	तिलो० प० ४-५०६
णियजोगुच्छेहजुदो	तिलो० प० ४-१८६२
णियडीदो कालादो	अंगप० २-२५
णियणयराणि णिविट्ठा	तिलो० प० ५-२२६
णियणामलिहियाए(ठा)णं	तिलो०प० ४-१३५१
णियणामंकं मज्झे	तिलो० प० ६-६१
णियणामंकिदइसुणा	तिलो० प० ४-१३४६
णियणाहिकमलमज्झे	णाणसा० १६
णियणियइंदपुरीणं	तिलो० प० ६-७८
णियणियइंदयसेढी	तिलो० प० २-१६०
णियणियओहिक्खेत्तं	तिलो० प० ३-१८२
णियणियखोणियदेसं	तिलो० प० ८-६८८
णियणियचरमिंदयधय-	तिलो० प० १-१६३
णियणियचरमिंदयपय	तिलो० प० २-७३
णियणियचंदपमाणं	तिलो० प० ७-५५५
णियणियजिणउदएणं	तिलो० प० ४-६१७
णियणियजिणेसठाणं	तिलो० प० ४-७३०
णियणियणाडीइगओ	आय० ति० १६-१६
णियणियदिसट्ठियाणं	आय० ति० २५-३
णियणियदीउवहीणं	तिलो० प० ५-५०
णियणियपढमखिदीए	तिलो० प० ४-७५६
णियणियपढमखिदीणं	तिलो० प० ४-७६५
णियणियपढमखिदीणं	तिलो० प० ४-८१२
णियणियपढमपहाणं	तिलो० प० ७-४६८
णियणियपरिणामाणं	कत्ति० अणु० २१७
णियणियपरिवारसमं	तिलो० प० ७-५६
णियणियपरिहिपमाणे	तिलो० प० ७-४६३
णियणियभवणठिदाणं	तिलो० प० ३-१७७
णियणियरवीण अद्धं	तिलो० प० ७-४७३

णिरया हवंति हेट्ठा	बा० अणु० ४०
णिरये इयरगदीसुर-	भावति० ४६
णिरये ण विणा तिण्हं	गो० क० ५२३
णिरयेव होदि देवे	गो० क० १११
णिरये वा इगिणउदी	गो० क० ६२३
णिरयेहिं णिग्गदाणं	मूला० ११६१
णिरवेक्खे एयंते	दव्वस० णय० ६६
णिरुवक्कमस्स कम्मस्स	भ० आरा० १७३४
णिरुवममचलमखोहा	बोधपा० १२
णिरुवमरुवा णिट्ठिय-	तिलो० प० ६-१६
णिरुवमलावण्णजुदा	तिलो० प० ४-४७६
णिरुवमलावण्णतणू	तिलो० प० ४-२२४४
णिरुवमलावण्णाओ	तिलो० प० ८-३२१
णिरुवमवड्ढंततवा	तिलो० प० ४-१०५४
णिरुवहदजठरकोमल-	जंबू० प० ११-२२१
णिलओ कलीए अलियस्स	भ० आरा० ६८२
णिल्लक्खणु इत्थी वा-	पाहु० दो० ६६
णिल्लूरह मणवच्छो	आरा० सा० ६८
णिवडंतसलिलपउरा	जंबू० प० २-१७१
णिवदिविहूणं खेत्तं ×	मूला० ६५१
णिवदिविहूणं खेत्तं ×	भ० आरा० २६५
णिवसंति बह्मलोयस्संते	तिलो० सा० ५३४
णिव्वत्तअत्थकिरिया	दव्वस० णय० २०५
णिव्वत्तिअपज्जत्ते	भावति० ५७
णिव्वत्तिसुहमजेट्ठं	गो० क० २३४
णिव्ववणा तदो से	भ० आरा० ४६८
णिव्वाघादेणेदा	कसायपा० १६
णिव्वाणगदे वीरे	तिलो० प० ४-१५०१
णिव्वाणठाण जाणि वि	णिव्वा० भ० २६
णिव्वाणमेव सिद्धा	णियमसा० १८२
णिव्वाणसाधए जोगे	मूला० ५१२
णिव्वाणस्स य सारो	भ० आरा० १३
णिव्वाणे वीरजिणे	तिलो० प० ४-१४७२
णिव्वाणे वीरजिणे	तिलो० प० ४-१४६७
णिव्वावइत्तु संसा-	भ० आरा० २१४४
णिव्वित्तदव्वकिरिया	णयच० ३३
णिव्विदिगिंच्छो राओ *	वसु० सा० ५२
णिव्विदिगिंच्छो राया *	भावसं० २८१
णिव्वियडिआदिया जे	छेदपिं० २२८
णिव्वियडी पुरिमंडल-	छेदपिं० ५
णिव्वियडी पुरिमंडल-	छेदपिं० २०३
णिव्वुदिगमणे रामत्तणे	मूला० ११८१
णिव्वेगतियं भावइ	बा० अणु० ७८
णिव्वेद(य) समावण्णो	समय० ३१८
णिसधकुमारी णेया	जंबू० प० ६-१३३
णिसधगिरिस्स दु मूले	जंबू० प० ३-२२६
णिसधगिरिस्सुत्तरदो	जंबू० प० ११-६७
णिसधस्सुच्छेहसमा	जंबू० प० ११-४
णिसधादो गंतूणं	जंबू० प० ६-८६
णिसहकुरुसूरसुलसा-	तिलो० प० ४-२०८६
णिसहद्दहो य पढमो	जंबू० प० ६-८२
णिसहधराहरउवरिं	तिलो० प० ४-२०६३
णिसहवणवेदिपासे	तिलो० प० ४-२१३८
णिसहवरवेदिवारण-	तिलो० प० ४-२१४२
णिसहसमाणुच्छेहो	तिलो० प० ४-२५३१
णिसहस्स य उत्तरदो	जंबू० प० ७-२
णिसहस्सुत्तरपासे	तिलो० प० ४-२१४४
णिसहस्सुत्तरभागे	तिलो० प० ४-१७७२
णिसहावसाण जीवा	तिलो० सा० ७७६
णिसहुवरिं गंतव्वं	तिलो० सा० ३६१
णिसिऊण णमो अरहं-	वसु० सा० ४७१
णिसिऊण पंचवण्णा	णाणसा० २४
णिसिदित्तं अप्पाणं	भ० आरा० ६४६
णिसुणंतो थोत्तसए	भावसं० ४१४
णिस्सरिदूणं एसो	तिलो० प० ४-२४३
णिस्सल्लस्सेव पुणो	भ० आरा० १२१४
णिस्सल्लो कदसुद्धी	भ० आरा० ७२१
णिस्ससइ रुयइ गायइ	वसु० सा० ११३
णिस्संका णिक्कंखा	वसु० सा० ४८
णिस्संकापहुदिगुणा	कत्ति० अणु० ४२४
णिस्संकिद णिक्कंखिद *	मूला० २०१
णिस्संकिय णिक्कंखिय *	चारित्तपा० ७
णिस्संकियसंवेगा-	वसु० सा० ३२१
णिस्संकियसंवेगा-	वसु० सा० ३४१
णिस्संगो चेव सदा	भ० आरा० ११७५
णिस्संगो णिम्मोहो	भावसं० ६१८
णिस्संगो णिरारंभो	मूला० १०००
णिस्संधी य अपोल्लो	भ० आरा० ६४४
णिस्सेणीकट्ठादिहिं	मूला० ४४२
णिस्सेदत्तं णिम्मल-	तिलो० प० ४-८६४

णिस्सेयसमट्ठगया	तिलो० प० ४–१४३५
णिस्सेसकम्मक्खवणेक्कहेदुं	तिलो० प० ३–२२८
णिस्सेसकम्मणासे	कत्ति० अणु० १६६
णिस्सेसकम्ममुक्खो	भावसं० ३४६
णिस्सेसकम्ममोक्खो	वसु० सा० ४५
णिस्सेसखीणमोहो *	गो० जी० ६२
णिस्सेसखीणमोहो *	पंचसं० १–२५
णिस्सेसदेसिदमिणं	मूला० ७७१
णिस्सेसदोसरहिओ	णियमसा० ७
णिस्सेसमोहखीणे	भावसं० ६६१
णिस्सेसमोहविलये	कत्ति० अणु० ४८३
णिस्सेसवाहिणासण-	तिलो० प० ४–३२५
णिस्सेससहावाणं	णयच० २४
णिस्सेससहावाणं	दव्वस० णय० १६६
णिस्सेसाण पहुत्तं	तिलो० प० ४–१०२८
णिस्सो णिव्वाणमंगो	णियप्पा० २
णिहए राए सेण्णं	तच्चसा० ६५
णिहओ सिंगेण मुओ	भावसं० २४६
णिहदघणघादिकम्मो	पवयणसा० २–१०५
णिहयकसाओ भव्वो	आरा० सा० १७
णिहिलावयं च खंधं	भावसं० ३०४
णिंदणगरहणजुत्तो	छेदपिं० २८६
णिंदाए पसंसाए	मोक्खपा० ७२
णिंदामि णिंदणिज्जं	मूला० ५५
णिंदा-वंचण-दूरो	रयणसा० १०२
णिंदा-विसाद-हीणो	जंबू० प० १३–८७
णिंदिय(द)संथुय(द)वयणा-	समय० ३७३
णिवकंजीरविसरस-	अंगप० २–६३
णीचत्तणं व जो उच्च-	भ० आरा० १२३४
णीचं ठाणं णीचं ×	मूला० ३७४
णीचं ठाणं णीचं ×	भ० आरा० १२०
णीचं पि कुणदि कम्मं	भ० आरा० ६०६
णीचुच्चाणेकदरं	गो० क० ६२५
णीचोपपाददेवा	तिलो० प० ६–८०
णीचो व णारो बहुगं	भ० आरा० ६०१
णीचो वि होइ उच्चो	भ० आरा० १२२८
णीयल्लओ व सुतवे-	भ० आरा० १४६३
णीयल्लगो वि कुद्धो	भ० आरा० १३०१
णीयंता सिग्घगदी	तिलो० सा० ३८७
णीयं पि विसयहेदुं	भ० आरा० १०८
णीया अत्था देहा	भ० आरा० १७५०
णीया करंति विग्घं	भ० आरा० १७६४
णीया सत्तू पुरिसस्स	भ० आरा० १७६५
णीया-गयम्मि चंदे	आय० ति० १६–२२
णीलकुमारी णामा	जंबू० प० ६–३८
णीलकुरुद्दह(चंद)एरा	तिलो० प० ४–२१२४
णीलगिरिस्स दु हेट्ठा	जंबू० प० ७–८६
णीलगिरी णिसहो पि व	तिलो० प० ४–२३२५
णील-णिसहद्दि-पासे	तिलो० प० ४–२०२५
णील-णिसहद्दि-पासे	तिलो० प० ४–२०१६
णील-णिसहाण भागे	जंबू० प० ७–१६
णील-णिसहादु गत्ता	तिलो० सा० ६५४
णील-णिसहे सुरद्दिं	तिलो० सा० ६६४
णीलद्दि-णिसहपव्वद-	तिलो० प० ४–२०११
णीलसमीवे सीदा-	तिलो० सा० ६३६
णीलस्स दु दक्खिणदो	जंबू० प० ६–१५
णीलाचल-दक्खिणदो	तिलो० प० ४–२१२१
णीलाचल-दक्खिणदो	तिलो० प० ४–२२८८
णीलाचल-दक्खिणदो	तिलो० प० ४–२२६०
णीला पीया किण्हा	रिट्ठस० ८१
णीलुक्कस्ससंसमुदा	गो० जी० ५२४
णीलुत्तरकुरुचंदा	तिलो० सा० ६५७
णीलुप्पलकुसुमकरो	तिलो० प० ५–६२
णीलुप्पलणीसासा-	जंबू० प० ३–७६
णीलुप्पलणीसासा-	जंबू० प० ४–२२४
णीलुप्पलसच्छाया	जंबू० प० २–१८१
णीलेण वज्जिदाणि	तिलो० प० ८–२०४
णीलो णीलब्भासो	तिलो० सा० ३६४
णीसरिऊण वराओ	धम्मर० ४५
णीसरिऊं(ओ) सो तत्थ वि	धम्मर० ३३
णीसरिदूण य गंगा	जंबू० प० ३–१७३
णीसेसकम्मणासे	आरा० सा० ८०
णीसेसिंहं हि सत्थं	अंगप० ३–३४
णीहारइ तेसु अणुट्ठिएसु	छेदपिं० १३२
णेउद्धारं(?) अहवा	वसु० सा० १०५
णेऊण किंचि रत्तिं	वसु० सा० २८६
णेच्छइ थावरजीवं	धम्मर० १११
णेच्छंति जइ वि ताओ	वसु० सा० ११७
णेत्तस्संजणचुण्णं	मूला० ४६०
णेत्ताइदंसणाणि य	पंचसं० ५–११

णेत्तूण णियगेहं	वसु० सा० २२६
णेमी मल्ली वीरो	तिलो० प० ४–६६६
णेयपमाणं णाणं	कल्लाणा० ३७
णेयं खु जत्थ णाणं	दव्वस० णय० ३१६
णेयं जीवमजीवं ×	णयच० ५७
णेयं जीवमजीवं ×	दव्वस० णय० २२७
णेयं णाणं उहयं	दव्वस० णय० ५१
णेयाइय-वइसेसिय	जंबू० प० ६–१६७
णेया णदीण तीरा	जंबू० प० ६–१८०
णेया तेरेकारस	जंबू० प० ११–१४५
णेयाभावे विल्लि जिम	परम० प० १–४७
णेया विभंगसरिया	जंबू० प० ६–६३
णेरइय-तिरिय-मणुआ	पंचत्थि० ५५
णेरइय-तिरिय-माणुस-	कम्मप० ६७
णेरइय-देव-माणुस-	मूला० ५४६
णेरइया खलु संढा	गो० जी० ६३
णेरइयाण सरीरं	वसु० सा० १५३
णेरइयाणं तण्हा	धम्मर० ६६
णेरइयादिगदीणं	कत्ति० अणु० ७०
णेरदिदिसाविभागे	जंबू० प० ६–६६
णेरयियाणं गमणं	गो० क० ५३८
णेवज्जइँ दिण्णइँ जिणहु	सावय० दो० १८७
णेव य जीवट्ठाणा	समय० ५५
णेवित्थी ण य पुरिसो *	पंचसं० १–१०७
णेवित्थी णेव पुमं *	कम्मप० ६५
णेवित्थी णेव पुमं *	गो० जी० २७४
णेहं कणाइवहुले	आय० ति० १२–४
णेहोउप्पिदगत्तस्स	मूला० २३६
णोआगमभावो पुण	गो० क० ६६
णोआगमभावो पुण	गो० क० ८६
णोआगमं पि तिविहं	दव्वस० णय० २७५
णो इट्ठं भणियव्वं	दव्वस० णय० २७६
णो इत्थि पुंणपुंमो	णियप्पा० ५
णो इत्थी ण णउंसो	कल्लाणा० ४६
णोइंदिएसु विरओ +	भावसं० २६१
णोइंदिएसु विरदो +	पंचसं० १–११
णोइंदिएसु विरदो +	गो० जी० २६
णोइंदियआवरणख-	गो० जी ६५६
णोइंदिय त्ति सण्णा	गो० जी० ४४३
णोइंदियपणिधाणं *	भ० आरा० ११८(क)
णोइंदियपणिधाणं *	मूला० ३००
णोइंदियसुदणाणा-	तिलो० प० ४–६७३
णो उप्पज्जदि जीवो	कत्ति० अणु० २३६
णो उवयारं कीरइ ÷	णयच० ७०
णो उवयारं कीरइ ÷	दव्वस० णय० २४०
णो कप्पदि विरदाणं ×	मूला० १८०
णो कप्पदि विरदाणं ×	मूला० ६५२
णोकम्म-कम्मरहिओ	तच्चसा० २७
णोकम्म-कम्मरहियं	णियमसा० १०७
णोकम्म-कम्महारो	भावसं० ११०
णोकम्म-कम्महारो	भावसं० १११
णोकम्म-कम्महारो	भावसं० ११३
णोकम्मुरालसंचं	गो० जी० ३७६
णो खइयभावठाणा	णियमसा० ४१
णो खलु सहावठाणा	णियमसा० ३६
णो ठिदिवंधट्ठाणा	णियमसा० ४०
णो ठिदिबंधट्ठाणा	समय० ५४
णो पूया जिणचलणे	कल्लाणा० २१
णो वंहा(भा) कुणइ जयं	भावसं० २५३
णो ववहारेण विणा	दव्वस० णय० २६५
णो वंदेज्ज अविरदं	मूला० ५६२
णो सद्दहंति सोक्खं	पवयणसा० १–६१
णो संति सुक्कलेस्से	भावति० १०७
णो सीलं णेव खमा	कल्लाणा० १६
ण्हवणं काऊण पुणो	भावसं० ४४२
ण्हाण-विलेवण-भूसण-	कत्ति० अणु० ३५८
ण्हाणाओ चिय सुद्धि	भावसं० २२
ण्हाणादिवज्जणेण य	मूला० ३१
ण्हाणे दंतग्घसणे	छेदपिं० १२६
ण्हाण्ण णवसदाइं	भ० आरा० १०२८

त

तडदो गत्ता तेत्तिय-	तिलो० सा० ६०६
तडदो वार-सहस्सं	तिलो० सा० ६१०
तडिदंवुत्रिंदुतुल्लं	णाणसा० ६०
तणचारी-मंसासी-	छेदपिं० ३४
तणरुक्खहरिदछेदण-	मूला० ८०१
तण-पत्त-कट्ठ-छारिय	भ० आरा० ५५६
तणमंसासिविहंगा	छेदस० १८
तणुकुट्ठी कुल(मणु)भंगं	रयणसा० ४८
तणुदंडणादिसहिया	तिलो० प० ८-५६३
तणुपंचस्स य णासो	भावसं० ६३७
तणु-मण-वयणे सुण्णो	आरा० सा० ७६
तणुरक्खप्पहुदीणं	तिलो० प० ८-३३०
तणुरक्खा अट्ठारस	तिलो० प० ५-२२१
तणुरक्खाण सुराणं	तिलो० प० ८-५३६
तणुरक्खा तिप्परिसा	तिलो० प० ३-६४
तणु-वयण-रोहणेहिं	आरा० सा० ७२
तणुवंज(?)महाणसिया	तिलो० प० ४-१३७४
तणुवादपवणवहले	तिलो० प० ६-१४
तणुवादवहलसंखं	तिलो० प० ६-७
तणुवादवहलसंखं	तिलो० प० ६-८
तणुवादस्स य वहले	तिलो० प० ६-१५
तण्णगसिहरे वेदी	तिलो० सा० ६३६
तण्णयराणं वाहिर-	तिलो० प० ६-६४
तण्णयरीए वाहिर-	तिलो० प० ५-२२७
तण्णामा पुव्वादी	तिलो० सा० ६६२
तण्णामा वेरुलियं	तिलो० प० २-१६
तण्णामा सीदुत्तर-	तिलो० सा० ६६६
तण्णिलयाणं मज्झे	तिलो० प० ७-७५
तण्णिव्वत्तिअपुण्णे	भावति० ६८
तण्णोकसायभागो	गो० क० २०४
तण्हा अणंतखुत्तो	भ० आरा० १६०५
तण्हा-छुहादि-परिदा-	भ० आरा० ७७८
तण्हादिएसु सहणिज्जेसु-	भ० आरा० ३६२
तत्तकवल्लिहिं छूढा	जंवू० प० ११-१६१
तत्तकाले दिस्सं	लद्धिसा० १३८
तत्तमया तप्परिही	तिलो० प० ४-१८०२
तत्तस्स अग्गपिंडं	तिलो० प० ४-१५२५
तत्ताइं भूसणाइं	धम्मर० ५४
तत्तातत्तं मुणेवि मणि	परम० प० २-४३
तत्तियमओ हु अप्पा	आरा० सा० ८१
तत्ते लोहकडाहे	तिलो० प० ४-१०५१
तत्तो अणियट्टिस्स य	लद्धिसा० ३३८
तत्तो अणुदिसाए	तिलो० प० ८-१७७
तत्तो अद्धद्धखया	जंवू० प० ३-१५२
तत्तो अभव्वजोग्गं	लद्धिसा० ३३
तत्तो अमिदपयोदा	तिलो० प० ४-१५५८
तत्तो अवरदिसाए	जंवू० प० ८-१३७
तत्तो अवरदिसाए	जंवू० प० ८-१३६
तत्तो अवरदिसाए	जंवू० प० ६-१६
तत्तो अवरदिसाए	जंवू० प० ६-५५
तत्तो अवरदिसाए	जंवू० प० ६-७६
तत्तो अवरदिसाए	जंवू० प० ६-७७
तत्तो असंखलोगं	तिलो० सा० ८७
तत्तो आगंतूणं	तिलो० प० ४-१३१५
तत्तो आणदपहुदी	तिलो० प० ८-१०४
तत्तो इंददिसाए	जंवू० प० ८-४२
तत्तो उड्ढं गंतुं	जंवू० प० ११-३२६
तत्तो उदय सदस्स य	लद्धिसा० १०
तत्तो उवरिमखंडा	गो० क० ६६२
तत्तो उवरिमदेवा	तिलो० प० ८-६८०
तत्तो उवरिमभागे	तिलो० प० १-१६२
तत्तो उवरिं उवसम-	गो० जी० १४
तत्तो उवरिं भव्वा	तिलो० प० ८-६७२
तत्तो उववणमज्झे	तिलो० प० ४-१३१३
तत्तो एगारणवसग-	गो० जी० १६१
तत्तो कक्की जादो	तिलो० प० ४-१५०७
तत्तो कमसो वहवा	तिलो० प० ४-१६०७
तत्तो कमेण वड्ढदि	गो० क० ६६४
तत्तो कम्मइयस्सिगि-	गो० जी० ३६६
तत्तो कुमारकालो	तिलो० प० ४-५८३
तत्तो खीरवरक्खो	तिलो० प० ८-१५
तत्तो चउत्थउववण-	तिलो० प० ४-८०१
तत्तो चउत्थवेदी	तिलो० प० ४-८३८
तत्तो चउत्थसाला	तिलो० प० ४-८४६
तत्तो छज्जुगलाणि	तिलो० प० ८-११६
तत्तो छट्ठी भूमी	तिलो० प० ४-८२६
तत्तो जुम्माण तिए	तिलो० सा० ४६०
तत्तो ण को वि भणिओ	दंसणसा० ४७
तत्तो णागादु पुव्वे	जंवू० प० ८-६
तत्तो णग्गा सव्वे	तिलो० प० ४-१५३६

तत्तो ववसायपुरं	तिलो० प० ८-४७८
तत्तो वि असंखेज्जा	जंबू० प० ११-२०४
तत्तो विचित्तरूवा	तिलो० प० ४-१६१६
तत्तो वि छत्तसहिओ	तिलो० प० ४-१८६८
तत्तो विदिया भूमी	तिलो० प० ४-२१६८
तत्तो विदिया साला	तिलो० प० ४-८००
तत्तो वि पुणो गंतुं	जंबू० प० ११-२०७
तत्तो विभंगणामा	जंबू० प० ८-१५४
तत्तो विसेसअधिया	मूला० १२११
तत्तो विसोकयं वीद-	तिलो० प० ४-१२१
तत्तो वि हंसगब्भं	तिलो० सा० ७०३
तत्तो वेदोदो पुण	जंबू० प० १०-३८
तत्तो संखिज्जगुणा	मूला० १२१३
तत्तो संखेज्जगुणो	गो० जी० ६३६
तत्तो सीदो तवणो	(देखो 'तत्तो तविदो')
तत्तो सीदोदाए	तिलो० प० ४-२१०७
तत्तो सुणिएणओ खलु	अंगप० २-६२
तत्तो सुहुमं गच्छदि	लद्धिसा० ५७५
तत्तो सेणाहिवई	तिलो० प० ४-१३२८
तत्तो सोमणसादो	जंबू० प० ४-१२८
तत्तो सोमणसादो	जंबू० प० ६-१०
तत्तो हरिसेण सुरा	तिलो० प० ८-५८६
तत्तो हं तणुजोए	आरा० सा० ६७
तत्थ अणोवमसोभो	जंबू० प० ११-३२४
तत्थ अवाओवायं	भ० आरा० ६६६
तत्थ अविचारभत्तप-	भ० आरा० २०११
तत्थ असंखेज्जगुणं	लद्धिसा० १४१
तत्थ इमं इगिवीसं	पंचसं० ५-१५७
तत्थ इमं छव्वीसं *	पंचसं० ४-२७३
तत्थ इमं छव्वीसं *	पंचसं० ५-६६
तत्थ इमं तेवीसं ×	पंचसं० ४-२८१
तत्थ इमं तेवीसं ×	पंचसं० ५-७४
तत्थ इमं पणुवीसं	पंचसं० ५-१६८
तत्थ इमं पणुवीसं	पंचसं० ४-२६१
तत्थ गुणसेढिकरणं	लद्धिसा० ६४१
तत्थ चुया पुण संता	भावसं० ५४२
तत्थ च्चिय कुंथुजिणो	तिलो० प० ४-५४१
तत्थ च्चिय दिव्वाए	तिलो० प० ५-२०२
तत्थ जरामरणभयं	मूला० ७०६
तत्थ ण कप्पइ वासो	मूला० ५५५
तत्थ ण वंधइ आउं	भावसं० २००
तत्थ णिदाणं तिविहं	भ० आरा० १२१५
तत्थणुहवंति जीवा	मूला० ७५५
तत्थतणऽविरदसम्मो	गो० क० ५३६
तत्थ दु खत्तियवंसो	जंबू० प० ७-५६
तत्थ दु णत्थि समाणं	जंबू० प० ११-३६२
तत्थ दु णिद्धिदकम्मा	जंबू० प० ११-३६१
तत्थ दु देवारणो	जंबू० प० ८-७८
तत्थ दु महाणुभावो	जंबू० प० ११-३००
तत्थ पढमं णिरुद्धं	भ० आरा० २०१२
तत्थ पभम्मि विमाणे	जंबू० प० ११-२२५
तत्थ पभम्मि विमाणे	जंबू० प० ११-२४१
तत्थ पयाणि वुहेण य	अंगप० २-५८
तत्थ पयाणि[य]पंच य	अंगप० १-७२
तत्थ भवं सामइयं	अंगप० ३-१३
तत्थ भवे किं सरणं	कत्ति० अणु० २३
तत्थ भवे जीवाणं	समय० ६१
तत्थ य आयसरूवं	आय० ति० १-३
तत्थ य कालमणंतं	भ० आरा० ४६८
तत्थ य गंगा पवहइ	जंबू० प० ८-१२३
तत्थ य तत्ते तत्ते	आय० ति० १-३७
तत्थ य तीसट्ठाणा +	पंचसं० ५-७७
तत्थ य तीसं ठाणं +	पंचसं० ४-२८४
तत्थ य तोरणदारे	तिलो० प० ४-१६६५
तत्थ य दिसाविभागे	तिलो० प० ४-१६५६
तत्थ य पडिवादगया *	लद्धिसा० १६१
तत्थ य पडिवायगया *	लद्धिसा० १८४
तत्थ य पढमं तीसं ×	पंचसं० ४-२६४
तत्थ य पढमं तीसं ×	पंचसं० ५-५७
तत्थ य पसत्थसोहे	तिलो० प० ४-१३४२
तत्थलि-उवरिम-भागे	तिलो० सा० ६४१
तत्थ वि अणंतकालं	वसु० सा० २०१
तत्थ वि असंखकालं	कत्ति० अणु० २८५
तत्थ विक्खंभमज्झे	जंबू० प० ११-२१४
तत्थ वि गयस्स जायं	भावसं० १४२
तत्थ वि दहप्पयाग	वसु० सा० २५०
तत्थ वि दुक्खमणंतं	वसु० सा० ६२
तत्थ वि पडंति उवरिं	धम्मर० ३१
तत्थ वि पडंति उवरिं	वसु० सा० १४२
तत्थ वि पविट्ठमित्ता(त्तो)	वसु० सा० १६२

तवरहियं जं णाणं	मोक्खपा० ५९
तवरिद्धीए कहिदं	तिलो० प० ४-१०४८
तव-वय-गुणेहिं सुद्धा	बोधपा० ५८
तव-वय-गुणेहिं सुद्धो	बोधपा० १८
तव-विणय-सील-कलिया	जंबू० प० ११-३५६
तवसंजमप्पसिद्धो	पवयणसा० १-७९ क्षे५(ज०)
तवसंजमम्मि अण्णे	भ० आरा० ५८८
तवसा चेव ण मोक्खो	भ० आरा० १८५४
तवसा विणा ण मोक्खो	भ० आरा० १८४६
तवसिद्धे णयसिद्धे	सिद्धभ० ९
तवसुत्तसत्ताए गत्ता-	मूला० १४९
तवसुदवदवं चेदा	दव्वसं० ५७
तवेण धीरा विधुणंति पावं	मूला० ९०१
तव्वड्ढीए चरिमो	गो० जी० १०५
तव्विदिरित्तं दुविहं	गो० क० ६३
तव्वणमज्झे चूलिय-	तिलो० प० ४-१८४९
तव्वणमज्झे चूलिय-	तिलो० प० ४-१८५३
तव्वादरुद्धखेत्तं	तिलो० सा० १२३
तव्वासरस्स आदी	तिलो० सा० ८६१
तव्विवदिय कप्पाणम-	गो० जी० ४५३
तव्विवरीदं मोसं *	मूला० ३१४
तव्विवरीदं मोसं *	भ० आरा ११९४
तव्विवरीदं सव्वं	भ० आरा० ८३४
तसकाइएसु णेया	पंचसं० ५-१९३
तसकाइया असंखा	मूला० १२०६
तसघादं जो ण करदि	कत्ति० अणु० ३३२
तसचउ वण्णचउक्कं +	पंचसं० ४-२८५
तसचउ वण्णचउक्कं +	पंचसं० ५-७८
तसचउ वण्णचउक्कं ×	पंचसं० ४-२९५
तसचउ वण्णचउक्कं ×	पंचसं० ५-८८
तसचउ पसत्थमेव य ÷	पंचसं० ३-२४
तसचउ पसत्थमेव य ÷	पंचसं० ४-३१७
तसचदुजुगाण मज्झे	गो० जी० ७१
तसजीवाणं ओघे	गो० जी० ७२१
तसजीवाणं लोगो	जंबू० प० २-१४
तसणालीबहुमज्झे	तिलो० प० ४-६
तसथावरं च वादर-	कम्मप० ९८
तसथावरादिजुयलं	पंचसं० ४-४११
तसथावरा य दुविहा	मूला० २२७
तसपंचक्खे सव्वे	पंचसं० ४-८४
तसबंधेण हि संहदि-	गो० क० ५२७
तसबादर पज्जत्तं	कम्मप० १००
तसमणवचिओराला-	पंचसं० ४-३५६
तसमिस्से ताणि गुणो	गो० क० ५९०
तसरासिपुढविआदी-	गो० जी० २०५
तसरेणू रथरेणू	तिलो० प० १-१०५
तसऽसंजम वज्जित्ता	आस० ति० ५३
तसऽसंजमहीणऽजमा	सिद्धंत० ६२
तसहीणो संसारी	गो० जी० १७५
तसिदो वक्कंतक्खो	तिलो० सा० १५५
तस्स अवाओपायवि-	भ० आरा० ४६२
तस्सग्गिदिसाभाए	तिलो० प० ४-१९५३
तस्सग्गे इगि-वासो	तिलो० सा० ५१९
तस्स चडावंति पुणो	धम्मर० ५५
तस्स ण कप्पदि भत्तप-	भ० आरा० ७६
तस्स णगरस्स राया	जंबू० प० ३-२१९
तस्स णगरस्स राया	जंबू० प० ७-४३
तस्स णगस्स हु सिहरे	जंबू० प० ३-२१५
तस्स णमाइं लोगो	पवयणसा० १-५२ क्षे२(ज०)
तस्स ण सुज्झइ चरियं	मूला० ९१७
तस्स णिमित्तं रइयं	जंबू प० १३-१५७
तस्स णिरुद्धं भणिदं	भ० आरा० २०१३
तस्स तला अइरित्ता	तिलो० प० ४-२५४
तस्स दु पीढस्सुवरिं	जंबू० प० ५-४६
तस्स दु पीढस्सुवरिं	जंबू० प० ६-६३
तस्स दु मज्झे अवरं	जंबू० प० ६-६२
तस्स दु मज्झे णेया	जंबू० प० ४-१२
तस्स दु संतट्ठाणा	पंचसं० ५-२७६
तस्स देसस्स णेया	जंबू० प० ८-१२५
तस्स देसस्स णेया	जंबू० प० ९-१९
तस्स देसस्स णेया	जंबू० प० ९-९६
तस्स देसस्स मज्झे	जंबू० प० ९-४९
तस्सद्धं वित्थारो	तिलो० प० ४-१५०
तस्स पढमप्पएसे	तिलो० प० ४-१५३४
तस्स पढमप्पएसे	तिलो० प० ४-१५६६
तस्स पढमप्पएसे	तिलो० प० ४-१५९८
तस्स पदिण्णामेरं	भ० आरा० १५१३
तस्स पमाणं दोण्णि य	तिलो० प० ७-२८१
तस्स पसाएण मए	वसु० सा० ५४६
तस्स फलमुदयमागय-	वसु० सा० १४४

तस्सूजीए परिही	तिलो० प० ४-२८३०
तस्सेव अपज्जत्ते	पंचसं० ५-३२४
तस्सेव कारणाणं	कत्ति० अणु० १३५
तस्सेव य उच्चत्तं	जंबू० प० ६-८५
तस्सेव य वरसिस्सो *	जंबू० प० १३-१५५
तस्सेव य वरसिस्सो	जंबू० प० १३-१५६
तस्सेव य वरसिस्सो	जंबू० प० १३-१६०
तस्सेव संतकम्मा	पंचसं० ५-४०१
तस्सेव होंति उदया	पंचसं० ५-४०३
तस्सोरालियमिस्से	पंचसं० ५-३५३
तस्सोलसमणुहि कुला-	तिलो० सा० ८७२
तस्सोवरि सिदपक्खे	तिलो० प० ४-२४४४
तह अट्ठदिग्गइंदा	तिलो० प० ४-२३६३
तह अट्ठवीसवंधे	पंचसं० ५-२२७
तह अण्णाणी जीवा	भ० आरा० १७८४
तह अद्धमंडलीओ	तिलो० सा० ६८५
तह अद्धं णारायं	कम्मप० ७६
तह अप्पणो कुलस्स य	भ० आरा० १५२५
तह अप्पं भोगसुहं	भ० आरा० १२५६
तह अंववालुकाओ	तिलो० प० २-१३
तह आयरिओ वि अणुज्ज-	भ० आरा० ४८०
तह आवडिदप्पडिकूल-	भ० आरा० १५२१
तह उवसमसुहुमकसाए	पंचसं० ५-२८४
तह खाणेसु वि उदयं	पंचसं० ५-४११
तह चंडो मणहत्थी	मूला० ८७५
तह चेव अट्ठपयडी	पंचसं० ३-४६
तह चेव णोकसाया	भ० आरा० २६८
तह चेव देसकुलजा-	भ० आरा० ४३१
तह चेव पवयणं सव्व-	भ० आरा० ४६३
तह चेव भद्दसाले	जंबू० प० ४-७४
तह चेव मच्चुवग्घपरद्धो	भ० आरा० १०६४
तह चेव य तदेहे	भ० आरा० १५६४
तह चेव सयं पुव्वं	भ० आरा० १६२७
तह जाण अहिंसाए	भ० आरा० ७८८
तह जीवे कम्माणं	समय० ५६
तह जोइज्जइ मरणं	रिट्ठस० १७२

* यह गाथा स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस और ऐ० पन्नालालसरस्वती भवन बम्बईकी प्रतियोंमें नहीं है। सेठ माणिकचन्द बम्बई और भण्डारकर ओ० रि० इ० पूनाकी प्रतियोंमें पाई जाती है।

तह णाणिस्स दु पुव्वं	समय० १८०
तह णाणिस्स वि विविहे	समय० २२१
तह णाणी वि हु जइया	समय० २२३
तह णियथवायसुविणिच्छिया	सम्मइ० १-२३
तह णीलवंतपउरो	जंबू० प० ६-२२
तह णोकसायछक्कं	पंचसं० ३-३८
तह ते चेव य रूवा	जंबू० प० १२-६०
तह दक्खिणे वि णेया	जंबू० प० ६-१६३
तह दंसणउवओगो	णियमसा० १३
तह दाणलाहभोगुव-	कम्मप० १०३
तह दिवसियरादियपक्खिय-	मूला० ६६५
तह पुण्णभद्दसीदा	तिलो० प० ४-२०५६
तह पुव्वफग्गुणीए	रिट्ठस० २४६
तह पुंडरीकिणी वा-	तिलो० प० ५-१५८
तह वारहवासे पुण	णंदी० पट्टा० २
तह भाविदसामण्णो	भ० आरा० २३
तह मणुय-मणुसणीओ	पंचसं० ४-३४० (ख)
तह मरइ एकओ चेव	भ० आरा० १७४६
तह मिच्छत्तकडुगिदे	भ० आरा० ७३४
तह मुज्झंतो खवगो	भ० आरा० १५०४
तह य अवायमदिस्स दु	जंबू० प० १३-६०
तह य असण्णी सण्णी	गो० क० २३६
तह य उवट्टं कमलं	तिलो० प० ८-६३
तह य जयंती रुचकुंतमा	तिलो० प० ५-१७६
तह य तदीयं तीसं *	पंचसं० ४-२६६
तह य तदीयं तीसं *	पंचसं० ५-६२
तह य पभंजणणामो	तिलो० प० ३-१६
तह य तिविट्ठ-दुविट्ठा	तिलो० प० ४-५१७
तह य महाहिमवंतो	जंबू० प० ३-१६
तह य विसाखाइरिओ	जंबू० प० १-१४
तह य सुगंधिणिवेरं-	तिलो० प० ४-१२४
तह य सुभद्दा भद्दा	तिलो० प० ६-५३
तह य सुवण्णादीणं	छेदस० ८६
तह वि ण सा वंभहच्चा	भावसं० २४८
तह वि य चोरा चारभ-	भ० आरा० ११५२
तह वि य सच्चे दत्ते	समय० २६४
तह विसयामिसवत्थो	भ० आरा० ६०५
तहविह भुअंगचक्के	रिट्ठस० २२३
तह सयण सोधणं पि य	मूला० ६६७
तह सव्वविज्जसामी	जंबू० प० १३-१००

* पूर्वार्ध उपलब्ध न होनेसे उत्तरार्द्धका प्रथम चरण दिया है। आगे भी जहाँ 'उत्तरार्ध' लिखा है वहाँ ऐसा ही जानना।

तं वत्थुं मोत्तव्वं	भ० आरा० २६२
तं वयणं सोऊणं	भावसं० १४७
तं विजउत्तरभागे	तिलो० प० ४-२३५३
तं विवरीओ बंधइ	भावपा० ११६
तं विविह-रइद-मंगल-	जंबू० प० ६-१०२
तं वीहीदो लंघिय	तिलो० प० ७-२०८
तं वेदीए दारे	तिलो० प० ४-१३५६
तं वेदीदो गच्छिय	तिलो० प० ८-४२४
तं सब्भावणिबद्धं	पवयणसा० २-३२
तं सम्मत्तं उत्तं	भावसं० २७२
तं सव्वट्ठवरिट्ठं	पवयणसा० १-१८क्षे० १ (ज०)
तं सिरिया(हि सिरी)सिरिदेवी	तिलो०प०४-१६७०
तं सुगहियसण्णासो	आरा० सा० ६५
तं सुद्धसलागाहिद-	गो० जी० २६७
तं सुरचउक्कहीणं	लद्धिसा० २२
तं सुविणिम्मलकोमल-	जंबू० प० ११-१६५
तं सोढुमक्खमो तं	तिलो० सा० ८५४
तं सोधिदूण तत्तो	तिलो० प० १-२७५
तं सो बंधणमुक्को	भ० आरा० २१२७
तं होदि सयंगालं	मूला० ४७७
ता अच्छउ जिय पिसुणमइ	सावय० दो० १५०
ताइं उवसमखइया	तिलो० प० २-६८
ताइं चिय केवलिणो	तिलो० प० ४-११५३
ताइं चिय पत्तेक्कं	तिलो० प० ४-११६६
ता उज्जलु ता दिढु कुलिणु	सुप्प० दो० ४१
ताए अधापवत्ताद्धाए	लद्धिसा० ४३
ताए गह-रिक्खाणं	जंबू० प० १२-३५
ता एण्हिं विस्सासं	तिलो० प० ४-४४२
ताए पुणो वि उज्झइ	धम्मर० ३८
ताओ आबाधाओ	तिलो० प० ७-५८६
ताओ उत्तरअयणे	तिलो० सा० ४१८
ताओ चउरो सग्गे	तिलो० सा० ५०६
ताओ चउवीसगुणा	पंचसं० ५-२१५
ताओ तत्थ य णिरया	पंचसं० ४-३३०
ता कज्जे लहु लग्गहु	ढाढसी० १६
ता किह णिग्गहिद देहं	कत्ति० अणु० २०१
ताडण तासण दुक्खं	धम्मर० ७६
ताडण तासण बंधण *	तिलो० प० ४-६१६
ताडण तासण बंधण *	भ० आरा० १५८२
ताण कमेण य छेदो	छेदस० ११
ताण खिदीणं हेट्ठा	तिलो० प० २-१८
ताण जुगलाण देहा	तिलो० प० ४-३८३
ताण णयराणि अंजण-	तिलो० प० ६-६०
ताण दहाणं होंति हु	जंबू० प० ६-४४
ताण दुवारुच्छेहो	तिलो० प० ४-३१
ताण पवेसो वि तहा	वसु० सा० ३८
ताणब्भंतरभागे	तिलो० प० ४-७६३
ताणब्भंतरभागे	तिलो० प० ४-७४६
ताणब्भंतरभागे	तिलो० प० ४-७६५
ताण भवणाण पुरदो	तिलो० प० ४-१६१८
ताण य पचक्खाणा	तिलो० प० २-२७४
ताण वधे संजादे	छेदपिं० २७
ताण सरियाण गहिरं	तिलो० प० ४-१३३६
ताणं उदप्पहुदी	तिलो० प० ४-१७५७
ताणं उवदेसेण य	तिलो० प० ४-२१३५
ताणं कणयमयाणं	तिलो० प० ४-८७७
ताणं कप्पदुमाणं	जंबू० प० ५-७०
ताणं गुहाण रुंदं	तिलो० प० ४-२७५०
ताणं गेवेज्जाणं	तिलो० प० ८-१६७
ताणं च मेरुपासे	तिलो० प० ४-२०२६
ताणं णयर-तलाणं	तिलो० प० ७-६०
ताणं णयर-तलाणं	तिलो० प० ७-६७
ताणं णयर-तलाणं	तिलो० प० ७-१०२
ताणं णयर-तलाणिं	तिलो० प० ७-१०५
ताणं णयर-तलाणिं	तिलो० प० ७-६४
ताणं दक्खिणतोरण-	तिलो० प० ४-२२६१
ताणं दिणयरमंडल-	तिलो० प० ४-८८४
ताणं दोपासेसुं	तिलो० प० ४-२५३४
ताणं पइण्णएसुं	तिलो० प० ८-५२२
ताणं पि अंतरेसुं	तिलो० प० ४-१८८५
ताणं पि मज्झभागे	तिलो० प० ४-७६१
ताणं पुण ठिदिसंतं	लद्धिसा० ५७७
ताणं पुराणि णाणा-	तिलो० प० ७-१०६
ताणं मज्झे णिय-णिय-	तिलो० प० ४-७६४
ताणं मूले उवरिं	तिलो० प० ३-४१
ताणं मूले उवरि	तिलो० प० ४-७७६
ताणं मूले उवरिं	तिलो० प० ४-१६३१
ताणं रुप्पय-तवणिय-	तिलो० प० ४-२०१४
ताणं वरपासादा	तिलो० प० ४-१६५१
ताणं वरपासादो	तिलो० प० ४-२४५२

ताणं विमाणसंखा	तिलो० प० ८-३०२
ताणं सभाघराणं	जंबू० प० ५-३६
ताणं सभावराणं	जंबू० प० ५-४१
ताणं समयपबद्धा	गो० जी० २४५
ताणं हम्मादीणं	तिलो० प० ४-८११
ताणं हेट्ठिम-मज्झिम-	तिलो० प० ४-२४६०
ता णिसहं जइयारं	भावसं० ४६७
ताणि हु रागविवागा-	भ० आरा० २१५२
ताणोवरि तदियाइं	तिलो० प० ४-८८२
ताणोवरि भवणाणि	तिलो० प० ५-१४७
ताणोवरिमपुरेसुं	तिलो० प० ५-१३८
तादे गभीरगज्जो	तिलो० प० ४-१५४७
तादे गरुवगभीरो	तिलो० प० ४-१५४३
तादे चत्तारि जणा	तिलो० प० ४-१५२८
तादे ताणं उदया	तिलो० प० ४-१५६५
तादे दुस्समकाले	तिलो० प० ४-१५६५
तादे देवीणिवहो	तिलो० प० ८-५७४
तादे पविसदि णियमा	तिलो० प० ४-१६०४
तादे हे(ए)सा वसुहा	तिलो० प० ४-१५६६
ता देहो ता पाणा	भावसं० ५२०
ताधे बहुविहओसहि-	तिलो० प० ४-१५७१
ताधे रसजलवाहा	तिलो० प० ४-१५५६
ता भुंजिज्जउ लच्छी	कत्ति० अणु० १२
ताम कुतित्थइँ परिभमइ *	जोगसा० ४१
ताम कुतित्थइँ परिभमइ *	पाहु० दो० ८०
तामच्छउ तउमंडयहँ	सावय० दो० ३१
ताम ण णज्जइ अप्पा	मोक्खपा० ६६
तामिस्सगुहगमुत्तर-	तिलो० सा० ७२२
तारणमल्लो अप्पा	ढाढसी० २७
तारंतरं जहण्णं +	तिलो० सा० ३३५
तारंतरं जहण्णं +	जंबू० प० १२-९८
ताराओ कित्तियादिसु	तिलो० प० ७-४६४
ताराओ रविचंदं	रिट्ठस० ५४
तारा-गह-रिक्खाणं	जंबू० प० १२-३५
तारा-यणु जलि बिंबियउ	परम० प० १-१०२
तारिसओ णत्थि अरी	भ० आरा० ६७८
तारिसपरिणामट्ठिय- ×	पंचसं० १-१६
तारिसपरिणामट्ठिय- ×	गो० जी० ५४
तारिसयममेज्झमयं	भ० आरा० १८१६
तारिसिया होइ छुहा	धम्मर० ७०
तारुण्णं तडि-तरलं	तिलो० प० ४-६३८
ता रूसिऊण पहओ	भावसं० १५३
ताव खिदिपरिहिदीए	तिलो० प० ७-३६१
ताव खमं मे काउं	भ० आरा० १६०
ताव ण जाणदि णाणं	सीलपा० ४
ताव सुहं लोयाणं	आय० ति० १६-१
तावे खग्गपुरीए	तिलो० प० ७-४३७
तावे णिसह-गिरिंदे	तिलो० प० ७-४४६
तावे तग्गिरिमज्झिम-	तिलो० प० ४-१३२१
तावे तग्गिरिवासी	तिलो० प० ४-१३२४
तावे मुहुत्तमधियं	तिलो० प० ७-४३८
ता सव्वत्थ वि कित्ती	कत्ति० अणु० ४२६
ता संकप्पवियप्पा	पाहु० दो० १४२
ता संतिणा पउत्तं	भावसं० १५१
तासिमपज्जत्तीणं	भावति० ६०
तासिमपज्जत्तीणं	भावति० ६५
तासिमसंखेज्जगुणा	पंचसं० ४-५११
तासिं पुण पुच्छाओ	मूला० १७८
ता सुयसायरमहणं	दव्वस० णय० ३२६
तासु लीह दिढ दिज्जइ	पाहु० दो० ८३
ता सुहुमकायजोगे	वसु० सा० ५३४
तासुं अज्जाखंडे	तिलो० प० ४-१३७१
ताहे अणुदिसं किर	जंबू० प० ११-३३७
ताहे अपुव्वफड्डय-	लद्धिसा० ४७३
ताहे असंखगुणियं	लद्धिसा० ४४४
ताहे कोहुच्छिट्ठं	लद्धिसा० ५०६
ताहे चरिमसवेदो	लद्धिसा० ३६०
ताहे दव्ववहारो	लद्धिसा० ४९२
ताहे मोहो थोवो	लद्धिसा० ४४३
ताहे सक्काणाए	तिलो० प० ४-७०८
ताहे संखसहस्सं	लद्धिसा० ४४२
ताहे संजलणाणं	लद्धिसा० ४६०
ताहे संजलणाणं	लद्धिसा० ४६३
ताहे संजलणाणं	लद्धिसा० ५३५
ताहे संजलणाणं	लद्धिसा० ५४७
तिकरणबंधोसरणं	लद्धिसा० २१८
तिकरणमुभयोसरणं	लद्धिसा० ३८१
तिक्कायदेवदेवी	पंचसं० ४-३४४
तिक्कालणिच्चविसमं	पवयणसा० १-५१
तिक्काले चदुपाणा	दव्वसं० ३

तिविपचपुण्णपमाणं गो० जी० १७९
तिभुजुदयूणुहयुच्चं तिलो० सा० १२०
तिमिपूरणासणेहिं दंसणसा० ७
तिमिरहरा जइ दिट्ठी पवयणसा० १-६७
तिमिसगुहम्मि य कूडे तिलो० प० ४-१६९
तिमिसगुहा रेवद वेसमणं तिलो०प०४-२३६६
तिय अट्ठ णवट्ठतिया तिलो० प० ७-३४८
तिय अट्ठ णवट्ठतिया तिलो० प० ७-३६६
तिय अट्ठारस सत्तरस तिलो० प० ८-१९१
तिय इग णभ इग छच्चउ तिलो०प० ४-२८८४
तिय इग दु ति पण पणयं तिलो०प०४-२६४५
तिय इग सग णभ च उतिय तिलो०प०४-२९०७
तिय उणवीसं छत्तियतालं गो० क० १०४
तिय एक्क एक्क अट्ठा तिलो० प० ७-४१३
तिय एक्कंवर णव दुग तिलो० प० ४-२३७४
तियकालयोगकप्पं अंगप० ३-३०
तियकालविसयरूविं गो० जी० ४४०
तियगुणिदो सत्तहिदो तिलो० प० १-१७१
तिय चउ चउ पण चउ दुग तिलो०प०४-२६८८
तिय चउ सग णभ गमणं तिलो०प०४-२८९६
तिय छद्दो दो छण्णभ तिलो० प० ४-२८६८
तियजोयणलक्खाइं तिलो० प० ७-२५५
तियजोयणलक्खाइं तिलो० प० ७-१७९
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० २-१५३
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० ७-१६२
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० ७-१६६
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० ७-१६९
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० ७-१७५
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० ७-१७८
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० ७-२५९
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० ७-४२४
तियजोयणलक्खाणि तिलो० प० ७-४२६
तियठाणेसुं सुण्णा तिलो० प० ७-४२८
तिय णभ अड सग सग पण तिलो०प०४-२६५५
तियणभछण्णव तिण्णट्ठमं तिलो० सा० ७५५
तियणवएक्कतिछक्का तिलो० प० ७-३९०
तिय णव छक्कं णव इगि तिलो० प० ४-२६३२
तिय णव छस्सग अड णभ तिलो०प०४-२८७२
तिय तिगुणा विक्खंभा जंवू० प० ८-४६
तिय तिण्णि तिण्णि पण सग तिलो०प०४-२६७५
तिय तिय अड णभ दो चउ तिलो०प०४-२८९२
तिय तिय एक्कतिपंचा तिलो० प० ७-३२९
तिय तिय दो दो खं णभ तिलो० प० ४-२८५७
तिय तिय पंचेकारा- तिलो० सा० ४४१
तिय तिय मुहुत्तमधिया तिलो० प० ७-४४०
तिय दंडा दो हत्था तिलो० प० २-२२५
तिय दो छचउ णव दुग तिलो० प०४-२६६८
तिय दो णव णभ चउ चउ तिलो० प० ४-२८८८
तिय पण खं दुग छण्णव तिलो०प० ४-२८४९
तियपणछव्वीसवंधे गो० क० ७४२
तिय पण दुग अड णवयं तिलो०प० ४-२९२६
तिय-परिणामा एदे भावति० ११३
तिय पुढवीए इंदय- तिलो० प० २-६७
ति-यरण सव्वविसुद्धो मूला० ६८६
ति-यरणसव्वासय- भ० आरा० ५०९
तिय-लक्खा छासट्ठी तिलो० प० ४-२५९३
तिय-लक्खाणि वासा तिलो० प० ४-१४६४
तिय-लक्खूणं अंतिम- तिलो० प० ५-२७०
तिय-वचि-चउ-मण-जोए पंचसं० ४-१०
तिय-वासो अडमासं तिलो० प० ४-१२३७
तिय-सय चउस्सहस्सा तिलो० प० ४-१२३४
तियसिंदचावसरिसं तिलो० प० ४-१४५
तियसिंदचावसरिसा जंवू० प० २-४७
तियसिंदसहियसुरवर- जंवू० प० ४-२७
तिय सुण्णं पणवग्गं अंगपं० २-८
तियहीणसेढिछेदण- तिलो० सा० २५९
ति-रदणपुरुगुणसहिदे मूला० ४२०
तिरधियसयणवणउदी गो० जी० ६२४
तिरिएहिं खज्जमाणो कत्ति० अणु० ४१
तिरिणरमिच्छेयारह पंचसं० ४-४५७
तिरियअपुण्णं वेगे गो० क० २०६
तिरियक्खेत्तप्पणिधिं तिलो० प० १-२७४
तिरियगइमणुय दोण्णि य पंचसं० ४-४०९
तिरियगई अट्ठेणं णाणसा० १३
तिरियगई उववण्णा भावसं० २८
तिरियगईए चि तहा वसु० सा० १७६
तिरियगई ओरालं पंचसं० ४-४२४
तिरियगई तेवीसं पंचसं० ५-४१७
तिरियगदि अणुपत्तो भ० आरा० १५८१
तिरियगदि लिंगमसुहति- भावति० ११२

ते चेव इंदियाणं	भ० आरा० १३५१
ते चेव चोद्दसपदा	लद्धिसा० १७
ते चेव भावरूवा	दव्वस० णय० ११३
ते चेव य छत्तीसे	पंचसं० ५–३४२
ते चेव य बंधुदया	पंचसं० ५–२३४
ते चेव य बंधुदया	पंचसं० ५–२३५
ते चेवेक्कारपदा	लद्धिसा० १६
ते चोद्दसपरिहीणा	गो० क० ३६०
ते छिण्णणेहबंधा	मूला० ८३६
तेजतिय चक्खुजुयले	पंचसं० ४–६३
तेजदुगं वण्णचऊ	गो० क० ४०३
तेजदुहारदुसमचउ-	गो० क० १००
तेजप्पउमा सुक्के	पंचसं० ५–२०२
तेजंगा मज्झंदिण (?)	तिलो० प० ४–३५१
तेजाए लेस्साए	भ० आरा० १९२१
तेजाकम्मसरीरं	पंचसं० ४–४३६
तेजाकम्मसरीरं	पंचसं० ४–४७२
तेजाकम्मेहिं तिये *	गो० क० २७
तेजाकम्मेहिं तिये *	कम्मप० ६६
तेजादितिए भव्वे	सिद्धंत० ६४
तेजासरीरजेट्ठं	गो० जी० २५७
ते जीवंतहँ मुहु विगणि	सुप्प० दो० २८
तेजो दिट्ठी णाणं	पवयणसा० १–६८ क्षे०२ (ज)
तेणउदिछक्कसत्तं	गो० क० ७६६
तेणउदि-जोयणाइं	जंबू० प० ३–१७५
तेणउदिं पण्णासा	जंबू० प० ११–२२
तेणउदीए बंधा	गो० क० ७५४
तेणउदीसंतादो	पंचसं० ५–२०८
तेण किंयं मयमेयं	दंसणसा० १३
तेण कुसमुट्ठिधाराए	भ० आरा० १६८३
तेण चउग्गइदेहं	दव्वस० णय० १३१
तेण च पडिकिंछदव्वं	मूला० ६१०
तेण णभिगितीसुदये	गो० क० ७६३
तेण णरा व तिरिच्छा	पवयणसा० १–६२ क्षे० ६ (ज०)
तेण तमं वित्थरिदं	तिलो० प० ४–४३४
तेण तिये तिदुनंधो	गो० क० ६६१
तेण दुणउदे णउदे	गो० क० ७८२
तेण परं अवियाणिय	भ० आरा० ५१४
तेण परं पुढवीसु य	मूला० ११६०
तेण परं संठाविय	भ० आरा० १६८०
तेण परं हायदि वा	लद्धिसा० २१६
तेण पुणो वि य मिच्चुं	दंसणसा० ३२
तेण-भयेणारोहइ	भ० आरा० ११५१
तेण य कयं विचित्तं	दंसणसा० ४
तेण रहस्सं भिंदत-	भ० आरा० ४८६
तेणवदिजुत्त-दुसया	तिलो० प० २–६२
तेणवदि सत्त सत्तं	गो० क० ७६४
ते णवसगसदरिजुदा	गो० क० ७५०
तेण वि अण्णत्थेवं	छेदपिं० २७३
तेण वि लोहज्जस्स य	जंबू० प० १–१०
तेणं सत्त[अ] मिस्सो-	पंचसं० ३–८
तेणायरिएण य सो	छेदपिं० २७१
ते णिक्कमोससारक्ख- *	मूला० ३१६
ते णिक्कमोससारक्ख- *	भ० आरा० १७०३
तेणिदं पडिणिदं चावि	मूला० ६०५
ते णिम्ममा सरीरे	मूला० ७८४
तेणिह सव्वपयारेण	छेदपिं० ३१६
तेणुत्तणवपयत्था	भावसं० २७८
तेणुवइट्ठो धम्मो	कत्ति० अणु० ३०४
तेणुवरिमपंचुदये	गो० क० ७६१
तेणेव होंति णेया	पंचसं० ५–३३४
तेणेवं तेरतिये	गो० क० ६८३
ते तस्स अभयवयणं	तिलो० प० ४–१३१२
ते तारिसया माणा	भ० आरा० ६४१
तेतीसं च सहस्सा	जंबू० प० ७–५
ते ते कम्मत्तगदा	पवयणसा० २–७८
ते ते महाणुभावा	जंबू० प० ७–११४
ते तेरस विदिएण य	लद्धिसा० १८
ते ते सव्वे समगं	पवयणसा० १–३
तेत्तियकालपमाणा	छेदपिं० २४६
तेत्तियमेत्तारविणो	तिलो० प० ७–१४
तेत्तियमेत्ते काले	तिलो० प० ४–१४६२
तेत्तियमेत्ते बंधे	लद्धिसा० २३२
तेत्तियमेत्ते बंधे +	लद्धिसा० २३३
तेत्तियमेत्ते बंधे	लद्धिसा० २३४
तेत्तियमेत्ते बंधे	लद्धिसा० ४२०
तेत्तियमेत्ते बंधे +	लद्धिसा० ४२१
तेत्तियमेत्ते बंधे	लद्धिसा० ४२२
तेत्तीसउवहिउवमा	तिलो० प० ८–५१०
तेत्तीसब्भहियसयं	तिलो० प० १–१६१

तेरासियम्मि लद्धं	तिलो० प० ७-४७७
ते राहुस्स विमाणा	तिलो० प० ७-२०३
तेरिक्खी माणुस्सिय	मूला० ३२७
तेरिच्छमंतरालं	तिलो० प० ७-११२
तेरिच्छा हु सरित्था	गो० क० ८६२
तेरिच्छियलद्धिअपज्जत्ते	गो० जी० ७१३
तेरे णव चउ पणयं	पंचसं० ५-२५२
ते रोया वि य सयला	भावपा० ३८
ते लद्धणाणचक्खू	मूला० ८२८
तलोक्केण वि चित्तस्स	भ० आरा० १३६१
ते लोयंतिय-देवा	तिलो० प० ८-६१५
तेलोक्कजीविदादो	भ० आरा० ७८२
तेलोक्कमत्थयत्थो	भ० आरा० २१४०
तेलोक्कसव्वसारं	भ० आरा० १६२५
तेलोक्कपुज्जणीए	मूला० १२२
तेल्लकसायादीहिं य	भ० आरा० ६८८
तेल्लोकाडविडहणो	भ० आरा० १११५
तेवट्ठि च सयाइं	गो० क० ६२३
तेवण्ण-कोडि-देवा	जंबू० प० ४-२१६
तेवण्णणवसयाहिय-	गो० क० ४६८
तेवण्णतिसदसहियं	गो० क० ५०२
तेवण्ण-सया उणवीस-	तिलो०प०७-४८६
तेवण्ण-सया णेया	जंबू० प० ४-१६८
तेवण्ण-सहस्साइं	तिलो० प० ७-३६६
तेवण्ण-सहस्साणि	तिलो० प० ४-१७१७
तेवण्णस्स-सयाणि	तिलो०प० ७-४८६
तेवण्णस्स-सयाणि	तिलो०प० ७-४८७
तेवण्णं च सहस्सा	जंबू० प० ११-७१
तेवण्णं च सहस्सा	जंबू० प० ६-४
तेवण्णा कोडीओ	जंबू० प० ४-१६३
तेवण्णा कोडीओ	जंबू० प० ४-२४०
तेवण्णा चावाणि	तिलो० प० २-२५७
तेवण्णाणि य हत्था	तिलो० प० २-२३८
तेवण्णुत्तरअडसय-	तिलो० प० ७-१७७
तेवत्तरिं सयाइं	गो० क० ८६८
ते वंदउँ सिरि-सिद्धगण	परम० प० १-२
ते वंदिदूण सिरसा	जंबू० प० १-६
ते वि कदत्था धण्णा	भ० आरा० ४-२००६
ते विक्किरिया जादा	तिलो० प० ८-४४२
ते वि पुणो वि य दुविहा	कत्ति० अणु० १३०
ते वि य महाणुभावा	भ० आरा० २००४
ते वि विसेसेणहिया	गो० जी० २१३
ते वि विहंगेण तदो	तिलो० सा० १८४
तेवीसट्ठाणादो	गो० क० ५६६
तेवीस-पुव्वलक्खा	तिलो० प० ४-१४४६
तेवीस-पुव्वलक्खा	तिलो० प० ४-१४५०
तेवीस-बंधगे इगि-	गो० क० ७६०
तेवीस-बंधठाणे	गो० क० ७६६
तेवीसमादि कादुं	पंचसं० ५-३६७
तेवीस-लक्ख रुंदो	तिलो० प० ८-५१
तेवीस-सहस्साइं	तिलो० प० ४-६००
तेवीस-सहस्साणि	तिलो० प० ४-५६
तेवीस-सुक्कलेस्से	कसायपा० ४४
तेवीसं अडवीसं	सुदखं० १७
तेवीसं पणवीसं*	गो० क० ५२१
तेवीसं पणुवीसं	पंचसं० ४-२५३
तेवीसं पणुवीसं*	पंचसं० ५-५०
तेवीसं पणुवीसं*	पंचसं० ५-४२३
तेवीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-१३१
तेवीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-१३२
तेवीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-५०
तेवीसादी बंधा	गो० क० ६६६
तेवीसा बादाला	जंबू० प० ६-१२०
ते वेदत्तयजुत्ता	तिलो० प० ४-२६३८
तेसट्ठि-पुव्वलक्खा	तिलो० प० ४-५८६
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-३७५
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-३७६
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-३७७
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-३५८
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-३५५
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-३५६
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-३५७
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-३७४
तेसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ७-३७३
तेसट्ठि-सहस्सा पण-	तिलो० प० ७-३६२
तेसट्ठी-लक्खाइं	तिलो० प० ३-८७
तेसट्ठी-लक्खाणि	तिलो० प० ८-४२२
तेसट्ठी-लक्खाणि	तिलो० प० ८-२४३
ते सव्वसंगमुक्का	मूला० ७८१
ते सव्वे उवयरणा	तिलो० प० ४-१८७७

थ

थूणाओ तिरिण देहम्मि भ० आरा० १०३२
थूलफलं ववहारं तिलो० सा० १८
थूलसुहुमादिचारं तिलो० प० ४-२५०३
थूलसुहुमादिचारं जंबू० प० १०-६७
थूले तसकायवहे चारित्तपा० २३
थूल सोलसपहुदी गो० क० ७६०
थूहादो पुव्वदिसो जंबू० प० ५-४४
थूहो जिणविंबचिदो तिलो० सा० ६६६
थेयाई (तेयादी) अवराहे समय० ३०१
थेरस्स वि तवसिस्स वि भ० आरा० ३३१
थेरं चिरपव्वइयं मूला० १८१
थेरा वा तरुणा वा भ० आरा० १०७०
थेरो वहुस्सुदो पच्चई भ० आरा० १०६८
थोऊण जिणवरिंदं जंबू० प० ४-२६६
थोणा(ला)इदूण पुव्वं भ० आरा० ४६०
थोतेहि मंगलेहि य वसु० सा० ४१५
थोदूण थुदिसएहिं तिलो० प० ८-५८२
थोदूण थुदिसएहिं तिलो० प० ४-८७२
थोलाइदूण पुव्वं भ० आरा० १५१६
थोवाइयस्स कुलजस्स भ० आरा० १५२२
थोवम्हि सिक्खिदे जिणइ मूला० ८६७
थोवा तिरिया पंचिंदिया मूला० १२१०
थोवा तिसु संखगुणा गो० जी० २८०
थोवा दु तमतमाए मूला० १२०६
थोवा विमाणवासी मूला० १२१६
थोस्सामि गुणधराणं जोगिभ० १
थोस्सामि हं जिणवरे थोस्सा० १

द

दइवमेव परं मण्णे गो० क० ८६१
दइवा सिज्झदि अत्थो अंगप० २-३१
दक(ग)णामो होदि गिरी तिलो०प० ४-२४६६
दक्खा-दाडिम-कदली- तिलो० प० ५-१११
दक्खिण-अयणं आदी तिलो० प० ७-५०१
दक्खिण-अयणे पंचसु तिलो० सा० ४१५
दक्खिण-इंदस्स जहा जंबू० प० ४-२६६
दक्खिण-इंदा चमरो तिलो० प० ३-१७
दक्खिण-उत्तर-इंदा तिलो० प० ३-३
दक्खिण-उत्तर-देवी तिलो० सा० ५२४
दक्खिण-उत्तरदो पुण कत्ति० अणु० ११६
दक्खिण-उत्तरदो पुण जंबू० प० ४-१७
दक्खिण-उत्तर-भाए तिलो० प० ४-२५३०
दक्खिण-उत्तर-भागेसु जंबू० प० ११-३
दक्खिण-उत्तर-वावी- तिलो० सा० ६३१
दक्खिणदिससेढीए तिलो० प० ४-१११
दक्खिणदिसाए अरुणा तिलो० प० ८-६३६
दक्खिणदिसाए णंदो तिलो० प० ४-२०७४
दक्खिणदिसाए णियइ रिट्ठस० १२३
दक्खिणदिसाए दूरं जंबू० प० ११-३०४
दक्खिणदिसाए पलियं तिलो० प० ५-१५०
दक्खिणदिसाए भरहो तिलो० प० ४-६१
दक्खिणदिसाए वरुणा तिलो० प० ८-६१७
दक्खिणदिसाविभागे तिलो० प० ४-१६५४
दक्खिणदिसाविभागे तिलो० प०४-२३१८
दक्खिणदिसाविभागे जंबू० प० ४-११८
दक्खिणदिसाविभागे जंबू० प० ६-३५
दक्खिणदिसाविभागे जंबू० प० ३-६५
दक्खिणदिसासु भरहो तिलो० सा० ५६४
दक्खिणदिसेण णेया जंबू० प० ८-८२
दक्खिणदिसेण णेया जंबू० प० १०-३१
दक्खिणदिसेण तुंगो जंबू० प० ८-५
दक्खिणदेसे विंझे दंसणसा० ४५
दक्खिण-पच्छिम-कोणे जंबू० प० ३-६६
दक्खिण-पच्छिम-भागे जंबू० प० ४-१३८
दक्खिणपीढे सक्को तिलो० प० ४-१८२७
दक्खिणपुव्वदिसाए जंबू० प० ४-१२७
दक्खिणपुव्वदिसाए जंबू० प० ३-६२
दक्खिणपुव्वदिसाए जंबू० प० ६-१६२
दक्खिणभरहस्सद्धं तिलो० प० ४-२६४
दक्खिणभरहे जीवा तिलो० सा० ७६६
दक्खिणभरहे णेया जंबू० प० २-६६
दक्खिणमुह आवत्ता तिलो० प० ४-१३८५
दक्खिणमुहं वलित्ता तिलो० सा० ५८३
दक्खिणमुहेण गंतुं जंबू० प० ६-१०४
दक्खिणमुहेण तत्तो तिलो० प० ४-१३३१
दक्खिणवरसेढीए जंबू० प० २-३६
दट्ठुं विहिंसणीयं भ० आरा० १००५
दट्ठूण अण्णदेवे धम्मर० ८८
दट्ठूण अण्णदोसं भ० आरा० ३७२

दंडयणयरं सयलं	भावपा० ४६
दंडंति एक्कपव्वं	धम्मर० ६३
दंडं दुद्धिय चेलं	भावसं० ८६
दंडा तिण्णि सहस्सा	तिलो० प० ४–७७१
दंडो जउ(मु)णावंकेण	भ० आरा० १५५४
दंतवण-ण्हाण-भंगे	छेदस० ५२
दंताणि इंदियाणि य	भ० आरा० २३८
दंतेहिं चव्विदं वीलण-	भ० आरा० १०१५
दंतेंदिया महरिसी	मूला० ८८१
दंभं परपरिवादं	मूला० ६५७
दंसण-अणंतणाणं	बोधपा० १२
दंसण-अणंतणाणे	बोधपा० २६
दंसण-आइदुअं दुसु	पंचसं० ४–७०
दंसणआवरणं पुण *	भावसं० ३३२
दंसणआवरणं पुण *	कम्मप० २६
दंसणकारणभूदं	दव्वस० णय० ३२४
दंसण-चरण-पभट्ठे	मूला० २६२
दंसण-चरण-विवण्णे	मूला० २६१
दंसण-चरण-विसुद्धी	मूला० २००
दंसण-चरणो एसो	मूला० २६६
दंसण-चरित्त-मोहं	दव्वस० णय० २६६
दंसण-णाण-चरित्तमउ	परम० प० २–५४
दंसण-णाण-चरित्तं	चारित्तपा० ३६
दंसण-णाण-चरित्तं	दव्वस० णय० २८४
दंसण-णाण-चरित्तं	दव्वस० णय० २८३
दंसण-णाण-चरित्तं	अंगप० १–६३
दंसण-णाण-चरित्तं	अंगप० १–७६
दंसण-णाण-चरित्तं	तच्चसा० ५५
दंसण-णाण-चरित्तं	कत्ति० अणु० ३०
दंसण-णाण-चरित्तं	भ० आरा० १७४६
दंसण-णाण-चरित्तं	भ० आरा १६६७
दंसण-णाण-चरित्तं	भ० आरा० १६६
दंसण-णाण-चरित्तं	समय० ३६६
दंसण-णाण-चरित्तं	समय० १७२
दंसण-णाण-चरित्तं	समय० ३६७
दंसण-णाण-चरित्तं	समय० ३६८
दंसण-णाण-चरित्तं	कत्ति० अणु० ३०
दंसण-णाण-चरित्ता-	समय० १६
दंसण-णाण-चरित्ता-	दव्वस० णय० ६
दंसण-णाण-चरित्ता-	आरा० सा० ८०

दंसण-णाण-चरित्ता-	पंचत्थि० १६४
दंसण-णाण-चरित्ते	लिंगपा० ८
दंसण-णाण-चरित्ते	लिंगपा० ११
दंसण-णाण-चरित्ते	लिंगपा० २०
दंसण-णाण-चरित्ते	दंसणपा० २३
दंसण-णाण-चरित्ते	पवयणसा० ३–४२
दंसण-णाण-चरित्ते	कल्लाणा० २६
दंसण-णाण-चरित्ते	वसु० सा० ३२०
दंसण-णाण-चरित्ते	मूला० ४१६
दंसण-णाण-चरित्ते	मूला० १६६
दंसण-णाण-चरित्ते	मूला० ५६०
दंसण-णाण-चरित्ते	मूला० ५८४
दंसण-णाण-चरित्ते	मूला० ५६४
दंसण-णाण-चरित्ते	मूला० ५६६
दंसण-णाण-चरित्ते	मूला० ६७८
दंसण-णाण-चरित्ते	कत्ति० अणु० ४५५
दंसण-णाण-चरित्ते	भ० आरा० १६३४
दंसण-णाण-चरित्ते	भ० आरा० ४५८
दंसण-णाणादिचारे	भ० आरा० ४८७
दंसण-णाण-पहाणे	दव्वसं० ५२
दंसण-णाण-पहाणो	तच्चसा० १७
दंसण-णाण-विहूणा	भ० आरा० १६६४
दंसण-णाण-समग्गं	दव्वसं० ५४
दंसण-णाण-समग्गं *	पंचत्थि० १५२
दंसण-णाण-समग्गं *	तिलो० प० ६–२३
दंसण-णाण-समग्गो	भ० आरा० २१०८
दंसण-णाणाइतियं	पंचसं० ४–३२
दंसण-णाणाइतियं	पंचसं० ४–३७
दंसण-णाणाणि तहा	पंचत्थि० ५२
दंसण-णाणावरणक्खए	सम्मइ० २–६
दंसण-णाणावरणं	भावपा० १४७
दंसण-णाणावरणं	दव्वस० णय० ८३
दंसणणाणुवदेसो	पवयणसा० ३–४८
दंसणणाणे तवसंजमे	भ० आरा० ३२०
दंसणणाणे विणओ	मूला० ३६४
दंसणपुव्वं णाणं	दव्वसं० ४४
दंसणपुव्वं णाणं	सम्मइ० २–२२
दंसणपुव्वु हवेइ फुडु	परम० प० २–३५
दंसणभट्ठा भट्ठा ÷	दंसणपा० ३
दंसणभट्ठा भट्ठा ÷	बा० अणु० १६

दारगुहुच्छयवामा	तिलो० सा० ५६२
दारम्मि वइजयंते	तिलो० प० ४-१३१४
दारवदीए ग्गेमी	तिलो० प० ४-६४२
दारसरिच्छुस्सेहा	तिलो० प० ४-१८५८
दारस्स उवरिदेसे	तिलो० प० ४-७७
दारंतरपरिमाणं	जंबू० प० १-४६
दाराणि मुणेयव्वा	जंबू० प० ५-१३
दारिद्दं अड्ढित्तं	भ० आरा० १८०८
दारियदुण्णयदणुयं	दव्वस० णय० ४१८
दारुणहुदासजाला	तिलो० प० २-३२१
दारे व दारवालो	भ० आरा० १८४२
दारोवरिमतलेसुं	तिलो० प० ८-३५३
दारोवरिमपएमे	तिलो० प० ४-४५
दारोवरिमपुराणं	तिलो० प० ४-७४
दासं व मणं अवसं	भ० आरा० १४१
दासी-दासेहिं तहा	जंबू० प० ३-१११
दाहोपसमण तण्हा-	मूला० ५५६
दिक्खाकालाईयं	भावपा० १०८
दिक्खागहणाणुक्कम-	दव्वस० णय० ३३७
दिक्खोववासमादि	तिलो० प० ४-१०४६
दिज्जइ धणु दुत्थिय-जणहँ	सुप्प० दो० २२
दिज्जदि अणंतभागे-	लद्धिसा० ५२६
दिज्जदि तवो वि संठाणा-	छेदपिं० २६०
दिट्ठपरमट्ठसारा	मूला ८०७
दिट्ठमदिट्ठं चावि य	मूला० ६०६
दिट्ठं पि ण सब्भावं	भ० आरा० ६७६
दिट्ठं व अदिट्ठं वा	भ० आरा० ५७५
दिट्ठा अणादिमिच्छा-	भ० आरा० १७
दिट्ठाणुभूदसुदविसयाणं	भ० आरा० १०६७
दिट्ठा पगदं वत्थुं	पवयणसा० ३-६१
दिट्ठा सुण्णासुण्णे	कसायपा० ५५
दिट्ठिप्पवादमंगं	अंगप० १-७१
दिट्ठीइ चप्पिआए	रिट्ठस० ३५
दिट्ठी जहेव (सयं पि) णाणं	समय० ३२०
दिट्ठीणं तिण्णि सया	अंगप० १-७२
दिट्ठे विमलसहावे	तच्चसा० ४२
दिट्ठे वि सलिलजोए	आय० ति० १६-२७
दिढचित्तो जो कुव्वदि	कत्ति० अणु० ३२६
दिणगदिमाणं उदयो	तिलो० सा० ३६५
दिणचवलथेरणारय-	आय० ति० १-१४
दिणपडिम-वीरचरिया-	वसु० सा० ३१२
दिणयरकरणियराहय-	जंबू० प० ३-१८८
दिणयरणयरतलादो	तिलो० प० ७-२७३
दिणयरमयूहचुंबिय-	जंबू० प० ४-११३
दिणरयणिजाणणट्ठं	तिलो० प० ७-२४५
दिणवइपहसूचिचए(चीए)	तिलो०प० ७-२४४
दिणवइपहसूचिचए(चीए)	तिलो०प० ७-२३७
दिणवइपहंतराणि	तिलो० प० ७-२४३
दिण-वरिस-मास-पहरेहिं	आय०ति० ४-१६
दिण्णइ सुपत्तदाणं	रयणसा० १६
दिण्णइँ वत्थ सुअज्जियहँ	सावय० दो० २०३
दिण्णच्छेदेणवहिद-	गो० जी० २१४
दिण्णच्छेदेणवहिद-	गो० जी० ४२०
दिप्पंत-रयणदीवा	तिलो० प० ३-५०
दिप्पंत-रयणदीवा	तिलो० प० ४-२७
दिप्पंत-रयणदीवा	तिलो० प० ४-४६
दिप्पंत-रयणदीवा	तिलो० प० ७-४४
दिप्पंत-रयणदीवा	तिलो० प० ८-२११
दिप्पंत-रयणदीवा	तिलो० प० ८-३६८
दियसंगट्ठियमसणं	भावपा० ४०
दिवसप्पडि अट्ठसयं	तिलो० प० ४-२४३६
दिवसयरबिंबरुंदं	तिलो० प० ७-२२४
दिवसिय-रादिय-गोयर-	छेदपिं० १८४
दिवसिय-रादिय-पक्खिय-	छेदपिं० २०१
दिवसिय-रादिय-पक्खिय-	मूला १७५
दिवसेण जोयणसयं	भ० आरा० ५६
दिवसे पक्खे मासे	मूला० ४३३
दिवसो पक्खो मासो	गो० जी० ५७५
दिव्वक्खेत्तेहिं जुदो	जंबू० प० ६-१२८
दिव्वच्छराहि य समं	धम्मर० १७६
दिव्वतिलयं च भूमी-	तिलो० प० ४-१२२
दिव्वपुरं रयणाणिहिं	तिलो० प० ४-१३६५
दिव्वफलपुप्फहत्था	तिलो० सा० ६७५
दिव्ववरदेहजुत्तं	तिलो० प० ८-२६७
दिव्वविमाणसभाए	जंबू० प० ११-२३१
दिव्वं अमयाहारं	तिलो० प० ६-८७
दिव्वाणि विमाणाणि य	धम्मर० १५८
दिव्वामलदेहधरा	जंबू० प० ३-११५
दिव्वामलदेहधरा	जंबू० प० ४-२२०
दिव्वामलमउडधरा	जंबू० प० २-१५४

दिव्वामोयसुगंधा	जंबू० प० ३-२०७
दिव्वामोयसुगंधा	जंबू० प० ५-२६
दिव्वामोयसुगंधा	जंबू० प० ६-१२६
दिव्वुत्तरणसरित्थं(च्छं)	रयणसा० १२०
दिव्वे भागे अक्खरसाओ	भ० आरा० १६००
दिव्वेहि य धूवेहि य	जंबू० प० ५-११७
दिसिकरिवरसेलाणं	जंबू प० ६-६८
दिसिदाह उक्कपडणं	मूला० २७४
दिसि-विदिसंतव्भाए	तिलो० प० ५-१६६
दिसि-विदिसाणं मिलिदा	तिलो० प० २-५५
दिसिगयवरणामाणं	जंबू० प० ११-७७
दिसिगयवरेसु अट्ठसु	जंबू० प० १-७१
दिसि-विदिसअंतरेसुं	तिलो० प० ४-१००३
दिसि-विदिसहिं परिमाणु करि	सावय० दो० ६६
दिसि-विदिसं तद्दीवा	जंबू० प० १०-४६
दिसिविदिसंतरगा हिम-	तिलो० सा० ६१३
दिसिविदिसिपच्चखाणं	भावसं० ३५४
दिसिविदिसिमाण पढमं	चारित्तपा० २४
दीउवहिचारखित्ते	तिलो० सा० ३६६
दीओ सयंभुरमणो	तिलो० प० ५-२३८
दीणत्त-रोस-चिंता-	भ० आरा० १५६१
दीणाणाहा कूरा	तिलो० प० ४-१५१७
दीपकभिंगारमुहा	तिलो० प० ४-२७२१
दीवइँ दिण्णइँ जिणवरहँ	सावय० दो० १८८
दीवजगदीए पासे	तिलो० प० ४-२४७
दीवज्जोई कुणइ	वसु० सा० ३१६
दीवद्धपढमवलये	तिलो० सा० ३५०
दीवम्मि पोक्खरद्धे	तिलो० प० ४-२७६०
दीवयसिहा दु एगा	रिट्ठस० ४८
दीवसमुद्दे दिण्णे	तिलो० सा० ३०
दीवसिहापजलंतो	रिट्ठस० ५६
दीवस्स पढमवलए	जंबू० प० १२-४८
दीवस्स समुद्दस्स य	जंबू० प० १०-६५
दीवस्स हु विक्खंभो	जंबू० प० ६-८४
दीवंगदुमा णेया	जंबू० प० २-१३२
दीवंगदुमा साहा-	तिलो० प० ४-३४६
दीवं सयंभूरमणं	जंबू० प० ११-८८
दीवाण समुद्दाण य	जंबू० प० २-१६८
दीवादी अवियंति [य]	संगप० १-३०
दीवायण माणवको	तिलो० प० ४-१४८४
दीवा लवणसमुद्दे	तिलो० प० ४-२४७६
दीवे कहिं पि मणुया	भावसं० ५३७
दीवेसु णगिंदेसुं	तिलो० प० ३-२२८
दीवेसु तेसु णेया	जंबू० प० १०-३६
दीवेसु सायरेसु य	वसु० सा० ५०६
दीवेहिं णिय-पहोह-जिय-	वसु० सा० ४३६
दीवेहिं दीवियासेस-	वसु० सा० ४८७
दीवोदहिपरिमाणं	जंबू० प० १२-५५
दीवोदहिसेलाणं	जंबू० प० १३-३१
दीवोदहिसेलाणं	तिलो० प० १-१११
दीवोवहीण एवं	जंबू० प० १२-५०
दीवोवहीण रूवा	जंबू० प० १२-५३
दीव्वंति जदो णिच्चं	गो० जी० १५०
दीसइ अवरो भरिओ	आय० ति० ८-७
दीसइ जलं व मयतण्हिया	भ० आरा० १२५७
दीसेइ जत्थ रूवं	रिट्ठस० ६८
दीहकालमयं जंतू	मूला० ५०७
दीहत्तमेक्ककोसो	तिलो० प० ४-१५२
दीहत्तरुंदमाणं(णे)	तिलो० प० ४-८५५
दीहत्तं बाहल्लं	तिलो० प० ६-१०
दीहत्ते विचियादे (?)	तिलो० प० ४-२०४५
दीहेण छिंदिदस्स य	तिलो० प० ८-६०६
दुअ(ग)तीस चउर पुव्वे	पंचसं० ३-१२
दुइयं च वुत्तलिंगं	सुत्तपा० २१
दु-फला वेकोसाहिय	जंबू० प० ८-१०६
दुक्कियकम्मवसादो	कत्ति० अणु० ६३
दुक्खइँ पावइँ असुचियइँ	परम० प० २-१५०
दुक्खक्खयकम्मक्खय-	भ० आरा० १२२५
दुक्खतिघादीणोघं ःः	गो० क० १२८
दुक्खतिघादीणोघं ःः	कम्मप० १२४
दुक्खभयमीणपउरे	मूला० ७२७
दुक्खयरविसयजोए	कत्ति० अणु० ४७१
दुक्ख-वह-सोग-तावा-	कम्मप० १४६
दुक्खस्स पडिगरेंतो	भ० आरा० १७१५
दुक्खहँ कारणि जे विसय	परम० प० १-८४
दुक्खहँ कारणु मुणिवि जिय	परम० प० २-७०
दुक्खहँ कारणु मुणिवि मणि	परम०प०२-१२१
दुक्खं उप्पादित्ता	भ० आरा० १२७१
दुक्खं णिद्दीघत्थस्सा-	भ० आरा० ११६३
दुक्खं च भाविदं होदि	भ० आरा० २११

वाक्य	स्थान
दुक्खं णिंदा चिंता	दव्वस० णय० ३५०
दुक्खं दुज्जसयहुलं	तिलो० प० ४-६७१
दुक्खं लाहं चत्ता	रिट्ठस० २२६
दुक्खाइं अणेयाइँ	आरा० सा० ४२
दुक्खा य वेदणामा	तिलो० प० २-४६
दुक्खिदसुहिदे जीवे	समय० २६६
दुक्खिदसुहिदे सत्ते	समय० २६०
दुक्खु वि सुक्खु वि वहु-विहउ	परम०प०१-६४
दुक्खु वि सुक्खु सहंतु जिय	परम० प० २-३६
दुक्खे णज्जइ अप्पा	मोक्खपा० ६५
दुक्खे णज्जदि णाणं	सीलपा० २
दुक्खेण णंतखुत्तो	भ० आरा० १७८६
दुक्खेण देवमाणुस-	भ० आरा० १२७६
दुक्खेण लभदि माणुस्स-	भ० आरा० ७८१
दुक्खेण लहइ जीवा	भ० आरा० ४६३
दुक्खेण लहइ वित्तं	भावसं० ५६१
दु-ख-णव-णव-चउ-तिय-णव-	तिलो०प०४-२२७५
दुख पंच एक्क सग णव	तिलो० प० ४-२८५०
दुगअट्ठएक्कचउणव-	तिलो० प० ७-३३७
दुगअट्ठगयणणवयं	तिलो० प० ४-२७३४
दुग-अट्ठ-छ-दुग-छक्का	तिलो० प० ७-३३१
दुगइगतियतियणवया	तिलो० प० ७-२६
दुग एक्क चउ दु चउ णभ	तिलो० प० ४-२८६५
दुग चउ अट्ठट्ठाइं	तिलो० प० ४-२५५६
दुगचउरट्ठडसगइगि	तिलो० सा० ६२८
दुगचदुअणेयपाया	भ० आरा० १७२७
दुगछक्कअट्ठछक्का	तिलो० प० ७-२५०
दुगछक्कतिण्णिवग्गे-	गो० क० ३८२
दुग छक्क सत्त अट्ठं	गो० क० २७६
दुगछत्तियदुगसत्ता	तिलो० प० ७-३१६
दुग-छ-दुग-अट्ठ-पंचा	तिलो० प० ७-३३०
दुगणभएक्किगिअडचउ-	तिलो०प० ४-२८८०
दुगणभणवेक्कपंचा	तिलो० प० ७-३८६
दुग तिग णभ छ दुदुग णभ	भावति० ३५
दुग तिग तिय तिय तिण्णि य	तिलो०प०७-५५८
दुगतिगभवा हु अवरं	गो० जी० ४५६
दुगदुगअडतियसुण्णं	अंगप० १-३६
दुगदुगचदुचदुदुगदुग-	कत्ति० अणु० १७०
दुगदुगदुगणवतियपण-	तिलो०प०४-२६५०
दुगवारपाहुडादो	गो० जी० ३५१

वाक्य	स्थान
दुग सग चदुरिगिदसयं	आस० ति० २१
दुगसत्तचउक्काइं	तिलो० प० ७-३३
दुगसत्तदसं चउदस	तिलो० ८-४५८
दुगुण परीतासंखे-	तिलो० सा० १०६
दुगुणम्मि भद्दसाले	तिलो० प० ४-२६१२
दुगुणम्मि भद्दसाले	तिलो० प० ४-२८२८
दुगुणम्मि भद्दसाले	तिलो० प० ४-२०१८
दुगुणं हि दु विक्खंभो	जंबू० प० १०-६१
दुगुणाए सूजी(च)ए	तिलो० प० ४-२७६०
दुगुणि च्चिय सूजी(ची)ए	तिलो०प० ४-२५१६
दुगुणियसगसगवासे	तिलो० प० ४-२५७
दुगुणियसगसगवासे	तिलो० प० ४-२५६
दुगुणिसु कदिजुद जीवा-	तिलो० सा० ७६३
दुगुणिसुहिदधणुवग्गो	तिलो० सा० ७६५
दुग्गदिदुस्सरसंहदि	गो० क० ३१७
दुग्गमणादावदुगं	गो० क० ४०५
दुग्गमदुल्लहलाभा	मूला० ७२२
दुग्गंधं वीभत्थं(च्छं)	बा० अणु० ४४
दुग्गाडवीहिजुत्तो	तिलो० प० ४-२२३३
दुचउसगदोण्णिसगपण-	तिलो० प० ४-२६५३
दुचयहदं संकलिदं	तिलो० प० २-८६
दुजुदाणि दुसयाणि	तिलो० प० १-२६२
दुज्जणवयणचडक्कं	भावपा० १०५
दुज्जणवयण चडपडं	मूला० ८६७
दुज्जणसंसग्गीए	भ० आरा० ३४४
दुज्जणसंसग्गीए	भ० आरा० ३४६
दुज्जणु सुहियउ होउ जगि	सावय० दो० २
दुट्ठट्ठकम्मरहियं	मोक्खपा० १८
दुट्ठा चवला अदिदुज्जया	भ० आरा० १३१६
दुट्ठे गुणवंते वि य	दंसणसा० १६
दुण्णि य एयं एयं	वसु० सा० २५
दुण्णि सयइँ विसुत्तरहँ	सावय० दो० २२२
दुतडाए सिहरम्मि य	तिलो० प० ४-२४४७
दुतडादो जलमज्झे	तिलो० प० ४-२४०५
दुतडादो सत्तसयं	तिलो० सा० ६०४
दुतडे पण पण कंचण-	तिलो० सा० ६५६
दुतिआउ-तित्थ-हारचउक्कूणा	लद्धिसा० ३१
दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्करसं	गो० क० ३६५
दुद्धरतवस्स भग्गा	भावसं० १३३
दुपदेसादी खंधा	पवयणसा० २-७५

दुप्पहुदिरूवउवज्जिद-	तिलो० सा० ४६
दुब्भगदुस्सरणिमिणं	पंचसं० ५-६४
दुब्भगदुस्सरमजसं	पंचसं० ४-३६६
दुब्भगदुस्सरमजसं	पंचसं० ४-४४३
दुब्भगदुस्सरमसुभं	पंचसं० ३-७८
दुब्भावअसुचिसूदग-	तिलो० सा० ६२४
दुमणिस्स एक्कअयणे	तिलो० प० ७-५२६
दुरदे यत्तावाओ	आय० ति० ८-२०
दुरधिगमणिउणपरमट्ठ-	पंचसं० ५-५०२
दुरय-हरि-हय-वहम्मि य	रिट्ठस० २१३
दुलहम्मि मणुअलोए	रिट्ठस० १२
दुल्लहलाहं लद्धूण	मूला० ७५६
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ	सावय० दो० २२१
दुल्लहु लहिवि णरत्तयणु	सावय० दो० २२०
दुविधं तं पि अणीहा	भ० आरा० २०१६
दुविधा तसा य उत्ता	मूला० २१८
दुविधो य होदि कालो	जंबू० प० १३-२
दुविह-तवे उज्जमणं	भावसं० १२६
दुविह-परिणामवादं	भ० आरा० १७७१
दुविहं आसवमग्गं	दव्वस० णय० १४१
दुविहं खु वेयणीयं	कम्मप० ५२
दुविहं च तत्थ णट्ठं	आय० ति० १८-२
दुविहं चरित्तमोहं	कम्मप० ५५
दुविहं च होइ तित्थं	मूला० ५५८
दुविहं तत्थ भविस्सं	आय० ति० २१-४
दुविहं तं पुण भणियं	भावसं० २६४
दुविहं तु भत्तपच्चक्खा-	भ० आरा० ६५
दुविहं तु होइ सुमिणं	रिट्ठस० ११२
दुविहं पि अपज्जत्तं	गो० जी० ७०६
दुविहं पि एयरूवं	रिट्ठस० ११४
दुविहं पि गंथचायं	दंसणपा० १४
दुविहं पि मोक्खहेउं	दव्वसं० ४७
दुविहं संजमचरणं	चारित्तपा० २०
दुविहा अजीवकाया	वसु० सा० १६
दुविहा किरियारिद्धी	तिलो० प० ४-१०३१
दुविहा चर-अचराओ	तिलो० प० ७-४६२
दुविहा चरित्तलद्धी	लद्धिसा० १६६
दुविहाणमपुण्णाणं	कत्ति० अणु० १४१
दुविहा पुण जिणवयणे	भ० आरा० ३
दुविहा पुण पदभंगा	गो० क० ८५४
दुविहा य होइ गणणा	आय० ति० २२-२
दुविहा य होंति जीवा	मूला० २०४
दुविहो खलु पडिवादो	कसायपा० ११७(६४)
दुविहो जिणेहिं कहिओ	भावसं० ११६
दुविहो तह परमप्पा	णाणसा० ३२
दुविहो धम्मावाओ	सम्मइ० ३-४३
दुविहो य तवाचारो	मूला० ३४५
दुविहो य विउस्सग्गो	मूला० ४०६
दुविहो सामाचारो	मूला० १२४
दुविहो हवेदि हेदू	तिलो० प० १-३५
दुव्विट्ठि अणाविट्ठी	जंबू० प० २-२०३
दुसमसुसमावसाणे	सुदखं० ६४
दुसमीरणेण पोयप्पे-	दव्वस० णय० ४२२
दु-सय-चउसट्ठि-जोयण-	तिलो० प० ४-७४२
दु-सय-जुद-सग-सहस्सा	तिलो० प० ४-११२४
दु-सया अट्ठत्तीसं	तिलो० प० ४-१७६
दुसहस्सजोयणाणिं	तिलो० प० ४-२०६८
दुसहस्सजोयणाणिं	तिलो० प० ४-२४५४
दुसहस्सजोयणाणि	तिलो० प० ४-२८२४
दुसहस्सजोयणाधिय-	तिलो० प० २-१६५
दुसहस्समउडबद्धा	तिलो० प० १-४६
दुसहस्सं सत्तसयं	तिलो० प० ४-२६२६
दुसहस्सा वाणउदी	तिलो० प० ४-२१२५
दुसु तेरे दस तेरस	पंचसं० ५-३२२
दुसु दुसु अट्ठसु कप्पे	तिलो० सा० ४८२
दुसु दुसु चदु दुसु दुसु चउ	तिलो० सा० ५४३
दुसु दुसु तिचउक्केसु य	तिलो० सा० [illegible]
दुसु दुसु तिचउक्केसु य	तिलो० प० [illegible]
दुसु दुसु तिचउक्केसु य ॐ	तिलो० सा० [illegible]
दुसु दुसु तिचउक्केसु य ॐ	तिलो० प० ८-४५८
दुसु दुसु देसे दोसु वि	गो० क० ८३५
दुसु दुसु पणइगिवीसं	आय० ति० [illegible]
दुस्समकालादीए	जंबू० प० २-१८३
दुस्समकाले रोओ	जंबू० प० २-[illegible]
दुस्समदुस्समे काले	जंबू० प० २-१८०
दुस्समसुसमं दुस्सम-	तिलो० प० ४-[illegible]
दुस्समसुसमे काले	तिलो० प० ४-[illegible]
दुस्समसुसमो तदिओ	तिलो० प० ४-[illegible]
दुस्सह[illegible]	[illegible] २५८
दुस्सहपरीसहेहि य	भ० आरा० [illegible]

दुंदुभगोरत्तरिणभो	तिलो० प० ७-१६
दुंदु ह-मुइंग-मद्दल-	तिलो० प० ६-१४
दूअक्खराइं दूह(?)	रिट्ठस० १६२
दूओ वंभण विग्घो	भ० आरा० ११३१
दूयस्स पएहयाले	रिट्ठस० २४१
दूरावकिट्टिपढमं	लद्धिसा० १५८
रेदूण य जं गहणं	जंबू० प० १३-६
दूरेण साधुसत्थं	भ० आरा० १३०६
दूरे ता अएणत्तं	सम्मइ० ३-६
देइ जिणिंदहँ जो फलइँ	सावय० दो० १६०
देउ ण देउले णवि सिलए	परम०प०१-१२३चे०१
देउ णिरजणु इउँ भणइ	परम० प० २-७३
देउलु देउ वि सत्थु गुरु	परम० प० २-१३०
देखताहँ वि मूढ वढ	पाहु० दो० १६६
देवकुरुखेत्तजादा	तिलो० प० ४-२०६६
देवकुरु पउम तवणं	तिलो० सा० ७४०
देवकुरुम्मि[य]विदिसे	जंबू०प० ६-१४७
देवकुरुवएणणाहिं	तिलो० प० ४-२१६१
देवगइसहगयाओ	पंचसं० ५-४६१
देवगई पयडीओ	पंचसं० ४-३५०
देवगदीदो चत्ता	तिलो० प० ८-६८१
देव-गुरु-धम्म-गुण-चारित्तं	रयणसा० ४६
देव-गुरुम्मि य भत्तो	मोक्खपा० ५२
देव-गुरु-सत्थभत्तो	दव्वस० णय० ३१०
देवगुरुसमयकज्जेहिं	छेदपिं० १०६
देवगुरुसमयभत्ता	रयणसा० ६
देवगुरूण णिमित्तं	कत्ति० अणु० ४०६
देवगुरूणं भत्ता	मोक्खपा० ८२
देवचउक्कं वज्जं	गो० क० २१४
देवचउक्काहारदु-	गो० क० ४००
देवघणाविहाणं	भावसं० ६२६
देवच्छंदस्स पुरो	तिलो० प० ४-१८८०
देवच्छेदसमाणो	जंबू० प० ४-७
देवजुदेक्कट्ठाणे	गो० क० ५७५
देवट्ठवीस णरदे-	गो० क० ५७२
देवट्ठवीसवंधे	गो० क० ५७३
देवतसवएणअगुरुचउक्कं	लद्धिसा० २१
देव तुहारी चिंत महु	पाहु० दो० १८२
देवत्तमाणुसत्तो	भ० आरा० १५८८
देवद-जदि-गुरुपूजासु	पवयणसा० १-६६

देवद-पासंडत्थं	मूला० ४२५
देवदुअ पणसरीरं	पंचसं० ३-६०
देवदुयं पंचिंदिय *	पंचसं० ४-२६४
देवदुयं पंचिंदिय *	पंचसं० ५-८७
देवमणुस्सादीहिं	पंचसं० १-३७
देवयपियरणिमित्तं	धम्मर० २५
देवयपियरणिमित्तं	धम्मर० १४३
देवरिसिणामधेया	तिलो० प० ८-६४४
देवलि पाहणु तित्थि जलु	पाहु० दो० ६१
देववरोदधिदीवा	तिलो० प० ५-२३
देवस्सियणियमादिसु	मूला० २८
देवहँ सत्थहँ मुणिवरहँ	परम० प० २-६१
देवहँ सत्थहँ मुणिवरहँ	परम० प० २-६२
देवाउ-अजसकित्ती	पंचसं० ३-६६
देवाउगवज्जे वि य	पंचसं० ४-४२३
देवाउगं पमत्तो +	गो० क० १३६
देवाउगं पमत्तो +	कम्मप० १३२
देवाउगं पमत्तो +	पंचसं० ४-४२१
देवाउगं पमत्तो +	पंचसं० ४-४५६
देवाउस्स य उदए ×	पंचसं० ५-२२
देवाउस्स य उदए ×	पंचसं० ५-२६१
देवाउस्स य एवं	पंचसं० ४-४३२
देवा चउणिणकाया	पंचत्थि० ११८
देवा चउणिणकाया	जंबू० प० ५-६२
देवाण गुणविहूई	भावपा० १५
देवाण णारयाणं	कत्ति० अणु० १६५
देवाण भवणणिवहो	जंबू० प० ८-१२६
देवाण होइ देहो	भावसं० ४११
देवाणं अवहारा	गो० जी० ६३४
देवाणं देवगदी	भावति० ७१
देवाणं पि य सुक्खं	कत्ति० अणु० ६१
देवाणं सव्वाणं	आय० ति० ८-१६
देवा पुण एइंदिय ÷	गो० क० १३८
देवा पुण एइंदिय ÷	कम्मप० १३४
देवा य भोगभूमा	मूला० ११२१
देवारएणचदुएणं	जंबू० प० ७-६
देवारएणम्मि तहा	जंबू० प० ८-६६
देवारएणं अएणं	तिलो० प० ४-२२२२
देवा विज्जाहरया	तिलो० प० ४-१५४५
देवा वि णारइया वि	कत्ति० अणु० १५२

देवासुरमहिदाओ	तिलो० प० ४–२३१
देवासुरा मणुस्सा	कल्लाणा० ३२
देवासुरिंदमहिदे	जंबू० प० १–१
देवासुरिंदमहियं	जंबू० प० १३–८०
देवासुरिंदमहिया	जंबू० प० ७–६२
देवाहारे सत्थं	गो० क० ६०२
देविय-माणुसभोगे	भ० आरा० १२१६
देविंदचक्कवट्टी	भ० आरा० १२६५
देविंदचक्कवट्टी	भ० आरा० १६५५
देविंदचक्कवट्टी	भ० आरा० २१४८
देविंदचक्कहरमंडलीय-	वसु० सा० ३३४
देविंदप्पहुदीणं	तिलो० प० ३–६८
देविंद-राय-गहवइ-	भ० आरा० ८७६
देवीओ तिण्णि सया	तिलो० प० ३–१०३
देवीण तिण्णि परिसा	जंबू० प० ६–१३७
देवीणं परिवारा	तिलो० प० ७–७७
देवी तस्स पसिद्धा	तिलो० प० ४–४४६
देवी-देव-समाजं	तिलो० प० ८–५७२
देवो-देवसमूहं	तिलो० प० ३–२१३
देवी-देव-समूहा	तिलो० प० ४–११८२
देवी-देव-सरिच्छा	तिलो० प० ४–३८१
देवी धारिणि (धरणी) णामा	तिलो०प० ४–४६१
देवीपासादुदया	तिलो० सा० ५.१४
देवीपुरउदयादो	तिलो० प० ८–४१५
देवी-भवणुच्छेहा	तिलो० प० ८–४१३
देवीहिं पडिदेहिं	तिलो० प० ८–२७७
देवुत्तरकुरुखेत्तं	जंबू० प० ६–१७६
देवे अणण्णभावो	पंचसं० १–१६५
देवे थुवइ तियाले(लं)	भावसं० ३५५
देवे वहिंऊण गुणा	भावसं० ४८
देवे वा वेगुव्वे	गो० क० ११८
देवेसु णारयेसु य	मूला० ११६४
देवेसु देव-मणुए ❀	लद्धिसा० १४६
देवेसु देव-मणुवे ❀	गो० क० ५६२
देवेसु य इंदत्तं	जंबू० प० ११–३५८
देवेसु य णिरयाऊ	पंचसं० ५–४८०
देवेसु लोगपाला	जंबू० प० ११–३०६
देवेसु सुसमसुसमो	जंबू० प० २–१७२
देवे हारोरालिय-	आस० ति० ३२
देवेहिं भेभीसिदो वि हु	भ० आरा० ११६
देवेहिं सादिरेगो	गो० जी० ६६२
देवेहि सादिरेया	गो० जी० २६०
देवेहिं सादिरेया	गो० जी० २७८
देवोघं वेगुव्वे	गो० क० ३१४
देवो पुरिसो एक्को	अंगप० २–२१
देवो माणी संतो	भ० आरा० १५६६
देवो वि धम्मचत्तो	कत्ति० अणु० ४६३
देसकुलजम्मरूवं	मूला० ७५६
देस-कुल-जाइ-सुद्धा	आ० भ० १
देस-कुल-जाइ-सुद्धो	वसु० सा० ३८८
देस-कुल-रूवमारोग्ग-	भ० आरा० १८६१
देसगुणे देसजमो	भावति० ३७
देसजमे सुहलेस्सतिवेद-	भावति० ६६
देसणरे तिरिये तिय-	गो० क० ६४८
देसतियेसु वि एवं	गो० क० ३८२
देस त्ति य सव्व त्ति य	मूला० ४३८
देसत्थरज्जदुग्गं	दव्वस० णय० २४५
देसम्मि तम्मि णयरी	जंबू० प० ८–४६
देसम्मि तम्मि णेया	जंबू० प० ८–१६६
देसम्मि तम्मि मज्झे	जंबू० प० ६–२७
देसम्मि तम्मि मज्झे	जंबू० प० ६–१५१
देसम्मि तम्मि होइ य	जंबू० प० ८–११०
देसम्मि तिलयभूदा	जंबू० प० ८–७१
देसम्मि होइ णयरी	जंबू० प० ८–३१
देसम्मि होइ णयरी	जंबू० प० ८–६०
देसवई देसत्थो +	णयच० ७२
देसवई देसत्थो +	दव्वस० णय० २४२
देसविरदादि उवरिम-	तिलो० प० २–२७५
देसविरदे पमत्ते	गो० जी० ११
देसविरये च भंगा	पंचसं० ५–२००
देसस्स तस्स णेया	जंबू० प० ८–१३५
देसस्स तस्स णेया	जंबू० प० ८–१४४
देसस्स तस्स णेया	जंबू० प० ६–३५
देसस्स तस्स णेया	जंबू० प० ६–११८
देसस्स तस्स णेया	जंबू० प० ६–१२१
देसस्स तस्स णेया	जंबू० प० ६–११०
देसस्स तस्स णेया	जंबू० प० ६–१११
देसस्स तस्स दिट्ठा	जंबू० प० ६–१४०
देसस्स तस्स मज्झे	जंबू० प० ७–३८
देसस्स मज्झभागे	जंबू० प० ८–१४२

वाक्य	स्रोत
देसस्स मज्झभागे	जंबू० प० ८–१८८
देसस्स रायधाणी	जंबू० प० ६–४१
देसं च रज्ज दुग्गं	णयच० ७५
देसं भोच्चा हा हा	भ० आरा० ६६३
देसा दुब्भिक्खीदी-	तिलो० सा० ६८०
देसामासियसुत्तं	भ० आरा० ११२३
देसावरणएण्णोएणब्भत्थं	गो० क० १६८
देसावहि छब्भेयं	सुदखं० ६३
देसावहि परमावहि	भावसं० २६२
देसावहिवरदव्वं	गो० जी० ४१२
देसेक्कदेसविरदो	भ० आरा० २०७८
देसे तदियकसाया	गो० क० २६७
देसे तदियकसाया	गो० क० ३००
देसे पुह पुह गामा	तिलो० सा० ६७४
देसे सहस्स सत्ता य	पंचसं० ५–३६३
देसो त्ति हवे सम्मं *	गो० क० १८१
देसो त्ति हवे सम्मं *	कम्मप० १४३
देसो समये समये	लद्धिसा० १७४
देसोहिअवरदव्वं	गो० जी० ३६३
देसोहिमज्झभेदे	गो० जी० ३६४
देसोहिस्स य अवरं	गो० जी० ३७३
देसोही परमोही	अंगप० २–७०
देहअवट्ठिदकेवल-	तिलो० प० १–२३
देह कलत्तं पुत्तं	रयणसा० १२७
देह गलंतहँ सवु गलइ	पाहु० दो० १०३
देहजुदो सो भुत्ता	दव्वस० णय० १२३
देह-तव-णियम-संजम-	वसु० सा० ३४२
देहतियबंधपरमो-	भ० आरा० २१२३
देहत्थो झाइज्जइ	भावसं० ६२१
देहत्थो देहादो	तिलो० प० ६–४१
देहपमाणो णिच्चो	कल्लाणा० ३६
देहमहेली एह वढ	पाहु० दो० ६४
देहमिलिदो वि जीवो	कत्ति० अणु० १८५
देहमिलिदो वि पिच्छदि	कत्ति० अणु० १८६
देहमिलियं पि जीवं	कत्ति० अणु० ३१६
देहम्मि मच्छुलिंगं	भ० आरा० १०३३
देह-विभिएणउ णाणमउ	परम० प० १–१४
देह-विभेयइँ जो कुणइ	परम० प० २–१०२
देहसुहे पडिबद्धो	तच्चसा० ४७
देहस्स बीयणिप्पत्ति-	भ० आरा० १००३
देहस्स य णिव्वत्ती	मूला० १०५०
देहस्स लाघवं णेह-	भ० आरा० २४४
देहस्स सुक्कसोणिय	भ० आरा० १००४
देहस्सुच्चत्तं मज्झिमासु	वसु० सा० २५६
देहहँ उप्परि परम-मुणि	परम० प० २–५१
देहहँ उब्भउ जरमरणु *	परम० प० १–७०
देहहँ पेक्खिवि जरमरणु ‡	परम० प० १–७१
देहहिं उब्भउ जरमरणु *	पाहु० दो० ३४
देहहो पिक्खिवि जरमरणु ‡	पाहु० दो० ३३
देहं तेयविहीणं	रिट्ठस० ३३
देहादिउ जे परि कहिया(य)	जोगसा० १०
देहादिउ जे परि कहिया(य)	जोगसा० ११
देहादिउ जो परु मुणइ	जोगसा० ५८
देहादिचत्तसंगो	भावपा० ४४
देहादिसंगरहिओ	भावपा० ५६
देहादिसु अणुरत्ता	रयणसा० १०६
देहादी फस्संता	गो० क० ३४०
देहादी फासंता +	गो० क० ४७
देहादी फासंता +	कम्मप० ११८
देहा-देवलि जो वसइ	परम० ५० ३३
देहा-देवलि जो वसइ	पाहु० दो० ४३
देहा-देवलि देउ जिणु	जोगसा० ४३
देहा-देवलि सिउ वसइ	पाहु० दो० १८६
देहा-देहहिं जो वसइ	परम० प० १–२६
देहादो वदिरित्तो	बा० अणु० ४६
देहा य हुंति दुविहा	दव्वस० णय० १२२
देहायारपएसा	दव्वस० णय० २४
देहा वा दविणा वा	पवयणसा० २–१०१
देहि दाण चउ किं पि करि	सावय० दो० १२१
देहि वसंतु वि णवि मुणिउ	परम० प० २–१६५
देहि वसंतु वि हरि-हर वि	परम० प० १–४२
देहि वसंतें जेण पर	परम० प० १–४४
देहीणं पज्जाया ×	णयच० ३१
देहीणं पज्जाया ×	दव्वस० णय० २०३
देहीति दीणकलुणा	जंबू० प० २–१६६
देहीति दीणकलुसं	मूला० ८१८
देहुच्चो चापाणं	तिलो० सा० ८२६
देहु वि जित्थु ण अप्पणउ	परम० प० २–१४५
देहे अविणाभावी ÷	गो० क० ३४
देहे अविणाभावी ÷	कम्मप० १०४

दो दो सहस्समेत्ता तिलो० प० ७-८८
दो दो चउ-चउ-कप्पे तिलो० सा० ४८१
दो दो चंदरविं पडि तिलो० सा० ३७४
दो दो तिय इग तिय णव तिलो०प० ४-२८४२
दो दोवग्गं वारस तिलो० सा० ३४६
दो दोसुं पासेसुं तिलो० प० ४-८१३
दोधणुसहसुत्तुंगा वसु० सा० २६०
दोपक्खखेत्तमेत्तं तिलो० प० १-१४०
दोपक्खेहि मासो तिलो० प० ४-२८६
दो पण चउ इगि तिय दुग तिलो०प० ४-२६६३
दोपंचवरइगिदुग- तिलो० प० ४-२६११
दो पासेसु य दक्खिण- तिलो० प० ४-२७६२
दो पासेसुं दक्खिण- तिलो० प० ४-२५५०
दो भेदं च परोक्खं तिलो० प० १-३६
दो मिस्स कम्म खित्तय आस० ति० १३
दोमेच्छाणं खंडा जंबू० प० ७-१०६
दोरुदसुण्णछक्का तिलो० प० ४-१४४१
दो रुद्दा सत्तमए तिलो० प० ४-१४६६
दो लक्खाणि सहस्सा तिलो० प० २-६५
दो लक्खा पण्णारस- तिलो० प० ४-२८२२
दो लक्खेंहि विभाजिद- तिलो० प० ५-२६४
दो सग णभ इगि दुग चउ तिलो०प०४-२८६१
दो सग णव चउ छद्दो तिलो० प० ४-२६८०
दो सग दुग तिग णव णभ तिलो०प०४-२८७३
दोसब्भावं जम्हा दव्वस० णय० ३८
दोससहियं पि देवं कत्ति० अणु० ३१८
दोससिणक्खत्ताणं तिलो० प० ७-४७५
दोसं ण करेदि सयं कत्ति० अणु० ४४६
दोसा छुहाइ भणिया भावसं० २७३
दोसु गदीसु अ भज्जाणि कसायपा०१८३(१३०)
दो सुण्णो एक्कजिणो तिलो० प० ४-१२८७
दोसुत्तरेसु मूलं आय० ति० ५-११
दोसु थिरेसु णराणं आय० ति० ५-४
दोसु वि पव्वेसु सया कत्ति० अणु० ३५६
दोसुं पि विदेहेसुं तिलो० प० ४-२२०२
दोसेहिं तेहिं वहुगं भ० आरा० १७६६
दो हत्थमेक्ककोसो तिलो० प० ४-१५०
दोहत्थं वीसंगुलि तिलो० प० २-२३०
दोहि वि णएहि णीअं सम्मइ० ३-४६

ध

धइवदसुरेण जुत्ता जंबू० प० ४-२२७
धणदा वि व दाणेणं तिलो० प० ४-२२७८
धणु वितुहँ सुप्पहु भणइ सुप्प० दो० २०
धण-धण्ण जय-पराजय अंगप० १-५८
धण-धण्ण-दुपय-चउपय- धम्मर० १४७
धण-धण्ण-रयणणिवहो जंबू० प० ८-१०३
धण-धण्ण-वत्थदाणं बोधपा० ४६
धण-धण्ण संपरिउडो जंबू० प० ८-४२
धण-धण्ण-सुवण्णादी जंबू० प० १०-७६
धण-धण्णाइसमिद्धे रयणसा० ३०
धणबंधुविप्पहीणो धम्मर० ८५
धणवंता सुप्पहु भणइ सुप्प० दो० ४
धणसंजुयाण भरिया आय० ति० १३-३
धणिदं पि संजमंतो भ० आरा० ६०
धणु तणुतुंगो तित्थे तिलो० सा० ८०४
धणु दीणहँ गुण सज्जु(ज्ज)णहँ सुप्प० दो० ३८
धणु पट्ट वाहुचूली- जंबू० प० २-२१
धणु-फलिह-सत्ति-तोमर- जंबू० प० ४-२४७
धणुवीसडदसयकदी गो० जी० १६७
धण्णड्ढगामणिवहो जंबू० प० ६-११०
धण्णस्स संगहो वा पंचसं०३-२
धण्णा ते भयवंत वुह जोगसा० ६४
धण्णा ते भयवंता आरा० सा० ६१
धण्णा ते भयवंता भावपा० १५५
धण्णा हु ते मणुस्सा भ० आरा० २६६
धण्णोसि तुमं सुज्जस आरा० सा० ६२
धण्णोसि तुमं सुविहिद भ० आरा० ५१३
धत्ति पि संजमंतो भ० आरा० ८७०
धम्मकहाकहणेण य मूला० २६४
धम्मगुणमग्गणाहय- गो० जी० १३६
धम्मच्छि अधम्मच्छी समय०२११से०१४(ज०)
धम्मजिणिंदं पणमिय जंबू० प० ६-१
धम्मज्झाणब्भासं रयणसा० ६६
धम्मज्झाणं झायदि णाणसा० ३१
धम्मज्झाणं भणियं भावसं० ३६६
धम्मणिमित्तं घरु घरणि सुप्प० दो० २६
धम्मत्थिकायमरसं पंचत्थि० ८३
धम्मदयापरिचत्तो तिलो० प० २-२६६

धरणितले विक्खंभो	जंबू० प० ११–२१
धरणिधरा उत्तुंगा	तिलो० प० ४–३२७
धरणिधरा विण्णेया	जंबू० प० २–१३७
धरणिदे अधियाणि	तिलो० प० ३–१४८
धरणीपीठे णेया	जंबू० प० ४–२४
धरणी वि पंचवण्णा	तिलो० प० ४–३२८
धरणी वि पंचवण्णा	जंबू० प० २–१३८
धरिऊण उड्ढजंघं	वसु० सा० १६७
धरिऊण दिणमुहुत्तं	तिलो० प० ७–३४४
धरिऊण लिंगरूवं	जंबू० प० १०–७२
धरिऊण वत्थमेत्तं	वसु० सा० २७१
धरिदं जस्स ण सक्कं	पंचत्थि० १६८
धरियउ बाहिरिलिंगं	रयणसा० ६८
धवअट्ठावीस च्चिय	आय० ति० १७–१६
धवलब्भकूडसरिसा	जंबू० प० ६–४२
धवलहरपुंडरीसुं	जंबू० प० ६–१०८
धवलससिणिम्मलेहिं	जंबू० प० ६–१०६
धवलादवत्तचामर-	जंबू० प० ५–२६
धवलादवत्तजुत्ता	तिलो० प० ४–१८२३
धवला सहस्समुग्गय	तिलो० सा० ६०८
धवलु वि सुरमउडंकियउ	सावय० दो० १७४
धंधइ पडियउ सयल जगि	जोगसा० ५२
धंधइ पडियउ सयलु जगु *	परम० प० २–१२१
धंधइँ पडियउ सयलु जगु*	पाहु० दो० ७
धाउचउक्कस्स पुणो	णियमसा० २५
धाउम्मि दिट्ठपुव्वे	आय० ति० ५–१५
धाउविहीणत्तादो	तिलो० प० ३–१३१
धादइगंगारत्तदु	तिलो० सा० ६३५
धादइतरुण ताणं	तिलो० प० ४–२५६६
धादइ-पुक्खरदीवा	तिलो० सा० ६३४
धादइसंडदिसासुं	तिलो० प० ४–२४८८
धादइसंडपवण्णिद-	तिलो० प० ४–२७८१
धादइसंडपवण्णिद-	तिलो० प० ४–२८०६
धादइसंडप्पहुदिं	तिलो० प० ५–२७५
धादइसंडप्पहुदिं	तिलो० प० ५–२७६
धादइसंडे दीवे	तिलो० प० ४–२५७१
धादइसंडे दीवे	तिलो० प० ४–२७८२
धादइसंडो दीओ	तिलो० प० ४–२५२५
धादइसंडो दीवो	जंबू० प० ११–२
धादगिपुक्खरमेरू	जंबू० प० ११–१८
धादगिसंडस्स तहा	जंबू० प० ११–३४
धादगिसंडे दीवे	जंबू० प० ११–६
धादगिसंडो दीवो	जंबू० प० ११–४३
धादीदूदणिमित्ते	मूला० ४४५
धादुगदं जह कणयं	भ० आरा० १८४३
धादुमयंगा वि तहा	तिलो० प० ४–३८२
धादो हवेज्ज अण्णो	भ० आरा० ५८७
धारणगहणसमत्था	मूला० ८३२
धारंधयारगुविलं	मूला० ८६५
धारंधसार(यार)गहिले	धम्मर० १८८
धारेत्थ सव्वसमकदि-	तिलो० सा० ५३
धावदि गिरिणदिसोदं	भ० आरा १७२३
धावदि पिंडणिमित्तं	लिंगपा० १३
धावंति सत्थहत्था	भावसं० ५७४
धिइणासो मइणासो	रिट्ठस० ३६
धित्तेसिमिंदियाणं	मूला ७३३
धिदिइट्ठिविसयतुल्ला	जंबू० प० ११–३१२
धिदिखेडएहि इंदिय-	भ० आरा० १४००
धिदिधणिदबद्धकच्छो	भ० आरा० २०३
धिदिधणियबद्धकच्छा	भ० आरा० १५३८
धिदिदेवीए समाणो	तिलो० प० ४–२३३१
धिदिधणिदणिच्छिदमदी	मूला० ८७७
धिदिबलकरमादहिदं	भ० आरा० ५०५
धिदिवम्मिएहिं उवसम-	भ० आरा० १४०५
धिद्धी मोहस्स सदा	मूला० ७३०
धिब्भवदु लोगधम्मं	मूला० ७१८
धीरत्तणमाहप्पं	भ० आरा० १६४५
धीरपुरिसचिण्हाइं	भ० आरा० ५६८
धीरपुरिसपण्णत्तं	भ० आरा० १६७६
धीरपुरिसेहिं जं आ-	भ० आरा० १४८४
धीरेण वि मरिदव्वं	मूला० १००
धीरो वइरागपरो	मूला० ८६४
धुदकोसुंभयवत्थं	गो० जी० ५६
धुवअद्धुवरूवेण य	गो० जी० ४०१
धुववड्ढीवड्ढंतो	गो० क० २५३
धुवसिद्धी तित्थयरो	मोक्खपा० ६०
धुवहारकम्मवग्गण-	गो० जी० ३८४
धुवहारस्स पमाणं	गो० जी० ३८७
धुव्वंतचारुचामर-	जंबू० प० ५–१११
धुव्वंतधयवडाया	तिलो० प० ३–६०

धुव्वंतधयवडाया	तिलो० प० ४-१६५३
धुव्वंतधयवडाया	तिलो० प० ४-१८१०
धुव्वंतधयवडाया	तिलो० प० ८-३६७
धुव्वंतधयवडाया	तिलो० प० ८-४४३
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ४-७६
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ४-६४
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ६-२०
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ६-५४
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ६-१३१
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ७-५५
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ८-३०
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ८-१३६
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ६-१६३
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० १०-१००
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ११-६२
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ११-८३
धुव्वंतधयवडाया	जंबू० प० ११-१२६
धूमप्पहाए हेट्ठिम-	तिलो० प० १-१५६
धूमम्मि थोवथोवं	आय० ति० १६-४
धूमलयथेरसुक्कं	आय० ति० १-१२
धूमस्स य साण खरो	रिट्ठस० २१६
धूमंतं पजलंतं	रिट्ठस० ८०
धूमं दट्ठूण तहा	जंबू० प० १३-७८
धूमायंतं पिच्छइ	रिट्ठस० ५५
धूमुक्कपडणपहुदी	तिलो० प० ४-६१०
धूमो धूलीवज्जं	तिलो० प० ४-१५४८
धूमो सुयालयाणं	रिट्ठस० २०७
धूमो सीहधयाणं	रिट्ठस० २१७
धूयमायरिवहिणि अराणा	भावसं० १८५
धूलिगड्डुक्कट्ठाणे	गो० जी० २६३
धूली णेहुत्तुप्पिदगत्ते	भ० आरा० १८२३
धूलीसाला-गोउर-	तिलो० प० ४-७४०
धूलीसाला-गोउर-	तिलो० प० ४-७४२
धूलीसालाण पुढं	तिलो० प० ४-७४४
धूवउ खेवइ जिणवरहँ	सावय० दो० १८६
धूवघडा णवणिहिणो	तिलो० प० ४-८७६
धूवघडा विएणेया	जंबू० प० ५-१६
धूवण-वमण-विरेयण-	मूला० ८३८
धूवेण सिसिरयरधवल-	वसु० सा० ४८८
धूवेहिं सुगंधेहिं	तिलो० प० ३-२२६

न देखो ण

[प्राकृत भाषा में "नो णः सर्वत्र" (२-४२) इस प्राकृतप्रकाश-व्याकरणके सूत्रानुसार सर्वत्र 'न' का 'ण' होता है, परन्तु आचार्य हेमचन्द्रके 'वादौ' सूत्र (१-२२६) के अनुसार आदि के 'न' को विकल्पसे 'ण' होता है और यह नियम उन शब्दों से सम्बन्ध रखता है जो 'संस्कृतभव' हैं—देशी प्राकृतमें तो वे 'न' को असंभव बतलाते हैं; जैसा कि 'देशीनाममाला' (५-६३) की टीका से प्रकट है। इसीसे 'ण' के स्थान पर विकल्परूपसे 'न' के प्रयोग भी कुछ ग्रन्थप्रतियों में पाये जाते हैं, जिन्हें 'ण' में ही लेलिया गया है। उन्हें पुनः 'न' में देने से व्यर्थकी कलेवर-वृद्धि होगी यह समझ कर ही 'न' के प्रकरण में उनकी पुनरावृत्ति नहीं की गई है। अतः पाठकों को चाहिये कि जो वाक्य किसी ग्रन्थप्रतिमें 'न' से प्रारम्भ हुआ मिले उसे वे 'ण' के प्रकरणमें देखें।]

प

पइडीपमादमइया	पवयणसा० ३-२४क्षे०८(ज०)
पउमदहादिपसिद्धा	जंबू० प० १३-१४६
पउमदहादु दिसाए	तिलो० प० ४-२०५
पउमदहादो पच्छिम-	तिलो० प० ४-२५२
पउमदहादो पणुसय-	तिलो० प० ४-२५६
पउमदहे पुव्वमुहा	तिलो० प० ४-१६८६
पउमदहपउमोवरि	तिलो० प० ४-१६३६
पउमदहाउ उत्तर-	तिलो० प० ४-[illegible]
पउमदहाउ दुगुणो	तिलो० प० ४-[illegible]
पउमदहादु उत्तर-	तिलो० प० ४-[illegible]
पउमदहादु चउगुण-	तिलो० प० ४-[illegible]
पउमपहपउमराजा	तिलो० प० ४-[illegible]
पउमप्पभो त्ति णामो	जंबू० प० [illegible]
पउमप्पह-वसुपुज्जा	तिलो० सा० [illegible]

पडिइंदाण चउण्हं	तिलो० प० ३-१७३
पडिइंदाणं सामाणियाण	तिलो० प० ८-२८६
पडिइंदाणं सामाणियाण	तिलो० प० ८-५३२
पडिइंदाणं सामाणियाण	तिलो० प० ८-५५२
पडिइंदादिचउण्हं	तिलो० प० ३-१००
पडिइंदादिचउण्हं	तिलो० प० ३-११८
पडिइंदादिचउण्हं	तिलो० प० ३-१३३
पडिइंदादी देवा	तिलो० प० ८-३९३
पडिइंदाभिधयस्स य	तिलो० प० ८-३१९
पडिइंदा सामाणिय	तिलो० प० ६-६८
पडिइंदा सामाणिय	तिलो० प० ७-६०
पडिइंदा सामाणिय	तिलो० प० ८-२१५
पडिकज्जं जइ णामं	आय० ति० २१-१३
पडिकमओ पडिकमणं	मूला० ६१४
पडिकमणणामधेये	णियमसा० ९४
पडिकमणणिज्जुत्ती पुण	मूला० ६३१
पडिकमणपहुदिकिरियं	णियमसा० १५२
पडिकमणं कयदोसणिरा-	अंगप० ३-१७
पडिकमणं देवसियं	मूला० ६१३
पडिकमणं पडिसरणं	समय० ३०६
पडिकमणं पडिसरणं	तिलो० प० ९-५१
पडिकमिदव्वं दव्वं	मूला० ६१६
पडिकूलमाइ काउं	भावसं० ५६३
पडिकूलो तह चलियो	आय० ति० २-४
पडिकूविदे विसण्णो	भ० आरा० १६२३
पडिखंडगपरिणामा	लद्धिसा० ४५
पडिगहणमुच्चठाणं	वसु० सा० २२४
पडिचरये आपुच्छय	भ० आरा० ५१८
पडिचोदणासहणदाए	भ० आरा० ३८९
पडिचोदणासहणवाय-	भ० आरा० २६५
पडिजग्गणेहिं तणु-	वसु० सा० ३३९
पडिणीगमंतराए +	गो० क० ८००
पडिणीगमंतराए +	कम्मप० १४४
पडिणीयमंतराये +	पंचसं० ४-२००
पडिणीयाई हेऊ	पंचसं० ४-२१२
पडितित्थं वरमुणिणो	अंगप० १-४९
पडितित्थं सहिऊण हु	अंगप० १-५३
पडिदिवसमेक्कवीथिं	तिलो० सा० ३७३
पडिदिवसं जं पावं	भावसं० ४३२
पडिदिसगोउरसंखा	तिलो० सा० ४९२

पडिदिसयं णियसीसे	तिलो० सा० २१६
पडिदेससयलपुग्गल-	भावपा० ३५
पडिपडिमं एक्केक्का	तिलो० सा० २५५
पडिपदमणंतगुणिदा	लद्धिसा० ५०६
पडिपुण्णजोव्वणगुणो	सम्मइ० १-४३
पडिवुज्झिऊण सुत्तुट्ठिओ-	वसु० सा० ४९८
पडिवुद्धिऊण चइऊण	वसु० सा० २६८
पडिबोहिओ हु संतो	धम्मर० १७४
पडिभोगम्मि असंते	भ० आरा० १४३२
पडिमाणं अग्गेसुं	तिलो० प० ३-१३८
पडिमापडिवण्णा वि हु	भ० आरा० २०७१
पडिमासमेक्कखमणेण	वसु० सा० ३५४
पडिय मरियेक्कमेक्कूण-	गो० क० ५८२
पडियस्स य रोइस्स य	रिट्ठस० २५१
पडिरूवकायसंफा- *	मूला० ३७५
पडिरूवकायसंफा- *	भ० आरा० १२१
पडिलिहियअंजलिकरो	मूला० ५३६
पडिलेहणेण पडिले-	भ० आरा० ९७
पडिलेहिऊण सम्मं	मूला० १७०
पडिवज्जजहण्णदुगं	लद्धिसा० १९९
पडिवडवरगुणसेढी	लद्धिसा० ३७४
पडिवदि किण्हे पुस्से	तिलो० सा० ४१७
पडिवयआइदिणाइं	रिट्ठस० १५७
पडिवरिसं आसाढे	तिलो० सा० ९७६
पडिवाए वासरादो	तिलो० प० ७-२१५
पडिवादगया मिच्छे	लद्धिसा० १९२
पडिवाददुगवरवरं	लद्धिसा० १८६
पडिवादादीतिदयं	लद्धिसा० १९७
पडिवादी देसोही	गो० जी० ३७४
पडिवादी पुण पढमा	गो० जी० ४४६
पडिवादो च कदिविधो	कसायपा० ११६ (६३)
पडिवीण खेत्तपट्टावरेहिं	वसु० सा० ३९८
पडिसमयगपरिणामा	लद्धिसा० ४४
पडिसमयधणे वि पदं	गो० क० ९०५
पडिसमयमसंखगुणं +	लद्धिसा० ७५
पडिसमयमसंखगुणं +	लद्धिसा० ३९७
पडिसमयमसंखगुणं	लद्धिसा० ४९९
पडिसमयमसंखगुणा	लद्धिसा० २८२
पडिसमयं असुहाणं	लद्धिसा० ४४९
पडिसमयं अहिगदिणा	लद्धिसा० ५१८

‡ गाथा नं० १७३ (क) मुद्रित प्रतिमें नहीं है, बंबईकी लिखित प्राचीन प्रतिमें पाई जाती है और इस गाथा का निर्दिष्ट स्थानपर होना जरूरी भी है।

पणभूमिभूसिदाओ	तिलो० प० ४-८३७
पणमह चउवीसजिणे	तिलो० प० ४-२
पणमह चउवीसजिणे	तिलो० प० ४-५१३
पणमह चउवीसजिणे	तिलो० प० ६-७७
पणमह जिणवरवसहं	तिलो० प० ६-७८
पणमंतसुरासुरमउलि-	रिट्ठस० १
पणमं ति मुत्तिमेगे	भावसं० ४६५
पणमामि जिणं वीरं	सुदखं० ३८
पणमिय वीरजिणिंदं	दंसणसा० १
पणमिय सिरसा णेमिं *	कम्मप० १
पणमिय सिरसा णेमिं *	गो० क० १
पणमिय सुरेंदपूजिय-	आस० ति० १
पणमेच्छखयरसेढिसु	तिलो० प० ४-१६०५
पणय दुय पणय पणयं	पंचसं० ५-२६६
पणयं च भिण्णमासो	छेदपिं० ३३१
पणयं दस सत्तधियं	मूला० ११२१
पणयालसयसहस्सा	भावसं० ६६१
पणयालीसमुहुत्ता	पंचसं० १-२०६
पणरसवासे रज्जं	णंदी० पट्टा० १६
पणरससोलसपणपण्ण-	सुदखं० ५५
पणरह वामकरम्मि य	रिट्ठस० १५६
पणलक्खेसु गदेसुं	तिलो० प० ४-५७४
पणवण्णब्भहियाइं	तिलो० प० ४-११२६
पणवण्णवस्सलक्खा	तिलो० प० ४-१२६८
पणवण्णं पणवण्णं	तिलो० सा० ६६५
पणवण्णं पण्णासं	आस० ति० २०
पणवण्णं वेउव्विय-	सिद्धंत० ५०
पणवण्णा उत्तरदो	जंबू० प० ७-८१
पणवण्णाधियछस्सय-	तिलो० प० ५-५४
पणवण्णा पण्णासा	पंचसं० ४-७७
पणवण्णा पण्णासा	गो० क० ७८६
पणवण्णासा कोसा	तिलो० प० ४-७५३
पणवरिसेएहं दुमणीणं	तिलो० प० ७-५४८
पणविग्घे विवरीयं	गो० क० २०६
पणविय सुरसेणणुयं	भावसं० १
पणवीसजोयणाइं	तिलो० प० ४-२०६४
पणवीसजोयणाइं	तिलो० प० ४-२१८५
पणवीसजोयणाणि	तिलो० प० ६-६
पणवीसजोयणाणि	तिलो० प० ६-२०७
पणवीसब्भिय रुंदा	तिलो० प० ४-१६२५
पणवीसब्भहियसयं	तिलो० प० ४-८८८
पणवीसब्भहियसयं	तिलो० प० ४-११६६
पणवीसब्भहियसयं	तिलो० प० ४-२०४८
पणवीसब्भहियाणं	तिलो० प० ४-१५१३
पणवीससहस्साइं	तिलो० प० ४-१२६६
पणवीससहस्साधिय-	तिलो० प० २-१३५
पणवीससहस्साधिय-	तिलो० प० २-१४७
पणवीससहस्साहिय-	तिलो० प० ४-५७२
पणवीससहस्सेहिं	तिलो० प० ४-२०२०
पणवीसं असुराणं *	मूला० १०६२
पणवीसं असुराणं *	जंबू० प० ११-१३६
पणवीसं असुराणं *	तिलो० सा० २४६
पणवीसं जगुतीसं	पंचसं० ४-२५६
पणवीसं लक्खाणि	तिलो० प० ८-२४६
पणवीसाधियछस्सय-	तिलो० प० ४-७७२
पणवीसाधियछस्सय-	तिलो० प० ४-८४६
पणवीसाधियछस्सय-	तिलो० प० ४-८७६
पणवीसाधियतिसया	तिलो० प० ४-१२६७
पणवीसाहियछस्सय-	तिलो० प० ४-८७०
पणवीसे तिगिणउदे	गो० क० ७७७
पण सग दो छत्तिय दुग	तिलो० प० ४-२६६०
पणसट्ठिसहस्साणि	तिलो० प० ४-८०६
पणसट्ठि-सहस्साणि	तिलो० प० ४-२८६५
पणसट्ठी दोण्णिसया	तिलो० प० २-६८
पण सत्त णव य बारस	छेदपिं० ३०६
पणसत्ता वीसुदया	पंचसं० ५-२२४
पणसयगुणतणुवादं	तिलो० सा० १४२
पणसयजोयणरुंदं	तिलो० प० ४-१६३६
पणसयजोयणरुंदं	तिलो० प० ४-१६८७
पणसयदलं तदंतो	तिलो० सा० ५८६
पणसय पणसय-सहियं	तिलो० सा० ६०६
पणसय पण्णासयं	तिलो० सा० ८३८
पणसयपमाणगामं	तिलो० प० ४-१२६७
पणसंखसहस्साणि	तिलो० प० ७-१६४
पणसंवताडदाडिम-	जंबू० प० १-५०
पणसंवताडदाडिम-	जंबू० प० २-७७
पणसंवतालदाडिम-	जंबू० प० ३-२०३
पणहत्तरि चत्तारि	तिलो० प० ४-२८
पणहत्तरिपरिमाणा	तिलो० प० २-२६१
पणिदरसमोयणेण य ×	पंचसं० १-५४

पएणवणा भाविभूदे	दव्वस० णय० २१७
पएणवणिज्जा भावा	गो० जी० ३३३
पएणवणिज्जा भावा	सम्मइ० २–१६
पएणासमएसु चरिमो	तिलो० प० ४–१४७८
पएणासवरणेण जावं	रिट्ठस० १७१
पएणासहस्स विलक्खा	तिलो० सा० २२८
पएणाए घित्तव्वो	समय० २६७
पएणाए घित्तव्वो	समय० २६८
पएणाए घित्तव्वो	समय० २६६
पएणाधियदुमयाणि	तिलो० प० ७–२७५
पएणाधियपंचसया	तिलो० प० ४–२४७६
पएणाधियपंचसया	तिलो० प० ४–२४६०
पएणाधियसयदंडं	तिलो० प० ६–६३
पएणारसगुणिदाणं	छेदपिं० १६
पएणारसठाणेसुं	तिलो० प० ८–४६७
पएणारसठाणेसुं	तिलो० प० ८–४७२
पएणारसठाणेसुं	तिलो० प० ८–४८२
पएणारसठाणेसुं	तिलो० प० ८–४८७
पएणारसमुणतीसं	गो० क० ११७
पएणार-सयसहस्सा	जंबू० प० १०–८७
पएणारसलक्खाइं	तिलो० प० ४–२५१८
पएणारसलक्खाइं	तिलो० प० ४–२५६१
पएणारसलक्खाणि	तिलो० प० २–१४०
पएणारसलक्खाणि	तिलो० प० ४–२८१६
पएणारसेहिं अहियं	तिलो० प० ४–७२५
पएणासकोडिलक्खा	तिलो० प० ४–५५३
पएणासकोसउदया	तिलो० प० ४–१६१६
पएणासकोसवासा	तिलो० प० ४–१६१२
पएणासचउसयाणि	तिलो० प० ८–२८६
पएणासजुदेक्कसया	तिलो० प० ८–३५६
पएणासजोयणाइं	तिलो० प० ४–२४२
पएणासजोयणाइं	तिलो० प० ४–२७१
पएणासजोयणाणि	तिलो० प० ४–१६७७
पएणासजोयणाणि	तिलो० प० ४–१७८
पएणासवारछक्कदि	गो० क० ३६४
पएणासब्भहियाणि	तिलो० प० २–२६८
पएणासब्भहियाणि	तिलो० प० ४–११२७
पएणासमेकदालं	तिलो० सा० ३१२
पएणासवएणढिजुदो	तिलो० प० ४–१०१६
पएणाससमधिरया	जंबू० प० २–६१
पएणाससहस्साणिं	तिलो० प० ४–११६४
पएणाससहस्साणिं	तिलो० प० ४–११७३
पएणाससहस्साधिय	तिलो० प० ४–२२
पएणाससहस्साधिय	तिलो० प० ४–५६५
पएणाससहस्साधिय	तिलो० प० ४–१२६३
पएणाससहस्साधिय	तिलो० प० ४–१२६४
पएणासं पणुवीसं	तिलो० प० ८–३६०
पएणासं लक्खाणिं	तिलो० प० ८–२४४
पएणासा अवगाहा	जंबू० प० ३–१७
पएणासा कोदंडा	तिलो० प० २–२४१
पएणासाधियछस्सय	तिलो० प० ४–५७५
पएणासाधियछस्सय	तिलो० प० ४–४६५
पएणासाधियदुसया	तिलो० प० ७–२०४
पएणासा विक्खंभो	जंबू० प० ७–७८
पएणासुत्तरतिसया	तिलो० प० ६–१३
पएणासकोसउदओ	तिलो० प० ४–१८३५
पएणेकारं छक्कदि	गो० क० ३६४
पएहक्खरेसु तिसु जे	आय० ति० २–२
पएहक्खरे सुविमले	आय० ति० २१–५
पएहम्मि थिरा भरिया	आय० ति० ११–२
पएहस्स दूदवयणाट्ठ-	अंगप० १–५७
पएहाणं वायरणं	अंगप० १–५६
पएहायवग्गपढमक्ख-	आय० ति० १६–६
पएहे कगाइबहुले	आय० ति० १३–८
पएहे कगाइबहुले	आय० ति० २०–५
पएहे थिरायबहुले	आय० ति० १५–७
पएहोदयतिहिवेला-	आय० ति० १६–२
पति(दि)भत्तिविहीण सदी	रयणसा० ८१
पत्तइँ दाणइँ दिएणइण	सावय० दो० ६६
पत्तइँ दिज्जइ दाणु जिय	सावय० दो० ७०
पत्तपडियं ण दूसइ	भावसं० ६८
पत्तम्मि अ मणुअत्ते	रिट्ठस० ३
पत्तस्स दायगस्स य	भ० आरा० २२१
पत्तस्सेस सहावो	भावसं० ५१४
पत्तहँ जिणउवएसियहँ	सावय० दो० ८०
पत्तहँ दिएणउ थोवडउ	सावय० दो० ६०
पत्तं णिय-घर-दारे	वसु० सा० २२५
पत्तं तह दायारो	वसु० सा० २१६
पत्तं विणा च दाणं	रयणसा० ३१
पत्ताइं पडंति तहा	धम्मर० ३२

पत्तिय तोडहि तडतडह — पाहु० दो० १५८
पत्तिय तोडि म जोइया — पाहु० दो० १६०
पत्तिय पाणिउ दब्भ तिल — पाहु० दो० १५६
पत्तेक्कइंदयाणं — तिलो० प० ३–७१
पत्तेक्कमड्ढलक्खं — तिलो० प० ३–१६०
पत्तेक्कमाउसंखा — तिलो० प० ३–१७२
पत्तेक्कमेक्कलक्खं — तिलो० प० ३–१४६
पत्तेक्कमेक्कलक्खं — तिलो० प० ३–१५७
पत्तेक्करसा वारुणि — तिलो० प० ५–३०
पत्तेक्कं अडसमये — तिलो० प० ४–२६५५
पत्तेक्कं कोट्ठाणं — तिलो० प० ४–८६४
पत्तेक्कं चउसंखा — तिलो० प० ४–७२२
पत्तेक्कं जिणमंदिर- — तिलो० प० ४–१६६७
पत्तेक्कं णयरीणं — तिलो० प० ४–२४५१
पत्तेक्कं तह वेदी — तिलो० प० ७–७०
पत्तेक्कं ते दीवा — तिलो० प० ४–२७२३
पत्तेक्कं दाराणं — तिलो० प० ८–३६८
पत्तेक्कं दुतडादो — तिलो० प० ४–२४००
पत्तेक्कं दुतडादो — तिलो० प० ४–२४०४
पत्तेक्कं पणहत्था — तिलो० प० ८–६३६
पत्तेक्कं पायाला — तिलो० प० ४–२४२८
पत्तेक्कं पुव्वावर- — तिलो० प० ४–२३०३
पत्तेक्कं रिक्खाणिं — तिलो० प० ७–४७४
पत्तेक्कं रुक्खाणं — तिलो० प० ३–३४
पत्तेक्कं सव्वाणं — तिलो० प० ४–१८७४
पत्तेक्कं सारस्सद- — तिलो० प० ८–६३८
पत्ते जिणिंदधम्मे — रिट्ठस० ४
पत्तेयदेहा वणप्फइ — मूला० ११६६
पत्तेयपदा मिच्छे — गो० क० ८५७
पत्तेयबुद्धतित्थयर- — गो० जी० ६३०
पत्तेयमथिरमसुहं × — पंचसं० ४–२८०
पत्तेयमथिरमसुहं × — पंचसं० ५–७३
पत्तेयरसा चत्तारि * — मूला० १०७६
पत्तेयरसा चत्तारि * — जंबू० प० ११–६४
पत्तेयरसा जलही — तिलो० प० ५–२६
पत्तेय-सयं-बुद्धा — सिद्धभ० ७
पत्तेयसरीरजुयं + — पंचसं० ५–१६१
पत्तेयसरीरजुयं + — पंचसं० ५–१६२
पत्तेयं पत्तेयं — जंबू० प० ११–२०५
पत्तेयं पत्तेयं — जंबू० प० ११–२६८

पत्तेयं रयणादी — तिलो० प० २–८७
पत्तेयागुरुणिमिणं — पंचसं० ५–४६४
पत्तेयाणं आऊ — कत्ति० अणु० १६१
पत्तेयाणं उवरिं — गो० क० ८५६
पत्तेया वि य दुविहा — कत्ति० अणु० १२८
पत्तोवएससारो — णाणसा० ६
पत्तो सलायपुरिसो — तिलो० प० ४–६८
पत्थतुलचुलयएगप्पहुदी — तिलो० सा० १०
पत्थरमया वि दोणी — भावसं० ५४०
पत्थं हिदयाणिट्ठं — भ० आरा० ३५७
पत्थं हिदयाणिट्ठं — भ० आरा० ३५८
पथवासपिंडहीणा — तिलो० सा० ३७७
पदगतमवइकउत्तर? — जंबू० प० १२–२०
पददलहिदलंस(संक)लिदं — तिलो० प० २–८३
पदमक्खरं च एक्कं — भ० आरा० ३६
पदमेगेण विहीणं — तिलो०सा० १६४
पदमेत्ते गुणयारे — तिलो० सा० २३१
पदराहय विलवहलं — तिलो० सा० १७२
पद(ह)लहदवेकपादा-(?) — तिलो० प० २–८४
पदवग्गं चयपहिदं — तिलो० प० २–७६
पदवग्गं पदरहिदं — तिलो० प० २–८१
पदिठवणासमिदी वि य — मूला० ३२५
पदिसुदिणामो कुलकर — तिलो० प० ४–४२४
पदिसुदिमरणादु तदो — तिलो० प० ४२६
पप्पा इट्ठे विसये — पवयणसा० १–६५
पप्फुल्लमउलियाए — आय० ति० ५–१४
पब्भट्टबोधिलाभा — भ० आरा० १२८६
पब्भारकंदरेसु अ — मूला० ७८६
पभणइ पुरओ एयस्स — वसु० सा० १०
पभणेइ तिला दिअहं — रिट्ठस० ५८
पभपल्ललादिपरदो — तिलो० प० ८–१०३
पमत्तेदरेसु उदया — पंचसं० ५–३५०
पमदादिचउण्हजुदी — गो० जी० ७०१
पम्मस्स य सट्ठाणसमु- — गो० जी० ५२७
पम्मा सुपम्मा महापम्मा — तिलो० प० ४–२२०६
पम्मा सुपम्मा महापम्मा * — तिलो० सा० ६८१
पम्मुक्कस्संसमुदा — गो० जी० ५२०
पम्हा पउमसवण्णा — पंचसं० १–१८४
पयकमलजुयलविणमिय- — आय० ति० १२
पयडीए(ए) सिणयवलिणे — भावसं० ७१

परियम्मसुत्तपुव्वग-	सुदखं० २२
परियम्मं पंचविहं	अंगप० २-१
परियाइगमालोचिय	भ० आरा० २०३३
परिवज्जिऊण पिच्छं	दंसणसा० ३४
परिवज्जिय सुहुमाणं	कत्ति० अणु० १५६
परिवड्ढिदो(ड्ढिदा)वधाणो	भ० आरा० २६६
परिवाजगाण णियमा	मूला० ११७३
परिवारइड्ढिसक्कार-	मूला० ६८१
परिवारवल्लभाओ	तिलो० प० ८-३१४
परिवारसमाणा ते	तिलो० प० ३-६८
परिवारा देवीओ	तिलो० प० ५-२१६
परिवेढेदि समुद्दो	तिलो० प० ४-२७१५
परिसत्तयजेट्ठाऊ	तिलो० प० ३-१५३
परिस-रस-घाण-चक्खू-	छेदस० ४६
परिसह-दवग्गि-तत्तो	आरा० सा० ४६
परिसहपरचक्कभिओ	आरा०सा० ४५
परिसहभडाण भीया	आरा० सा० ४४
परिसहसुहडेहिं जिय ।	आरा० सा० ४१
परिसुद्धं सायारं	सम्मइ० २-११
परिसुद्धो णयवाओ	सम्मइ० ३-४६
परिहर असंतवयणं	भ० आरा० ८२३
परिहरइ तरुणगोट्ठी	भ० आरा० १०८४
परिहर छज्जीवणिकाय-	भ० आरा० ७७६
परिहर तं मिच्छत्तं	भ० आरा० ७२५
परिहरि कोहु खमाइ करि	सावय० दो० १३१
परिहरि पुत्तु वि अप्पणउ	सावय० दो १४६
परिहरिय रायदोसे	आरा० सा० ७१
परिहाणिवड्ढिवज्जिय	जंबू० प० ७-६३
परिहारस्स जहण्णं	लद्धिसा० २००
परिहारे आहारय	सिद्धंत० ६०
परिहारे बंधतियं	गो० क० ७२७
परिहीसु ते चरंते	तिलो० प० ७-४५६
परु जाणंतु वि परम-मुणि	परम० प० २-१०८
परु पीडिव धणु संचियइ	सुप्प० दो० ३०
परुसवयणादिगेहिं	भ० आरा० १५१२
परुसं कडुयं वयणं	भ० आरा० ८३२
परु हम्मइँ धणु संचियइँ	सुप्प० दो० ३१
पलिदोवमट्ठमंसे	तिलो० प० ४-४२०
पलिदोवमदसमंसो	तिलो० प० ४-५०१
पलिदोवमद्धमाऊ	तिलो० प० ३-१५८
पलिदोवमद्धमाऊ	तिलो० प० ४-१२५६
पलिदोवमद्धसमधिय	तिलो० प० ४-१२५६
पलिदोवमसंतादो	लद्धिसा० १५६
पलिदोवमसंतादो	लद्धिसा० १६०
पलिदोवमस्स पादे	तिलो० प० ४-१२५५
पलिदोवमं दिवड्ढं	तिलो० प० ८-५३४
पलिदोवमाउजुत्तो	तिलो० प० ६-६१
पलिदोवमाउजुत्तो	तिलो० प० ६-८६
पलिदोवमाउठिदिया	जंबू० प० ३-८३
पलिदोवमाऊगा ते	जंबू० प० २-१६६
पलिदोवमाणि आऊ	तिलो० प० ८-५१८
पलिदोवमाणि पण णव	तिलो० प० ८-५२४
पलिदोवमाणि पण णव	तिलो० प० ८-५२७
पलिदोवमाणि पंच य	तिलो० प० ५३०
पलिदोवमाव(उ)जुत्तो	तिलो० प० ६-८६
पलियंकणिसेज्जगदा	मूला० ७६५
पलियंकणिसेज्जगदो	मूला० २८१
पलियंकासणदीहा	जंबू० प० ५-५१
पलिहाणं दाराणं	तिलो० प० ४-२०५६
पल्लवणं विंदंगुल-	तिलो० सा० ७८
पल्लछिदिमेत्तपल्ला-	तिलो० सा० ८
पल्लट्ठभाग पल्लं	मूला० १११८
पल्लट्ठमं तु सिट्ठे	तिलो० सा० ७६२
पल्लट्ठिदिदो उवरिं	लद्धिसा० १२०
पल्लतियं उवहीणं	गो० जी० २५१
पल्लतुरियादिचयपल्लंत-	तिलो० सा० ८१४
पल्लद्ध(ट्ठ)दि भागेहिं (?)	तिलो० प० ६-३४
पल्लद्धे बोलीणे	तिलो० प० ४-५६६
पल्लपमाणा उट्ठिदि	तिलो० प० ५-१६४
पल्लसमऊणकाले	गो० जी० ४१०
पल्लसमुद्दे उवमं	तिलो० प० १-६३
पल्लस्स ट्ठमभाए	सुदखं० ३
पल्लस्स तस्स माणं	लद्धिसा० १२१
पल्लस्स पादमद्धं	तिलो० प० ४-१२७७
पल्लस्स संखभागं	तिलो० प० ७-५४६
पल्लस्स संखभागं *	लद्धिसा० ३६
पल्लस्स संखभागं *	लद्धिसा० ३६२
पल्लस्स संखभागं	लद्धिसा० २२६
पल्लस्स संखभागं	लद्धिसा० १८०
पल्लस्स संखभागं	लद्धिसा० ४०२

पंचक्खा वि य तिविहा	कत्ति० अणु० २१६
पंचक्खे चउलक्खा	तिलो० प० ४-२६६
पंचगयणट्ठअट्ठा	तिलो० प० ७-२५२
पंचगयणेक्कदुगचउ-	तिलो० प० ४-२७०५
पंच चउक्के वारस	कसायपा० ३६
पंच चउठाणछक्का	तिलो० प० ७-५६५
पंचचउतियदुगाणि	तिलो० प० ८-२८८
पंच चदु सुण्ण सत्त य	आस० ति० ११
पंच च्चिय कोदंडा	तिलो० प० २-२२५
पंचच्छसत्तजोयण-	भ० आरा० ४०१
पंच छ सत्त हत्थे	मूला० ११५
पंच जिणिंदे वंदंति	तिलो० प० ४-१४१२
पंचट्ठपण्णसहस्सा	तिलो० प० ४-११३६
पंचणमोक्कारमयं	धम्मर० १५२
पंचणमोयारेहिं	वसु० सा० ४५७
पंच णव दोण्णि अट्ठा- ऽ	मूला० १२२३
पंच णव दोण्णि अट्ठा- ऽ	पंचसं० २-४
पंच णव दोण्णि अट्ठा- *	गो० क० २६
पंच णव दोण्णि अट्ठा- *	कम्मप० १-७
पंच णव दोण्णि अट्ठा- ×	गो० क० २२
पंच णव दोण्णि अट्ठा- ×	कम्मप० ३६
पंच णव दोण्णि अट्ठा- +	गो० क० ३८.
पंच णव दोण्णि अट्ठा- +	कम्मप १०६
पंच णव दोण्णि छव्वी- ÷	पंचसं० २-५
पंच णव दोण्णि छव्वी- ÷	गो० क० ३५
पंच णव दोण्णि छव्वी- ÷	कम्मप० १०६
पंचण्हं णिद्दाणं	गो० क० ७२
पंचतिचउव्विहाइं	छेदपिं० ३२४
पंचतितिएक्कदुगणभ-	तिलो० प० ४-२३७३
पंचतियचउविहेहिं ‡	पंचसं० १-१३५
पंचतियचहुविहेहिं ‡	गो० जी० ४७५
पंचतियं वारसयं	जंबू० प० ११-४६
पंचत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७-२३२
पंचत्तालसहस्सा	तिलो० प० ७-३५०
पंचत्तालं लक्खं	तिलो० प० ८-१८
पंचत्तीस-सहस्सा	तिलो० प० ७-३४७
पंचत्तीस-सहस्सा	तिलो० प० ८-६३२
पंचत्तीसं लक्खा	तिलो० प० ६-७४
पंचत्तीसं लक्खा	तिलो० प० ८-३४
पंचत्तीसं लक्खा	तिलो० प० ८-२६४
पंचत्थिकायकहणं	अंगप० १-६१
पंचत्थिकायछज्जीव-	मूला० ३६६
पंचदहे वि तिहीओ	रिट्ठस० १६६
पंचदुगअट्ठसत्ता	तिलो० प० ७-३२६
पंचधणुस्सयतुंगा	जंबू० प० ६-१४२
पंचधणुस्सयतुंगा	जंबू० प० ४-१६८
पंच पण गयण दुग चउ	तिलो० प० ७-३८३
पंचपलिदोवमाइं	जंबू० प० ११-२६६
पंचबलकाउ(पुलगाउ)अंगो-	तिलो०प० ४-६२१
पंच वलद्द ण रक्खयइं	पाहु० दो० ४४
पंचम उगुतीसदिमा	छेदपिं० २३६
पंचमओ वि तिकूडो	तिलो० प० ४-२२०६
पंचमकालवसाणे	जंबू० प० २-१८४
पंचमखिदिए तुरिमे	तिलो० प० २-३०
पंचमखिदिणारइया	तिलो० प० २-१६६
पंचमखिदिपरियंतं	तिलो० प० २-२८५
पंचमचरिमे पक्खड-	तिलो० सा० ८५६
पंचमणाणसमग्गं	जंबू० प० ४-२८७
पंचमभागपमाणा	तिलो० सा० १६७
पंचमयं गुणठाणं	भावसं० ३५०
पंचमयं गुणठाणं	भावसं० ५६६
पंचमयं संठाणं	पंचसं० ४-४०१
पंचमवत्थुचउत्थप्पाहुड-	अंगप० २-४४
पंचमसुरेण जुत्ता	जंबू० प० ४-२२६
पंचमहव्वदगुत्तो	मूला० ५६०
पंचमहव्वदभट्ठो	छेदपिं० २५४
पंचमहव्वयकालओ	णाणसा० ५
पंचमहव्वयजुत्ता	कत्ति० अणु० १९५
पंचमहव्वयजुत्ता	कल्लाणा० २६
पंचमहव्वयजुत्ता	बोधपा० ४४
पंचमहव्वयजुत्तो	मोक्खपा० ३३
पंचमहव्वयजुत्तो	सुत्तपा० २०
पंचमहव्वयजुत्तो	भ० आरा० ३१६
पंचमहव्वयतुंगा	तिलो० प० १-२
पंचमहव्वयधरणं	भावसं० १२५
पंचमहव्वयधारी	मूला० ८७१
पंचमहव्वयमणसा	बा० अणु० ६२
पंचमहव्वयरक्खा	भ० आरा० ७२३
पंचमहव्वयसहिदा	तिलो० प० ८-६५०
पंचमहव्वयसुद्धो	जंबू० प० १३-१५८

पंचसहस्सा छावियि-	तिलो० प० ७-१६६
पंचसहस्सा जोयण-	तिलो० प० ४-२८४०
पंचसहस्सा जोयण-	तिलो० प० ७-१६०
पंचसहस्साणि दुवे	तिलो० प० ७-२७१
पंचसहस्साणि पुढं	तिलो० प० ४-११३४
पंचसहस्सा तिसया	तिलो० प० ४-१६२६
पंचसहस्सा तिसया	तिलो० प० ७-२७२
पंचसहस्सा दसजुद-	तिलो० प० ७-१६७
पंचसहस्सा दुसया	तिलो० प० ७-४८३
पंचसहस्सा[णि] पण-	तिलो० प० ७-४३३
पंचसहस्सा[णि] पण-	तिलो० प० ७-४४७
पंचसहस्सा वेसय-	गो० क० ५०४
पंचसहस्सेक्कसया	तिलो० प० ७-२०१
पंचसंघादणामं	कम्मप० ७१
पंचसु कल्लाणेसुं	तिलो० प० ३-१२२
पंचसु चऊरण वीसा	कसायपा० ३५
पंचसु ठाणेसु जिणे(णो)	जंबू० प० १३-६४
पंचसु थावरकाए	पंचसं० ४-६
पंचसु थावरकाए	पंचसं० ४-२५
पंचसु थावरकाए	पंचसं० ५-४२८
पंचसु पज्जत्तेसु य	पंचसं० ५-२६३
पंचसु भरहेसु तहा	जंबू० प० २-२०२
पंचसु महव्वएसु य	छेदपिं० १८५
पंचसु महव्वदेसु य	मोक्खपा० ७५
पंचसु मेरूसु तहा	वसु० सा० ५०८
पंचसु वरिसे[सु] एदे(गदे)	तिलो०प० ७-५३७
पंचसु वरिसेसु गदे	तिलो० प० ७-५३३
पंचहँ णायकु वसि करहु	परम० प० २-१४०
पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया[१]	पंचगु० भ० ३
पंचहिं बाहिरु णेहडउ	पाहु० दो० ४५
पंचाइल्ला संता	पंचसं० ५-४६५
पंचाचारसमग्गा	णियमसा० ७३
पंचाचारसमग्गो	जंबू० प० १३-१५६
पंचाणउदिसहस्सं	तिलो० प० ७-४११
पंचाणउदिसहस्सं	तिलो० प० ७-६१०
पंचाउदिसहस्सा	तिलो० प० ७-३०७
पंचाणउदिसहस्सा	जंबू० प० १०-४
पंचाणउदिसहस्सा	तिलो० प० ७-४१२
पंचाणउदिसहस्सा	जंबू० प० १०-२४
पंचाणउदीभागं	जंबू० प० १०-२६
पंचाण मेलिदाणं	तिलो० प० ४-१४८२
पंचाणुव्वय जो धरइ	सावय० दो० ११
पंचाणुव्वयधारी	कत्ति० अणु० ३३०
पंचादिपंचबंधो	गो० क० ६५८
पंचादी अट्ठ पचयं	तिलो० प० २-६६
पंचादी वेहिं जुदा	मूला० ११२०
पंचावत्थजुओ सो	दव्वस० णय० ६०
पंचावत्था देहे	दव्वस० णय० ६१
पंचासा तिण्णि सया	जंबू० प० ३-६
पंचासीदिसहस्सा	तिलो० प० ४-१२१६
पंचाहुट्ठिगिरज्जू	तिलो० सा० १३७
पंचिंदिएसु ओघं	गो० क० ११४
पंचिंदिओ असण्णी	पंचसं० ४-४३१
पंचिंदियतिरियाणं	पंचसं० ५-१३५
पंचिंदियतिरिएसुं	पंचसं० ५-१४४
पंचिंदियसंजुत्तं *	पंचसं० ४-२६३
पंचिंदियसंजुत्तं *	पंचसं० ५-८६
पंचिंदिया असण्णी	छेदस० १०
पंचुत्तरमेक्कसयं	तिलो० प० १-२६०
पंचुत्तरसत्तसया	तिलो० सा० ३७२
पंचुंबरसहियाइं	वसु० सा० २०४
पंचुंबरसहियाइं	वसु० सा० ५७
पंचुंबरहं णिवित्ति जसु	सावय० दो० १०
पंचुंबरादि खायदि	छेदपिं० ३३३
पंचेक्कारसबावीस-	गो० क० २७७
पंचेक्कारसबावीस-	गो० क० २८३
पंचेदे पुरिसवरा	जंबू० प० १-१३
पंचेव अणुव्व(व)याइं	वसु० सा० २०६
पंचेव अत्थिकाया	भ० आरा० १७११
पंचेव अत्थिकाया	मूला० ५४
पंचेव उदयठाणा	पंचसं० ५-१०७
पंचेव जोयणसदा	जंबू० प० २-३७
पंचेव जोयणसया	जंबू० प० ४-१२५
पंचेव जोयणसया	जंबू० प० ६-५८
पंचेव जोयणसया	जंबू० प० ६-६
पंचेव जोयणसया	जंबू० प० ११-२२
पंचेवणुव्वयाइं	चारित्तपा० २२
पंचेव मूलभावा	भावति० २८
पंचेव य रासीओ	जंबू० प० १२-८८
पंचेव सहस्साइं	तिलो० प० ७-१६३

पाणिवह मुसावादं	मूला० ७८०
पाणिवह मुसावादं	मूला० १०२४
पाणिवहेहि महाजस	भावपा० १३३
पाणिविमुत्ता लंगलि	भावसं० ३००
पाणीए जंतुवहो	मूला० ४१७
पाणेहिं चदुहिं जीवदि	पंचत्थि० ३०
पाणेहिं चदुहिं जीवदि	पवयणसा० २-५५
पाणं वि पाडिहेरं	भ० आरा० ८२२
पादट्ठाणे सुण्णं	तिलो० प० ४-५२
पादालस्स दिसाए	तिलो० प० ४-२४५८
पादालाणं परिदा(दो)	तिलो० प० ४-२४३३
पादुक्कारो दुविहो	मूला० ४३४
पादूणं जोयणायं	तिलो० प० ४-५१
पादे कंटयमादिं	भ० आरा० २०५७
पादासणियमरहिए	छेदस० २१
पादोसिय अधिकरणिय	भ० आरा० ८०७
पादोसियवेरत्तिय-	मूला० २७०
पापविसोतिअपरिणा- *	मूला० ३७६
पापविसोत्तियपरिणा- *	भ०आरा० १२५
पाएस्सागमदारं	भ० आरा० ८४६
पामिच्छे परियट्टे	मूला० ४२३
पायच्छित्तं आलो-	मूला० ६३०
पायच्छित्तं कमसो	छेदपिं० १२१
पायच्छित्तं छेदो	छेदपिं० ३
पायच्छित्तं ति तवो	मूला० ३६१
पायच्छित्तं दिण्णं	छेदपिं० २११
पायच्छित्तं दिण्णं	छेदपिं० २१२
पायच्छित्तं विणयं	मूला० ३६०
पायच्छित्तं सोही	छेदस० २
पायंति पज्जलंतं	धम्मर० ५७
पायारगोउरट्टल-	तिलो० सा० ७०६
पायारगोउरदा-	जंबू० प० ११-२४८
पायारदेउलाण य	आय० ति० १०-१५
पायारपरिउडाणि य	जंबू० प० ८-८६
पायारपरिगदाइं	तिलो० प० ४-२५
पायारवलहिगोउर-	तिलो० प० ४-१६५२
पायारवलहिगोउर-	जंबू० प० ३-५६
पायारसंपरिउडा	जंबू० प० ३-६३
पायारसंपरिउडा	जंबू० प० ८-६१
पायारसंपरिउडो	जंबू० प० ७-३६
पायारंतब्भागे	तिलो० सा० ८९५
पायाराणं उवरिं	तिलो० सा० ८८७
पायालतले णेया	जंबू० प० ४-२३
पायालपीढवसहरह-	जंबू० प० ११-२७६
पायालम्मि य इट्ठा	जंबू० प० ६-१२२
पायालस्स विभागे	जंबू० प० १०-६
पायालंते णियणिय-	तिलो० प० ४-२४४५
पायालाणं णेया	जंबू० प० १०-३५
पाये रुद्धविमुक्के	आय० ति० ११-७
पायोपगमणमरणं	भ० आरा० २६
पारदपरियट्टणयं	अंगप० ३-८
पारद्धा जा किरिया *	णयच० ३४
पारद्धा जा किरिया *	दव्वस० णय० २०७
पारद्धिउ परणिग्घिणउ	सावय० दो० ४६
पारसियभिल्लबव्बर-	धम्मर० ८१
पारं अंचदि परदेस-	छेदपिं० २८२
पारंपज्जाएण दु	बा० अणु० ५६
पारावइमोराणं	तिलो० प० ८-२५१
पालकरज्जं सट्ठिं	तिलो० प० ४-१५०४
पावइ आईउखघाइएसु	आय० ति० ६-१५
पावइ दोसं मायाए	भ० आरा० १३८४
पावजुए चलवेरिणि	आय० ति० १६-३
पावजुए पडिकूले	आय० ति० ६-६
पावजुयदिट्ठमज्झे	आय० ति० १८-२३
पावपओगा मणवचि-	भ० आरा० १८२३
पावपयोगासवदार-	भ० आरा० १८३६
पावहिं दुक्खु महंतु तुहुँ	परम० प० २-११६
पावं करेदि जीवो	भ० आरा० १७४७
पावं खवइ असेसं	भावपा० १०६
पावंति केइ दुक्खं	धम्मर० १२
पावंति केइ धम्मादो	धम्मर० १३
पावंति भावसवणा	भावपा० ६८
पावं मलं ति भण्णइ	तिलो० प० १-१७
पावं पयइ असेसं	भावपा० ११४
पावागिरिवरसिहरे	णिव्वा० भ० १३
पावारंभणिवित्ती	रयणसा० ६७
पाविय जिणपासादं	तिलो० प० ३-२२०
पाविय धणो वि वज्जिय	आय० ति० ८-१
पावेण अधोलोयं	जंबू० प० ११-१०५
पावेण जणो एसो	कत्ति० अणु० ४७

पिंडत्थं च पयत्थं	वसु० सा० ४५८
पिंडपदा पंचेव य	गो० क० ८४८
पिंडं उवहिं सेज्जं ×	भ०आरा० २८९
पिंडं सेज्जं उवधि ×	मूला० ६०७
पिंडो उवधिं सेज्जा	भ० आरा० २६२
पिंडोवधिसेज्जाए	भ० आरा० ६०६
पिंडोवधिसेज्जाओ	छेदपिं० १६०
पिंडोवधिसेज्जाओ	मूला० ९१६
पिंडो वुच्चइ देहो	भावसं० ६२०
पीऊसणिज्झरणिहं जिणचंद-	तिलो०प०४-६३८
पीओसि थणच्छीरं	भावपा० १८
पीओ लोढय सरिसो	आय० ति० १-६
पीढत्तयस्स कमसो	तिलो० प० ४-७६६
पीढस्स चउदिसासुं	तिलो० प० ४-१८६६
पीढस्स चउदिसासुं ※	तिलो० प० ४-१६०१
पीढस्स चउदिसासुं ※	तिलो० प० ४-१६०६
पीढस्सुवरिं चित्तं	जंबू० प० ५-४३
पीढं मेरुं कप्पिय	भावसं० ४३७
पीढाण उवरि माणत्थंभा	तिलो० प० ४-७७३
पीढाणं परिहीओ	तिलो० प० ४-८६७
पीढाणं वित्थारं	तिलो० प० ४-७६
पीढाणीए दोण्णं	तिलो० प० ८-२७६
पीढाणीयस्स तहा	जंबू० प० ११-२८४
पीढोवरि बहुमज्झे	तिलो० प० ४-१८९७
पीढोवरिम्मि भागे	तिलो० प० ४-१६०२
पीढो सच्चइपुत्तो	तिलो० प० ४-१४३८
पीणत्थणिदुवदणा	भ० आरा० १०५५
पीदिमणा णंदमणा	जंबू० प० ११-२६४
पीदिंकर आइच्चं	तिलो० प० ८-१७
पीदी भए य सोगे	भ० आरा० १४४१
पीयारुणकसिणासिया	आय० ति० ४-१८
पीलंति जहा इक्खू	धम्मर० ४७
पीलिज्जंते केई	तिलो० प० २-३२३
पुक्खरगहणे काले	गो० जी० ३१२
पुक्खरवरउदधीदो	जंबू० प० १२-२१
पुक्खरवरद्धदीवे	तिलो० प० ४-२८०७
पुक्खरसयंभुरमणा-	तिलो० सा० ३२२
पुक्खरसिंधु(धू)भयधणं(ण)	तिलो० सा० ३६०
पुक्खरिणीपहुदीणं	तिलो० प० ४-३२४
पुग्गलकम्मणिमित्तं	समय०८६चे० ७ (ज०)
पुग्गलकम्मं कोहो	समय० १२३
पुग्गलकम्मं मिच्छं	समय० ८८
पुग्गलकम्मं रागो	समय० १९९
पुग्गलकम्मादीणं	दव्वसं० ८
पुग्गलदव्वं मो(मु)त्तं	णियमसा० ३७
पुग्गलभेदविभिण्णं	जंबू० प० १३-८१
पुग्गलमज्झत्थोयं(त्थेअं)	दव्वस० णय० १२७
पुग्गलविवाइदेहो-	गो० जी० २१५
पुग्गलसीमेहि विदो	जंबू० प० १२-५१
पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ	जोगसा० ५५
पुग्गलु छव्विहु मुत्तु वढ	परम० प० २-१६
पुग्गलु जीवइँ सहु गणिय	सावय० दो० २०५
पुच्छिय पलायमाणं.	तिलो० प० २-३२२
पुज्जणविहिं च किच्चा	कत्ति० अणु० ३७६
पुज्जाउवयरणाइ य	भावसं० ४२७
पुज्जो वि णरो अवमा-	भ० आरा० १३७२
पुट्ठट्ठी चउवीसं	तिलो० प० ४-१५७५
पुट्ठं सुणेइ सद्दं	पंचसं० १-६८
पुट्ठिमंसु जइ छड्डियउ	सावय० दो० ४१
पुट्ठीए होंति अट्ठी	तिलो० प० ४-३३५
पुट्ठो वि य णियएहिं	वसु० सा० ३००
पुढवि-जल-तेउ-वाऊ	दव्वसं० ११
पुढवि-दग-तेऊ-वाऊ-	मूला० ४१६
पुढवि-दगागणि-पवणे	भ० आरा० ६०८
पुढवि-दगागणि-मारुद-	गो० जी० १२४
पुढवि-दगागणि मारुद-	मूला० १०१६
पुढवि-दगागणि-मारुय-	मूला० १०२७
पुढविप्पहुदिवणप्फदि-	तिलो० प० ५-३०६
पुढविंदयमेगूणं	तिलो० सा० १६५
पुढवीआइचउक्के	तिलो० प० ५-२६५
पुढवीआऊतेऊ-	गो० क० २३५
पुढवीआऊतेऊ-	गो० जी० १८१
पुढवी आऊ तेऊ	मूला० २०५
पुढवी आऊ तेऊ	भ० आरा० २०६६
पुढवी आऊ य तहा	मूला० ४७२
पुढवीआदिचउण्हं	गो० जी० १६६
पुढवीकायिगजीवा	मूला० १००७
पुढवीजलग्गिवाऊ	कत्ति० अणु० १२४
पुढवीजलग्गिवाऊ-	कल्लाण० १६
पुढवी जलं च छाया ※	गो० जी० ६०१

पुत्ते कलत्ते सजणम्मि मित्ते	तिलो० प० २-३६६
पुत्तो वि भाआ जाओ	कत्ति० अणु० ६४
पुध पुध चामिस्सो वा	छेदपिं० २०४
पुप्फक्खयेहिं भरिदा	जंबू० प० १३-११६
पुप्फप्पइण्णएसु य	जंबू० प० ११-३४५
पुप्फवदि पुप्फवदिए	छेदपिं० ३४३
पुप्फवदी जदि णारी	छेदपिं० ३५१
पुप्फवदी जदि विरदी	छेदपिं० २६८
पुप्फंजलिं खिवित्ता	वसु० सा० २२८
पुप्फिदकमलवणेहिं	तिलो० प० ४-१३१
पुप्फिदपंकजपीढा	तिलो० प० ४-२३१
पुप्फुत्तराभिधाणा	तिलो० प० ४-५२३
पुप्फुल्लकमलकुवलय-	जंबू० प० ८-१०७
पुरगामपट्टणाइसु	वसु० सा० २१०
पुरगामवट्टणादी	तिलो० सा० ८०२
पुरदो गंतूण बहिं	तिलो० सा० २८८
पुरदो पासादद्दुगं	तिलो० सा० १००७
पुरदो महादहाणं	तिलो० प० ४-१६१२
पुरदो सुरकीडणमणि-	तिलो० सा० १००५
पुरि(र)ंदो धारिदऽचेलय-	छेदपिं० २६७
पुरिमचरिमा दु जम्हा	मूला० ६३०
पुरिमावलीपवण्णिद-	तिलो० प० ८-६७
पुरिसज्जायं तु पडुच्च	सम्मइ० १-५४
पुरिसत्तादिणिदाणं	भ० आरा० १२२४
पुरिसत्तादीणि पुणो	भ० आरा० १२२६
पुरिसपिया पुंकंता	तिलो० सा० २७६
पुरिसम्मि पुरिससद्दो	सम्मइ० १-३२
पुरिसस्स अट्ठवासं	पंचसं० ४-४०६
पुरिसस्स अप्पसत्थो	भ० आरा० १०८०
पुरिसस्स उत्तणवकं	लद्धिसा० २६३
पुरिसस्स दु वीसंभं	भ० आरा० ६४४
पुरिसस्स पावकम्मो-	भ० आरा० १६१०
पुरिसस्स पुणो साधू	भ० आरा० १७६६
पुरिसस्स य पढमट्ठिदि	लद्धिसा० ४५६
पुरिसस्स य पढमठिदी	लद्धिसा० २६१
पुरिसं कोहे कोहं	पंचसं० ५-४८६
पुरिसं चउसंजलणं ※	पंचसं० ३-२६
पुरिसं चउसंजलणं ※	पंचसं० ५-३२०
पुरिसं चदुसंजलणं ※	पंचसं० ५-४६३
पुरिसं चदुसंजलणं ※	गो० क० १०५
पुरिसं वधमुवणेदि त्ति	भ० आरा० ६७७
पुरिसादीणुच्छिट्ठं	लद्धिसा० २६८
पुरिसादो लोहगयं	लद्धिसा० २६६
पुरिसायारपमाणु जिय	जोगसा० ६४
पुरिसायारो अप्पा	मोक्खपा० ८४
पुरिसा वरमउडधरा	तिलो० प० ४-३५८
पुरिसिच्छियाहिलासी	समय० ३३६
पुरिसिच्छिसंढवेदो-	गो० जी० २७०
पुरिसित्थीवेदजुदं	तिलो० प० ४-४१४
पुरिसित्थीवेदजुदा	तिलो० प० ८-६६७
पुरिसेण वि सहियाए	सीलपा० २६
पुरिसे दु अणुवसंते	लद्धिसा० ३२२
पुरिसे सव्वे जोगा	पंचसं० ४-४६
पुरिसो जह को वि [य] इह	समय० २२४
पुरिसोदएण चडिदस्सित्थी-	लद्धिसा० ६०२
पुरिसोदयेण चडिदे	गो० क० ४८४
पुरिसोदयेण चडिदे	गो० क० ५१३
पुरिसो मक्कडिसरिसो	भ० आरा० १३६६
पुरिसो वि जो ससुत्तो	सुत्तपा० ४
पुरुगुणभोगे सेदे ※	पंचसं० १-१०६
पुरुगुणभोगे सेदे ※	गो० जी० २७२
पुरुगुणभोगे सेदे ※	कम्मप० ६४
पुरुमहमुदारुरालं +	पंचसं० १-६३
पुरुमहमुदारुरालं +	गो० जी० २२६
पुरुसा पुरुसुत्तमसप्पुरुस- ÷	तिलो० प० ६-३६
पुरुसा पुरुसुत्तमसप्पुरुस- ÷	तिलो० सा० २५६
पुव्वकदकम्मसडणं ×	मूला० २४५
पुव्वकदकम्मसडणं ×	भ० आरा० १८४७
पुव्वकद(य)कम्मसडणं ×	भावसं० ३४४
पुव्वकदमज्झकम्मं	भ० आरा० १६२६
पुव्वकदमज्झपावं	भ० आरा० १४२४
पुव्वग(क)दपावगुरुगो	तिलो० प० ४-६१६
पुव्वज्जिदाहि सुचरिद-	तिलो० प० ८-३७६
पुव्वठियं(य) खवइ कम्मं	रयणसा० ५६
पुव्वण्हस्स तिजोगो	लद्धिसा० ६४६
पुव्वण्हे अवरण्हे	तिलो० प० ५-१०२
पुव्वण्हे मज्झण्हे	कत्ति० अणु० ३५४
पुव्वदिसाए चूलिय-	तिलो० प० ४-१८३४
पुव्वदिसाए जसस्सदि-	तिलो० प० ४-२७७२
पुव्वदिसाए पढमं	तिलो० प० ५-२०२

पुव्वायरियकयाइं	दंसणसा० ४९
पुव्वायरियकयाणि य	छेदस० ९२
पुव्वायरियणिबद्धा	भ० आरा० २१६६
पुव्वावरआयामो	तिलो० प० ८-६०७
पुव्वावरदिब्भाए	तिलो० प० २-२५
पुव्वावरदिब्भायं	तिलो० प० ५-१३६
पुव्वावरदो दीहा	तिलो० प० ४-१०१
पुव्वावरपणिधीए	तिलो० प० ४-२७२८
पुव्वावरभाएसुं	तिलो० प० ४-१८५४
पुव्वावरभाएसुं	तिलो० प० ४-२१०१
पुव्वावरभाएसुं	तिलो० प० ४-२१२६
पुव्वावरभागेसुं	तिलो० प० ४-२१९७
पुव्वावर-विच्चालं	तिलो० प० ७-९
पुव्वावर-वित्थिण्णा	जंबू० प० ६-१२१
पुव्वावरायदाणं	जंबू० प० १-५९
पुव्वावरायदाणं	जंबू० प० १-६१
पुव्वावरेण जोयण-	तिलो० प० ४-२२१८
पुव्वावरेण णेया	जंबू० प० ४-१०
पुव्वावरेण तीए	तिलो० प० ८-६५२
पुव्वावरेण दीहा	जंबू० प० २-५
पुव्वावरेण दीहा	जंबू० प० ३-५
पुव्वावरेण परिही	तिलो० सा० १२१
पुव्वावरेण लोगो	जंबू० प० ४-४
पुव्वावरेण सिहरिप्प-	तिलो० प० ४-२४८६
पुव्वावरेसु जोयण-	तिलो० प० ४-१८१७
पुव्वाहिमुहा तत्तो	तिलो० प० ४-१३४७
पुव्विल्लबंधजेट्ठा	लद्धिसा० ५१६
पुव्विल्लयरासीणं	तिलो० प० २-१६१
पुव्विल्लवेदिअद्धं	तिलो० प० ५-१९७
पुव्विल्लाइरिएहिं	तिलो० प० १-२८
पुव्विल्लेसु वि मिलिदे	गो० क० ४७९
पुव्वी पच्छा संथुदि	मूला० ४४६
पुव्वुत्तणवविहाणं	वसु० सा० २९७
पुव्वुत्ततवगुणाणं	भ० आरा० १४५६
पुव्वुत्तरदक्खिणदिस	तिलो० सा० ५१६
पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमासु	वसु० सा० २१२
पुव्वुत्तरदिब्भाए	तिलो० प० ८-६१६
पुव्वुत्तरदिब्भाए	तिलो० प० ८-६३५
पुव्वुत्तवेइमज्झे	वसु० सा० ४०५
पुव्वुत्तासगदभावा	णियमसा० ५०

पुव्वुत्तसयलदव्वं	णियमसा० १६७
पुव्वुत्ता छत्तीसा	पंचसं० १-३९
पुव्वुत्ता जे उदया	पंचसं० ५-४३
पुव्वुत्ता जे भावा	भावसं० ६१५
पुव्वुत्ताणण्णदरे	भ० आरा० १५७
पुव्वुत्ताणि तणाणि य	भ० आरा० २०३६
पुव्वुत्ता वि य तीसा	पंचसं० १-३७
पुव्वुत्तासवभेया	बा० अणु० ६०
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-१५
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-२२
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-३३
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-४७
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-५४
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ८-६७
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-६१
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-६८
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू प० ९-१०१
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१०९
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-११५
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-११८
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१२३
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१२६
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१३३
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१३५
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१४४
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१४९
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१५२
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१६८
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१६९
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१७३
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू० प० ९-१७७
पुव्वेण दु पायालं	जंबू० प० १०-३
पुव्वेण मालवंतो	जंबू० प० ६-२
पुव्वेण होइ तत्तो	जंबू० प० ८-७६
पुव्वेण हो[इ] तिमिसा	जंबू० प० २-८८
पुव्वेण होंति णेया	जंबू० प० १०-३०
पुव्वे विमलं कूलं	तिलो० सा० ९५७
पुव्वोदिदकूडाणं	तिलो० प० ५-१५४
पुव्वोदिदणामजुदा	तिलो० प० ५-१७२
पुस्सट्ठारहदियहे	रिट्ठस० २३२

व

वइसणग्रत्थिरगमणं	तिलो० प० ४-३७६
वइसणग्रत्थिरगमणं	तिलो० प० ४-३६६
वइसणग्रत्थिरगमणं	तिलो० प० ४-४०७
वच्चरवेलादक्खुज(?)	तिलो० प० ८-३८८
वज्झदि कम्मं जेण दु	दव्वसं० ३२
वज्झब्भंतरगंथे	भावसं० १०१
वज्झब्भंतरमुवहिं	मूला० ४०
वत्तीसट्ठावीसं	तिलो० प० २-२२
वत्तीसट्ठावीसं	तिलो० प० ८-१४६
वत्तीसट्ठावीसं	तिलो० प० ८-१७६
वत्तीसट्ठावीसं	तिलो० सा० ४५६
वत्तीसदहवराणं	जंबू० प० ११-३२
वत्तीसपुव्वलक्खा	तिलो० प० ४-५६१
वत्तीसवारसेक्कं	तिलो० प० ४-१४२०
बत्तीस वेसहस्सा	तिलो० सा० २३५
वत्तीसभेद तिरियाणं	तिलो० प० ५-३१०
वत्तीसमट्ठवीसं	तिलो० सा० १४६
वत्तीसलक्खजोयण-	तिलो० प० ८-३८
वत्तीसवरमुहाणि य	जंबू० प० ४-२५१
वत्तीससदसहस्सा	जंबू० प० १२-२३
वत्तीससयसहस्सा	जंबू० प० ११-२१६
वत्तीससहस्साइं	जंबू० प० ११-२६७
वत्तीससहस्साणं	जंबू० प० ३-६०
वत्तीससहस्साणं	जंबू० प० ७-४५
वत्तीससहस्साणि	तिलो० प० ४-२१७५
वत्तीससहस्साणि	तिलो० प० ४-१८८१
वत्तीससहस्साणि	तिलो० प० ८-३११
वत्तीसं अडदालं	गो० जी० ६२७
वत्तीसं आसादे	पंचसं० ५-३५०
वत्तीसं किर कवला	भ० आरा० २११
वत्तीसं च सहस्सा	जंबू० प० ११-१२२
वत्तीसं चिय लक्खा	तिलो० प० ८-३७
वत्तीसं तीसं दस	तिलो० प० ३-७६
वत्तीसं देवेंदा	जंबू० प० ११-२२८
वत्तीसं लक्खाणि	तिलो० प० २-१२२
वत्तीसा अमरिंदा	भावसं० ४५२
वत्तीसा किर कवला	मूला० ३५०
वत्तीसा खलु वलया	जंबू० प० १२-२५
वत्तीसा चालीसा	जंबू० प० ६-१३६
वत्तीसोदयभंगा	पंचसं० ५-३४३
वद्धउ तिहुवणु परिभमइ	पाहु० दो० १६०
वद्धस्स वंधणे च ण	भ० आरा० १७५३
वद्धं चिय करजुअलं	रिट्ठस० ३६
वद्धाउगा मणुस्सा	जंबू० प० ६-१७३
वद्धाउगा सुदिट्ठी	वसु० सा० २४६
वद्धाउं पडिभणिदं	तिलो० प० ८-५४०
वद्धाणं च सहावं	तिलो० प० ६-६५
वम्महदप्पुरघाइं(?)	जंबू० प० ४-२६१
वम्हपकुव्व(ज्ज)णामा	तिलो० प० ४-१५७६
वम्हम्मि होदि सेढी	तिलो० प० ८-६६१
वम्हाछक्के पम्मा	भावति० ७३
वम्हादीचत्तारो	तिलो० प० ८-२०७
वम्हाभिधाणकप्पे	तिलो० प० ८-३३७
वम्हा-विण्हु-महेसर-	जंबू० प० ६-१६६
वम्हिंदम्मि सहस्सा	तिलो० प० ८-२२१
वम्हिंदयम्मि पडले	तिलो० प० ८-५००
वम्हिंदयादिदुदयं(?)	तिलो० प० ८-१५२
वम्हिंदलंतविंदे	तिलो० प० ८-४१४
वम्हिंदादिचउक्के	तिलो० प० ८-४३८
वम्हिंदे चालीसं	तिलो० प० ८-२२६
वम्हिंदे दुसहस्सा	तिलो० प० ८-३१२
वम्हुत्तरस्स दक्खिण-	तिलो० प० ८-३४३
वम्हुत्तरहेट्ठुवरिं	तिलो० प० १-२०६
वम्हुत्तराभिधाणा	तिलो० प० ८-४६६
वम्हे सीदिसहस्सा	तिलो० प० ८-१८६
वलगोविंदसिहामणि-	तिलो० सा० १
वलणामा अच्चिणिया	तिलो० प० ८-३०६
वलदेवचक्कवट्टी-	मूला० २५०
वलदेववासुदेवा	जंबू० प० ७-६८
वलदेववासुदेवा	तिलो० प० ४-२२८४
वलदेव-हरिगणाणं	जंबू० प० २-२११
वलदेवाण हरीणं	तिलो० प० ८-२६२
वलदेवा विजयाचल-	तिलो० सा० ८२७
वलभद्दणामकूडे	तिलो० सा० ६२४
वलभद्दणामकूडे	तिलो० प० ४-११७६
वलभद्दणामकूडो	तिलो० प० ४-११६५
वलयाए वलयाए	जंबू० प० १२-२४

वलरिद्धी तिविहाओ	तिलो० प० ४-१०५६
वलविक्कममाहप्पं	जंवू० प० ७-१४३
वलवीरियमासेज्ज य	मूला० ६६७
वलसोक्खणाणदंसण	भावपा० १४८
वलि किउ माणुस-जम्मडा	परम० प० २-१४७
वलि-गंध-पुप्फ-अक्खय-	जंवू० प० ५-८२
वलितिलएहिं जुवरेहिं(?) य	वसु० सा० ४२१
वलिधूवदीवणिवहा	जंवू० प० ६-१८६
वलियसरियम्मि पाए	आय० ति० ६-७
वलिया हुंति कसाया	ढाढसी० ६
वहलतिभागपमाणा	तिलो० प० ६-११
वहलत्ते तिसयाणं	तिलो० प० ३-२६
वहिणिग्गएण उत्तं	भावसं० १६२
वहिरत्थे फुरियमणो	मोक्खपा० ८
वहिरब्भंतरकिरिया-	दव्वसं० ४६
वहिरब्भंतरगंथविमुक्को	रयणसा० १५२
वहिरब्भंतरगंथा	तच्चसा० १०
वहिरब्भंतरतवसा	भावसं० ५०८
वहिरंतरगंथचुवा(आ)	भावसं० १२३
वहिरंतरप्पभेयं	रयणसा० १४८
वहिरंधकारमूया	जंवू० प० २-१६३
वहिरा अंधा काणा	तिलो० प० ४-१५३७
वहुअच्छरपरिपरिया	जंवू० प० ७-१०७
वहुअच्छरेहिं जुत्ता	जंवू० प० ११-१२२
वहुआरंभपरिग्गह-	धम्मर० १६
वहुकव्वडेहिं रम्मो	जंवू० प० ६-११६
वहुकुसुमरेणुपिंजर-	जंवू० प० ३-१४
वहुगदरं वहुगदरं	कसायपा० ६१ (८)
वहुगं पि सुदमधीदं	मूला० ६३३
वहुगाणं संवेगो	भ० आरा० २४३
वहुगुणसहस्सभरिया	भ० आरा १४६४
वहुगे वहुविहभेदे	जंवू० प० १३-७५
वहुच्छिदं णिवडंतं	रिट्ठस० ५३
वहुजम्मसहस्सविसा-	भ० आरा० १७६२
वहुजादिजूहिकुज्जय-	जंवू० प० ३-२०६
वहुठिदिखंडे तीदे	लद्धिसा० ५६८
वहुणट्टगीयसाला	धम्मर० ६१
वहुतरुरमणीयाइं	तिलो० प० ४-२२२४
वहुतससमण्णिदं जं	कत्ति० अणु० ३२८
वहुतिव्वदुक्खसलिलं	भ० आरा० १७६६

वहुतोरणदारजुदा	तिलो० प० ४-१७०६
वहुदिव्वगामसहिदा	तिलो० प० ४-१३४
वहुदुक्खभायणं कम्म-	रयणसा० ११८
वहुदुक्खावत्ताए	भ० आरा० १७६०
वहुदेवदेविणिवहा	जंवू० प० ६-१४६
वहुदेवदेविपउरा	जंवू० प० १२-११०
वहुदेवदेविपुण्णा	जंवू० प० ४-१७६
वहुदेवदेविपुण्णो	जंवू० प० ८-४
वहुदेवदेविसहिदा	तिलो० प० ४-१६६
वहुपरिवारेहिं जुदा	तिलो० प० ४-१६५०
वहुपरिवारेहिं जुदो	तिलो० प० ४-१७१०
वहुपरिसाडणमुज्झिअ	मूला० ४७५
वहुपावकम्मकरणा	भ० आरा० १३०५
वहु वहुविहखिप्पेसु य	जंवू० प० १३-७१
वहु वहुविहं च खिप्पा *	गो० जी० ३०६
वहु वहुविहं च खिप्पा *	अंगप० २-६४
वहुभवणसंपरिउडा	जंवू० प० ६-१४५
वहुभव्वजणसमिद्धी	जंवू० प० ८-६२
वहुभागे समभागो	गो० क० १६५
वहुभागे समभागो	गो० क० २००
वहुभागे समभागो	गो० जी० १७८
वहुभा(भ)वणसंपरिउडो	जंवू० प० ६-१७२
वहुभूमीभूसणया	तिलो० प० ४-८१०
वहुभूमीभूसणया	तिलो० प० ४-८३०
वहुभूसणेहि देहं	धम्मर० १७१
वहुयइँ पढियइँ मूढ पर	पाहु० दो० ६७
वहुयंधयारसीयं	आय० ति० १६-७
वहुयाण एगसद्दे	सम्मइ० ३-४०
वहुरयणदीवणिवहो	जंवू० प० ८-२०
वहुलट्ठमीपदोसे	तिलो० प० ४-१२०४
वहुवण्णणपासादा	तिलो० सा० ६११
वहुवत्तिजादिगहणे	गो० जी० ३१०
वहुवण्णा वट्टवच्चइ(?)-	आय० ति० १-५२
वहुवारे गुरुमासो	छेदपिं० १५७
वहुवारेसु य छेदो	छेदस० १२
वहुवारेसु य पणगं	छेदपिं० ६२
वहुवारेसु य पणगं	छेदपिं० १५६
वहुविग्घमूसएहिं	भ० आरा० १०६५
वहुविजयपसत्थीहिं	तिलो० प० ४-१२५०
वहुविविहपुप्फमाला	जंवू० प० ४-५६

वहुविविहभवरणणिवहो	जंवू० प० ३-२१७
वहुविविहसोहविरइय-	जंवू० प० ११-२२६
वहुविहउववासेहिं	तिलो० प० ४-१०५०
वहुविहजालापहदा	जंवू० प० ११-१७०
वहुविहदेवीहिं जुदा	तिलो० प० ५-१२५
वहुविहपडिमट्टाई	जोगिभ० ११
वहुविहपरिवारजुदा	तिलो० प० ३-१२२
वहुविहवहुप्पयारा ※	पंचसं० १-१४१
वहुविहवहुप्पयारा ※	गो० जी० ४८५
वहुविहवहुप्पयारा ※	कम्मप० ४६
वहुविहमणिकिरणाहय-	जंवू० प० ३-२३८
वहुविहमिसाभिहाणं	अंगप० २-७६
वहुविहरइकरणेहिं	तिलो० प० ५-२२४
वहुविहरसवत्तेहिं	तिलो० प० ५-१०८
वहुविहविगुव्वणाहिं	तिलो० प० ८-५६०
वहुविहविदाणएहिं	तिलो० प० ४-१८६२
वहुविहवियप्पजुत्ता	तिलो० प० ४-२२४८
वहुवेयणाउलाए	धम्मर० ८०
वहुसत्थअत्थजाणे	वोधपा० १
वहुसालभंजियाहिं	तिलो० प० ४-१६४४
वहुसो य गिरिसरित्था	जंवू० प० ६-१११
वहुसो वि जुद्धभावणाए	भ० आरा० १६७
वहुसो वि मेहुणं जो	छेदपिं० ५१
वहुसो वि लद्धविजडे	भ० आरा० १२२१
वहुहावभावविब्भम-	वसु० सा० ४१४
वंध-उदया उदीरण-	पंचसं० ४-५
वंधण-छेदण-मारण-	णियमसा० ६८
वंधण-णिवंधण-पक्कम-	अंगप० २-४९
वंधणपहुदिसमण्णिय-	गो० क० ८२
वंधणभारारोवण-	वसु० सा० १८०
वंधणमुक्को पुणरेव	भ० आरा० १३२६
वंधतियं अडवीसट्ठ	गो० क० ७२१
वंधदि मुंचदि जीवो	कत्ति० अणु० ६७
वंधद्व्वाणंतिम-	लद्धिसा० ४२६
वंधपदे उदयंसा	गो० क० ६६०
वंधपदेसग्गलणं	बा० अणु० ६६
वंधम्मि अपूरंते	सम्मइ० १-२०
वंध-वध-जादणाओ	भ० आरा० ८६७
वंधविहाणसमासो	पंचसं० ४-५१५
वंधहँ मोक्खहँ हेउ णिउ	परम० प० २-५२
वंधंतं चेवुदयं	पंचसं० ५-२३६
वंधंतं चेवुदयं	पंचसं० ५-२४१
वंधंतं चेवुदयं	पंचसं० २३७
वंधंति अप्पमत्ता	पंचसं० ४-२८३ (क)
वंधंति जसं एयं ※	पंचसं० ४-३०२
वंधंति जसं एयं ※	पंचसं० ५-६५
वंधंति य वेयंति य	पंचसं० ४-२२६
वंधंतो मुच्चंतो	भ० आरा० १७१७
वंधाणं च सहावं	समय० २६३
वंधा तियपणछप्पणव-	गो० क० ७०६
वंधादेगं मिच्छं	कम्मप० ५३
वंधा संता ते च्चिय	पंचसं० ५-४४२
वंधित्तो पज्जंकं	कत्ति० अणु० ३५५
वंधुक्कट्टणकरणं	गो० क० ४३७
वंधुक्कट्टणकरणं	गो० क० ४४४
वंधुदये सत्तपदं	गो० क० ६७३
वंधुवभोगणिमित्ते	समय० २१७
वंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय	परम०प०१-६५
वंधे अधापवत्तो	गो० क० ४१६
वंधे च मोक्खहेऊ	दव्वस० णय० २२६
वंधेण विणा पढमो +	पंचसं० ५-१६
वंधेण विणा पढमो +	पंचसं० ५-२६५
वंधेण होइ उदओ ÷	कसायपा० १४३ (९०)
वंधेण होइ उदओ ×	कसायपा० १४४ (९१)
वंधेण होदि उदओ ÷	लद्धिसा० ४५०
वंधेण होदि उदओ ×	लद्धिसा० ४३८
वंधे मोहादिकमे	लद्धिसा० ४२४
वंधे वि मुक्खहेऊ	णयच० ६६
वंधे संकामिज्जदि	गो० क० ४१०
वंधो अणाइणिहणो	दव्वस० णय० १२५
वंधो(धे?) णिरओ संतो(?)	लिंगपा० १६
वंधोदएहिं णियमा ऽ	कसायपा० १४८ (९५)
वंधोदएहिं णियमा ऽ	लद्धिसा० ४५२
वंधोदयकम्मंसा ¦	गो० क० ६३०
वंधोदयकम्मंसा ¦	पंचसं० ५-८
वंधो व संकमो वा	कसायपा० १४२ (८१)
वंधो व संकमो वा	कसायपा० २२३ (१७०)
वंधो व संकमो वा	कसायपा० २११ (१६१)
वंधो व संकमो वा	कसायपा० १४७ (९४)
वंधो समयपवद्धो	गो० जी० ६४४

वंभण-खत्तिय-महिला	छेदपिं० २४४
वंभण-खत्तिय-वइसा	छेदस० १७
वंभणघादे अट्ठ य	छेदपिं० ३०
वंभण-वणि-महिलाओ	छेदपिं० ३४६
वंभण-सुद्दित्थीओ	छेदपिं० ३४७
वंभयारि सत्तमु भणिउ	सावय० दो० १५
वंभसहावाऽभिण्णा	दव्वस० णय० ५३
वंभहँ भुवणि वसंताहँ	परम० प० २-९९
वंभा वंभोत्तरिया	जंवू० प० ११-३४७
वंभारंभपरिग्गह-	कल्लाण० २२
वंभुत्तरो वि इंदो	जंवू० प० ५-९८
वंभे कप्पे वंभुत्तरे	मूला० ११४०
वंभे य लंतवे वि य	मूला० १०६५
वंभेवं वंभुत्तर-	जंवू० प० ११-३३२
वंभो करेइ तिजयं(गं)	भावसं० २०३
वाचदुअट्ठासीदि य	पंचसं० ५-२३६
वाढ त्ति भाणिदूणं	भ० आरा० ३७६
वाणउदिउत्तराणि	तिलो० प० ७-१९२
वाणउदि एगणउदी	पंचसं०५-२१७
वाणउदिजुत्तदुसया	तिलो० प० २-७४
वाणउदिणउदिअडसी-	पंचसं० ५-४१८
वाणउदिणउदिसत्तं	गो० क० ७३६
वाणउदिणउदिसत्तं	गो० क० ७६२
वाणउदिणउदिसत्ता	गो० क० ६२६
वाणउदिणउदिसंता	पंचसं० ५-२२६
वाणउदिणउदिसंता	पंचसं० ५-२२९
वाणउदिणउदिसंता	पंचसं० ५-२४२
वाणउदिणउदिसंता	पंचसं० ५-४२९
वाणउदिलक्खसहस्सा	सुदखं० १८
वाणउदिसहस्साणि	तिलो० प० ६-७५
वाणउदीए वंधा	गो० क० ७५५
वाणउदी णउदिचऊ	गो० क० ७०७
वाणउदी णउदिचऊ	गो० क० ७४९
वाणउदी पंचसयं	जंवू० प० ८-१७२
वाणजुदरुंदवग्गे	तिलो० प० ४-१८१
वाणविहीणे वासे	तिलो० प० ७-४२३
वाणासणाणि छ च्चिय	तिलो० प० २-२२७
वादरआऊतेऊ	गो० जी० ४९६
वादरणिव्वत्तिवरं	गो० क० २२५
वादरतेऊवाऊ	गो० जी० २३२
वादरपज्जत्तिजुदा	कत्ति० अणु० १४७
वादरपढमे किट्टी	लद्धिसा० ३१२
वादरपढमे पढमं	लद्धिसा० ४०९
वादरपुण्णा तेऊ	गो० जी० २५८
वादरवादर वादर	गो० जी० ६०२
वादरमण वचि उस्सास	लद्धिसा० ६२४
वादरमालोचेंतो	भ० आरा० ५७७
वादरलद्धिअपुण्णा	कत्ति० अणु० १४९
वादरलोभादिठिदी	लद्धिसा० २९२
वादरसंजलणुदये	गो० जी० ४६५
वादरसंजलणुदये	गो० जी० ४६६
वादरसुहुमगदाणं	पंचत्थि० ७६
वादरसुहमा तेसिं	गो० जी० १७६
वादरसुहुमुदयेण य	गो० जी० १८२
वादरसुहमेइंदिय-	गो० जी० ७२
वादरसुहमेइंदिय-	गो० जी० ७१८
वादरसुहुमेक्कदरं	पंचसं० ५-७०
वादालमट्ठघण इगि-	तिलो० सा० २७
वादाललक्खजोयण-	तिलो० प० ८-२३
वादाललक्खसोलस-	तिलो० प० ८-२४
वादालसदसहस्सा	जंवू० प० ११-६६
वादालसहस्सपदं	अंगप० १-२३
वादालसहस्सं पुह	तिलो० सा० ७४८
वादालसहस्साइं	तिलो० प० ४-२४९९
वादालसहस्साणि	तिलो० प० ४-२४५५
वादालहरिदलोओ	तिलो० प० १-१८२
वादालं तु पसत्था	गो० क० १६४
वादालं पणुवीसं	गो० क० ६५०
वादालं वेण्णि सया	गो० क० ८५३
वादालं सोलसकदि-	तिलो० सा० २०
वादालीस-सहस्सा	जंवू० प० ९-८३
वादालीस-सहस्सा	जंवू० प० १०-२७
वादालीसं चंदा	जंवू० प० १२-१०६
वायरजसकित्ती वि य	पंचसं० ३-४५
वायरजसकित्ती वि य	पंचसं० ३-६५
वायरपज्जत्तेसु वि	पंचसं० ५-२७२
वायरमणवचजोगे	वसु० सा० ५३३
वायरसुहुमेक्कयरं	पंचसं० ४-२७७
वायरसुहुमेगिंदिय-	पंचसं० १-३४
वायालतेरसुत्तर	पंचसं० ५-२८५

बारह-जोयण-मूले	जंबू० प० ४-१३१
बारह-जोयण-वित्थड-	तिलो० सा० १००१
बारह-वरचक्कधरा	जंबू० प० २-१७८
बारहविहतवयरणे	आरा० सा० ७
बारहसहस्सतुंगो	जंबू० प० १०-४१
बारहसहस्सरुन्दा	जंबू० प० ८-१२
बारहसहस्सरुन्दा	जंबू० प० ८-११७
बारहसहस्सरुन्देहिं	जंबू० प० ६-१६०
बारुत्तरसयकोडी	गो० जी० ३४६
बारेक्कारमणंतं	लद्धिसा० ५०२
बालगुरुवुड्ढसेहे	आ० भ० ३
बालग्गकोडिमत्तं	सुत्तपा० १७
बालग्गिवग्घमहिसगय-	भ० आरा० २०१८
बालत्तणसूरत्तण-	छेदपिं० ३५३
बालत्तणं पि गुरुणं	तिलो० प० ४-६२५
बालत्तणे कदं सव्व-	भ० आरा० १०२५
बालत्तणे वि जीवो	वसु० सा० १८४
बालमरणाणि बहुसो	मूला० ७३
बालमरणाणि साहू	भ० आरा० १६६
बालरवीसमतेया	तिलो० प० ४-३२६
बाला कढिणा णिद्धा-	आय० ति० १-३८
बालादिएहिं जइया	भ० आरा० २०२२
बालादिवादि(द)पायच्छित्तं	छेदपिं० ३५
बालित्थी(त्थी)गोवादे	छेदपिं० २५
बालुगपुप्फगणामा	तिलो० प० ८-४३७
बाले वुड्ढे सीहे	भ० आरा० १६७५
बालो अमेज्झलित्तो	भ० आरा० १०६६
बालो पि पियरचत्तो	कत्ति० अणु० ४६
बालो यं वुड्ढो यं	वसु० सा० २२४
बालो वा वुड्ढो वा	पवयणसा० ३-३०
बालो विहिंसणिज्जाणि	भ० आरा० १०२२
बावट्ठिं च सहस्सा	जंबू० प० ४-१२४
बावण्णब्भहियसमा	तिलो० प० २-२११
बावण्ण देसविरदे	पंचसं० ५-३४५
बावण्णसमभिरेया	जंबू० प० ३-४
बावण्णसया णेया	जंबू० प० १-६२
बावण्णसया तीसा	जंबू० प० ३-१०
बावण्णसया पणसीदि-	तिलो० प० ७-४८२
बावण्णसया बाणउदि-	तिलो० प० ७-४८५
बावण्णं चेव सया	पंचसं० ५-३७४
बावण्णं छत्तीसं	सुदखं० २६
बावण्णं छत्तीसं	अंगप० २-११
बावण्णा कोडीओ	जंबू० प० ४-२३६
बावण्णा तिण्णि सया	तिलो० प० ७-४६५
बावत्तरि अप्पदरा	गो० क० ५७५
बावत्तरि तिसयाणि	तिलो० प० ७-३६८
बावत्तरितिसहस्सा	गो० क० ६००
बावत्तरि पयडीओ	वसु० सा० ५३५
बावत्तरि पयडीओ	पंचसं० ५-४६५
बावत्तरि बादालं	तिलो० सा० ३३०
बावत्तरिं सहस्सा	जंबू० प० १०-३६
बावत्तरी दुचरिमे	पंचसं० ३-५३
बावीसजुदसहस्सा	तिलो० प० ८-१६६
बावीस जोयणसया	जंबू० प० ७-२०
बावीस जोयणसया	जंबू० प० ८-१७६
बावीस तिसयजोयण-	तिलो० प० ८-६०
बावीसपण्णरसगे	कसायपा० ३१
बावीसबंध चदुतिदु-	गो० क० ६८६
बावीसमेक्कवीसं	गो० क० ४६३
बावीसमेक्कवीसं	गो० क० ४६४
बावीसमेक्कवीसं	भावपा० १४२
बावीसमेक्कवीसं	पंचसं० ४-२४३
बावीसमेक्कवीसं	पंचसं० ५-२३
बावीसयादिबंधे-	गो० क० ६६१
बावीससतसहस्सा	कत्ति० अणु० १६२
बावीस सत्त तिण्णि य *	मूला० २२१
बावीस सत्त तिण्णि य *	गो० जी० ११३
बावीससदा णेया	जंबू० प० १३-१५१
बावीससया ओही	तिलो० प० ४-११४६
बावीससहस्साइं	जंबू० प० ६-१७०
बावीससहस्साणि	तिलो० प० ७-५८४
बावीससहस्साणि	तिलो० प० ४-२०००
बावीससहस्साणि	तिलो० प० ४-२००८
बावीस सोल तिण्णि य	तिलो० सा० ३८५
बावीस होंति गेहा	जंबू० प० ४-११६
बावीसं च सहस्सा	जंबू० प० ४-४२
बावीसं च सहस्सा	जंबू० प० ७-१४
बावीसं च सहस्सा	तिलो० सा० ६१०
बावीसं तित्थयरा	मूला० ५३३
बावीसं दस य चऊ	गो० क० ६५५

वेरुववग्गधारा तिलो० सा० ६६
वेरुवविंदधारा तिलो० सा० ७७
वे-लक्खा पण्णारस- तिलो० प० ४-२८१८
वे सत्त दस य चोद्दस * मूला० १११६
वे सत्त दस य चोद्दस * जंबू० प० ११-३४३
वे-सद-छप्पण्णंगुल- गो० जी० ५४०
वे-सद-छप्पण्णंगुल- तिलो० सा० ३०२
वे-सद-छप्पण्णाइं तिलो० प० ४-१६०२
वे-सय-छप्पण्णाणि य पंचसं० ५-३३५
वे-सागरोवमाइं जंबू० प० ११-२५२
वे-सायरोवमाइं जंबू० प० ११-२७०
वे-हत्थेहि य किक्खू(रिक्कू) जंबू० प० १३-३३
वोधीय जीवदव्वा- मूला० ७६२
वोह-णिमित्तें सत्थु किल परम० प० २-८४
वोहिविवज्जिउ जीव तुहुँ पाहु० दो० २५

भ

भउमजुओ दियहेहिं आय० ति० ४-२३
भगवं अणुग्गहो मे भ० आरा० ३७७
भच्छ(त्थ)ट्ठणाण कालो तिलो० प० ४-१५०६
भजिदम्मि सेढिवग्गे तिलो० प० ७-११
भजिदूणं जं लद्धं तिलो० प० ७-५६३
भजिदूणं जं लद्धं तिलो० प० ७-५७७
भज्जस्सद्धच्छेदा तिलो० सा० १०६
भज्जा भगिणी मादा भ० आरा० ६३२०
भणइ अणिच्चा सुद्धा + णयच० ३२
भणइ अणिच्चा सुद्धा + दव्वस० णय० २०४
भणइ भणावइ णवि थुणइ परम० प० २-४८
भणिदा पुढविप्पमुहा पवयणसा० २-१०
भणिदो य अधोलोगो जंबू० प० ११-१०२
भणियं देवयकहिअं रिट्ठस० १८५
भणियं सुयं वियक्कं भावसं० ६४५
भणिया जीवाजीवा दव्वस० णय० १५०
भणिया जे विब्भावा दव्वस० णय० ७७
भण्णइ खीणावरणे सम्मइ० २-६
भण्णइ जह चउणाणी सम्मइ० २-१५
भण्णइ विसमपरिणयं सम्मइ० ३-२२
भण्णइ संबंधवसा सम्मइ० ३-२०
भत्तपइण्णाइविही गो० क० ६०
भत्तपइण्णा-इंगिणि- गो० क० ५६
भत्तपइण्णा-इंगिणि- मूला० ३४६
भत्तं खेत्तं कालं भ० आरा० २२५
भत्तं देवी चंदप्पह- गो० जी० २२२
भत्तं राया सम्मदि अंगप० २-८२
भत्तादीणं भत्ती भ० आरा० ६८६
भत्ति-च्छि-राय-चोरकहाओ वा० अणु० ५३
भत्ति-त्थि-(च्छि)राय-जणवद- भ० आरा० ६५१
भत्तीए आसत्तमणा जिणिंद- तिलो०प०४-६३६
भत्तीए जिणवराणं मूला० ५६६
भत्तीए पिच्छमाणस्स वसु० सा० ४१६
भत्तीए पुज्जमाणो कत्ति० अणु० ३२०
भत्तीए मए कधिदं मूला० ८८६
भत्ती तवोधिगम्हि य * भ० आरा० ११७(२)
भत्ती तवोधियम्हि य * मूला० ३७१
भत्ती तुट्ठी य खमा भावसं० ४६६
भत्ती पूया वण्णजणणं भ० आरा० ४७
भत्तेण व पाणेण व भ० आरा० ५६३
भत्ते पाणे गामंतरे मूला० ६६०
भत्ते पाणे गामंतरे मूला० ६६३
भत्ते वा खमणे वा पवयणसा० ३-१५
भत्ते वा पीणे वा भ० आरा० ३१५
भत्तो अरित्तहत्थो आय० ति० २३-१२
भद्दस्स लक्खणं पुण भावसं० ३६५
भद्दं मिच्छद्दंसण- सम्मइ० ३-६६
भद्दं सव्वदो(ओ)भद्दं तिलो० प० ८-६२
भमइ जगे जसकित्ती वसु० सा० ३४४
भमइ णग्गउ भमइ णग्गउ- भावसं० २५४
भमिदे मणवावारे णाणसा० ४६
भयणीए विधम्मिज्जंतीए भ० आरा० २०१
भयजुत्ताण णराणं तिलो० प० ४-४६१
भयणा वि हु भइयव्वा सम्मइ० ३-२७
भयदुगरहियं पढमं गो० क० ७६४
भयमरइदुगुंछा वि य पंचसं० ४-३६३
भयमागच्छसु संसारादो भ० आरा० १४४२
भयरहिया णिंदूणा पंचसं० ५-३७
भयलज्जालाहादो कत्ति० अणु० ४१७
भयवसणमलविवज्जिय रयणसा० ५
भयसहियं च जुगुच्छा- गो० क० ४७७
भयसोगमरदिरदिगं कसायपा० १३२ (७६)

वाक्य	स्रोत
भवपच्चइगो सुरणिरयाणं	गो० जी० ३७०
भवसयदंसणहेदुं	तिलो० प० ४-६२४
भवसायरे अणंते	भावपा० २०
भविओ सम्मद्दंसण-	सम्मइ० ३-४४
भवि भवि दंसणु मलरहिउ	पाहु० दो० २१०
भविंयंति भवियकाले	गो० क० ६२
भविया जं अक्षीणा	छेदस० ६४
भवियाण वोहणत्थं	धम्मर० १६३
भविया सिद्धी जेसिं*	पंचसं० १-१५६
भविया सिद्धी जेसिं*	गो० जी० ५५६
भव्वकुमुदेक्कचंदं	तिलो० प० ५-१
भव्वगुणादो भव्वा	दव्वस० णय० ६२
भव्वजणवोहणत्थं	चारित्तपा० ३७
भव्वजणमोक्खजणणं	तिलो० प० ३-१
भव्वजणमोक्खजणणं	तिलो० प० ६-७०
भव्वजणाणंदयरं	तिलो० प० १-८७
भव्वत्तणस्स जोग्गा	गो० जी० ५५७
भव्वाण जेण एसा	तिलो० प० १-५४
भव्वाभव्वह जो चरणु	परम० प० T.K.M.२-७४(१)
भव्वाभव्वा एव हि	तिलो० प० ३-१६१
भव्वाभव्वा छस्सम्मत्ता	तिलो० प० ४-४१७
भव्वा समत्ता वि य	गो० जी० ७२५
भव्विदराणण्णदरं	गो० क० ८५६
भव्विदरुवसमवेदग-	गो० क० ३२८
भव्वुच्छाहणि पावहरि	सावय० दो० १६६
भव्वे सव्वमभव्वे	गो० क० ५५०
भव्वे सव्वमभव्वे	गो० क० ७३२
भव्वो पंचेंदिओ सण्णी	पंचसं० १-१५८
भंगम्मि वरिसकालिय-	छेदपिं० १३६
भंगविहीणो य भवो	पवयणसा० १-१७
भंगा एक्केक्का पुण	गो० क० ३८७
भंजसु इंदियसेण्णं	भावपा० ८८
भंते सम्मं णाणं	भ० आरा० १४८१
भंभा-मिदंग-मद्दल-	जंबू० प० २-६५
भंभा-मु(मि)यंग-मद्दल-	तिलो० प० ३-५१
भंभा-मु(मि)यंग-मद्दल-	तिलो० प० ४-१६३६
भाउ विसुद्धउ अप्पणउ	परम० प० २-६८
भागभजिदम्मि लद्धं	तिलो० प० ४-१०५
भागमसंखेज्जदिमं	मूला० १०६६
भागी वच्छलपहावणा	वसु० सा० ३८७
भाणु-ससि-जदु-पसिद्धा	जंबू० प० ८-९१
भायणअंगा कंचण-	तिलो० प० ४-३५०
भायणदुमा वि णेया	जंबू० प० २-१३०
भारक्कंतो पुरिसो	भ० आरा० ११७८
भारं णरो वहंतो	भ० आरा० १७६३
भावइ अणुव्वयाइं	भावसं० ४८८
भावचउक्कं चत्तं	णयच० ८४
भावणणिवासखेत्तं	तिलो० प० ३-२
भावणलोयस्साऊ	तिलो० प० ३-६
भावणवितरजोइस-	अंगप० ३-३२
भावणवितरजोइसिय-	तिलो० प० १-६३
भावणवेंतरजोइस-	तिलो० प० ४-३७७
भावणवेंतरजोइस-	तिलो० प० ४-७८८
भावणवेंतरजोइसिय-	तिलो० प० ६-११
भावणसुरकण्णाओ	तिलो० प० ४-८१४
भावरहिएण स-उरिस	भावपा० ७
भावरहिओ ण सिज्झइ	भावपा० ४
भावविमुत्तो मुत्तो	भावपा० ४३
भावविरदो दु विरदो	मूला० ६६५
भावविसुद्धिणिमित्तं	भावपा० ३
भावसमणा हु समणा	मूला० १००२
भावसमणो य धीरो	भावपा० ५१
भावसमणो वि पावइ	भावपा० १२५
भावसहिदो य मुणिणो	भावपा० १७
भावसुदं पज्जाए	तिलो० प० १-७६
भावस्स णत्थि णासो	पंचत्थि० १५
भावह अणुव्वयाइं	भावसं० ४८८
भावहि अणुवेक्खाओ	भावपा० ६४
भावहि पढमं तच्चं	भावपा० ११२
भावहि(ह) पंचपयारं	भावपा० ६५
भावा खइयो उवसम	भावति० २१
भावा जीवादीया	पंचत्थि० १६
भावाणं सद्दहणं	आरा० सा० ४
भावाणं सामण्णविसेस-	गो०जी० ४८२
भावाणुरागपेमा	भ० आरा० ७३७
भावा णेयसहावा	दव्वस० णय० ५७
भावादो छल्लेस्सा	गो० जी० ५५४
भावाभावहि संजुवउ	परम० प० १-४३
भावि पणविवि पंच-गुरु	परम० प० १-८
भावुग्गमो य दुविहो	मूला० १३५

भीमावलि जितसत्तू * तिलो० प० ४-१४३७
भीमावलि जिदसत्तू * तिलो० सा० ८३६
भीमावलि जियसत्तू * तिलो० प० ४-५१६
भीमो य महाभीमो तिलो० सा० २६८
भीसणणरयगईए भावपा० ८
भुक्खसमा ण हु वाही भावसं० ५१८
भुक्खाए संतत्तो धम्मर० ३७
भुक्खाकयमरणभयं भावसं० ५२३
भुजकोडिकदिसमासो तिलो०सा० १२२
भुजकोडीवेदेसुं तिलो० प० १-२१७
भुजकोडीसेढिचऊ- तिलो० प० १-२३५
भुजगा भुजंगसाली + तिलो० प० ६-३८
भुजगा भुजंगसाली + तिलो० सा० २६१
भुजगारप्पदराणं गो० क० ५७१
भुजगारा अप्पदरा गो० क० ५५४
भुजगारा अप्पदरा गो० क० ५८०
भुजगारे अप्पदरे गो० क० ५८१
भुजपडिभुजमिलिदद्धं तिलो० प० १-१८१
भुत्तो अयोगुलोसइ(?) रयणसा० १२२
भुवणत्तयस्स तासो तिलो० प० ४-७०४
भुवणेसु सुप्पसिद्धा तिलो० प० ४-६६८
भुंजंतस्स वि विविहे समय० २२०
भुंजंतु वि णिय-कम्मु-फलु परम० प० २-७६
भुंजंतु वि णिय-कम्मु-फलु परम० प०२-८०
भुंजंतो कम्मफलं तच्चसा० ५१
भुंजंतो कम्मफलं तच्चसा० ५२
भुंजंतो वि सुभोयण- भ० आरा० १३१८
भुंजित्ता चिरकालं धम्मर० १७६
भुंजित्ता मणुलोए धम्मर० १८०
भुंजेइ जहालाहं रयणसा० ११५
भुंजेदि प्पियणामा तिलो० प० ५-३६
भुंजेइ पाणिपत्तम्मि वसु० सा० ३०३
भू-आउ-तेउ-वाऊ- गो० जी० ७३
भू-आउ-तेउ-वाऊ- गो० जी० ७२०
भूदं तु चुदं चइदं गो० क० ५६
भूदा इमे सरूवा तिलो० प० ६-४६
भूदाण रक्खसाणं तिलो० सा० २६०
भूदाणं तु सुरूवा तिलो० सा० २६६
भूदाणंदो धरणा- तिलो० सा० २१०
भूदाण तेत्तियाणि तिलो० प० ६-३३

भूदा(या)णुकंपवदजोग- * पंचसं० ४-२०१
भूदाणुकंपवदजोग- * गो० क० ८०१
भूदाणुकंपवदजोग- * कम्मप० १४६
भूदा य भूदकंता तिलो० प० ६-५४
भूदिंदाय सरूवो तिलो० प० ६-४७
भूदीकम्मंजं(म्मजअं)गुलि- अगप० २-१०८
भूदेसु दयावण्णो जोगिभ० ६
भूधरणगिंदणामो जंबू० प० २-१६४
भूधरपमाणदीहा जंबू० प० ३-१५
भूपव्वदमादीया णियमसा० २२
भू-बादर-तेवीसं गो० क० ५६५
भू-बादर-पज्जत्त- गो० क० ५२४
भू-भद्दसाल साणुग तिलो० सा० ६०७
भूमज्झगोवासो तिलो० सा० ५८८
भूमिसमरुंदलहुओ भ० आरा० ६४३
भूमहिलाकण्णा(णया)ई- रयणसा० ७६
भूमितणुरुक्खपव्वद- जंबू० प० २-१६७
भूमिय मुहं विसोधिय तिलो०प० ४-२०३१
भूमिय मुहं विसोहिय तिलो० प० १-१७६
भूमीए चेट्ठंतो तिलो० प० ४-१०२६
भूमीए मुहं सोहिय तिलो० प० १-१६३
भूमीए मुहं सोहिय तिलो० प० १-२२३
भूमीए मुहं सोहिय तिलो० प० ४-२४०१
भूमीए समं कीला- भ० आरा० १५४१
भूमीदो दसभागो तिलो० सा० ६१७
भूमीदो पंच-सया तिलो० प० ४-१७८६
भूमीय(ए)दिणं सोधिय तिलो० प० ७-२८०
भूमी[य]समं देहं धम्मर० ६०
भूमीसयणं लोचो भावसं० १४६
भूयत्थेणाभिगदा + समय० १३
भूयत्थेणाहिगदा + मूला० २०३
भूयवलिपुप्फयंता दंसणसा० ४४
भूयवलि पुप्फयंतो सुदखं० ८६
भूसणदुमा वि णेया जंबू० प० २-१२७
भूसणसालं पविसिय तिलो० प० ८-५७७
भेए लक्खणणियरे अंगप० २-४१
भेए सदि संबंधं × दव्वस० णय० ११५
भेए(दे)सदि संबंधं × णयच० २३
भेदुवयारं णिच्छय- दव्वस० णय० २३८
भेदुवयारे जइया दव्वस० णय० ३७४

म

मग्गुज्जोदुपओगा- *	भ० आरा० ११६१
मग्गुज्जोवुपओगा- *	मूला० २०२
मग्गेक्कमुहुत्ताणि	तिलो० प० ७-४३६
मग्गो मग्गफलं ति य ×	णियमसा० २
मग्गो मग्गफलं ति य ×	मूला० २०२
मघवं सणक्कुमारो	तिलो० सा० ८२४
मघवीए णारइया	तिलो० प० २-२००
मच्छमुहा अभिकण्णा	तिलो० प० ४-२७२४
मच्छमुहा कालमुहा	तिलो० प० ४-२४८५
मच्छाण पुव्वकोडी	मूला० १११०
मच्छुव्वत्तं मणोदुट्ठं	मूला० ६०४
मच्छो वि सालिसित्थो	भावपा० ८६
मज्जणमंडणधादी	मूला० ४४७
मज्जणयगंधपुप्फो-	भ० आरा० २०६७
मज्जवरतूरभूसण-	जंबू० प० ३-२३७
मज्जंगतूरभूसण-	वसु० सा० २५१
मज्जंगदुमा णेया	जंबू० प० २-१२५
मज्जंगा तूरंगा	जंबू० प० २-१२४
मज्जं ण वज्जणिज्जं	दंसणसा० ६
मज्जं पिवंता पिसिदं लसंता	तिलो० प० २-३६२
मज्जारपदय(प)माणं	छेदपिं० १२
मज्जारपहुदिधरणं	कत्ति० अणु० ३४७
मज्जारमुहा य तहा	तिलो० प० ४-२७२७
मज्जाररसिदसरिसो-	भ० आरा० २८३
मज्जार-साण-रज्जू-	धम्मर० १४६
मज्जारसाणसूयर-	तिलो० सा० १७८
मज्जु मंसु महु परिहरइ	सावय० दो० ७७
मज्जु मंसु महु परिहरहि	सावय० दो० २२
मज्जु मुक्कु मुक्कहँ मयहँ	सावय० दो० ४३
मज्जेण णरो अवसो	वसु० सा० ७०
मज्जे धम्मो मंसे धम्मो	भावसं० १८४
मज्झण्हतिक्खसूरं	भ० आरा० ११०५
मज्झत्थो सीसेहिं	आय० ति० ७-४
मज्झम्मि तहा च्छिद्दं	रिट्ठस० ५२
मज्झम्मि दु णायव्वा	जंबू० प० १०-२५
मज्झम्मि पंच रज्जू	तिलो० प० १-१४१
मज्झसहावं णाणं	दव्वस० णय० ४०६
मज्झसहावं णाणं	णयच० ८३
मज्झंते एक्को च्चिय	आय० ति० २-६
मज्झं परिग्गहो जइ	समय० २०८
मज्झिमअंसेण मुदा	गो० जी० ५२१
मज्झिमउदयपमाणं	तिलो० प० ४-२१४७
मज्झिमउवरिमभागे	तिलो० प० ४-७४८
मज्झिमकसायअडउवसमे	भावति० १२
मज्झिमगेवज्जेसु य	जंबू० प० ११-३३५
मज्झिमचउजुगलाणं	तिलो० सा० ४५४
मज्झिमचउमणवयणे	गो० जी० ६७८
मज्झिमचउमणवयणे	भावति० ८६
मज्झिमजगस्स उवरिम-	तिलो० प० १-१५८
मज्झिमजगस्स हेट्ठिम-	तिलो० प० १-१५४
मज्झिमजहण्णुक्कस्सा	दव्वस० णय० ३४१
मज्झिमदव्वं खेत्तं	गो० जी० ४५८
मज्झिमधणमवहरिदे	लद्धिसा० ७२
मज्झिमपक्खेसु पुणो	छेदपिं० १४०
मज्झिमपत्ते मज्झिम-	भावसं० ५००
मज्झिमपदक्खरवहिद-	गो० जी० ३५४
मज्झिमपरिधिचउत्थं	तिलो० सा० ६०२
मज्झिमपरिसाए सुरा	तिलो० प० ८-२३२
मज्झिमपरिसाए व(वि)हू	जंबू० प० ३-६२
मज्झिमपासादाणं	तिलो० प० ४-३२
मज्झिम बहुभागुदया	लद्धिसा० ६३८
मज्झिमयम्मि विमाणे	जंबू० प० ११-२५८
मज्झिमया दिढबुद्धी	मूला० ६२६
मज्झिम(ज्झेसु)रजदरचिदा	तिलो०प०४-२४५६
मज्झिमवयवामाहर-	आय० ति० १-४१
मज्झिमवयसुरराओ	आय० ति० १-१३
मज्झिमविसोहिसहिदा	तिलो० प० ३-१६३
मज्झिमसुरेण जुत्ता	जंबू० प० ४-२२५
मज्झिमहेट्ठिमणामो	तिलो० प० ८-१२२
मज्झिल्लं हि दु भागे	जंबू० प० १०-८
मज्झिल्ले मणवचिए	पंचसं० ४-२६
मज्झे अरिहं देवं	भावसं० ४५०
मज्झे चत्तारि हवे	जंबू० प० २-५३
मज्झे चेट्ठदि रायं(?)	तिलो० प० ५-१८६
मज्झे जीवा बहुगा	गो० क० २४४
मज्झे थोवसलागा	गो० क० १४६
मज्झे दहस्स पउमा	जंबू० प० ३-७३
मज्झे दीओ जलदो	तिलो० सा० ५८७
मज्झे मज्झे तेसिं	जंबू० प० ४-१६४
मज्झे सिहरे य पुणो	जंबू० प० ४-११

मणिबंधचरणबाहुपसारणं छेदपिं० २१७
मणिभवणचारणालय- जंबू० प० ४-८३
मणिमयजिणपडिमाओ तिलो० प० ४-८०५
मणिमयपायारजुदा जंबू० प० ६-३५
मणिमयपासादजुदो जंबू० प० ६-७१
मणिमयसोहा(वा)णाओ तिलो० प० ४-२१८६
मणिमंडियाण णेया जंबू० प० ३-१७४
मणि-मंतोसह-रक्खा बा० अणु० ८
मणिरयणकणयरुप्पय- वसु० सा० ३६०
मणिरयणधाउलेवा ढाढसी० १३
मणिरयणभवणणिवहा जंबू० प० ६-२०
मणिरयणभित्तिचित्तं जंबू० प० ११-१६३
मणिरयणभित्तिचित्ता- जंबू० प० ६-१०६
मणिरयणमंडिएहि य- जंबू० प० ३-१०६
मणिरयणहेमजाला जंबू० प० ११-३१७
मणि(ण)वचि वंधुदयंसा गो० क० ७१८
मणिसालहंजि(?)गयवर- जंबू० प० ३-१८४
मणिसोवाणमणोहर- तिलो० प० ४-७६६
मणुअगईए वि तओ कत्ति० अणु० २६६
मणुआणं असुइमयं कत्ति० अणु० ८५
मणुआसुरामरिंदा पवयणसा० १-६३
मणुइंदिहि विच्छोइयइ जोगसा० ५३
मणुओरालदुवज्जं गो० क० १६६
मणु जाणइ उवएसडउ पाहु० दो० ४६
मणु मिलियउ परमेसरहो * पाहु० दो० ४६
मणु मिलियउ परमेसरहँ *परम०प०१-१२३चे.२
मणुयगइ सह गयाओ पंचसं० ५-५००
मणुयगईं पंचिंदिय × पंचसं० ५-४७१
मणुयगई पंचिंदिय × पंचसं० ५-४६८
मणुयगईसंजुत्ता पंचसं० ५-१५३
मणुय-णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया पंचगु० भ० १
मणुयतिरियाउयस्स हि पंचसं० ४-४३३
मणुयतिरियाणुपुव्वी पंचसं० ३-३५
मणुयत्तणु दुल्लहु लहिवि सावय० दो० २१६
मणुयत्ते वि य जीवा वसु० सा० १८२
मणुयदुयं उव्वेलिय पंचसं० ५-२१०
मणुयदुयं ओरालिय- पंचसं० ४-४५५
मणुयदुयं पंचिंदिय- पंचसं० ५-२१४
मणुयभवे पंचिंदिय बोधपा० ३६
मणुयहँ विणयविवज्जियहँ सावय० दो० १३८

मणुया य अपज्जत्ता पंचसं० १-५८
मणुयाउस्स य उदए × पंचसं० ५-२१
मणुयाउस्स य उदए × पंचसं० ५-२६०
मणुयाणुपुव्विसहिया पंचसं० ५-४६६
मणुयादो णेरइया कत्ति० अणु० १५३
मणुवगईए एवं धम्मर० ८६
मणुवाइयपज्जाओ + दव्वस० णय० २११
मणुवाइयपज्जाओ + णयच० ३६
मणुवे ओघो थावर- गो० क० २६८
मणुवेसिदरगदीतिय- भावति० ६१
मणुवेसु ण वेगुव्वदु आस० ति० ३१
मणुवो ण होदि देवो पवयणसा० २-२१
मणुसगइसव्वभंगा पंचसं० ५-१७८
मणुसगदीए थोवा मूला० १२०७
मणुसत्तणेण णट्ठो पंचत्थि० १७
मणुसदुगइत्थिवेयं पंचसं० ४-३६१
मणुस व्व दव्वभावित्थी भावति० ६४
मणुसाउगं च वेदे भ० आरा० २१२२
मणुसिणिए त्थीसहिदा गो० क० ३०१
मणुसिणि पमत्तविरदे गो० जी० ७१४
मणुसुत्तरधरणिधरं तिलो० प० ४-२७२
मणुसुत्तरम्मि सेले जंबू० प० ११-६१
मणुसुत्तरसमवासो तिलो० प० ५-१३०
मणुसुत्तरसेलादो तिलो० सा० ३४६
मणुसुत्तरादु परदो जंबू० प० १२-१५
मणुसुत्तरादु परदो तिलो० प० ७-६१३
मणुसुत्तरुदयभूमुह- तिलो० सा० ६३८
मणुसुत्तरोत्ति मणुसा तिलो० सा० ३२३
मणुसोघं वा भोगे गो० क० ३०२
मणुसोत्तरादु अंतं जंबू० प० २-१७३
मणुस्सतेरिच्छभवम्हि पुव्वे तिलो०प० ३-२१४
मण्णइ जलेण सुद्धि भावसं० १७
मण्णंति जदो णिच्चं * पंचसं० १-६२
मण्णंति जदो णिच्चं * गो० जी० १४८
मत्तकरिकुंभसरिसो जंबू० प० ६-१५०
मत्तकरिकुंभसिहरो जंबू० प० ६-१००
मत्तगयगमणलीला जंबू० प० ७-११२
मत्तंडदिणगदीए तिलो० प० ७-४५५
मत्तंडमंडलाणं तिलो० प० ७-२७७
मत्तो गओ व्व णिच्चं भ० आरा० ६५६

महपउमदहाउ णदी	तिलो० प० ४–१७४४
महपउमो सुरदेओ +	तिलो० प० ४–१५७७
महपउमो सुरदेवो +	तिलो० सा० ८७३
महपुंडरीयणामो	तिलो० प० ४–२३५८
महपूजासु जिणाणं	तिलो० सा० ५५४
महमंडलिओ णामो	तिलो० प० १–४७
महमंडलियाणं अद्ध-	तिलो० प० १–४१
महवीरभासियत्थो	तिलो० प० १–७६
महव्वयाणि पंचेव	अंगप० १–१८
महसुक्कइंदओ तह	तिलो० प० ८–१४३
महसुक्कणामपडले	तिलो० प० ८–५०१
महसुक्कम्मि य सेढी	तिलो० प० ८–६६२
महसुक्कसुराहिवई	जंबू० प० ५–१०२
महसुक्किदयउत्तर-	तिलो० प० ८–३४५
महहिमवचरिमजीवा	तिलो० सा० ७७४
महहिमवंतणगस्स दु	जंबू० प० ३–२२८
महहिमवंतं रुंदं	तिलो० प० ४–२५५५
महहिमवंते दोसुं	तिलो० प० ४–१७२१
महासाहू महासाहू	कल्लाण० ५०
महिलाकुलसंवासं	भ० आरा० ६२८
महिलाणं जे दोसा	भ० आरा ६६३
महिलादिभोगसेवी	भ० आरा० १२५६
महिलादी परिवारा	तिलो० प० ८–६४१
महिला पुरिसमवण्णाए	भ० आरा० ६५७
महिलालोयणपुव्वरइसरण- *	चारित्तपा० ३४
महिलालोयण पुव्वरदिसरणं *	मूला० ३५०
महिलालोयण पुव्वरदिसरणं *	भ०आरा०१२१०
महिलावाहविमुक्का	भ० आरा० १११३
महिला विग्घा धम्मस्स	भ० आरा ६८५
महिलावेसविलंवी	भ० आरा० ६३२
महिलासु णत्थि वीसंभ-	भ० आरा० ६४३
महिस य मडयं न तहा	रिट्ठस० १७८
महिहिं भमंतहं ते णर य	सुप्प० दो० ६६
महु आसायउ थोडउ वि	सावय० दो० २३
महुकरिसमज्जियमहुं	भ० आरा० ७८०
महुपिंगो णाम मुणी	भावपा० ४५
महुमज्जमंसजूवा-	कल्लाण० १२
महुमज्जमंसविरई	भावसं० ३५६
महुमज्जमंससेवी	वसु० सा० ६६
महु मज्जं मंसं वा	छेदपिं० २३२

महुमज्जाहाराणं	तिलो० प० २–३४०
महुयर सुरतरुमंजरिहिं	पाहु० दो० १५२
महुरझणझणणिणादा	तिलो० सा० ६६३
महुरमणोहरवक्का	जंबू० प० ४–२२२
महुराए अहिच्छित्ते	णिव्वा० भ० २२
महुरा महुरालावा	तिलो० प० ६–५१
महुरेहिं मणहरेहिं य	जंबू० प० ३–१०८
महुरेहिं मणहरेहिं य	जंबू० प० ५–८७
महुलित्तखग्गसरिसं *	भावसं० ३३४
महुलित्तखग्गसरिसं *	कम्मप० ३०
महुलित्तं असिधारं	भ० आरा० १३५२
महुलित्तं असिधारं	भ० आरा० १६६५
मंगल-कारण-हेदू	तिलो० प० १–७
मंगल-पज्जाएहिं	तिलो० प० १–२७
मंगलपहुदिच्छक्कं	तिलो० प० १–८५
मंडलखेत्तपमाणं	तिलो० प० ७–४६०
मंताभिओगकोदुग-	भ० आरा० १८२
मंतीणं अमराणं	तिलो० प० ४–१३५२
मंतीणं उवरोधे	तिलो० प० ४–१३०७
मंतु ण तंतु ण घेउ ण धारणु	पाहु० दो० २०६
मंदकसायं धम्मं	कत्ति० अणु० ४७०
मंदकसायेण जुदा	तिलो० प० ४–४१६
मंदरअणिलदिसादो	तिलो० प० ४–२०१३
मंदरईसाणदिसा-	तिलो० प० ४–२१६३
मंदरउत्तरभागे	तिलो० प० ४–२१८६
मंदरकुलवक्खारिसु-	तिलो० सा० ५६२
मंदरगिरिदो गच्छिय	तिलो० प० ४–२०५३
मंदरगिरिदो गच्छिय	तिलो० प० ४–२०६१
मंदरगिरिपहुदीणं	तिलो० प० ४–२८२६
मंदरगिरिमज्झादो	तिलो० सा० ३६७
मंदरगिरिमज्झादो	तिलो० प० ७–२६३
मंदरगिरिमूलादो	तिलो० प० ५–६
मंदरगिरिंदउत्तर-	तिलो० प० ४–२५८७
मंदरगिरिंदणइरिदि-	तिलो० प० ४–२१४५
मंदरगिरिंददक्खिण-	तिलो० प० ४–२१३६
मंदरणामो सेलो	तिलो० प० ४–२५७३
मंदरतलमज्झादो	जंबू० प० ११–६८
मंदरतलमज्झादो	जंबू० प० ११–१००
मंदरतलमज्झादो	जंबू० प० ११–१०२
मंदरपच्छिमभागे	तिलो० प० ४–२१०६

माणुसमंसपसत्तो	भ० आरा० १३५७
माणुसलोयपमाणो	तिलो० प० ६-१७
माणुस्सा दुवियप्पा	णियमसा० १६
माणेण जाइकुलरूव-	भ० आरा० १२१७
माणेण तेण राया	जंबू० प० ७-१४६
माणे लदासमाणे	कसायपा० ७५(२२)
माणोदएण चडिदो	लद्धिसा० ३५३
माणोदयचडपडिदो	लद्धिसा० ३५५
माणो य माय लोहो	दव्वस० णय० ३६४
माद(दु)सुदादिसजोणी	छेदस० ८४
मादं सुदं च भगिणी-	भ० आरा० १०६५
मादाए वि य वेसो	भ० आरा० ८४६
मादापिदरसहोदर-	बा० अणु० २१
मादा पिदा कलत्तं	तिलो० प० ४-६३६
मादा य होदि धूदा	मूला० ७१६
मादुपिदुपुत्तदारेसु	भ० आरा० ११४७
मादुपिदुपुत्तमित्तकलत्त-	रयणसा० १६
मादुपिदुसयणसंबंधिणो	मूला० ७००
मादुसुदादीहिं सजोणियाहिं	छेदपिं० ३४१
मादुसुदाभगिणी वि य	मूला० ८
मा मुक्क पुण्णहेऊं	भावसं० ३६४
मा मुज्झह मा रज्जह	दव्वसं० ४८
मा मुट्ठा पसु गरुवडा	पाहु० दो० १३१
माय-तिगादो लोभस्सादि-	लद्धिसा० ५७२
मायदुगं संजलणग-	लद्धिसा० २७६
मायंगकुंभसरिसो	जंबू० प० ६-३८
मायंगरामपुत्तो	अंगप० १-५१
मायं चिय अणियट्टी-	पंचसं० ३-५८
मायाए अभत्तीए	आय० ति० २३-१३
मायाए तं सव्वं	भावसं० ४४६
मायाए पढमठिदी	लद्धिसा० २७५
मायाए पढमठिदी	लद्धिसा० २७७
मायाए मित्तभेदे	भ० आरा० १३८५
मायाए वहिणीए	मूला० ६६२
माया करेदि णीचा-	भ० आरा० १३८६
मायागहणे वहुदोस-	भ० आरा० १११०
मायाचारविवज्जिद-	तिलो० प० ३-२३२
मायादोसा मायाए	भ० आरा० १४५५
माया धूदा भज्जा	भ० आरा० ६२६
माया-पमाय-पउरा	भावसं० ६३

माया पियर कुडंवो	कल्लाणा० ८
माया पोसेइ सुयं	भ० आरा० १७६०
माया मिल्लहि थोडिय वि	सावय० दो० १३३
माया य सादिजोगो	कसायपा० ८८ (३५)
मायारूवमहेंदज्जाल-	अंगप० ३-५
मायालोहे रदिपुव्वा-	गो० जी० ६
मायावहिणिसुआओ	धम्मर० १४६
माया व होइ विस्सस्स	भ० आरा० ८४०
मायाविवज्जिदाओ	तिलो० प० ८-३८७
माया वि होइ भज्जा	भ० आरा० १७६६
मायावेल्लि असेसा	भावपा० १५६
मायासल्लस्सालोयणा-	भ० आरा० १२८५
मारणसीलो कुणदि हु	भ० आरा० ७६५
मारिमि जीवावेमि य	समय० २६१
मारिवि चूरिवि जीवडा	परम० प० २-१२६
मारिवि जीवहँ लक्खडा	परम० प० २-१२५
मारेदि एवमवि जो	भ० आरा० ७६६
मालइकयंवकणाया-	वसु० सा० ४३१
मासचउक्कं लोचो	छेदपिं० १०५
मासत्तिदयाहिय चउ	तिलो० प० ४-६४८
मासपुधत्तं वासा	लद्धिसा० ५५८
मासम्मि सत्तमे तस्स	भ० आरा० १०१०
मासं पडि उववासो	छेदस० ६७
मासेण पंच पुलगा	भ० आरा० १००६
माहउ-सरणु सिलीमुहउ	सावय० दो० १७३
माहप्पं वरचरणं	अंगप० १-५०
माहप्पेण जिणाणं	तिलो० प० ४-६०५
माहवचंदुद्धरिया	तिलो० सा० ३६४
माहिंदउवरिमेत्तं(मंते)	तिलो० प० १-२०४
माहिंदे सेढिगया	तिलो० प० ८-१६३
मा होइ वासगणणा	मूला० ६६५
मिच्छक्खपंचकाया	पंचसं० ४-११७
मिच्छक्खपंचकाया	पंचसं० ४-१२४
मिच्छक्खपंचकाया	पंचसं० ४-१२५
मिच्छक्खपंचकाया	पंचसं० ४-१३१
मिच्छक्खपंचकाया	पंचसं० ४-१३२
मिच्छक्खपंचकाया	पंचसं० ४-१३६
मिच्छक्खं चउकाया	पंचसं० ४-१११
मिच्छक्खं चउकाया	पंचसं० ४-११८
मिच्छक्खं चउकाया	पंचसं० ४-११६

मेरुस्स हिट्ठभाये	कत्ति० अणु० १२०
मेरुवमाणदेहा	तिलो० प० ४-१०२५
मेरु विदेहमज्झे	तिलो० सा० ६०६
मेल्लिवि सयलअवक्खडी	परम० प० १-११५
मेसास्समहिसखरकर-	छेदपिं० ३३
मेहमुहा विज्जमुहा	जंबू० प० १०-५७
मेहलकलावमणिगण-	जंबू० प० ३-१८६
मेहंकर मेहवदी	तिलो० सा० ६२७
मेहावरुद्धगयणं	जंबू० प० ७-१३७
मेहावि-णरा एएण	वसु० सा० ३५२
मेहावीणं एसा	वसु० सा० २४४
मेहुणमंडणओलग-	तिलो० प० ४-३५
मेहुणसण्णारूढो	भावसं० ३६०
मोक्खगइगमणकारण-	रयणसा० १४६
मोक्खगया जे पुरिसा	बा० अणु० ८६
मोक्खणिमित्तं दुक्खं	रयणसा० ६६
मोक्खपहे अप्पाणं	णियमसा० १३६
मोक्खपहे अप्पाणं	समय० ४१२
मोक्खं असद्दहंतो	समय० २७४
मोक्खं गयपुरिसाणं	णियमसा० १३५
मोक्खाभिलासिणो संज-	भ० आरा० १६३६
मोक्खाभिलासिणो संज-	भ० आरा० १६१३
मोक्खु जि साहिउ जिणवरहिं	परम०प०२-११८
मोक्खु ण पावहि जीव तुहुँ	पाहु०दो० ११
मोक्खु म चिंतहि जोइया	परम० प० २-१८८
मोंग्गिलगिरिम्मि य सुको-	भ० आरा० १५४०
मोणं परिच्चइत्ता	जंबू० प० १०-७६
मोणाभिग्गहणिरदो	भ० आरा० २०५६
मोत्तूण अट्टरुद्दं	णियमसा० ८६
मोत्तूण अणायारं	णियमसा० ८५
मोत्तूण असुहभावं	बा० अणु० ५४
मोत्तूण कुडिलभावं	बा० अणु० ७३
मोत्तूण जिणक्खादं	मूला० ७२६
मोत्तूण णिच्छयट्ठं	समय० १५६
मोत्तूण वत्थमेत्तं	वसु० सा० २६६
मोत्तूण रागदोसे	भ० आरा० ४५१
मोत्तूण वयणरयणं	णियमसा० ८३
मोत्तूण सयलजप्पम-	णियमसा० ६५
मोत्तूण सल्लभावं	णियमसा० ८७
मोत्तूणं वहिचिंता	दव्वस० णय० ३४७
मोत्तूणं वहिविसयं	दव्वस० णय० ३८१
मोत्तूणं मिच्छतियं	दव्वस० णय० ३३६
मोत्तूणं मेरुगिरिं	तिलो० प० ४-२५४५
मोरसुक्कोकिलाणं	तिलो० प० ४-२००७
मोहक्खयेण सम्मं	वसु० सा० ५३८
मोहगपल्लासंखट्ठिदि- ×	लद्धिसा० २३१
मोहगपल्लासंखट्ठिदि- ×	लद्धिसा० ४१६
मोहग्गिणादिमहदा	भ० आरा० २११
मोहग्गिणा महंते	मूला० ६७६
मोहणकम्मस्सुदया	समय० ६८
मोहणिकम्मस्स खये	जंबू० प० १३-१३१
मोहमयगारवेहिं य	भावपा० १५७
मोहरजअंतराये	दव्वस० णय० २७२
मोहविवागवसादो	कत्तिं० अणु० ८६
मोहस्स असंखेज्जा	लद्धिसा० ३२७
मोहस्स पल्लवंधे	लद्धिसा० ३३७
मोहस्स य ठिदिवंधो	लद्धिसा० ३३६
मोहस्स य वंधोदय-	गो० क० ६५२
मोहस्स सत्तरी खलु	मूला० १२३८
मोहस्स सत्तरी खलु	भावसं० ३४२
मोहस्स सत्तरी खलु	पंचसं० ४-३८६
मोहस्सावरणाणं	मूला० १२४२
मोहं वीसिय तीसिय	लद्धिसा० ३३२
मोहाऊणं हीणा	पंचसं० ४-२१५
मोहु ण छिज्जइ अप्पा	रयणसा० ६७
मोहु णु छिज्जउ दुव्वलउ	सावय० दो० १३५
मोहु विलिज्जइ मणु मरइ ※	परम०प०२-१६३
मोहु विलिज्जइ मणु मरइ ※	पाहु० दो० १४
मोहेइ मोहणीयं +	भावसं० ३३३
मोहेइ मोहणीयं +	कम्मप० ३१
मोहेण व रागेण व	पवयणसा० १-८४
मोहे मिच्छत्तादी-	गो० क० २०२
मोहे संता सव्वा	पंचसं० ५-३३
मोहोदयेण जीवो	भ० आरा० ४०
मोहोदयेण जीवो	भ० आरा० १००१
मोहो रागो दोसो	पंचत्थि० १३१
मोहो व दोसभावो	दव्वस० णय० ३०८

य

र

रमिओ सो सत्तमए	आय० ति० ४-२१
रम्मकभोगखिदीए	तिलो० प० ४-२२३४
रम्मकभोगखिदीए	तिलो० प० ४-२२३८
रम्मकभोगखिदीए	तिलो० प० ४-२२४७
रम्मकविजओ रम्मो	तिलो० प०४-२२३३
रम्माए सुधम्माए	तिलो० प० ८-४०८
रम्माधयारपहुदी	तिलो० प० ८-५६४
रम्मायारा गंगा	तिलो० प० ४-२२३
रम्मारमणीयाओ	तिलो० प० ५-७८
रम्मुज्जाणेहिं जुदा	तिलो० प० ४-१३६
रयणकलसेहिं तेहिं य	जंबू० प० ४-२७६
रयणकवाडवरावर	तिलो० सा० ७१६
रयणखचिदाणि ताणि	तिलो० प० ४-८६२
रयणाणिहाणं छंडइ	भावसं० ८६
रयणत्तयकरणत्तय-	रयणसा० १५१
रयणत्तयजुत्ताणं	कत्ति० अणु० ४५६
रयणत्तयपढमाए	वसु० सा० ४६८
रयणत्तयमाराहं	मोक्खपा० ३४
रयणत्तयमेव गणं	रयणसा० १६३
रयणत्तय-संजुत्त जिउ	जोगसा० ८३
रयणत्तय-संजुत्ता	णियमसा० ७४
रयणत्तयसंजुत्तो	कत्ति० अणु० १९१
रयणत्तयसिद्धीए	भावति० १४
रयणत्तयस्स रूवे	रयणसा० ६५
रयणत्तयं पि जोई	मोक्खपा० ३६
रयणत्तयं ण वट्टइ	दव्वसं० ४०
रयणत्तये वि लद्धे	कत्ति० अणु० २६६
रयणत्ते (त्ताए) सुअलद्धे	भावपा० ३०
रयणदीउ दिणयर दहिउ	जोगसा० ५७
रयणपुरे धम्मजिणो	तिलो० प० ४-५३६
रयणप्पहअवणीए	तिलो० प० २-१०८
रयणप्पहचरमिंदय-	तिलो० प० २-१६८
रयणप्पहपहुदीसुं	तिलो० प० २-८२
रयणप्पहपंकडूढे	तिलो० सा० २२२
रयणप्पहपुढवीए	तिलो० सा० २०२
रयणप्पहपुढवीए	तिलो० प० ६-७
रयणप्पहपुढवीए	तिलो० प० २-२१७
रयणप्पहपुढवीए	तिलो० प० ३-७
रयणप्पहपुढवीदो	तिलो० सा० १५२
रयणप्पह सक्करपह	वसु० सा० १७२
रयणप्पहाए जोयण-	मूला० ११५२
रयणप्पहा तिहा खर-	तिलो० सा० १४६
रयणप्पहावणीए	तिलो० प० २-२७१
रयणमए जगदीए	जंबू० प० ५-३१
रयणमयथंभजोजिद-	तिलो० प० ४-२००
रयणमयपडलियाए	तिलो० प० ४-१३११
रयणमयपीठसोहं	जंबू० प० ५-६८
रयणमयभवणणिवहो	जंबू० प० ६-५३
रयणमयवरदुवारो	जंबू० प० ३-१५६
रयणमयविउलपीढं	जंबू० प० ५-४२
रयणमयवेदिणिवहा	जंबू० प० २-४३
रयणमयवेदिणिवहा	जंबू० प० ४-६१
रयणमयवेदिणिवहा	जंबू० प० ६-३०
रयणमया पल्लाणा	तिलो० प० ८-२५६
रयणमया पल्लाणा	जंबू० प० ४-१६०
रयणमया पासादा	जंबू० प० १-४४
रयणमया बहुविहसो ?	जंबू० प० ६-१०३
रयणमिह इंदणीलं	पवयणसा० १-३०
रयणं चउप्पहे पिव	कत्ति० अणु० २६०
रयणं च संखरयणा	तिलो० प० ५-१७४
रयणाकरेक्कउवमा	तिलो० प० ३-१४४
रयणाण आयरेहिं	तिलो० प० ४-१३५
रयणाण महारयणं	कत्ति० अणु० ३२५
रयणादिछट्ठमंतं	तिलो० प० २-१५६
रयणादिणारयाणं	तिलो० प० २-२८८
रयणायररयणपुरा	तिलो० प० ४-१२५
रयणायरेहिं जुत्तो	जंबू० प० ६-२५
रयणाहरणविहूसिय-	जंबू० प० ४-१८५
रयणिदिणं ससिसूरा	भावसं० ५६१
रयणिविरामे सज्झाय-	छेदपिं० ५७
रयणिसमयम्हि ठिच्चा	वसु० सा० २८५
रयणीय पढमजामे	रिट्ठस० १८३
रयणु व्व जलहिपडियं	कत्ति० अणु० २६७
रविअयणे एक्केक्के	तिलो० प० ७-५००
रविकंत वेदणिवहा	जंबू० प० ६-६७
रविखंडादो बारस-	तिलो० सा० ४०५
रविचंदवादवेउव्वियाण-	भ० आरा० १७२८
रविचंदं तह तारा	रिट्ठस० ४७
रविचंदाणं गहणं	रिट्ठस० १२४
रविचंदाणं पिच्छइ	रिट्ठस० ५१

* पूर्वार्ध उपलब्ध न होनेसे उत्तरार्धका प्रथम चरण दिया गया है।

रोगादंकादीहिं य भ० आरा० ३६१
रोगादंके सुविहिद भ० आरा० १५१५
रोगादिवेदणाओ भ० आरा० १७४८
रोगा विविहा वाधाओ भ० आरा० १५८५
रोगेण वा छुधाए पवयणसा० ३-५२
रोगो दारिद्दं वा भ० आरा० ६५५
रोदण एहावण भोयण मूला० १६३
रोमहदं छक्केसज- तिलो० सा० १०४
रोयगहियस्स कोई रिट्ठस० १६०
रोयाण य वाहीण य आय० ति० ८-२
रोरुगए जेट्ठाऊ तिलो० प० २-२०५
रोवंतहँ सुप्पहु भणइ सुप्प० दो० ५८
रोवंतहँ सुप्पहु भणइ सुप्प० दो० ५६
रोवंतहँ धाहाक्खेण सुप्प० दो ११
रोवंति य विलवंति य जंबू० प० ११-१६०
रोसाइट्ठो णीलो भ० आरा० १३६०
रोसेण महाधम्मो भ० आरा० १४२३
रोहिणिपहुदीण महा- तिलो० प० ४-६६६
रोहीए रुंदादी तिलो० प० ४-१७३४
रोहीए समा वारस- तिलो० प० ४-२३१०
रोही-रोहिदतोरण- जंबू० प० ३-१७६
रोहेडयम्मि सत्तीए भ० आरा० १५४६

ल

लइओ चरित्तभारो सुदखं० ६
लउलीलवंगपउरा जंबू० प० ३-१२
लक्खण-छंद-विवज्जियउ परम० प० २-२१०
लक्खणजुत्ता संपुण्ण- तिलो० प० ३-१२६
लक्खणदो णियलक्खं दव्वस० णय० ३६६
लक्खणदो णियलक्खे दव्वस० णय० ३४८
लक्खणदो तं गेण्हसु दव्वस० णय० २८६
लक्खणदो तं गेण्हसु दव्वस० णय० ३६०
लक्खणदो तं गेण्हसु दव्वस० णय० ३६१
लक्खणदो तं गेण्हसु दव्वस० णय० ३६२
लक्खण-वंजणकलिया जंबू० प० ६-११२
लक्खण-वंजणजुत्ता तिलो० प० ५-२१०
लक्खतियं वाणउदी तिलो० सा० ७४६
लक्खद्धं हीणकदो(दे) तिलो० प० ५-२५५
लक्खमिह भणियमादा दव्वस० णय० ३८८
लक्खविहीणं रुंदं तिलो० प० ५-२६५
लक्खस्स पादमाणं तिलो० प० ४-५६६
लक्खं चालसहस्सा तिलो० प० ४-२१७६
लक्खं छच्चसयाणि तिलो० प० ७-१६०
लक्खं दस पमाणं तिलो० प० ८-६७
लक्खं पंचसयाणि तिलो० प० ७-१५६
लक्खं पंचसहस्सा तिलो० प० ४-१२३६
लक्खाणि अट्ठजोयण- तिलो० प० २-१४८
लक्खाणि एक्कणउदी तिलो० प० ८-२४०
लक्खाणि तिण्णि सावय- तिलो० प० ४-११७६
लक्खाणि तिण्णि सोलस-तिलो० प० ४-१२१८
लक्खाणि पंच जोयण- तिलो० प० २-१५१
लक्खाणि वारसं च्चिय तिलो० प० ८-६५
लक्खा य अट्ठवीसा जंबू० प० ११-११
लक्खूण इट्ठरुंदं तिलो० प० ५-२६०
लक्खेण भजिदअंतिम- तिलो० प० ५-२६२
लक्खेण भजिदसगसग- तिलो० प० ५-२६१
लक्खेणोणं रुंदं तिलो० प० ५-२४२
लग्गंति मक्खियाओ रिट्ठस० १३८
लघुकरणं इच्छंतो गो० क० ५७०
लच्छि वंछेइ णरो कत्ति० अणु० ४२७
लच्छीसंसत्तमणो कत्ति० अणु० १६
लज्जं तदो विहिंसं भ० आरा० ३४०
लज्जं तदो विहिंसं भ० आरा० १०८६
लज्जाए गारवेण व भ० आरा० ४६०
लज्जाए चत्ता मयणेण मत्ता तिलो०प० २-३६५
लज्जा कुलक्कमं छंडिऊण वसु० सा० ११६
लज्जा तहाभिमाणं वसु० सा० १०५
लद्धक्खरपज्जायं अंगप० २-६८
लद्धं अलद्धपुव्वं मूला० ६६
लद्धं जइ चरमतणू भावसं० ४२३
लद्धं तिवारवग्गिद- तिलो० सा० ५१
लद्धा जोयणसंखा तिलो० प० २-१६२
लद्धिअपुण्णतिरिक्खे आस० ति० ३०
लद्धिअपुण्णतिरिक्खे भावति० ५८
लद्धिअपुण्णमणुस्से भावति० ६३
लद्धिअपुण्णं मिच्छे गो० जी० १२६
लद्धिअपुण्णो पुण्णं कत्ति० अणु० १३८
लद्धीणिव्वत्तीणं गो० क० २४०
लद्धी य संजमासंजमस्स कसायपा० ६

लोयसिहराद्दु हेट्ठा तिलो० प० ८-६
लोयस्स कुणइ विण्हू समय० ३२१
लोयस्स ठिदी णेया जंबू० प० ४-३
लोयस्स तस्स णेया जंबू० प० ४-१८
लोयस्स य विक्खंभो जंबू० प० ११-१०७
लोयस्स विदवयवा अंगप० २-११६
लोयस्सुज्जोययरे थोस्सा० २
लोयंते रज्जुघणा तिलो० प० १-१८५
लोयागासु धरेवि जिय परम० प० २-२५
लोयाणमसंखेज्जं लद्धिसा० ३३०
लोयाणं ववहारं कत्ति० अणु० २६३
लोयायासट्ठाणं तिलो० प० १-१३५
लोयायासे ताव इदरस्स णियमसा० ३६
लोयालोयपयासं तिलो० प० ४-१
लोयालोयविदण्हू धम्मर० १२६
लोयालोयविभेयं दव्वस० णय० १३४
लोयालोयं जाणइ णियमसा० १६८
लोयालोयं सव्वं तच्चसा० ६६
लोयालोयाण तहा तिलो० प० १-७७
लोले च लोलगे खलु जंबू० प० ११-१५०
लोहकलाहावड्ढिद- तिलो० प० २-३२६
लोहकोहभयमोहबलेणं तिलो० प० २-३६३
लोहमए कुतरडे भावसं० ५४६
लोहमयजुवइपडिमं तिलो० प० २-३३८
लोहस्स अवरकिट्टि- लद्धिसा० ४६७
लोहस्स असंकमणं लद्धिसा० ३२८
लोहस्स तदियसंगह- लद्धिसा० ५६२
लोहस्स तदीयादो लद्धिसा० ५७०
लोहस्स पढमकिट्टी लद्धिसा० ५६४
लोहस्स पढमचरिमे लद्धिसा० ५५६
लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं * गो० क० १४०
लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं * कम्मप० १३६
लोहादो कोहादो लद्धिसा० ५१०
लोहिय अंजणणामो जंबू० प० ४-६२
लोहिं मोहिउ ताम तुहुं पाहु० दो० ८१
लोहु मिल्हि चउगइसलिलु सावय० दो० १३४
लोहु लक्खु विसु सगु भयगु सावय० दो० ६७
लोहेक्कुदओ सुहुमे गो० क० ६६६
लोहेण पीदमुदयं भ० आरा० ४८६
लोहोदयभरिदाओ तिलो० सा० ११०

व

वइ चउगोउरसालं तिलो० सा० ६०६
वइचित्तहेम(मेह)कूडा तिलो० प० ४-११७
वइणइकी विण्णएणं तिलो० प० ४-१०३६
वइपरिवेढो गामो तिलो० प० ४-१३९६
वइरजस-णामधेओ सुदखं० ६६
वइरं रदणेसु जहा भ० आरा० १८६६
वइरोअणो य धरणा- तिलो० प० ३-१८
वइसाहकिण्हचोद्दसि- तिलो० प० ४-१२०३
वइसाहकिण्हपक्खे तिलो० प० ७-५४३
वइसाहपुण्णमीए तिलो० प० ७-५४५
वइसाहबहुलदसमी- तिलो० प० ४-६३२
वइसाहसुक्कदसमी- तिलो० प० ४-६८२
वइसाहसुक्कपक्खे तिलो० प० ७-५५१
वइसाहसुक्कपाडिव- तिलो० प० ४-१११६
वइसाहसुक्कबारसि- तिलो० प० ७-५५७
वइसाहसुक्कसत्तमि- तिलो० प० ४-११८६
वइसाहसुद्धदसमी- तिलो० प० ४-६६६
वइसाहसुद्धपाडिव- तिलो० प० ४-६५६
वउ तउ संजमु सील जिया(य) जोगसा० ३२
वउ तउ संजमु सीलु जिय जोगसा० ३१
वक्कंतयवक्कंता तिलो० प० २-४१
वक्केसरिमारूढो तिलो० प० ५-८६
वक्खाणडा करंतु बुहु पाहु० दो० ८४
वक्खारवास विरहिय तिलो० सा० ७५८
वक्खारसयाणुदयो तिलो० सा० ७४५
वक्खाराणं दोसुं तिलो० प० ४-२३८६
वग्गणरासिपमाणं गो० जी० ३११
वग्गसलागत्तिदयं तिलो० सा० ८५
वग्गसलागप्पहुदी तिलो० सा० ८६
वग्गसलाविरलवद्दि- गो० प० १२६
वग्गसला रूवहिया तिलो० सा० ७२
वग्गादुवरिमवग्गे तिलो० सा० ७४
वग्गिदवारा वग्गसलागा तिलो० सा० ७६
वग्घपरद्धो लग्गो भ० आरा० १०६३
वग्घ-विस-चोर-अग्गी- भ० आरा० १२३
वग्घादि तिरियदीपा तिलो० प० ४-११०
वग्घादीणं दोसे भ० आरा० ११२

वणवेदिएहिं जुत्तो	जंबू० प० ८-१७१
वणवेदिएहिं जुत्तो	जंबू० प० ६-१२
वणवेदिएहिं जुत्तो	जंबू० प० ६-५४
वणवेदिएहि जुत्तो	जंबू० प० ६-१३४
वणवेदियपरिखित्ता	जंबू० प० २-१०५
वणवेदियपरिखित्ता	जंबू० प० २-१६६
वणवेदिविप्फुरंता	जंबू० प० ६-१४४
वणवेदीजुत्ताओ	जंबू० प० ४-११७
वणवेदीपरिखित्ता	जंबू० प० २-६३
वणवेदीपरिखित्ता	जंबू० प० २-६८
वणवेदीपरिखित्ता	जंबू० प० ४-७७
वणवेदीपरिखित्ता	जंबू० प० ४-२४१
वणवेदीपरिखित्ते	जंबू० प० ४-८२
वणसंडवत्थणाहा	तिलो० प० ४-१२६
वणसंडसंपरिउडो	जंबू० प० ८-६५
वणसंडसंपरिउडो	जंबू० प० ६-३७
वणसंडणामजुत्तो	तिलो० प० ५-८१
वणसंडेसुं दिव्वा	तिलो० प० ४-२५३५
वणसंडेहि य रम्मो	जंबू० प० ८-३६
वणसंडेहिं सहिया	जंबू० प० ६-१४२
वणि देवलि तित्थइँ भमहिं	पाहु० दो० १८७
वण्णचउक्कमसत्थं	गो० क० १७०
वण्णरणउलो विज्जो	भ० आरा० १५३२
वण्ण रस गंध एक्कं	दव्वस० णय० १०१
वण्णरसगंधजुत्तं	भ० आरा० ५६६
वण्णरसगंधपासं	तिलो० प० ८-५६८
वण्णरसगंधफासं	पंचसं० ४-४१०
वण्णरसगंधफासा	पंचत्थि० ५१
वण्णरसगंधफासा	पवयणसा० २-४०
वण्णरसगंधफासा	णियमसा० ४५
वण्णरसगंधफासा ⁂	पंचसं० २-६
वण्णरसगंधफासा ⁂	कम्मप० १०५
वण्णरसगंधफासा	पंचसं० २-७
वण्णरसगंधफासेहिं	वसु० सा० ४७६
वण्णरसगंधफासे	तिलो० प० १-१००
वण्णरसगंधफासे	तिलो० प० ३-२०१
वण्ण रस पंच गंधा	दव्वसं० ५
वण्णविहूणउ णाणमउ	पाहु० दो० ३८
वण्णिज्जइ गइभेया	अंगप० २-११०
वण्णिदकुराण सयरी-	तिलो० प० ४-२५५५
वण्णेदि तप्फलमवि	अंगप० ३-२६
वण्णेसु तीसु एक्को	पवयणसा० ३-२४ॱ०१५(ज)
वण्णो णाणं ण हवइ	समय० ३९३
वण्णोदयसंपादित(य)-	गो० जी० ५३५
वण्णोदयेण जणिदो	गो० जी० ४६३
वण्ही-अरुणा देवा	तिलो० प० ८-६२४
वत्तणगुणजुत्ताणं	भावसं० ३०६
वत्तणहेदू कालो	गो० जी० ५६७
वत्ता कत्ता च मुणी	भ० आरा० ५००
वत्तारा बहुभेया	अंगप० २-८०
वत्तावत्तपमाए ⁂	पंचसं० १-१४
वत्तावत्तपमाए ⁂	भावसं० ६०१
वत्तावत्तपमादे ⁂	गो० जी० ३३
वत्तियमाणेण तहा	जंबू० प० १३-८४
वत्थक्खंडं दुद्दिय-	पवयणसा० ३-२०ॱ०४(ज)
वत्थस्स सेदभावो	समय० १५७
वत्थस्स सेदभावो	समय० १५८
वत्थस्स सेदभावो	समय० १५६
वत्थंगदुमा णेया	जंबू० प० २-१३३
वत्थंगा णित्तं(च्चं)पड-	तिलो० प० ४-३५५
वत्थंगा वरवत्थे	भावसं० ५८६
वत्थाजिणवक्केण य	मूला० ३०
वत्थादियसम्माणं	वसु० सा० ४०६
वत्थित्थिभूसणाणं	धम्मर० १५१
वत्थीहिं अवदवणाता-	भ० आरा० १४६६
वत्थुणिमित्तं भावो ×	गो० जी० ६७१
वत्थुणिमित्तो भावो ×	पंचसं० १-१७८
वत्थु पणट्ठइ जेम बुहु	परम० प० २-१८०
वत्थुसमग्गो णाणी	रयणसा० ७८
वत्थुसमग्गो मूढो	रयणसा० ७७
वत्थुस्स पदेसादो	गो० जी० ३११
वत्थुं पडुच्च जं पुण	समय० २६५
वत्थूण अंसगहणं	दव्वस० णय० ३६५
वत्थूण जं सहावं	दव्वस० णय० ३७५
वत्थू पमाणविसयं	दव्वस० णय० १७१
वत्थू हवेइ तच्चं	दव्वस० णय० ५४
वद-णियमाणि धरंता	समय० १५२
वद्दंसणा हु भट्टे	दंसस० ६१
वदमंदसमिदिमादिहि-	भ० आरा० १६८१
व(द)दुक्कमाणमल्लपरम-	तिलो० सा० ७८६

वदसमिदिकसायाणं ※	पंचसं० १–१२७
वदसमिदिकसायाणं ※	गो० जी० ४६४
वदसमिदिपालणाए	वा० अणु० ७६
वद-समिदि-सील-संजम-	णियमसा० ११३
वदसमिदिंदियरोधो	पवयणसा० ३–८
वदसमिदिंदियरोहो	दव्वस० णय० ३३३
वदसमिदीगुत्तीओ	समय० २७३
वदसमिदीगुत्तीओ	दव्वसं० ३५
वदसीलगुणा जम्हा	मूला० १००३
वदिवददो तं देसं	पवयणसा० २–४७
वधजायणं अलाहो	मूला० २४५
वध-बंध-रोध-धणहरण-	भ० आरा० ७६६
वप्पा सुवप्पा महावप्पा +	तिलो० प० ४–२२०७
वप्पा सुवप्पा महावप्पा +	तिलो० सा० ६६०
वमिगं अमेज्झसरिसं	भ० आरा० १०१६
वमिदा अमेज्झमज्झे	भ० आरा० १०१३
वमियं व अमेज्झं वा	भ० आरा० १०१८
वयगुणसीलपरीसहजयं	रयणसा० १३०
वयगुत्ती मणगुत्ती	चारित्तपा० ३१
वयणकमलेहिं गणिअभि-	भ० आरा० १४७८
वयणखिदिरहिय उच्छय-	जंबू० प० ३–२१३
वयणपडिवत्तिकुसलत्तणं	भ० आरा० ६१२
वयणम्मि णासियाए	रिट्ठस० ३२
वयणवहा जावदिया	अंगप० २–३४
वयणमयं पडिकमणं	णियमसा० १५३
वयणियमसीलजुत्ता	भावसं० २५
वयणियमसीलसंजम-	णाणसा० ५१
वयणेण एइ रुहिरं	रिट्ठस० २६
वयणेहिं हेऊहिं य ×	पंचसं० १–१६१
वयणेहिं वि हेदूहिं वि ×	गो० जी० ६४६
वयणोच्चारणकिरियं	णयमसा० १२२
वय-तव-संजम-मूलगुण	जोगसा० २६
वय-तव-सीलसमग्गो	वसु० सा० २२२
वयभट्ठकुंठरुदेहि	भावसं० १८६
वयभंगकारणं होइ	वसु० सा० २१४
वयमुह-वग्घ(वग्व)मुहक्खा	तिलो०प०४–२७२६
वयवग्घधूगकागहि-	तिलो० सा० १८५
वयवग्घतरच्छसिगाल-	तिलो० प० २–३१६
वयसमिदिगुत्तिजुत्ता	आ० भ० ४
वयसमिदिगुत्तियादी	सुदखं० ६
वयसम्मत्तविसुद्धे	बोधपा० २६
वयससुभासुभपरिणाम-	छेदपिं० ३२६
वरअट्ठपाडिहारेहिं	वसु० सा० ४७३
वरअवरमज्झिमाणि	तिलो० प० ७–११०
वरइंदणंदिगुरुणो	गो० क० ३६६
वरइंदीवरवण्णा	जंबू० प० ३–२००
वरकणयरयणमरगय-	जंबू० प० १–४०
वरकण्णिय दुक्कोसा	जंबू० प० ६–१२४
वरकप्परुक्खणिवहा	जंबू० प० २–४४
वरकप्परुक्खरम्मा	तिलो० प० ४–१४१
वरकमलकुमुदकुवलय-	जंबू० प० ५–७६
वरकमलगब्भगोरो	जंबू० प० ८–६४
वरकमलसालिएहि य	जंबू० प० ६–१७
वरकलमसालितंडुल-	वसु० सा० ४३०
वरकंचणकयसोहा	तिलो० प० ८–२८३
वरकाओदंसमुदा	गो० जी० ५२५
वरकुट्ठवीयबुद्धी	जोगिभ० १८
वरकुंडकुंडदीवा	जंबू० प० ३–१६२
वरकेसरिआरूढो	तिलो० प० ५–८६
वरकोमलपल्लाणा	जंबू० ४–१६६
वरगामणयरणिवहो	जंबू० प० ६–३३
वरगामणयरपट्टण-	जंबू० प० ६–१४५
वरचक्कवायरूढो	जंबू० प० ५–१०१
वरचक्कं आरूढो	तिलो० प० ५–६०
वरचंदसूरगहणं	अंगप० २–१०६
वरचामरभामंडल-	तिलो० प० ४–१६६२
वरचामरभामंडल-	जंबू० प० ३–१४०
वरचित्तकम्मपउरा	जंबू० प० ३–५८
वर जिय पावइँ सुंदरइँ	परम० प० २–५६
वरणगर-खेड-कव्वड-	जंबू० प० ८–१७७
वरणदितडेसु गिरिसु य	जंबू० प० १–७०
वरणदिगामेहि जुदा	जंबू० प० ८–१२०
वरणदिया णायव्वा	जंबू० प० ८–१८६
वरणालियेहिं रइओ	जंबू० प० ४–४६
वर णिय-दंसण-अहिमुहउ	परम० प० २–५८
वरतुरयसमारूढो	जंबू० प० ५–६६
वरतोरणजुत्ताओ	जंबू० प० ७–६६
वरतोरणदाराणं	जंबू० प० ६–१४३
वरतोरणसंछण्णो	जंबू० प० ८–६६
वरतोरणस्स उवरिं	तिलो० प० ४–२५०

वरतोरणेसु णेया	जंबू० प० ८-५२	वररयणायरपउरो	जंबू० प० ६-८०
वरतोरणेहिं जुत्ता	जंबू० प० ७-१०४	वरवज्जकणयमरगय-	जंबू० प० ६-६८
वरदत्तो य वरंगो	णिव्वा० भ० ४	वरवज्जकवाडजुदा	तिलो० प० ४-४४
वरदहसिदादवत्ता *	जंबू० प० ३-३३	वरवज्जकवाडजुदा	जंबू० प० २-६१
वरदहसिदादवत्ता *	तिलो०प०४-६६	वरवज्जकवाडजुदो	तिलो० प० ४-१५५
वरदाणदो विदेहे	तिलो० सा० ७६४	वरवज्जकवाडाणं	तिलो० प० ४-२३५
वरदेविदेवपउरा	जंबू० प० ४-२०६	वरवज्जणीलमरगय-	जंबू० प० ८-१६१
वरपउमरायकेसर-	जंबू० प० १३-१०७	वरवज्जमया वेदी	जंबू० प० ११-४२
वरपउमरायपायार-	जंबू० प० ६-११३	वरवज्जरयणमूलो	जंबू० प० ८-११०
वरपउमरायमणिमय-	जंबू० प० ४-१७५	वरवज्जरयदमरगय-	जंबू० प० ६-१४०
वरपउमरायमणिमय-	जंबू० प० ६-१०७	वरवज्जरिसहवइरय-	जंबू० प० ७-१११
वरपउमरायमरगय-	जंबू० प० ८-७५	वरवज्जविविहमंगल-	वसु० सा० ४०३
वरपउमरायवंधूय-	तिलो० प० ८-२५२	वरवट्टचीणखोमाइयाइँ	वसु० सा० २५६
वरपट्टणं विरायइ	जंबू० प० १-४३	वरवण्णगंधरसफासा	मूला० १०५३
वरपडहभेरिमद्दल-	जंबू० प० ४-५८	वरवयतवेहिं सग्गो	मोक्खपा० २५
वरपडहभेरिमद्दल-	जंबू० प० ५-६६	वरवसभसमारूढो	जंबू० प० ५-६३
वरपंचवण्णजुत्ता	जंबू० प० १०-८२	वरवारणेहिं समं(म्मं)	छेदपिं० ३१५
वरपाडिहेरअइसय-	जंबू० प० ४-२१५	वरवारणमारूढो	तिलो० प० ५-८५
वरबहुलपरिमलाभो-	वसु० सा० २५७	वरविरहं छम्मासं	तिलो० सा० ५३०
वरभद्दसालमज्झे	तिलो० प० ४-२१२८	वरविविहकुसुममाला-	तिलो० प० ३-२२५
वरभवणजाणवाहण-	बा० अणु० ३	वरवेदिएहिं जुत्ता	जंबू० प० ५-६१
वरभवणजाणवाहण-	धम्मर० ५	वरवेदिएहिं जुत्ता	जंबू० प० ६-११८
वरभूहरसंकासा	जंबू० प० ३-६४	वरवेदिएहिं जुत्ता	जंबू० प० ८-११२
वरमउडकुंडलधरा	जंबू० प० ६-२३	वरवेदिएहिं जुत्ता	जंबू० प० ६-६०
वरमउडकुंडलधरो	जंबू० प० ३-६३	वरवेदिएहिं जुत्ता	जंबू० प० ६-१५६
वरमउडकुंडलहरो	जंबू० प० ११-२२२	वरवेदिएहिं जुत्तो	जंबू० प० ६-६
वरमज्झजहण्णाणं	तिलो० सा० ८८६	वरवेदिएहिं मणिमय-	जंबू० प० ६-५१
वरमज्झिमअवरभोगज-	तिलो० प० ५-२८६	वरवेदियपरिक्खित्ते	जंबू० प० ३-११०
वरमज्झिमअवराणं	तिलो० सा० ६७६	वरवेदिया विचित्ता	जंबू० प० ३-१५
वरमणिविभूसियं च	जंबू० प० ११-३३०	वरवेदियाहिं जुत्ता	तिलो० प० ४-१०६६
वरमुरवदुंदुहीओ	धम्मर० १६२	वरवेदियाहिं रम्मा	तिलो० प० ४-११३७
वररयणकंचणमओ	तिलो० प० ४-२५७	वरवेदीकडिसुत्ता	तिलो० प० ४-१३
वररयणकंचणमया	तिलो० प० ४-२७४	वरवेदीकडिसुत्ता	तिलो० प० ४-१७
वररयणकंचणाए	तिलो० प० ३-२३५	वरवेदीपरिक्खित्ते	तिलो० प० ४-२२८
वररयणकेदुतोरण-	तिलो० प० ४-७६०	वरसंति कालमेहा	तिलो० सा० ६३१
वररयणदंडमंडण-	तिलो० प० ४-८४७	वरसालवप्पपउरो	जंबू० प० ८-१
वररयणदंडहत्था	तिलो० प० ८-३६१	वरसालवप्पपउरो	जंबू० प० ८-१५
वररयणमउडधारी	तिलो० प० १-४२	वरसिहरुप्पन्नण-	जंबू० प० ३-४५
वररयणमोडधारी	तिलो० प० ३-१२८	वरसिंग खाडलासिंग	छेदपिं० ११८
वररयणविरइदाणि	तिलो० प० ४-१७	वरसीहसमारूढो-	जंबू० प० ५-१२

वरसुरहिगंधसलिला	जंबू० प० ६–२६
वरसूचिअंगुलेहि य	जंबू० प० १३–२५
वरं गणपवेसादो	मूला० ६८३
वरिससहस्सेण पुरा	भावसं० १३१
वरिसंति खीरमेघा	तिलो० प० ४–१५५६
वरिसंति दोणमेघा	तिलो० प० ४–२२४६
वरिसाण तिण्णि लक्खा	तिलो० प० ४–१४६३
वरिसादीण सलाया	तिलो० प० ४–१०४
वरिसादु दुगुण-वड्ढी(अड्ढी)	तिलो०प० ४–१०६
वरिसे महाविदेहे	तिलो० प० ४–१७७८
वरिसे वरिसे चउविह-	तिलो० प० ५–८३
वरिसे संखेज्जगुणा	तिलो० प० ४–२६२६
वरुणो त्ति लोयपालो	तिलो० प० ४–१८४६
वरुणो वरुणादिपहो	तिलो० सा० ६६३
वरु विसु विसहरु वरु जलणु	पाहु० दो० २०
वलयगजदंतपिच्छ- (?)	छेदपिं० ६८
वलया मुहेण णेया	जंबू० प० १०–२६
वलयोवमपीढेसुं	तिलो० प० ४–८६८
वल्लहु अवगुण दावइ जेत्तिउ	सुप्प० दो० ६६
वल्लीतरुगुच्छलदुब्भ-	तिलो० प० ४–२५१
ववगद-पण-वण्ण-रसो	पंचत्थि० २४
ववदेसा संठाणा	पंचत्थि० ४६
ववहारणयचरित्ते	णियमसा० ५५
ववहारणयो भासदि	समय० २७
ववहारभासिएण उ	समय० ३२४
ववहारमयाणंतो	भ० आरा० ४५२
ववहाररोमरासिं	तिलो० प० १–१२६
ववहारसोहणाए	मूला० ६४६
ववहारस्स दरीसण-	समय० ४६
ववहारस्स दु आदा-	समय० ८४
ववहारं रिउसुत्तं *	णयच० १४
ववहारं रिउसुत्तं *	दव्वस० णय० १८६
ववहारादो वंधो	णयच० ७७
ववहारा सुहदुक्खं	दव्वसं० ६
ववहारिओ पुण णओ	समय० ४१४
ववहारुद्धारद्धा +	तिलो० प० १–६४
ववहारुद्धारद्धा +	जंबू० प० १३–३६
ववहारुद्धारद्धा +	तिलो० सा० ६३
ववहारुवजोग्गाणं	तिलो० सा० ६१
ववहारे जं रोमं	जंबू० प० १२–२६

ववहारेण दु आदा (एवं)	समय० ६८
ववहारेण दु एदे	समय० ५६
ववहारेण य लग्गा	ढाढसी० ३०
ववहारेण य सारो	आरा० सा० ३
ववहारेणुवदिस्सइ	समय० ७
ववहारेयं रोमं	तिलो० सा० १००
ववहारो पुण कालो	गो० जी० ५७६
ववहारो पुण कालो	गो० जी० ५८६
ववहारो पुण तिविहो	गो० जी० ५७७
ववहारोऽभूयत्थो	समय० ११
ववहारो य वियप्पो	गो० जी० ५७१
वव्वगवगमोयमसारगल्ल-	तिलो० प० २–१४
वव्वर-चिलाद-खुज्जय-	तिलो० प० ८–३८८
वव्वरिचिलादि-दासी	जंबू० प० ११–२८३
वसईमज्झगदक्खिण-	तिलो० सा० ६६४
वसणइँ तावइँ छंडि जिय	सावय० दो० ५२
वसदीए पलिविदाए	भ० आरा० १५५७
वसधि(दि)सु अप्पडिवद्धा	मूला० ७८८
वसधीसु य उवधीसु य	भ० आरा० १५३
वसभाणीयस्स तहिं	जंबू० प० ११–२८७
वस-मज्ज-मंस-सोणिय-	मूला० ८४५
वस-रुहिर-पूयमज्झे	जंबू० प० ११–१६२
वसह-करि-काग-रासह-	रिट्ठस० ७८
वसहगये वहुसलिला	आय० ति० १०–२०
वसहगये सलिलभयं	आय० ति० १०–१३
वसहतुरंगमरहगज-	तिलो० प० ८–२३५
वसहतुरंगमरहगय-	जंबू० प० ४–१५६
वसहाणीयादीणं	तिलो० प० ८–२७१
वसहिट्ठकामधरणिम्मा-	तिलो० सा० ५३८
वसहिय दुवारमूले	छेदपिं० २१५
वसहीए गब्भगिहे	तिलो० प० ४–१८६३
वसहेसु दामयट्ठी	तिलो० प० ८–२७४
वसहो धय-धूमगओ	रिट्ठस० २१०
वसियरणं आइट्ठी	भावसं० ४५६
वसियव्वं कुच्छीए	धम्मर० ६२
विसुधम्मि वि विहरंता	मूला० ७६८
वसुमित्त-अग्गिमित्ता	तिलो० प० ४–१५०५
वसु विसया रस वेया	आय० ति० १–३५
वस्ससदसहस्साइं	कसायपा० १३१ (७८)
वस्ससदं दसगुणिदं	जंबू० प० १३–६

वायाम-गमरा मुणिणो छेदस० ३०
वारणादंतसरिच्छा तिलो० प० ४-२००६
वारवदी य असेसा भ० आरा० १३७४
वाराणसीए पुहवी- तिलो० प० ४-५३१
वारिउ तिमिरु जिणेसरहँ सावय० दो० १७२
वारि एक्कम्मि जम्मे सीलपा० २२
वारुणि आसासत्ता तिलो० सा० ६५५
वारुणिदीवादीए जंबू० प० १२-२५
वारुणिदीवे णेया जंबू० प० १२-३८
वारुणिवर खीरवरो मूला० १०८०
वारुणिवरजलधीए जंबू० प० १२-२६
वारुणिवरजलहिपहू तिलो० प० ५-४२
वारुणिवरादिउवरिम- तिलो० प० ५-२६६
वालेसुं दाढीसुं * तिलो० प० २-२६०
वाल्लेसु य दाढीसु य * मूला० ११५६
वावारविप्पमुक्का णियमसा० ७५
वावीकूवसराणं आय० ति० १०-१६
वावीण बाहिरेसुं तिलो० प० ५-६७
वावीणं पुव्वादिसु तिलो० सा० ६७२
वावीणं बहुमज्झे तिलो० प० ४-१६१४
वावीणं बहुमज्झे तिलो० प० ५-६५
वावीहि विमलजलसी- जंबू० प० ११-३५५
वासकदी दसगुणिदा तिलो० प० ४-६
वासतए अडमासे तिलो० प० ४-१५३३
वासदिणमास वारस- तिलो० सा० ३२६
वासदिणमास वारस- तिलो० प० ५-२८१
वासद्धकदी तिगुणा तिलो० सा० २६
वासद्धघणं दलियं तिलो० सा० १६
वासपुधत्ते खइया गो० जी० ६५६
वासरसरूवचव्भू(सज्भु)णि-तिलो० प० ३-२३७
वासवतिरीडचुंबिय- जंबू० प० ७-१५२
वाससदमेक्कमाऊ तिलो० प० ४-५८१
वाससदसहस्साणि जंबू० प० १३-१६
वाससयं तह कालो सुदखं० ७२
वाससहस्से सेसे तिलो० प० २-१५६७
वासस्स पढममासे तिलो० प० १-६६
वासाओ वीसलक्खा तिलो० प० ४-१४५६
वासाण दो सहस्सा तिलो० प० ४-६५७
वासाणं लक्खा छह तिलो० प० ४-१४६१
वासाणि णव सुपासे तिलो० प० ४-६७५
वासाणुयेग्ग(गय ?)संपत्ता- वसु० सा० ४२८
वासा तेरसलक्खा तिलो० प० ४-१४६०
वासादिकयपमाणं कत्ति० अणु० ३६८
वासायामोगाढं तिलो० सा० ५६८
वासारत्ते दिवसे छेदस० ३१
वासा सोलसलक्खा तिलो० प० ४-१४५७
वासा सोलसलक्खा तिलो० प० ४-१४५८
वासा हि दुगुणउदओ तिलो० प ५-२३३
वासिगि कमले संख मुहुदओ तिलो०सा० ३२६
वासिदद्दियंतरेहिं तिलो० प० ५-११०
वासुदयभुजं रज्जू तिलो० सा० १३८
वासुदया दीहत्तं तिलो० सा० ८६०
वासो विभंगकत्तीणदीण तिलो० प० ४-२२१७
वासो जोयणलक्खो तिलो० प० २-१५६
वासो तिगुणो परिही तिलो० सा० १७
वासो पणघणकोसा तिलो० प० ४-१६७३
वासो वि माणुसुत्तर- तिलो० प० ५-११६
वाहणवत्थप्पहुदी तिलो० प० ४-१८५२
वाहणवत्थविभूसण- तिलो० प० ४-१८४८
वाहणवत्थाभरणा तिलो० प० ४-१८४६
वाहभयेण पलादो भ० आरा० १३१६
वाहिगहियस्स मरणं आय० ति० २-२४
वाहिज्जइ गुरुभारं धम्मर० ७५
वाहि-णिहाणं देहो तिलो० प० ६३७
वाहि-पडिकार-हेदुं छेदपिं० १२६
वाहीणे वाहिभयं आय० ति० ३-१५
वाहि व्व दुप्पसज्झा भ० आरा० ७१
विउणम्मि सेलवासे तिलो० प० ४-२७५४
विउणा पंचसहस्सा तिलो० प० ४-१११४
विउलगिरितुंगसिहरे जंबू० प० १-६
विउलगिरिपव्वए (मत्थए) इंद- वसु० सा० ३
विउलमदीओ बारस तिलो० प० ४-११०२
विउलमदीणं बारस- तिलो० प० ४-१०६६
विउलमदी य सहस्सा तिलो० प० ४-११११
विउलमदी वि य छद्धा गो० जी० ४३६
विउलसिलाविच्चाले तिलो० प० २-३३०
विकहाइविप्पमुक्को रयणसा० १००
विकहाइसु रुदट्टज्झाणेसु रयणसा० ६३
विकहा तह य कसाया * भावसं० ६०२
विकहा तहा कसाया * पंचसं० १-१५

स

सण्णाद्धवद्धकवया	जंबू० प० ११-२४३
सण्णाइभेयभिण्णं	दव्वस० णय० ३१८
सण्णाओ कसाए वि य	भ० आरा० २६८
सण्णाओ य तिलेस्सा	पंचत्थि० १४०
सण्णा-गारव-पेसुण्ण-	भ० आरा० ११२६
सण्णाणतिगं अविरद-	गो० जी० ६८७
सण्णा-णदीसु ऊढा	भ० आरा० १२०३
सण्णाणपंचयादी	गो० क० ३२४
सण्णाणरयणदीओ	तिलो० प० ३-२४३
सण्णाणरासिपंचय-	गो० जी० ४६३
सण्णाणं चउभेयं	णियमसा० १२
सण्णाणे चरिमपणं	गो० क० ५४७
सण्णासणकाले पुण	छेदपिं १४६
सण्णासेण मरंतयहँ	सावय० दो० ७१
सण्णाहिं गारवेहिं अ	मूला० ७३४
सण्णिअपज्जत्तेसुं	पंचसं० ४-४२
सण्णि असण्णिचउक्के	गो० क० १४६
सण्णिअसण्णिसु दोण्णि य	सिद्धंत० ११
सण्णिअसण्णिसु वारस	सिद्धंत० २०
सण्णिअसण्णी आहा-	पंचसं० ४-३८३(ख)
सण्णिअसण्णी जीवा	तिलो० प० ३-२००
सण्णिअसण्णीण तहा	मूला० ११७१
सण्णिअसण्णी होंति हु	तिलो० प० ५-३०६
सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य	गो० क० ६०१
सण्णिम्मि सण्णिदुविहो	पंचसं० ४-१६
सण्णिम्मि सव्वबंधा	पंचसं० ५-४६३
सण्णिम्मि सव्ववंधो	गो० क० ७०६
सण्णि-वि-सुहुमणि पुण्णे	लद्धिसा० ६२५
सण्णिस्स ओवभंगो	पंचसं० ५-२०४
सण्णिस्स वार सोदे	गो० जी० १६८
सण्णिस्स मणुस्सस्स य	गो० क० ५३६
सण्णिस्स हु हेट्ठादो	गो० क० १५०
सण्णिस्स होंति सयला	आस० ति० ५६
सण्णिस्सुववादवरं	गो० क० २३७
सण्णीओघे मिच्छे	गो० जी० ७१६
सण्णी छस्संहडणो *	गो० क० ३१
सण्णी छस्संहडणो *	कम्मप० ८५
सण्णी जीवा होंति हु	तिलो० प० ४-४१८
सण्णी पज्जत्तस्स य	पंचसं० ५-२५६
सण्णी य भवणदेवा	तिलो० प० ३-१६२
सण्णी वि तहा सेसे	गो० क० ५४१
सण्णीसु असण्णीसु य	कसायपा० ८२(२६)
सण्णी सण्णिप्पहुदी	गो० जी० ६६६
सण्णी हुवेदि सव्वे	तिलो० प० ४-२६४०
सतिपंचमचउदिवसे	तिलो० सा० ४०६
सत्तअपज्जत्तेसु य	पंचसं० ५-२६२
सत्तअपज्जत्तेसुं	पंचसं० ५-२६७
सत्तकरणाणि अंतर	लद्धिसा० ४३३
सत्तकरणाणि अंतर-	लद्धिसा० २४६
सत्तक्खरं च मंतं	णाणसा० २५
सत्तखणवसत्तेक्का	तिलो० प० ४-२७६१
सत्तगुणे ऊणंकं	तिलो० प० ७-५३०
सत्तग्गट्ठिदिबंधो	लद्धिसा० ६१
सत्तघणहरिदलोयं	तिलो० प० १-१७६
सत्त च्चिय भूमीओ	तिलो० प० २-२४
सत्त च्चिय लक्खाणि	तिलो० प० ८-१७२
सत्तछअट्ठचउक्का	तिलो० प० ७-३८७
सत्तच्छ पंच चउ तिय	तिलो० प० ८-३२७
सत्तट्ठ छक्कठाणा	पंचसं ३-४
सत्तट्ठणवदसादि(णि)य	तिलो० प० ८-३६६
सत्तट्ठणवदसादिय-	तिलो० प० ८-२१०
सत्तट्ठणवदसादिय-	तिलो० ४-८३
सत्तट्ठणवदसादिय-	तिलो० प० ३-५७
सत्तट्ठ णव य पण्णरस	पंचसं० ५-४८२
सत्तट्ठप्पहुदीओ	तिलो० प० ७-५६
सत्तट्ठप्पहुदीहिं	तिलो० प० ४-१७०६
सत्तट्ठबंध अट्ठो-	पंचसं ५-५
सत्तट्ठमभूमीया	जंबू० प० ३-६०
सत्तट्ठाणे रज्जू	तिलो० प० १-२५६
सत्तट्ठिगयणखंडे	तिलो० प० ७-५२१
सत्त णभं णव य छक्का	तिलो० प० ७-३३६
सत्तणवअट्ठसगणच-	तिलो० ४-२५६७
सत्त णव छक्क पण णभ	तिलो० प०७-३६४
सत्तण्हं उवसमदो	गो० जी० २६
सत्तण्हं उवसमदो	भावति० ६
सत्तण्हं गुणसंकम-	गो० क० ४२२
सत्तण्हं पढमट्ठिदि-	लद्धिसा० ४४६
सत्तण्हं पढमट्ठिदि-	लद्धिसा० ४४५
सत्तण्हं पयडीणं	लद्धिसा० १६३
सत्तण्हं पयडीणं	लद्धिसा० १६५

सत्तारिसहस्सइगिसय-	तिलो० प० ४–१२१७
सत्तारिसहस्सजोयण-	तिलो० प० ४–७१
सत्तारिसहस्सणवसय-	तिलो० प० ८–२०
सत्तारिसहस्सणवसय-	तिलो० प० ८–८०
सत्तारिसहस्सलक्खा	अंगप० १–४५
सत्त वि तच्चाणि मए	वसु० सा० ४७
सत्त वि रुक्खा परुसा	जंबू० प० ११–१७६
सत्त वि सत्त वि कच्छा	जंबू० प० ११–२८५
सत्त वि सिखासणाणि	तिलो० प० २–२२६
सत्तविहरिद्धिपत्ता	जंबू० प० ७–६३
सत्तसए तेवण्णे	दंसणसा० ३८
सत्तसयकुंभासेट्ठि(हि)य	जंबू० प० १३–१२४
सत्तसयचावतुंगो	तिलो० प० ४–४४७
सत्तसयणउदिकोडी-	जंबू० प० १–२५
सत्तसयसुण्णयदुग्गय-	अंगप० २–४०
सत्तसया इक्कहिया	तिलो० प० ७–१७२
सत्तसयाणि चेव य	तिलो० प० ४–११४१
सत्तसया पण्णासा	तिलो० प० ४–२०७५
सत्तसया पण्णासा	जंबू० प० ६–८८
सत्त-सर-महुर-गीयं	तिलो० प० ५–२२२
सत्तसहस्सणदीहि य	जंबू० प० ८–१३८
सत्तसहस्साणि धणू	तिलो० प० ४–६७
सत्तसहस्साणि पुढं	तिलो० प० ४–११२५
सत्तसु णरयावासे	भावपा० ६
सत्तसु पुण्णेसु हवे *	सिद्धंत० ४४
सत्तसु पुण्णेसु हवे *	सिद्धंत० ७०
सत्तसु य अणीएसुं	तिलो० प० ४–२१७८
सत्त-हिद-दुगुण-लोगो	तिलो० प० १–२३२
सत्त-हिद-बारसंसा	तिलो प० १–२३१
सत्तंगरज्जणवणिहि-	रयणसा० २०
सत्तं जो ण हु मण्णइ	दव्वस० णय० ४६
सत्तं तिणउदिपहुदी-	गो० क० ७४८
सत्तं दुणउदिणउदी-	गो० क० ७५२
सत्तंबुरासि-उवमा	तिलो० प० ८–४६७
सत्तं समयपबद्धं	गो० क० ६४३
सत्ता अमुक्खरूवे *	णयच० २६
सत्ता अमुक्खरूवे *	दव्वस० णय० २०१
सत्ताइं (तस्साइं) लहुबाहू	तिलो० प० १–२४८
सत्ताणउदीजोयण-	तिलो० प० २–१६३
सत्ताणउदी हत्था	तिलो० प० २–२४७

सत्ताणि अणीयाणि य	तिलो० प० ८–२५४
सत्ताणीयपहूणं	तिलो० प० ८–३२८
सत्ताणीयाण सु(घ)रा	तिलो० प० ४–१६८३
सत्ताणीयाणि तहा	जंबू० प० ६–७०
सत्ताणीयाणि तहा	जंबू० प० ६–६४
सत्ताणीयाणि तहा	जंबू० प० ११–१३१
सत्ताणीयाहिवई	तिलो० प० ८–२७३
सत्ताणीया होंति हु	तिलो० प० ३–७७
सत्तादि दस दु मिच्छे	पंचसं० ५–३०४
सत्तादी अट्ठंता	गो० जी० ६३२
सत्ताधिया(य) सप्पुरिसा	मूला० ८६१
सत्ता वाणउदितियं	गो० क० ७१४
सत्तारसमी एगूणवीसिमा	छेदपिं० २४१
सत्तारस-लक्खाणि	तिलो० प० ४–२८१७
सत्तारसेक्कवीसा	कसायपा० ३०
सत्तावण्ण-सहस्सा	तिलो० प० ४–१७१८
सत्तावण्णं च सया	जंबू० प० ११–६६
सत्तावण्णा चोद्दस-	तिलो० प० ८–१६२
सत्तावीसदिमा वि य	छेदपिं० २५१
सत्तावीस-सहस्सा	तिलो० प० ७–२६५
सत्तावीस-सहस्सा	तिलो० प० ८–६३०
सत्तावीस-सहस्सा	जंबू० प० ६–७६
सत्तावीस-सहस्सा	जंबू० प० १०–१५
सत्तावीसहियसयं	गो० क० ४७१
सत्तावीसं च सदा	जंबू० प० ३–३१
सत्तावीसं दंडा	तिलो० प० २–२४६
सत्तावीसं लक्खं	तिलो० प० ८–४४
सत्तावीसं लक्खा	तिलो० प० २–१२७
सत्तावीसं(सा) लक्खा	तिलो० प० ४–१४४६
सत्तावीसं लक्खा	तिलो० प० ४–१४४८
सत्तावीसं लक्खा	तिलो० प० ८–१७०
सत्तावीसं सुहुमे	पंचसं० ५–४८४
सत्तावीसा लक्खा	तिलो० प० ४–१४४७
सत्ता सव्वपयत्था	पंचत्थि० ८
सत्तासंबद्धेदे	पवयणसा० १–६१
सत्तासीदिचदुस्सद-	तिलो० सा० १३६
सत्तासीदिसहस्सा	तिलो० प० ७–३०४
सत्तासीदिसहस्सा	तिलो० प० ७–४०६
सत्तासीदीजोयण-	जंबू० प० ८–५०
सत्तासीदी दंडा	तिलो० प० २–२६२

सद्दवियारो हूओ	बोधपा० ६१
सद्दव्वरओ सवणो	मोक्खपा० १४
सद्दव्वं सच्च गुणो	पवयणसा० २–१५
सद्दव्वादिचउक्के +	णयच० २५
सद्दव्वादिचउक्के +	दव्वस० णय० १९७
सद्दहइ सस्सहावं	आरा० सा० ९
सद्दहणासद्दहणं ×	पंचसं० १–१६९
सद्दहणासद्दहणं ×	गो० जी० ६५४
सद्दहदि य पत्तेदि य ऽ	भावपा० ८२
सद्दहदि य पत्तेदि य ऽ	समय० २७५
सद्दाउलियं बहुजण-	अंगप० ३–३७
सद्दारूढो अत्थो *	णयच० ४२
सद्दारूढो अत्थो *	दव्वस० णय० २१४
सद्दावदि गंडावदि	जंबू० प० ३–१०८
सद्देण मओ रूवेण	भ० आरा० १३५३
सद्दे रूवे गंधे	भ० आरा० ५२३
सद्दे रूवे गंधे	भ० आरा० १४१३
सद्देसु जाण णामं	दव्वस० णय० २८०
सद्दो खंधप्पभवो	पंचत्थि० ७९
सद्दो णाणं ण हवइ	समय० ३९१
सद्दो बंधो सुहुमो	दव्वसं० १६
सद्दो हवेइ दुविहो	रिट्ठस० १८०
सद्धाण-णाण-चरणं	दव्वस० णय० ३७१
सद्धाण-णाण-चरणं	दव्वस० णय० ३७८
सद्धा तच्चे दंसण	दव्वस० णय० ३२०
सद्धा भगती तुट्ठी	वसु० सा० २२३
सधणो वि होदि णिधणो	कत्ति० अणु० ५६
सपएस पंच कालं	वसु० सा० ३०
सपडिक्कमणं मासिय	छेदस० ५७
सपडिक्कमणुववासदिवसे	छेदपिं० ५९
सपडिक्कमणो धम्मो	मूला० ५२६
सपदेसेहिं समग्गो	पवयणसा० २–५३
सपदेसो सो अप्पा	पवयणसा० २–८६
सपदेसो सो अप्पा	पवयणसा० २–९६
सपयत्थं तित्थयरं	पंचत्थि० १७०
सपरणिमित्तपउंजिद-	छेदपिं० ८५
सपरं बाधासहियं	पवयणसा० १–७६
सपराजंगमदेहा	बोधपा० १०
सपरावेक्खं लिंगं	मोक्खपा० ९३
सपरिग्गहस्स अब्बंभ-	भ० आरा० १२४५
स(तं)पिंडअट्ठलक्खेसु	तिलो० प० ४–२८२७
सप्पबहुलम्मि रण्णे	भ० आरा० ११६९
सप्पंडयाणमुवरिं	छेदपिं० ४०
सप्पि मुक्की कंचुलिय	पाहु० दो० १५
सप्पुरिसाणं दाणं	रयणसा० २६
सप्पुरुसमहापुरुसा	तिलो० सा० २६०
सबलचरित्ता कूरा	तिलो० प० ८–५५५
सब्भंतमसब्भंतो	जंबू प० ११–१४७
सब्भावमणो सच्चो	गो० जी० २१७
सब्भावसभावाणं	पंचत्थि० २३
सब्भावं खु विहावं	दव्वस० णय० १८
सब्भावासब्भावा	वसु० सा० ३८३
सब्भावाऽसब्भावे	सम्मइ० १–४०
सब्भावे आइट्ठो	सम्मइ० १–३८
सब्भावेणुड्ढगई	भावसं० २९९
सब्भावो सच्चमणो	पंचसं० १–८९
सब्भावो हि सहावो	पवयणसा० २–४
सब्भूदमसब्भूदं *	दव्वस० णय० १८७
सब्भूयमसब्भूयं *	णयच० १५
समऊ(यू)णदोण्णिआवलि-	लद्धिसा० ४५८
समऊ(यू)णेक्कमुहुत्तं	तिलो० प० ४–२८८
समए समए भिण्णा	लद्धिसा० ३६
समओ णिमिसो कट्ठा	पंचत्थि० २५
समओ दु अप्पदेसो	पवयणसा० २–४६
समओ समएण समो	अंगप० १–३३
समओ हु वट्टमाणो	गो० जी० ५७८
समकदिसल विकदीए	तिलो० सा० ६१
समखंडं सविसेसं	लद्धिसा० ४६६
समचउरवज्जरिसहं	गो० क० ४२
समचउरस णिग्गोहं-	कम्मप० ७२
समचउरस-णिग्गोहा	मूला० १०९०
समचउरस वेउव्विय	पंचसं० ३–२३
समचउरससंठाणो	वसु० सा० ४९७
समचउरसं ठिदीणं	तिलो० प० ६–६३
समचउरस्सा दिव्वा	जंबू० प० ११–२१३
समचउरं ओरालिय	पंचसं० ५–१७४
समचउरं पत्तेयं	पंचसं० ५–१८३
समचउरं वेउव्विय	पंचसं० ४–३१६
सम चुलसीदि बहत्तरि	तिलो० सा० ८३०
समणमुहुग्गदमट्ठं	पंचत्थि० २

सम्मत्तपढमलंभो	कसायपा० १००(४७)
सम्मत्तपढमलंभो	पंचसं० १–१७१
सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु	लद्धिसा० २११
सम्मत्तपयडिमिच्छंतं	दंसणसा० ४१
सम्मत्तमिच्छपरिणामे	गो० जी० २४
सम्मत्तरयणजुत्ता	तिलो० प० ३–४४
सम्मत्तरयणपव्वद-	तिलो० प० २–३५५
सम्मत्तरयणपव्वय- +	पंचसं० १–६
सम्मत्तरयणपव्वय- +	गो० जी० २०
सम्मत्तरयणभट्ठा	दंसणपा० ४
सम्मत्तरयणलंभे	धम्मर० १४१
सम्मत्तरयणसारं	रयणसा० ४
सम्मत्तरयणहीणा	तिलो० प० ४–२५००
सम्मत्तरहिदचित्तो	तिलो० प० २–३५८
सम्मत्तविरहियाणं	दंसणपा० ५
सम्मत्तसलिलपवहो ❊	धम्मर० १४०
सम्मत्तसलिलपवहो ❊	दंसणपा० ७
सम्मत्तसंजमादिं	अंगप० ३–३३
सम्मत्तसुदवएहिं य	भावसं० ३१८
सम्मत्तस्स णिमित्तं	णियमसा० ५३
सम्मत्तस्स पहाणो	वसु० सा० ६४
सम्मत्तस्स य लंभे	भ० आरा० ७४२
सम्मत्तहिमुहमिच्छो	लद्धिसा० ६
सम्मत्तं जो झायदि	मोक्खपा० ७७
सम्मत्तं देसजमं	गो० क० ६१८
सम्मत्तं देसजमं	तिलो० प० २–३५६
सम्मत्तं देसवयं	कत्ति० अणु० ६५
सम्मत्तं सण्णाणं ×	मोक्खपा० १०५
सम्मत्तं सण्णाणं ×	बा० अणु० १३
सम्मत्तं सण्णाणं	णियमसा० ५४
सम्मत्तं सद्दहणं	पंचत्थि० १०७
सम्मत्तं सयलजमं	तिलो० प० २–३५७
सम्मत्तादिमलंभस्सा-	पंचसं० १–१७२
सम्मत्तादीचारा	भ० आरा० ४४
सम्मत्तादो णाणं	दंसणपा० १५
सम्मत्तादो णाणं	मूला० ६०३
सम्मत्तादो सुगई	रयणसा० ६६
सम्मत्तुप्पत्ति वा	लद्धिसा० १७०
सम्मत्तुप्पत्तीए	गो० जी० ६६
सम्मत्तुप्पत्तीए	लद्धिसा० २१५

सम्मत्तूणुव्वेल्लण-	गो० क० ४२६
सम्मत्तेण सुदेण य	मूला० २३४
सम्मत्ते वि य लद्धे	कत्ति० अणु० २६५
सम्मत्ते सत्त दिणा	पंचसं० १–२०५
सम्मत्तेहिं वएहिं	वसु० सा० ४२
सम्मत्तें विणु वय वि गय	सावय० दो० २०६
सम्मत्तें सावयवयहँ	सावय० दो० १६४
सम्मदिणामो कुलकर-	तिलो० प० ४–४३२
सम्मदिसग्गपवेसे	तिलो० प० ४–४३८
सम्मदुचरिमे चरिमे	लद्धिसा० १५५
सम्मद्दंसणणाणं	समय० १४४
सम्मद्दंसणणाणं	दव्वसं० ३६
सम्मद्दंसणणाणे	मूला० ११८५
सम्मद्दंसणतुंवं	भ० आरा० १८६५
सम्मद्दंसणमिणमो	सम्मइ० २–६२
सम्मद्दंसणरत्ता	मूला० ७०
सम्मद्दंसणरयणं	तिलो० सा० ८५६
सम्मद्दंसणरयणं	तिलो० प० ४–२५१३
सम्मद्दंसणरयणं	जंबू० प० १०–८६
सम्मद्दंसणसुद्धं	रयणसा० १६०
सम्मद्दंसणसुद्धा	तिलो० प० ४–२१६४
सम्मद्दंसणसुद्धा	तिलो० प० ४–२१६६
सम्मद्दंसणसुद्धा	जंबू० प० ८–६७
सम्मद्दंसणसुद्धिमुज्जलयरं	तिलो० प० ८–६६६
सम्मद्दंसणसुद्धो	जंबू० प० १३–१६५
सम्मद्दंसणसुद्धो	कत्ति० अणु० ३०५
सम्मद्दंसणसुद्धो	जंबू० प० ६–७८
सम्मद्दंसणहीणा	जंबू० प० १०–६२
सम्मद्दंसणि पस्सइ	बोधपा० ४१
सम्मद्दंसणि पस्सदि	चारित्तपा० १७
सम्मद्दिट्ठी जीवा	समय० २२८
सम्मलितरुणो अंकुर-	तिलो० प० ४–२१५६
सम्मलिदुमस्स बारस	तिलो० प० ४–२१६५
सम्मलिरुक्खाण थलं	तिलो० प० ४–२१४८
सम्म विणा सण्णाणं	रयणसा० ४७
सम्मविसोही तवगुण-	रयणसा० ३८
सम्मविहीणुव्वेल्ले	गो० क० ४२४
सम्मस्स असंखाणं	लद्धिसा० १२२
सम्मस्स असंखेज्जा	लद्धिसा० २०७
सम्मं कदस्स अपरिस्सवस्स	भ० आरा० १४७३

सयलजणबोहणत्थं	बोधपा० २
सयलट्ठ-विसह-जोओ	कत्ति० अणु० ५०
सयलदिसाउ णियच्छइ	रिट्ठस० १३२
सयल-पयत्थहँ जं गहणु	परम० प० २-३४
सयलभुवणेक्कणाहो	तिलो० सा० ६८६
सयलरसरूपगंधेहिं	गो० क० १६१
सयल-वियप्पहँ जो विलउ	परम० प० २-१६०
सयल-वियप्पहँ तुट्टाहँ	परम० प० २-१६५
सयलवियप्पे थक्के	तच्चसा० ६१
सयल वि संग ण मिल्लिया	परम० प० २-१६६
सयलससिसोमवयणं	पंचसं० ४-१
सयलसुरासुरमहिया	तिलो० प० ४-२२८१
सयलहँ कम्महँ दोसहँ वि	परम० प० २-१६८
सयलंगेक्कंगेक्कं-	गो० क० ८८
सयलं जंबूदीवं	जंबू० प० १-२७
सयलं पि इमं भणियं	छेदपिं० ३११
सयलं पि सुदं जाणइ	तिलो० प० ४-१०६२
सयलं मुणेह खंधं	वसु० सा० १७
सयलागमपारगया	तिलो० प० ४-६६६
सयलाणं दव्वाणं	कत्ति० अणु० २१३
सयलावबोहसहियं	जंबू प० ६-१६२
सयलिंदमंदिराणं	तिलो० प० ८-४०४
सयलिंदवल्लभाणं	तिलो० प० ८-३१८
सयलिंदाण पडिंदा	तिलो० प० ७-६१
सयलीकरणु ण जाणियउ	पाहु० दो० १८४
सयलुद्धिणिभा वस्सा	तिलो० सा० ६२७
सयलु वि को वि तडप्फडइ	पाहु० दो० ८८
सयलेहिं णाणेहिं	तिलो० प० ४-२६३६
सयलो एस य लोओ	तिलो० प० १-१३६
सयवग्गं एक्कसयं	तिलो० प० ४-१७५२
सयवत्तिमल्लिसाला-	तिलो० प०४-१८१४
सयवंतगा य चंपय-	तिलो० प० ५-१०७
सरए णिम्मल सलिलं	जंबू० प० १३-१०६
सरगदिदु जसादेज्जं	गो० क० २६७
सरजा गंगासिंधू	तिलो० सा० ५७८
सर-जुयलमपज्जत्तं	पंचसं० ५-४६२
सरजूए गंधमित्तो	भ० आरा० १३५५
सरवासे वि पडंते *	भ० आरा० १२०२
सरवासेहि(वि)पडंते *	मूला० ३२८
सरसमयजलदणिग्गय-	तिलो० प० ४-१७८२
सर-सलिले थिरभूए	तच्चसा० ४१
सरसीए चंदिगाए	भ० आरा- १८१०
सरसूलसव्वलेहिं य	रिट्ठस० ८३
सरिओ विसाणविसखर-	आय० ति० २-२६
सरिदा सुवण्णरूप्पय-	तिलो० सा० ५७६
सरिपव्वदाण मज्झे	जंबू० प० ७-५१
सरिमुखदसगुणविउला	जंबू० प० ३-१५४
सरियाओ जेत्तियाओ	तिलो० प० ४-२३८४
सरियाणं सरियाओ	तिलो० प० ४-२७८६
सरिसं जहण्णआऊ	अंगप० १-३४
सरिसायद-गजदंता	तिलो० सा० ७५६
सरिसायामेणुवरिं	गो० क० २३१
सरिसासरिसे दव्वे	गो० क० ५३
सरिसो जो परिणामो	कत्ति० अणु० २४१
सलिलणिवुडो व्व णागो	भ० आरा० ६१४
सलिलम्मि तम्मि उवरिं	जंबू० प० ७-१३६
सलिलादीणि अमज्झं	भ० आरा० १८१८
सलिलादुवरिं उदओ	तिलो० प० ४-२०७
सलिले वि य भूमीए	तिलो० प० ४-१०२७
सल्लम्मि दिट्ठपुव्वे	आय० ति० १८-३०
सल्लविसकंटएहिं	भ० आरा० १२६८
सल्लं उद्धरिदुमणो	भ० आरा० ४०८
सल्लेहणस्स पक्खे	छेदपिं० १५०
सल्लेहणं करेंतो	भ० आरा० २७२
सल्लेहणं करेंतो	भ० आरा० १७२
सल्लेहणं पयासेज्ज	भ० आरा० ४२५
सल्लेहणं सुणित्ता	भ० आरा० ६८०
सल्लेहणाए मूलं	भ० आरा० ६८१
सल्लेहणा दिसा खामणा	भ० आरा० ६८
सल्लेहणा-परिस्समिमं	भ० आरा० १६७५
सल्लेहणा य दुविहा	भ० आरा० २०६
सल्लेहणा विसुद्धा	भ० आरा० १६७४
सल्लेहणा सरीरे	भ० आरा० २५०
सल्लेहणा सरीरे	आरा० सा० ३५
सल्लेहिया कसाया	आरा० सा० ३६
सवणादिअट्ठभाणिं	तिलो० प० ७-४७६
सवसा सत्तं तित्थं	बोधपा० ४३
सविचारभत्तपच्चक्खा-	भ० आरा० ६६
सविचारभत्तवोसरणमेव	भ० आरा० २०१०
सविदा चंदा य जदू	जंबू० प० ११-२७२

सव्वसुराणं ओघे	गो० जी० ७१६
सव्वस्स कम्मणो जो	दव्वसं० ३७
सव्वस्स तस्स परिही	तिलो० प० ४-१७०३
सव्वस्स तस्स रुंदो	तिलो० प० ५-१४२
सव्वस्स दायगाणं	भ० आरा० ३८३
सव्वस्स मोहणीयस्स	कसायपा० १३६(८३)
सव्वस्सेक्कं रूवं	गो० क० ४३०
सव्वस्से((त्थे)ण ण तित्ता	भावसं० २४
सव्वहिं रायहिं छहरसहिं	पाहु० दो० १०१
सव्वहिं रायहिं छहिं रसहिं	परम० प० २-१७२
सव्वं आहारविधिं	भ० आरा० २०३६
सव्वं आहारविहिं	मूला० १११
सव्वं आहारविहिं	मूला० ११३
सव्वं कालो जाणदि	अंगप० २-१६
सव्वं केवलकप्पं	मूला० ५६४
सव्वंगअंगसंभव-	गो० जी० ४४१
सव्वंगवलं जस्स य	आय० ति० २१-११
सव्वंगसुंदरीओ	जंबू० प० ५-८३
सव्वंगसुंदरी सा	जंबू० प० ११-२६१
सव्वंगं पेच्छंतो	वा० अणु० ८०
सव्वं च लोयणालिं *	तिलो० प० ८-६८६
सव्वं च लोयणालिं *	तिलो० सा० ५२८
सव्वं च लोयणालिं *	गो० जी० ४३१
सव्वं चायं काऊ	आरा० सा० ५४
सव्वं जइ सव्वगयं	दव्वस० णय० ५०
सव्वं जाणदि जम्हा	कत्ति० अणु० २५५
सव्वं तिगेग सव्वं	गो० क० ३६०
सव्वं तित्थाहारुभऊणं	गो० क० ६१०
सव्वं तिवीसछक्कं	गो० क० ७१६
सव्वं पाणारंभं +	मूला० ४१
सव्वं पाणारंभं +	मूला० १०६
सव्वं पि अणेयंतं	कत्ति० अणु० २६२
सव्वं पि संकमाणो	भ० आरा० ११४८
सव्वं पि हु सुदणाणं	मूला० ६०५
सव्वं पि होदि णरये	कत्ति० अणु० ३८
सव्वं भोच्चा धिद्धी	भ० आरा० ६६४
सव्वं समलं पढमं	गो० क० ६७०
सव्वं सहावदो खलु	अंगप० २-२३
सव्वं सुहासुहफलं	आय० ति० २०-१
सव्वाउबंधभंगे-	गो० क० ६४७
सव्वाओ किट्टीए	कसायपा० १६८(११५)
सव्वाओ दु ठिदीओ *	गो० क० १५४
सव्वाओ मणाहराओ	तिलो० प० ४-१३७०
सव्वाओ वण्णणाओ	तिलो० प० ४-२२५६
सव्वाओ वि ठिदीओ *	पंचसं० ४-४१८
सव्वाओ वि रासीओ	आय० ति० ४-६
सव्वाओ(णं) वेदीणं	जंबू० प० १-६५
सव्वागासमणंतं	तिलो० सा० ३
सव्वागासस्स तहा	जंबू० प० ४-२
सव्वाण इंदयाणं	तिलो० प० ८-८२
सव्वाण गिरिवराणं	जंबू० प० ४-७२
सव्वाण दिगिंदाणं	तिलो० प० ८-५१६
सव्वाण पज्जयाणं	कत्ति० अणु० २४४
सव्वाण पयत्थाणं	तिलो० प० ४-२८१
सव्वाण पव्वदाणं	जंबू० प० ११-३५
सव्वाण पारणदिणे	तिलो० प० ४-६७१
सव्वाण भूहराणं	जंबू० प० ३-२२५
सव्वाण मउडवद्धा	तिलो० प० ४-१३८६
सव्वाण यणीयाणं	जंबू० प० ४-१७०
सव्वाण विदेहाणं	जंबू० प० ७-७०
सव्वाण सहावाणं	दव्वस० णय० २४७
सव्वाण सुरिंदाणं	तिलो० प० ८-२६४
सव्वाणं कलसाणं	जंबू० प० १३-२६
सव्वाणं च णगाणं	जंबू० प० ३-२२४
सव्वाणं चरिमाणं	जंबू० प० ४-२१३
सव्वाणं दव्वाणं	कत्ति० अणु० २१४
सव्वाणं दव्वाणं	कत्ति० अणु० २१६
सव्वाणं दव्वाणं	कत्ति० अणु० २१८
सव्वाणं दव्वाणं	कत्ति० अणु० २२६
सव्वाणं देवाणं	जंबू० प० ३-८५
सव्वाणं बाहिरए	तिलो० प० ४-७३०
सव्वाणि अणीयाणि	तिलो० प० ८-२६६
सव्वाणि अणीयाणि	तिलो० प० ८-२७०
सव्वाणि जोयणाणि य	जंबू० प० १२-६६
सव्वाणि वरवराणि य	जंबू० प० ३-१२२
सव्वापज्जत्ताणं	गो० क० ५८५
सव्वाबाधविजुत्तो	पवयणसा० २-१०६
सव्वाभिवंड चदुधा	मूला० ४४०
सव्वायरेण जाणह	कत्ति० अणु० ७६
सव्वायासमणंतं	कत्ति० अणु० ११५
सव्वारंभणियत्ता	मूला० ७८२

सव्वे वि वाहिणीसा	तिलो० प० ४–१०
सव्वे वि वेदिणिवहा	जंबू० प० ३–१६६
सव्वे वि वेदिणिवहा	जंबू० प० १२–७३
सव्वे वि वेदिसहिदा	जंबू० प० ३–३२
सव्वे वि वेदिसहिया	जंबू० प० १०–३४
सव्वे वि वेदिसहिया	जंबू० प० ११–३६
सव्वे वि वेदिसहिया	जंबू० प० ११–१२८
सव्वे वि सुरवरिंदा	जंबू० प० ४–२६८
सव्वेसणं च विद्देसणं	मूला० ४८६
सव्वे समचउरस्सा	तिलो० सा० ६७१
सव्वे ससिणो सूरा	तिलो० प० ७–६११
सव्वे समासमाणं	भ० आरा० ७६०
सव्वेसिं अत्थित्तं	दव्वस० णय० १४७
सव्वेसिं अमणाणं	मूला० ११२४
सव्वेसिं इत्थीणं	कत्ति० अणु० ३८४
सव्वेसिं इंदाणं	तिलो० प० ३–१३४
सव्वेसिं इंदाणं	तिलो० प० ८–५४१
सव्वेसिं उदयसमागदस्स	भ० आरा० १८४६
सव्वेसिं एदाणं	जंबू० प० ११–१२७
सव्वेसिं कम्माणं	कत्ति० अणु० १०३
सव्वेसिं कूडाणं	तिलो० सा० ६६०
सव्वेसिं खंधाणं	पंचत्थि० ७७
सव्वेसिं गंथाणं	णियमसा० ६०
सव्वेसिं जीवाणं	भावसं० ४६०
सव्वेसिं जीवाणं	पंचत्थि० ६०
सव्वेसिं तिरियाणं	पंचसं० ५–१५२
सव्वेसिं दव्वाणं	भावसं० ३०८
सव्वेसिं पज्जाया	दव्वस० णय० १४२
सव्वेसिं पयडीणं	पंचसं० ३–१३
सव्वेसिं पयडीणं	पंचसं० ४–२०३
सव्वेसिं वत्थूणं	कत्ति० अणु० २७५
सव्वेसिं सब्भावो	दव्वस० णय० ३७३
सव्वेसिं सामण्णं	भ० आरा० १६३१
सव्वेसिं सामण्णं	भ० आरा० १६३२
सव्वेसिं सुहुमाणं	गो० जी० ४६७
सव्वेसु उववणेसुं	तिलो० प० ४–१७४
सव्वेसु णगेसु तहा	जंबू० प० ६–५३
सव्वेसु दव्वपज्जय-	भ० आरा० १६८४
सव्वेसु दिगिंदाणं	तिलो० प० ८–२६२
सव्वेसु भूहरेसु य	जंबू० प० ३–२२६
सव्वेसु मंदिरेसुं	तिलो० प० ८–४१७
सव्वेसु य कमलेसु य	जंबू० प० ६–४३
सव्वेसु य तित्थेसु य	दंसणसा० १८
सव्वेसु य पासादेसु	जंबू० प० ६–१६८
सव्वेसु य मूलुत्तरगुणेसु	भ० आरा० ११५६
सव्वेसु वणेसु तहा	जंबू० प० २–८२
सव्वे सुवण्णवण्णा	तिलो० सा० ८१८
सव्वेसु वि कालवसा	तिलो० प० ४–१४८५
सव्वेसु वि भोगभुवे	तिलो० प० ५–३०२
सव्वेसु होंति गेहा	जंबू० प० ६–६६
सव्वेसुं इंदेसुं	तिलो० प० ३–१०१
सव्वेसुं इंदेसुं	तिलो० प० ८–३२३
सव्वेसुं कूडेसुं	तिलो० प० ४–२२५६
सव्वेसुं णयरेसुं	तिलो० प० ८–४३५
सव्वेसुं थंभेसुं	तिलो० प० ४–१६११
सव्वेसुं भोगभुवे	तिलो० प० ४–२६३४
सव्वेहिं जणेहि समं	जंबू० प० १०–७०
सव्वेहिं ठिदिविसेसेहिं	कसायपा० ६६(४३)
सव्वो उवहिदबुद्धी	भ० आरा० ८५८
सव्वो द्वियअणुभागे	कसायपा० १५६ (१०६)
सव्वो पि य आहारो	मूला० ६४५
सव्वो पोग्गलकाओ	भ० आरा० २०४७
सव्वो पोग्गलकाओ	भ० आरा० २०४८
सव्वो लोयायासो	कत्ति० अणु० २०६
सव्वो वि जणो धम्मं	धम्मर० ८
सव्वो वि जणो सयणो	भ० आरा० १७५६
सव्वो वि जहायासे	भ० आरा० ७८६
सव्वो वि पिंडदोसो	मूला० ४८८
सव्वोहित्ति य कमसो	गो० जी० ४२२
ससगो वाहपरद्धो	भ० आरा० १७८३
ससरीरा अरहंता	कत्ति० अणु० १६८
ससरूवचिंतणरओ	कत्ति० अणु० ४६६
ससरूवत्थो जीवो	कत्ति० अणु० २३२
ससरूवत्थो जीवो	कत्ति० अणु० २३३
ससरूवसमुब्भासो	कत्ति० अणु० ४७६
ससंसक्कुलिकण्णा वि य	भावसं० ५३६
ससहरकिरणसमागम-	जंबू० प० ४–१८६
ससहर-णयरतलादो	तिलो० प० ७–२०२
ससहावं वेदंतो	तच्चसा० ५६
ससिकंतखंडविमलेहिं	वसु० सा० ४३६

संखा तह पत्थारो	गो० जी० ३५
संखातीदगुणाणि य	लद्धिसा० ४२८
संखातीदविसत्तो	तिलो० प० ६–१००
संखातीदसहस्सा	तिलो०प० ३–१८१
संखातीदा समया	गो० जी० ४०२
संखातीदा सेढी	तिलो० प० ३–१४३
संखातीदा सेयं	तिलो० प० ३–२७
संखादीदाऊ खलु	मूला० ११६८
संखादीदाऊणं	मूला० ११६६
संखादीदाऊणं	मूला० ११७२
संखावत्तयजोणी *	मूला० ११०२
संखावत्तयजोणी *	गो० जी० ८१
संखावलिहिदपल्ला	गो० जी० ६५७
संखासंखाणंता	दव्वस० णय० २८
संखिज्जगुणा देवा	कत्ति० अणु० १५८
संखिज्जमसंखिज्जगुणं	चारित्तपा० १६
संखित्ता वि य पवहे	भ० आरा० २८२
संखिदुकुंदधवला	जंबू० प० १२–६
संखिंदुकुंदवण्णा	जंबू० प० २–१७६
संखेओ ओघो त्ति य	गो० जी० ३
संखेज्ज-असंखेज्जा	पंचसं० १–१५५
संखेज्जजोयणाणि	तिलो० प० ४–६२६
संखेज्जजोयणाणि	तिलो० प० ६–६७
संखेज्जजोयणाणि	तिलो० प० ८–४३२
संखेज्जजोयणाणि	तिलो० प० ८–६००
संखेज्जजोयणाणि	तिलो० प० ८–६०३
संखेज्जजोयणाणि	तिलो० प० ८–६०५
संखेज्जदिमे सेसे	लद्धिसा० ८४
संखेज्जदिमे सेसे	पंचसं० ४–३१६
संखेज्जपमे वासे	गो० जी० ४०६
संखेज्जमसंखेज्जगुणं	भ० आरा० ५२
संखेज्जमसंखेज्जम-	सम्मइ० २–४३
संखेज्जमसंखेज्जम-	मूला० ६८१
संखेज्जमसंखेज्जं	मूला० ११२५
संखेज्जमसंखेज्जं	जंबू० प० १३–३
संखेज्जमसंखेज्जं	भ० आरा० १६०३
संखेज्जमिंदयाणं	तिलो० प० २–६५
संखेज्जरुंदसंजुद-	तिलो० प० २–१००
संखेज्जरुवसंजुद-	तिलो० सा० ३५७
संखेज्जवासजुत्ते	तिलो० प० २–१०४
संखेज्जवासगिरए	तिलो० सा० १७५
संखेज्जविक्थडा किर	जंबू० प० ११–२४६
संखेज्जवित्थडाणि य	जंबू० प० ११–२४५
संखेज्जसदं वरिसा	तिलो० प० ८–५४५
संखेज्जसरूवाणं	तिलो० प० ४–१७४
संखेज्जसहस्साइं	तिलो० प० ४–१२७३
संखेज्जसहस्साणि वि	गो० क० ६४६
संखेज्जाउवमाणा	तिलो० प० ४–२६४१
संखेज्जाउवसप्पणी	तिलो० प० ५–३१२
संखेज्जाऊ जस्स य	तिलो० प० ३–१६८
संखेज्जा च मणुस्सेसु	कसायपा० ११०(५७)
संखेज्जा वित्थारा	तिलो० प० २–६६
संखेज्जासंखेज्जस-	तिलो० प० ८–१११
संखेज्जासंखेज्जा-	भ० आरा० ६३
संखेज्जासंखेज्जा-	गो० जी० ५८५
संखेज्जासंखेज्जा-	णियमसा० ३५
संखेज्जासंखेज्जे	गो० जी० ५६७
संखेज्जो विक्खंभो	तिलो० प० ८–१८७
संखेंदुकुंदधवला	जंबू० प० ४–२५०
संखेंदुकुंदधवलो	तिलो० प० ४–१८५७
संखेंदुकुंदधवलो	जंबू० प० ५–२
संखेंदुकुंदवण्णो	जंबू० प० ५–१०५
संखो गोभी भमरा *	मूला० २१६
संखो गोभी भमरा *	मूला० ११६०
संखो पुण वारस जो-	मूला० १०७१
संखो पुणु भणइ इयं	भावसं० १७७
संगचाउ जे करहिं जिय	सावय० दो० ७५
संगच्चाएण फुडं	आरा० सा० ३१
संगजहणेण य लहुदयाए-	भ० आरा० २१२८
संगणिमित्तं कुद्धो	भ० आरा० ११५३
संगणिमित्तं मारेइ	भ० आरा० ११२५
संगपरिमग्गणादी	भ० आरा० ११७३
संगहअंतरजाणं	लद्धिसा० ५३१
संगहगे एक्केके	लद्धिसा० ४६५
संगहणयेण जीवो	अंगप० १–२४
संगहणुग्गहकुसलो	मूला० १५८
संगहिय सयलसंजम- +	पंचसं० १–१२६
संगहिय सयलसंजम- +	गो० जी० ४६६
संगीदसत्थछंदा-	अंगप० २–१११
संगीयणट्टसाला	जंबू० प० २–६६

वाक्य	स्थान
संतम्मि केवले दंसणम्मि	सम्मइ० २–८
संतर णिरंतरो वा	पंचसं० ३–६८
संतरमेदं देयं	छेदपिं० २४
संतस्स पयडिठाणा	पंचसं० ५–३२
संतं इह जइ णासइ	दव्वस० णय० ४३
संतं सगुणं किंत्तिज्जंतं	भ० आरा० ३६३
संताइल्ला चउरो	पचसं० ५–४४६
संतादिल्ला चउरो	पंचसं० ५–४३५
संता चउरो पढमा	पंचसं० ५–४५३
संता णउदाइचदुं	पंचसं० ५–४५६
संताण कमेणागय- ×	गो० क० १३
संताण कमेणागय- ×	कम्मप० १३
संता विसय जु परिहरइ	परम० प० २–१३६
संति अणंताणंता	कत्ति० अणु० २२४
संति जदो तेणेदे	दव्वसं० २४
संतिदुयवासपुज्जा	तिलो० प० ४–६०६
संति धुवं पमदाणं	पवयणसा० ३–२४क्षे० ६(ज)
संती दु णिरुवभोज्जा	समय० १७४
संतु ण दीसइ तत्तु ण वि	पाहु० दो० ६१
संते आउसि जीवइ	भावसं० ८१
संते उवसमचरियं	भावति० ३३
संते वि ओहिणाणे	तिलो० प० ८–५६३
संते वि धम्मदव्वे	तच्चसा० ७१
संते सगणे अम्हं	भ० आरा० ३६८
संतोत्ति अट्ठ सत्ता	गो० क० ५५७
संतो रोयक्कंतो	छेदपिं० ७१
संतो वि गुणा अकहिंतयस्स	भ० आरा० ३६१
संतो वि गुणा कत्थंतयस्स	भ० आरा० ३६०
संतो वि मट्टियाए	भ० आरा० १०७५
संथारपदोसं वा	भ० आरा० ४४०
संथारभत्तपाणे	भ० आरा० ४६६
संथारमसोहंतो	छेदस० ६८
संथारमसोहितस्स	छेदपिं० १६६
संथारवासयाणं	मूला० १७२
संथारसोहणेहि य	वसु० सा० ३४०
संदेहतिमिरदलणं	जंबू० प० १३–८२
संधिं कुणंति मित्ता	आय० ति० १५–२
संधीदो संधी पुण	कसायपा० ७८ (२५)
संपइ एव संपत्ता-	कल्लाण० ५२
संपइ जिणवरधम्मो	कल्लाण० १०
संपज्जदि णिव्वाणं	पवयणसा० १–६
संपत्तबोहिलाहो	भावसं० ४८५
संपत्तिविवत्तीसु य	भ० आरा० १२६६
संपय विलसय जिण थुणहु	सुप्प० दो० ३६
संपलियंकणिसेज्जा	भ० आरा० २२४
संपहिकालवसेणं	तिलो० प० ७–३२
संपुण्णचंदवयणा	जंबू० प० २–१८६
संपुण्णचंदवयणो	धम्मर० १२२
संपुण्णचंदवयणो	जंबू० प० ३–११३
संपुण्णं तु समग्गं *	पंचसं० १–१२६
संपुण्णं तु समग्गं *	गो० जी० ४५६
संपुण्णं तु समग्गं *	कम्मप० ४१
संबंधसजणबंधव-	तिलो० प० ४–१५३६
संबंधसयणरहिया	जंबू० प० २–१६५
संबंधो एदेसिं	तच्चसा० २३
संबुक्कमादुवाहा	पंचत्थि० ११४
संभर सुविहिय जं ते	भ० आरा० १५१७
संभवजिणं णमंसिय	जंबू० प० ३–१
संभावणा य सच्चं	मूला० ३१२
संभिण्णं सोदित्तं	तिलो० प० ४–६६८
संभूदो वि णिदाणेण	भ० आरा० १२८१
संभूसिऊण चंदव्वएण	वसु० सा० ३६६
संरंभसमारंभा-	भ० आरा० ८११
संरंभो संकप्पो	भ० आरा० ८१२
संलग्गा सयलधया	तिलो० प० ४–८१६
संवच्छरइगसहसे	रिट्ठस० २६८
संवच्छरतिदऊणाय-	तिलो० प० ४–६५०
संवच्छरमुक्कस्सं	मूला० ६५६
संवच्छरा सहस्सा	तिलो० सा० ८२०
संवत्तयणामणिलो	तिलो० सा० ८६४
संवरजोगेहिं जुदो	पंचत्थि० १४४
संवरफलं तु णिव्वा-	मूला० ७४३
संवलिओ मीसेहिं	आय० ति० ६–५
संववहरणं किच्चा	मूला० ४६७
संवासो वि अणिच्चो	भ० आरा० १७१६
संवाहचारणिवहो	जंबू० प० ६–१३७
संवाहदिव्वणिवहो	जंबू० प० ६–१२७
संविग्गदरे पासिय	भ० आरा० १४६
संविग्गवज्जभीरुस्स	भ० आरा० ४००

साणे पण इगि भंगा	गो० क० ३७५
साणे सुराउसुरगदि-	गो० क० ३२६
सादमसादं दुविहं	मूला० १२२६
सादमसादं दि(वि)ग्घं	अंगप० २-४६
सादं तिएणेवाऊ *	गो० क० ४१
सादं तिएणेवाऊ*	कम्मप० ११२
सादासादेक्कदरं	गो० क० ६३३
सादि अणादि य अट्ठ य	पंचसं० ४-४३५
सादि अणादि य धुव अद्धुवो	पंचसं० ४-२२८
सादि अणादि य धुव अद्धुवो	गो० क० ६०
सादि अणादी धुव अद्धुवो	गो० क० १२२
सादिकुहिदातिगंधं	तिलो० सा० १६२
सादि य जहएण संकम	कसायपा० ५७
सादियरं वेया वि य	पंचसं० ४-२३५
सादी अवंधवंधे	गो० क० १२३
सादेदर दो आऊ	पंचसं० ४-५०३
साधारणं सवीचारं	भ० आरा० २२३
साधीणतियपदक्खिण-	अंगप० ३-२३
साधुस्स धारणाए	भ० आरा० ३२४
साधुं पडिलाहेदुं	भ० आरा० १०६१
साधेंति जं महत्थं	भ० आरा० ११८४
सा पुण दुविहा णेया ×	बा० अणु० ६७
सा पुण दुविहा णेया ×	कत्ति० अणु० १०४
साभाविओ वि समुदयकओ	सम्मइ० ३-३३
सामग्गिंदियरूवं	बा० अणु० ४
सामग्गिंदियरूवं	मूला० ६६४
सामएणअवत्तव्वो	गो० क० ४७०
सामएण अह विसेसं	दव्वस० णय० २४६
सामएणकेवलिस्स समु-	गो० क० ६०६
सामएणगब्भकदली-	तिलो० प० ३-५६
सामएणचित्तकदली-	तिलो० प० ४-३४
सामएणजगसरूवं	तिलो० प० १-८८
सामएणजीवतसथा-	गो० क० ७५
सामएणणारयाणम-	भावति० ५२
सामएणणिरयपयडी	पंचसं० ४-३२८
सामएणतित्थकेवलि	गो० क० ५२०
सामएणतिरियपंचिंदिय-	गो० क० १०६
सामएणदेवभंगो	पंचसं० ४-३४५
सामएणपच्चया खलु	समय० १०६
सामएणभूमिमाणं	तिलो० प० ४-७१०
सामएणम्मि विसेसो	सम्मइ० ३-१
सामएणरासिमज्झे	तिलो० प० ४-२६२७
सामएण विसेसा वि य	दव्वस० णय० १७
सामएणसयलवियलवि-	गो० क० ५६४
सामएणं णाणाणं	दव्वस० णय० ४०८
सामएणं दो आयद	तिलो० सा० ११५
सामएणं पज्जत्तम-	गो० जी० ७०८
सामएणं पत्तेयं	तिलो० सा० ११८
सामएणं परिणामी	दव्वस० णय० ३५३
सामएणं सेढिवणं	तिलो० प० १-२१६
सामएणा णेरइया	गो० जी० १५२
सामएणा पंचिंदी	गो० जी० १५६
सामएणा वि य विज्जा	वसु० सा० ३३५
सामएणुत्ता जे गुणा-	दव्वस० णय० ६५
सामएणेण तिपंती	गो० जी० ७८
सामएणेण य एवं	गो० जी० ८८
सामएणे णियबोहे	दव्वस० णय० ३५२
सामएणे विंदफलं	तिलो० प० १-२५१
सामयिगढुगजहएणं	लद्धिसा० २०१
सामलिरुक्खसरिच्छं	तिलो० प० ४-२१६४
सामसवलेहिं दोसं	भ० आरा० १५६८
सामाइए कदे सा-	मूला० ५३२
सामाइय चउवीसत्थव-	मूला० ५१६
सामाइयचउवीसत्थवं	गो० जी० ३६६
सामाइयछेएसुं	पंचसं० ४-६०
सामाइयछेदेसुं	पंचसं० ४-६१
सामाइयछेदेसुं	पंचसं० ५-४४३
सामाइयजुम्मे तह	सिद्धंत० ३८
सामाइयणिज्जुत्ती	मूला० ५१७
सामाइयणिज्जुत्ती	मूला० ५३७
सामाइयथुइवंदण-	सुदखं० ६१
सामाइयम्हि दु कदे	मूला० ५३१
सामाइयस्स करणे	कत्ति० अणु० ३५२
सामाइयं च पढमं	चारित्तपा० २५
सामाइयं जिणुत्तं	णाणसा० १५
सामाइयं तु चारित्तं	चारि० भ० ३
सामाइयाइछस्सुं	पंचसं० ४-१५
सामाचारो कहिओ	छेदस० ७२
सामाणिएहि सहिया	जंबू० प० ८-६३
सामाणिओ सुरिंदो	जंबू० प० ३-११२

वाक्य	स्थान
साहारणमाहारो ×	पंचसं० १–८२
साहारणमाहारो ×	गो० जी० १६१
साहारणसुहुमं चि य	पंचसं० ३–५६
साहारणाणि जेसिं	कत्ति० अणु० १२६
साहारणा वि दुविहा	कत्ति० अणु० १२५
साहारणोदयेण णिगोद-	गो० जी० १६०
साहासिहरेसु तहा	जंबू० प० ६–१६०
साहासु होंति दिव्वा	जंबू० प० ६–१५७
साहासुं पत्ताणिं	तिलो० प० ४–२१५५
साहिय तत्तो पविसिय	तिलो० प० ४–१३५६
साहियपल्लं अवरं	तिलो० सा० ५४२
साहियसहस्समेकं	गो० जी० ६५
साहियसहस्समेयं	मूला० १०७०
साहुस्स णत्थि लोए	भ० आरा० ३३७
साहू उत्तमपत्तं	जंबू० प० २–१४७
साहू जधुत्तचारी	भ० आरा० २०८८
साहेंति जे महत्थं	मूला० २६४
साहोवसाहसहिओ	जंबू० प० ६–१५६
सांतरणिरंतरेण य	गो० जी० ५६४
सिकदाणणासिपत्ता	तिलो० प० २–३४८
सिक्खह मणवसियरणं	आरा० सा० ६४
सिक्खं कुणंति ताणं	तिलो० प० ४–४५१
सिक्खंति जराउछिदिं	तिलो० सा० ८०१
सिक्खंतो सुत्तत्थं	छेदपिं० १६५
सिक्खाकिरिउवएसा- *	पंचसं० १–१७३
सिक्खाकिरियुवदेसा- *	गो० जी० ६६०
सिक्खावयं च तदियं	कत्ति० अणु० ३६१
सिग्घं लाहालाहे	वसु० सा० ३०५
सिज्झइ तइयम्मि भवे	वसु० सा० ५४१
सिज्झंति एक्कसमए	तिलो० प० ४–२९५६
सिण्हाणब्भंगुव्वट्ट-	भ० आरा० ९३
सिण्हाणुब्भंगुव्वट्टणेहिं	भ० आरा० १०४५
सिदतेरसि अवरण्हे	तिलो० प० ४–६५७
सिदबारसिपुव्वण्हे	तिलो० प० ४–६४४
सिदबारसिपुव्वण्हे	तिलो० प० ४–६५६
सिदसत्तमिपुव्वण्हे	तिलो० प० ४–११६०
सिदसत्तमापदोसे	तिलो० प० ४–१२०५
सिद-हरिद-कसण-सामल-	जंबू० प० ४–५७
सिदिमारुदित्तु कारण-	भ० आरा० १७५
सिद्धक्खकच्छखंडा	तिलो० ४–२२५८
सिद्धक्खो णीलक्खो	तिलो० प० ४–२३२६
सिद्धत्तणस्स जोग्गा	पंचसं० १–१५४
सिद्धत्तणेण य पुणो	सम्मइ० २–३६
सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं	तिलो० प० ४–५४८
सिद्धत्थं सत्तुंजय	तिलो० सा० ७०४
सिद्धत्थो वेसमणो	तिलो० प० ४–२७७५
सिद्धादेहि महत्थं	पंचसं० ५–२
सिद्धपुरमुवल्लीणा	भ० आरा० १३०८
सिद्धमहाहिमवंता	तिलो० प० ४–१७२२
सिद्धवरणीलकूडा	जंबू० प० ३–४३
सिद्धवरसासणाणं	सुदभ० १
सिद्धसरूवं झायइ	वसु० सा० २७८
सिद्धहिमवंतकूडा	तिलो० प० ४–१६३०
सिद्ध हमवंतणामं	जंबू० प० ३–४१
सिद्धहिमवंतभरहा	जंबू० प० ३–४०
सिद्धं जस्स सदत्थं	बोधपा० ७
सिद्धं णिसहं च हरिवरिसं	तिलो० सा० ७२५
सिद्धं णीलं पुव्वविदेहं	तिलो० सा० ७२६
सिद्धंतपुराणहिं वेय वढ	पाहु० दो० १२६
सिद्धंतसारं वरसुत्तगेहा	सिद्धंत० ७६
सिद्धंत-सुणण-वक्खा-	छेदपिं० २०२
सिद्धंतं छंडित्ता	जंबू० प० १०–७५
सिद्धंतिरामणंदी	सुदखं० ६२
सिद्धंतुदयतडुग्गय-	गो० क० ६६७
सिद्धं दक्खिणअद्धादिम-	तिलो० सा० ७३२
सिद्धं वुद्धं णिच्चं	अंगप० १–१
सिद्धं मल्लवमुत्तर-	तिलो० सा० ७३८
सिद्धं रुम्मी रम्मग	तिलो० सा० ७२७
सिद्धं वक्खारक्खं	तिलो० सा० ७४३
सिद्धं सरूवरूवं	भावसं० ५६८
सिद्धं सिद्धत्थाणं	सम्मइ० १–१
सिद्धं सिहरि य हेरण्णं	तिलो० सा० ७२८
सिद्धं सुद्धं पणमिय	गो० जी० १
सिद्धाण णिवासखिदी	तिलो० प० ६–२
सिद्धाणं खलु अणंतर-	अंगप० २–१३
सिद्धाणंतिमभागं *	गो० क० ४
सिद्धाणंतिमभागं *	कम्मप० ४
सिद्धाणंतिमभागो	गो०जी० ५६६
सिद्धाणं पडिमाओ	तिलो० प० ४–८३३
सिद्धाणं फललाहे	अंगप० २–१०३

सिलसेलवेणुमूलक्किमि-	गो० जी० २६०
सिल्लारसगुरु(सिल्हगअगुरुअ)मीसिय	भावसं० ४७६
सिवणामा सिवदेओ	तिलो० प० ४-२४६३
सिवभूइणा विसहिओ	आरा० सा० ४६
सिवमजरामरलिंगमणो	भावपा० १६०
सिव विणु सत्ति ण वावरइ	पाहु० दो० ५५
सिवसत्तिहिं मेलावडा	पाहु० दो० १२७
सिविणे वि ण भुंजइ विसयाइं	रयणसा० १४१
सिसिरयरकरविणिग्गय	जंबू० प० ४-११४
सिसिरयरहारहिमवय	जंबू० प० ४-१७१
सिसुकाले य अयाणे	भावपा० ४१
सिसु तरुणउ परिणयवयसु	सुप्प० दो० ३५
सिस्साणुग्गहकुसलो	मूला० १५६
सिस्सो तस्स जिणागम-	वसु० सा० ५४५
सिस्सो तस्स जिणिंदसासणरओ	वसु० सा० ५४४
सिहरम्मि तस्स णेया	जंबू० प० ४-१००
सिहरिस्स व(त)रच्छमुहा	तिलो० प० ४-२७३०
सिहरिस्सुत्तरभागे	तिलो० प० ४-२३६३
सिहरीउप्पलकूडा	तिलो० प० ४-१६६३
सिहरी हेरण्णवदो	तिलो० प० ४-२३५५
सिहरेसु तेसु णेहा	जंबू० प० ६-१६
सिहरेसु देवणयरा	जंबू० प० ४-७८
सिहिकंठवण्णमणिमय-	जंबू० प० ४-१७६
सिहिचंदयाण पिच्छइ	रिट्ठस० १४०
सिहिपवणदिसाहितो	तिलो० प० ७-४५०
सिहिरुक्खे रुक्खाणं	आय० ति० १०-२४
सिंगमुहकण्णजीहा	तिलो० प० ४-२१५
सिंगमुहकण्णजीहा	जंबू० प० ३-१५०
सिंगारतरंगाए	भ० आरा० ११११
सिंधुवणवेदिदारं	तिलो० प० ४-१३२६
सिंधू य रोहिदासा	जंबू० प० ३-१६२
सिंभं थिरेहिं जाणह	आय० ति० ८-४
सिंहगयवसहगरुडसिहिं-	तिलो० सा० १०१०
सिंहगयवसहजडिलस्सा-	तिलो० सा० २४३
सिंहस्ससाणहयरिउ(महिस)-	तिलो०प० ४-२४८४
सिंहस्ससाणमहिसय-	तिलो० सा० ६१७
सिंहाउ विउल काला	तिलो० सा० ३६७
सिंहालकरिणदुक्खा	तिलो० प० ७-१६
सिंहासणछत्तत्तय-	धम्मर० १२१
सिंहासण छत्तत्तय-	तिलो० प० ३-२२१
सिंहासणछत्तत्तय-	जंबू० प० १-४१
सिंहासणट्ठियस्स हु	धम्मर० १७२
सिंहासणमज्झगया	जंबू० प० ३-११६
सिंहासणमज्झगया	जंबू० प० ८-६४
सिंहासणमज्झगया	जंबू० प० ११-१३५
सिंहासणमारूढो	तिलो० प० ५-२१३
सिंहासणमारूढो	तिलो० प० ८-३७५
सिंहासणम्मि तस्सि	तिलो० प० ४-१६५६
सिंहासणसंजुत्ता	जंबू० प० ४-६५
सिंहासणस्स चउसु वि	तिलो० प० ४-१६५८
सिंहासणस्स दोसुं	तिलो० प० ४-१८२१
सिंहासणस्स पच्छिम-	तिलो० प० ४-१६५७
सिंहासणस्स पुरदो	तिलो० प० ४-१६५१
सिंहासणं विसालं	तिलो० प० ४-६२०
सिंहासणाण उवरिं	तिलो० प० ४-१८६६
सिंहासणाण मज्झे	तिलो० प० ४-८६१
सिंहासणाण सोहा	तिलो० प० ८-३७४
सिंहासणादिसहिदा	तिलो० प० ३-५२
सिंहासणादिसहिदा	तिलो० प० ६-१५
सिंहासणादिसहिया	तिलो० सा० ६८५
सिंहासणादिसहिया	तिलो० प० ४-१६३६
सिंहासणेसु णेया	जंबू० प० ४-२७७
सीउण्हं जलवरिसं	धम्मर० ७७
सीतासीतोदाणदि-	तिलो० सा० ६७८
सीतोदावरतीरे	तिलो० सा० ६५१
सीदलमसीदलं वा	मूला० ८१४
सीदं उण्हं तण्हं *	भ० आरा० ६१६
सीदं उण्हं तण्हं *	तिलो० प० ४-६३३
सीदं उण्हं मिस्सं	तिलो० प० ४-२६४६
सीदाउत्तरतडओ	तिलो० प० ४-२२०३
सीदाए उत्तरतडे	तिलो० प० ४-२३३१
सीदाए उत्तरदो	तिलो० प० ४-२२६४
सीदाए उत्तरदो	जंबू० प० ७-२३
सीदाए उत्तरदो	तिलो० प० ४-२२१३
सीदाए उभएसुं	तिलो० प० ४-२१६८
सीदाए दक्खिणए	तिलो० प० ४-२१३१
सीदाए दक्खिणतडे	तिलो० प० ४-२२२१
सीदाणइए वासं	तिलो० प० ४-२६१६
सीदाणदिए तत्तो	तिलो० प० ४-२१३२
सीदाणिलपासादो	तिलो० प० ४-४७७

सुकुमारकोमलंगा जंबू० प० ११–१८७
सुकुमारकोमलाओ जंबू० प० ५–८४
सुकुमारपाणिपादा जंबू० प० ३–८०
सुकुमारपाणिपादा जंबू० प० ११–१३४
सुकुमारवरसरीरा जंबू० प० ३–८२
सुकुलसुरूवसुलक्खण- रयणसा० २१
सुक्कज्झाणं पढमं भावसं० ६५६
सुक्कज्झाणं बीयं भावसं० ६६३
सुक्कट्ठमोपदोसे तिलो० प० ४–११६५
सुक्कदसमीविसाहे तिलो० सा० ४१४
सुक्कमहासुक्कगदो तिलो० सा० ४५३
सुक्कमहासुक्केसु य मूला० ११४१
सुक्कमहासुक्केसु य जंबू० प० ११–३४८
सुक्कस्स समुग्घादे गो० जी० ५४४
सुक्कस्स हवदि कोसो जंबू० प० १२–६६
सुक्कं तत्थ पउत्तं भावसं० ६५०
सुक्कं मुत्तपुरीसं छेदपिं० ३३४
सुक्क लेस्समुवगदा भ० आरा० १६४५
सुक्काए मज्झिमंसा तिलो० प०, ८–६७०
सुक्काए लेस्साए भ० आरा० १९१८
सुक्काए सव्वे वि य पंचसं० ४–३६
सुक्किउ संचि म संचि धणु सुप्प० दो० २१
सुक्के सदरचउक्कं गो० क० १२१
सुक्कोट्ठजिब्भकंठो धम्मर० ३१
सुक्खअडा दुइ दिवहडइँ पाहु० दो० १०६
सुक्खमओ अहमेको आरा० सा० १०३
सुगचणयमासतुवरी- आय० ति० १०–१०
सुग्गीवस्स य मंतं रिट्ठस० २००
सुचिए समे विचित्ते भ० आरा० २०८३
सुचिरमवि णिरदिचारं भ० आरा० १५
सुचिरमवि संकिलिट्ठं भ० आरा० १८४१
सुजणो वि होइ लहुओ भ० आरा० ३४५
सुजलंतरयणदीओ तिलो० प० ५–२३४
सुज्झइ जीवो तवसा भावसं० २१
सुट्ठु कदाण वि सस्सादीणं भ० आरा० १४६०
सुट्ठु पवित्तं दव्वं कत्ति० अणु० ८४
सुट्ठु वि आवइपत्ता भ० आरा० १५२७
सुट्ठु वि पिओ मुहुत्तेण भ० आरा० १२७०
सुट्ठु वि मग्गिज्जंतो भ० आरा० १२५४
सुणक्खत्तो अभयो वि य अंगप० १–५५

सुणह इह जीवगुणसण्णि- पंचसं० ४–३
सुणहाण गद्दहाण य सीलपा० २६
सुणिऊण दोहरत्थं दव्वस० णय० ४१७
सुणि दंसणु जिय जेण विणु सावय० दो० २१
सुण्णअडअट्ठणहसग- तिलो० प० ४–८१८
सुण्णउँ पउँ झायंताहँ परम० प० २–१५६
सुण्णघरगिरिगुहारुक्ख- भ० आरा० २३१
सुण्णजुयं अट्ठारं- पंचसं० ५–३४८
सुण्णज्झाणपइट्ठो आरा० सा० ७७
सुण्णब्भासे णिरओ णाणसा० ३६
सुण्णणभइक्कणवदुग- तिलो० प० ४–२६३६
सुण्णणभगयणपणदुग- तिलो० प० ४–८
सुण्णणवसुण्णदुगणव- अंगप० २–७
सुण्णतियं दुगसुण्णं सुदखं० २१
सुण्णदुग एक्कसुण्णं जंबू० प० ३–१३५
सुण्णदुगं वाणवदी सुदखं० ३२
सुण्णदुगं वाणवदी सुदखं० ३३
सुण्णदुगं वाणवदी सुदखं० ३४
सुण्णदुगं वाणवदी सुदखं० ३५
सुण्णदुगं वाणवदी सुदखं० ३६
सुण्णहरे तरुहिट्ठे बोधपा० ४२
सुण्णं अयारपुरओ- वसु० सा० ४६५
सुण्णं चउठाणेक्का तिलो० प० ७–५६०
सुण्णं च विविहभेयं णाणसा० ४०
सुण्णं जहण्णभोगं तिलो० प० ४–५२
सुण्णं ण होइ सुण्णं पाहु० दो० २१२
सुण्णं दुगइगिठाणे गो० जी० २६४
सुण्णं पमादरहिदे गो० क० ७६० क्षे० ५
सुण्णायारणिवासो चारित्तपा० ३३
सुण्णे पच्चक्खे अण्णादे छेदपिं० ४५
सुण्णो णेय असुण्णो (?) कल्लाणा० ४२
सुत्तत्थचोरियाए छेदस० ६५
सुत्तत्थथिरीकरणं भ० आरा० १४६
सुत्तत्थधम्ममग्गण- णाणसा० १६
सुत्तत्थपयविणट्ठो सुत्तपा० ७
सुत्तत्थभावणावा आरा० सा० ५
सुत्तत्थमग्गणाणं णाणसा० १२
सुत्तत्थमुवदिसंतो छेदपिं० १६४
सुत्तत्थं जप्पंतो मूला० २८३
सुत्तत्थं जिणभणियं सुत्तपा० ५

सुयसूरसाणाणं	रयणसा० १४०(B)
सुरउवएसवलेणं	तिलो० प० ४-१३४०
सुरकोकिलमहुररवं	तिलो० प० ४-१६४०
सुरखेयरमणहरणे	तिलो० प० १-६५
सुरखेयरमणुवाणं	तिलो० प० १-५२
सुरगिरिचंदरवीणं	तिलो० सा० ३७८
सुरघ(पु)रकंठाभरणा	जंवू० प० ३-३५
सुरचउतित्थयरुणा	पंचसं० ४-३६३ (ख)
सुरणयरसंपरिउडो	जंवू० प० ६-१७६
सुरणरणारपतिरिआ	दव्वस० णय० ८६
सुरणरणारयतिरिया	पंचत्थि० ११७
सुरणरतिरियारोहण-	तिलो० प० ४-७१८
सुरणरतिरियोरालिय-	गो० क० ४०६
सुरणरसम्मे पढमो	गो० क० ६२०
सुरणारएसु चत्तारि +	पंचसं० ४-५५
सुरणारएसु चत्तारि +	मूला० १२००
सुरणिरएसुं पंच य	पंचसं० ५-२५७
सुरणिरयविसेसणरे	गो० क० ५६६
सुरणिरयाऊणोघं *	गो० क० १३३
सुरणिरयाऊणोघं *	कम्मप० १२६
सुरणिरयाऊ तित्थं	गो० क० ४०२
सुरणिरया णरतिरियं	गो० क० ६३६
सुरणिरये उज्जोवो-	गो० क० १७३
सुरणिलएसु सुरच्छर-	भावपा० १२
सुरतरुलुद्धा जुगला	तिलो० प० ४-४५०
सुरदाणवरक्खसणर-	तिलो० प० ४-१००६
सुरधणु तडि व्व चवला	कत्ति० अणु० ७
सुरपुरवहिं असोयं	तिलो० सा० ५०२
सुरवोहिया वि मिच्छा	तिलो० सा० ५५३
सुरमिहुणगीयणच्चण-	तिलो० प० ४-८४०
सुररइयदेवछंदं	जंवू० प० २-७२
सुरवइतिरीटमणिकिरण-	वसु० सा० १
सुरसमिदीवम्हाइं	तिलो० प० ८-१५
सुरलोयणिवासखिदी	तिलो० प० ८-२
सुरसार्यार जसु णिक्कमणि	सावय० दो० १६६
सुरसिंधूए तीरं	तिलो० प० ४-१३०३
सुरही लोयस्सग्गे	भावसं० ५२
सुलहा लोगे आदट्ठ-	भ० आरा० ४८२
सुव(अ)रा सियाल सुणहा	जंवू० प० २-१४०
सुविणिम्मलवरविउला	जंवू० प० ५-७५

सुविदिदपदत्थसुत्तो	पवयणसा० १-१४
सुविसालपट्टणाजुदो	जंवू० प० ८-१५१
सुविसालरयणणिवहो	जंवू० प० ८-१५०
सुविसुद्धरायदोसो	कत्ति० अणु० ४७८
सुविहिपमुहेसु रुद्दा	तिलो० प० ४-१४३६
सुविहिय अदीदकाले	भ० आरा० १५८६
सुविहियमिमं पवयणं	भ० आरा० ४२
सुविहिं च पुप्फयंतं	थोस्सा० ४
सुव्वदणमिणेमीसुं	तिलो० प० ४-१०६५
सुव्वयणमिसामीणं	तिलो० प० ४-१४१४
सुव्वयतित्थे उज्झो	दंसणसा० १६
सुसणिद्धे सुसणिद्धा	आय० ति० ६-१०
सुसमदुसमम्मि णामे	तिलो० प० ४-५५२
सुसमदुसमाइअंते	सुदखं० ४
सुसमम्मि तिण्णि जलही-	तिलो० प० ४-३१७
सुसमसुसमम्मि काले	तिलो० प० ४-३१६
सुसमसुसमम्मि काले	तिलो० प० ४-२१४३
सुसमसुसमं च सुसमं	तिलो० सा० ७८०
सुसमसुसमाभिधाणो	तिलो० प० ४-१६००
सुसमसुसमा य सुसमा	जंवू० प० २-१०६
सुसमस्सादिम्मि णरा-	तिलो० प० ४-३६५
सुसमा तिण्णेव हवे	जंवू० प० २-१११
सुसीमा कुंडला चेव	तिलो० सा० ७१३
सुस्सर अणिदिदक्खा	तिलो० सा० २७७
सुस्सरजसजुयलेक्कं *	पंचसं० ४-२८६
सुस्सरजसजुयलेक्कं *	पंचसं० ५-७६
सुस्सूसया गुरूणं	भ० आरा० ३००
सुहअसुहभावजुत्ता	दव्वसं० ३८
सुहअसुहभावरहिओ	दव्वस० णय० ४००
सुहअसुहभावविगओ	कल्लाणा० ४५
सुहअसुहवयणरयणं	णियमसा० १२०
सुहअसुहसुहगदुब्भग-	कम्मप० ६६
सुहजोगेसु पवित्ती	वा० अणु० ६३
सुहडो जिया सुसत्थं	रयणसा० ७६
सुहदुक्खजाणणा वा	पंचत्थि० १२५
सुहदुक्खणिमित्तादो	गो० क० १६३
सुहदुक्खसंपओगो	सम्मइ० १-१८
सुहदुक्खसुवहुसस्सं *	गो० जी० २८१
सुहदुक्खं पि सहंतो	तच्चसा० ५४
सुहदुक्खं वहुसस्सं *	पंचसं० १-१०६

सुहदुक्खं भुंजंतो भावसं० ३०२
सुहदुक्खे उवयारो मूला० १४३
सुहपयडीण विसोही + पंचसं० ४-४४५
सुहपयडीण विसोही + गो० क० १६३
सुहपयडीण विसोही + कम्मप० १४१
सुहपयडीण विसोही +पवयणसा०२-६४क्षे०४(ज)
सुहपयडीणं भावा पंचसं० ४-४८१
सुहपरिणामहिं धम्मु वढ ÷ पाहु० दो० ७२
सुहपरिणामे धम्मु पर ÷ परम० प० २-७१
सुहपरिणामो पुण्णं पवयणसा० २-८६
सुहपरिणामो पुण्णं पंचत्थि० १३२
सुहमणिगोदअपज्जत्त- × गो० जी० ६४
सुहमणिगोदअपज्जत्त- × गो० जी० १७२
सुहमणिगोदअपज्जत्त- गो० जी० ३१६
सुहमणिगोदअपज्जत्त- गो० जी० ३२०
सुहमणिगोदअपज्जत्ता- गो० जी० ३२१
सुहमणिगोदअपज्जत्ता- गो० जी० ३७७
सुहमणिवातेआभू- गो० जी० ६७
सुहमसुहं चिय सव्वं रिट्ठस० १८४
सुहमंतरियदधत्थो(दुरत्थो) जंबू० प० १३-४५
सुहमं व बादरं वा भ० आरा० ४७८
सुहमं व बादरं वा भ० आरा० ४८२
सुहमापज्जत्ताणं भावसं० ६४
सुहमा लिंगियसंते आय० ति० ६-७
सुहमेदरगुणगारो गो० जी० १०१
सुहमेसु संखभागं गो० जी० २०७
सुहमे सुहमं अंतिम- सिद्धंत० १७
सुहमो अगुत्तिवंतो भावसं० २१८
सुहमो सुहमकसाये गो० जी० ६८६
सुहलेस्सतिये भव्वे आस० ति० ४३
सुहवेदं सुहगोदं दव्वस० णय० १६०
सुहसवणग्गे देवा तिलो० सा० ४४०
सुहसादा किं मज्झा भ० आरा० १६४२
सुहसाभिजुओ विजयं आय० ति० १२-४
सुहसाभिजुत्तदिट्ठे आय० ति० १०-२
सुहसाभिजुत्तदिट्ठे आय० ति० १८-२३
सुहसाभिजुत्तदिट्ठो आय० ति० ८-२
सुहसीलदाए अलसत्त- भ० आरा० १४४१
सुहसुहसमजुत्ता वि य पंचसं० ३-४६
सुहिएउ हुवइ ण को वि इह पाहुड० दो० १४१
सुहिरण्णपंचकलसे वसु० सा० ३४७
सुहुमाज्जत्ताणं कत्ति० अणु० १४७
सुहुमअपज्जत्ताणं पंचसं० ४-२६८
सुहुमकिरिएण झाण भ० आरा० २१२०
सुहुमकिरियं खु तदियं भ० आरा० १८७६
सुहुमकिरियं सजोगी मूला० ४०५
सुहुमगलद्धिजहण्णं गो० क० २३३
सुहुमणिगोदअपज्जत्त- मूला० १०८८
सुहुमणिगोदअपज्जत्ता- ⁂ गो० क० २१४
सुहुमणिगोदअपज्जत्ता- गो० क० ३१६
सुहुमणिगोयअपज्जत्त- ⁂ पंचसं० ४-४१७
सुहुमद्धादो अहिया लद्धिसा० ५८८
सुहुमसपविट्ठसमये लद्धिसा० ३०८
सुहुमम्मि कायजोगे भ० आरा० १८८७
सुहुमस्स बंधघादी गो० क० ४१६
सुहुमस्स य पढमादो लद्धिसा० ६२७
सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ जोगसा० १०३
सुहुमं च णामकम्मं वसु० सा० ५३६
सुहुमंतट्ठ वि कम्मा पंचसं० ३-४
सुहुमंतिमगुणसेढी लद्धिसा० ६६४
सुहुमंमि सुहुमलोहं पंचसं० ४-१११
सुहुमंमि होंति ठाणे पंचसं० ४-३१२
सुहुमाए लेस्साए भ० आरा० २११९
सुहुमा अवायविसया वसु० सा० २६
सुहुमाणं किट्टीणं लद्धिसा० ५१०
सुहुमा बादरकाया मूला० ११२३
सुहुमा हवंति खंधा णियमसा० २४
सुहुमाहार अपुण्णं पंचसं० ४-३४१
सुहुमा हु संति पाणा मूला० ३११
सुहुमे जोगविसेसे मूला० १२४१
सुहुमे [illegible] लद्धिसा० ४११
सुहुमे सुहुमो लोहो गो० क० [illegible]
सुहुमाओ किट्टीओ लद्धिसा० [illegible]
सुहु मारइ [illegible] पाहुड० दो० ४
सुहेण भाविदं णाणं मोक्खपा० ६२
[illegible] भ० आरा० १४२८
सुहु[illegible] तिलो० प० ८-[illegible]
सूई जहा ससुत्ता मूला० [illegible]
सूची [illegible] जंबू० प० १० ८१
सूचीए [illegible] तिलो० प० १-[illegible]

सूदयडं विदियंगं	अंगप० १–२०
सूदी सुंडी रोगी	मूला० ४६८
सूरप्पहसूइवट्टी	तिलो० प० ७–२५७
सूरप्पहभद्दमुहा	तिलो० प० ४–१३७६
सूरपुर चंदपुर णिच्चु-	तिलो० सा० ७०१
सूरम्मि उग्गमंते	छेदपि० ७३
सूरस्स य परिवारं	सुदखं० २४
सूरस्सायु विमाणे	अंगप० २–४
सूरंगारयभिगुसुय-	आय० ति० ४–१२
सूरादो णक्खत्तं	तिलो० प० ७–५१४
सूरादो दिणरत्ती	तिलो० सा० ३७६
सूरुदयत्थमणादो	मूला० ४६२
सूरेण तह य जुत्तो	आय० ति० ४–२४
सूरो तिक्खो मुक्खो	भ०आरा० ६१०
सूरो तिक्खो मुक्खो	भ० आरा० ११३६
सूलो इव भित्तुं जे	भ० आरा० ६८७
सूवरवणग्गिसोणिद-	तिलो० प० २–३२१
सूवरहरिणीमहिसा	तिलो० प० ८–४५०
सेओ वट्टो अ पहू	आय० ति० १–७
से काले ओव्वट्टण-	लद्धिसा० ४५६
से काले किट्टिस्स य	लद्धिसा० २६३
से काले किट्टीओ	लद्धिसा० ५०८
से काले कोहस्स य	लद्धिसा० ५३७
से काले जोगिजिणो	लद्धिसा० ६४२
से काले तदियादो	लद्धिसा० ५५०
से काले देसवदी	लद्धिसा० १७१
से काले माणस्स य	लद्धिसा० २६६
से काले माणस्स य	लद्धिसा० ५५१
से काले मायाए	लद्धिसा० २७४
से काले लोहस्स य	लद्धिसा० २७८
से काले लोहस्स य	लद्धिसा० ५६१
से काले सुहुमगुणं	लद्धिसा० ५७८
से काले सो खीणकसाओ	लद्धिसा० ५९६
से जीवंतहँ मुहु वि गणि	सुप्प० दो० २८
सेज्जा संथारं पाणयं च	भ० आरा० १६६३
सेज्जोगासणिसेज्जा ×	भ० आरा० ३०५
सेज्जोग्गासणिसज्जा ×	मूला० ३६१
सेज्जोवधिसंथारं	भ० आरा० ४२४
सेढिअसंखेज्जदिमा	गो० क० २५२
सेढिअसंखेज्जदिमा *	गो० क० २५८
सेढिअसंखेज्जदिमे *	पंचसं० ४–५१०
सेढिपदस्स असंखं	लद्धिसा० ६३०
सेढिपदस्स असंखं	लद्धिसा० ६३४
सेढिपमाणायामं	तिलो० प० १–१४६
सेढिय सत्तमभागो	तिलो० प० १–१७०
सेढिय सत्तमभागो	तिलो० प० १–१७५
सेढिस्स सत्तभागा	जंबू० प० १२–६५
सेढीअसंखभागो	तिलो० प० ३–१६४
सेढीए सत्तंसो	तिलो० प० १–१६४
सेढी छरज्जु चोद्दस-	तिलो० सा० १३२
सेढीणं विच्चाले	तिलो० प० ८–१६८
सेढीणं विच्चाले ··· णिरया	तिलो० सा० १६६
सेढीणं विच्चाले ··· विमाणा	तिलो० सा० ४७५
सेढीबद्धे सव्वे	तिलो० प० ८–१०६
सेढी सूई अंगुल-	गो० जी० १५६
सेढी सूई पल्ला-	गो० जी० ५६६
सेढी हवंति अंसा	जंबू० प० १२–६८
सेणं अणोरयारं	जंबू० प० ७–१२६
सेणं णिस्सरिदूणं	जंबू० प० ७–१३२
सेणागिहथवादि पुरहो	तिलो० सा० ८२३
सेणागयपुव्वावर-	तिलो० सा० ४४४
सेणाण पुरजणाणं	तिलो० प० ८–२१७
सेणादेवाणं पुण	तिलो० सा० २३६
सेणामहत्तराणं	तिलो० प० ५–२२०
सेणामहत्तराणं	तिलो० सा० ६४६
सेणामहत्तरा सुज्जेट्ठा	तिलो० सा० २८१
सेणावईणमवरे	तिलो० सा० ५१८
सेणावई(णा)विधीए	जंबू० प० ७–१२२
सेणावदितणुरक्खा	तिलो० सा० ५००
सेदमलरहिददेहो	जंबू० प० १३–६५
सेदमलरेणुकद्दम-	तिलो० प० १–११
सेदरजाइमलेणं	तिलो० प० १–५६
सेदादवत्तचिण्हा	जंबू० प० ६–५२
सेदादवत्तणिवहा	जंबू० प० ४–२७२
सेदादवत्तसिरसा	जंबू० प० ११–३६०
सेदो जादि सिलेसो	भ० आरा० १०४२
सेयजलो अंगरयं	तिलो० प० ४–१०६८
सेयं भवभयमहणी	मूला० ७५८
सेयंसजिणं पणमिय	जंबू० प० ७–१
सेयंसजिणेसस्स य	तिलो० प० ४–५६७

ह

इदि सम्मत्ता

परिशिष्ट

१ वाक्य-सूचीमें छपनेसे छूटे हुए वाक्य

वाक्य	स्थान
अत्थाण वंजणाण य	भ० आरा० १८८५
अवरादीणं ठाणं	पंचसं० ४-६७ (क)
अव्वावादी अंतोमुहुत्त-	पंचसं० १-६६ (घ)
अंतरकरणादुवरिं	लब्धिसा० २४१ (क)
आहारस्सुदयेण य	पंचसं० १-६६ (क)
इंदियचउरो काया	पंचसं० ४-१४२ (क)
इंदियदोण्णि य काया	पंचसं० ४-१४७ (ख)
इंदियमेओ काओ	पंचसं० ४-१४७ (क)
इंदियमेओ काओ	पंचसं० ४-१५७ (क)
उत्तमअंगम्मि हवे	पंचसं० १-६६ (ग)
उत्तर-पच्छिम-भागे	जंबू० प० ४-१३८ (क)
उवरोउ मंगलं वो	लब्धिसा० १५५ (सं०टी०)
उवरयबंधे संते	पंचसं० ५-१२ (क)
उववाद-मारणंतिय-	पंचसं० १-८६ (क)
उववास-सोसियतणू	जंबू० प० २-१४७ (क)
कक्केयणमणि-णिम्मिय-	जंबू०प० ४-१७४ (क)
कोडिसयसहस्साइं	गो० जी० ११२ ख (सं० टी०)
गूढसिरसंधिपव्वं	पंचसं० १-८३ (क)
घर सुक्खइँ सुप्पउ भणइ	सुप्प० दो० ५४
चउथे पंचमकाले	जंबू० प० २-१८७ (क)
चउबंधयम्मि दुविहा	पंचसं० ४-१२ (क)
चउसट्ठी अट्ठसया	पंचसं० ५-३१५ (क)
चालीसं च सहस्सा	जंबू० प० ६-७३ (क)
जह खेत्ताणं दिट्ठा	जंबू० प० २-१७७ (क)
जे सेसा सुक्काए	भ० आरा० ११२०
झल्लरिमल्लयरत्थी-	तिलो० प० २-३०५
णाणं पंचविहं पि य	पंचसं० १-१०८ (क)
णामेण पंजणं णाम	जंबू० प० ११-२७१ (क)
णियखेत्ते केवलिदुग-	पंचसं० १-६६ (ख)
तत्तो अवरदिसाए	जंबू० प० ६-६१ (क)
तत्थ य अरिट्ठणयरी	जंबू० प० ८-२० (क)
तिय-पण-छव्वीसेसु वि	पंचसं० ५-२१६ (क)
ति-सहस्सा सत्तसया	तिलो० प० ४-११००
ते सव्वे भयरहिया	पंचसं० ५-३०२ (क)
दम्मसुवण्णादीयं	छेदपिं० ४३ क (ख पुस्तके)
दसविक्खंभेण गुणं	जंबू०प० ४-३२ (क)
पढमक्खे अंतगदे	छेदपिं० २२६ क (ख, पुस्तके)
पाइया जे छप्पुरिसा	पंचसं० १-१६१ (क)
पुव्वेण तदो गंतुं	जंबू०प० ६-१०७ (क)
बलभद्दणामकूडो	जंबू० प० ४-६८ (क)
बलिगंधपुप्फपउरा	जंबू० प० २-७२ (क)
बासट्ठिजोयणाणि य	जंबू०प० ७-६६ (क)
भूदयवणप्फदीसुं	पंचसं० ४-३५५ (क)
मरगय-वेदी-णिवहा	जंबू० प० ६-१०३ (ग)
मंदारतारकिरणा	जंबू० प० ३-६१ (क)
रयणायरेहि रम्मो	जंबू० प० ३-१०१ (क)
विणयेणुवक्कमित्ता	भ०आरा० ४१५ग (मूला०टी०)
विसयासत्ता जीवा	जंबू०प० ११-१५५ (क)
वेमाणियणरलोए	भ० आरा० ५१ (भाषा टी०)
सत्तत्तीससहस्सा	तिलो० प० ४-१६१७
सद्दहया पत्तियया	भ० आरा० ४८ क (मूला०टी०)
सम्मे असंखदम्मिय	लब्धिसा० १४५ क (सं०टी०)
सयजोयण-आयामा	जंबू०प० ४-११८ (क)
सव्वाणं इंदाणं	जंबू०प० ४-२६० (क)
सेसाणं तु गहाणं	जंबू० प० १२-१४ (क)
सोलस चेव सहस्सा	जंबू० प० १२-४१ (क)

नोट—पंचसंग्रह और जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिके पाठ जो इस सूचीके बादमें मिले हैं [illegible] की प्राचीन (क्रमशः वि० सं० १३६६, १५१८ की लिखी) प्रतियोंसे संग्रह किया गया है, इनमें पूर्व प्रकाशित जिस जिस वाक्यके बाद जो उपलब्ध हुए हैं उनके अनन्तर क, ख आदि जोड़कर उनके [illegible] यहाँ निर्देश किया गया है।

२ षट्खण्डागम-गाथासूत्र-सूची

[षट्खण्डागम ग्रन्थ प्रायः गद्य-सूत्रोंमें है, परन्तु उसमें कुछ गाथा-सूत्र भी पाये जाते हैं। जिन गाथा-सूत्रोंको अभी तक स्पष्ट किया जा सका है उनकी अनुक्रम-सूची निम्न प्रकार है :—]

३ टीकादि-ग्रन्थोंमें उपलब्ध अन्य-प्राकृत-पद्योंकी सूची

अ

आ

त

थ

द

दो रिसह-अजियकाले	तत्त्वार्थ० वृ० श्रु० ३-२६

ध

धद-गारवपडिवद्धो	धवला १-१-१
धम्माधम्मागासा	धवला १-२-२
धम्माधम्मालोया-	धवला १-२-१५
धम्मे य धम्मफलम्हि	दव्वसं० टी० ३५
धम्मो मंगलमुक्कट्ठं	जयध० गा० १
धुवखंधसांतराणं	धवला श्रा० प० ६२३

प

पअडिचउला कव्वेसु	मैथिली० २-६
पउमेसु अद्धाणिम्मी-	वि० कौ० ५-३
पवखेवरासिगुणिदो	धवला १-२-५
पच्चय सामित्तविही	धवला श्रा० प० ४४६
पच्चाहरित्तु विसए	धवला श्रा० प० ८३७
पच्छा पावा-णयरे	धवला श्रा० प० ५२६
पज्जवणायवोक्कंतं	जयध० गा० १२, १४
पडिबंधो लहुयत्तं	अन० टी० ६-८१
पढमप्पढमं णियदं	तत्त्वार्थवृ० टि० २-१
पढमम्मि सव्वजीवा	विजयो० ४२१
पढमं चिय विगलियमच्छ-	विजयो० ११
पढमे पयडिपमाणं	धवला श्रा० प० ३७८
पढमो अबंधयाणं	धवला श्रा० प० ५४८
पढमो अरहंताणं	धवला १-१-२
पणवण्णा इर वण्णा	धवला श्रा० प० ४४२
पण्णाट्ठी च सहस्सा	धवला १-२-७
पण्णारसकसाया विणु	धवला श्रा० प० ४५०
पण्णासं तु सहस्सा	धवला १-४-५०
पण्ह् परिग्गहो जदि	क्रियक० टी० ६०
पत्तेयभंगमेगं	गो० जी०, जी० टी० ३५४
पत्थेण कोद्देवेण व	धवला १-२-४
पत्थो तिहा विहत्तो	धवला १-२-३
पदणिक्खेवविभागं	जयध० श्रा० प० ४२०
पदमत्थस्स णिमेणं	जयध० गा० १
पदमिन्दणलाणुगा	धवला श्रा० प० ६६४
पदणीसोना संखा	धवला श्रा० प० ३८१
पदुमि नव विनयो	धवला श्रा० प० ३३६
पमयबहुदस्स भावा	धवला श्रा० प० ८६०
पम्मा पउमसवण्णा	धवला १-१ (सु०टी० १३३)
परमरहस्समिसीणं	जयध० गा० १
परमाणु-आदियाइं	धवला १-१-१३१
परिणामो केरिसो भवे	जयध० श्रा० प० ८३७
परिणिव्वुदे जिणिंदे	धवला श्रा० प० ५३६
परिनमइ थणाणं	मैथिली० ३-१८
परियट्टदाणि बहुनो	धवला १-२-४
पल्लासंखेज्जदिमो	धवला श्रा० प० १२३
पल्लो सायर-सूई	धवला १-२-१७
पवयण-जलहि-जलोयर-	धवला १-१-१
पंच-ति-चउविहेहिं	धवला १-१-१२२
पंचत्थिकायमइयं	धवला श्रा० प० ८३८
पंच य मासा पंच य	धवला श्रा० प० ५३७
पंच रस पंच वण्णा	धवला श्रा० प० ८३०
पंच रस पंच वण्णा	अन० टी० ६-३७
पंच-समिदो ति-गुत्तो	धवला १-१-१२३
पंचसय बारसुत्तर-	धवला १-२-६
पंच-सेल-पुरे रम्मे	धवला १-१-१
पंचादिअट्ठणिहणा	जयध० श्रा० प० ६२१
पंचासुहसंघडणा	धवला श्रा० प० ४४१
पंचेक्क छक्क एक्क य	जयध० गा० १
पंचेव अत्थिकाया	धवला श्रा० प० ५३६
पंचेव य कोडीओ	मूला० ८० १०४४
पंचेव सयसहस्सा	धवला १-२-१४
पावंति लच्छिम दाविआओ	मैथिली० ३-३
पावागमदाराइं	जयध० गा० १
पावेण णरय-तिरियं	परम० टी० २-६३
पासत्थो सच्छंदो	विजयो० २४
पाहुडभूमिगमणे	अन० टी० १-११
पीडिज्जमंदपल्लंके	विजयो० १०१
पुग्गलदव्वे जो पुण	[illegible] टी० १३
पुच्छाविसेस भंगा	[illegible] ४-१२
पुट्ठं सुणेदि सद्दं	[illegible] १-११
पुढवि जलं च छाया	धवला १-१-१
पुढवि [illegible]	[illegible]
पुढवी पुढवीकायो	[illegible] २-११
पुढवी य [illegible]	धवला १-१-४१
पुण्णा [illegible]	[illegible]
पुरिसुत्तमो [illegible]	धवला १-१-१०१
पुरुगुणभोगे सेदे	[illegible] १-१-११
[illegible]	[illegible]

ह

नोट—इस सूचीमें कुछ ऐसे वाक्योंको भी शामिल किया गया है जो यद्यपि पुरातन-जैनवाक्य-सूची-के किसी न किसी ग्रन्थमें ऊपर पृष्ठ १ से ३०८ तक आचुके हैं। परन्तु वे उस ग्रन्थसे पहिलेकी बनी हुई टीकाओंमें 'उक्तं च' आदि रूपसे उद्धृत भी पाये जाते हैं और जिससे यह जाना जाता है कि वे वाक्य संभवत: और भी अधिक प्राचीन हैं और वाक्य-सूचीके जिस ग्रन्थमें वे उपलब्ध होते हैं उसमें यदि प्रक्षिप्त नहीं हैं—जैसे कि गोम्मटसारमें उपलब्ध होनेवाले धवलादिकके उद्धृत वाक्य—तो वे किसी अज्ञात प्राचीन ग्रन्थपरसे लिये जाकर उसका अंग बनाये गये हैं। और इस लिये उन्हें भी इस सूचीके शीर्षकमें प्रयुक्त हुए 'अन्य' शब्द-द्वारा ग्रहीत समझना चाहिये।

---

४ धवला-जयधवलाके मंगलादि-पद्योंकी सूची

जयइ धवलंगतेए-	जयध० १–१
जयउ धरसेणणाहो	धवला २–१
जयउ भुवणेक्कतिलओ	धवला, वेयणा-अणि० ८
जस्स से(प)साएण मए	धवला, पसत्थि १
जं एत्थत्थ कवलियं	जयध० चरित० खं० पसत्थि ६
जिणरदसंभरणमहा-	जयध० ४ पसत्थि १
जेणिह कसायपाहुड-	जयध० १–६
जे ते केवलदंसण-	जयध० ७–१
जे ते तिलोयमत्थय-	जयध० पच्छिमखं० १
जे मोहसेण्णपच्छिम-	जयध० पच्छिमखं० ५
जेसिं णवप्पभारा	जयध० पच्छिमखं० २
जो अज्जमंखुसीसो	जयध० १–८
झायइ जिणिंदचंदं	जयध० ३–२ चूलि० १
णमह गुणरयणभरियं	जयध० १–५
णमिऊण पुप्फयंतं	धवला, वेयणा-अणि० २२
णमिऊण वड्ढमाणं	धवला, वेयणा-अणि० २४
णमिऊण सुपासजिणं	धवला, वेयणा-अणि० २०
णमिऊणेलाइरिए	धवला १–४–१
णाणेण झाणसिद्धी	जयध० पसत्थि ३
णिट्ठविय-अट्ठकम्मं	धवला, वेयणा–अणि० ७
णिट्ठविय-अट्ठकम्मं	जयध० ३–१
णिट्ठविय-चउट्ठाणं	जयध० ८–१
तस्स णिवेदियपरिसुद्ध-	जयध० ५–२–१
तह वि गुरुसंपदायं	जयध० चरित्त० खं० पसत्थि ४
तित्थयरा चउवीस वि	जयध० १–२
ति-रयण-खग्गणिहाए	धवला ४–३
तिहुवणभवणप्पसरिय	धवला ४–२
तिहुवणसिरसेहरए	धवला १, ६–१–१
तिहुवणसुरिंदवंदिय-	धवला, वेयणा–अणि० १८
ते उसहसेण-पमुहा	जयध० चरित्त० खं० पसत्थि० २
तो अ देवया मिणमो	जयध० १५–३
दुहतिव्वतिसाविणिंदिय-	धवला ४–५
पउम-दल-गब्भ-गउरं	धवला, वेयणा–अणि० १६
पणमह कय-भूय-बलिं	धवला १–६
पणमह जिणवरवसहं	जयध० १०–१
पणमामि पुप्फदंतं	धवला १–५
पणमिय णीसंकमणे	जयध० ४–१
पणमिय मोक्खपदेसं	जयध० ५–४–१
पणमिय संतिजिणिंदं	धवला, वेयणा–अणि० १०
पदणिक्खेवविभागं	जयध० ३–२–१
पद्धोरियधम्मपहा	जयध० पच्छिमखं० ३
पसियउ मह धरसेणो	धवला १–४
बारहअंगग्गिज्झा	धवला १–२
बोद्दणरायणरिंदे	धवला, पसत्थि ६
भद्दं सम्मद्दंसण-	जयध० ३–२ चूलि० २
महुवरमहुवरवाउल-	धवला, वेयणा–अणि० ११
मुणियपरमत्थवित्थर-	जयध० १५–१
मुणिसुव्वयजिणवसहं	धवला, वेयणा-अणि० ४
मुणिसुव्वयदेसयरं	धवला, वेयणा–अणि० १२
लोयालोयपयासं	धवला १–३–१
वंजणलक्खणभूसिय-	जयध० ६–१
वंदामि उसहसेणं	धवला–पसत्थि २
वेदगवेदगवेदग-	जयध० ६–१
सयल-गण- पउम-रविणो	धवला १–३
सयलिंदविंदवंदिय-	धवला, वेयणा-अणि० ६
सयलोवसग्गणिवहा	धवला, वेयणा–अणि० ३
संजमिदसयलकरणे	जयध० १३–१
संधारिय-सीलहरा	धवला ४–६
संभव-मरणविवज्जिय-	धवला, वेयणा-अणि० १७
साहूवज्झाइरिए	धवला ३–१
सिद्धमणंतमणिंदिय-	धवला १–१
सिद्धंत-छंद-जोइस-	धवला, पसत्थि ५
सिद्धा दड्ढट्ठमला	धवला ४–१
सिद्धे विउद्धसयले	धवला, वेयणा-अणि० ६
सीयलजिणमहिवंदिय	धवला, वेयणा-अणि० २३
सुअदेवयाए भत्ती	जयध० पसत्थि २
सुयदेवयाए भत्ती	जयध० १५–२
सुहमयतिहुवणसिहरट्ठि-	जयध० ३–२ चूलि० २
सो जयइ जस्स केवल-	जयध० १–३
सो जयइ जस्स परमो	जयध० ३–२–२
हंसमिव धवलममलं	धवला, वेयणा-अणि० २१
होउ सुगमं पि दुग्गम	जयध० चरित्त० खं० पसत्थि ७

नोट—इस सूचीमें जिन वाक्योंके लिये वेयणा-अणि० के नम्बरोंकी सूचना की गई है वे 'वेयणा' अपर नाम 'कम्मपयडीपाहुड' के 'कदि' आदि २४ अनुयोग-द्वारोंमेंसे उस उस नम्बरके अनुयोगद्वार (अधिकार) सम्बन्धी धवला-टीकाके मंगल पद्य हैं।

५ शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
२	अग्गमहि···सर्मं	अग्गमहि···ससमं
३	अजधाचार ···३७२	अजधाचार···३-७२
४	अट्ठट्ठ ···१२-११३	अट्ठट्ठ···१२-१११
४	अट्ठण्णव उवमाणा	अट्ठण्णवउवमाणा
४	अट्ठत्तिय·······	अट्ठतिय·······
५	अट्ठं बारस वग्गे	णव णव अट्ठ य बारसवग्गो
५	अट्ठारस जोयणाइं	अट्ठरस-जोयणाइं
६	अट्ठावीसं····१०८	अट्ठावीसं ···१०७
६	अट्ठि य अणेयभुत्ते	अट्ठियअणेयभुत्ते
७	अट्ठेव य जोयण	अट्ठेव जोयण
७	जट्ठेहिं····	अट्ठेहिं····
८	अड्ढस्स य अणलस्स	अड्ढस्स अणलसस्स
८	अडसोलस बत्तीसा	अड सोलस बत्तीसा
९	अणियट्टी बंध तयं	अणियट्टीबंधतियं
९	अणियट्टी संखेज्जा	अणियट्टीसंखेज्जा-
१०	अण्णं णिरुहदि दे	अण्णं णिरुहदि देहं
१३	अपि य····	अवि य····
१६	अविणिय····	अविणय····
२०	अविरा···७०३६	अविरा···१० ३६
२४	अंगुल असंखगुणिदा गो. क.	अंगुलअसंख गुणिदा गो.जी.
२८	आदे ससहर····	ताहे ससहर ···
३०	आराहणणिजुत्ती	आराहणणिज्जुत्ती
३२	आहदि···मुणी	आहरदि···मुणी
३२	आहदि सरीराणं	आहरदि सरीराणं
३४	इसयअठार	इगसयअठार
३४	इगतीसं	इगतीसं
४०	उक्कट्ठेहिं	उक्कट्ठेहिं (उक्काट्ठेहिं)
४७	उवरिल्लपंचया	उवरिल्लपंचये
५०	ए ए पुव्वपदिट्ठा ···	×
५३	गक्केण	एक्केण
५५	एत्थ पमत्तो णाऊ···	×
५५	एत्थं णिरयगईए····	×
५६	एदम्मि य तम्मिस्से	एदम्मि तम्मि देसे
६२	एवं जिणाणंतराले	एदं जिणाणं समवंतराले

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
६५	एसा···जिणाणं	एसा···जगाणं
६८	कत्तिय···किण्हे५४४	कत्तिय ··किण्हे७-५४४
६८	कद्दमपहव ···	कद्दमपहव···
६९	कमहाणी···१७८१	कमहाणी···४-१७८१
७७	कुज्जा वामण तणुणा	कुज्जा वामण-तणुणा
७८	कूडागारा महरिह	कूडागारमहारिह
८३	गणिणिज्जकप्पसु····	×
८४	गंगाकूड पमुत्तो	गंगाकूडमपत्ता
८५	गंगा-सिंधुणईणं	गंगा-सिंधुणईहिं
८६	गिद्धउ लय भारंडो	गिद्ध-उलुय-भारंडो
९५	घरयाय ··· तिलो.प.	घरया य ··· तिलो. सा.
९७	घागो···३ ३९	घागो···३-३९
९९	घोद्सया ह्या····	घोद्ससयह्या····
११३	जंणियस-दीव	जम-णियस-दीव
१२१	जुवराय-वकलत्ताणं(?)	जुवराय-सहल्लाणं
१२२	जे खुपु	जे पुणु
१२२	जे भूंदिपन्नमसत्ता	जे भूंदिपन्न समंता
१२३	जे मंदरजुत्ताइं····	×
१२३	जे सोलस कप्पाणं	जे सोलस-कप्पाणि
१२४	जो इट्ठण (जोइस)	जोइट्ठण (जोइसगण)
१२८	जोयण य छस्स	जोयणयछस्स
१३६	णवदुत्तरसत्तसए····	×
१४१	णाभिगिरी	णाभिगिरि
१४२	णिक्कदत्तु···मूला०	णिक्खित्तु···मूला०
१४२	णिक्कदत्तु···गो.जी.	णिक्खित्तु···गो.जी.
१४२	णिम्मलिद्ध य	णिम्मलिद्धय
१४५	णिरयबिला···· २.१०१	णिरयबिला···· २-१०१
१४६	नदिय दीवं पासो(सं)	[illegible]
१४६	नट्ठमपदो दो दो(?)	[illegible]
१५१	नमो नदिदे···· ५० ३-५३	[illegible]
१५१	नमो दो इइ(इ)	[illegible]
१५१	नमो दो दे ग्रामे	[illegible]

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
१५१	तत्तो परदो वेदीए	तत्तो परदो वेदी
१५६	तव्विवरीदं सव्वं	तव्विवरीदं सच्चं
१६७	तुसितव्वा	तुसिदव्वा
१६७	ते चउक्कोणेसुं एक्केक्क	ते चउचउक्कोणेसुं
१७६	दाणे लोहे	दाणे लाहे
१८२	दुगुणाए सूजी (च)	दुगुणाए सूजी (ची)
१८७	दोणदं	दुओणदं
१८६	धम्मम्मि संति-कुंथुसुं	धम्मम्मि संति-कुंथू
१६२	पचलिदसएणा	अवमिदसंका
१६४	पडिचरये आपुच्छय	पडिचरए आपुच्छिय
२०१	पद(ड)लहवेकपादा(?)	पददलहदवेकपदा
२०२	परदो अच्चत्तपदा ४-	परदो अचियपादा ८-
२०४	पलिहाणं दराणं	फलिहाणंदा ताणं
२१५	पुव्वं कयधम्मेण य	पुव्वि किएण धम्मेण
२१८	फुल्लंतकुमुद····४-७६७४	फुल्लंतकुमुद'४-७६५
२१६	वह्मपकुव्व(ज्ज)	वह्मप्पकुज्ज
२२६	भरहे केत्तम्मि	भरहे खेत्तम्मिं
२३३	मग्गिणि····११७६	मग्गिणि····११७८
२४१	मिच्छत्तपच्चये	मिच्छत्तपच्चयो
२४२	मिच्छाई····(चे०)	मिच्छाई····
२५८	वरणालियेहिं रइओ	वरणालिएररइओ
२६२	वाहि-णिहाणं ····६३७	वाहिणिहाणं ····४-६३७
२६३	विजयादिवासरग्गो	विजयादिवासवग्गो
२६३	विजयादिसु····अंगह०	विजयादिसु''अंगप०
२६४	विजयो अचलो सुधम्मो	विजयोअचलोधम्मो
२७१	सच्चइ सुदो	सच्चइ-सुदो
२८८	संतादिल्ला	संताइल्ला
२६८	सुरणारणारप	सुरणारणारय
२६८	सुरणारएसु चत्तारि४-५५	सुरणारएसु४-५५चे.
१६६	सुहुमकिरिएण झाण	सुहुमकिरिएण झाणे-
३००	सेणगिहथवादि	सेण-गिहथवदि
३०४	सोहम्मादि····तिलो.प. ४८८	सोहम्मादि···· तिलो.सा. ४८८
३०४	सोहम्मादिदिगिंदा····	×

क्रम-संशोधन—

पृष्ठ	क्रम	वाक्य	
३	१	अजदाई खीणंता	पंचसं० ४-६४
	२	अजधाचारविजुत्तो	पवयणसा० ३-७२
५	१	अट्ठाणवदिविहत्तं	तिलो०प० १-२४२
	२	अट्ठाणवदिविहत्ता	तिलो० प० १-२५७
१५६	१	{ तसचउ पसत्थमेय य········ / तसचउ पसत्थमेव य········ }	
	२	तसचउ वरणचउक्कं····(चारोंपंक्ति)	
२०५	१	पव्वजिदो मल्लिजिणो'''···········	
	२	प०ज्ज्ज संगचाए'''···········	
३००	१	सूरपुर चंदपुर णच्चु'''···········	
	२	सूरप्पह भद्दमुहा···········	
	३	सूरप्पह सूइचट्टी···········	
	१	सेण-गिहथवदि पुरहो···········	
	२	{ सेणं अणोरयारं··········· / सेणं णिस्सरिदूणं··········· }	

नोट १—शुद्धिके कारण जिन दूसरे वाक्योंका क्रम वदलना आवश्यक जान पड़े उनपर अंक डाल कर उन्हें यथाक्रम कर लिया जाय अथवा यथास्थान लिख लिया जाय।

नोट २—जिन वाक्योंके शुद्धि-स्थानपर यह × चिन्ह दिया है उन्हें निकाल दिया जाय।

नोट ३—अशुद्ध पाठादिको देते हुए जहाँ विन्दु·······लगाये गये हैं वहाँ वे उस अगले पाठके सूचक हैं जो सूचीमें छपा है और अशुद्ध नहीं है।